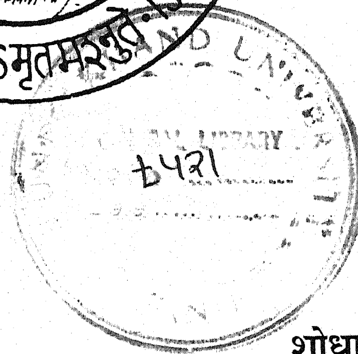
"बुन्देलखण्ड में इस्लाम धर्म का प्रादुर्भाव एवं प्रभाव"

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी की
पी-एच0डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध





शोध पर्यवेक्षक
प्रो0 बी0एन0 राय
से0नि0 अध्यक्ष, इतिहास विभाग

शोधार्थिनी
अनीता दुबे

पं0 जवाहर लाल नेहरु पी0जी0 कालेज, बाँदा

प्रो० बी०एन० रॉय

से०नि० अध्यक्ष, इतिहास विभाग
पं०जे०एन०पी०जी० कालेज,
बाँदा (उ०प्र०)

दिनांक 12/11/02

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि अनीता दुबे ने मेरे निर्देशन में "इस्लाम धर्म का प्रादुर्भाव एवं प्रभाव" विषय पर शोध-कार्य किया है।

इन्होंने मेरे यहाँ निर्धारित अवधि तक उपस्थिति दी है। इनका शोध-कार्य मौलिक है।

यह शोध-प्रबन्ध अब इस स्थिति में है कि इसे पी-एच०डी० उपाधि हेतु मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है।

शोध-पर्यवेक्षक

12/11/02

(बी०एन० रॉय)

प्राक्कथन

बुन्देलखण्ड अनादि काल से ही विभिन्न संस्कृतियो के सम्मिलन का आकर्षक केन्द्र बिन्दु रहा है। यह देवभूमि भारत का हृदय-स्थल है, जिसे रखती है प्राणवत् संरक्षित, विंध्याचल की विस्तृत उत्तुंग श्रेणियाँ। इस पवित्र भूखण्ड में प्राकृतिक संसाधनो की सघनता और अपरिमित सम्पन्नता को देखकर ऐसा लगता है कि मानों प्रकृति अपने सम्पूर्ण उत्कर्ष के साथ बुन्देलखण्ड की धरती को समर्पित हो गयी है। इसकी अनुपम प्राकृतिक छटा और नैसर्गिक सुषमा ने निरन्तर सबके मन को मोहा है। जिसे बनायें रखती है सब दिन हरा-भरा, अविरल प्रवाहमान अनेक पावन नदियाँ। यहाँ पर अविराम चंचल लहरियों के साथ चंबल नदी जीवन की गतिशीलता को बल प्रदान करती है, संघर्षरत रहने का पाठ पढ़ाती है। नर्मदा अपनी तीव्र धार से नफरत की नागफनी को नष्ट करके प्रेम सौहार्द और विनम्रता की बेलि को सींचती है। बेतवा वीरता और ओजस्विता की प्रबलता अंग-अंग में पनपाती है। मंदाकिनी मन की मलिनता को माँजती है। पयस्विनी सब का विष पीकर सबको पय का पान कराकर अमरता का दुर्लभ- द्वार दिखाती है, केन्द्र अहर्निश कल-कल की ध्वनि करती हुयी लक्ष्य तक बढ़ते रहने का सम्पुष्ट संदेश देती है और श्रेष्ठ सृजन के विलक्षण बिन्दु सुलभ कराती है। बागेश्वरी (बागें नदी) वाणी को सुस्पष्टता, सरलता, सुबोधगम्यता, मधुरता और निरंतरता प्रदान करती है और यमुना क्रूर काल के गाल में जाने से बचाती है। विश्व प्रसिद्ध अजेय दुर्ग कालिंजर एवं भगवान राम का साधना केन्द्र कामदगिरि चित्रकूट इसी भू-भाग में अवस्थित है। यह धरती महान ऋषियो मुनियों, सन्तों, साधकों, कवियो और साहित्यकारो की साधना- स्थली रही है। अत्रि, अगस्त्य, व्यास, मार्कण्डेय, दत्तात्रेय, बृहस्पति, सारगं, गौतम ऋषि और शुक्राचार्य आदि ने इसी की गोद में परम-शान्ति और आनन्द की अनुभूति की थी। आदि कवि वाल्मीकि और तुलसी जैसे सन्त साधना के उत्कर्ष महान काव्य सर्जकों ने इसके अंक को अलंकृत किया। रहीम जैसे महान कवि ने भी-

'चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेश
जा पर विपदा परत है, सोई आवत यह देश'

कह कर इस धरती की महती महिमा का बखान किया। इससे विमुग्ध होकर अनेक आक्रान्ताओ ने इस पर भीषण आक्रमण किये। इसको आशातीत क्षति पहुँचायी, फिर भी वे इसके अस्तित्व के सुद्रढ़ दुर्ग को ढहा सकने में समर्थ नही हो सके है, इसके विपरीत उन्हे इसकी संस्कृति इतनी भायी, कि वे इसके मुरीद हो गये।

कुषाण, हुण, शक आदि भी यहाँ आये। ग्यारहवीं शताब्दी में महमूद गजनवीं ने इस धरती पर आक्रान्ता के रूप में अपने पाँव रखे और उसने अपने क्रूर अत्याचारों से यहाँ वेदना को भी रुलाया। इससे यहाँ के लोगो में इस्लाम धर्मावलम्बियों के प्रति घृणा भाव पैदा हुआ, किन्तु कालान्तर में फकीर, सूफी और पीर आदि की सद्भावना ने हिन्दुओ और मुसलमानो के बीच नफरत की खाई

को पाटने का कार्य किया। हिंन्दू मुस्लिम एक दूसरे के नजदीक आये। दोनो में परस्पर विचारो का आदान-प्रदान शुरू हुआ, शनैः-शनैः दोनो धर्मावलम्बियो के दिलो में भाई चारे की भावना ने जगह बना ली। एक दूसरे के प्रति विश्वास बढ़ा। सम्बन्धों की कड़ी में मजबूती आयी, भ्रातृत्व प्रेम उमड़ा। शत्रुओं से घिरी हुयी अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने बाँदा नवाब को राखी भेजकर साम्प्रदायिक सौहार्द्र की ज्वलन्त एवं जीवन्त मिसाल पेश की। इस सन्दर्भ में बुन्देलखण्ड के लोकप्रिय कवि की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य है-

'लक्ष्मीबाई ने नवाब बाँदा को जो भेजी राखी,
हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई कहलाने हित है साखी।'

बुन्देलखण्ड की पावन धरती पर सबका धर्म, सबकी संस्कृति फूले-फले, भाईचारे के भावना की मसाल जले, भेदभाव व द्वेष की दीवार ढहे, आत्मीयता एवं प्यार की अविराम नदी बहे, हिन्दू धर्म और मुस्लिम धर्म के सामंजस्य का वितान तने, दोनों एक दूसरे के प्रभाव के रस में सने, इसी संकल्पना को मूर्तित करने के महुउद्देश्य से 'बुन्देलखण्ड में इस्लाम का प्रादुर्भाव एवं प्रभाव' जैसे नितान्त अभिनव और दुरुह विषय को मैंने शोध कार्य के लिए चुना है। सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध की विषय-वस्तु सात अध्यायों में निबद्ध है। प्रथम अध्याय में बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त रूप में परिचय कराया गया है। द्वितीय अध्याय में इस्लाम धर्म व उसकी संस्कृति की सम्यक विवेचना की गयी है। तृतीय अध्याय में बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक परिदृश्य का चित्रांकन है। चतुर्थ अध्याय में बुन्देलखण्ड की संस्कृति व उसका धर्म वर्णित है। पाँचवे अध्याय में मुस्लिम संस्कृति का बुन्देलखण्ड की संस्कृति पर प्रभाव से सम्बन्धित चर्चा है। इस्लाम संस्कृति के प्रभाव के कारण जो नई मान्यताएं व परम्पराएं संस्थापित हुई, उन्हें उजागर करने हेतु छठवां अध्याय तथा सम्पूर्ण शोध विषय का सारांश समुद्घाटित करने हेतु सप्तम अध्याय समर्पित हैं।

यह दुष्कर शोध कार्य मैंने इतिहास के महा मनीषी, पं० जवाहर लाल नेहरु स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाँदा के इतिहास विभागाध्यक्ष (सेवा निवृत्त) अपने पूज्य गुरु डॉ० बी०एन० राय के कुशल निर्देशन में उनकी कृपा के छत्र तले बैठकर पूर्ण करने का प्रयास किया है। उनका आशीर्वाद ही इस शोध कार्य के पथ का पाथेय बना। यदि उनका वैदुष्यपूर्ण व उत्साहवर्धक निर्देशन मुझे निरन्तर न प्राप्त होता, तो मैं इस कठिन कार्य को सफलता के सही बिन्दु तक न पहुँचा पाती। तदर्थ मैं उनकी आजीवन ऋणी रहूंगी और अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा और कृतज्ञता उनके चरणों में अर्पित करती हूँ।

इतिहासविद 'बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन' के लेखक राधाकृष्ण बुन्देली जी के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने शोध ग्रन्थ से सम्बन्धित उपयोगी विषयवस्तु खोजने हेतु प्राचीन ग्रन्थों व पुस्तकों को सुलभ कराते हुए महत्वपूर्ण सुझावों का द्वार दिखाया है।

बुन्देलखण्ड के प्रख्यात कवि जवाहर लाल 'जलज' को मैं बड़ी श्रद्धा के साथ कृतज्ञता अर्पित करती हूँ, जिन्होंने सदैव स्नेहाशीष व ज्ञान का अमृत पिलाया और शोध के सरोवर में शोधात्मक विचार बिन्दुओं का सतत् नूतन 'जलज' खिलाया। उनके मार्गदर्शन के फलस्वरूप ही इस शोध ग्रन्थ की भाषा, संस्कार, प्राँजलता, सहजता, सुबोधगम्यता व उत्कृष्टता के मुखर निदान को वरण करने में सक्षम हो सकी है। उनकी धर्म पत्नी श्रीमती कमला देवी, पुत्री कुँ० चेतना तथा उनके पुत्र विवेक कुमार की भी आभारी हूँ क्योंकि उनके भी सहयोग की समिधायें इस शोध कार्य के हवनकुण्ड में जली हैं।

मशहूर शायर एहसान कुरेशी 'आवारा' बाँन्दवी की भी अहसान मन्द हूँ, जिन्होंने प्रणामी सम्प्रदाय एवं मुस्लिम संस्कृति की विशद जानकारी हासिल करायी है। जनाब साबिर नियाजी, इलियास मगरबी के सुपुत्र तथा शमीम बानों की भी शुक्र गुजार हूँ जिन्होंने इस्लाम धर्म से सम्बन्धित तमाम तथ्यों को उदघाटित किया। इस्लाम धर्म की परम्पराओ का गहन अध्ययन इतिहास विषय के मर्मज्ञ डॉ० रऊफ सिद्दीकी के सहयोग के बिना सम्भव नहीं था। उनके प्रति आभार व्यक्त करना मैं अपना दायित्व समझती हूँ। जिन्होंने इस्लामिक संस्कृति व धर्म में प्रचलित रीति-रिवाजों, परम्पराओं के सन्दर्भ में मूल्यवान जानकारी दी है। डॉ० महेन्द्र अवस्थी, संतोष तिवारी, डॉ० वीरेन्द्र शर्मा, एम.एस. किदवई, मुस्ताक हुसैन, सत्यनारायण द्विवेदी और शिक्षिका श्रीमती बिल्कीस जी के प्रति भी आभारी हूँ जो इस शोध कार्य को पूर्ण करने हेतु बराबर मुझे प्रोत्साहित करते रहे तथा आपेक्षित सहयोग प्रदान करने में तनिक भी संकोच नहीं किया।

अपने वंदनीय श्वसुर स्व० श्री अमरननाथ दुबे जी को मैं श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूँ, जिन्होंने इस पुनीत कार्य को करने के लिए मुझे बहुत पहले प्रेरणा प्रदान की थी और जो इस शोध कार्य के पूर्ण होने के पहले ही इस दुनियाँ से चले गये हैं। साथ ही साथ अपनी सास श्रीमती सुशीला दुबे की भी ऋणी हूँ जिन्होंने मुझे घरेलू चिन्ताओं से बिल्कुल ही विमुक्त रखकर इस कार्य की सफलता का सेतु रचा है। अपने पिता श्री गणेश प्रसाद पाण्डेय एवं माता श्रीमती शिववती पाण्डेय जी के प्रति पूरे मन से सम्मान व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने वात्सल्य की उंगली पकड़ाकर मुझे उच्च्य शिक्षा के पथ पर चलाया और सशक्त उत्साहवर्द्धन का दीपक थमा कर सफलता के द्वार तक पहुँचाया। लघु भ्राता आशीष पाण्डेय के प्रति भी आभार जिनकी प्रबल मंगल कामनाएं सदैव मेरे साथ रहीं। श्री चन्द्रशेखर मिश्र जी की भी मैं कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने ऐतिहासिक स्थलों को नजदीक से देखने व समझने का सुअवसर जुटाया। पति श्री दीपक दुबे जी को अर्पित है अन्तर्मन के भावों के सुरभित सुमन जिन्होंने एक सच्चे जीवन साथी के दायित्व का सतत सम्यक निर्वाह किया है और वे इस शोध कार्य की बाती के लिए सही दीपक सिद्ध हुए हैं। उन्होंने कभी भी उत्साह का तेल समाप्त नहीं होने दिया है और कार्य को पूर्णता के बिन्दु तक पहुँचाने में अभूतपूर्व सहयोग किया है। श्रीमती दीप्ति मिश्रा और

कु० तृप्ति दुबे की भी आभारी हूँ, जिन्होंने गृह कार्य का जाल मेरे ऊपर तनिक भी नहीं पढ़ने दिया। बहन रीता और श्वेता की बहुत आभारी हूँ, जिन्होंने मेरी तीन वर्षीया बेटी अनन्या को शोध कार्य के दौरान काफी समय तक अपने पास रखा, उसे मातृवत लाड़-प्यार दुलार और वात्सल्य के मधुरस का आकण्ठ पान कराया, उसे माँ की अनुपस्थिति का आभास नहीं होने दिया और स्वाभाविक बालहठ के व्यवधान से मुझे बचाये रखा है। लम्बे अन्तराल तक मेरी बेटी अनन्या माँ की ममता के महत्तर मण्डप से दूर रही, इसलिए उसे भी मेरी ओर से अर्पित है असीम ममता का अक्षय कोष।

अन्त में उन सबके प्रति भी मैं बड़ी निष्ठा के साथ हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने इस श्रमसाध्य शोध कार्य को पूरा कराने में किंचित भी मुझे अपना सहयोग प्रदान किया है और जिनके नामों का उल्लेख विस्मृत के धुन्ध में मैं यहाँ नहीं कर पायी हूँ।

इस शोध कार्य के लेजर सेटिंग के लिए 'श्री प्रिन्टर्स' के प्रो० श्रीकान्त शुक्ल एवं सहयोगी जमीर खान को भी धन्यवाद देती हूँ कि अल्प समय में शब्दों की अशुद्धियों को दूर करते हुए इस कार्य को सम्पूर्णता प्रदान करने में कठिन श्रम किया है।

'बुन्देलखण्ड में इस्लाम धर्म का प्रादुर्भाव एवं प्रभाव' शोध प्रबन्ध प्रखर शोध निर्देशक श्रद्धेय गुरुवर प्रो० बी०एन० राय (सेवा निवृत्त) की अनुकम्पा से पूर्णता को प्राप्त हुआ है। उन्हें पुनरापि नमन है। इस शोध कार्य में जो अशुद्धियाँ रह गयी हों, उसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। आशा है कि यह शोध प्रबन्ध विषय से सम्बन्धित जिज्ञासुओं को रुचिकर लगेगा सहृदय पाठकों के मन को भायेगा, इस सम्भाग में इस्लामिक और हिन्दू संस्कृति व धर्म के संगम का संदर्शन कराना एवं बुन्देली माटी की झांकी दिखाने हेतु उपयोगी सिद्ध हो सकेगा।

इसी प्रत्याशा और विश्वास के साथ -

शोध छात्रा

Anita Dubey

(अनीता दुबे)

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त परिचय, सीमांकन एवं नामकरण।
- बुन्देलखण्ड के निवासियों की इस्लाम के आगमन के पूर्व सामाजिक स्थिति।
- बुन्देलखण्ड के आगमन के उपरान्त यहाँ की परम्पराओं में होने वाले परिवर्तन।
- बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होने वाले इस्लाम धर्म से सम्बन्धित ऐतिहासिक साक्ष्य।

बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त परिचय

बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त परिचय, सीमांकन एवं नामकरण

बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र कोई नवीन ऐतिहासिक स्थल नहीं है, अपितु इसका अस्तित्व भारतीय सभ्यता के विकास के साथ प्रारम्भ हो गया था, किन्तु उस काल में इस क्षेत्र को बुन्देलखण्ड के नाम से नहीं पुकारा जाता था, इसकी अपनी अलग सांस्कृतिक पहचान थी। प्राचीन काल से ही यह क्षेत्र तप और योग के लिए प्रसिद्ध रहा है। इस क्षेत्र में सर्वत्र विन्ध्यांचल पर्वत श्रेणियाँ है, तथा इससे निकलने वाली अनेक पावन सरितायें भी है। बुन्देलखण्ड की भौगोलिक बनावट विषम है। यहाँ ऊँचे पर्वत है और कहीं उपजाऊ भूमि है। कहीं रेगिस्तान है तो कहीं घनघोर जंगल है। इस क्षेत्र में ग्रीष्म वर्षा और शीत तीन प्रकार के मौसम होते है। शीत ऋतु में यहाँ सर्वाधिक ठण्ड और ग्रीष्म ऋतु में सर्वाधिक गर्मी पड़ती है।

बुन्देलखण्ड की तपोभूमि में अनेक सुप्रसिद्ध दुर्ग, गुफाये, धार्मिक स्थल है जो विश्व प्रसिद्ध है। यहाँ पर गरीब व्यक्ति कुटियों में निवास करते हैं, जो सतो, रजो ओर तमो गुण के अनुयायी है। यह क्षेत्र यमुना, नर्मदा, टौस और चम्बल नदियों से आवृत्त है। इस क्षेत्र में सृष्टि के आदिकाल से निश्चय, अनार्य, तिब्बती, असुर, वर्मा, कोल, सुर, नाग आदि वीर जातियाँ निवास करती थी। इस क्षेत्र को दैत्य, दानव, गरुण, द्रविण, गौड़ आर्य और बागड़ियों ने प्रभावित किया।

इस क्षेत्र में सूर्यवंश के भगवान श्री रामचन्द्र अपने वनवास के दौरान 12 वर्षो तक यहाँ रहे। इस क्षेत्र को चन्द्रवंशीय पांडुवों के साथ-साथ मगध के राजाओं, नागवंशीय नरेशो ने तथा गुर्जर प्रतिहारो ने भी प्रभावित किया। इस भूमि में हूण, कुषाण आदि नरेशों का आक्रमण हुआ, तथा कल्चुरी, गहड़वाड़, परिहार, नाग, खंगार तथा चन्देल नरेशों ने सैकड़ों वर्ष तक शासन किया, उसके पश्चात् इस क्षेत्र में बुन्देलो और मालवा के सुबेदारों का अधिकार हुआ, जिनके कारण बुन्देलखण्ड का राजनीतिक प्रभाव बढ़ा।

इस क्षेत्र का सर्वाधिक सम्मान बुन्देला नरेशों के कारण हुआ, इस वंश के अर्जुन देव, सोहनपाल, मलखान सिंह, रुद्रप्रताप, मधुकर शाह, वीर सिंह जू देव, छत्रसाल आदि सुप्रसिद्ध नरेश थे, जिन्होंने हिन्दुओं की रक्षा मुसलमान आक्रमणकारियो से की। इस परिक्षेत्र में रघुवंशी, परमार, धनेर, गुर्जर, सेंघर और कछवाहा वंश के शासकों ने भी राज्य किया। इस क्षेत्र में ब्राह्मण, योगी, यादव, बनगौड़, सौंर और कौंदर जाति के आदिवासी निवास करते थे जिनका मुख्य व्यवसाय कृषि व उद्योग था।

दीवान प्रतिपाल के शब्दों में -

वर बीर-देश 'बुन्देलखण्ड'।

तप-त्याग-केन्द्र, हिम भरतखण्ड।

तुव विशद विंध्यगिरि गगन ताहि,

नद, गर्त्त, गूढ़ पाताल जाहि।

बन सकै न वर्णत बदन-चित्र,

कहु कियो लिखन साहस सु-पुत्र।

'प्रतिपाल' समर्पत, कर कँपात,

यह तुच्छ भेंट लो बिहँसि तात।[1]

इस प्रकार हम देखते है कि बुन्देलखण्ड एक ऐसा पावन क्षेत्र है जो अन्य क्षेत्रों से महान है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र की जितनी प्रशंसा की जाये, कम है। यह वह देश है जहाँ हरदौल और छत्रसाल जैसे वीरों ने जन्म लिया। यथा-

क्यों न रहे उस देश का विक्रम ओज अतौल।

प्रकटे जिस प्रिय भूमि में, छत्रसाल हरदौल।।[2]

बुन्देलखण्ड क्षेत्र के स्त्री और पुरुष दोनों ही समान रूप से राष्ट्र के लिए बलिदान करते रहे, उनकी यशोगाथा भी कवियों द्वारा की गयी।

इस प्रान्त में आकें पहूज नदी गति मन्थरिणी अतिधीरा हुयी।

यहाँ के वनवृक्षों के दृश्य विलोक दिवंगना प्राप्त समीरा हुयी।।

बलवीरता ओज उदारता भी गरिमामयी और गम्भीर हुयी।

पद्यालया भी इस देश में आ इसी खंडकी खानकी हीरा हुयी।।

बलिदान में आगे रहा सबसे रण में सर्वस्व समेटियाँ दी।

प्रतिमा पै स्वतन्त्रता की चढ़ाके कितनी बलवान कमेटियाँ दी।।

डटता ही रहा निज कौल में जो औसदा रिपुको थी चपेटियाँ दी।

इस खण्ड बुन्देल ने भूल के भी अपनी मुगलों को न बेटियाँ दी।।[3]

इस क्षेत्र के महान तीर्थो में मुख्य रूप से चित्रकूट, ओरछा, कालिंजर, उन्नाव, पन्ना, खजुराहो आदि स्थल है, जो पावन होने के साथ-साथ महापुरुषों की यशगाथाओं से जुड़े हुए हैं। राजा पंचम सिंह, वीर सिंह, चंपतराय, छत्रसाल, हरदौल आदि राजाओं ने इसे अपनी कर्मभूमि बनाया। इसीलिए यह क्षेत्र विश्व का सुप्रसिद्ध स्थल बना।

चित्रकूट ओरछा, कालिंजर, उन्नाव तीर्थ,

पन्ना खजुराहो जित कीर्ति झुक झूमीं है।

यमुन पहूज सिंध बेतवा धसान केन,

नर्मदा पहुज टोंस प्रेम पाया घूमीं है।

पंचम बृसिंह राव चम्परा छत्रसाल, लाला।

हरदौल भम्भ भाव चाव चूमीं है।।

अमर अनन्दनीय असुर निकन्दनीय।

वन्दनीय विश्व में बुन्देलखण्ड भूमि है।[4]

(घासीराम व्यास, मऊ)

इस परिक्षेत्र में संस्कृत के आर्य कवि बाल्मीकि का जन्म चित्रकूट के निकट लालापुर में हुआ उन्होंने बाल्मीकि रामायण की रचना की तथा चित्रकूट की पावनभूमि की प्रशंसा भगवान श्री राम से करवाई -

''चित्रकूटमिमं पश्य प्रवृद्धशिखरं गिरिम्।
समभूमितले रम्ये द्रमैर्बहुभिरावृते।।'' [5]

महर्षि वाल्मीकि ने एक अन्य स्थान पर चित्रकूट के सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार किया है-

''शिला शैलस्य शोभन्ते, विशालाः शतशोऽमितः।
बहुला बहुलैर्वर्णैः नीलपीत - सितारुणैः।।'' [6]

बाल्मीकि रामायण के पश्चात् महाभारत मे भी बुन्देलखण्ड क्षेत्र का वर्णन विन्ध्य पर्वत श्रेणी के रूप में वर्णित है। इस ग्रन्थ में यहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुये महर्षि वेदव्यास ने इसे श्रेष्ठ तीर्थ माना।

अत्र कालजंर नाम पर्वतं लोकविश्रुतम्।
तत्र देवह्रदे स्रात्वा गोसहस्त्रफलं लभेत्।।
योः स्रातः साधयेत् तत्र गिरौ कालजये नृप।
स्वर्गलोके महोयेत् नरो नास्त्यत्र सशंयः।। [7]

महर्षि वेदव्यास ने चित्रकूट को भी महान तीर्थ माना है तथा यात्रा करने से तीर्थयात्रियो को विशेष लाभ बतलाया हैं -

ततो गिंरिवरश्रेष्ठे चित्रकूटे विशाम्पते।
मन्दाकिनी समासाद्य सर्वपापप्रणाशिनीम्।।
तत्रभिषेकं कुर्वाणः पितृदेवार्चने रतः।
अश्वमेघमवान्पोति गतिं च परमां व्रजेत्।। [8]

कालीदास संस्कृत के सुप्रसिद्ध साहित्यकार है। उन्होने अपने ग्रंथ मेघदूत और ऋतुसंहार में बुन्देलखंड की पावन-भूमि का वर्णन किया है -

तृणोत्करैः उद्गत-कोमलांकुरैः, चितानी नीलै हरिणीमुखक्षतैः।
बनानि वैंध्यानि हंरित मानसं, विभूषितान्यूद्गतपल्लवैः द्रुमैः। [9]

महाकवि कालीदास ने ही अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ मेघदूत में इस क्षेत्र का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है-

''रेवां वृक्ष्यसि उपलविषमे विंध्यपादे विशीर्षा,
भक्तिच्छेदैखि विरचितां भूतिभंगे गजस्य।''(19)

यत्रांशुकाक्षेपविलज्जितानां, यदृच्छया किंपुरुषांगनानम्।
दरीगृह-द्वार-बिलम्बि-विम्बाः, तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति।''(14) [10]

सुप्रसिद्ध विद्वान वाणभट्ट ने भी अपने ग्रन्थ कादम्बरी और हर्षचरितसार में ''विन्ध्यआरवी'' का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है, प्राकृतिक भाषा के ग्रन्थ ''बज्जालग्ग'' में भी इस क्षेत्र का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ के अनुसार यहाँ के मूल निवासी शबर जाति के लोग थे, जो पशुओं की खालों और हाथी दाँत का व्यापार करते थे।

दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- अकबर के जमाने के सुप्रसिद्ध साहित्यकार अबुल फज़ल ने भी बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र की प्रशंसा की, उनके अनुसार- कालिंजर से 20 कोस की दूरी पर हीरे की खदाने थी तथा कालिंजर नरेश कीरति सिंह के पास छः बड़े हीरे थे।[11]

बुन्देलखण्ड का यशगान अनेक कवियों ने अपने अनुसार किया है। श्री मोतीलाल त्रिपाठी ''अशान्त'' ने इसकी प्रशंसा इस प्रकार की-

बुन्देल भूमि पर चन्देलों ने अपना वैभव विखराया।
नृप धंग, गंड, परमाल वीर ने अपना झण्डा फहराया।
जेजाक भुक्ति बुन्देलखण्ड को बुन्देलों ने अपनाया।
अनगिन दुर्गों को निर्मित कर चहुं ओर कीर्ति को छिटकाया।
चन्देलों की उज्जवल गाथा स्वर्णिम युग का अनमोल रतन।
बुन्देलों का बलिदान हुआ पावन वसुधा है रण-आंगन।[12]

सुप्रसिद्ध इतिहासकार के०के० शाह ने बुन्देलखण्ड को भावनात्मक आधार पर अत्यन्त महत्वपूर्ण क्षेत्र माना है और इसके भौगोलिक महत्व को स्वीकारा किया है, उनके अनुसार-

"One might very well ask what need there is to define Bundelkhand when it is so well known a concept. But to use on oft-quoted phrase, of course coined in another historical context, Bundelkhand is still a 'geographical expression', its area being divided into the states of Uttar Pradesh and Madhya Pradesh.[13]

सुप्रसिद्ध इतिहासकार और पूर्व उपनिदेशक सूचना विभाग श्री पृथ्वी नाथ चतुर्वेदी ने अपने लेख 'बुन्देलखण्ड-एक समीक्षात्मक विवेचना' में बुन्देलखण्ड को इस प्रकार परिभाषित किया है-

बुन्देलखण्ड एक भावुक भावना तथा लगाव का प्रतीक है।[14]

सुप्रसिद्ध इतिहासकार गोरेलाल तिवारी ने बुन्देलखण्ड के इतिहास को गौरवपूर्ण मानते हुए अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये है -

''हमारा अतीत यदि गौरवपूर्ण है तो नीचे गिरते हुए भी हम यह आशा कर सकते है कि जिस दिन हमें अपने इस भूले हुए अतीत की याद आ जावेगी उसी दिन हमारा सोता हुआ स्वाभिमान जाग उठेगा और हम सम्हल कर खड़े होंगे। जिस जाति के पास अपना इतिहास है, उसे निराश होने का कोई कारण नहीं दिखता।''[15]

इस प्रकार हम देखते हैं कि बुन्देलखण्ड भले ही राजनीतिक दृष्टि से एक न हो, किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से वह सदैव एक रहा है तथा उसकी अपनी एक अलग पहचान है।

बुन्देलखण्ड का सीमांकन-

भारत वर्ष की पावन-भूमि, जिसे हम बुन्देलखण्ड के नाम से पुकारते है वह भारतवर्ष के मानचित्र में निम्न प्रकार से स्थित है।

बुन्देलखण्ड की स्थिति नक्शे पर 23^{0}-45' और 26^{0}-50' उत्तरी तथा 77^{0}-52' और 82^{0}-0' पूर्वीय भू-रेखाओं के मध्य में है।

यदि बुन्देलखण्ड का सीमांकन किया जाये तो ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड चार प्रमुख नदियों के बीच स्थित है। बुन्देलखण्ड के उत्तर में यमुना नदी, पूर्व में टोंस नदी, दक्षिण में नर्मदा नदी और पश्चिम में चम्बल नदी है।

बुन्देलखण्ड की सीमाओं का निर्धारण करने में उसके राजनीतिक और ऐतिहासिक वर्चस्व पर भी ध्यान देना होगा। प्राचीन काल में जहाँ तक चन्देल राज्य की सीमाये रही हैं, उसे बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत माना जा सकता है। चन्देलों का शासन, चम्बल नदी के किनारे, आगरा जिले के बटेश्वर तक रहा है, इसीलिए बुन्देलखण्ड का सीमांकन चम्बल नदी तक किया जाता है। बटेश्वर में स्थित पुरावशेषों में चन्देलकालीन अभिलेख उपलब्ध हुए है, उस समय बुन्देलखण्ड को 'जेजाकभुक्ति के नाम से पुकारा जाता था। इसी प्रकार का एक अभिलेख 'कच्छपघाट' में विक्रमसिंह का उपलब्ध हुआ है, विक्रमसिंह चन्देलों का मांडलिक था। कच्छपघाट ग्वालियर से 36 मील दूर है, यहाँ के रीति-रिवाज और यहाँ की परम्पराये बुन्देलखण्ड के अन्य भागों से मिलती है इसलिए इसे बुन्देलखण्ड माना जा सकता है।

दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार-बुन्देलखण्ड की सीमायें इस प्रकार है- पूर्व में टोंस और सोन नदियाँ अथवा बघेलखण्ड या रीवाँ राज्य है तथा बनारस के निकट बुँदेला नाले तक सिलसिला चला गया है।

पश्चिम में- वेतवा, सिंध और चम्बल नदियाँ, विध्यांचल श्रेणी, मालवा, सिंधिया का ग्वालियर राज्य और भोपाल राज्य है। पूर्वी मालवा इसी में आता है।

उत्तर में- यमुना और गंगा नदियां अथवा इटावा, कानपुर, फतेहपुर, इलाहाबाद और मिर्जापुर तथा बनारस जिले है।

दक्षिण में- नमर्दा और मालवा है।

परन्तु समय-समय पर राजाओं की सत्ता के अनुसार सीमायें बढ़ती और घटती रही है।[16]

महाराजा छत्रसाल के राज्य तक बुन्देलखण्ड का यही सीमांकन था, इसके पश्चात् उन्होंने अपने राज्य का कुछ भाग मराठों को दे दिया, जिसके कारण शाहाबाद और बांधोगढ़ बुन्देलखण्ड में शामिल हो गये। बुन्देलखण्ड के सीमांकन के सम्बन्ध में निम्न पद बड़ा ही उपयोगी है-

दोहा- *इत जमुना उत नर्मदा, इत चंबल उत टोंस।*
छत्रसाल सो लरन की रही न काहू हौंस।।1।।

छं0- *उत्तर-समथल भूमि गंग जमुना सु-बहति है।*
प्राची दिस कैमूर, सोन, कासी सु-लसति है।।

दक्खिन रेवा विंध्याचल तल सीतल करनी।

पच्छिम में चंबल चंचल सोहति मनहरनी ।।

तिनमधि राजे गिरि, वन, सरिता सहित मनोहर।

कीर्तिस्थल बुंदेलन कौ बुन्देलखण्ड वर।। [17]

बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में भिंड, ग्वालियर, गिर्द, नरवर, ईसागढ़, विदुषा, सागर, दमोह, जबलपुर, बाँदा, हमीरपुर, जालौन, झांसी आदि क्षेत्र आते हैं। इसके क्षेत्रफल के सन्दर्भ में दीवान प्रतिपाल सिंह का यह ब्यौरा तद्‌युगीन परिस्थितियों के अनुसार सही प्रतीत होता है-

व्योरेवार नक्शे को देखने से ज्ञात होगा कि इस देश का कुल क्षेत्रफल 48310 वर्ग मील हे। इसमें इलाहाबाद और मिर्जापुर के दक्षिणी भाग शामिल नहीं है।

	प्रांत या भाग	वर्ग मील
1.	संयुक्त-प्रदेश के 4 जिले	10535
2.	मध्य-प्रदेश के 3 जिले	8780
3.	इंदौर का आलमपुर परगना	37
4.	भोपाल की दो निज़ामतों में से	2242
5.	रीवां राज्य की 6 तहसीलें	5862
6.	ग्वालियर के 5 जिलो में से	9000
7.	बुन्देलखण्ड के 9 राज्य	9672
8.	बुन्देलखण्ड के 3 राज्य	1126
9.	बुन्देलखण्ड की 14 जागीरें	476
10.	बुन्देलखण्ड की 8 जागीरें	580
	योग	48310 वर्ग मील [18]

सुप्रसिद्ध इतिहासकार मुंशी श्यामलाल ने बुन्देलखण्ड का क्षेत्रफल 30817 वर्ग मील माना है।[19]

मध्य भारत के गजेटियर में इसका क्षेत्रफल 9852 तथा 11600 वर्ग मील माना है। इस गजेटियर के अनुसार इलाहाबाद और मिर्जापुर के बुन्देलखण्ड क्षेत्र के अंशों को स्वीकार नहीं किया गया।

पं० गोरेलाल तिवारी के अनुसार- भारत वर्ष के मध्य भाग में नर्मदा के उत्तर और यमुना के दक्षिण मे विध्यांचल पर्वत की शाखाओं से समाकीर्ण और यमुना की सहायक नदियों के जल से सिंचित सृष्टि सौन्दर्यालंकृत जो प्रदेश है, उसे बुन्देलखण्ड कहते है। इस क्षेत्र में झांसी, जालौन, ललितपुर, बाँदा, हमीरपुर, ओरछा, समथर, दतियाँ, चरखारी, छतरपुर, विजावर, पन्ना, अजयगढ़, सागर, दमोह तथा जबलपुर आदि के भू-भाग आते है।[20]

बुन्देलखण्ड पुरातत्व के लेखक डा० एस०डी० त्रिवेदी ने बुन्देलखण्ड के सीमांकन को दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार ही स्वीकार किया है। उनके अनुसार-इसे उत्तर में यमुना, दक्षिण में

नर्मदा (रेवा), पूर्व में टौंस (तमसा) तथा पश्चिम में चम्बल (चर्मणावर्ती) से आवृत्त मानते है।[21]

सुप्रसिद्ध इतिहासकार एम०एल० निगम के अनुसार बुन्देलखण्ड का सीमांकन उत्तर के यमुना, दक्षिण में नर्मदा, पश्चिम में चम्बल और पूर्व में टौंस नदियों से होता है।

The geographical boundaries of the region are well defined by the River Yamuna in the north and River Narmada in South, the River Chambal in the West and the river Tons in the East. The dialect Bundelkhandi, a dirivative of hindi, is spoken thorugh out the region.[22]

एम०एल० निगम का भी सीमांकन दीवान प्रतिपाल सिंह से ही मिलता-जुलता है। डा० रामस्वरूप ढेगुला ने भी बुन्देलखण्ड का सीमांकन किया है। इनके अनुसार- सघन वनों से आच्छादित एवं विन्ध्य पर्वत की उपत्यकाओं से मण्डित भारत भू-खण्ड के मध्य भाग में स्थित प्रदेश मुगल काल से बुन्देलखण्ड नाम से प्रसिद्ध रहा है। इस प्रदेश की प्राकृतिक सीमायें उत्तर में यमुना, दक्षिण में नर्मदा, पश्चिम में चम्बल एवं पूर्व में टोंस नदियाँ निर्धारित करती है।''[23]

सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० भगवानदास गुप्ता ने भी बुन्देलखण्ड का सीमांकन भौगोलिक आधार पर किया है। उनके अनुसार बुन्देलखण्ड भारत का हृदय है। जिसका अपना सांस्कृतिक महत्व है। वे बुन्देलखण्ड को इस प्रकार परिभाषित करते है-

"Presently it stands divided between the Jhansi, Jalaun, Hamirpur, Banda and Lalitpur district of Uttar Pradesh and the districts of Datia, Tikamgarh, Chhatarpur, Panna, Sagar and Damoh of Madhya Pradesh.[24]

सुप्रसिद्ध विद्वान के०के० शाह ने बुन्देलखण्ड के सन्दर्भ में यह कहा है कि सन् 1828 में सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान पाकसन ने 'हिस्ट्री ऑफ बुन्देलास्' नामक ग्रन्थ की रचना की थी, जो छत्रप्रकाश का अंग्रेजी अनुवाद था। उनके अनुसार- अंग्रेजों द्वारा लिखित इम्पीरियल गजेटियर में इसे बुन्देलखण्ड के नाम से पुकारा है तथा इसे बुन्देलखण्ड एजेन्सी के रूप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार देशी रियासतों का एक समूह, जिसमें पन्ना, चरखारी और दूसरी रियासते आती थी, उसे सेन्ट्रल इण्डिया एजेन्सी के नाम से पुकारा जाता था। श्री के०के० शाह ने इसे सीमांकित किया है-

"Cedi was originally the name of the country along the southern bank of the Jamuna from the Chambal on the north-west to the Karvi on the south-east.[25]

सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री कविमणि पं० कृष्णदास ने विन्ध्यांचल की पर्वतमालाओं और उसकी मनोरम घाटियों, केन, धसान, बेतवा, चम्बल, पहुंज, यमुना नदियों के परिवेष्ठित क्षेत्र को बुन्देलखण्ड माना है।[26]

लेखक के अनुसार- प्राचीन बुन्देलखण्ड का विस्तार, ग्वालियर राज्य के शिवपुरी जिले के कटेरा और पिथौरा, दो परगनों से प्रारम्भ होता है, इसके अतिरिक्त कोलारस परगने का एक तिहाई भाग भिंड जिले के लाहार और भांडेर के परगने पश्चिम में और पूर्व में टोंस नदी से पूर्वी भाग बुन्देलखण्ड की सीमा का निर्धारण करता है। इसी प्रकार उत्तर-प्रदेश के झांसी, हमीरपुर, जालौन और बाँदा तथा मध्य प्रदेश के सागर, जबलपुर, नरसिंहपुर, हुसंगाबाद, मण्डला आदि बुन्देलखण्ड के भाग

हैं। वर्तमान समय में बुन्देलखण्ड में तीन हजार पांच सौ वर्ग मील क्षेत्र शामिल है। रामायण काल में इस क्षेत्र में दंडकारण्य और महाभारत काल में चेदि और दर्शाण चन्देलखण्ड और दक्षिणी भाग बुन्देलखण्ड के अंग थे।

मोतीलाल त्रिपाठी ''अशान्त'' ने बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत झांसी, ललितपुर, जालौन, हमीरपुर, बाँदा, ग्वालियर, भिंड, मुरैना, शिवपुरी, गुना, दतिया, पन्ना, छतरपुर, टीकमगढ़, विदिशा, जबलपुर, सिवनी, सागर, दमोह, नरसिंहपुर, छिंदवाड़ा, मण्डला, बालाघाट, रायसेन, हुसंगाबाद और बैतूल को माना है। लेखक के अनुसार- बुन्देलखण्ड की प्राचीन सीमायें उत्तर में यमुना, दक्षिण में नर्मदा, पूर्व में टौंस और पश्चिम में चम्बल नदी तक मानी जाती है। बुन्देलखण्ड विन्ध्यपर्वत माला में स्थित है तथा यह भारत के मध्य में कर्क रेखा में स्थित है। इसका अक्षांश 26.23 और देशान्तर 28.82 के लगभग है।[27]

इतिहासकार राधाकृष्ण बुन्देलखण्ड बुन्देली के अनुसार- इसका सीमांकन उत्तर में यमुना, दक्षिण में नर्मदा, पूर्व में टौंस तथा पश्चिम में चम्बल नदी तक किया जा सकता है, यह प्रदेश लगभग ८०० वर्ष पुराना है। इसके पहले इसे बुन्देलखण्ड के नाम से नहीं जाना जाता था। उनके अनुसार ग्वालियर राज्य के भिंड, गिरिनखर, इसागढ़, भेलसा तथा भोपाल राज्य का उत्तरी-पूर्वी भाग मध्य प्रदेश के सागर, दमोह, और जबलपुर जिले, रीवाँ जनपद की पश्चिमी तहसीलें, मिर्जापुर का कुछ भाग, इलाहाबाद, बाँदा, हमीरपुर, जालौन तथा झांसी जिले बुन्देलखण्ड के भाग है। जिस क्षेत्र पर गौड़ो ने राज्य किया, वह भी बुन्देलखण्ड का अंग था। बुन्देलखण्ड कुल मिलाकर 40 शासकों के आधीन था, अर्थात् यह क्षेत्र 40 रियासतों में अलग-अलग विभाजित था, जो अपना शासन प्रबंध देखती थीं।[28]

बुन्देलखण्ड के सीमांकन के सन्दर्भ मे कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है -

भैंस बियानी आगरा पड़ा हुसंगाबाद।
लगवैया है सागरे चपिया रेवा पार।।

कुल मिलाकर बुन्देलखण्ड का वही सीमांकन सही प्रतीत होता है, जो सुप्रसिद्ध इतिहासकार दीवान प्रतिपाल सिंह ने निर्धारित किया।

बुन्देलखण्ड की सीमांकन के आधार-

किसी भी परिक्षेत्र की सीमा निर्धारित करने के लिए कुछ मौलिक सिद्धान्तों का निर्माण करना पड़ता है, उसके पश्चात् किसी भी क्षेत्र का सीमांकन आसान हो जाता है। ये सिद्धान्त निम्नवत होते है :-

1. सीमांकन का प्राकृतिक आधार-

किसी भी परिक्षेत्र की सीमा निर्धारित करने के लिए प्राकृतिक अथवा भौगोलिक आधार आवश्यक है। बुन्देलखण्ड का सीमांकन चार नदियों को आधार मानकर किया गया। पूर्व में इसका सीमांकन टोंस नदी, पश्चिम में चम्बल नदी, उत्तर में यमुना नदी तथा दक्षिण में नर्मदा नदी करती है। बुन्देलखण्ड का सीमा निर्धारण धरातलीय बनावट के आधार पर किया गया है। प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता श्री एस०एम० अली ने, पुराणों के आधार पर, विन्ध्यक्षेत्र के तीन जनपदों विदिशा, दशार्ण

और करुष को बुन्देलखण्ड का क्षेत्र माना है।[29] उन्होने विदिशा का उपरी भाग तथा वेतबा नदी के किनारे से लेकर दशार्ण नदी तक का भाग, करुष और सोन नदियो के बीच का मैदानी भाग, बुन्देलखंड के अन्तर्गत माना है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार जयचन्द्र विद्यालंकार के अनुसार- विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी के अन्तगर्त बुन्देलखंड को तीसरा प्रान्त माना है तथा बेतवा, धसान, केन, अमरकंटक को बुन्देलखण्ड का भाग माना है। उनका यह सीमांकन पुराणों के अनुसार है।[30] सुप्रसिद्ध विद्वान श्री आर०एल० सिंह ने भौगौलिक और भौतिक शोधों के आधार पर इसे एक अलग भूखण्ड माना है। तथा उसकी सीमायें इस प्रकार निर्धारित की है, उत्तर में यमुना, दक्षिण मे विन्ध्य पर्वत श्रेणियाँ, उत्तर-पश्चिम में चम्बल एवं दक्षिण-पूर्व मे पन्ना, अजयगढ़ की पर्वत श्रेणियाँ बुन्देलखण्ड के क्षेत्र हैं। उत्तर-प्रदेश के पाँच जिले जालौन, ललितपुर, झाँसी, हमीरपुर, और बाँदा तथा मध्य प्रदेश के चार जिले दतियाँ, टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना, इसके अतिरिक्त उत्तर-पश्चिम मे भिंड, लहर, ग्वालियर जिले की भॉडेर तहसील बुन्देलखण्ड के क्षेत्र के अन्तर्गत माने गये है। भौगौलिक संरचना की दृष्टि से यही सीमांकन सही प्रतीत होता है। कुछ समय तक यहाँ वाकाटको का राज्य भी था, इसलिए इस क्षेत्र को बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत रखा गया।[31]

सीमांकन का ऐतिहासिक एंव राजनीतिक आधार -

बुन्देलखण्ड का सीमांकन ऐतिहासिक और राजनीतिक आधार पर किया जा सकता है। वैदिक काल मे, यह क्षेत्र चेदि जनपद मे शामिल था तथा इसकी राजधानी शुक्तिमति नगरी थी, जो शुक्तिमति नदी के किनारे बसी थी । इस नगरी की खोज सुप्रसिद्ध इतिहासकार के० डी० वाजपेयी और राधाकृष्ण बुन्देली के प्रयासों से हुयी थी तथा इसे वर्तमान समय मे शेरपुर, सिहोड़ा के नाम से जाना जाता है। इस क्षेत्र मे भरवंशियो और नव नागों का भी अधिकार था तथा कुछ समय तक यहाँ वाकाटको का राज्य भी था, इसलिए इस क्षेत्र को बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत रखा गया।[32]

कालांतर मे इस परिक्षेत्र मे चन्देलों का राज्य स्थापित हुआ ,जिसमे केन नदी के किनारे का इलाका, नरैनी तथा कर्वी तहसील का दक्षिणी भाग शामिल था । चन्देलों के समकालीन कुल्चुरी भी थे, जिनका राज्य जबलपुर के आस-पास से लेकर कालिजंर तक रहा, अतः इनके शासन क्षेत्र को भी बुन्देलखण्ड का भाग स्वीकार किया गया। डा० वागीश शास्त्री के अनुसार इस क्षेत्र मे पहले पुलिंद जाति का वर्चस्व होने के कारण इसे पुलिंद प्रदेश के रूप मे जाना जाता था ।इस क्षेत्र मे 10 वीं शताब्दी से 16 वीं शताब्दी तक गौड़ वंशीय राजाओं ने शासन किया, इनके साम्राज्य को भी बुन्देलखण्ड के अतंर्गत रखा जाता है। इसी समय ओरछा के निकट बुन्देलों का राजनीतिक बर्चस्व बढ़ा । बुन्देलों ने यह राज्य हुरमत सिंह व खूबसिंह खंगार को परास्त करके प्राप्त किया था, पहले ये पृथ्वीराज चौहान के मांडलिक थे तथा पृथ्वीराज की मृत्यु के पश्चात् ये स्वतंत्र शासक हो गये। बुन्देलों ने अपने राज्य का विस्तार वीर सिंह जूदेव, चम्पतराय और छत्रसाल के शासनकाल मे किया तथा ये इतने लोकप्रिय हो गये कि जिस भू भाग को इन्होंने जीता, वह बुन्देलखण्ड के नाम से जाना गया। राधाकृष्ण बुन्देली के अनुसार- ''राजनीतिक दृष्टि से इतिहास लिखने के लिये उस बुन्देलखण्ड को मान्यता देनी होगी जो चेदी, कल्चुरियों और चन्देलों के हाथ मे रहा । कालान्तर मे यह साम्राज्य गौड़ो और बुन्देलों के आधीन रहा''।[33]

सीमांकन का सांस्कृतिक आधार-

बुन्देलखण्ड का निर्धारण कुछ लोगो ने सांस्कृतिक आधार पर किया है, इन लोगों का यह मानना है कि जहाँ तक बुन्देलखण्ड से मिलती-जुलती संस्कृति उपलब्ध होती है, वह क्षेत्र बुन्देलखण्ड है। मुख्य रुप से व्यक्तियों की आवसीय व्यवस्था, वस्त्राभरण, आभूषण, भोजन, सामाजिक संस्कार तथा धार्मिक व्यवहार के कारण जो समानता दिखाई देती है व जिस क्षेत्र तक यह समानता प्रतीत होती है, उस क्षेत्र को बुन्देलखण्ड कहा जा सकता है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार ''प्राचीन काल मे जनपद को एक सांस्कृतिक और भौगोलिक इकाई के रुप मे स्वीकार किया जाता था, इसलिये सांस्कृतिक दृष्टि से नर्मदा, चम्बल, और अटारी की सभ्यता बहुत प्राचीन है, जनपदीय चेतना का उदय रामायण और महाभारत काल से हुआ किन्तु, उस काल मे इस क्षेत्र को बुन्देलखंड के नाम से सम्बोधित नही किया जाता था।[34]प्रसिद्ध इतिहासकार पाजीटर ने भी उक्त सीमांकन को मान्यता दी है।[35] प्रसिद्ध इतिहासकार डी०वी०मिरासी के अनुसार-''मध्यकाल में बुन्देलखण्ड का क्षेत्र विस्तार नर्मदा नदी तक हो गया था। अधिकांश इतिहासकार मिरासी के विचार से सहमत है और बुन्देलखण्ड के सीमांकन का सांस्कृतिक आधार सही मानते है। प्राचीन काल में इस क्षेत्र में चेदि जनपद जैसे अनेक गणराज्य थे, इनकी संस्कृति काफी कुछ मिलती-जुलती थी, इसलिये सांस्कृतिक आधार पर इसे बुन्देलखंड का भाग माना गया है, किन्तु कुछ विद्वान सीमांकन का सांस्कृतिक आधार नहीं मानते, वे राजनीतिक आधार को ही मान्यता देते है, जबकि राजनीतिक दृष्टि से बुन्देलखंड कभी भी एक राजा के आधीन नही रहा है, अपितु सांस्कृतिक दृष्टि से सदैव एक रहा है।

बुन्देलखण्ड की सीमांकन का भाषायी आधार- कुछ लोग बुन्देलखण्ड का सीमांकन यहाँ बोली जाने वाली भाषाओं के आधार पर करते है। सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डा० कामिनी ने बुन्देलखण्ड का सीमांकन भाषायी आधार पर किया है, इन्होंने लोक-संस्कृति का आधार भाषा को माना है, इसलिये जहाँ तक बुन्देलखण्डी भाषा बोली जाती है, उसे ही बुन्देलखण्ड माना जा सकता है।[37]

इसी प्रकार सर विलियम केरे ने सन् 1773 में भारतवर्ष का भाषायी सर्वेक्षण किया था। उन्होंने उस समय बुन्देलखण्डी को पृथक भाषा के रुप में स्वीकार किया।

इसी प्रकार सन् 1838से लेकर 1843 के मध्य मेजर राबर्ट लीच ने बुन्देलखण्ड की हिन्दवी बोली की व्याकरण का निर्माण किया, इससे यह स्वीकार किया गया कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र का सीमांकन भाषायी आधार पर ही ठीक है।[38]

सर जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार- ''उत्तर मे चम्बल नदी के उस पार आगरा, मैनपुरी, इटावा जिले के दक्षिण भाग तक, पश्चिम में चंबल नदी तक न होकर पूर्वी ग्वालियर तक, दक्षिण में सागर, दमोह तक ही नही वरन् भोपाल के पूर्वी भागो तक, नर्मदा के दक्षिण में नरसिंहपुर, होशंगाबाद, सिवनी, बालाघाट और छिंदवाड़ा के कुछ क्षेत्रों तक फैला है।[39] उनके अनुसार बाँदा में बुन्देलखण्डी भाषा नही बोली जाती, इसलिये यह बुन्देलखण्ड क्षेत्र का भाग नहीं हो सकता । श्री कृष्णानंद गुप्त भी इस बात को स्वीकार करते है।[40] डा० रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल ने इसका कुछ और

अधिक विस्तार कर दिया है। उनके अनुसार- उत्तर में पूरा मुरैना, पश्चिम में शिवपुरी और गुना के पूरे जिले, दक्षिण में बैतूल तथा ताप्ती नदी का तटीय भाग बुन्देलखण्ड का क्षेत्र है।[41] इसी प्रकार डा० महेश प्रसाद जायसवाल ने भाषायी आधार पर, मध्य प्रदेश के दुर्ग जिले का कुछ भाग तथा महाराष्ट्र के चाँदा, बुलडाना, भंडारा और अकोला जिले के कुछ भाग को बुन्देलखण्ड माना है।[42]

डा० उदयनारायण तिवारी भी डा० ग्रियर्सन के विचार से सहमत दिखाई देते है।[43] डा० ग्रियर्सन की ही पुष्टि डॉ० हरदेव बाहरी भी करते हैं। वे यह बात स्वीकार करते हैं कि भाषा का निर्धारण करते समय, डॉ० ग्रियर्सन ने यहाँ बोली जाने वाली भाषा के कुछ नमूने भी एकत्रित किये थे तथा उन्ही नमूनो के आधार पर बुन्देलखंड की सीमा का निर्धारण किया था। बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में बोली जाने वाली प्रमुख भाषा बुन्देलखण्डी है, किन्तु क्षेत्रीय आधार पर यह कई उपभाषाओं में विभाजित है। इसे अर्न्तपठा, गहोरापठा, कोल्हाई, कुणरी बनाफरी, जाण, जुणर, त्रिरहारी, स्तरीय, बुन्देलखण्ड , लुघाटी, पंवारी, हिडोल, खटोला, पावकी, गौडवानी, आदि कहते है। तथा कुछ लोग वघेलखण्डी भाषा को बुन्देलखण्डी भाषा की उपभाषा मानते है। इन्ही भाषाओं के आधार पर बुन्देलखण्ड का सीमांकन किया गया।

बुन्देलखण्ड का सीमांकन प्राकृतिक संरचना, राजनीतिक दृष्टिकोण, सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था तथा भाषायी आधार पर संयुक्त रूप से किया जाना चाहिए।

बुन्देलखण्ड का नामकरण-

जब कोई नवजात शिशु इस संसार में उत्पन्न होता है, तो उसको अलग पहचान देने के लिए उसे किसी न किसी नाम से सम्बोधित किया जाता है। इसी प्रकार यह पावन भूमि जिसे हम बुन्देलखण्ड के नाम से पुकारते है इसका नामकरण भी किसी न किसी काल में किया गया होगा तथा इसके नामकरण का कोई न कोई ऐतिहासिक स्वरूप रहा होगा।

दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- यह भू-भाग 14वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक बुन्देल शासकों के हाथ में रहा है, तभी से इसे बुन्देलखण्ड कहा जाने लगा है।[44] बुन्देलों से पहले इस क्षेत्र का नाम गौड़वाना था, मुंशी श्यामलाल ने इसका नाम गौड़वाना ही स्वीकार किया। 16वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक इसे गौड़वाना नाम से जाना जाता था।[45]

गौड़वाना से पहले इस क्षेत्र का नाम जेजाकभुक्ति था, यह नाम शक्तिशाली चन्देल शासक जयशक्ति के नाम पर पड़ा। मदनपुर में उपलब्ध सन् 1182 ई० के एक अभिलेख से यह प्रकट होता है कि जब पृथ्वीराज चौहान ने चन्देल नरेश परमाल पर आक्रमण किया, उस समय इस क्षेत्र का नाम जेजाकभुक्ति था।

अरुणा राजस्य पौत्रेण श्री सोमेश्वर सूमिना।
जेजाकभुक्ति देशोयम् पृथ्वीराजेन लूनिता।।1।। [46]

इस परिक्षेत्र में निवास करने वाले ब्राह्मण जुझौतियाँ कहलाते थे, इन्हें 'जेजाहुति' के नाम से पुकारा जाता था इसलिए यहां रहने वाले जुझौतियाँ ब्राह्मण, बनिया और अहिर इस क्षेत्र को जुझौती देश के नाम से पुकारते थे। सुप्रसिद्ध इतिहाकार बी०ए० स्मिथ ने यमुना और नर्मदा के बीच के देश को 'जेजाकभुक्ति' माना है।[47]

पौराणिक साक्ष्यों के अनुसार प्राचीन काल में यह देश चेदि देश के नाम से जाना जाता था, इस देश का राजा शिशुपाल था जिसका वध भगवान श्रीकृष्ण ने किया था। श्रीकृष्ण को अपमानित करने के लिए मोरपंख चिन्ह के जूतों का प्रचलन शिशुपाल ने कराया था। इन जूतों को झब्बेदार जूते कहते थे, जो अब तक प्रचलित था। कालान्तर में ये लोग कल्चुरियों के नाम से प्रसिद्ध हुये तथा इनका राज्य कालिंजर तक विस्तृत था।[48]

इसी परिक्षेत्र के एक भाग को वत्स देश के नाम से भी पुकारा जाता था क्योंकि कौशाम्बी के आस-पास वत्सवंशियों का राज्य था, जिसके अन्तर्गत बुन्देलखण्ड का बहुत सा भाग आता था।

महाभारत के समय में इसका एक भाग दशार्ण देश के नाम से विख्यात था। इस परिक्षेत्र में 10 नदियाँ प्रवाहित होती थी, इसलिए इसे दशार्ण देश कहते थे। यहाँ के शासक हिरण्यवर्मा की पुत्री पंचाल नरेश शिखण्डी को ब्याही थी। इसके अतिरिक्त दशार्णपति सुधर्मा का युद्ध भीमसेन से हुआ था, इस समय इसकी राजधानी विदिशा थी।[49]

कल्चुरि नरेश कर्णदेव ने केन नदी के किनारे कर्णवती नगरी बसायी थी। उस समय यह देश कर्ण देश के नाम से जाना जाता था।[50]

बुन्देलखण्ड का जो भाग कालिंजर के आस-पास था। उसे कालिंजर प्रदेश के नाम से जाना जाता था तथा इस प्रदेश के पूर्वी भाग को 'डाहल' या 'डाभाल' के नाम से पुकारा जाता था। मुसलमानों के शासनकाल तक इसे 'डाहल' के नाम से ही पुकारा जाता था। मुख्य रूप से जबलपुर जनपद को इस नाम से पुकारा जाता था। गुप्त युग में इसके कुछ भाग को 'विन्ध्यआटवी' के नाम से पुकारा जाता था।[51] इसके एक भाग को निषद देश के नाम से पुकारा जाता था। इसकी राजधानी ग्वालियर के सन्निकट नरवर अथवा पद्यमावती नगरी थी, यहां के एक क्षेत्र में हीरों की खदानें है, जहां उत्तम कोटि का हीरा उपलब्ध होता है, इसलिए इसे वज्र देश के नाम से भी पुकारा जाता है। अजयगढ़ में प्राप्त एक अभिलेख के अनुसार- दधीचि वंश की कन्या का विवाह चन्देल नरेश से हुआ था तथा दधीचि की अस्थियों से देवअस्त्र वज्र का निर्माण हुआ था, जिससे इस कथन की पुष्टि होती है।[52]

अनेक प्राचीन ग्रन्थों में इस क्षेत्र का नाम मध्यप्रदेश के रूप में आया है। बाल्मीकि रामायण में इस क्षेत्र को चित्रकूट देश के नाम से पुकारा गया है। ह्वेनसांग ने भी इसका चि-चि-टो के नाम से स्वीकार किया है।[53] इसके एक भाग में विन्ध्यांचल देवी का मन्दिर है, इसलिए इसे विन्ध्यांचल क्षेत्र के नाम से पुकारा गया। इसी क्षेत्र में दैत्यों के देवताओं और देवियों के असुरों से युद्ध हुए, इसलिए इस क्षेत्र को युद्ध-देश के नाम से पुकारा गया -

चैद्य नैषधयोः पूर्वे विंध्य क्षेत्राच्च पश्चिमे।
रेवायमुनयोर्मध्ये युद्ध देश इतीर्थ्यते।।[54]

सन् 1335 ई० में इब्नबतूता ने भारत की यात्रा की थी। उस समय बुन्देलखण्ड के खजुराहों को एक महत्वपूर्ण नगर माना था। सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ 'हकीकर-उल-आमिया', में बुन्देलों की उत्पत्ति एक बंदी पुत्र से मानी गयी है, जो गहरवार वंश के राजा हरदेव की एक सेविका

थी। वह खैरागढ़ छोड़कर ओरछा में बस गयी थे, इसलिए इस वंश के नामधारी बुन्देला कहलाये और यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड के नाम से विख्यात् हुआ।[55]

मुंशी श्यामलाल के अनुसार- यह परिक्षेत्र दो भागों में विभाजित है - दशार्ण नदी से पश्चिम का भाग बुन्देलखण्ड कहलाता है, जिसे पहले दशार्ण देश कहते थे तथा पूर्व का भाग डँगाही कहलाता है, क्योकि इस क्षेत्र में जंगल और पहाड़ बहुत अधिक थे। बुन्देलखण्ड शासक महाराजा वीर सिंह जूदेव ने मुगलों के खिलाफ उग्र रूप धारण कर लिया था, जिससे उन्हें लोग डांग के नाम से पुकारने लगे और उनके राज्य को डाँगही कहा जाने लगा। इस परिक्षेत्र में डांगी नाम की एक जाति भी रहती थी। बुन्देलखण्ड अनेक भागों में विभाजित था। इनके नाम हवेली, कुटरा, खटोला, गुड़ाना, वनफरी, धँधेरखण्ड, पँवारी, गहोरा, पठार, पैलपार, ऐलेपार, तथा चन्देरी थे। इस समस्त भू-भागों को सम्मिलित रूप से बुन्देलखण्ड के नाम से जाना गया।

बुन्देलखण्ड के निवासियों की इस्लाम के आगमन के पूर्व सामाजिक स्थिति

बुन्देलखण्ड के निवासी कौन थे और कहाँ से आये थे, इसके कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते, किन्तु इस परिक्षेत्र में प्रागैतिहासिक कालीन अनेक स्मृति चिन्ह पाये जाते है, इससे यह सिद्ध होता है कि यहाँ पर मानवों की बस्तियाँ अति प्राचीन काल से थी। बाँदा जनपद के बरयारी ग्राम में पाषाणयुगीन अस्त्र उपलब्ध हुए, इससे यह सिद्ध होता है कि यहाँ मानवो का निवास बहुत पहले से है।[56] इसी प्रकार नरैनी के सन्निकट, आधा किलोमीटर उत्तर की ओर, रामचन्द्र पहाड़ी में पाषाण युगीन स्मृति चिन्ह उपलब्ध हुए है। इन स्मृति चिन्हों में हस्त-कुठार, पिबल-टूल्स और अवशिष्ट, अनप्युक्त प्रस्तरांश पर बनाये गये गंडासे भी शामिल है।[57] बांदा के अतिरिक्त ललितपुर, देवगढ़, सधुवा, इतरपछार, एरण में भी पाषाणकालीन स्मृति चिन्ह उपलब्ध हुए है।

बाँदा जनपद के अनेक स्थलों में शैल चित्र उपलब्ध हुए है। इन शैलचित्रों से प्राचीन इतिहास के सन्दर्भ में पर्याप्त जानकारी मिलती है। ये शैलचित्र सरहट, मलवा, कुरियाकुण्ड, अमवाँ, उल्दन, बरगढ़, श्रषियन, मारकुण्डी, मड़फा, रसिन, बिलहरिया, मठ, गोण्डा, बछरन, गहोरा, बबेरू, औगासी, इछावर, लालपुर-बगरेही, चन्दवारा, जारी माफी, पन्नाह आदि में उपलब्ध होते है। सरहट में जो गुफा चित्र उपलब्ध हुए है, उसमें अश्वारोही, हाथी, सांभर, तथा शिकार करते हुए धुर्नधारी व्यक्ति के चित्र है। इसी प्रकार मलवा में आदिवासी मानवों की आकृतियां उपलब्ध हुयी। कुछ पुरावशेष हमीरपुर, झांसी, ललितपुर, दतिया, टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना में भी उपलब्ध होते है।[58]

इस क्षेत्र में मानवों का अस्तित्व अति प्राचीनकाल से है। इसका उल्लेख अभिलेखों में भी उपलब्ध होता है तथा प्राचीन काल में इसे आटवी अथवा महाआटवी के नाम से जाना जाता है। यथा- ''शत विजयिनः साष्टादशाटवी राज्याभ्यन्तरं डंभाला''[59]

इस क्षेत्र में प्राचीन काल में जंगली जातियाँ-शबर, पुलिन्द, भील आदि रहते थे, ये लोग पहले गुफाओं में निवास करते थे, बाद में इन्होंने अपने ग्राम और नगर बसाये। महात्मा बुद्ध के समय में चेदि राष्ट्र में भद्रवती, सोत्थिवती, सहजति, एरकच्छ, गुप्तकाल में कालंजर, ऐरिकिण तथा पूर्व मध्यकाल में रेवा (रीवा), चन्द्रेह, अजयगढ़, खजुराहो आदि अनेक नगर भारत में प्रसिद्ध थे।[60]

स्कन्द पुराण 'जेजाहुति' देश में 42000 गाँव तथा डाहल देश में नव लाख गाँव का उल्लेख मिलता है, यह संख्या ऐतिहासिक दृष्टि से सही नहीं है।[61] इसी प्रकार इब्नुल-अतहर ने चन्देलकालीन सेना की संख्या 1,84,000 मानी है।[62] इसी प्रकार गार्दिजी ने 1,45,000 चन्देलों की सेना मानी है।[63] तथा फरिश्ता ने भी 1,45,000 सेना का उल्लेख किया है।[64] जब नरेशों की सेना इतनी बड़ी हो सकती है तो बुन्देलखण्ड की आबादी का निश्चित अनुमान लगाया जाना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। दीवान प्रतिपाल सिंह ने बुन्देलखण्ड की आबादी के सम्बन्ध में जो आँकड़े प्रस्तुत किये है, वे ब्रिटिशकालीन है। मुगलकाल और उससे पहले की आबादी का परिकल्पित अनुमान इससे लगाया जा सकता है। अंग्रेजी शासनकाल में बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी एजेन्सी के 24 भाग, इन्दौर का एक भाग, रीवां तथा अन्य रियासतों के 12 भाग, ग्वालियर तथा भोपाल राज्य के 2 भाग, संयुक्त प्रांत और मध्य प्रदेश के 7 जिले शामिल है, कुल मिलाकर ग्रामों और कस्बों की संख्या 21032 थी तथा इसमें रहने वाली व्यक्तियों की संख्या 6950716 थी। इससे यह अनुमान लगता है कि, सल्तनत और मुगलकाल में इसकी जनसंख्या मुश्किल से 40 लाख रही होगी और चन्देलयुग में इसकी जनसंख्या 25 लाख से अधिक नहीं होगी।[65]

प्राचीन काल में बुन्देलखण्ड में बाँदा, पैलानी, बबेरू, कमासिन, मऊ, कर्बी, बदौसा, हमीरपुर, राठ, कुलपहाड़, महोबा, मौदहा, जालौन, उरई, कालपी, कोंच, झांसी, मऊ, गरौठा, मोठ, ललितपुर, महरौनी, सागर, रहेली, खुरई, बंडा, देवरी, गड़ाकोटा, इटाव, दमोह, हटा, हिण्डोरिया, पथरिया, बांसा, स्नेह, जबलपुर, भुड़वारा, सिहोरा, पनागर, पाटन, कटंगी, बिलहरी, विजयराधौगढ़, लश्कर, ग्वालियर, भिंड, भिलसा, गुना, ईसागढ़, शिवपुरी, मुरैना, तमरधार, सबलगढ़, चन्देरी, मांडेर, गिर्द, नखर, टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना, चरखारी, सतना, नवगांव, मैहर, समथर, बिजावर, महाराजपुर, ऊचैहरा, सेवढ़ा, अजयगढ़ और नागौद में मानव बस्तियाँ थी। यहाँ लोग रहकर अपना व्यवसाय और कृषि कार्य किया करते थे। ये मानव बस्तियाँ उजड़ती और बसती रहती थी।

बुन्देलखण्ड के मूल निवासी कौन थे, इसका अनुमान ऐतिहासिक साक्ष्यों के अभाव में नहीं लगाया जा सकता, केवल कल्पना ही की जा सकती है कि, आर्यो के पहले इस क्षेत्र में अनार्य लोग रहते थे, धीरे-धीरे आर्यो ने अपना विस्तार विन्ध्यक्षेत्र पर्वत श्रेणियों में किया। ऋग्वेद में यह उल्लेख मिलता है कि, इस क्षेत्र में चेदि वंशीय क्षत्रियों का अधिकार हो गया।[66] चेदि वंशियों से पहले इस परिक्षेत्र में आदिवासियों का निवास स्थान रहा।[67] कुल मिलाकर इस क्षेत्र में जो व्यक्ति निवास करते थे, वे आर्य, द्रविण, शक और कुषाण जाति के लोग थे।[68] इस क्षेत्र में मुख्य रूप से कोल, भील, शबर, पुलिंद, मुंड और द्रविण जाति के लोग रहते थे। इनका रंग काला, कद ठिगना, नाक चौड़ी, बाल घने और काले होते थे, जबकि आर्यो की आकृतियाँ इनके विपरीत थी। यहाँ के मूल निवासियो की संस्कृति आर्यो से बिल्कुल मेल नही खाती थी। आर्यो के पहले इस क्षेत्र में अनार्यो का अस्तित्व था। धीरे-धीरे आर्य लोग उत्तर से दक्षिण की ओर बढ़े।

जनसंख्या की दृष्टि से इस क्षेत्र में आज भी अनार्य जातियो का बाहुल्य है, इन लोगों की परम्पराये, संस्कार आज भी आर्य कुल जातियों से मेल नहीं खाती, यद्यपि इन जातियो में और आर्य कुल जातियों में मेल जोल काफी बढ़ा, जिसके कारण भाषा, पहनावा और लोक व्यवहार में

काफी परिवर्तन देखने को मिलता है। आज भी इन जातियों का आवास बाँदा जनपद मंडला तथा अन्य क्षेत्रों में है। पुराणों तथा अन्य धर्म ग्रन्थों में अनेक वर्णसंकर जातियो का भी उल्लेख मिलता है, जिससे यह सिद्ध होता है कि, आर्य कुल के लोगों ने अनार्य कुल की स्त्रियों से वैवाहिक संबंध स्थापित किये थे तथा इससे अनेक उपजातियाँ भी उत्पन्न हुयी।

इस क्षेत्र में आर्य कुल जातियों का आगमन त्रेता युग में हुआ भगवान श्री राम आर्य कुल जाति के थे, जो चित्रकूट में लगातार 12 वर्षो तक रहे और उनके यहाँ अनार्य कुल जातियों से संबंध स्थापित हुये। आर्यो के प्रसिद्ध ग्रंथ, वेदों में आर्यो की सामाजिक व्यवस्था के बारे में जानकारी उपलब्ध होती है। इस ग्रंथ के अनुसार- सम्पूर्ण समाज चार प्रमुख जातियो में विभाजित है। ये जातियाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, थी। पहले ये सभी जातियाँ कर्म पर आधारित थी। कालान्तर में जातीय कट्टरता के कारण ये वंश परम्परा पर निर्धारित हो गयी।

राजाओं के यहाँ ब्राह्मण मुख्यमंत्री, पुरोहित, सन्धिविग्राहिक तथा राजकवियो के रूप में नियुक्त किये गये।[69] इस बात की पुष्टि चन्देल कालीन ताम्रपात्रो से भी होती है।[70] अनेक राजाओं ने ब्राह्मणों को पद तथा भूमि दान में दी, जिनका उल्लेख दानपत्रों में है। ब्राह्मणों के पश्चात् आर्य कुल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण जाति क्षत्रिय थी। उनका महत्व ब्राह्मणों के बराबर था, ये लोग राज्य का शासन देखते थे और सैन्य संचालन करते थे। इनका मुख्य धर्म अपने राज्य की शत्रुओं से रक्षा करना था। इस सन्दर्भ में अनेक अभिलेख बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में उपलब्ध हुये। इसके लिये विक्रम संवत् 1208 का अजयगढ़ का अभिलेख उपलब्ध होता है, जिसमे क्षत्रिय के लिये राउत श्रीवेद का उल्लेख हुआ।[71] अजयगढ़ में विक्रम-संवत 1207 में एक अभिलेख मिला, जिसमें कोटिया ग्राम निवासी क्षत्रिय राउर श्रीवीर का उल्लेख है। इसने एक बावली का निमार्ण कराया था।[72] एक अन्य अभिलेख 1243 का भी उपलब्ध होता है, जिससे यह ज्ञात होता है कि, क्षत्रिय राउत सामंत के पुत्र सीहंद ने एक चबूतरे का निमार्ण कराया था।[73] त्रैलोक्य वर्मा के शासनकाल का एक ताम्रपात्र रीवां में उपलब्ध हुआ जिसमें कौरव वंशी महाराणक कुमार पाल का उल्लेख मिलता है।[74] इससे यह सिद्ध होता है कि, क्षत्रियों का इस क्षेत्र में महत्त्व प्राचीन काल में बहुत अधिक था।

क्षत्रियों के बाद, कायस्थ जाति को राजा, अपने यहाँ लिपिक के रुप में नियुक्त करते थे तथा इन्हें बौद्धिक वर्ग में माना जाता था। इनकी नियुक्तियाँ प्रतिहार, सचिव, कोषाधिकारपति पद पर की जाती थी। कल्चुरि, शासक कर्ण का एक अभिलेख रीवां में उपलब्ध हुआ है, जिसमें कायस्थों का विस्तृत वर्णन है।[75] कायस्थों का कार्य हिसाब किताब रखना था। विन्यक्षेत्र में पाये गये अभिलेखों में उन्हें करणिक शब्द से सम्बोधित किया गया है।

बुन्देलखण्ड में तीसरा महत्वपूर्ण वर्ग वैश्यो का था। ये लोग व्यापार और उद्योग करते थे। विन्ध्य क्षेत्र के अभिलेखों में इन्हें श्रेष्ठी नाम से सम्बोधित किया गया है। वैश्य और शूद्र, शब्दों का उल्लेख बुन्देलखण्ड में प्राप्त अभिलेखों में नही मिलता है। डा० एन०एस० बोस के अनुसार कुछ निम्न वर्ग के लोग इस क्षेत्र में व्यवसाय किया करते थे, सम्भवतः उन्हीं को वैश्य कहा गया है।[76] अन्य जातियों के सन्दर्भ में भी ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होते है। वीर वर्मा के समय का एक ताम्रपात्र डाडी में उपलब्ध हुआ है, इसमें चन्देल युग की जातियो का उल्लेख मिलता है। इनमें कायस्थ हरकारे,

गोपाल, अजपाल, माली आदि का उल्लेख मिलता है।[77] इसी प्रकार का एक ताम्रपात्र चरखारी में भी उपलब्ध हुआ है। यह ताम्रपत्र विक्रम संवत 1346 का है, इसमे नापितो, महरो, धीवरो, का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त ताम्रपत्र में मेघो और चाण्डालों का भी उल्लेख है। इसमें चाण्डालों को अन्यन्त दुष्ट और निम्न कोटि का कहा गया है तथा उन्हें नगर से बाहर रहने का निर्देश था।[78] सुप्रसिद्ध चीनी यात्री फह्यान ने भी यहां के निवासियो का उल्लेख अपने यात्रा विवरण में किया है। उसके अनुसार जब चाण्डाल लोग नगर में प्रवेश करते थे, तब उन्हे ध्वनि करके प्रवेश करना पड़ता था। ताकि उन्हें लोग स्पर्श न करें, ये लोग शिकार करते थे और मांस बेचते थे।[79] कुल मिलाकर बुन्देलखण्ड की सामाजिक व्यवस्था के सन्दर्भ में पर्याप्त ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नही होते।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार एम०एल० निगम के अनुसार सम्पूर्ण समाज चार वर्णो में विभाजित था, इन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के नाम से जाना जाता था। वर्ण व्यवस्था के साक्ष्य के रूप में अनेक तद्‌युगीन साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध होते है। धीरे-धीरे अन्य जातियों का उदय हुआ, जिन्होंने विभिन्न प्रकार के व्यवसाय चुने। समाज में सर्वाधिक उत्तम स्थिति ब्राह्मणों की थी, ये लोग ज्ञान-अध्ययन से अपनी जीविका चलाते थे, यहां पर अनेक ऐसे गांव थे जो योग्य ब्राह्मणों के द्वारा बसाये गये थे। श्री एम०एल० निगम के अनुसार -

"The Brahmins enjoyed certain privileges in the society for their learning and simple but chaste living. They lived in agraharas or villages inhabited by the learned Brahmins only."[80]

इस सन्दर्भ में महाराजा लक्ष्मण का एक ताम्र पत्र उपलब्ध हुआ है। जिसमें एक ब्राह्मण को दान देने का उल्लेख मिलता है, यह "Kavtsigotra" का था।[81]

एम०एल०निगम के अनुसार- बुन्देलखण्ड में क्षत्रियों की स्थिति भी सम्मानजनक थीं तथा उनकी स्थिति ब्राह्मणों से कुछ कम थी। वणिक वर्ग के सन्दर्भ में श्री एम०एल० निगम का मानना है कि, यह जाति बुन्देलखण्ड में वैश्य के नाम से विख्यात थी तथा इनका व्यवसाय व्यापार, कृषि और पशु-पालन करना था, इनकी स्थिति ब्राह्मणों और क्षत्रियों से कुछ कम थी यद्यपि ये समाज के अंग थे तथा राज्य के प्रमुख आय के स्त्रोत भी थे। यथा-

"The Business Community, The Vaishyas took up to trade, agriculture and cattle breeding. They had somewhat inferior social status as compared to the Brahmins and the Kshatriya. Yet they formed an important section and, were the major source of income to the royal exchequer."[82]

शूद्रों के सन्दर्भ में श्री निगम का मानना है कि, इनके साथ अपमानजनक व्यवहार होता था तथा इनका कार्य उच्च वर्ग की सेवा करना था। इन्हें धर्म ग्रंथ पढ़ने का कोई अधिकार नहीं था। इन्हें अपनी जीविका के लिये उच्च वर्ग के आधीन रहना पड़ता था तथा इनके साथ छूआ-छूत की भावना भी जुड़ी रहती थी, जिसके कारण हिन्दू समाज का पतन हुआ यथा-

"The Shudras were treated with disregard and contempt. They served the other three varnas with their manual labour. They were not permitted to study the Brahmanical scriptures and even to mingle with other higher sections of the society. The sin of untouchability, a slur on the Hindu sosciety, had drawn deep roots in the society."[83]

ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार- शुंग के शासनकाल तक चन्देल छोटी जाति के लोग समझे जाते थे तथा बुन्देलखण्ड में आम जनता इन्हें स्पर्श नहीं करती थी, इस सन्दर्भ में भरहुत में एक अभिलेख उपलब्ध हुआ है, जिसमें यह उल्लेख मिलता है कि, अशोक और उसके भतीजे का सम्बन्ध कुछ ऐसी जातियों से था, जो शहद बेंचा करते थे, ये लोग चन्देला कहलाते थे और पीले रंग के वस्त्र धारण करते थे।[84]

बुन्देलखण्ड में हिन्दू सामाजिक व्यवस्था इस्लाम के पूर्व तक धर्म ग्रन्थों, गृहसूत्रों और धर्मसूत्रो के अनुसार थी। इन ग्रन्थों ने प्रत्येक जाति को कर्म के आधार पर विभाजित किया था, किन्तु सवर्णो का भेदभावपूर्ण रवैया महात्मा बुद्ध के समय तक जारी रहा। उसके पश्चात् महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी ने ब्राह्मण वर्चस्व के खिलाफ जन आंदोलन शुरू किया, जिससे हिन्दू धर्म की क्षति हुयी थी, मौर्य काल में सम्पूर्ण समाज दो भागों में विभाजित हो गया था, एक वर्ग ब्राह्मण विरोधी था तथा दूसरा वर्ग ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। अशोक के युग का एक अभिलेख उपलब्ध हुआ है, जिससे दो वर्ग में विभाजित समाज का उल्लेख है।[85]

सवर्ण जातियों के व्यक्ति अपने नाम के साथ, जाति और गोत्र भी लिखा करते थे, इस तरह के अनेक अभिलेख बुन्देलखण्ड में उपलब्ध हुये हैं। विवाह आदि के समय में कन्या और वर पक्ष के गोत्रों पर बहुत जोर दिया जाता था। अधिकतर शादियाँ जाति और वर्ण के अनुसार होती थी, किन्तु व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये अर्न्तजातीय विवाह भी होने लगे। जिनसे अनेक उपजातियों का निर्माण हुआ, जिनकी अपनी अलग पहचान थी।[86]

बुन्देलखण्ड में पूर्व-मध्ययुग के पहले, पश्चिमी सीमा से, विदेशी जातियों का आगमन प्रारम्भ हो गया था। कौशाम्बी, भीटा तथा पश्चिमी मालवा में इसके ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होते है।[87] मुख्य रूप से कुषाण और शक जाति के लोग बुन्देलखण्ड में आये। विदेशी जातियों ने बुन्देलखण्ड के सामान्य व्यक्तियों को प्रभावित किया। इसके पश्चात् यहाँ हूणों का आगमन हुआ, विदिशा में उपलब्ध स्तम्भ अभिलेख में यह वर्णन उपलब्ध होता है कि हेलिडोरस का एक पड़ोसी तक्षशिला से महाराजा अंतलिकदास का दूत बनकर आया था, जो इण्डोबैक्ट्रियन शासक था, यह शासक गरुड़ध्वज धारण करता था तथा वासुदेव कृष्ण को भगवान के रूप मे मानता था।[88]

इस युग में अनेक वर्णसंकर जातियाँ भी थीं, जो अपने-अपने क्षेत्र में विकसित हुयी तथा जिन्होंने विज्ञान, कला और व्यवसाय के क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बना ली थी। ये लोग अपनी-अपनी कला के विशेषज्ञ थे। इन्होंने अर्न्तजातीय विवाह सम्बन्ध स्थापित करके अनेक उपजातियों को जन्म दिया तथा इन्होंने अनुलोम और प्रतिलोम विवाह किया। गुप्त युग तक अनेक उपजातियाँ बुन्देलखण्ड क्षेत्र में बन गयीं।

स्त्रियों की स्थिति-

ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार- इस्लाम के आगमन के पूर्व बुन्देलखण्ड में स्त्रियों को काफी आजादी थी। इस बात का उल्लेख भरहुत और साँची में उपलब्ध अभिलेखों से होता हैं। जहाँ कहीं राजा भ्रमण के लिए जाता था, उसके साथ उसकी रानियाँ भी जाती थीं। एक बार चाक ने शासक अशोक की रानी का पक्ष लिया था और कौशाम्बी में बौद्धों को पर्याप्त संपत्ति दान दी थी।[89] धर्म के क्षेत्र में भी औरतों को पर्याप्त आजादी थी। भुरहुत मे उपलब्ध अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि, सर्पगुप्ता, सोमनाग, देव की महिलाओं ने भरहुत स्तूप के लिये दान दिया था।[90] बौद्धकाल से लेकर कनिष्क और हविष्क के शासनकाल में भी स्त्रियों की स्वतन्त्रता के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। इस युग में स्त्रियाँ घरेलू काम-काज में काफी निपुण होती थी, यद्यपि उनकी शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। घर में ही वे विभिन्न प्रकार की कलाओं को सीखती थी, इस बात के उदाहरण वात्सायन द्वारा रचित कामसूत्र में मिलते हैं।[91] बाणभट्ट के ग्रंथों से यह ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होते हैं कि, सम्राट हर्षवर्धन की बहन राजश्री जब बड़ी हुयी तो उसकी लोकप्रियता अपनी सहेलियों के मध्य में बढ़ी तथा उसने संगीत, गायन और नृत्य में पूर्ण ज्ञान उपलब्ध किया।[92] इस युग में विवाह के समय कन्या को दहेज देने की प्रथा थी तथा विवाहित स्त्रियाँ भी सती प्रथा को अपनाकर पति की चिता पर अपना जीवन उत्सर्ग कर देती थीं।[93] एरण में एक स्तम्भ लेख उपलब्ध हुआ है, जो 510 ई0 का है, उसमें सती प्रथा का उल्लेख मिलता है। जब भानु गुप्ता, जो इस क्षेत्र का प्रमुख था, युद्ध में मारा गया, उस समय उसकी पत्नी सती हो गयी। इसी प्रकार जब राजश्री का पति गृह वर्मा मालवा नरेश के द्वारा मार डाला गया, उस समय राजश्री भी सती होने जा रही थी।[94]

भरहुत स्तूप में ऐसी मूर्तियाँ उपलब्ध हुयी है, जिनमें स्त्रियों को नृत्य करते तथा विभिन्न प्रकार के वाद्य यंत्र बजाते हुए दिखाया गया है, संभवतः यह मूर्तियाँ शुंगकाल की हैं।[95] इसी प्रकार की मूर्तियाँ खजुराहो, कालिंजर, देवगढ़ में भी उपलब्ध होती है, इससे यह सिद्ध होता है कि स्त्रियाँ नृत्य, गायन, वादन तथा सामाजिक कार्यक्रमों में प्रमुखता से भाग लेती थीं, इस्लाम के आगमन के पूर्व तक स्त्रियाँ की यही दशा बनी रही।

भोजन एवं पेय पदार्थ :-

भोजन तथा पेय-पदार्थ के सन्दर्भ में अनेक ऐतिहासिक साक्ष्य विभिन्न ग्रंथों में उपलब्ध होते हैं। इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के चावल, जौ, जवा, दाल, विभिन्न प्रकार के तिलहन का प्रयोग भोजन में होता था। प्रमुख रूप से गेंहूँ और उबले हुये चावल भोजन के रूप में प्रयुक्त होते थे, इसके अतिरिक्त दूध, दही, मक्खन, घी भी भोजन के रूप में प्रयुक्त होते थे। भरहुत में फलों से लदे हुए एक वृक्ष का चित्र उपलब्ध हुआ है, जो इस बात का संकेत देता है कि, भोजन में फलों का प्रयोग होता था तथा जलपान के लिये आगुंतक मेहमानों को सत्तू प्रदान किया जाता था, जिसका

निर्माण चना और जौ से होता था।[96] यहाँ के निवासी ज्यादातर शाकाहारी थे, किन्तु बहुत से व्यक्ति मांसाहार भी करते थे, जो किसी निश्चित दिन जानवरों और पक्षियों का शिकार करते थे और उनसे विभिन्न प्रकार के भोजन तैयार करते थे, कभी-कभी मदिरापान भी करते थे। मथुरा, साँची में अनेक ऐसे ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध हुये है, जिनमें यह दिखलाया गया है कि यहाँ के लोग शुंग, कुषाण, और गुप्त काल तक मदिरापान करते रहे।

वस्त्राभरण और आभूषण-

मौर्यकालीन और शुंगकालीन, जो मानव बस्तियाँ बुन्देलखण्ड में स्थित है। उनमें अनेक ऐसे ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होते हैं, जो बुंदेलखण्ड के स्त्रियों और पुरुषों की वेश-भूषा पर प्रकाश डालते है। प्राचीन काल में वस्त्र और आभूषण स्त्री और पुरुष दोनों ही धारण करते थे। भरहुत में ऐसी मूर्तियाँ उपलब्ध हुयी है, जिनमें विशेष श्रेणी और सामान्य श्रेणी की वेश-भूषा को दर्शाया गया है। एक मूर्ति में एक पुरुष की बोधिवृक्ष की पूजा करते दिखलाया गया है, यह मूर्ति भरहुत के तोरण के समीप है, जिसे धानभुति के नाम से पहचाना गया है। इसके द्वारा भरहुत के मुख्य द्वार का निर्माण कराया गया था, यह व्यक्ति एक लम्बा और बदन से सटा कोट धारण किये है तथा उसके ऊपर एक साफी है जो उसके पीठ में लटक रही है। एक दूसरे व्यक्ति की भी मूर्ति यहाँ उपलब्ध हुयी है, इसकी पहचान बरुआ, मिहिर अथवा सूर्य देवता के रूप में की गयी है। इसका कोट घुटने तक तथा दो स्थानों से बंधा हुआ है, इससे प्रतीत होता है कि इस काल में इस प्रकार के वस्त्र धारण किये जाते थे, अधिकांश लोग साफा बांधते थे और कमर तक के हिस्से को खुला रखते थे।[97]

सामान्य व्यक्ति, विशिष्ट व्यक्तियों से अलग परिधान धारण करते थे, ये लोग अधोभाग में धोती पहनते थे तथा उसे कमरबन्द अथवा फेटा से कसते थे। कभी-कभी कमरबंद में गांठ भी लगाते थे, इसका एक भाग दूसरी ओर लटका रहता था तथा कंधे के ऊपर साफी डालते थे। सामान्य लोगों में साफा बाँधने का रिवाज था, यह सिर के चारों ओर होता था।

स्त्रियाँ धोती अथवा साड़ी धारण करती थीं, कभी-कभी सामान्य साड़ी तथा कभी कढ़ी हुयी साड़ी और ऊपर एक चादर धारण करती थी, जिसे पटका कहते थे, यह पैरों तक लटका रहता था।[98] भरहुत में ऐसी मूर्तियाँ भी प्राप्त हुयीं है, जिनमें स्त्रियाँ किनारेदार साड़ियां धारण किये है, जो कंधे के ऊपर लटकी हुयी है। गुप्तकाल तक स्त्री और पुरुष दोनों ही सिर के ऊपर लम्बे और कोमल बाल रखते थे, इनके बाल घुंघराले और सुन्दर होते थे। उसके बाद बुन्देलखण्ड के पहनावे में अंतर आया। शक, इण्डोपर्थियन, कुषाणों के आगमन के पश्चात् पहनावे में व्यापक परिवर्तन हुये। उच्च वर्ग के लोग पैजामा, लम्बा कोट और ऊँची ऐड़ी वाले जूते धारण करने लगे तथा स्त्रियाँ अंग वस्त्र धारण करने लगी, उनका यह वस्त्र ग्रीक और सीथियन औरतों से मिलता था। गुप्त युग तक स्त्रियों की स्थिति में व्यापक परिवर्तन हुआ तथा ये लोग पतले और पारदर्शी वस्त्र पहनने लगे। कौशाम्बी, भीटा, देवगढ़, भूमरा, गढ़वा तथा एरण में अनेक ऐसे उदाहरण उपलब्ध हुए हैं, जिनसे यह पता चलता है

कि बुन्देलखण्ड के लोग धोती धारण करते थे। पंवाया में नागवंशी राजाओं का राज था, जहां कुछ ऐसी मूर्तियां उपलब्ध हुयी है, जिनमें नृत्य के समय स्त्रियों को एक विशेष प्रकार का अंग वस्त्र पहने हुए दिखाया गया है, उस समय की स्त्रियां अपने वक्षस्थल को चोली से ढ़कती थी। कलकत्ता संग्रहालय में शिव और पार्वती की मूर्तियां उपलब्ध है जो बुन्देलखण्ड की है; उस समय केश-सज्जा की अनेक विधियाँ प्रचलित थी।[99]

श्रंगार एवं रूप-सज्जा :-

बुन्देलखण्ड किसी समय मौर्य और शुंग साम्राज्य का अंग रहा है। इस युग में निर्मित, भरहुत स्तूप में अनेक ऐसी मूर्तियाँ उपलब्ध हुयी हैं, जो स्त्री और पुरुषों की है तथा जिन्होनें विभिन्न प्रकार के आभूषण धारण किये है। भरहुत में दो प्रकार के उदाहरण उपलब्ध होते है, एक का सम्बन्ध सामान्य व्यक्ति से है तथा दूसरे का सम्बन्ध विशेष व्यक्ति से है। स्त्रियों के जो आभूषण उपलब्ध हुए है, उनमें कर्ण-आभूषण, हार, बाजूबन्द तथा कड़े उस युग के सामान्य आभूषण थे। कई मूर्तियाँ ऐसी भी उपलब्ध हुयी है जिनमें स्त्रियाँ, सिर के ऊपर आभूषण धारण करती थीं, इनके कंठ आभूषण अनेक प्रकार के पाये गये है। हाथों में अंगूठी पहनने का भी रिवाज था। इस युग में अधिकांश आभूषण कीमती रत्नों से तैयार होते थे तथा कुछ आभूषण कांच, मूंगा और धुन्चू से तैयार होते थे। इन आभूषणों में स्वर्ण तथा अन्य धातुओं का प्रयोग होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त युग और उसके बाद तक आभूषण कला पूर्ण विकसित हो चुकी थी।[100]

ऐसा प्रतीत होता है कि बुन्देलखण्ड में आभूषण पहनने की प्रथा 2000 वर्ष पुरानी है। औरतें अपने सिर के ऊपर मध्य भाग में स्वर्ण निर्मित बेंदी धारण करती थी जो माथे में टकराती रहती थी। संस्कृत साहित्य को इसे लाल टीका के नाम से सम्बोधित किया जाता था। वर्तमान समय में इसे बेदी व बेंदा के नाम से पुकारा जाता है।[101] कर्ण आभूषण, स्त्री व पुरूष दोनों ही धारण किया करते थे, मरहुम में कई प्रकार अँगुठियाँ व कर्ण आभूषण उपलब्ध हुये हैं, ये आभूषण वहाँ की मूर्तियों में अंकित है, इसी प्रकार के आभूषण साँची में भी उपलब्ध हुये है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार अग्रवाल ने इन्हे कुंडल नाम से सम्बोधित किया है। संस्कृत भाषा में भी कर्ण आभूषणो को कुडंल कहा जाता था।[102]

प्राचीन युग में बाजूबंद और कड़े स्त्री-व पुरूष दोनो ही धारण करते थे, ये स्वर्ण और रजत दोनो के बनते थे तथा इनमें कीमती रत्न जड़े होते थे, इसके अतिरिक्त स्त्रियाँ मेखला अथवा जंजीर भी धारण करती थीं।[103] जंजीरो के मध्य भाग में लाल रंग के रत्न जड़े होते थे तथा उसके निचले भाग में घुंघरू जड़े होते थे, जो आवाज किया करते थे। आभूषण तैयार करने की विधि कई प्रकार की थी, ये आभूषण तार, धातु पिंड और रत्नों से तैयार किये जाते थे। गुप्त युग तक आभूषण कला का विकास हुआ तथा इसमे कीमती मोतियों का भी प्रयोग होने लगा। राजा और रानियाँ जिन आभूषणों को धारण करते थे, वे बहुत कलात्मक होते थे। सुप्रसिद्ध इतिहासकार कनिंघम का मानना है कि बुंदेखण्ड मे शुंग काल और उसके बाद तक आभूषण धारण करने की प्रथा थी, उपलब्ध

पुरावशेषो में विभिन्न आक्रति के आभूषण उपलब्ध हुये। यथा -

Accarding to Cunningham, "these design repersent the tatto marks."[104]

आवासीय- व्यवस्था -

बुन्देलखण्ड की आवासीय व्यवस्था अति प्राचीन है, यहाँ के अधिकांश लोग अपने भवन मिट्टी और लकड़ी से बनाते थे। भीटा में उपलब्ध पुरावशेषो के आधार पर बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में 40'0 ई०पू० से पक्की ईटो का प्रयोग भवन-निमार्ण के लिये होने लगा था। यहाँ निर्मित प्रत्येक मकान के मध्य में एक आँगन होता था और उसके चारो ओर कमरे हुआ करते थे।[105] भरहुत में उपलब्ध अवशेषों को देखकर कनिंघम ने यह स्वीकार किया कि इस क्षेत्र में बनने वाले सामान्य मकानो में तीन या चार कमरे होते थे, जिसमे लकड़ी के लट्ठों की छत होती थी तथा छोटी-छोटी खिड़कियाँ प्रकाश और हवा आने के लिए होती थी। कभी-कभी मकानों की दीवारे कच्ची ईटों को धूप में सुखाकर बनायी जाती थी और मकानों की छत खप्पर से ढ़की होती थी। प्रत्येक मकान व कमरे के मध्य भाग में प्रवेश के लिए द्वार होते थे। कालान्तर में मुगलों के आगमन के पूर्व तक कई मंजिलों के मकान निर्मित होने लगे।

आवागमन के साधन :-

बुन्देलखण्ड में मनुष्य के आवागमन के लिए प्राचीन काल से अनेकों संसाधनों का प्रयोग होता था। बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में उपलब्ध मूर्तियों और चित्रों के अनुसार यह पता लगता है कि धनी व्यक्ति आवागमन के लिए हाथी और घोड़ों का प्रयोग करते थे। इस युग में बैलगाड़ी समान ढ़ोने के लिए प्रमुख वाहन के रूप में प्रयोग होती थी। कोशम और भीटा में उत्खनन के दौरान मिट्टी से निर्मित खिलौनों के साथ बैलगाडियाँ तथा स्वर्ण मुद्रायें जिनमें बैलगाड़ी अंकित है, प्राप्त हुई है। ये बैलगाड़ियाँ लकड़ी से निर्मित होती थी। उसके मध्य भाग में दो पहिये होते थे तथा बैलगाड़ी के अग्र भाग मे एक जुऑरी होती थी, जो बैलों के कंधों में रखी जाती थी तथा दो बैल उस गाड़ी को खीचतें थे। राजा महाराजा लोग आने जाने के लिये रथों का प्रयोग करते थे, जिनमें चार पहिये तथा चार घोड़े लगाये जाते थे। बहुओ को ढोने के लिये पालकी का प्रयोग होता था, जिसे कहार उठाया करते थे। जल यातायात के लिये नावों का प्रयोग होता था, ये नावें तख्तों को जोड़कर बनायी जाती थी। बुन्देलखण्ड में जल यातायात का यही साधन आज भी है।[106]

मनोरंजन के संसाधन -

बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में अशोक और शुंगकाल के अभिलेख उपलब्ध हुए है। इन अभिलेखों में, बुन्देलखण्ड में मनाये जाने वाले तीज त्योहारों का विवरण है, अधिकांश लोग मनोरंजन के लिए नृत्य और गायन कला का उपयोग करते थे, यह एकल और सामूहिक दोनों प्रकार का होता था। भरहुत के स्तम्भ में सामूहिक नृत्य करती हुयी महिलाओं की मूर्तियां है तथा इसी के बगल में आठ स्त्रियों की मूर्तियां है, जो विभिन्न प्रकार के बाद्य यन्त्र बजा

रही हैं। एक अन्य स्थान में ढ़ोल, ताशा बजाते हुए व्यक्तियों का चित्रांकन है।

इस युग में मनोरंजन का दूसरा संसाधन शिकार करना था। भरहुत में ऐसे चित्र उपलब्ध हुए है, जिनमें व्यक्ति तीर-कमान लिए हुए हैं और पशुओं का पीछा कर रहें है। तीर-कमान के अतिरिक्त शिकार में गड़ांसे, तलवार और भालों का भी उपयोग होता था, मिग जातक के माध्यम से शिकार के दृश्य दिखलाये गये हैं।[107] भरहुत में ही एक ऐसा चित्र उपलब्ध हुआ है, जिसमें दो कुत्ते एक सुअर का पीछा कर रहे हैं तथा एक किनारे पर, एक स्त्री और पुरुष खड़े हुए है।[108]

मनोरंजन का एक अन्य साधन मल्ल-युद्ध अथवा कुश्ती भी था। कुश्ती, गुप्त युग और उसके बाद भी जारी रही, कुश्ती शारीरिक शक्ति प्रदर्शन के लिए होती थी।[109]

महाभारत जैसे ग्रन्थ में कुश्ती के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते है, भीम ने जरासंध को कुश्ती में ही परास्त किया था।[110] कुश्ती के अतिरिक्त मनोरंजन का साधन जुआं खेलना भी था। भरहुत में इस प्रकार का चित्र उपलब्ध हुआ है, लोग चौसर अथवा पांसे से जुआ खेला करते थे, इनकी गोटे चौकोर होती थी तथा इनको फेंकने के लिए एक डिब्बे का प्रयोग होता था। मनोरंजन के लिए कभी-कभी खेल-तमाशों का भी प्रयोग होता था। भरहुत में उपलब्ध चित्र के अनुसार गोलाकृति में मनुष्य बैठे हुए हैं तथा नौ व्यक्ति उनका मनोरंजन उलटा लटककर कर रहे है।

शिक्षा व्यवस्था :-

बुन्देलखण्ड में शिक्षा व्यवस्था के सन्दर्भ में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। मौर्यकाल में, कौशाम्बी और भीटा, बौद्धो के दो प्रमुख शिक्षा केन्द्र थे, इन दोनों स्थानों में बौद्ध भिक्षु निवास करते थे। चीनी यात्री फाह्यान और ह्वेनसांग, कौशाम्बी से बुद्ध धर्म से सम्बन्धित पवित्र पांडुलिपियां अपने साथ ले गये थे।

इस समय शिक्षा के प्रमुख केन्द्र-गुरुकुल हुआ करते थे। इस समय की कक्षायें पेड़ के नीचे लगा करती थी, अध्यापक ऊँचे आसन पर बैठता था, छात्र घुटनो के बल और छात्रायें पालथी लगाकर बैठती थी । बैठने के लिए मृगचर्म का आसन प्रयोग में लाया जाता था।[111] बौद्धकाल तक यही शिक्षा व्यवस्था थी। ब्राह्मण वैदिक साहित्य, दर्शनशास्त्र, तर्क शास्त्र, व्याकरण, नियम, महाकाव्य, सिद्धान्त शास्त्र, गणित्, नक्षत्र विज्ञान, ज्योतिष शास्त्र, रसायन एवं औषधि विज्ञान का अध्ययन करते थे। क्षत्रिय राजनीति, दण्ड नीति, प्रशासनिक नियम, सैन्य विज्ञान, युद्ध की शिक्षा तथा हाथियों ओर रथो से चलाये जाने वाले अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा ग्रहण करते थे। वैश्यों की शिक्षा व्यवस्था अलग प्रकार की थी, इन्हें कृषि तथा व्यापार के साथ - साथ कीमंती रत्न, कीमती धातु, वस्त्र तथा सुगन्धित सामग्री के सम्बन्ध में जानकारी दी जाती थी। नीची जाति के लोगों को संगीत, नृत्य, लोककला अभिनय रंजन कला, हास-हरिहास तथा श्रमसाध्य कार्यो का प्रशिक्षण मिलता था।

कालान्तर में इन शिक्षा केन्द्रों का पतन हुआ तथा हिन्दू मन्दिरों में पाठशालायें चलायी जाने लगी। मुख्य रूप से ब्राह्मण विद्यार्थी इन मन्दिरों में शिक्षा ग्रहण करते थे तथा राजा लोग शिक्षा

व्यवस्था के लिए अनुदान देते थे तथा विद्यार्थियों को निःशुल्क आवासीय व्यवस्था दी जाती थी। गढ़वा में चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा कुमार गुप्त प्रथम के समय का अभिलेख उपलब्ध हुआ है, इससे यह पता लगता है कि विष्णु के दशावतार मन्दिर में विद्यार्थियों की कक्षाये चलती थी, गढ़वा की एक मूर्ति वर्तमान समय में लखनऊ राज्य संग्रहालय में है, इससे तद्युगीन शिक्षा व्यवस्था का पता लगता है।[112] विद्यार्थियों को निःशुल्क भोजन भी दिया जाता था।

पुरातात्विक अभिलेखों के अनुसार, ई०पू० प्रथम शताब्दी तक जब यहां बौद्ध धर्म का प्रभाव था, उस समय यहां की मुख्य भाषा प्राकृत थी। बौद्ध धर्म के पतन के बाद संस्कृत भाषा का प्रभाव इस क्षेत्र में बढ़ा, यहां पर उपलब्ध होने वाले अभिलेख संस्कृत भाषा में सर्वाधिक हैं। जो अभिलेख प्राकृत और पाली भाषा में है, वे ईसा पूर्व के है। गुप्त शासनकाल के अन्तर्गत कुछ अभिलेख ब्राह्मी में भी उपलब्ध हुए है, इनमें जो लिपि है, वह दक्षिणी भाषा से मिलती जुलती है। बुन्देलखण्ड में कुछ अभिलेख वाकाटको और गुप्तों के भी उपलब्ध होते है। एरण में समुद्र गुप्त का अभिलेख तथा उदयगिरि गुफा में चन्द्रगुप्त द्वितीय का अभिलेख उपलब्ध हुआ है। इसी प्रकार मालवा और बुन्देलखण्ड के अनेक स्थानों पर प्रस्तर अभिलेख और ताम्र पत्र उपलब्ध हुए है, जिनसे यहां की भाषा का पता लगता है। धीरे-धीरे इस क्षेत्र की भाषा अपभ्रंश हो गयी तथा राजपूत काल में अपभ्रंश से हिन्दी भाषा का उदय हुआ । हिन्दी में, पृथ्वीराज रासो, परमार्दिदेव रासो (आल्ह खण्ड) आदि ग्रन्थों की रचना हुयी तथा बुन्देलखण्डी भाषा अनेक विविधता के साथ इस क्षेत्र की जनभाषा बनी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बुन्देलखण्ड के निवासियों की सामाजिक स्थिति बहुत अच्छी थी, यह वैदिक धर्म के अनुसार वर्ण व्यवस्था पर आधारित थी । यहाँ के निवासी व्यवसाय, कृषि तथा विभिन्न कलाओं के माध्यम से अपनी जीविका चलाते थे। स्त्री-पुरुषों में सामंजस्य था, तथा तीज-त्योहार व धर्म को संयुक्त रूप से मनाते थे । इस्लाम के आगमन के पूर्व यहां के व्यक्ति अपनी मौलिक संस्कृति का अनुकरण करते थे।

इस्लाम के आगमन के पश्चात बुन्देलखण्ड की सामाजिक स्थिति

भारत वर्ष की यह भूमि विदेशियों से अपरिचित नहीं थी, चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में सिकन्दर का आक्रमण हुआ था, उसके पश्चात् यहां के लोग विदेशी संस्कृति से परिचित हुए थे। इसके पहले भी इरानी आक्रमणकारियों ने 550 ई०पू० में बिलूचिस्तान की सीमा से भारत वर्ष में आक्रमण किया था, आक्रमणकारी का नाम साइरस था जो, हखमनी साम्राज्य का शासक था। इसके पश्चात् 331- 30 ई०पू० में सिकन्दर ने आक्रमण किया तथा उसने भारत वर्ष के कुछ क्षेत्र में 327 ई०पू० में विजय प्राप्त की, इस समय भारतवर्ष छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था, उसका लाभ सिकन्दर ने उठाया। सिकन्दर का उद्देश्य भारत वर्ष में अपने साम्राज्य का विस्तार करना था तथा

डेरियस साम्राज्य के पूर्वी भाग में पहुंचकर सागर की समस्या को हल करना था।[113]

सिकन्दर का युद्ध सिंध नरेश पोरस से हुआ था, इस युद्ध में पोरस परास्त हुआ था, सिकन्दर का अंतिम आक्रमण 326 ई० पू० में पिंप्रभा दुर्ग में हुआ था, इसके पश्चात् उसकी सेना ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया था। सिकन्दर अपने आक्रमण का प्रभाव छोड़कर अपने देश लौट गया तथा अपने दूत सेल्यूकस को यहां छोड़ गया था। चन्द्रगुप्त मौर्य तथा सेल्यूकस का युद्ध 311 ई०पू० में हुआ, इसके पश्चात् चन्द्रगुप्त और सेल्यूकस की मित्रता हुयी तथा सेल्यूकस ने अपनी पुत्री कार्लाइला का विवाह चन्द्रगुप्त से किया। सुप्रसिद्ध युनानी विद्वान मेगस्थनीज ने तद्‌युगीन भारत वर्ष का चित्रण अपने ग्रंथ में किया तथा उसके साम्राज्य विस्तार को सम्पूर्ण भारत वर्ष में दिखाया। इस समय भारत वर्ष में यूनानी सभ्यता का प्रभाव व्यापक रूप से पड़ा था, चूकि चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र मे भी था, इसलिए स्वाभाविक है कि यूनानी सभ्यता का प्रभाव यहां भी रहा होगा। चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन के सन्दर्भ में मेगस्थनीज लिखता है कि जिस एकता को चन्द्रगुप्त मौर्य से कायम किया था, उसे उसके उत्तराधिकारी कायम नहीं रख सके।[114]

सम्राट अशोक के पश्चात् भारत वर्ष में पुनः विदेशी आक्रमण प्रारम्भ हो गये, बैक्ट्रिया शासक डिओडोटस ने भारतवर्ष की सीमाओं पर आक्रमण किया तथा उत्तरी भाग में अनेक स्थानों पर कब्जा कर लिया। उसके उत्तराधिकारी युक्रेटाइडीज ने भी इस क्षेत्र पर अपना प्रभाव दिखलाया। आक्रमणकारी मेनेण्डर ने भी भारत वर्ष में आक्रमण किया तथा उसने मथुरा व बुन्देलखण्ड के कुछ भाग में अपना अधिकार जमा लिया। सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० ए०के० मित्तल के अनुसार "इसमें कोई सन्देह नही कि वह एक महान विजेता था। मेनेण्डर की विजयों की पुष्टि उसकी मुद्राओं से होती है। उसकी मुद्रायें काबुल से गाजीपुर तक तथा मथुरा से बुन्देलखण्ड तक मिली है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उसका साम्राज्य किसी समय उपरोक्त सभी प्रदेशों पर रहा होगा।"[115] प्राचीन भारतीय संस्कृति पर यूनानियों का व्यापक प्रभाव पड़ा तथा यूनानियों ने भी भारतीय सूत्री वस्त्र, लोहे की नोक वाले तीर की सराहना की। मुख्य रूप से यूनानी, भारतीय ज्योतिष से बहुत प्रभावित हुए तथा भारतीयों ने भी यूनानियों से कुछ गुर सीखे, 'होरा-चक्र" भारतीय ज्योतिष को यूनानियों की देंन है। इसी प्रकार भारतीयों ने मुद्रा की ढलाई में भी उनसे शिक्षा ग्रहण की, उनके धर्म दर्शन का प्रभाव भी भारत पर पड़ा।

इसके पश्चात् सन् 176-174 ई०पू० में भारत वर्ष में शको के आक्रमण प्रारम्भ हुए, इन्होंने पंजाब, मथुरा तथा बुन्देलखण्ड के कुछ भाग में अपना अधिकार किया। इनके द्वारा नियुक्त क्षेत्रीय शासक को 'क्षत्रप' कहा जाता था, मथुरा मे इनका क्षत्रप राजुबुल और उसका पुत्र सोडास था तथा उज्जैन में इनका क्षत्रप चष्टन था, इन दोनों क्षत्रपों का अधिकार बुन्देलखण्ड के कुछ भाग में था, इनका अस्तित्व 150 ई० तक रहा तथा चष्टन के बाद का उत्तराधिकारी रुद्रदमन था।

जूनागढ़ अभिलेख से यह ज्ञात होता है, कि रुद्रदमन का साम्राज्य अत्यन्त विस्तृत हो

गया था यथा- पूर्वी एवं पश्चिमी मालवा, अनुपनिमृत (मान्धाता प्रदेश), आनर्त (द्वारका का चतुर्दिक प्रदेश), सौराष्ट्र, स्वभ्र (साबरमती का तटीय प्रदेश) मरु (मारवाड़), कच्छ, सिन्धुा नदी का डेल्टा, कुकुर, अपरान्त (उत्तरी कोंकण), निषाद (पश्चिमी विन्ध्य प्रदेश) तथा कुछ अन्य प्रदेश।[116]

शको के पश्चात् यहाँ पल्लव वंशी शासकों का राज्य स्थापित हुआ, इन्होंने सन् 19 ई० से लेकर 45 ई० तक शासन किया। इस वंश का पहला शासक वोनोनीज था, इसका शासन पंजाब तक रहा। इसके पश्चात्-कुषाणो का आक्रमण हुआ, इन्होंने भी भारत वर्ष के अनेक क्षेत्रों में राज्य किया। इस वंश में कनिष्क प्रथम तथा अन्य शासक हुए हैं, इनका शासन भी बुन्देलखण्ड के कुछ क्षेत्र में रहा क्योंकि अनेक स्थलों से कनिष्क के समय की मुद्रायें उपलब्ध हुयीं हैं। कनिष्क के प्रभाव से एक नयी वास्तुशिल्प को जन्म मिला, जो आगे चलकर गंधार शैली के नाम से विख्यात् हुयी। बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में गंधार शैली की कलाकृतियां उपलब्ध होती हैं, गंधार शैली में भारतीय वास्तुशिल्प के साथ यूनानी वास्तुशिल्प का सम्मिश्रिण है। सुप्रसिद्ध विद्वान राबिन्सन के अनुसार-" उसी समय समकालीन कला का एक विशुद्ध देशी सम्प्रदाय, जिसका भरहुत व साँची से उद्भव हुआ था, मथुरा, भीटा, बेसनगर तथा अन्य केन्द्रो में प्रचलित था। पहले यह धारणा थी कि बुद्ध, महावीर और हिन्दू देवताओं की मूर्ति निर्माण का प्रारम्भ विदेशी प्रभावों के कारण हुआ था, परन्तु अब सामान्यतया अधिकांश विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि इसका उद्भव मथुरा के देशी कलाकारों के द्वारा खोजा जाना चाहिये न कि गंधार के ।[117]

उपर्युक्त कथन से यह सिद्व होता है कि, बुन्देलखण्ड में कुषाणों का प्रभाव था। स्कन्दगुप्त के समय भारत वर्ष में हूणों के आक्रमण हुए तथा स्कन्दगुप्त को लगातार 12 वर्षो तक इनसे युद्ध करना पड़ा। हूण, एक लड़ाकू जाति थी, जो मध्य एशिया के निवासी थे, हुणो के अक्रमणो का प्रभाव बुन्देलखण्ड में भी पड़ा। बाद में यह जाति भारतीय सामाजिक व्यवस्था में मिश्रित हो गयी इन्होने हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया और यहाँ के लोगो से वैवाहिक संबध भी स्थापित किये। इनके सन्दर्भ मे, जूनागढ़ अभिलेख में विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है, इनके प्रसिद्ध शासको में तोरमाण, मिहिरकुल आदि थे, इनके भारत आगमन से इण्डो आर्य परम्परा का नैतिक स्तर नीचा हो गया तथा अनेक प्रकार के अन्ध विश्वास शामिल हो गये। पश्चिम बुन्देलखण्ड में हूणो का आक्रमण हुआ तथा कुछ समय के लिये वहां उसका शासन भी स्थापित हुआ, बुन्देलखण्ड के अनेक स्थलों पर हुणों से सम्बन्धित अभिलेख उपलब्ध होते हैं।

बुन्देलखण्ड में मुसलमानो के सन्दर्भ में, कीर्ति वर्मा के समय का एक अभिलेख महोबा में उपलब्ध हुआ है जिससे यह स्पष्ट होता है कि चन्देल नरेश धंग देव ने सन् 989 से लेकर 1000 ई० तक सुबुक्तगीन से युद्ध किया था। इस अभिलेख मे धंग की प्रशंसा इस प्रकार की है - "धंग पृथ्वी के लिये वरदान था........... जिसने शत्रुओं का नाश किया तथा अपनी भुजाओं के शक्ति से शक्तिशाली हम्मीर की बराबरी की।" इसके पश्चात् मुसलमानों का आक्रमण बुन्देलखण्ड में 1019-20

ई० में हुआ तथा महमूद गजनवी का द्वितीय आक्रमण पहले ग्वालियर में हुआ, उसके पश्चात् कालिंजर में हुआ, बाद में कालिंजर नरेश और महमूद गजनवी के मध्य संधि हुयी।

इस प्रकार हम देखते है कि बुन्देलखण्ड में सन् 1022 ई० के पूर्व इस्लाम धर्म का कोई प्रभाव नहीं था। यद्यपि भारतवर्ष में मुसलमानो के आक्रमण 711 ई० से ही प्रारम्भ हो गये थे, किन्तु मुसलमान बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में महमूद गजनवी के आक्रमण के पश्चात् ही अपना प्रभाव डाल पाये। चन्देल शासकों को सबक देने के उद्देश्य से महमूद गजनवी का पहला आक्रमण ग्वालियर में हुआ, इस समय ग्वालियर चन्देल शासको के अधिकार में था, वहाँ का कछवाहा शासक चन्देलों के आधीन था। इसके बाद महमूद गजनवी कालिंजर आया, उसकी चन्देल राजा से भी सन्धि हुयी तथा राजा ने उसे 300 हाथी उपहार में दिये तथा उसकी प्रशंसा में एक कविता लिखी, इससे महमूद गजनवी बहुत खुश हुआ। [119]

भारतवर्ष में, अरबों का आक्रमण ईसा की नवीं शताब्दी से प्रारम्भ हो गया था तथा 300 वर्षो तक भारतवर्ष के अनेक शासक अरबों से संघर्ष करते रहे। यहां के शासक नवीन युद्ध प्रणाली से परिचित नही थे जबकि अरबी आक्रमणकारी, नयी-नयी युद्ध तकनीकों तथा नये अस्त्र शस्त्र से परिपूर्ण थे इसलिये यहां के शासक राष्ट्रीय सीमाओं की सुरक्षा उचित ढंग से न कर सके ।

तत्कालीन समाज ने संकुचित विचार धारा को जन्म दिया, जिसके कारण सम्पूर्ण भारत वर्ष अनेक छोटे-छोटे भागो में विभक्त हो गया तथा बाह्य जगत की गतिविधियों से यहाँ के शासक तथा अनभिज्ञ हो गये, अर्थात भारतीय संस्कृति में अपने आप सड़न पैदा हो गई, जिससे जीवन का प्रत्येक क्षेत्र प्रभावित हुआ। इसने स्थापत्य कला व ललित कला को भी प्रभावित किया, समाज गतिहीन हो गया, जाति बंधन अत्यन्त कठोर हो गये, विधवा स्त्रियों को कठोर नियम पालन करने के लिये बाध्य किया गया , खान-पान के संबंध में अनेक प्रतिबंध लगाये गये तथा अछूतो को नगर से बाहर रहने के लिये बाध्य किया गया। नैतिकता के मूल्य समाप्त हो गये, समाज अंधविश्वास का अनुसरण करने लगा, सुरापान, मांसाहार और व्यभिचार सामान्य रुप से प्रचारित प्रसारित हुये, प्रमोदमय और विलासी जीवन का उदय हुआ, साधु- सन्यासियों का महत्व घटा और धार्मिक स्थल, विलासिता और व्यभिचार के अड्डे बन गये । अनेक धार्मिक स्थलों में अविवाहित लड़कियाँ रखी जाती थी, जिनसे साधू सन्यासियों के अवैध संबध होते थे । कालिंजर के नील कंठ मंदिर में महानचनी पद्यमावति का उल्लेख मिलता है, यह स्तम्भलेख मदन बर्मा देव के शासनकाल विक्रम संवत् 1186 तद्नुसार 1129 ई० का है। [120] इस युग में बुन्देलखण्ड के निवासियों के नैतिक जीवन का पतन हुआ, निकृष्ट कोटि की अश्लीलता से पूर्ण तांत्रिक विद्या का उदय हुआ, इस प्रकार यहां की संस्कृति और सामाजिक स्थिति, जो उच्च कोटि की थी वह अधोपतित हो गयी।

वर्ण पर आधारित समाज :-

बुन्देलखण्ड की सामाजिक व्यवस्था इस्लाम के प्रभाव के उपरान्त भी, थोड़े बहुत परिवर्तनों

के साथ पूर्ववत रही। इस समय भी समाज ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातियों में विभाजित था।कर्म के स्थान पर, वंश परम्परा का निर्वाह किया जाने लगा,भोजन और विवाह आदि क्रियाओं में अन्तर्जातीयता का बहिष्कार होने लगा था। जो भी नियम बने, केशव चंद्र मिश्र के अनुसार -''इनमें से किसी पर भी प्राचीन शास्त्रों की सम्मति प्राप्त नही थी, इनका प्रवेश भी पर्याप्त संघर्ष के उपरान्त ही हुआ, जो पूरे राजपूत युग में चलता रहा''[121] सुप्रसिद्ध इतिहासकार प्रो० राधेश्याम के अनुसार ''पूर्व सल्तनत काल की भाँति सल्तनत काल में हिन्दु समाज ज्यों का त्यों जातियों व उपजातियों में विभाजित रहा, मुसलमानों के आगमन के पश्चात् ही इस समाज के आन्तरिक ढाँचे में परिवर्तन होने लगे। जैसे-जैसे तुर्को का प्रभाव एवं प्रभुत्व बढ़ता गया, क्षत्रियों की पराजय व उनके राज्य समाप्त होते गये, वैसे-वैसे हिन्दु समाज की पुरानी मान्यतायें, परम्परायें ही नही, वर्ण व्यवस्था, जो कि समाज का मुख्य आधार थी, भी नष्ट होने लगी।[122]

<u>उपजातियों में विभाजित समाज</u> :-

बुन्देलखण्ड में इस्लाम के आगमन के पश्चात अनेक उपजातियों का उदय हुआ, अनेक अभिलेखों में गोत्र और शाखाओं का वर्णन मिलता है। सुप्रसिद्ध विदेशी इतिहासकार इब्न खुर्ददबके अनुसार सात वर्ग के हिन्दू बुन्देलखण्ड में थें, प्रथम प्रकार के हिन्दू सब्कुत्रिया थे जो सर्वोच्च्य माने जाते थे, दूसरे प्रकार के हिन्दू ब्राह्मण थे, जो मदिरापान व मांसाहार से दूर रहते थे। तीसरे प्रकार के हिन्दू क्षत्रिय थे जो तीन प्याले से अधिक मदिरा नही पीते थे, इन्हे बाह्मण की कन्या से विवाह करने का अधिकार नही था, किन्तु ब्राहमण इनकी कन्या ले सकते थे। चौथे प्रकार के हिन्दू वैश्य थे जो कृषि और व्यापार करते थे। पाँचवे प्रकार के हिन्दू शूद्र कहलाते थे, जो शिल्प और कुटीर उद्योग से अपनी जीविका उपार्जित करते थे। छठें प्रकार के हिन्दू सण्डालिया कहलाते थे, ये लोग निम्न कोटि के कार्य करते थे। सातवें प्रकार के हिन्दू लहुड़ (वैश्यायें अथवा गणिकायें) कहलाते थे, इस वर्ग की स्त्रियाँ आभरण प्रिय, पुरुष विनोद तथा चमत्कारिक खेलों में रूचि रखती थी, ये लोग भ्रमण शील होते थे।[123]

तद्युगीन इतिहास इदरीश भी उपरोक्त कथन को स्वीकार करते है।[124] किन्तु महमूद गजनवी के साथ आये अलबरूनी ने अपने वृतांत में 16 जातियों का उल्लेख किया है। इनमें चार जातियाँ उच्च्य वर्ग की थी, आठ जातियाँ निम्न वर्ग की थी जो, स्पर्श्य थी और चार जातियाँ अस्पर्श्य थी।[125] इस तथ्य की पुष्टि चन्देल और गहरवाड़ अभिलेखो से भी होती है।[126] इस समय की जाति व्यवस्था दो कारण से प्रभावित हुयी, पहला कारण-व्यवसायिक, दूसरा कारण- विवाहजन्य है। जब कोई उच्च्य कुल का व्यक्ति, किसी निम्न वर्ण की कन्या से विवाह कर लेता था, तो वह निष्कासित कर दिया जाता था, आगे चलकर वह उपजाति के रूप में परिणित हो जाता था, धीरे-धीरे ये जातियाँ बढ़ती गयी, फिर भी ब्राह्मणों की श्रेष्ठता बनी रही। इस समय क्षत्रियो मे भी अनेक उपजातियाँ बनी, तथा वैश्व और शूद्र कुल भी अनेक उपजातियों में विभाजित हुआ। विद्वान केशव चन्द्र मिश्र के

अनुसार" सभी वर्णों के अंतर्गत आने वाली, कुल विभाजन की इस प्रव्रत्ति ने समाज के दृष्टिकोण और मनोवृत्ति में व्यापक परिवर्तन उपस्थित कर दिया"[127] इस समय निम्न जातियाँ अस्तित्व में थी।

क्षत्रिय अथवा सत् क्षत्रिय -

सुप्रसिद्ध विद्वान इब्न खुर्दहा तथा अल इदरीस दोनों, यह स्वीकार करते हैं कि बुन्देलखंण्ड में सभी वर्ग के लोग क्षत्रियों का सम्मान करते थे और क्षत्रिय कुल का व्यक्ति ही राजा पद पर आसीन होता था।[128] इस समय सत् क्षत्रिय तथा क्षत्रिय जाति में अन्तर हो गया था, सत् क्षत्रिय में केवल राजवंश के लोग ही शामिल होते थे, इनका सम्मान ब्राह्मण भी करतें थे, अन्य क्षत्रियों में ऐसी बात नही थी, जिनका सम्मान ब्राह्मण करें।[129]

ब्राह्मण -

हिन्दू समाज में उच्च आदर्शो और विद्वता के कारण ब्राह्मणों को श्रेष्ठ माना गया है। ननयौरा में एक दान अभिलेख उपलब्ध हुआ है जिसमें, उच्च आदर्श का पालन करने वाले अभिमन्यु नाम के ब्राहमण का उल्लेख है।[130] ब्राह्मणों का मुख्य कर्तव्य, वेदाध्ययन् करना तथा धार्मिक यज्ञ सम्पन्न कराना था। प्रबोध चन्द्रोदय नामक गृंथ में, एक ब्राह्मण के निवास स्थल का वर्णन इस प्रकार मिलता है- "दरवाजे पर गड़े हुये वंश स्तम्भों पर डाले गये स्वच्छ वस्त्र हिलोल रहे है, जहाँ कृष्णाजिन प्रस्तरखण्ड, समिधा चषाल, मुसल पड़े है, जहाँ सतत होम के होते रहने के कारण धूम्र निकलता रहता है तथा सुगन्धि फैलती रहती है।[131] ब्राह्मण इस युग में भी धार्मिक संस्कार सम्पन्न कराते थे तथा ये लोग विद्वानों की सन्तान होते थे।[132] इनकी विद्वता से प्रभावित होकर अनेक नरेश इन्हें दान भी दिया करते थे। हड्डाला में उपलब्ध ताम्रपत्र में यह उल्लेख मिलता है कि महेश्वाचार्य की विद्वता से प्रभावित होकर महासामंत अधिपति धरणिवराह ने विमिकल नामक ग्राम उसे पारितोषिक के रूप में दिया था।[133]

इस प्रकार हम देखते है कि ब्राह्मणों का अस्तित्व समाज में बरकरार था किन्तु इस्लाम के आगमन के पश्चात् ब्राह्मणों में भी कमी आयी। वे केवल वंश और जाति के ब्राह्मण लोगों में भी कमी आयी। वे केवल वंश और जाति के ब्राह्मण रह गये तथा अनेक प्रकार के अंध विश्वासों से जुड गये किन्तु, इन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए, जाति बंधनों को कठोर करते हुये, जो नियम बनाये , उन्ही नियमों के कारण हिन्दू धर्म और संस्कृति अपना अस्तित्व बचा सकी।

वैश्य :-

क्षत्रिय जाति के बाद वैश्यों की गणना समाज में होती थी लेकिन इनकी भी स्थिति शूद्रों जैसी थी। बौधायन धर्म सूत्र के अनुसार- वैश्यों का कार्य कृषि और व्यवसाय करना था।[134] अलबरूनी ने भी वैश्यों की इसी स्थिति का वर्णन किया है।[135] वैश्यों को वेदाध्ययन करने का अधिकार नहीं था, अगर ये लोग वेद मंत्र का उच्चारण करते थे तो इनकी जिह्वा छेद दी जाती थी।[136] वैश्यों की आर्थिक स्थिति अन्य जातियों से श्रेष्ठ थी।

शूद्र :-

शूद्रों की स्थिति समाज में अच्छी नहीं थी, ये लोग सेवा से अपनी जीविका चलाते थे, कुछ शूद्र वर्ग जिनके वैवाहिक सम्बन्ध वैश्यों से थे, उन्हें धार्मिक अनुष्ठान करने का अधिकार था, मुख्य रूप से श्राद्ध आदि अनुष्ठान ब्राह्मणों के माध्यम से कर सकते थे।[137]

अन्य जातियाँ :-

बुन्देलखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक जातियाँ निवास करती थी, इनमें चाण्डाल सबसे पतित जाति थी, ये लोग नीच कर्म करते थे।[138] इनके अतिरिक्त अनेक खानाबदोश जातियाँ भी यहां निवास करती थी। श्री अयोध्या प्रसाद पाण्डेय का मानना है कि ''इस युग में व्यापारिक संघों का निर्माण हो चुका था, जिनका निर्देश जातियों अथवा उपजातियों के रूप में होता है।''[138] मुख्य रूप से रूपकार, पीतलहार, अयसकार, शिल्पकार आदि जातियो का निर्माण पूर्व मध्य काल में हुआ, इस समय यहां मुसलमानों का आगमन हो चुका था।[139]

सामाजिक सम्बन्ध :-

सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने में विवाह महत्वपूर्ण भूमिका निभातें है, इस समय जाति से जाति में ही विवाह श्रेष्ठ मानें जाते थे, किन्तु सामाजिक मर्यादायें तोड़कर अनुलोम और प्रतिलोम विवाह भी होते थे, ऐसे विवाहों को आदर से नहीं देखा जाता था। अनेक अभिलेखों में यह वर्णन मिलता है कि, नरेशों को विवाह के समय अपना वंश परिचय देना पड़ता था। अनुलोम विवाह भी होते थे, इसका उदाहरण प्रबोध चन्द्रोदय नामक ग्रन्थ में मिलता है- ''हे मूर्ख सुनो ! मेरी मां उत्तम कुल की न थी, किन्तु मैंने अग्निहोत्रिन ब्राह्मण की कन्या से विवाह किया है : अस्तु मैं अपने पिता से उच्च्च हूँ।[140] अनुलोम और प्रतिलोम विवाह आदर के योग्य नहीं माने जाते थे।

इसी प्रकार भोज कार्यक्रमों मे भी जातीय बन्धन कठोर कर दिये गये थे, ज्यादातर लोग जातीय भोज पसंद करते थे। आंगिरस ऋषि ने ब्राह्मणों को यह निर्देश दिया था कि, वे शूद्रों के यहां भोजन न करे, इसी प्रकार बिना पैर धोयें, अन्य जाति का व्यक्ति, ब्राह्मणों के घर में प्रवेश नहीं कर सकता था। यदि कोई ब्राह्मण, अपने जातीय नियमों का उल्लंघन करता था तो उसे जाति से निकाल दिया जाता था, इसलिए अर्न्तजातीय सहभोज बन्द हो गया। ब्राह्मण और क्षत्रियों के भोजन में भी अंतर था, ब्राह्मण शाकाहारी थे और क्षत्रिय मांसाहारी, वैश्यों की भी भोजन व्यवस्था ब्राह्मणों जैसी थी, ये भी मांसाहार नहीं करते थे।[141]

हिन्दू ब्राह्मणों में मादक पदार्थ का प्रयोग नहीं होता था, इसके साथ-साथ राजवंश के लोग भी मदिरापान नहीं करते थे। सुप्रसिद्ध इतिहासकार अलमसूदी का कथन है- ''हिन्दू मदिरा- पान न करते थे और मद्यपों का न सम्मान होता था, यदि यह सिद्ध हो जाता था कि उनके किसी राजा ने मदिरा-पान किया है, तो उसे राज-त्याग करना पड़ता था, क्योंकि यह साधारण विश्वास था कि मद्य से मस्तिष्क विकृत हो जाता है, जिससे वह शासन के योग्य न रहता था।[142] किन्तु एक अन्य

विद्वान् सुलेमान का कथन है कि, क्षत्रिय तीन चसक मद्यपान कर सकते थे, किन्तु इस युग के बौद्ध, जैन तथा वैश्य सम्प्रदाय के लोग मदिरापान न करते थे।[143] ब्राह्मण वर्ग पशु का मांस नहीं खाते थे, लेकिन शक्ति उपासक लोग यज्ञ आदि में बलि दिया करते थे तथा उनका मांस भक्षण करते थे, भागवत धर्मावलम्बी मांसाहार से परहेज करते थे तथा भोजन में लहसुन प्याज से परहेज करते थे।

स्त्रियों की स्थिति :-

स्त्रियों की स्थिति बुन्देलखण्ड में पूर्ववत् थी। अधिकांश स्त्रियाँ पुरुषों के नियन्त्रण में रहती थी और उनकी दशा अच्छी नहीं थी, स्त्रियों पर कुछ प्रतिबन्ध लगाये गये थे, बाल विवाह प्रारम्भ हो गये थे। अलबरूनी ने बाल विवाहों का उल्लेख किया है, लड़की की उम्र छोटी होने के कारण वैवाहिक सम्बन्ध बच्चों के अभिभावक तय किया करते थे।[144] ब्राह्मणों में 12 वर्ष की आयु से कम कन्या से विवाह करने की प्रथा नहीं थी, किन्तु कालान्तर में इस प्रथा में शिथिलता आयी। कुछ स्थलों पर स्वयंवर प्रथा से विवाह होते थे तथा स्त्री को यह सलाह दी जाती थी कि, वह पति की सेवा करे, उसकी आज्ञा का अनुसरण करे और पर्दे में रहे। स्त्रियों में पर्दा प्रथा इस्लाम के आगमन के बाद बुन्देलखण्ड में आयी। बुन्देलखण्ड में स्त्रियों के वस्त्र लहंगे और चुनरी होते थे तथा लहंगे के ऊपर एक छोटा अंग वस्त्र भी पहना जाता था। धनी और गरीब वर्ग की स्त्रियों के वस्त्र में अन्तर था, धनी स्त्रियां आभूषण धारण करती थी तथा ये आभूषण सिर, कंठ, कर्ण, नासिका, हाथ और पैर में धारण किये जाते थे, विवाहित स्त्रियाँ मांग में सिन्दूर भरती थीं।

यदि किसी का पति मर जाता था, तो वह स्त्री अपने पति के साथ अपने प्राण देकर सती हो जाती थी, जो स्त्रियाँ सती नहीं होती थीं, उन्हें कठोर विधवा धर्म का पालन करना पड़ता था, विधवा स्त्री को सांसारिक सुखों का परित्याग करना पड़ता था। मानदेव के चंगुनारायण शिलालेख मे विधवा स्त्रियों के कर्तव्यों का वर्णन मिलता है :-

प्रत्यागत्य सगद्‌गदाक्षर मिन्दीर्घ विनिश्वस्य च।
प्रेम्णा पुत्रमुवाच साश्रुवदना यातः पिता ते दिवम्।।
हा पुत्र स्तिमिते तवायपितरि प्राणै वृथा किम्मम्।
राज्यं पुत्रक कारयाहमनुयाम्यद्यैव भर्तागतिम्।।[145]

तद्‌युगीन इतिहासकार सुलेमान सौदागर ने सती प्रथा के प्रचलन के सन्दर्भ में कोई विशेष साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किये, ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रथा केवल राजाओं के मध्य ही प्रचलित थी, यथा- ''कभी-कभी राजा की चिता में उसकी रानियाँ कूदकर अपने प्राण विसर्जित करती थी, किन्तु ऐसा करना अथवा न करना उनकी इच्छा पर निर्भर था।''[146] किन्तु अलबरूनी का कथन कुछ विपरीत सा प्रतीत होता है, वह कहता है कि रानियां चाहे अथवा न चाहे उन्हें राजा के साथ सती होना ही पड़ता था।[147] सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री राधेश्याम का मानना है कि, पूर्व मध्यकाल में हिन्दू -मुस्लिम समाज में स्त्रियों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान था, वे मां, बहन और पत्नी के रूप में पूज्य थी,

उन्होंने मनु द्वारा लिखे गये विधि शास्त्र की समीक्षा प्रस्तुत की। मनु का कथन है कि, बचपन में पुत्री को अपनें पिता पर, युवा अवस्था में पति पर, और पति की मृत्यु होने पर पुत्रों पर आश्रित होना चाहिए और उसे कभी स्वतन्त्र नहीं रहना चाहिए। लेखक के अनुसार इस स्त्री की पराधीनता न मानकर, यह माना जाना चाहिए कि, स्त्री सदैव परिवार से जुड़ी है। स्त्रियों का सम्मान पिता, भाई, पति, देवर तथा हित चाहने वालों के द्वारा होना चाहिए।

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ।।55।।
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ।।56।।[148]

यद्यपि पूर मध्यकाल मे स्त्रियो की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी थी। स्त्री सम्मान केवल शास्त्रों में बन्द होकर रह गया था यद्यपि ऐसा भी वर्णन मिलता है कि अनेक स्त्रियों ने युद्ध में भाग लिया लेकिन यह स्थिति मुसलमानो के आने से पूर्व की थी। मुसलमानो के आगमन के बाद स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन हुआ तथा उन्हें अनेक यातनायें दी जाने लगी। उनकी रक्षा का भार पुरुषों पर सौंप दिया गया था, जो स्त्रियाँ उस समय मुसलमान बनी उन्हें भी पाबंदी के अन्दर रहना पड़ा, जबकि हजरत मोहम्मद साहब ने कुरान शरीफ में स्त्रियों को सम्मान देने का आश्वासन दिया था। उन्होंने कहा कि उनकी इच्छा के विरुद्ध उनसे विवाह करना या उन्हें अपने पास रखना गैर कानूनी है, उन्होंने औरतों के अधिकार को स्पष्ट किया अर्थात धार्मिक दृष्टि से हिन्दू और इस्लाम दोनों में ही स्त्रियों को समुचित सम्मान प्राप्त था किन्तु इसका अनुसरण नहीं किया गया था।

स्त्रियों के मध्य में मुसलमानों के आने से पूर्व पर्दा प्रथा नहीं थी किन्तु उनके आगमन के बाद पर्दा प्रथा का प्रचलन व्यापक रूप से हुआ, अन्तर केवल यह था कि हिन्दू स्त्रियां साड़ी से सिर ढकती थी और मुस्लिम स्त्रियाँ बुर्का ओढ़ती थी। तत्युगीन साहित्यकार अमीर खुसरो के अनुसार-एक सौम्य स्त्री वह होती है जो कि पर्दा करती है और बुर्का पहनती है। जो स्त्रियाँ गली, कूंचों में बिना पर्दे के घूमती है। वह सती स्त्री नहीं है वरन् चुड़ैल है। उन्हें अपने घरों में पर्दा करना चाहिए।[149]

समकालीन हिन्दी साहित्य में भी घूंघट के अनेक सन्दर्भ मिलते है, हिन्दू स्त्रियों के लिए पर्दा अनिवार्य हो गया।[150] ऐसा मानना है कि जब मुसलमान स्त्रियाँ पर्दे में दरगाहों में जाया करती थी, उस समय गुण्डें और बदमाश उन्हें सताया करते थे। इसलिए बादशाहों ने दरगाहों में स्त्रियों का जाना बन्द कर दिया था।[151] सिकन्दर लोदी ने भी मुसलमान स्त्रियों के लिए दरगाहों और मकबरों पर पाबंदी लगा दी थी।[152] सामाजिक वातावरण कुछ इस प्रकार का हो गया था कि पर्दा अनिवार्य हो गया।

पूर्व मध्य युग में स्त्रियों के सन्दर्भ में अनेक भ्रान्तियां फैली है। तुर्कों के आगमन के

पश्चात् स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन हुआ, यहाँ पर्दा प्रथा, बाल विवाह और दहेज प्रथा की बृद्धि हुयी तथा स्त्री को पुरुषों के आधीन कर दिया गया तथा उन्हें अनेक बन्धनों में जकड़ लिया गया ऐसा सतीत्व की रक्षा के लिए किया गया। सुप्रसिद्ध विद्वान राधेश्याम के अनुसार- ''परिणामस्वरूप अपनी शारीरिक निर्बलता, अपने सतीत्व की रक्षा, परिवार के प्रति पत्नी, मां, बहन बेटी के रूप में अपने दायित्वों के कारण उन्हें पुरुष वर्ग पर आश्रित रहना पड़ा। इसका तात्पर्य यह नहीं कि पुरुष प्रधान समाज उनका शोषण करता रहा या उनके प्रति उपेक्षा की दृष्टि से देखता रहा।[153]

इस युग में स्त्रियाँ तीन वर्गो में विभाजित थी तथा उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग की स्त्रियाँ, इन सभी वर्गो में व्यापक अन्तर था इसका मूल कारण उनकी आर्थिक स्थिति थी। इस युग में विदेशी आक्रमण बहुत हो रहे थे, इसलिए असुरक्षा की भावना पैदा हो गयी थी। उच्च वर्ग के हिन्दू और मुसलमान अपनी स्त्रियों को ऐसे महलों में रखते थे जो परकोटो से घिरे होते थे और महलों की कड़ी सुरक्षा की जाती थी। इन स्त्रियों का जीवन अन्तःपुर में व्यतीत होता था।

मध्यम वर्ग की स्त्रियाँ घरेलू कार्यो में व्यस्त रहती थीं। उनका कार्य पति की सेवा करना, परिवार की देख-रेख करना और बच्चों का पालन-पोषण करना था, इनकी शिक्षा व्यवस्था घर में ही सम्पन्न होती थी। ये लोग विभिन्न कलाओं को घर में ही सीख लिया करती थी तथा धार्मिक कार्यो में इनकी अभिरुचि ज्यादा रहती थी। फुतूहात फिरोजशाही में सुल्तान फिरोजशाह तुगलक लिखता है कि ''शुभ अवसरों पर स्त्रियाँ टोलियाँ बनाकर, पालकी, गरदून, चौपायों, डोले व घोड़ों पर सवार होकर अत्यधिक संख्या में नगर के बाहर मजारों पर जाती थी।''[154]

उपर्युक्त कथन से यह सिद्ध होता है कि मध्य वर्ग की स्त्रियाँ बाहर निकलती थीं, किन्तु निम्न वर्ग की स्त्रियों की स्थिति और ज्यादा खराब थी। ये लोग अपने घरों में कार्य करती थीं। इसके अतिरिक्त अमीरों, सामंतों तथा गणमान्य व्यक्तियों के यहां नौकरी भी करती थीं, इन्हें दासी, बांदी और लौड़ियां के नाम से पुकारा जाता था। इस काल में शासकों, अमीरों तथा सामंतों के यहां नौकरानियों की कमी बनी रहती थी, गरीब परिवार के लोग अपनी लड़कियों को उनके यहाँ भेज देते थे, इन्हें खाना, कपड़ा और उपहार मिला करते थे। जो स्त्रियाँ अछूत जाति की होती थी, वे मरे हुए जानवर और मैला आदि ढ़ोती थी, इसके अतिरिक्त धोबिन, नाउन, मालिने, कुम्हारिने, बच्चा पैदा कराने वाली दाइयाँ अपना काम करती थी। ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों की स्थिति बारे में कोई भी ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते, अनुमानतः यह कहा जा सकता है कि, ये स्त्रियां भी पुरुषों के आधीन थी तथा घर के अन्दर रहकर अपना कार्य करती थीं, इस सन्दर्भ में एक उदाहरण प्राप्त होता है, शेख हमीदउद्दीन नागौरी, जो कि नागौर गांव में रहते थे, उनकी पत्नी खाना बनाती थी और सूत कातती थी।[155]

रीति-रिवाज :-

बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में बहुत से रीति-रिवाज प्रचलित थे, जो इस्लाम के आगमन के

पश्चात् ही थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ बने रहे। यहाँ के व्यक्ति अतिथियों का स्वागत बड़े आदर भाव के साथ करते थे। अलबरूनी के विवरण के अनुसार- ''भारतवासी अपने ही लोगों के प्रति नहीं, हर किसी के प्रति जो उनके यहाँ आ जाता था- बड़े ऊँचे आतिथ्य भाव प्रकट करते थे।'' इस कथन की पुष्टि सुप्रसिद्ध नाटक प्रबोध चन्द्रोदय से भी होती है :-

रम्यं हर्म्यतलं नवाः सुनयनाः गुज्जद्विरेफा लताः।

प्रोन्मीलन्नवमल्लिका सुरमयो वाताः सचन्द्राक्षयाः।।[156]

इस समय अनेक धर्मो के अनुयायी विविध प्रकार के सामाजिक पर्व मनातें थे, बुन्देलखण्ड अथवा जेजाकभुक्ति में वैशाख सुदी तृतीया को कृषि पर्व मनाया जाता था, उस दिन खेल और मिट्टी की पूजा की जाती थी, इस त्योहार को ''हरैता'' कहते थे। इसी प्रकार आषाढ़ सुदी एकादशी को देवशयन और कार्तिक सुदी एकादशी को देवजागरण के पर्व मनाये जाते थे। कुछ पर्व बालिकाओं और पशुओं को पूंजने वाले होते थे।

अनेक प्रकार के अन्ध विश्वास समाज में प्रचलित हो गये थे, व्यक्ति असफलता में कर्म को न कोसकर भाग्य को कोसते थे और कहते थे कि, यदि विधाता वाम है तो क्या नहीं घट सकता है। *''किन्तु प्रतिकूले विधातरि न सम्भाल्यते।*[157]

लोग पुर्नजन्म के प्रतिफलों पर ज्यादा विश्वास करते थे, इसके अतिरिक्त यहाँ रहने वाले आदिवासी कोल-भील, गौड़, सौर, बैगा आदि भूत-प्रेतों में भी विश्वास करते थे तथा अनेक काल्पनिक देवताओं की पूजा करते थे। देवताओं को संतुष्ट करने के लिए आव-भगत, जवारा, झाड़-फूंक आदि का भी सहारा लेते थे। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- ग्रामीण अंचलों में अनेक देवता प्रचलित थे, ये देवता हनुमान, खेरमाता, खेडापति, खेरे की भवानी, हरदौल, इलादेव, भिडोहिया, घटोइया, नागदेव, गौड़बाबा, मंगतदेव, पौरिया बाबा, मसान बाबा, नट बाबा, छींद्र या रकसा, गुरैया बाबा, महादेव, भिया राने, ग्वाल बाबा, वरमदेव, बुन्देलाबाबा आदि देवता ग्रामीण अंचलों में अंधविश्वास के कारण पूंजे जाते है। इसके अतिरिक्त यहां प्रकृति पूजा और पशु पूजा भी होती थी।[158]

बुन्देलखण्ड में अघोरपंथियों और तांत्रिको का भी प्रभाव था, यहाँ के व्यक्ति जंत्र, तंत्र, मंत्र तथा पशु बलि पर विश्वास करते थे। यहाँ के व्यक्ति कृषि कार्य में भी अन्धविश्वास से जुड़े हुए थे, ये लोग अमावस्या के दिन हल बैल का प्रयोग अपने खेतों में नहीं करते थे, कृषि के सभी उपकरणों की पूजा करते थे, कृषि की उपयुक्त उपज के लिए देवताओं को प्रसन्न करते थे। यहाँ के लोग साधू-सन्तों पर भी बहुत विश्वास करते थे, मध्य युग में अशिक्षा के कारण वेदों का पठन-पाठ प्रायः समाप्त हो गया था।

आमोद-प्रमोद के साधन :- पूर्व मध्ययुग में उच्च्य वर्ग के लोग शिकार खेलकर अपना मनोरंजन करते थे, यहाँ के शिकारी पशुओं का पीछा करने और उनका वध करने में अपनी वीरता

पश्चात् ही थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ बने रहे। यहाँ के व्यक्ति अतिथियों का स्वागत बड़े आदर भाव के साथ करते थे। अलबरूनी के विवरण के अनुसार- ''भारतवासी अपने ही लोगों के प्रति नहीं, हर किसी के प्रति जो उनके यहाँ आ जाता था- बड़े ऊँचे आतिथ्य भाव प्रकट करते थे।'' इस कथन की पुष्टि सुप्रसिद्ध नाटक प्रबोध चन्द्रोदय से भी होती है :-

रम्यं हर्म्यतलं नवाः सुनयनाः गुञ्जद्विरेफा लताः।

प्रोन्मीलन्नवमल्लिका सुरमयो वाताः सचन्द्राक्षयाः।।[156]

इस समय अनेक धर्मों के अनुयायी विविध प्रकार के सामाजिक पर्व मनातें थे, बुन्देलखण्ड अथवा जेजाकभुक्ति में वैशाख सुदी तृतीया को कृषि पर्व मनाया जाता था, उस दिन खेल और मिट्टी की पूजा की जाती थी, इस त्योहार को ''हरैता'' कहते थे। इसी प्रकार आषाढ़ सुदी एकादशी को देवशयन और कार्तिक सुदी एकादशी को देवजागरण के पर्व मनाये जाते थे। कुछ पर्व बालिकाओं और पशुओं को पूंजने वाले होते थे।

अनेक प्रकार के अन्ध विश्वास समाज में प्रचलित हो गये थे, व्यक्ति असफलता में कर्म को न कोसकर भाग्य को कोसते थे और कहते थे कि, यदि विधाता वाम है तो क्या नहीं घट सकता है। *''किन्नु प्रतिकूले विधातरि न सम्भाल्यते।*[157]

लोग पुर्नजन्म के प्रतिफलों पर ज्यादा विश्वास करते थे, इसके अतिरिक्त यहाँ रहने वाले आदिवासी कोल-भील, गौड़, सौर, बैगा आदि भूत-प्रेतों में भी विश्वास करते थे तथा अनेक काल्पनिक देवताओं की पूजा करते थे। देवताओं को संतुष्ट करने के लिए आव-भगत, जवारा, झाड़-फूंक आदि का भी सहारा लेते थे। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- ग्रामीण अंचलों में अनेक देवता प्रचलित थे, ये देवता हनुमान, खेरमाता, खेडापति, खेरे की भवानी, हरदौल, इलादेव, भिडोहिया, घटोइया, नागदेव, गौड़बाबा, मंगतदेव, पौरिया बाबा, मसान बाबा, नट बाबा, छींद्र या रकसा, गुरैया बाबा, महादेव, भिया राने, ग्वाल बाबा, वरमदेव, बुन्देलाबाबा आदि देवता ग्रामीण अंचलों में अंधविश्वास के कारण पूंजे जाते है। इसके अतिरिक्त यहां प्रकृति पूजा और पशु पूजा भी होती थी।[158]

बुन्देलखण्ड में अघोरपंथियों और तांत्रिको का भी प्रभाव था, यहाँ के व्यक्ति जंत्र, तंत्र, मंत्र तथा पशु बलि पर विश्वास करते थे। यहाँ के व्यक्ति कृषि कार्य में भी अन्धविश्वास से जुड़े हुए थे, ये लोग अमावस्या के दिन हल बैल का प्रयोग अपने खेतों में नहीं करते थे, कृषि के सभी उपकरणों की पूजा करते थे, कृषि की उपयुक्त उपज के लिए देवताओं को प्रसन्न करते थे। यहाँ के लोग साधू-सन्तों पर भी बहुत विश्वास करते थे, मध्य युग में अशिक्षा के कारण वेदों का पठन-पाठ प्रायः समाप्त हो गया था।

आमोद-प्रमोद के साधन :- पूर्व मध्ययुग में उच्च वर्ग के लोग शिकार खेलकर अपना मनोरंजन करते थे, यहाँ के शिकारी पशुओं का पीछा करने और उनका वध करने में अपनी वीरता

वेदों और उपनिषदों से निकला था। अरबों ने भारतीय धर्म दर्शन और समाज को प्रभावित करने का प्रयत्न किया, किन्तु वे अपना बहुत अधिक प्रभाव नहीं छोड़ पायें। भारत वर्ष की भूमि में तुर्कों और मुसलमानों ने ८०० वर्ष तक शासन किया, किन्तु ग्रामीण अंचल में वे हिन्दुओं के धार्मिक विश्वासों, भोजन, वेश-भूषा तथा जीवन यापन विधि में प्रभाव नहीं डाल सके। केवल उच्च वर्ग के हिन्दुओं ने दोनों वर्गों में सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया तथा दोनों धर्मों के धर्म गुरु विश्व बन्धुत्व और एकता पर जोर देते रहे। गुरुनानक और कबीर ने दोनों धर्मों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। उनके मतानुसार- राम और रहीम, कृष्ण और करीम, अल्लाह और ईश्वर दोनों एक ही परमात्मा के नाम है। इन धर्म सुधारकों ने पृथकतावादी भावनाओं को उभारने के लिए मुल्ला और पण्डितों की निन्दा की, यथा -

जुगत जुगत के नाम धराये दो माटी के भाडे।
एक कहावें, मुल्ला दूसर कहावें पाडें।।कबीरदास।।

डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव के अनुसार- ''हिन्दू समाज अपने बीच में इस्लाम आ जाने से दो प्रकार से प्रभावित हुआ, एक तो यह कि मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए जोशीले प्रयत्नों से हिन्दुओं में रूढ़िवादिता और दृढ़ हो गयी। हिन्दू नेताओं ने सोचा कि इस्लाम के आक्रमणों से अपने धर्म तथा संस्कृति को बचाने का एकमात्र उपाय यह कि वे अपने आचार-विचारों में और कट्टर बन जायें, इसलिए जातिबन्धन और कस दिये गये, दैनिक आचार-व्यवहार के नियमों को इतना कठोर बना दिया गया कि जितने वे पहले कभी नहीं थे।[160] इस्लाम धर्म ने बुन्देलखण्ड क्षेत्र में जो प्रभाव डाला, उसकी दो प्रकार की प्रतिक्रियायें हुयी, पहली प्रतिक्रिया से यहां के हिन्दुओं ने अपने आप को बचाने की कोशिश की तथा दूसरी प्रतिक्रिया के अनुसार, इस्लाम धर्म के कुछ जनवादी सिद्धान्तों को हिन्दू धर्म ने अपना लिया। इस्लाम धर्म से उत्पन्न सूफी मत का व्यापक प्रभाव हिन्दुओं पर पड़ा तथा सूफी मत को प्रचारित करने के लिए लेखकों ने अनेक ग्रन्थों की रचना की, जिनमें हिन्दू संस्कृति को आधार बनाया गया था। उच्च वर्ग के हिन्दू जो, मुसलमानों से प्रभावित थे, उन्होंने कुछ आदतें तथा तौर-तरीके इस्लाम धर्म के अपना लिये।

बुन्देलखण्ड के साहित्य पर भी यदि विहंगम दृष्टि डाली जायें तो उसमें मुसलमानों का प्रभाव साफ दृष्टिगोचर होता है, इसके अतिरिक्त यहाँ के लोगों ने उनसें प्रभावित होकर उनकी भाषा सीखनें का भी प्रयत्न किया। मुख्य रूप से कालपी में जन्में, पुरुषोत्तम दुबे, जो बीरबल के नाम से विख्यात् थे, वे कालिंजर नरेश रामचन्द्र बघेल के राज्य में रहे, उसके पश्चात् वे अकबर के नौ रत्न बनें, बाद में 'अकबर और बीरबल के चुटकुले' बुन्देलखण्ड के निवासियों के मनोरंजन के प्रमुख साधन बने। सुप्रसिद्ध राजदूत चन्द्रभान ब्राह्मण फारसी का अच्छा ज्ञाता था। औरंगजेब के शासनकाल में भी सन् 1658 से 1707 के मध्य अनेक हिन्दुओं ने तवारीख़े लिखी।

इस्लाम सभ्यता का सबसे बड़ा प्रभाव, यहाँ की ललितकला और वास्तुशिल्प पर

प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करने का विरोध करते है, जिन्हें वे म्लेच्छ अथवा पापात्मा कहते हैं, यह सम्बन्ध चाहे अन्तर्विवाह हो अथवा दूसरे प्रकार का, जैसे- बैठना-उठना, खान-पान। इसका कारण यह है कि ऐसा करने से वे अपने अपवित्र हो जाने का भय करते है। विदेशियों के अन्न-जल से छू जाने वाली वस्तु को वैसी ही अपवित्र मानते है। चाहे वह कोई भी क्यों न हो, यदि उनके धर्म-समाज का नहीं है, तो वे उसका स्वागत नहीं करते थे। वे धर्म को चाहते अथवा अंगीकार करने के लिए उद्यत होते, तब भी यह भाव किसी सम्बन्ध के स्थापित होने को सर्वथा असम्भव कर देता है और हम लोगों के बीच बड़ी चौड़ी खांई बना देता है।''[163]

उपर्युक्त कथन से यह सिद्ध होता है कि, हिन्दुओं की नीति विदेशियों के प्रति अच्छी नहीं थी। उसका मूल कारण यह था कि विदेशी आक्रमणकारियों ने इनके ऊपर जमकर अत्याचार किये थे, इसलिए हिन्दु और मुसलमानों के बीच विपरीत भावनाओं का उदय हुआ। अलबरूनी का मत है कि ''महमूद ने भारत वर्ष की सभी अर्जित थाती और उसका सौन्दर्य सोलह आने नष्ट कर दिया और ऐसा झंझावत ला दिया जिसने हिन्दुओं को रजकण की भांति बिखेर दिया। यही कारण है कि हिन्दुओं की विद्याये एवं ज्ञान, उस भूमि से जिसे हम लोगों ने विजित किया है, बहुत दूर काशी जैसे स्थानों को चली गयी, जहाँ हम लोगों के हाथ नहीं पहुँच सकते।''[164]

इस प्रकार के कृत्यों के कारण ही मुसलमान शासकों के प्रति नफरत की भावना का उदय हुआ, इसी के कारण ही जाति बन्धन कठोर हो गये तथा परिवार के सम्मान को बचाने के लिए पर्दा प्रथा का भी उदय हुआ। पर्दा प्रथा, उस युग की ज्वलन्त मांग थी तथा जातीय बंधन को कठोर किया जाना भी, युग के अनुकूल था, इस युग में धार्मिक कट्टरता का भी उदय हआ। अलबरूनी का मानना है कि- हिन्दुओं का विश्वास है कि यदि कोई देश है, तो उनकी कोई जाति है, यदि शासक है तो कोई धर्म, उनके धर्म के समान नहीं है और न कोई विज्ञान, उनके विज्ञान की तुलना में आ सकता है। वे उद्वत, अज्ञान-भरे, अहंकारयुक्त, आत्मविलिप्त और जड़ है, जो कुछ वे जानते है, उसे बतलाने में वे स्वभावतः अनुदार है और किसी विदेशी प्रच्छन्न रखने में वे अधिक से अधिक सतर्कता रखते है।[165] तुर्कों के आगमन के उपरान्त यह परिवर्तन हुआ कि, व्यक्तियों में संकीर्ण मनोवृत्ति का उदय हुआ, रुढ़िवादिता बढ़ी, समाज में अनेक दुर्बलतायें पैदा हो गयी, आधुनिक युद्ध पद्धति से परिचित न होने के कारण भारतीय सैनिक इनसे परास्त हुए, जिसके कारण मुसलमानों का बुन्देलखण्ड में प्रभाव बढ़ा और उस वजह से सामाजिक व्यवस्था में अनेक परिवर्तन हुए।

पहला परिवर्तन, परिवारिक व्यवस्था में हुआ, इस समय बुन्देलखण्ड में हिन्दुओं के मध्य संयुक्त परिवार थे, एक परिवार में पति-पत्नी, पति के माता-पिता तथा अन्य सभी व्यक्ति रहते थे, इन्हें परिवारिक रीति-रिवाजो का अनुपालन करना पड़ता था तथा परिवार के बड़े बूढ़े व्यक्ति का कहना मानना पड़ता था। प्रत्येक परिवार में अलग-अलग व्यवसाय होते थे, ये व्यवसाय उनकी जाति और वंश के अनुसार होते थे।

इस्लाम के प्रभाव के कारण प्रचलित विवाह पद्धतियो में भी परिवर्तन हुआ, हिन्दुओं के लिए विवाह करना, अनिवार्य तथा सामाजिक कर्तव्य था। पहले ये विवाह स्मृति ग्रन्थों का अनुसरण करते थे तथा अन्तर्जातीय विवाहों को भी अनुमति प्रदान कर देते थे, किन्तु जातीय बंधन इस युग में कठोर कर दिये गये इसलिए विवाह जातिगत होने लगे। बाल-विवाह और बहुविवाह को प्रोत्साहन मिला। पृथ्वीराज रासों से यह ज्ञात होता है कि, पृथ्वीराज की आठ रानियाँ थी किन्तु भारतीय समाज में तलाक की कोई व्यवस्था नहीं थी।

इस्लाम के आगमन के पूर्व स्त्रियों की स्थिति सम्मान जनक थी, किन्तु इस्लाम के आगमन के पश्चात् स्त्रियों की स्थिति अधोगति को प्राप्त हुयी। सुप्रसिद्ध इतिहासकार केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार-मुसलमानों का सम्पर्क बढ़ने के साथ समाज में कन्याओं के प्रति धारणा और विपरीत हुयी। यह धारणा तो पहले से ही क्षत्रियों और राजाओं में विद्यमान थी कि, अपनी कन्याओं को किसी से पाणिग्रहण कराने में वे मानहानि समझते थे। चन्देलों के शासनकाल में कई भारतीय राजाओं के बीच विवाहों को लेकर झगड़े और बड़े-बड़े युद्ध हो चुके थे। पृथ्वीराज-रासों में इसके कई उदाहरण मिलते है।[166] व्यक्ति अपनी कन्याओं का वध करने लगे तथा विधवा स्त्री को सतीत्व व्रत का अनुपालन करने, सती होने और जौहर व्रत करने के लिए बाध्य किया जाने लगा। इस समय स्त्रियाँ भी दुष्ट और इर्ष्यालू प्रवृत्ति की हो गयी तथा इन्हें पिशाचनी कहा जाने लगा।

स्वभावः खल्वसौ स्त्रीपिशाचीनाम्।
प्रिये ! सेपर्य प्रायेण योषितां भवति।।
एवमनया दुराचरणं विचिन्तितम्.....।[167]

पुरुष भी उनके चरित्र पर अविश्वास करते थे।

इस्लाम के प्रभाव के कारण भोजन व्यवस्था में भी पर्याप्त परिवर्तन हुआ, पहले व्यक्ति अन्न, चीनी, दूध, घी और फल का प्रयोग करता था तथा ब्राह्मण मासांहार नहीं करता था, किन्तु कालान्तर में मांसाहार किया जाने लगा तथा छूआ-छूत की भावना का उदय हुआ, अछूत जातियों को नगर से बाहर रहने का निर्देश दिया गया। पहले यहाँ के लोगों मद्यपान नहीं करते थे किन्तु बाद में मद्यपान किया जाने लगा, मद्यपान करना और वेश्यागमन करना, धनी व्यक्तियों की आदतों में शामिल हो गया था। खजुराहों में उपलब्ध मिथुन मूर्तियों में यह भावना दिखाई देती है।

इस्लाम के प्रभाव के कारण जेजाकभुक्ति क्षेत्र में वस्त्राभरण में परिवर्तन हुआ, पहले इस क्षेत्र में पुरुष शरीर के निचले भाग में लम्बी धोती, कुचीताला या परदनी पहनते थे तथा धोती के नीचे घुटन्ना या लंगोटा पहनने की प्रथा थी। शरीर के ऊपरी भाग में पुरुष वर्ग मिरजई व बगलबन्दी पहनते थे, स्त्रियाँ फतुही और अँगरखाँ पहनती थीं, लेकिन इस्लाम के आगमन के बाद इस पहनावे में व्यापक अन्तर आया, पुरुष वर्ग कुर्ता पैजामा, शेरवानी आदि पहननें लगे तथा मुस्लिम स्त्रियाँ सिर के ऊपर बुर्का पहनने लगीं, आभूषण स्त्री-पुरुष दोनों धारण करते थे, ये आभूषण सोना,

चाँदी, कांसा, काँच और पीतल आदि धातुओं के बनते थे। आदिवासी लोग शीप और शंख के आभूषण पहनतें थें। स्त्रियाँ कर्णफूल, कंठहार और चूड़ियां पहनती थीं, इसके अतिरिक्त पैजना, सांकर बिछियां, अनोटा पहनने का रिवाज था, गले में कंठहार, खगेरियां, हमेल, सुतियां और ठुसी, हाथ में खक्गा और बरा, सिर में सीस फूल पहना जाता था, हाथ में अंगूठी और माला स्त्री और पुरुष दोनों पहनते थे।[168]

प्रबोध चन्द्रोदय के अनुसार- यदि कोई विदेशी भी किसी के घर पहुँच जाता था तो उसका भी आदर होता था, यथा- ''मै तुरुष्क देश होकर आया हूँ, जहाँ गृह का प्रधान न तो समादरणीय अभ्यागत ब्राह्मणों और अतिथियों का पाद-प्रक्षालन करता है और न कर्मचारी उन्हे बिठाते है।''[169] अनेक प्रकार के नये रीति-रिवाज इस्लाम के कारण समाज में प्रचलित हुये, यहां भूत-प्रेतों जिंद, चुडैलों पर भी विश्वास किया जाने लगा, इसका नाजायज लाभ तद्‌युगीन तांत्रिकों ने उठाया तथा तरह-तरह के नये देवता बुन्देलखण्ड में उत्पन्न हो गये।

इस्लाम के सम्पर्क में आने के बाद यहां के लोग मनोरंजन की नवीन विधियों से परिचित हुए। शिकार के अतिरिक्त यहां के लोग नृत्य, गायन, वादन तथा खेल, तमाशों से अपना मनोरंजन करते थे।

इस्लाम के आगमन के बाद, वह समाज बुन्देलखण्ड में देखने को नहीं मिला, जिसे हिन्दुओं का आदर्श समाज कहा जाता था। राजनीति के पतन के साथ समाज का भी व्यापक पतन हुआ तथा अनेक प्रकार की बुराइयाँ समाज में उत्पन्न हो गयी।

धार्मिक स्थिति में परिवर्तन :-

बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में प्राचीन युग में दो प्रकार के धर्म थे, आर्यो के आगमन के पूर्व यहां अनार्यो का धर्म था, अनार्य लोग प्रकृति की उपासना करते थे, उनके रीति रिवाज और तीज-त्योहार आर्यो से बिल्कुल भिन्न थे। ये लोग कोल, भील, गौड़, बैगा, मुडिया, माडीया, शहरीया आदि कहलाते थे। जब यहाँ आर्यो का आगमन हुआ, उस समय यहाँ के लोगों ने आर्य धर्म अपना लिया तथा अनेक ऋषि-मुनि, साधू-संत इसे तपोभूमि समझकर यहाँ रहने लगे। कालान्तर में यह सनातन धर्म था, बाद में हिन्दू धर्म कहलाने लगा। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत शिव, विष्णु, आदित्य, शक्ति और गणेश की उपासना होती थी। सुप्रसिद्ध ग्रंथ आल्हाखण्ड में पंचदेव उपासना के उदाहरण उपलब्ध होते है, यथा-

सदा भवानी दाहिने गौरी पुत्र गणेश,
तीन देव रक्षा करे ब्रह्मा, विष्णु महेश,

इसके अतिरिक्त वृक्ष और पशु-पक्षी भी यहाँ पूजे जाते थे व बहुत से अन्य सम्प्रदायों का भी उदय हुआ, ये सम्प्रदाय विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा किया करते थे, किन्तु बैदिक धर्म की श्रेष्ठता बनी हुयी थी। बौद्ध धर्म, जो कभी बुन्देलखण्ड में व्यापक रूप से विकसित था, वह धीरे-

धीरे विलुप्त हो रहा था, किन्तु जैन धर्म का प्रचार-प्रसार कम नहीं हुआ। अनेक क्षेत्रीय धर्म भी पूर्व मध्यकाल में अपना अस्तित्व बनाये हुए थे।

पूर्व मध्य युग में अनेक विद्वानों ने पुराणों का पुर्नलेखन किया, बुन्देलखण्ड में जो शासक शासन करते रहे, उनमें से अधिकांश शिव उपासक थे, कुछ शासको ने अन्य देवताओं को भी अपना ईष्टदेव माना, किन्तु शिव की महिमा प्रधान होने के कारण चन्देल नरेश अपने नाम के आगे परममहेश्वर आदि लगाते थे, चन्देल नरेश विष्णु के भी उपासक थे, उन्होंने अनेक विष्णु मंदिरों का निर्माण कराया।[170] इस युग के सामंत, राजा-महाराजा, रानियों ने देवालयों का निर्माण कराया, इन देवालयों में काफी संपत्ति एकत्र हो जाती थी। चिन्तामणि विनायक वैद्य के अनुसार- ''यही कारण था कि इन दो शताब्दियों में भारत वर्ष की दशा अद्‌भुत थी, जहां तक ऐतिहासिक परिशीलन का प्रश्न है, नवीं-दसवीं शताब्दी, भारत वर्ष की इस अभिनव दशा की ओर हम जिज्ञासु नेताओं का ध्यान आकृष्ट करती है।'' इस समय बुन्देलखण्ड में अनेक छोटे-छोटे सम्प्रदाय कार्य कर रहे थे, जिसके कारण धर्म का अद्योपतन हुआ तथा लोग एक दूसरे को विद्वेष की दृष्टि से देखने लगे, जिसके कारण यहाँ की मौलिक एकता समाप्त हो गयी और राष्ट्रीय भावना लुप्त हो गयी, द्वैत मतावलम्बी व अद्वैत मतावलम्बी आपस में झगड़ने लगें, इससे धर्म को बहुत बड़ा नुकसान हुआ और मूर्ख जनता यह नही समझ पायी कि वह किस धर्म का अनुसरण करे। सुप्रिसिद्ध इतिहासकार केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार- ''शिव और विष्णु के आराधकों के बीच घृणित कलह स्थापित हो गया और इन मतावलम्बियों के बीच कुत्सित विवाद का वितंडावाद सामने आया। इन मतों की भक्ति प्रक्रिया तथा दर्शन में भेद के कारण जो भिन्नता स्थापित हुयी, वह इस्लाम और हिन्दुओं में शत्रुत्व के कारण उत्पन्न भिन्नता से अधिक गहरी थी।''[171] इस युग में निम्न धार्मिक परिवर्तन देखने को मिलते है-

1- बौद्ध धर्म का तिरोहण :-

बुन्देलखण्ड के शासको के द्वारा बौद्ध धर्म को उचित प्रोत्साहन नही दिया गया इसलिये 12 वीं शताब्दी समाप्त होने तक बौद्ध धर्म सदैव के लिये यहाँ से विदा हो गया। इसके तीन कारण थे, प्रथम- शासकों के द्वारा प्रोत्साहन न दिया जाना, द्वितीय- बौद्ध धर्म का जनता पर विपरीत प्रभाव पड़ना, तृतीय- बुन्देलखण्ड में बाहरी आक्रमणों का होना, इसके अतिरिक्त ब्रजयानियों द्वारा अपनायी गयी क्रिया-कलापों से भी बौद्ध धर्म तिरोहित हुआ, इसके तिरोहण से ब्राह्मणों धर्म को फायदा मिला। कुमारिल भट्‌ट और शंकराचार्य ने इस धर्म को सदैव के लिये समाधि दे दी। बौद्ध धर्म मूर्ति पूजा, भक्ति-भावना तथा सत्य-अहिंसा-प्रेम के सिद्धान्तों के कारण लोकप्रिय हुआ था, इन सभी सिद्धान्तों को हिन्दू धर्म ने अपनाया लिया, जो बौद्ध धर्म के तिरोहित होने का मुख्य कारण था।

जैन धर्म का दक्षिण की ओर पलायन -

चन्देल शासनकाल में व उसके पूर्व, जैन धर्म का अस्तित्व बुन्देलखण्ड में था, इन्होने हिन्दू धर्म कोई विरोध नही किया, इसलिये यह साथ-साथ पनपता रहा। चन्देल बुन्देलखण्ड के अनेक

क्षेत्रों में जैन मंदिरों का निमार्ण हुआ किन्तु कालान्तर में यह धर्म दिगम्बर और श्वेताम्बर दो भागों में विभाजित हुआ। दिगम्बर सम्प्रदाय दक्षिण की ओर चला गया तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय के लोग यहाँ बने रहे। जब तुर्को का आगमन इस क्षेत्र में हुआ, उस समय इस धर्म को कोई प्रोत्साहन नही दे सका। 11वीं सदी के अरब इतिहासकार ए- इद्रीसी के मतानुसार, इस समय धर्म की यह स्थिति थी-'' भारतवर्ष की प्रमुख जातियों में इस समय बयालीस मत- सम्प्रदाय हो गये है। इनमें से कुछ ईश्वर की सत्ता को मानतें है परन्तु पैगम्बर की नही। कुछ दोनों की स्थिति अस्वीकार करते है, कुछ पत्थर की प्रतिमा की अलौकिक-सत्ता में विश्वास करते है, कुछ पावन-पत्थर को पूजते है और उस पर घी और तेल चढातें है। कुछ अग्नि के प्रति भक्ति प्रकट करते है और अपने को उसमें उत्सर्ग भी कर देते है। कुछ सूर्य की सत्ता में आस्था रखते है और उसको विश्व का कर्ता और नियन्ता मानते है। कुछ लोग वृक्ष की पूजा करते है और कुछ दूसरें लोग सर्प की उपासना करते है। अंत में, कुछ ऐसे भी लोग है, जो किसी भी प्रकार की भक्ति में विश्वास नहीं करते और हर प्रकार की सत्ता को अस्वीकार करते है।''[172]

हिन्दू धर्म में परिवर्तन :-

इस्लाम के आगमन के पश्चात्, हिन्दू धर्म में भी परिवर्तन हुआ। यहां पंचदेव की उपासना नये स्वरूप में विकसित हुयी, विष्णु उपासना, भागवत धर्म के रूप में दिखलाई देने लगी, देव मन्दिरों का प्रभाव बढ़ा तथा हिन्दू धर्म से सन् 1000 ई० से 1200 ई० तक वैष्णव सम्प्रदाय का उदय हुआ। इसकी विशेषता यह थी कि, इस नव वैष्णव सम्प्रदाय ने बुद्ध को भी विष्णु का अवतार माना तथा वैष्णव धर्म को प्रचारित - प्रसारित करने के लिए भागवत पुराण की रचना 11वीं सदी में की गयी, इस धर्म के अन्तर्गत कृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया।[173] इसी युग में, नव शैव सम्प्रदाय का भी उदय हुआ, इस सम्प्रदाय से शिव की उपासना बुन्देलखण्ड में बढ़ी, इसमें शिव की सन्ध्या उपासना, मंत्र, जप, होम नये ढंग से होने लगी तथा शिव लिंग की उपासना मुख्य रूप से होने लगी। भारशिवों ने भी अहिंसा के सिद्धान्त को गृहण किया तथा राष्ट्रकूटो व चोलों के माध्यम से भी शैव धर्म फला-फूला।

इस समय शक्ति उपासना भी नये ढंग से की जाने लगी, वेदों में वर्णित नारी की सत्ता पुरुषों को पीड़ित करने के लिए हुयी थी जो आगे चलकर शक्ति उपासना के रूप में परिणित हो गयी। चन्देलयुग में इस सम्प्रदाय का प्रभाव बढ़ा तथा ये लोग तान्त्रिक के रूप में विख्यात् हो गये। सुप्रसिद्ध विद्वान केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार- ''चन्देल युग तक पहुँचने पर शाक्तों का नवरूप तांत्रिक हो गया, उन्होंने अपनी परिचर्या को रहस्यमय तो बनाया ही, उसमें नारी, भोग और तंत्र को खूब स्थान दिया। तांत्रिकों के सम्प्रदाय से निकलकर कापालिक और अघोर पंथियों का इसी समय उदय हुआ।[174]

इस युग में धर्म के अनेको स्वरूप विकसित हुये, अनेको देवी देवता आस्था के

अनुसार पूजे जाते थे, तीर्थ स्थानों व पवित्र नदियों की मान्यता बढ़ गयी थी, अनेक तीज-त्योहार मनायें जाने लगे थे। इस युग में वेदान्त, न्याय, सांख्य, मीमांसा, पतंजलि, चार्वाक, जैन और बौद्ध दर्शन का प्रभाव पढ़े-लिखे व्यक्तियों के मध्य में था, शेष जनता परम्परागत तरीके से धर्म का अनुसरण करती थी।

बुन्देलखण्ड में इस्लाम का आगमन :-

बुन्देलखण्ड में इस्लाम धर्म महमूद गजनवी के साथ आया तथा महमूद गजनवी ने इस धर्म को प्रचारित करने तथा हिन्दुओं के धर्म परिवर्तन करने के लिए शक्ति का सहारा लिया, इस प्रकार हम देखते है कि इस्लाम बुन्देलखण्ड में निम्न तरीके से फैला।

1. शक्ति के प्रयोग से-

बुन्देलखण्ड के रहने वालों ने इस्लाम धर्म को आसानी से स्वीकार नहीं किया, इस क्षेत्र में महमूद गजनबी, कुतुबुद्दीन ऐबक तथा अन्य मुस्लिम शासको के आक्रमण हुए। इन आक्रमणों में यहाँ के मूल निवासियों पर यह दबाव डाला गया कि, वे इस्लाम धर्म स्वीकार करें। कालिंजर, ग्वालियर, दूधिया, चांदपुर, चन्देरी, बटियागढ़, मंडला, जबलपुर आदि क्षेत्रों में मुसलमानों के आक्रमण हुए, कालान्तर में ये आक्रमण ओरछा में भी हुए। जहां-जहां नरेश परास्त हुए, वहाँ के लोगों को इस्लाम धर्म अपनाने के लिए बाध्य किया गया। हिन्दू धर्म स्थलों को तोड़ा गया और उनके स्थान पर इस्लाम धर्म से सम्बन्धित इमारतों का निर्माण किया गया, किन्तु कतिपय इतिहासकार ये मानते हैं कि बुन्देलखण्ड में इस्लाम के आक्रमण हुए, कुतुबुद्दीन ने मन्दिरों का विनाश यहां अवश्य किया, किन्तु उसने धर्म परिवर्तन के मौलिक प्रश्न को स्पर्श ही नहीं किया। यहां के लोग अपेक्षाकृत अधिक दृढ़ हिन्दू थे, इन्हीं सब कारणों से यहाँ के हिन्दू अपनी धर्म-भावना सें कही फिसल न सके।[175] बुन्देलखण्ड में तुर्कों की धार्मिक भावनाओं को स्वीकार नहीं किया गया, यहां के लोग उन्हें धर्म का विनाशक मानते थे। चन्देलों ने अपने शासनकाल में अपने यहां मस्जिद बनाने का अवसर प्रदान नहीं किया, ये मस्जिदें उस समय निर्मित हुयी, जब उनका शासन वहां से समाप्त कर दिया गया।

2. हिन्दुओं की धार्मिक कट्टरता के कारण :-

यहाँ का हिन्दू, प्राचीन धार्मिक पद्धति का अनुसरण करता था, वह अपने कुल की परम्पराओं और मर्यादाओं का भी ध्यान रखता था। इस युग में, धर्म के नाम पर अनेक पाखंड फल-फूल रहे थे, छूआ-छूत और ऊँच-नीच की भावना सर्वत्र व्याप्त थी जिसका लाभ इस्लाम धर्मावलम्बियों ने उठाया। उन्होंने सर्वप्रथम, उपेक्षित जाति और नीची जाति के लोगो को मुसलमान बनाया तथा उन्हें समुचित सम्मान दिया। उनमें से कुछ को सरकारी नौकरियां भी प्रदान की गयी, इस प्रलोभन से उपेक्षित हिन्दुओं ने इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया। छूआ-छूत की भावना के कारण मुसलमान जिस व्यक्ति को छू लेते थे अथवा जिस व्यक्ति को जबरन खाना या पानी पिला देते थे, हिन्दू उस व्यक्ति को अपवित्र मानते थे और उसका बहिष्कार कर देते थे, इस्लाम धर्म के लोग इसका फायदा

उठा कर उन्हें मुसलमान बना लेते थे। चिकवा, रंगरेज, बिहना, मनिहार, पहले हिन्दू थे, बाद में इन्होंने इस्लाम धर्म अपनाया, इसी प्रकार अन्तर्धर्मी विवाह करने वाले को भी मजबूरन मुसलमान बनना पड़ता था।

3. सिद्धान्त और धर्म प्रभाव के कारण :-

बुन्देलखण्ड के लोग सूफी सम्प्रदाय से बहुत अधिक प्रभावित हुए , जिसके कारण अनेक लोगों की श्रद्धा, इस्लाम के प्रति हुयी, जो भी सूफी सन्त, पीर, पैगम्बर, बुन्देलखण्ड क्षेत्र में हुये, उनकी दरगाहों और मजारों पर यहाँ के लोगों की भीड़ उमड़कर आयी तथा उन्होंने सूफी सन्तों के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर, इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया।

इस्लाम धर्म में कोई ऐसी बुराई नहीं थी, जिसे-घृणा का कारण माना जाता। यह एकेश्वरवादी धर्म था, जिसमें मूर्ति पूजा को कोई स्थान नहीं था, न ही हिन्दू धर्म जैसी छूआ-छूत की भावना थी। प्रेम व्यवहार तथा भाई-चारे की भावना, इस्लाम धर्म में हिन्दुओं से अधिक थी, इसलिए उसके प्रति आर्कषण बढ़ना स्वाभाविक था।

समन्वित सम्प्रदाओं का उदय :-

इस्लाम के आगमन के पश्चात्, ऐसे सम्प्रदाओं का उदय हुआ, जिन्होंने दोनों धर्म और संस्कृतियों मे सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। इन सम्प्रदाओं में गुरुनानक पंथ (सिक्ख धर्म), कबीर पंथ, सतनामी पंथ और प्रणामी सम्प्रदाय उभरकर सामने आये। गुरुनानक का यह मानना था कि हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म, दोनों की अच्छाइयों को लेकर एक नवीन पंथ, धर्म समन्वय के आधार पर चलाया जाना चाहिए। संत कबीरदास ने हिन्दू, मुसलमान दोनों पंथों की आलोचना की और कहा -

संतो राह दोऊ हम दीठा।
हिन्दू तुर्क हटा नहीं माने, स्वाद सबन को मीठा।।
हिन्दू सधै बरत एकादशी दूध सिंघाड़ा सेती।
अन्न को त्यागे मन नहीं हटके परन करे संगोत्री।।
हिन्दू दया मेहर को तुर्फन दोनों घट से त्यागी।
वे हलाल ये झटका मारे आग दोनों घर लागी।।
हिन्दू तुर्क एक राह है सतगुरु यह बताई।
कहै कबीर सुनो हो संतो राम न कह्यो खुदाई।।[176]

इसी प्रकार, छत्रसाल के युग में, प्रणामी सम्प्रदाय का उदय हुआ, इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक मेहराज ठाकुर अर्थात् गुरु प्राणनाथ थे। इन्होंने हिन्दू, मुसलमानों को एकता के सूत्र मे बाँधने का प्रयत्न किया। कुछ सिद्धान्त, हिन्दू धर्म से और कुछ सिद्धान्त, इस्लाम धर्म से लेकर प्रणामी सम्प्रदाय का निर्माण किया। प्रणामी सम्प्रदाय के सन्दर्भ में यह पंक्ति सार्थक है :-

कृष्ण, मुहम्मद, देवचन्द, प्राणनाथ, छत्रसाल।

इन पंचन को भजे दुःख हरे तत्काल।।[177]

इस प्रकार हम देखते है कि, इस्लाम के आगमन के पश्चात् बुन्देलखण्ड की धार्मिक स्थिति मे व्यापक परिवर्तन हुए। दोनों धर्मो का अनुपालन करने वाले, एक दूसरे के सन्निकट आये। उन्होंने एक दूसरे को समझने का प्रयत्न किया तथा भाईचार की भावना इतनी अधिक विकासित हुयी कि दोनो एक दूसरे के धर्म में सहयोग देने लगे।

इस्लाम के आगमन के पश्चात् बुन्देलखण्ड की भाषा और उसके साहित्य में परिवर्तन

जो भाषा आज हम बोलते है, उसे खड़ी बाली के नाम से पुकारा जाता है। इसका उद्भव और विकास इस्लाम के आगमन के बाद हुआ। बुन्देल-खण्ड में सातवीं शताब्दी के पूर्व, भाषा पूर्ण रूप से दूसरी थी, केवल बौद्धों ने अपने धर्म प्रचार के लिये लोक-भाषाओं का आश्रय लिया था। इस समय जो भाषायें बोली जाती थी, उनमें प्राकृत भाषाओं के अन्तर्गत महाराष्ट्री, शौरसेनी, भागधी, और पैशाची भाषा थी। ८०० ई० से 1000 ई० तक उपरोक्त भाषायें लुप्त हो गयी तथा उनके स्थान पर संस्कृत भाषा का पुनरूत्थान हो गया। इसके पश्चात् संस्कृत से अनेक अपभ्रंश भाषाओं का उदय हुआ, इन अपभ्रंश भाषाओं में महाराष्ट्री, भागधी, शौरसेनी तथा पैशाची ने पुराना स्वरूप त्यागकर नया स्वरूप धारण किया तथा इसमें संस्कृत के अनेक शब्द शामिल हुए। स्वामी शंकराचार्य ने भी अपने धर्म दर्शन के प्रचार के लिए लोक-भाषाओं का सहारा लिया। इसी समय अनेक स्थानीय भाषाओं का भी उदय हुआ तथा हिन्दी, बंगाली, पूर्वी, पश्चिमी, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती, मराठी तथा अन्य भाषायें विकसित हुयी। 9वीं सदी के आगमन के साथ-साथ प्राकृत भाषायें सदैव के लिये लुप्त हो गयी।

बुन्देलखण्ड में जिस भाषा का विकास हो रहा था, उसका उदय पश्चिमी हिन्दी से हुआ तथा इसे बुन्देलखण्डी के नाम से जाना गया। चन्देल शासन काल में 12 वीं शताब्दी तक इस भाषा को पूर्ण विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ। सुप्रसिद्ध विद्वान केशव चन्द्र के मिश्र के अनुसार,- चन्देल साम्राज्य के अधिकांश भाग में बुन्देलखण्डी भाषा, अपनी अनेक स्थानीय बोलियों के साथ, ग्यारहवीं सदी में, विकसित हो रही थी। ऐसा क्षेत्र, उत्तर प्रदेश के वर्तमान बाँदा, हमीरपुर, जालौन, झाँसी और ललितपुर जिले, मध्यप्रदेश के जबलपुर, सागर और दमोह जिले, ग्वालियर राज्य का सम्पूर्ण पूर्वी भाग और बुन्देलखण्ड का पश्चिमी भाग, प्रयाग जिले का गंगापार का भाग, भोपाल तथा सारा बुन्देलखण्ड है।[178]

इस युग में, स्थानीय भाषाओं में साहित्य का सृजन प्रारम्भ हो गया था। कालान्तर में बुन्देलखण्डी भाषा एक समर्थ बोली के रूप में उभरी और अनेक गृंथों की रचना हुयी, जिसमें बुन्देलखण्ड के प्राकृतिक सौन्दर्य को महिमामंडित किया गया। यहाँ के प्रमुख कवियों मे केशव, हरिराम, महात्मा अक्षर, बिहारी, पद्‌माकर, गोरेलाल 'लाल', ठाकुर, धर्मदास, रीवाँ नरेश रघुराज सिंह तथा छत्रसाल ने बुन्देली भाषा में उच्चकोटि का साहित्य लिखा। यहाँ लिखे गये साहित्य में तद्‌युगीन

सामाजिक जीवन, लोक जीवन तथा संगीत के स्वर मिलतें है। इसके अतिरिक्त लोकोक्तियाँ, व्यंग्य कहनौत, टहूका, अहाना आदि भी लिखें गयें। प्रांतीय भाषा का प्रयोग, प्रशासनिक कार्यो में भी होने लगा। इस भाषा को लिखे जाने के लिये देवनागरी लिपि का प्रयोग हुआ, चन्देलकालीन अनेक दानपत्रों, अभिलेखों और सिक्को पर यही लिपि अंकित है। इसका उल्लेख अलबरूनी ने भी किया है, इस लिपि को उस युग में 'नागर' कहा जाता था।

राजा परिमार्दिदेव का दरबारी कवि गदाधर, जो उच्च कोटि का संस्कृत भाषा का विद्वान था, उसने अनेक ग्रंथों की रचना की।[179] 11 वी सदी के प्रथम 20 वर्षो में काव्य का स्थान बहुत ऊँचा उठ चुका था। चन्देल नरेश गंड देव ने महमूद गजनवी को एक कविता लिखकर दी थी जिससे वह प्रभावित हुआ था।[180] ऐसा लगता है, तद्युगीन चन्देल नरेशो ने बुन्देली भाषा के लेखको को और कवियों को समुचित प्रोत्साहन दिया था, इस युग में महाकाव्यों की रचना हुयी, महाकाव्यों में आल्हखंड सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ। इन नरेशो ने विद्वान और सुयोग्य पंडित, ब्राहमणों, कवियों, सहित्यकारों को भूमि दान में दी थी तथा इन्हे उत्तरदायी पद भी प्रदान किये।[181] कभी-कभी साहित्यकारों की बुद्धि जाँचने के लिये प्रतियोगितायें आयोजित की जाती थी, इसके उदाहरण प्रबोध चन्द्रोदय में उपलब्ध होते है।[182]

इस युग में हिन्दी साहित्य के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य की भी रचना हुयी तथा अलंकार, काव्यांग, दर्शन, धर्म शास्त्र, न्याय, व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद और संगीत विषयों पर ग्रन्थ लिखे गये, इस युग में धार्मिक ग्रन्थों की भी रचना हुयी। मुख्य रुप से स्त्रोत्रावली, मुकुन्दमाला, तथा कृष्ण कर्णामृत नामक ग्रंथ लिखे गये। सुप्रसिद्ध विद्वान ए0वी0 कीथ के अनुसार,- गीतकार, नीतिकार, और कवियों के अनेक ग्रंथ इस युग मे लुप्त हो गये।[183] इस युग में नीतिगत साहित्य, शुद्ध साहित्य तथा लघु ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों की रचना हुयी, कुछ ग्रंथ शब्दकोष, आयुर्वेद और ज्योतिषशास्त्र में भी लिखे गये।

बुन्देलखण्ड़ की भाषा पर मुसलमानों का प्रभावः-

11वीं शताब्दी के आस-पास उर्दू भाषा का उदय भारत वर्ष में हुआ तथा प्रारम्भ में इस भाषा को लश्करी भाषा के नाम से जाना गया, इसको लिखने के लिये अरबी-फारसी की लिपि को अपनाया गया तथा इसमें तद्युगीन हिन्दी भाषा के शब्दों को भी रखा गया। यह भाषा तुर्की और हिन्दुस्तानी व्यक्तियों के मध्य में सम्बंध स्थापित करने के लिये प्रयोग में लायी जाती थी। इस भाषा का उदय सल्तनतकाल में हुआ था तथा इसका विकास मुगल काल में हुआ। डा0 आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव के अनुसार- ''विदेशी तुर्की, मध्य एशिया की जनता तथा हिन्दुओं में पारस्परिक संबंध स्थापित करने कि लिये दिल्ली के सल्तनतकाल में सर्वसाधारण की बोली का जन्म हुआ, किन्तु उत्तरकालीन मुगल सम्राटों के शासन काल में इसने भाषा का रूप धारण कर लिया, आरम्भ में यह जवान-ए हिन्दुवी कहलाती थी और फिर उर्दू कहलाने लगी।[184]

कालान्तर में, इस भाषा का व्याकरण बना, इसमें अरबी, फारसी, के शब्द जोड़े जाने लगे तथा अनेक मुसलमान कवियों ने इसमें कविता की रचना प्रारम्भ की, जिन्हे शायर कहा जाने लगा। बुन्देलखण्ड में भी अनेक शायर उत्पन्न हुएं जिन्होंने उर्दू भाषा में उच्च्च कोटि की शायरी को जन्म दिया। इसके अतिरिक्त हिन्दी कवियों ने भी उर्दू अरबी, फारसी शब्दों का प्रयोग अपने साहित्य में किया। उर्दू और हिन्दी कविता के अलग-अलग उदाहरण यहां प्रस्तुत किये जा रहे है, इनसे भाषायी प्रभाव समझना सुलभ होगा-

उदाहरण (उर्दू भाषा) -

लगा है तार हिचकी का खबर देने को नाड़ी है।
बना है गम का स्टेशन कलेज़ा डाक गाड़ी है।।

उदाहरण (हिन्दी भाषा) :-

अलप अधर कटि भुखा अलप ऐन,
सुनत विसेख बैन वीना पिक कीर के;
सुभर कपोल खरे सुभर सुभाय उर,
सुभर नितम्ब मन मोहे मुनि धीर के।
निर्मल दसन नैन नख माँग बलभद्र
मानो फैन सोहत सुरसरी के नीर के;
स्याम पाटी तारे रोम राजी कुच अग्र तेरे;
सोरह श्रंगार मे स्वभाविक सरीर के।। बलदेव मिश्र।।[185]

उदाहरण (मिश्रित भाषा) -

महम्मदखांन हृदयशाह सों मिलाय होत,
ठिल्यो दल सागर त्यों रस के रसौदा में।
''लाल'' मुख्य वीर रूप दरस्यो दिमान इतै,
हुमसाहुमस मची मन के मसौदा में।।
शांगे उल्हारें एकैं ढालें हतुवा सेहत,
झारत पलीता ऐकें गोवें देत रौदा में।
हूँक दैके हाथी सौं हुमक हनुमान ऐसो,
दाव के नबाव के हृदेश बैठो हौदा में।[186] कवि गोरेलाल ''लाल''।

उपर्युक्त पद में उर्दू भाषा के अनेक शब्दों का प्रयोग है- महम्मदखांन, रसौदा, मसौदा, हतुवा, दुमक आदि उर्दू शब्दों का प्रयोग हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि, मुसलमानों की बोली का व्यापक प्रभाव यहां की हिन्दू जनता पर पड़ रहा था, यहां के लोग-संगीत के कुछ उदाहरणों को भी देखा जा सकता है, जिनमें मुसलमानों की गायन शैली का प्रभाव है यथा-

उदाहरण 1 -

मेला देखन चलेगें-पिया दोनों जने !

तुम्हारी माय हमारी सास- वो तो है चूल्हे की राख !

बर्तन माँजा करेगे- अपुन दोनो जने ! मेला ..... !

तुम्हारा भाई हमारा जेठ-उसका है मटके सा पेट ![187]

उदाहरण 2 -

फूल गुलदस्ता का खिला रहता है !

आजकल की सांस बुरी है- उन्हे धुन लडने की बनी रहती है! फूल.......!

आजकल की जिठानी बुरी है- धुन न्यारे की बनी रहती है ! फूल ....!

आजकल की देवरानी बुरी है उन्हे धुन मायके की बनी रहती है ! फूल...... ![188]

उपर्युक्त लोकशैलीबद्ध गीत में उर्दूशैली का प्रभाव स्पष्ट रूप से झलकता है, इसी समय खड़ी बोली में भी, उर्दू साहित्य से प्रभावित होकर लोक रचनायें लिखी गयी।

बुन्देलखण्ड में प्रचलित भाषा में भी उर्दू का प्रभाव देखा जा सकता है। मुख्य रूप से जो कहावते और लोकोक्तियाँ यहाँ प्रचलित है, उनमें उर्दू का विशेष प्रभाव है यथा-
''मियाँ के मुहँ में मसूर की दाल'', ''जहाँ जाये बडे मियाँ तहाँ जाये पूछ, ठाडे रहे बडे मियाँ ठाणी रही पूंछ,'' ''जो तकदीर में बदो होत, वही होत'', ''बड़े मियाँ तो बड़े मियाँ, छोटे मियाँ सुभानअल्ला''

बुन्देलखण्ड में उर्दू का प्रयोग उस समय विशिष्ट रूप से हुआ जब हिन्दी शब्द की उपलब्धता किसी शब्द के लिये नही होती थी यथा-

क्या जानें लोग कहते है किसको सरूरे क्लब,

आया नही है लफ्ज यह हिन्दी जबाँ के बीच।

इस क्षेत्र में सैय्यद ईशां अल्ला, मौलाना हाली का विशेष योगदान रहा, उनकी शायरी का नमूना इस प्रकार है-

''फलक के सामने क्या महजबी जमाना चले।

चलेगे हम भी उसी रुख जिधर जमाना चले।[189]

इस प्रकार हम देखते है कि, बुन्देलखण्ड की भाषा और साहित्य पर इस्लाम का प्रतिकूल और अनुकूल प्रभाव पड़ा तथा एक भाषायी सम्बन्ध स्थापित हुआ, जिसे आज भी बोलचाल की भाषा के रूप में जाना जाता है।

बुन्देलखण्ड की वास्तुशिल्प पर इस्लाम का प्रभाव -

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में वास्तुशिल्प के उत्कृष्ट पुरावशेष उपलब्ध होते है, यहाँ उपलब्ध पुरावशेष ईसा की प्रथम शताब्दी से लेकर मुगल काल तक के है, उसके बाद के पुरावशेष बुन्देला नरेशों के शासनकाल के है। यहाँ के वास्तुशिल्प के सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध इतिहासकार केशवचन्द्र

मिश्र का कथन है- जिन ग्रंथों ने यहां की परम्परा सरणी को निरन्तर प्रवाहित किया है, उनमें उल्लेखनीय नाम बराहमिहिर की बृहत्संहिता, विश्वकर्मा रचित विश्वकर्म प्रकाश, तथा विश्वकर्मीय शिल्पशास्त्र, मयदानव रचित मय शिल्प तथा मयमत, कश्यप और भारद्वाज रचित वास्तुतत्व, वैखानस और सनतकुमार-रचित वास्तु शास्त्र आदि है। चन्देल-वास्तुकला, शास्त्रीय अध्ययन इस बात का रहस्य प्रकट करता है कि, वास्तु की समस्त सिद्धान्त-पद्धति उस समय न केवल मान्य थी वरन् व्यहृत भी होती रही।[190] इस समय जो भी वास्तुशिल्प का निर्माण हुआ, उसमें ज्योतिष शास्त्र का भी प्रभाव पड़ा, भूमि तथा भवन निर्माण में शुभ और अशुभ लक्षणों का ध्यान रखा गया।

राजप्रसादों के लिए सर्वोत्तम भवन 135 हाथ लम्बाई और चौड़ाई 108 मानी गयी। इसके पश्चात् भूमि के क्षेत्रफल में क्रमशः कमी आती गयी। सेनापति का निवास 64 हाथ चौड़ा तथा 74 हाथ लम्बा होता था। इसी प्रकार से युवराजों और राजमहिषियों के भवनों में भी अन्तर था, भवन निम्न रूप से निर्मित होते थे :-

वर्ण	उत्तम	मध्योत्तम	मध्यम	अधम	अधमाधम[191]
ब्राह्मण	32	28	24	20	16
क्षत्रिय	28	24	20	16	0
वैश्य	24	20	16	0	0
शूद्र	20	16	0	0	0
अन्त्यज	16	0	0	0	0

भवन निर्माण के समय, आवागमन के लिए वीथिका छोड़ने की पद्धति थी। यह बीथिका चारों ओर छोड़ी जा सकती है, इसके लिए यह नियम था कि भवन के कुल क्षेत्रफल में 11 से भाग दिया जाता था, उसमें 70 जोड़ दिया जाता था, उतने वर्ग फुट जगह वीथिका के लिए छोड़ी जाती है। इसी प्रकार दरवाजों का भी परिमाप था, भवन के कुल क्षेत्रफल के पांचवें अंश में 12 अंगुल जोड देने पर, जो प्रतिफल आता था, वही भवन के द्वार का परिमाप होता था। इस समय भवनों में जिन स्तम्भों का प्रयोग होता था उनमें चार कोने वाले स्तम्भ को रुपक, आठ कोने वाले स्तम्भ को वज्र, 16 कोने वाले स्तम्भ को द्विवज्र, 32 कोनें वाले स्तम्भ को 'प्रलीनक' तथा वृत्ताकार स्तम्भ को वृत कहते थे। यदि मकान के चारों ओर दरवाजे होते थे, तो उन्हे सर्वतोभद्र कहते थे।

लोगों का यह विश्वास था कि, प्रत्येक मकान में 45 देवता वास करते है। श्री केशव चन्द्र मिश्र के अनुसार- ईशान कोण में क्रम से शिखा, पर्जन्य, जयंत, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश और अंतरिक्ष आदि देवता रहते है। अग्निकोण में क्रम से पूषा, पितथ, वृहत्क्षत, यम, गन्धर्व, मृगराज और मृग अवस्थित है। नैऋत्य कोण में यथाक्रम पिता, दौवारिक, कुसुमदत्त, वरुण, असुर, शोष और राजयक्ष्मा निवास करते है। वायु कोण में- नत, अनन्त, वासुकि, भल्लाट, सोम, भुजंग आदिति और

दिति आदि देवता विराजमान रहते है।[192] चन्देल युग तक जो भी वास्तुशिल्प निर्मित हुए, वे सब वास्तुशास्त्र के अनुकूल थे। इस युग में निम्न प्रकार के वास्तुशिल्प के पुरावशेष उपलब्ध होते है।

जलाशय-

गुप्तकाल से चन्देल युग तक और चन्देल युग से मुगलकाल तक अनेक जलाशयों का निर्माण बुन्देलखण्ड के अनेक स्थलों में हुआ। इनमें सर्वाधिक संख्या सरोवरो की है, ये सरोवर ऐसे स्थान पर बनायें गये, जहाँ जल आसानी से संचय हो सकता था। इस काल के सरोवर बड़े होने के साथ-साथ मजबूत भी है, इनके किनारे स्नानार्थ सोपान भी बने हुए है तथा उनके किनारे पूजार्थ देवालय भी है। महोबा का राहिल सागर जलाशय शिल्प का उत्कृष्ट नमूना है। उसके किनारे मंदिर भी है। इसी प्रकार के सरोवर कालिंजर, मड़फा, देवगढ़, शेरपुर, सेंवड़ा में भी है। इसके अतिरिक्त जलापूर्ति के लिए कुँओं और बावलियों का भी निर्माण हुआ, कुछ कुआँ और बावली रनिवास महलों से जुड़े रहते थे यद्यपि, इनकी निर्माण शैली में समय-समय पर परिवर्तन होते गये।

दुर्ग-

बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होने वाले दुर्ग अत्यन्त प्राचीन है तथा वास्तुशिल्प की दृष्टि से यह अत्यन्त उच्च कोटि के है। यहाँ के दुर्ग अवशेष ईसा की पहली शताब्दी से लेकर मुगल काल तक के है। दुर्ग निर्माण का उद्देश्य नगर व देश की शत्रुओं से रक्षा करना होता था। महमूद गजनवी ने कालिंजर दुर्ग की विशेषता, इस प्रकार वर्णित की- नगर के चारों ओर एक प्राचीर है, जिसकी ऊँचाई केवल गृध्रों से नापी जा सकती है। इसके रक्षक सैनिक यदि चाहे तो तारिकाओं से बातें कर सकते हैं।............इसका शिखर अंत्तुगताम आकाश की ऊँचाई के सामन है और मीनराशि के समानान्तर है।[193] बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होने वाले समस्त दुर्ग प्राचीन बेष्टित है, दुर्ग में प्रवेश करने के लिए अनेक प्रवेश द्वार होते थे तथा दुर्ग में निवास करने के लिए सैनिक पदाधिकारियों और नरेशों के आवास-स्थल होते थे। बुन्देलखण्ड के दुर्गो में कालिंजर दुर्ग सर्वश्रेष्ठ है, इसके पश्चात् अजयगढ़, ओरछा, दतियां, महोबा, ग्वालियर, मड़फा आदि दुर्ग उपलब्ध होते है।

देवालय :-

बुन्देलखण्ड के अनेक स्थलों में देवालयों के उत्कृष्ट पुरावशेष उपलब्ध है, इनमें से अधिकांश देवालय गुप्त और चन्देल युग के है। बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होने वाले देवालय दक्षिण भारत के देवालयों से पूरी तरह भिन्न प्रतीत होते हैं। इनका निर्माण पंचायतन नागरी शैली में हुआ है तथा इनमें इण्डोआर्यन शैली का भी प्रभाव है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार केशव चन्द्र मिश्र के अनुसार- साधारणतया खजुराहो के मन्दिर आयताकार नागर-शैली अर्थात् 'इण्डोआर्यन' शैली पर बने है। फिर भी इनका कलात्मक ढंग मौलिकता से आपूर्ण है। इसी कारण -'इण्डो-आर्यन' शैली के मन्दिरों के सर्वोत्तम और आर्कषण उदाहरण यही मिलते है। ये सभी देवालय ऊँचे मंच पर बने है। देवतायतन के अग्र भाग में अंतराल और फिर महामंडप बने है। महामंडप के आगे अर्धमंडप और मंडप भी मन्दिरों

की शोभा द्विगुणित करते है। देवतायतन के चारों ओर प्रदक्षिणापथ बने है- इनको प्रकाशित रखने के लिए विशाल वातायन रखे गये है। बाहरी आकार-प्रकार में श्रृंग, शिखर और विमान यहाँ के मंदिरों के प्रभावकारी लक्षण है। 'उरसिंघो' की बनावट तथा वितरण खजुराहों की विशेषता है।[194]

इस्लाम के आगमन के पश्चात् यहाँ के अनेक मंदिरों को नष्ट किया गया तथा उनकी सम्पत्तियों को जब्त किया गया, किन्तु, इनके पुरावशेष तद्‌युगीन स्मृतियो को आज भी बनायें हुए हैं, यद्यपि खजुराहों के मन्दिरों को कोई भी नुकसान नहीं पहुंचा है। खजुराहों के अतिरिक्त दुधियाँ चांदपुर में 11वीं और 12वीं शताब्दी के धार्मिक अवशेष उपलब्ध होते है। इस क्षेत्र के कुछ पुरावशेष इस्लाम धर्म से सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त देवगढ़ में भी अनेक पुरावशेष उपलब्ध होते है, ये पुरावशेष गुप्त युग के है। इसके अतिरिक्त सांची, एरण में भी धार्मिक अवशेष उपलब्ध होते हैं, इनमें से कुछ देवालयों में इस्लाम का प्रभाव दिखाई पड़ता है। मुख्य रूप से जो देवालय बुन्देलों के शासनकाल में बने है, उनका वास्तुशिल्प पूरी तरह से इस्लाम से प्रभावित है।

मूर्ति शिल्प :-

बुन्देलखण्ड में सर्वाधिक मूर्तियां गुप्त युग से लेकर चन्देल युग तक की है, ऐसा प्रतीत होता है कि, इनका विकास 5वीं सदी के गुप्तों और वाकाटकों के राज प्रसादों के काष्ठ शिल्प से हुआ। चन्देल मूर्तिकला दो रूपों में उपलब्ध होती है, इनमें प्रथम वे मूर्तियाँ हैं, जो बाहरी दिवालों में देवालयों को अलंकृत करने के लिए प्रयोग में लायी गयी। दूसरी वे मूर्तियां है, जो गर्भगृह में आराध्य देवी-देवताओं की है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार-चन्देल मूर्तियों के रचना-सौष्ठव, भंगिमा, अंग विन्यास, गठन तथा कला-पक्ष में अध्ययन की प्रचुर सामग्री प्रस्तुत होती है, किन्तु उससे भी अधिक महत्व की सामग्री उनके द्वारा निरुपित होने वाला अध्यात्म-पक्ष प्रस्तुत करता है। उनके अध्यात्म-पक्ष को लेकर विद्वानों में विभिन्न रूप से विवाद खड़े हो गये है।[195]

सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० एस०डी० त्रिवेदी ने अनेक क्षेत्रों में मूर्ति सम्पदा की खोज की, इस परिक्षेत्र में विष्णु प्रतिमा, जैन तीर्थकारों की प्रतिमायें, हिरण्याकश्यप और नरसिंह युद्ध प्रतिमायें, शिव प्रतिमायें, शक्ति प्रतिमाये, गणपति प्रतिमायें, सूर्य प्रतिमायें, जैन और बौद्ध धर्म की प्रतिमायें, मिथुन मूर्तियाँ और पशु-पक्षियों की मूर्तियाँ उपलब्ध होती है। सुप्रसिद्ध विद्वान ने कालिंजर की मूर्ति-शिल्प का वर्णन इस प्रकार किया है- कालिंजर फोर्ट मे सुरक्षित अधिकांश मूर्तियां शैव धर्म की है। शिव का प्रतीकात्मक अंकन लिंग रूप में हुआ है। इस क्षेत्र में सामान्य शिव लिंग तथा सहस्त्रलिंग उपलब्ध हुए है। कालिंजर में अनेक सहस्त्रलिंग चतुर्मुखी तथा एकमुखी शिवलिंग है। यहाँ नन्दी के ऊपर एक शिवलिंग प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार मत्स्यावतार के ऊपर भी कहीं-कहीं शिवलिंग का अंकन मिलता है। राजकीय संग्रहालय झांसी में, सुरक्षित एक द्वार तोरण पर लिंगार्चन के कई दृश्य प्रदर्शित है।[196]

चन्देल युग के पश्चात् मूर्तिकला में व्यापक परिवर्तन हुआ, प्रस्तर मूर्तियों के स्थान

पर धातु की मूर्तियों का प्रचलन हुआ तथा मन्दिर निर्माण शैली भी बदल गयी। बुन्देल शासकों द्वारा निर्मित देवालयों में धातु की मूर्तियाँ स्थापित की गयी, किन्तु जो शिवालय बने, उनमें प्रस्तर शिवलिंग ही स्थापित किये गये। ये देवालय ओरछा, पन्ना, दतियाँ, पाथर कछार तथा अन्य स्थलों में बनें।

इस्लाम धर्म से सम्बन्धित वास्तु-शिल्प :-

बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में, जो वास्तुशिल्प इस्लाम धर्म से सम्बन्धित उपलब्ध होता है, वह 11वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक का है। इन पुरावशेषों में मस्जिद, दरगाह, कब्रिस्तान, तथा इमामबाड़े हैं। जब बुन्देलखण्ड में सुल्तानों और मुगलों का शासन स्थापित हुआ, उस समय उन्होंने अपने अनुचरों के लिए पूजा-स्थलों का निर्माण किया। इन पूजा स्थलों के निर्माण के लिए सुल्तानों ने हिन्दू धार्मिक स्थलों को ध्वस्त किया तथा अन्य भवनों को भी मस्जिदो के रूप में परिवर्तित कर दिया। तुर्कों ने अपने लिए जिन भवनों का निर्माण किया, उनमे देशी शिल्पकारों, पत्थर तराशों और राजमिस्त्रयों का सहारा लिया। उन्होंने इमारत की बल्लियों पर कुरान-शरीफ के अंक अंकित कराये, उसके पश्चात् उन्होंने, पश्चिम एशिया से भारत आयें शिल्पकारों से भी सहयोग लिया। इस युग में गुम्बद् तथा मीनार, महराबदार दरवाजे तथा विविध प्रकार के पच्चीकारी अपनाई गयी। उनके महलों में वेल-बूटे, घन्टी, स्वास्तिक और कमल का प्रयोग किया गया। भवनो में ईट, पत्थर और संगमरमर का भी प्रयोग हुआ। बुन्देलखण्ड मे ऐसे भवन ग्वालियर, दतिया, ओरछा, जैतपुर, पाथर कछार, बिजावर, पन्ना आदि में उपलब्ध होते है। पन्ना का प्रणामी मंदिर मिश्रित वास्तुशिल्प का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस प्रकार हम देखते है कि इस्लाम धर्म का व्यापक प्रभाव यहां के वास्तुशिल्प पर पड़ा।

चित्रकला :-

चन्देल युग में किसी भी प्रकार से चित्रकला को प्रोत्साहित नहीं किया गया। केवल एक ही उदाहरण मिलता है कि, इन्होंने अपने यहाँ की मूर्तियों को नीले, हरे, लाल और पीले रंग से रंगाया था और उस पर वार्निश का लेप कराया था, किन्तु चन्देल युग के पश्चात् जब इस्लाम का आगमन हुआ, उस समय चित्रकला को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० आर्शीवादीलाल श्रीवास्तव के अनुसार- यद्यपि कुरान में चित्रकला का निषेध किया गया है, तब भी मुगल सम्राट चित्रकला का बहुत आदर करते थे। सबसे पहले मंगोल बिजेताओं ने तेरहवीं शताब्दी में फारस में इस कला का आरम्भ किया। यह चीनी कला का प्रान्तीय रूप था और इस पर भारतीय, बौद्ध, ईरानी, बैक्ट्रियाई और मंगोलियन विचारों का बहुत अधिक प्रभाव था। फारस के तैमूर-वंशी राजाओं ने इसे राजकीय सहायता दी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि, बाबर जब हिरात में आया, तब उसको इस प्रकार की चित्रकला से परिचय हुआ और फिर उसने इसे राजकीय संरक्षण प्रदान किया।[197] सन् 1550 के आस-पास हिरात का प्रसिद्ध चित्रकार सैय्यद अली भारत आया था, उसी समय ख्वाजा अब्दुल समद भी भारत आया था। अकबर के जमाने में चित्रकला का प्रचार-प्रसार हुआ तथा भारतीय कलाकारों

ने तुर्की और अरबी कलाकारों की चित्रविधि समझी, अपनी चित्र विधि उन्हें समझायी। दास्ताने अमीर-हमजा तथा तारीखे खानदानी तैमूरिया में, चित्रकला के सन्दर्भ में, व्यापक वर्णन उपलब्ध होता है। इन ग्रंथों की रचना 1550ई० से 1560ई० के मध्य में हुयी। अब्दुल फज़ल के अनुसार - ''अकबर के दरबार में सौ से अधिक निपुण एवं प्रसिद्ध चित्रकार थे। इनमें पूर्णता प्राप्त करने वाले तथा अधकचरों की संख्या अधिक थी। इनमें हिन्दुओं की संख्या अधिक थी क्योंकि उनके चित्र आशातीत अच्छे होते थे। वास्तव में, उनके समान संसार में बहुत कम चित्रकार थे।[198]

जहाँगीर के समय में भी अच्छे चित्रकार थे, जिन्होंने उच्च्य कोटि के चित्रों का निर्माण किया। तुजुके जहाँगीरी में, इस प्रकार का विवरण उपलब्ध होता है ''यदि अनेक कलाकारों द्वारा एक से अधिक चित्र बनाये जाये, तो भी मैं प्रत्येक कलाकार की चित्रकारी अलग-अलग बता दूंगा। यदि एक ही चित्र अनेक चित्रकारों द्वारा भी बनाया जाये, तो भी उस एक चित्र के भिन्न-भिन्न अंगों के बनाने वालों के नाम बता दूंगा।[199]

शाहजहाँ भी चित्रकला का बहुत प्रेमी था, किन्तु वह अपने पिता और बाबा के समान चित्रकारी का अगाध प्रेमी नहीं था। इसके युग में चित्रकारी की अपेक्षा स्थापत्य कला और आभूषण कला का अधिक विकास हुआ। इसके समय में चित्रकारों की संख्या घटी, इस युग के प्रमुख चित्रकार फकीर उल्ला, मीर हाशिम, अनूप चित्रा आदि इसके दरबारी चित्रकार थे, इस युग की चित्रकारी में अधिक सौन्दर्य नहीं था। शाहजहाँ के काल में चित्रकला का पतन हुआ।

औरंगजेब एक कट्टर मुसलमान था तथा चित्रकला का घोर विरोधी था। उसने सिकन्दरा मकबरे में बने चित्रों को मिटवां दिया, किन्तु यह चित्रकला बुन्देलखण्ड में अनेक स्थलों पर फलती-फूलती रही। मुख्य रूप से दतियाँ, ओरछा, झांसी, ग्वालियर, बानपुर, पाथर कछार, आदि में चित्रकला के उत्कृष्ट नमूने उपलब्ध होते है।

चित्रकला के साथ-साथ पुस्तक लेखन के लिए सुलेख का भी प्रचलन बढ़ा। सुलेख लेखन का प्रचलन, चीन तथा फारस से भारत आया था। सुल्तानों और बादशाहों ने सुलेख को प्रोत्साहन दिया। अबुल-फजल के कथानानुसार- अकबर के दरबार में आठ प्रकार के सुलेख लिखे जाते थे, इसमें 'नस्तिलिक' लेख को सर्वाधिक पसन्द किया जाता था। इस विधि में आरम्भ से अंत तक टेड़ी लाइने होती थी। अकबर के दरबार में मोहम्मद हुसैन काश्मीरी सबसे प्रसिद्ध सुलेख लिखने वाला था, इसे जारी कलम के नाम से जाना जाता था। जहाँगीर के यहाँ भी सुलेखक थे, जिनमें हाशिम नाम का सुलेखक था, जो कुरान शरीफ का अनुवाद करता था। लेखन के अतिरिक्त जिल्दसाजी का कार्य भी इस युग में अच्छा होता था।

बुन्देलखण्ड में भी लेखन कला को प्रोत्साहित किया गया, अनेक देशी-रियासतों ने अनेक सुलेखकों को अपने दरबार में रखा तथा उनसे बहुमूल्य पुस्तकों को लिखवाया और उनकी नकल करवाई। ओरछा, पन्ना, चरखारी, छतरपुर, दतिया, टीकमगढ़ तथा अन्य रियासतों में 10 हजार

से अधिक पाण्डुलिपियां उपलब्ध हुयी, जो अनेक संग्रहालयों में संरक्षित है।

इस युग में सुन्दर नक्काशी और पच्चीकारी का भी विकास हुआ। मुगल बादशाह उभरी हुई नक्काशी के प्रेमी थे, उन्होंने इस कला से अपने भवनों को खूब सजाया। सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव के अनुसार- मुगलों द्वारा बनवायी गयी बढ़िया इमारतों पर उभरी हुयी नक्काशी होना अनिवार्य समझा जाता था। संगमरमर की जाली भी उस समय प्रचलित थी।[200]

नक्काशी के अतिरिक्त, इस युग में पच्चीकारी भी प्रचलित थी। यह काम अकबर के जमाने में सर्वाधिक हुआ। इमारतों में, बहुमूल्य पत्थरों को कलात्मक रूप में काटकर जड़ा जाता था तथा पत्थरों के बीच में कीमती रत्न लगाये जाते थे। संगमरमर की दीवारों में पत्थर काटकर सुन्दर बेल-बूटें बनाये जाते थे तथा कटे स्थानों में जवाहरातों का प्रयोग किया जाता था।

बुन्देलखण्ड में भी जिन इमारतों का निर्माण, सल्तनकाल और मुगलकाल में हुआ, उनमें इसका व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है। मुख्य रूप से ओरछा, दतिया तथा ग्वालियर एवं अन्य देशी-रियासतों में अनेक इमारतों का निर्माण इस शैली से हुआ, किन्तु यहाँ कि यह विशेषता है कि कहीं पर यह पच्चीकारी चूने के प्रयोग से की गयी और कहीं पत्थर काटकर। कालिंजर दुर्ग में राजा अमान सिंह के महल के बाहरी भाग में इसी प्रकार की पच्चीकारी का प्रयोग किया गया। इसी कला का एक दूसरा उदाहरण पाथर-कछार में वेश्या की मजार में देखा जा सकता है। बुन्देलखण्ड में अनेंक हिन्दू मन्दिर, दरगाह, मकबरे, मस्ज़िद, महल तथा अन्य स्मारक इस कला से प्रभावित हैं।

बुन्देलखण्ड की संगीत पद्धति पर इस्लाम का प्रभाव :-

मानव के बौद्धिक विकास के साथ उसे मनोरंजन की आवश्यकता का अनुभव हुआ। वह अपनी हार्दिक प्रसन्नता को व्यक्त करने के लिए झूमना, उचकना तथा जोर से शोर करके प्रकट करता था, लेकिन संगीतकार यह मानते है कि संगीत का उदय नारद से हुआ तथा भगवान शिव ने डमरू और रुद्र वीणा का अविष्कार करके पाँच रागों की उत्पत्ति की तथा छठा राग पार्वती के मुख से उत्पन्न हुआ। शिव से उत्पन्न राग, भैरव, हिंडोल, मेघ, दीपक, तथा श्री राग है तथा पार्वती द्वारा अन्वेशित राग कौशिक राग है। इसके बाद इस संगीत को गंर्धव, यक्ष, पतंग, उरग, सिद्ध, साध्य, विद्याधर, देवताओं तथा अप्सराओं ने अपनाया। दामोदर पंण्डित ने सन् 1625 ई० में संगीत दर्पण नामक ग्रन्थ की रचना की थी, इसमें उन्होंने संगीत की उत्पत्ति ब्रह्मा से मानी, यथा-

द्रुहिणेत यदन्विष्टं प्रयुक्तं भरतेन च।
महादेवस्य पुरतस्तन्मार्गारव्य विमुक्तदम्।।[201]

कुछ विद्वान यह स्वीकार करते है कि, पशुओं और जानवरों के स्वर से संगीत का निर्माण हुआ। संगीतकारों का मानना है कि, मोर से षड्ज, चातक से ऋषभ, बकरे से गांधार, कौवे से मध्यम, कोयल से पंचम, मेढ़क से धैवत, और हाथी से निषाद् स्वर की उत्पत्ति हुयी।[202]

भारत वर्ष में शास्त्रीय संगीत की परम्परा अति प्राचीन प्रतीत होती है। ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार- गुप्त सम्राट समुद्र गुप्त ने संगीत को प्रोत्साहन दिया तथा उसकी मुद्राओं में उसका चित्र वीणा लिये हुए दर्शाया गया। यद्यपि मुसलमान धर्माचार्यो ने संगीत विद्या की निन्दा की थी, किन्तु सन् 1207 ई० से सन् 1526 ई० के मध्य, मुसलमान शासकों ने संगीत को प्रोत्साहन दिया। शर्की राजवंश के शासकों और मालवा के शासक बाज बहादुर ने अपने दरबार में संगीतकारों को स्थान दिया। बाबर भी एक अच्छा संगीतकार था, उसने गायन कला में एक पुस्तक भी लिखी थी, उसका पुत्र हुमायूँ भी संगीतकार था, अकबर भी भारतीय शास्त्रीय संगीत को पसंद करता था। अबुल फजल के अनुसार- ''सम्राट संगीत पर अधिक ध्यान देते है और इस चित्तार्कषक राग का जो भी अभ्यास करता है, उसकी पूरी-पूरी सहायता करते है।[203] इस युग में अच्छे गायक को प्रोत्साहन दिया जाता था तथा अबुल फज़ल ने आइने अकबरी में 36 गायकों का उल्लेख किया है- तानसेन इस युग का श्रेष्ठ गायक था, पहले यह गायक कालिंजर और मड़फा नरेश रामचन्द्र बघेल के राज्य में रहता था, वह सन् 1562-63 में अकबर के दरबार में चला गया।

बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत ग्वालियर नरेश मानसिंह तोमर ने सन् 1483 तथा 1518 में मध्य एक संगीत विद्यालय खोला, यहाँ नवीन राग रागनियों का अविष्कार किया गया। इस युग का दूसरा गायक बैजू बावरा था, यह भी बड़ा विख्यात् गायक था।

अकबर के समान जहाँगीर भी संगीत का प्रेमी था, वह भी संगीतकारों को अपने दरबार में रखता था और उन्हें पुरस्कार देता था। इकबालनामा-ए-जहाँगीरी नामक पुस्तक में छः अत्यन्त प्रसिद्ध दरबारी गायकों के नाम दिये हुये हैं। सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान विलियम फिंच के अनुसार- ''सैकड़ों गायक और नर्तकियाँ रात-दिन दरबार में उपस्थित रहते थे, क्योंकि अपनी बारी-बारी के अनुसार सप्ताह में कई बार नाचा-गाया करते थे। वे सम्राट व उनकी बेगमों को गाना सुनाने के लिए सदैव तैयार रहते थे, चाहे उन्हें किसी समय भी गाना गाने के लिए महल बुला लिया जाय। वहाँ उन्हें उनकी योग्यता के अनुसार पारितोषिक मिलता था।[104]

शाहजहाँ भी संगीत का प्रेमी था। उसके दरबार में भी अनेक संगीतकार रहा करते थे। वह सोने से पूर्व रोज संगीत सुना करता था, दिवाने-खास में प्रतिदिन संगीत और मनोरंजन के कार्यक्रम होते थे, जिनमें सम्राट भी भाग लेता था। यदुनाथ सरकार के अनुसार -''अनेक शुद्धात्मा, सूफी फकीर तथा संसार से सन्यास लेने वाले साधु-सन्त भी उसका गाना सुनकर सुध-बुध विसार देते थे और परमानन्द में लीन हो जाते थे।''[205] इसके दरबार में रामदास और महापात्र दो महान गायक थे, तद्युगीन संस्कृत राजकवि जगन्नाथ ने उनकी गायन विधा से प्रसन्न होकर उन्हें स्वर्ण दान में दिया था।

जब औरंगजेब मुगल सम्राट बना, उस समय उसने 10 वर्ष तक संगीत और कला को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया, उसके दरबार में भी अच्छे गायक थे। मअस्तरे आलमगीरी का लेखक सकी

मुस्ताइद खाँ लिखता है कि "औरंगजेब के दरबार में अच्छे-अच्छे संगीतज्ञ थे और सम्राट कभी-कभी उनका गाना-बजाना सुना करता था।"[206] कालान्तर में औरंगजेब को संगीत से नफरत हो गयी, जिससे प्रभावित होकर संगीतकारों ने संगीत की अर्थी निकाली। संगीतज्ञो का रोना-चिल्लाना सुनकर उसने संगीतकारों से पूछा कि तुम लोग क्यों रो रहे हो, उस पर संगीतकारों ने उत्तर दिया कि आपने ने अपने दरबार से संगीत को निकाल दिया है, इसलिए उसे दफनाने जा रहे है। इस पर औरंगजेब ने जबाब दिया- संगीत की आत्मा की मुक्ति के लिए प्रार्थना कर, उसे खूब गहरा गाड़ना।[207]

बुन्देलखण्ड के संगीत में इस्लामी संस्कृत का प्रभाव :-

बुन्देलखण्ड में संगीत और गायन विद्या अत्यन्त प्राचीन है, किन्तु यह विद्या किसी शास्त्रीय विधा मे बंधी नहीं थी। यहाँ पर निवास करने वाले आर्य और अनार्य लोग अपनी लोक परम्पराओं के अनुसार संगीत विद्या को अपनायें हुए थे, इसे लोक संगीत पद्धति का नाम दिया गया। इस सन्दर्भ में डा० अरुणेन्द्र चौरसिया (शोध कार्य, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) के मतानुसार- यहाँ का लोक संगीत तीन भागों में विभाजित था- संगीत गायन, संगीत वादन तथा संगीत नृत्य।[208]

संगीत गायन :-

यहाँ का संगीत गायन तीन भागों में विभाजित था, पहला धर्म संस्कार पर, दूसरा सामाजिक संस्कार पर तथा तीसरा जातिगत गायन पर आधारित था। धर्म से सम्बन्धित लोक-संगीत, धार्मिक तीज-त्योहारों में गाये जाते थे, मुख्य रूप से नवरात्रि के अवसर पर देवी गीत गाने की परम्परा थी, इसके अतिरिक्त देवी-पूजन, बधाई गीत भी गाये जाते थे। अन्य धार्मिक अवसर पर लोक-भजन गाने की परम्परा थी, लोक भजन का एक उदाहरण इस प्रकार है :-

राम भज लैयो रे - कपट मन छोड़ के।
आये यमराज जबहिं - फांसी डारी डोर से।
कोटन करे उपाय - ले गये वे मरोर के ! राम..... !
माता, भाई, बंधु बैठे है-बैठे है सब घर के।
हंसराज वो निकल गओ है-टटिया सी टोर के। राम.... !
काठ की एक घोड़ी बनी-डोली सी सजाय के।[201]

जब सामाजिक संस्कार सम्पन्न होते थे, उस समय सोहर, विवाह गीत, मुंडन तथा कर्णछेदन आदि के गीत गाये जाते थे। ये गीत बड़े ही सरस होते थे, यथा-

ऊपर गगन पहरायें हो,
गोरी धना कुआँ पूजन को निकली।

इसी प्रकार जातीय गीतों का प्रचलन भी बुन्देलखण्ड में बहुत अधिक था। इस परिक्षेत्र में कुम्हारों के स्वांग, धोबियों का कुडाला नृत्य, ढीमरों की ढिमराई तथा बेड़िनियों का राई नृत्य बहुत लोकप्रिय था। इनके गायन की विद्या भी बहुत मनोरंजक थी, इसके अतिरिक्त सामाजिक गीत

गाने की भी परम्परा थी। सामाजिक गीत का एक उच्च कोटि का उदाहरण -

मोखों जो दुःख दूनो हो गओ सैंया-सौत घरे जब आई।
जब से आई सौत हमारी-नैनन नींद चली गई सारी।
देखत मोय लगी बीमारी-अब आशा नैयाँ बचवे की-चाहे करो दवाई।
मोखो..................।[202]

ये लोकगीत एकल, युगुल और वृन्दगीत के रूप में गाये जाते थे।

बुन्देलखण्ड के लोक वाद्य :-

बुन्देलखण्ड में प्रचलित लोक संगीतों में तीन प्रकार के लोक बाद्यों का प्रयोग होता था। ये वाद्य फूंक कर, ठोक कर, तथा तारों से युक्त यन्त्रों से बजाये जाते थे, इन वाद्यों में ढोलक, मंजीरा, मृदंग, हुणक, धींचा, केकड़ा, बीन, बांसुरी तथा पत्ते से निर्मित बीन का प्रयोग होता था। इसके अतिरिक्त विविध सुअवसरों में ढोल, नगाड़े, नगड़िया, रमतुल्ला, शहनाई, और तुरही का प्रयोग भी होता था। कालान्तर में इसमें ढ़पली, ढप, खंजली, चमीटा आदि शामिल हो गये।

नृत्य कला :-

इस परिक्षेत्र में नृत्य कला भी काफी विकसित थी, इस नृत्यकला में एकल नृत्य, युगुल नृत्य तथा वृंद नृत्य शामिल थे। इन नृत्यों का कोई शास्त्रीय आधार नहीं था, बल्कि ये अपनी जातीय आधार और स्थानीय आधार पर विशिष्ट अवसरों पर प्रस्तुत होते थे। बुन्देलखण्ड में राई, ठिमराई, कहरमाई, धुबयाई, दिवारी, जवारा, होली नृत्य आदि काफी प्रचलित थे। मुख्य रूप से स्त्रियाँ धार्मिक स्थलों और वैवाहिक अवसरों पर विशिष्ट नृत्य प्रस्तुत करती थी। नृत्य के साथ गीत गायन तथा वाद्ययन्त्रों का प्रयोग होता था।

इस्लाम के आगमन के पश्चात्, बुन्देलखण्ड में संगीत विद्या में व्यापक परिवर्तन हुआ। सर्वप्रथम कालिंजर नरेश रामचन्द्र वघेल ने संगीत कला को अपने यहाँ प्रोत्साहित किया। ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार, बुन्देलखण्ड के महान संगीतज्ञ तानसेन इन्हीं के दरबार में रहते थे। ग्वालियर नरेश राजा मानसिंह ने संगीत को प्रोत्साहित करने के लिए संगीत विद्यालय की भी स्थापना की थी।

इसके पूर्व भी चन्देल नरेशों ने अभिनय कला को प्रोत्साहित किया था। प्रबोध चन्द्रोदय नाटक का मंचन चन्देलवंश के यशस्वी सम्राट कीर्तिवर्मन के राजभवन में अभिनीत हुआ। इसका मंचन दरबारी सामंत गोपाल ने कराया, यह नाट्य शास्त्र का ज्ञाता था।[211] अनेक स्थलों पर चन्देल युग में रंगशालाओं का निर्माण हुआ। बड़े-बड़े मंदिरों में, नृत्य और संगीत की प्रस्तुती के लिए संगीत शालाओं का निर्माण किया गया था। खजुराहों के कन्धारियाँ मन्दिर में इसके उदाहरण आज भी देखे जा सकते है। इसके अतिरिक्त जंगल, उपवन, निर्झर, उद्यान, नदी तट, पहाड़ी, वनपथ, मरुभूमि, खेत, भवन की अभिव्यक्ति पात्रों द्वारा व्यक्तिगत रूप से कर दी जाती थी।[212]

सुप्रसिद्ध इतिहासकार केशव चन्द्र मिश्र के अनुसार,-नृत्य स्वतन्त्र कला के रूप में

विकसित हुआ था। अभिनय के साथ उसका अंग-स्वरूप तो वह था ही। सार्वजनिक स्थान और गोष्ठी गृहों में ऐसी कलाओं का प्रदर्शन होता था। सार्वजनिक विनोद के रूप में संगीत और नृत्य सबसे शिष्ट और उत्तम कला मानी जाती थी। संगीत सर्वाधिक लोकप्रिय कला थी।[213] प्रबोध चन्द्रोदय नाटक से यह ज्ञात होता है कि कला की दृष्टि से संगीत के अनेक वर्गीकरण हुए थे। नाटकों में नृत्य के लिए प्रचुर अवकाश दिया जाता था।[214]

मुसलमानों के इस परिक्षेत्र में आने के पश्चात् संगीत के क्षेत्र में अनेक परिवर्तन हुए, यह परिवर्तन गायन, वादन और नृत्य तीनों क्षेत्र में हुए। एक सुप्रसिद्ध विद्वान ने बुन्देलखण्ड की संगीत विद्या को यूरोपीयन संगीत विद्या से श्रेष्ठ ठहराया है और उसकी प्रशंसा इसरूप में की है-

"In the European music there is no such thing as a system or Rag where as a Hindu,Who has an elementary knowledge of music, will at once recognise the rog, which the artist sings, and single misplaced note jars on his ear". [215]

उपरोक्त कथन से यह सिद्ध होता है कि, बुन्देलखण्ड में भी शास्त्रीय संगीत इस्लाम के आगमन के बाद ही विकसित हुआ, यहां पर मुख्य रूप से भैरव, ख्याल, ठुमरी, भैरवी, मल्हार बागेश्वरी, ध्रुपद, धमार आदि गाने की परम्परा थी। भैरव राग के सन्दर्भ में यह श्लोक अत्यन्त प्रसिद्ध है :-

गंगाधरः शशिकला तिलकास्त्रि नेत्रः
सर्पैं विभूषित तनु गर्ज कृतिवासा।
भारच त्रिशूल कर एष नृमुंड धारी
शुभ्राम्बरा जयति भैरव आदि रागः। [216]

इस परिक्षेत्र में, तानसेन का जन्म सन् 1549 ई० में ग्वालियर के सन्निकट बेहट ग्राम में मकरन्द पाण्डेय के यहां हुआ था। तानसेन ने मियॉ- मल्हार नाम की नयी राग को जन्म दिया था तथा राग माला नामक ग्रंथ की रचना भी की थी। किराना धरानें के द्वारा ठुमरी राग का विकास किया गया। शास्त्रीय संगीत को उच्च्य धरातल पर पहुँचाने में दतियाँ नरेश और झांसी रियासत का महान योगदान है। गंगाधर राव के जमाने मे यहां संगीतकारों को प्रोत्साहन दिया गया तथा उन्होंने एक नाटक कंपनी भी खोली। दतिया नरेश महाराजा भवानी सिंह के दरबार में भी सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ लाला राम बुन्देलखण्डी रहा करते थे वे लेद, डिगाई और दादरे के महान ज्ञाता थे। बाँदा के सुप्रसिद्ध गायक व वादक कुदऊ महाराज पखावज और मृदंग के सिद्धहस्त कलाकार थे। लाल राम पंडा, गंगा प्रसाद पाठक, श्याम बाबू पाठक तथा रामप्रसाद पंडा भी अच्छे संगीतज्ञ थे। श्री प्रियदत्त पस्तोर, तानपुरा और सारंगी के ख्याति प्राप्त वादक थे।

बुन्देलखण्ड में, मृदंग के स्थान पर तबला और वीणा के स्थान पर सारंगी मुसलमानों की ही देन थी। झाँसी के उस्ताद आदिल खाँ भी प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। यहाँ पर ठुमरी और लेद के

साथ ख्याल की गायकी भी प्रारम्भ हो गयी थी। दतियां में पंवारी गायकी का भी विकास हुआ था। इस परिक्षेत्र में आल्हा गायकी का भी शुभारम्भ नई संगीत शैली में हुआ था। एक तद्‌युगीन बुन्देलखण्डी लोकगीत इस प्रकार है -

मैं कैसे होली खेलूंगी सांवरिया के संग-रंग
अन्तरा- कोरे कोरे कलश मंगाये जामें घोला रंग
भरि पिचकारी मुख पर मारी चोली हो गई तंग
रंग में कैसे..।[217]

इसी प्रकार उर्दू शैली के गीत भी लोकप्रिय हो रहे थे, इसका उदाहरण इस प्रकार है-

तरकारी ले लो मालिन तो आई बीकानेर की
गाजर की तो तोप बनाई और मूली का दरवाजा
शकरकन्द की तोप बनाई लड़े फिरंगी राजा।[218]

इस प्रकार हम देखते है। कि बुन्देलखण्ड में इस्लामी संस्कृति ने यहाँ की संगीत विद्या को भी प्रभावित किया है जिसके कारण अनेक परिवर्तन हुआ।

बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होने वाले इस्लाम धर्म से सम्बन्धित ऐतिहासिक साक्ष्य

11वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बुन्देलखण्ड इस्लाम से परिचित हुआ।तत्कालीन समय के अनेको ऐतिहासिक साक्ष्य विभिन्न रूपो में सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड की सीमा के अन्तर्गत देखने को मिलते है। सुप्रसिद्ध उर्दू साहित्यकार एवं अन्वेषक श्री एहसान कुरैशी उर्फ ''आवारा बानवी'', सुप्रसिद्ध इतिहासकार इलियास मगरबी तथा बुन्देलखण्ड के सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री राधा कृष्ण बुन्देली के कुशल दिशा निर्देशन में मैने इस क्षेत्र के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्मृति चिन्हो को प्रत्यक्ष रूप से देखा तथा गहन अध्ययन के बाद में मैने पाया कि, वास्तुशिल्प और निर्माण शैली की दृष्टि से इन पुरावशेषों में इस्लाम धर्म का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है तथा इसके निर्माण में भारतीय शैली के साथ उत्तर और पश्चिम एशिया की निर्माण शैली का प्रभाव भी देखने को मिलता हैं। इन्हें हम निम्न श्रेणियों में वर्गीकृत करते है।

युद्ध स्मारक :-

जब चन्देल नरेश गंडदेव का शासन जेजाकभुक्ति में था, उस समय सन् 1021-22 ई० मे कालिंजर में महमूद गजनवी का आक्रमण हुआ था। उसने महमूद गजनवी के आक्रमण का मुकाबला 36 हजार पैदल, 45 हजार सवार और 640 हाथियों से किया था, बाद में इसकी संधि महमूद गजनवी से हुयी।[219] महमूद गजनवी ने कालिंजर दुर्ग की बड़ी प्रशंसा की तथा इसने कालिंजर

दुर्ग के प्रवेश द्वार को काफिर घाटी की संज्ञा दी। कालिंजर के समीप कालिंजरी पहाड़ी में एक विशाल कब्रिस्तान उपलब्ध हुआ है, जिसे तद्युगीन युद्ध स्मारक के रूप में जाना जाता है। चन्देल राजा परमार्दिदेव के समय में, कुतुबुद्दीन ऐबक ने वि० सं०-1260 में कांलिजर पर चढ़ाई की तथा इस दुर्ग को जीत लिया था। पं० गोरेलाल तिवारी के अनुसार-इसके पश्चात् यह किला कुतुबुद्दीन ने ले लिया, पर पीछे से मुसलमानों ने मंत्री को भी मरवा डाला और मंदिरों को गिरवाकर उसके स्थान पर मस्जिदें बनवाई।[220] जनरल ए कनिंघन के अनुसार,- चन्देल वंश का अंतिम राजा कीर्ति सिंह चन्देल था, उसका युद्ध शेरशाह सूरी से हुआ था तथा यह नरेश युद्ध में मारा गया। उसके पश्चात् यह शेरशाह सूरी के हाथ में चला गया था, इस युद्ध के पश्चात् शेर-शाह सूरी की मृत्यु भी कालिंजर में हुयी। उसके समय के अनेक स्मारक कालिंजर में उपलब्ध होते है।[221] इसी प्रकार के स्मारक शिवपुरी, ग्वालियर, दतियाँ, झांसी, ओरछा, जबलपुर, बटियागढ़, कालपी, जैतपुर में भी उपलब्ध होते है। हमीरपुर जनपद में सन् 1182 के कुछ युद्ध स्मारक, मकबरे के रूप उपलब्ध हुए, ये किले का बाहर है। इसी प्रकार कालपी में भी अकबर के जमाने के कुछ युद्ध स्मारक उपलब्ध होते है।[222] झांसी जनपद में अमरगढ़, कबीना, बालबेहट, बनगरा, बानपुर, बांसी, बडा गांव, बरुआसागर, भद्वारा, भडौच, बीजागढ़, चांदपुर, चिरगांव, देवगढ़, दहौररा, गहरहा, गरौठा, गुरसराय, हैबतपुर, जखलौन, झांसी, कोंच, करगवां, लोहागढ़, मदनपुर, मदौरा, मऊरानीपुर, मोठ, नरहट, पठार, पचवारा, पाली, पांवा, पुंच, रानीपुर, रोनी, रोरा, समथर, सिरोन खुर्द, सोनराई, तालबेहट, घनवारा, आदि स्थलों में अनेक ऐसे स्थल है, जिनका सम्बन्ध उन युद्ध स्मारकों से है जिन्हें मुसलमान शासकों ने प्रभावित किया था।

जनपद जालौन में भी अनेक स्थलों पर तद्युगीन युद्ध स्मारक उपलब्ध होते है, यह स्मारक अकबरपुर, आटा, भदेख, जगमनपुर, जालौन, कदौरा, कलियां, कालपी, कनजौसा, खाकसिस, कोंच, कोटरा, माधवगढ़, मऊ, नादिया गांव, उरई, पराशन, रामपुरा, सैय्यद नगर, शैलयारा आदि स्थलों के कुछ भागों में उपलब्ध होते है।

बाँदा जनपद में औगासी, बबेरू, बदौसा, बगरेही, कर्वी, बाँदा, बरगढ़, कालिंजर, कल्याणपुर, कमासिन, मड़फा, मऊ, नरैनी, पैलानी, रसिन, शेरपुरसिहोड़ा, तथा तिन्दवारी में तद्युगीन युद्ध स्मारक उपलब्ध होते है। इन युद्ध स्मारकों का सम्बन्ध 12वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक है। बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में बाहरी आक्रमणकारियों के अतिरिक्त सुल्तानों और अनेक मुगल बादशाहों ने आक्रमण किये थे, उनके समय के युद्ध स्मारक अभी तक इस परिक्षेत्र में ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में उपलब्ध होते है।

धार्मिक स्थलः- बुन्देलखण्ड में इस्लाम के आगमन के पश्चात् अनेक धार्मिक स्थलों का निर्माण हुआ। पत्थरों के स्थान पर ककई ईट और चूने का प्रयोग किया गया तथा बाहरी दरवाजों में

चूनें से ही पच्चीकारी की गयी। 12वीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी तक के धार्मिक स्थल यहां सर्वत्र उपलब्ध होते है, ये दो प्रकार के है।

<u>हिन्दू धार्मिक स्थल :-</u> बुन्देलखण्ड में हिन्दू धार्मिक स्थल प्रत्येक क्षेत्र में उपलब्ध हो जाते है, यहां इनके पुरावशेष, स्तूप, मठ, मंदिर के रूप में उपलब्ध होते है। यहां के लोग धार्मिक भावनाओं को महत्व देते थे, इसलिए शैव, शाक्त, बौद्ध, जैन और वैष्णव मन्दिर सर्वत्र उपलब्ध होते है। ओरछा, खजुराहों, देवगढ़, चन्देरी आदि में अति प्राचीन काल के मंदिर है, खजुराहों के देव मन्दिर विश्व प्रसिद्ध है। इसी प्रकार कालिंजर का नीलकंठ मन्दिर, मड़फा का गौरीशंकर मन्दिर, पाथर-कछार का रक्त-दंतिका मन्दिर, यहीं का वैष्णव मन्दिर, चित्रकूट के सुप्रसिद्ध मन्दिर, मानिकपुर परिक्षेत्र के कल्याण गढ़ का मन्दिर, धारकुंडी मन्दिर, अमरावती का मंदिर, गौरीनाथ का मन्दिर, भरतकूप का मन्दिर, रौली गोंडा का मन्दिर, विलरियां मठ, फतेहगंज का वीरगढ़ देवी का मन्दिर, रसिन का चन्द्रा महेश्वरी मन्दिर, सिधौरा का देवी मन्दिर, विन्ध्यवासिनी का मन्दिर, बाँदा का बामदेव मन्दिर, पैलानी का कालेश्वर मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध मन्दिर है। इसी प्रकार झांसी का शिव मन्दिर, गणेश मन्दिर, रघुनाथ जी का मन्दिर, लक्ष्मी जी का मन्दिर, मुरली मनोहर मन्दिर, गणेश मन्दिर, रघुनाथ जी का मन्दिर, लक्ष्मी का मन्दिर, मुरली मनोहर मंदिर अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसी प्रकार ओरछा के चर्तुभुज भगवान का मन्दिर, रामराजा का मंदिर, कालपी का लक्ष्मीनारायण मन्दिर, यहीं का किला घाट मन्दिर, सैदनगर का रक्तदंतिका मंदिर, कोंच का रामलला का मन्दिर, दतिया का बलखण्डेश्वर महादेव मन्दिर, बड़े गोविन्द जी का मन्दिर, बडौनी दतियां का गुप्तेश्वर महादेव मन्दिर, मैहर का शारदा देवी मन्दिर, टीकमगढ़ का कुड़ेश्वर मन्दिर, पन्ना का स्वामी प्राणनाथ मंदिर, युगुल किशोर कृष्ण भगवान का मन्दिर इस मन्दिर के सन्दर्भ में यह कहावत है कि, इस मंदिर का निर्माण विक्रम संवत 1813 में हुआ और वृंदावन से उसकी मूर्तियां पहले ओरछा लायी गयी, उसके पश्चात् पन्ना में स्थापित हुयी, इस मंदिर के सन्दर्भ में एक कवि का कथन है :-

दो बेर-द्वारिका त्रिवेणी तीन बेर-जाय,
चार बेर काशी अंग-अंग के नहाये ते।
पाँच बेर गया जाय छै बेर नीम खार,
सात बेर पीकर जो आचमन करायें ते।
कामनाथ, जगन्नाथ, बद्री केदारनाथ,
दशा सुमेर दस बार पग धाये ते।[223]

उरई का ठडेश्वरी देवी का मन्दिर, उन्नाव जिला दतिया का सूर्य मंदिर, जालौन का जलहाले की देवी का मन्दिर, नावलीबगला का देवी मन्दिर, पृथ्वीपुर का वीर सागर मन्दिर, जबलपुर का गौरी शंकर मन्दिर, जबलपुर का चौसठ योगनी मन्दिर, अमरकंटक का अमरनाथ महादेव मंदिर, राठ का हनुमान जी का बड़ा मन्दिर, राठ का मार्कन्डेश्वर मंदिर, ओरछा का भगवान लक्ष्मीनारायण

का मन्दिर, पन्ना का राम जानकी मंदिर, दमोह जनपद के बादक पुल का जागेश्वर शिव मंदिर, खजुराहो का कंदरिया महादेव मंदिर, बैरागढ़ का शारदा देवी मंदिर, गड़ कुडार का (झांसी) निन्द वाहिनी मंन्दिर।

ये मंन्दिर बुन्देलखण्ड के सुप्रसिद्ध मंदिर है। इन मंदिरों का निर्माण चन्देल युग से लेकर 17वीं शताब्दी और उसके बाद तक हुआ। इनकी निर्माण शैली भारतीय वास्तुशिल्प और तुर्की वास्तुशिल्प का सम्मिश्रण है। इन मंदिरों को देखने से यह पता लगता है कि, वास्तव में बुन्देलखण्ड की धार्मिक भावना बहुदेववाद पर आधारित थी, जिनमे अन्य संस्कृतियों का प्रभाव देखा जा सकता है।

इस्लाम धर्म से सम्बन्धित धार्मिक स्थल :-

मस्जिदें:- हिन्दुओं की भांति मुसलमानों के लिए मस्जिद बहुत पवित्र होती है, इस स्थान में प्रतिदिन पांचों वक्त की नवाज अदा की जाती है। इन लोगों ने खुदा पर यकीन रखते हुए अनेक स्थलों में मस्जिदों का निर्माण किया और उसके लिए यह कहा जाता है :-

है अगर नाम ख्वाहिश, तो ये असबाब बना।
पुल बना, चाह बना, मस्जिदों तालाब बना।[224]

श्री मोतीलाल त्रिपाठी 'अशान्त' के अनुसार- भारत में हिन्दू काल स्वर्णिम काल था। इस काल के वैभव का लोहा सारा विश्व मानता था। इसके पश्चात् मुस्लिम काल या मुगल काल आया और इस काल की छाया में भारत में मुसलमानी एवं मुगलकालीन सभ्यता का विकास हुआ, इसी से सम्बन्धित भवनों, इमारतों और मस्जिदों का निर्माण हुआ, जो उस काल के वैभव के प्रतीक है।[225]

बांदा जनपद में कालिजर दुर्ग के ऊपर ब्यंकटेश्वर मंदिर तथा नील कंठमंदिर के समीप मजार ताल में एक अति प्राचीन मस्जिद उपलब्ध हुयी है, इसी प्रकार कालिंजर दुर्ग के नीचे कालिंजर बस्ती में कामता फाटक के समीप एक प्राचीन मस्जिद है। कालिंजर के ही सन्निकट बहादुरपुर, सिमौनी, तेरा-पतौरा, गोरेपुरवा, फतेहगंज, पाथरकछार, बदौसा, कर्वी, मानिकपुर, हरदौली, बबेरू, चिल्ला और पैलानी में सर्वाधिक मस्जिदें, ऐतिहासिक महत्व की है। बांदा गजेटियर के अनुसार, किसी जमानें में शेरपुर सिंहोड़ा में 700 से अधिक मस्जिदे थी, यह स्थल बाँदा से 24 किमी० दूर है, अकबर के जमानें में यह क्षेत्र बहुत अधिक विकसित हुआ तथा इलाहाबाद और कड़ा सूबे के अन्तर्गत यह प्रशासनिक क्षेत्र आता था। खान जहॉन लोदी ने सन् 1622 तथा मोहम्मद खान बंगश ने यहाँ 1727 ई० में अपना अधिकार जमाया था, उसी के जमाने में अनेक मस्जिदों का निर्माण भी हुआ।[226]

झांसी जनपद में ये मस्जिदें झांसी, बड़ागांव, मोठ, गुरसराय, मऊ, बानपुर, चंदेरी, दूधियां, चांदपुर, तालबेहट, हैबतपुरा, कोंच, ललितपुर, तथा समथर में उपलब्ध होती हैं। वर्तमान समय में

महारानी लक्ष्मी बाई के समय की पुरानी मस्जिद सबसे प्रसिद्ध है, यह बिसाती बाजार में स्थित है। एक बहुत प्रसिद्ध मस्जिद ओरछा में भी है, इसके अतिरिक्त झांसी में सत्तार बाबा की मस्जिद बहुत अधिक प्रसिद्ध है। देखने में यह मस्जिद सात खण्ड की है और कुतुबमीनार की तरह लगती है, हुमायूँ ने चन्देरी जाते समय इस मस्जिद में विराम किया[227] हुमायूँ ने भी यहां पर एक मस्जिद बनवायी थी। एरच में बुन्देलखण्ड की सबसे प्रसिद्ध मस्जिद है, जिसे जामा मस्जिद के नाम से जाना जाता है। इस मस्जिद का निर्माण हिजरी सन् 711 में मोहम्मद गौरी के राज्यपाल कांची जियाउद्दीन ने करवाया था। इस मस्जिद के सन्निकट महमूद गजनवी ने भी एक धार्मिक स्थल का निर्माण कराया था, इसका पता मस्जिद में लिखे इस अभिलेख से मिलता है :-

दर हुमायूँ नौबते फ़रमान्दह किश्वर सितां
जिल्के हक सुल्ताने दी महमूद दराए जहाँ।
ओ जहाँगीर किबहते इज्जत इस्लाम अजनियाम,
मीकुशद तेगे ज़फर हरसाल दर हिन्दोस्ताँ।
यादे यारब दायम अन्दर मुल्क गेती जाते शाह,
चूं सिकन्दर कामगारों चूँ सुलेमा कामराँ।
वालिये इकताए ऐरच खाने लश्कर काश 'जुनेद'
कज़ उल्लवे मंजिलत वदखर्च हम जेरी नेरा।
हम विरादर हम मदारे मुल्क हम दस्तूरे शाह,
हम पनाहे दौलतों हम मुमलिकत रा पासवाँ।
नू नया फरमुदाई खौरे मुअज्जम राजे सर,
बाचुनी गुँबद किदर आलम कसे बादीद साँ।
करद फरमायश दरी काज़ी जियाउद्दीकिऊ,
हस्तखाने मुमलिकत रा नायवो हम कारवाँ।
शुद बिना अज़ औने हक़दार जुमा चहारूम अजरजब,
सोले हफ्सद याज़दह आज हिज़रते खैरुज्जमा।
अजबराए नज्मई लू लू मुबारक बन्दावी,
करद गब्बासी दरी दरिया चुनी तबएरिसाँ।
ई इमारत राव वानी रा खुदा या अजकरम,
दादे दर दुनियाँ व दी इज्जोनुसरत शादमाँ।[228] (हिन्दी तर्जुमा)

एक बहुत प्रसिद्ध ऐतिहासिक मस्जिद महोबा में भी स्थित है। यह तुर्ककालीन जामा मस्जिद है, इसका निर्माण हिजरी संवत् 722 में सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक ने कराया था। इस मस्जिद में भी इस प्रकार का एक अभिलेख उपलब्ध हुआ-

बफ़्ज्जे एज़दी आमद बशारत,
कि मसजिद दर महोबा शुद इमारत।
व अहदे शाहे हफ्ते अकसीम,
मदारे मुमलिकत कुल आये असलीम।
गयासुद्दीन दुनियाँ दौरे अंजुम,
फ़लक़ दरगाहे तुगलक़ शाहे आलम।
जहादारी कुनद खा़म करदा खान्जर,
शहद ज़व्ते मुमालिक चूँ सिकन्दर।
फलक शाँ दरज़माना कुमरियाँ वाद।
वगेती तख्तो मुलकश, जवदाँ वाद।
मकीना वन्दए शाह न को नाम,
कि शुद दर नौवनिश मस्जिद वतमान।
मालिक ताजुद्दौला जा तख्ते दारद,
मुहम्मद खाल्के नीको इस्म अहमद।
ज़ वहरे तकिया ये चूँ वन कशीदा।
चूँ हफ्त सद फिजूँ शुदस्यह दौरास्त,
दरो दीवानों सहनो मसजिद आरास्त।
ज़ हिजरी दो खी आखरी बुवद,
कि शुद न इक दहमकी कारे असवद।[229] (हिन्दी तर्जुमा)

मोहम्मद तुगलक ने यह मस्जिद महोबा में मुहममद अहमद नामक विश्वासपात्र सरदार की देख-रेख में बनवायी थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि, बुन्देलखण्ड के प्रत्येक परिक्षेत्र में इस्लाम धर्म से सम्बन्धित महत्वपूर्ण इमारते उपलब्ध होती है, अतः निश्चित ही इस परिक्षेत्र में इस्लाम धर्म ने अपना व्यापक प्रभाव डाला था।

दरगाहें :-

इस्लाम धर्म के माध्यम से जब सूफी संतों ने इस परिक्षेत्र मे अपना प्रभाव बढ़ाया, उस समय सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में अनेक सूफी सन्तों की दरगाहें निर्मित हुयी। बाँदा जनपद के कालिंजर परिक्षेत्र में, जब शेरशाह सूरी ने आक्रमण किया था, उस समय सात सैय्यद बन्धुओं ने अपनी कुर्बानी दी थी, उनकी स्मृति में ये दरगाहे कालिंजर, शेरपुर सिंहोड़ा, गोलेपुरवा, बाँदा, आदि में निर्मित हुयी। बांदा शहर के नवाब टैंक स्थित दरगाह, जामा मस्जिद के पास की गोल कोठी की दरगाह तथा कनवारा रोड में स्थित जरैली कोठी की दरगाह अत्यन्त प्रसिद्ध दरगाहे हैं।

झांसी जनपद में सुप्रसिद्ध बाबा जीवनशाह की दरगाह, बाबा खाकी शाह की मज़ार,

दिलबर शाह की मज़ार, दूल्हा सैय्यद की मज़ार तथा कुछ प्रसिद्ध इमामबाड़े है, इनमें एक विसातखाने में तथा दूसरा ओरछा दरवाजे के अन्दर स्थित है। ललितपुर में सदन शाह की दरगाह बहुत प्रसिद्ध है। जालौन जनपद में हजरत खुर्रम शाह की दरगाह है, यह मज़ार 250 वर्ष पुरानी है, इनका तकिया कोंच में है। ओरछा के सन्निकट अनेक पीरों की मज़ारे है, इसमें सैय्यद पीर की मज़ार सबसे प्रसिद्ध है। इस प्रकार की मज़ारे पूरे बुन्देलखण्ड में हर जनपद में उपलब्ध होती है, जो हिन्दू मुस्लिम एकता की प्रतीक भी है।

मकबरे अथवा मृत्युस्मारक :-

जीवन के अंतिम संस्कार के तरीके हिन्दू और मुसलमानों में अलग-अलग है, यहाँ पर अंतिम संस्कार तीन प्रकार से सम्पन्न होता है। हिन्दुओं में अविवाहित व कुष्ठ आदि रोगों से ग्रसित व्यक्तियों को मृत्यु के उपरान्त जल में प्रवाहित किया जाता है, इसी प्रकार विवाहित स्त्री-पुरुषों को मृत्यु के उपरान्त श्मसान भूमि में जला दिया जाता है। मुसलमानों में मृत्यु के उपरान्त मृत शरीर को जमीन के अंदर दफना दिया जाता है और उसके ऊपर कब्र बना दी जाती है। मुसलमानों का यह मानना है कि, कयामत के दिन खुदा अपने करिश्में से सब मरे बुतों को जिंदा करेगा, फिर उन्हें कर्मो के अनुसार द्वोजख और जन्नत देगा। कब्रिस्तानों को कब्रिस्तान के अतिरिक्त तक़िया के नाम से पुकारा जाता है तथा इन तकियों की देख-रेख करना फकीरों की जिम्मेदारी होती है। बांदा जनपद में, कालिंजर दुर्ग के ऊपर और नीचे राठौर महल के सन्निकट अनेक प्राचीन कब्रें है, इसके अतिरिक्त गोलेपुरवा के सन्निकट शेरशाह सूरी का मकबरा भी है। इसी प्रकार के मकबरे फतेहगंज, पाथर कछार, शेरशाह सिहोड़ा, बदौसा, तथा अन्य क्षेत्रों में भी उपलब्ध होते है। ये मकबरे, झांसी, जालौन, हमीरपुर, ललितपुर, दतियाँ, जबलपुर तथा ग्वालियर में सर्वत्र बिखरे पड़े है। ग्वालियर में तानसेन का मकबरा बुन्देलखण्ड का सर्वप्रसिद्ध मकबरा है, इसी प्रकार हिन्दुओं के भी अनेक मृत्यु स्मारक है- सबसे प्राचीन सती स्मारक एरण में उपलब्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त कालिंजर दुर्ग में, नीलकंठ मंदिर के समीप जौहरा नाम का मृत्यु स्मारक, बटियागढ़ का मृत्यु स्मारक 'सती चौरा', अजयगढ़ में सन् 1289 का सती स्मारक, दमोह में सन् 1365 का सती स्मारक, गुना के चौबीसी मन्दिर में वि०सं० 1350 का मृत्यु स्मारक, सतना जिले के ब्राह्मन गांव में वि०सं० 1404 का सती स्मारक उपलब्ध हुए हैं। इसमें से अधिकांश स्मारक इस्लाम के आगमन के उपरान्त के है।[230]

संयुक्त संस्कृति के स्मारक -

इस्लाम के आगमन के पश्चात् धार्मिक विवाद और संघर्ष को रोकने तथा हिन्दू और मुसलमानों में एकता स्थापित करने के लिये सूफी सन्तों, उदासी सम्प्रदाय के अनुयायियों, कबीर पंथियों, सतनामियों और प्रणामी सम्प्रदाय के साधु सन्तों ने संयुक्त रूप से प्रयत्न किये, जिनके अथक परिश्रम के कारण बुन्देलखण्ड में हिन्दू और मुसलमानों के बीच प्रेम भावना उत्पन्न हो पायी। ग्वालियर में तानसेन के मकबरे के अतिरिक्त गूंजरी महल, जहाँगीर महल, जौहर ताल आदि ऐसे

स्थल है, जिसमें हिन्दू और मुसलमानों दोनो ही आस्था रखते है। यही पर मोहम्मद गौंस का मकबरा भी है तथा इसी के पास रुद्रावतार की खंडित पाषाण प्रतिमा, विष्णु, सूर्य, महिषासुर, मर्दनी तथा अनेक शिव लिंग खण्डित अवस्था में है, इससे यह सिद्ध होता है कि, मोहम्मद गौंस का मकबरा किसी जमानें में हिन्दू धर्म से संबंधित था।

बुन्देलखण्ड के अनेक स्थानों में हिन्दू और इस्लाम संस्कृति के मिले-जुले पुरावशेष उपलब्ध होते है। इन पुरावशेषों में बाँदा के अन्तगर्त गुढ़ा के हनुमान मंदिर के समीप नौगवाँ की कबीर गद्दी का विशेष महत्व है, यह कबीर पंथियो का उपासना केन्द्र है। इसी प्रकार सिंहवाहिनी मंदिर के समीप कर्बला रोड की एक गली में उदासी सम्प्रदाय की एक गद्दी उपलब्ध हुयी है। यहाँ एक गुरमुखी भाषा में हस्तलिखित ग्रंथ भी मिला है। इसी प्रकार पन्ना में छत्रसाल के गुरु मेहराज ठाकुर अथवा प्राणनाथ का विशाल मन्दिर है। इस प्रकार के अन्य स्थल भी बुन्देलखण्ड में सर्वत्र उपलब्ध होते हैं, जो हिन्दू और इस्लाम धर्म को एकता के सूत्र में बाधने का प्रयत्न करते है।

दुर्ग-अवशेष-

बुन्देलखण्ड की तपोभूमि में अनेक महत्वपूर्ण दुर्ग उपलब्ध होते है। दुर्गो के अनेक उदाहरण बाल्मीकि रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों में उपलब्ध होते है, किन्तु ये गुप्त युग से लेकर चन्देल युग तक के है। चन्देल राज्य में 8 दुर्ग महत्वपूर्ण थे, इनमें कालिंजर का दुर्ग सर्वाधिक प्राचीन है। इस दुर्ग का निर्माण लगभग ईसा की दूसरी तथा तीसरी शताब्दी में हुआ, कुछ लोग इसे शिशुपाल द्वारा बनवाया मानते है, लेकिन नवीन ऐतिहासिक खोजों के अनुसार, इस दुर्ग का निर्माण 7वीं शताब्दी में हुआ। इस दुर्ग का निर्माता केदारवर्मन था, इसकी दोस्ती फारस के बादशाह अफरासयाव से थी।[231] कालिंजर दुर्ग के अतिरिक्त अजयगढ़, खजुराहों, मनियांगढ़, मदनपुर, बिलहरी, देवगढ़, मंगलगढ़, सिरसागढ़, बैरागढ़, मड़फा, कल्याणगढ़, पथरीगढ़, वीरगढ़, आदि चन्देलों के आधीन थे। चन्देलों के पश्चात् गौड़वंशीय राजाओं का विस्तार हुआ, इन राजाओं का राज्य विस्तार इस्लाम के आगमन के पश्चात् बुन्देलखण्ड में हुआ। प्रारम्भ में इन्होंने अपना राज्य नर्मदा नदी के दक्षिण तथा वर्धा नदी के उत्तर में स्थापित किया, बाद में इनके राज्य का विस्तार देवगढ़ और दुधई चाँदपुर तक हो गया।[232] इनके राज्य में 52 गढ़ थे, जो इस प्रकार है-

(1) गढ़ा (2) भारुगढ़ (3) पंचोलगढ़ (4) सिंगोरगढ़ (5) अमौदा (6) बगमार (7) टीपागढ़, (8) रामगढ़ (9) परतापगढ़ (10) अमरगढ़ (11) देवहार (12) पाटनगढ़ (13) फतेहपुर (14) निभुवागढ़ (15) भँवरगढ़ (16) बरगी (17) घुनसौर (18) चौराई (19) डोंगर ताल (20) करवागढ़ (21) झंझनगढ़ (22) लांकागढ़ (23) सांतागढ़ (24) दियागढ़ (25) बांकागढ़ (26) पवई क़रही (27) शाहनगर (28) धमौनी (29) हटा (30) मड़ियादों (31) गढ़ाकोटा (32) शाहगढ़ (33) गढ़ पहरा (34) दमोह (35) रहली (36) इटावा (37) खिमलासा (38) गनौर (39) बाड़ी (40) चौकीगढ़ (41) राहतगढ़ (42) भकरही (43) कारोबाग (44) कुरबाई (45) रायसेन

(46) भँवरसो (47) भोपाल (48) उपदगढ़ (49) पनागढ़ (50) देवरी (51) कनौजा (52) गौरझामर नामक दुर्ग गौड़ साम्राज्य के आधीन थे तथा इनका अस्तित्व रानी दुर्गावती के समय तक रहा, रानी की मृत्यु के बाद गौड़ साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।[233]

अनेक दुर्गो का निर्माण बुन्देला शासकों ने भी कराया था, इन दुर्गो में रनगढ़, ओरछा, टीकमगढ़, बड़ागांव, गड़कुंडार, कुंडेश्वर, बल्देवगढ़, झांसी, बडौनी, दतियाँ, पन्ना, छतरपुर, तथा राजनगर आदि थे। लगभग 270 छोटे-बड़े दुर्ग पूरे बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होते है। ये दुर्ग महत्वपूर्ण पुरावशेष के रूप में उपलब्ध हैं तथा इनका प्रयोग ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में किया जा सकता है।

महलों एवं आवासों के अवशेष :-

जहाँ भी चन्देलों, गौड़ों और बुन्देलों के रियासतों की राजधानियाँ थी, वहाँ नगर क्षेत्र के अन्दर तथा दुर्ग के ऊपर नरेशों, अधिकारियों और अन्य व्यक्तियों के आवास भग्नावशेष के रूप में देखने को मिलते है। सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल गढ़पैहरा में तद्युगीन आवासीय व्यवस्था के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते है। इनमें यहाँ का शीशमहल सर्वप्रसिद्ध महल है, कहते है किसी जमाने में यह यहां के नरेशों का न्यायालय था, इस महल का निर्माण राजा जय सिंह ने करवाया था।

इसी स्थल में सात महल और है, इन महलों का निर्माण दांगी नरेश पृथ्वीपति ने कराया था, इसने अपनी रानियों के लिए सात महल बनवाये थे। इन महलों में से केवल दो ही महल शेष रह गये हैं।[234]

ग्वालियर दुर्ग में भी आवासीय व्यवस्था के अनेक अवशेष उपलब्ध होते हैं। इसमें प्रथम आवासी महल मान मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है, इस महल का निर्माण तोमर वंश के नरेश राजा मानसिंह ने सन् 1486 से लेकर 1516 के मध्य कराया था। इस महल का पूर्वी भाग 91 मीटर, दक्षिण भाग 46 मीटर लम्बा है तथा ऊँचाई 18 मीटर है, इसकी दीवारों में भी चित्रकारी है। इसी स्थान पर एक अन्य महल गुजरी महल के नाम से उपलब्ध होता है, इसका निर्माण 15वीं शताब्दी में हुआ, इसकी लम्बाई 101 मीटर और चौडाई 60 मीटर है, इसके दरवाजों में भी सुन्दर नक्काशी है। इस दुर्ग के ऊपर एक तीसरा महल भी है, यह महल जहाँगीर महल के नाम से विख्यात् है। लक्ष्मी प्रसाद मिश्र के अनुसार- दुर्ग के भीतर छः महल है, इनमें चार हिन्दू स्थापत्य कला के और दो मुस्लिम कला के सुन्दर नमूने है।[235] अजयगढ़ दुर्ग में भी अनेक महलों के अवशेष उपलब्ध होते है, जिनमें रंग महल सुप्रसिद्ध महल था। कालिंजर दुर्ग में अनेक महलो के भग्नावशेष उपलब्ध होते है, इन महलों में कंकण महल, राजा अमान सिंह का महल, चौबे महल, जुझौतियां बस्ती के अवशेष तथा दुर्ग के नीचे राठौर महल, मिश्रों के महल तथा अन्य राजाओं के महल है। इसी प्रकार के महल रसिन, पाथर कछार, शेरपुर, सिहोंड़ा, कमासिन तथा पैलानी के सन्निकट झंझरी गांव में तथा कुछ अवशेष महोबा, पन्ना, चरखारी, छतरपुर, बिजावर, अजयगढ़, झांसी और ओरछा में भी है।

जलाशय :-

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में अनेक प्रकार के जलाशय उपलब्ध होते है, ये जलाशय तीन प्रकार के है। इन्हें झील, सरोवर और कूप अथवा बावली में विभाजित किया जा सकता है। इनमें झीले भूमि की प्राकृतिक संरचना के कारण स्वतः अपने आप बन जाती है। बांदा में सिपून गांव में एक छोटी सी झील उपलब्ध हुयी है, जिसे पुखरियां कहते हैं। इसके अतिरिक्त कालिंजर दुर्ग के ऊपर तथा नीचे अनेक प्राकृतिक जलाशय है। इसी प्रकार के जलाशय और झीलें फतेहगंज के सन्निकट सकरों, सिंहपुर के सन्निकट ब्रहस्पति कुण्ड, बानगंगा तथा पाथर कछार में भी है। इन जलाशयों और झीलों के किनारे कुछ नरेशों ने घाट तथा मंदिर निर्मित कराये, जिससे इनका सौंन्दर्य बढ़ गया।

तालाबों का निर्माण गहरवारों, चन्देलों, बुन्देलों, गौड़ों और परिहारों ने कराया, इनके किनारे मंदिरो का निर्माण भी कराया गया। बांदा में मानिकपुर और अहर के अतिरिक्त रसिन का अधिकताल प्रसिद्ध है। इसी प्रकार का एक बड़ा ताल खजुर सागर है, यह खजुराहों में है।[236] किसी युग में रसिन में ८० तालाब थे, लेकिन 19 तालाबों की सूची उपलब्ध होती है।[237] खजुराहों में ही एक अन्य ताल शिव सागर है। इसके अतिरिक्त महोबा में मदन सागर, कल्याणसागर, विजयसागर तथा राहिल ताल आदि है। इसी प्रकार के सरोवर कालिंजर में भी है, जो स्वर्गारोहण ताल, पाताल गंगा, पांडुकुण्ड, वृधक क्षेत्र सरोवर, मृगधारा तथा कोट तीर्थ नाम से प्रसिद्ध है।

कुछ महत्वपूर्ण सरोवर और भी है, जिनका निर्माण इस्लाम के आगमन के बाद हुआ, झांसी जिले मे बक्शी ताल, राजा ताल, ढिकौली, गढ़िया, अतिया ताल, लक्ष्मी ताल, शिवराव सागर, अरजार, बम्हौरी, बड़ागांव, विजयगढ़, और बरुआसागर प्रसिद्ध है। इसी प्रकार गरौठा में भसनेह, दखनेसर, हैयतपुर सरोवर, मगरवारा और कचनेह के सरोवर उच्च कोटि के है, इसी प्रकार मोठ के अन्तर्गत बिलहरी, सगौली, खोड़, जसवंतपुरा के सरोवर उच्च कोटि के है। ललितपुर में बनगवां कला का सरोवर, गजोरा ताल, पिपरई ताल, दुधई, ताल-बेहट, विजयपुरा, धौरी सागर, महरौनी, गुना, मदावरा, रकसा और बबीना के सरोवर उत्तम कोटि के है। हमीरपुर जनपद मे बेलाताल, धन्नापसवारा किरारी, दसरा, नेगांव, टिकमऊ, कल्याण सागर, रहिलिया, पहरा, तेली पहाड़ी, चिकहरा, बिलखी, उरवारा, कबरई, पसनाहाबाद, सिजहरी, पठारी कदीम, छतरवारा, नरेरी, अखारा, रावतपुर खुर्द, सेलामाफी, सारंगपुरा, बवरा, मंडरा, दमौरा, मिरतला, श्रीनगर, कुलपहाड़, दिदवारा, गुरहरौ, मनकी, नरवारा, मझगुवा और पिपरा में अच्छे तालाब है।

ओरछा राज्य में बल्देव ताल, लिधौरा ताल, बीरसागर, अरजार, यज्ञ सागर, जीरौन-ताल, नंदन-वार सागर और ८ मदन सागर।

दतियाँ राज्य में सीता सागर, तरौनताल, लक्ष्मण ताल, कर्णसागर, राधासागर, लाला का ताल, बड़ौनी ताल, राम सागर, बीरसागर।

पन्ना राज्य में- धर्मसागर, धुवाराताल, बांद ताल, पनवारी ताल, लोकपाल सागर, बेनी

सागर और तिवारी ताल।

चरखारी राज्य में- गोराताल, भगवांताल, रगौली ताल, भरतपुर ताल और कसार ताल।

छतरपुर राज्य में - जगतसागर, ध्रुव सागर, द्रोण सागर, प्रताप सागर, रोगन या निवारी ताल, जल सेना, शिवसागर, कुसुम सागर, बाल सागर।[238]

बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में कुएं और बावली सर्वत्र उपलब्ध होते है- बांदा जनपद में भूरागढ़, दउआ के महल की बावली, शेरपुर सिहोड़ा की बावली, रसिन, पाथर कछार, चित्रकूट, पन्ना, चरखारी तथा झांसी आदि की बांवलियां बहुत अच्छी हैं, इनमें उतरने के लिए सोपान बने हैं।

मौद्रिक-साक्ष्य-

बुन्देलखण्ड में मौद्रिक-साक्ष्य गुप्त युग से लेकर मुगलों के समय तक के उपलब्ध होते हैं। दीवान प्रतिपाल सिंह का यह मानना है कि, बुन्देलखण्ड में स्थानीय तथा बाहरी शासकों की बहुत प्राचीन तथा नवीन, सोने, चांदी और तांबे की मुद्राये (सिक्के) मिलती है। बहुत सी ऐसी है जो, ईसवी सन् से पूर्व काल तक के देशी या विदेशी राजाओं की है, जो केवल पुरातत्व सम्बन्धी खोज के सिलसिले में प्राप्त हुयी। स्थानीय राजाओं की मुद्राये अंग्रेजी अधिकार में होने से पहले विभिन्न राज्यों में बनती तथा चलती थी।[239] बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होने वाले मौद्रिक साक्ष्य स्वर्ण, रजत और ताँबे के उपलब्ध होते हैं। बुन्देलखण्ड में बुन्देलवंश के महाराजा वीरसिंह जूदेव, छत्रसाल तथा अन्य छोटी जागीरों ने अपने-अपने सिक्के ढाले थे। बुन्देलखण्ड में जो सिक्के उपलब्ध हुये है, उनमें उत्तर-गुप्त, कल्चुरी और चन्देलकालीन सिक्के सर्वाधिक है। कल्चुरी सिक्के 11वीं शताब्दी के है तथा इनमें गांगेय देव के नाम और 12 अन्य राजाओं के नाम है। यहाँ जो चन्देल-युगीन मुद्रायें उपलब्ध हुयी है, वे कीर्तिवर्मन के युग की सन् 1245 ई० की है तथा कुछ मुद्रायें राजा वीरवर्मन के काल की सन् 1287 ई० की है।

बुन्देलखण्ड में ही जबलपुर के सन्निकट एक गुप्त खजाना जमीन के अंदर से उपलब्ध हुआ है। इस खजाने में सन् 1311 ई० से लेकर 1553 ई० के सिक्के उपलब्ध हुए है, ये सिक्के दिल्ली, गुजरात, काश्मीर, गुलबर्गा, मालवा, खिलजी, जौनपुर, सरकी आदि मुसलमान बादशाहों के है, इन मुद्राओं में 146 सोने के तथा 36 चांदी के सिक्के थे। बुन्देलखण्ड में ही सन् 1870 में एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण हुआ था, यह सर्वेक्षण हमीरपुर जनपद के पचखुरा गांव में हुआ था, इस स्थान पर 155 ई०पू० और 175 ई०पू० के बैक्ट्रियन काल के सिक्के उपलब्ध हुये थे। ये मिनैंडर, अपोलोडोटस, एन्टीमेकस, निकेफ़ोरस और युक्रेटाइडस के राज्य कालों के है, ये सब एक ढाल के पेड़ के नीचे गड़े हुए मिले थे।[240]

बुन्देलखण्ड में उपलब्ध अभिलेखीय साक्ष्य :-

बुन्देलखण्ड में अनेक स्थलों में अभिलेखीय साक्ष्य उपलब्ध होते है, यह अभिलेखीय साक्ष्य ई०पू० से लेकर मुगलकाल तक के उपलब्ध होते है तथा इन अभिलेखों की भाषा ब्राह्मणी,

संस्कृत, पाली, प्राकृत, देवनागरी, अरबी तथा फारसी है। यह अभिलेख गुफा लेख, शिलालेख, स्तम्भ लेख, ताम्रपत्र, तथा मुद्रा अभिलेख के रूप में उपलब्ध होते है। बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होने वाला सबसे प्राचीन अभिलेख दतियाँ के सन्निकट गुर्जरा में उपलब्ध होता है, यह अभिलेख सिद्धों की टोरिया के पास है यह सम्राट अशोक के काल का है।[241]

इसी प्रकार झांसी जनपद में एरच के समीप दो ईटे उपलब्ध हुयी है, इसमें अति प्राचीन अभिलेख है। देवगढ़ में भी कुछ अभिलेख गुप्त युग के उपलब्ध हुये है, यह महाराज मात्र विष्णु और उसके छोटे भाई धन्य विष्णु का है।[242] इसी प्रकार के अभिलेख एरण, देवगढ़ में भी उपलब्ध होते है। एक अन्य अभिलेख ललितपुर जनपद के सिरोन खुर्द में उपलब्ध हुआ है, यह अभिलेख संस्कृत भाषा में है।[243] इसके अतिरिक्त खजुराहों में अनेक मंदिरों में अभिलेख उपलब्ध होते है, जो विविध काल के है। अभिलेखों के अतिरिक्त यहाँ ननयौरा गांव में विक्रम संवत 1107 का ताम्रपत्र उपलब्ध हुआ। अनेक अभिलेख महोबा, कालिंजर, मदनपुर में भी उपलब्ध होते है, ये अभिलेख विभिन्न कालों के है।

यहां पर कुछ अभिलेख सल्तनत काल के बाद के उपलब्ध होते है, ये अभिलेख सती स्मारकों के है तथा इन्हें सती पट्ट के नाम से जाना जाता है।[244] बुन्देलखण्ड में ही कुछ अभिलेख फारसी में भी उपलब्ध हुए है, इनमें एरच का अभिलेख महत्वपूर्ण है, ये हिजरी संवत् 711 तद्नुसार सन् 1311 का है।[245] तथा इसमें मुक्ताजुनैद और काजी सियाउद्दीन का नाम है। इसी प्रकार का एक अभिलेख कालिंजर मे भी उपलब्ध हुआ है, यह हिजरी संवत् 1084 तथा सन् 1673 ई० का है। इस अभिलेख में मुहम्मद मुराद द्वारा द्वार को मजबूत बनाने का जिक्र है।[246] इसी प्रकार के अनेक अभिलेख बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में उपलब्ध होते है, जो पूर्व मध्ययुगीन और मध्ययुगीन सभ्यता संस्कृति में प्रकाश डालते है।

अस्त्र-शस्त्र एवं आभूषण-

बुन्देलखण्ड में अनेक क्षेत्रो में जहाँ प्राचीन बस्तियां थी, वहाँ कुछ स्थानों पर व्यक्तिगत रूप से और इतिहास विभाग द्वारा उत्खनन कार्य विशेष रूप से कराये गये। मुख्य रूप से देवगढ़, एरण, विदुशा, मंडला, कालिंजर, महोबा, शेरपुर सिहोड़ा, रसिन, मड़फा, बिलहरिया मठ, पवायां, गढ़कुंडार, तथा ग्वालियर के सन्निकट प्राचीन बस्तियों में ये उत्खनन कार्य हुए है। इनमें जो वस्तुयें उपलब्ध हुयी है, उनमें अनेक प्रकार के वस्त्र और आभूषण उपलब्ध हुयें है। ये आभूषण सिर, कर्ण, कंठ, नासिका और हाथ पैर के है तथा इनका निर्माण स्वर्ण, रजत, ताम्र तथा अन्य धातुओं से हुआ है।

कुछ स्थानों पर रियासत के भण्डारों में अनेक अस्त्र-शस्त्र उपलब्ध हुए है, इनमे से अधिकांश अस्त्र-शस्त्र पूर्व-मध्यकाल और मध्यकाल के है। मुख्य अस्त्र-शस्त्रों में तोडदार बंदूक, शेरदहां, गुराव, खुदकुला, जिरहकुला, ज़िहरचिलता, चार आइना, ज़िरह पायजाम, दस्ताना, पेटी,

बख्तर, सैफ़, तलवार, तेगा, पेशकब्ज, कटार, बिछुवा, कत्ता, खांडा कारबैन, घोड़े की पारवरी, बरछी, तोप, सांग, बान, सूजा, पट्टा, बघा या बघनख, कुलंग, भारू, धन्नाल, हाथी की पाखरी, चक्करी, गुप्ती, गुलेल, तीर-कमान, गुजे, सिप्पा, तबल,। इस सन्दर्भ में एक कविता भी उपलब्ध होती है जो अति प्राचीन है-

एक बचै तो बाल कहावैं । जो बांधे जग आदर पावै।

दोय बचै तो गौरी होय । बिना असवारी रहै न सोय....।।[247]

पुरा साहित्य :-

बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में अंग्रेजों के युग में लगभग 42 रियासते थीं, इन रियासतों के लेखागारों में हजारों की संख्या में हस्तलिखित पांडुलिपियाँ, पूर्व मध्ययुग और मध्ययुग की उपलब्ध होती है, इन पांडुलिपियों से तद्युगीन सामाजिक व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था तथा अन्य ऐतिहासिक गतविधियों का पता लगता है। मुख्य रूप से 7वीं शताब्दी से लेकर 12वीं शताब्दी तक बुन्देलखण्ड में रासव ग्रंथ लिखने की परम्परा विकसित हुयी। इन ग्रंथों में पृथ्वीराज रासों और आल्हाखंड, दो ऐसे रासव ग्रंथ है, जिनमें बुन्देलखण्ड की राजनीतिक घटनाओं का उल्लेख स्पष्ट रूप से है। इसके पहले ह्वेनसांग, फाह्यान तथा अलबरूनी ने अपने यात्रा वर्णनों में बुन्देलखण्ड का उल्लेख किया है। सल्तनतकाल में जो महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे गये, उनमें खजाइन-उल-फुतूह, सियार-उल-औलिया, तारीखे-शाही, फुतूहात-ए-फिरोजशाही, फुतूह-उस-सलातीन, जमात-खाना, अफसाना-ए-शहान, बाबर-नामा, आइने अकबरी तथा अन्य ग्रंथों में बुन्देलखण्ड की घटनाओं का उल्लेख उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त हिन्दी कवियों ने भी यहाँ की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन, अपनी रचनाओं में किया हैं। बुन्देलखण्ड में तखर शाह, चर्तुभुज, मधुकर शाह, बखतबली, भानभट्ट, गुलाब, रघुराज, छत्रसाल, लाल, भूषण, बिन्द कवि, अनन्य कवि, बोधा, मानकवि आदि हुए है, जिन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से बुन्देलखण्ड के गौरव को बढ़ाया है, साथ ही यहाँ की राजनैतिक घटनाओं का उल्लेख भी उन्होंने अपने साहित्य में किया है। मानकवि की एक कविता में लोहागढ़ संग्राम की घटना इस प्रकार उजागर होती है :-दोहा : *छत्रसाल की मारधान, भान, भट्ट की हांक।*

फलह लोहगढ़ की लई, शाह हेतुरण बांक।।[248] (भानभट्ट)

बुन्देलखण्ड नरेश छत्रसाल ने अनेक ऐतिहासिक घटनाओं के साथ-साथ अपने जीवन के आदर्शो को इस प्रकार व्यक्त किया है।

ज्ञानिन में ज्ञानी और ध्यानिन में ध्यानी अहों,

पण्डित पुरानी अरथाने वेद बाने का।

साहिब सों सच्चा क्रूर कर्मन में कच्चा छता,

चम्पति का बच्चा शेर सूरवीर बाने का....।।[249]

महाकवि लाल ने भी अपने काव्य में ऐतिहासिक घटनाओं का भी उल्लेख किया है,

सन् 1725, अप्रैल में शेर-अफगन का युद्ध हृदय शाह से हुआ था उसका वर्णन लाल कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

खेत परना को खिझऔ छत्रसाल छितपाल,
आये दल उमड़ यवन तेज वन सें।
धूं धां नगाड़े बजे धूं धां निशान सजे,
धू धां सुभट्ट सजे अकड़ दलन से.........।।[250] (लाल कवि)

महाकवि भूषण ने भी बुन्देलखण्ड की अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है, छत्रसाल का अब्दुल समद से युद्ध सन् 1680, जुलाई में हुआ था, इसका वर्णन कविभूषण ने इस प्रकार किया है :-

अत्र गहि छत्रसाल खिभयों खेत वितवै के,
उतहूँ पठानन हूँ कीन्ही झुक झपटै।
हिम्मत बड़ी के गवड़ी के खिलवान लौ,
दैत्य से हजारन हजार बार चपटै............।।[251]

अगस्त सन् 1729 में मोहम्मद बंगंश छत्रसाल से पराजित हुआ था, इस समय छत्रसाल वृद्ध हो गये थे, फिर भी कवि भूषण ने इस घटना का उल्लेख बहुत ही मार्मिक ढंग से किया-

बालपनें में तहव्वर खांन को, सैन्य समेत अचै गओ भाई।
''भूषण'' ज्वानी में रौंद करी, सुसमद्ध अचै कहु थाह न पाई।.......।[252]

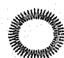
ऐतिहासिक साक्ष्य केवल हिन्दी के कवियों में ही नहीं, बल्कि तद्‌युगीन शायरों में भी उपलब्ध होते है। बांदा नवाब के आश्रय में रहने वाले मुनीर शायर ने तद्‌युगीन अंग्रेजों के उत्पीड़न का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है-

उम्र अभी बांकी है दिल भी शेर है।
पैमाना भर चुका है छलकनें की देर है।।[253]

बुन्देलखण्ड में उपलब्ध उर्दू शायरी मे राष्ट्रीय आन्दोलन के स्वर झलकते है, यथा-

छोड़ी-देहली लखनऊ से भी न कुछ उम्मीद कर
नजम में भी बाजे-आजादी की अब ताईद कर।
साफ है रोशन है और है साहिबे-सोजो गदाज
शायरी में बस लबाने शमा की तकलीद कर।''[254]

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपलब्ध पुरातन साहित्य पूर्व-मध्ययुग तथा मध्ययुग के इतिहास में व्यापक प्रभाव डालता है तथा इसे ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, यद्यपि साहित्यकारों ने ऐतिहासिक घटनाओं को कुछ बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया है तथा उसमें कही-कहीं पर जाति विशेष और वर्ग विशेष के लिए संकुचित दृष्टिकोण भी अपनाया गया है।



संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. दीवान प्रतिपाल सिंह- बुन्देलखण्ड का इतिहास स0 वि0 स0 1982 पृ0 1-2
2. पं0 कविमणि कृष्णदास- बुन्देलखण्ड के कवि वि0स0 2017 पृ0- 10
3. वही- पृ0 11
4. वही-
5. महर्षि बाल्मीकि रामायण अध्याय- 56
6. वही-
7. महाभारत- ले0 महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास अध्याय- 57 श्लोक सं0- 56-57, पृ0सं0- 1206
8. वही- श्लोक सं0 58-59
9. ऋतुसंहार- ले0 महाकवि कालीदास सर्ग- 2 श्लोक सं0- 8
10. मेघदूत- प्रथम सर्ग- श्लोक सं0- 19-14
11. दीवान प्रतिपाल सिंह - बुन्देलखण्ड का इतिहास वि0स0 1985 पृ0- 66
12. मोतीलाल त्रिपाठी "अशान्त"- बुन्देलखण्ड दर्शन, सं0 1980 पृ0 2
13. K.K. Shah- Ancient Bundelkhand, Pub. Gain publishing House Delhi. Edi - 1987 P.1
14. पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी - बुन्देलखण्ड समग्र- सम्पादक- डॉ0 महेन्द्र वर्मा, सं0 1998
15. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, प्रकाशन- काशी नागरी प्रचारिणी सं0 वि0स0 1990 पृ0 1 (यूनिक)
16. दीवान प्रतिपाल सिंह - बुन्देलखण्ड का इतिहास- सं0 वि0 स0 1985 पृ0- 5
17. वही पृ0 6
18. दीवान प्रतिपाल सिंह - बुन्देलखण्ड का इतिहास सं0 1985 पृ0 7
19. मुन्शी श्यामलाल- तवारीख-बुन्देलखण्ड सन् 1882
20. गोरेलाल तिवारी- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सं0वि0स0 1990 पृ0सं0-1
21. एस0डी0त्रिवेदी- बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, प्रका0राज0संग्रहालय झांसी, सं0 1984, पृ0 1
22. M.L.Nigam - Cultural History of Bundelkhand, ed.- 1983 Pub. print India p. 1
23. (अ) रामस्वरूप ढेगुला- बुन्देलखण्ड का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन सं0 1987 प्रका0- संचयन प्रकाशन कानपुर, पृ0 1
    (ब) इर्विन भाग- 2, पृ0 216
    (स) छत्रसाल पृ0सं0- 17, औरंगजेब भाग-1, पृ0 14

24. Bhagwan Das Gupta, A Histroy of the rise and fall of Maratha in Bundelkhand- P-1.

25. K.K. Shah- Ancient Bundelkhand- edition- 1987 Page No. 2

26. पं० कविमणि कृष्णदास, बुन्देलखण्ड के कवि सं० वि०स० 2017, पृ० 10

27. मोतीलाल त्रिपाठी, 'अशान्त' बुन्देलखण्ड दर्शन, सं० 1990, पृ० 27

28. राधाकृष्ण बुन्देली - बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन प्रका०- बुन्देलखण्ड प्रकाशन, बांदा, सं० 1989, पृ०- 119.

29. एस० एम० अली- दी जाग्रफी ऑफ दी पुराणाज सं०- 1966, पृ०- 159-60.

30. जयचन्द विद्यालंकार,- भारत भूमि और उनके निवासी सं० 1931, पृ० 65

31. आर०एल० सिंह, इण्डिया एरीजनल जाग्रफी सं० 1971, पृ०सं०- 597.

32. कनिंघम, ए- आर्कुलाजिकल सर्वे रिपोर्ट- वाल्यूम- 21- पृ०सं०- 81

33. राधाकृष्ण बुन्देली- बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन- प्रका० बुन्देलखण्ड प्रकाशन- बांदा-सं० 1989, पृ० 13

34. वासुदेव शरण अग्रवाल, मार्कण्डेय पौराणिक सांस्कृतिक अध्ययन-सं० 1961, पृ०सं० 152

35. मार्कण्डेय पुराण (अंग्रेजी अनुवाद) एफ० ई० पाजीटर पृ०सं०- 359

36. डॉ० कामिनी- बुन्देली भाषा क्षेत्र के स्थान अभिधानों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन पृ०- 1-30.

37. अनु० तिवारी, उदयनारायण, भारत का भाषा सर्वेक्षण- खण्ड-1, सं०1959, पृ० 24.

38. वही- पृ० 29

39. डॉ० ग्रियर्सन- लिंग्यूस्टिक सर्वे ऑ् इण्डिया वाल्यूम- 9 पृ० 86

40. कृष्णानन्द, बुन्देलखण्ड भाषा का साहित्य सं० 1960 पृ० 2

41. रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल, : बुन्देली भाषा का शास्त्रीय अध्ययन सं० 1963, पृ०-4.

42. उदयनारायण तिवारी- हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास पृ० 254

43. हरदेव बाहरी - हिन्दी उद्भव विकास और कप पृ० सं०- 85

44. दीवान प्रतिपाल सिंह : बुन्देखलखण्ड का इतिहास- 1, पृ०सं०- 8.

45. मुंशी श्यामलाल- तवारीख बुन्देलखण्ड- सं० सन् 1882

46. मदनपुर अभिलेख- सन् 1182

47. इपिग्राफिक्स इण्डिका, भाग-1, पृ०सं०- 220

48. अ) दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी (भारतीय विद्या भवन सीरीज सं०-2, पृ०-9
    ब) महाभारत-5, 22, 16, 1982.

49. अ) राय चौधरी, हेमचन्द्र, पालिटिकल हिस्ट्री ऑफ एशियन्ट इण्डिया पृ०सं०-129.

ब) महाभारत उद्योग पर्व- अध्याय- 189, श्लोक सं0 8-10

स) ले0 रायकुमार- महाभारत कोष भाग-2, पृ0सं0 310.

50. पाल अभिलेख

51. समुद्रगुप्त का अभिलेख- प्रयाग प्रशस्ति

52. अजयगढ़ अभिलेख

53. वार्टस वाल्यूम- 2, पृ0सं0 251.

54. अ) विष्णु धर्मोत्तर

ब) धीरेन्द्र वर्मा हिन्दी भाषा का इतिहास पृ0 65.

55. नार्थ वेस्टर्न : प्राविन्सेज गजेटियर्स, पार्ट फर्स्ट पृ0 20.

56. इण्डियन आर्कुलाजीकल ए रिव्यू सं0 1995-56, पृ0 04

57. वही- सं0 1961-62, पृ0 80

58. डॉ0 कन्हैयालाल अग्रवाल- विन्ध्यक्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल सं0 1987, पृ0सं0 120-180

59. सेन्ट्रल इण्डिया गजेटियर खण्ड-1, पृ0 395.

60. डॉ0 कन्हैयालाल अग्रवाल - विन्ध्यक्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल सं0 1987, पृ0सं0- 181.

61. स्कन्द पुराण, सर्ग-1, अध्याय-2, श्लोक सं0- 39-40, सं0 162

62. तारीख-ए-कामिल, पृ0 216

63. किबात जैनुल अखबार पृ0 76

64. तारीख-ए-फरिश्ता, (ब्रिग्स) खण्ड-1, पृ0सं0- 64.

65. दीवान प्रतिपाल सिंह : बुन्देलखण्ड का इतिहास सं0 वि0 स0, 1985 पृ0सं0 153.

66. ऋग्वेद- मंडल 8, खण्ड-3, श्लोक सं0- 37-39.

67. बाल्मीकि रामायण- 3, 5, 19

68. एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द 8, पृ0सं0- 170-76.

69. इण्डियन एण्टिक्वेरी जिल्द 8, पृ0 170-76

70. जनरल ऑफ यू0पी0 हिस्ट्रोरिकल सोसायटी, खण्ड- 23, पृ0 228-35.

71. आर्कुलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट खण्ड-2, पृ0 49

72. वही- पृ0 49

73. वही- पृ0 49-50

74. इण्डियन एण्टिक्वेरी जिल्द 17, पृ0सं0- 230-34.

75. कार्पस, खण्ड-4, पृ0 271

76. बोस, एन0एस0- हिस्ट्री ऑफ चन्देलास पृ0- 154.

77. आर्कुलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, खण्ड

78. एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द-20, पृ0-136.

79. ए रिकार्ड ऑफ द बुद्धिस्ट किंगडम्स

80. Nigam, M.L. Cultural History of Bundelkhnd- edition 1983, P. 59.

81. C II, IV Pt. No. 42, P.N. 364. (Corpus Inscriptionum Indicarum. edition 1963).

82. Nigam, M.L., Cultural History of Bundelkhand edition 1983, P.N. 59.

83. IBID, Page No. 59.

84. बी0एम0 बरूथा, भरहुत अभिलेख खण्ड-II सं0 1934, पृ0 1968 Book (Ashok and his inscription Calcutta).

85. रूपनाथ अभिलेख (C II- Vol. 1) पृ0 166

86. द एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ0सं0- 551

87. एरण स्तम्भ लेख (C II, Vol. II) पृ0 605

88. वही-

89. इण्डियन एण्टिक्वेरी, वाल्यूम-18, पृ0सं0- 308.

90. कनिंघम, ए0 आर्कुलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट सं0 1962, पृ0 139.

91. अल्तेकर, ए0एस0 पोजीशन ऑफ वूमैन इन हिन्दू सिवलाइजेशन सं0 1938 पृ0 13.

92. आर0 के0 मुखर्जी, हर्ष, सं0 1962, पृ0 13

93. E.I. Vol. 18, Page No. 92.

94. आर0 के0 मुखर्जी, हर्ष 1926, पृ0 16.

95. कनिंघम, ए0 आकुलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट सं0 1962, पृ0 139.

96. E.I. Vol. 21, Page No. 55

97. बी0 एम0 बर्फ, वाल्यूम-I सं0 1934, पृ0 8.

98. बरूथा, बी0एम0पी0एल0 सं0 78-79.

99. Moti chandra Castume textile cosmatics & coiffure is Ancient and mediaval India, edition 1973. P. 85

100. कनिंघम्, ए, आर्कुलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया सं0 1911-12, पृ0 92-93.

101. वही- सं0 1962, पृ0 35

102. वी0ए0 अग्रवाल, स्टडीज इन इण्डियन आर्ट सं0 1965, पृ0 95-97.

103. कनिंघम, ए0, आर्कुलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया सं0 1962, पृ0 37.

104. वही- पृ0 3738

105. वही- सन् 1909, पृ0 42.

106. वही- सं0 1962, पृ0 122

107. वही- खण्ड-25, चित्र-1

108. वही- भाग-34, चित्र-3.

109. ए0एम0 शास्त्री- इण्डिया एज सीन इन द कुठानी- मठ ऑफ दामोदर गुप्त सं0 1975, पृ0 156-57.

110. एन0पी0 जोशी, कैटालाग ऑफ दी ब्रह्मानिकल स्कलपचर दी स्टेट म्यूजियम लखनऊ, सं0 1992, चि0 12

111. बी0एम0 बरूआ - अशोक एण्ड हिज इन्सट्रक्शन्स- कलकत्ता सं0 1934, भाग- 192, पृ0 70.

112. शिवराम मूर्ति, सी0- श्रविस् इन इण्डियन आर्टस एण्ड लिटरेचर सं0 1981, चित्र-65.

113. रोमिला थापर - भारत का इतिहास, पृ0सं0- 47.

114. मेगस्थनीज- चन्द्रगुप्त मौर्य एण्ड हिज टाइम, पृ0सं0 2-3.

115. ए0के0 मित्तल, भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास प्रका0 साहित्य भवन आगरा सं0 1994, पृ0 371.

116. वही- पृ0 384.

117. रॉलिन्सन- ए शार्ट कल्चरर हिस्ट्री, पृ0- 101-102.

118. एण्डियन एण्टिक्वेरी (महोबा अभिलेख) पृ0 221.

119. (अ) डॉ0 आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - दिल्ली सल्तनल सं0 1989 पब्लिकेशन- शिवाला अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, पृ0

ब) दि स्ट्रगल फॉर एम्पायर, (भा0वि0म0सीरीज सं0-5), पृ0 18.

120. कनिंघम, ए0 आर्कुलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, वाल्यूम- 21, पृ0 34. प्लेट सं0 10 अ

121. केशव चन्द्र मिश्र- चन्देल और उनका राजत्च काल सं0- 1930, पृ0 184.

122. प्रो0 राधेश्याम- सल्तनलकालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास सं0 1987 प्रकाशक- वोहरा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद, पृ0 209.

123. (अ) मजूमदार- एशिंएट हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ0 566.

(ब) इलियट डाउसन, भाग-1, पृ0सं0- 17.

124. वही- पृ0 76.

125. सन्तराम सचान, अलबरूनी का भारत भाग-1, अध्याय-9, पृ0 101, प्रका0- नवलकिशोर प्रेस, सं0 1869.

126. एपिग्राफिका इण्डिका, भाग-4, पृ0-121.

127. के0सी0 मिश्र- चन्देल और उनका राजत्वकाल, सं0-1945, पृ0 185.

128. इलियट डाउसन, भाग-2, पृ0 16-76.

129. एपिग्राफिका इण्डिका, भाग-1, पृ0 146, श्लोक सं0 53-54, पृ0 147, पंक्ति सं0 19-21.

130. इण्डियन एण्टीक्वेरी भाग-16, पृ0 201.

131. कृष्ण मिश्र - प्रबोध चन्द्रोदय- प्रका0 निर्णय सागर प्रेस, सं0 2-5.

132. इलियट डाउसन, भाग-1, पृ0 6.

133. इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग-1, पृ0 93.

134. बौधायन धर्म सूत्र, भाग-1, अध्याय-2, श्लोक सं0-4.

135. संतराम सचान, अलबरूनी का भारत- प्रका0 नवलकिशोर प्रेस, सं0 1869., पृ0 101.

136. भवति च वेदोच्चारणे जिह्वाच्छेदो धारणे भेद इति- वेदान्त सूत्र के प्रथम अध्याय के तीसरे पद के 38वां सूत्र पर शंकराचार्य पर टीका।

137. अल्तेकर, अ0सं0, राष्ट्रकूट एण्ड देयर टाइम्स, पृ0 334.

138. (अ) एपिग्राफिका इण्डिका, भाग-1, पृ0 121.

(ब) वैव, चि0वि0-हिस्ट्री ऑफ मिड्वल हिन्दू इण्डिया भाग-2, पृ0 178.

139. अयोध्या प्रसाद पाण्डेय, चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, पृ0 180.

140. कृष्ण मिश्र, भाग-2, पृ0 155-156.

141. सन्तराम सचान- अलबरूनी का भारत, भाग-2, पृ0 13.

142. इलियट डाउसन, भाग-1, पृ0-97.

143. वैद्य विनायक चिन्तामणि- मिड्वल हिस्ट्री ऑफ हिन्दू इण्डिया, भाग-2, पृ0 184-85.

144. इलियट डाउसन, भाग-2, पृ0 154.

145. इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग-1, पृ0 163.

146. इलियट, भाग-1, पृ0 11.

147. इलियट, भाग-2, पृ0 155.

148. मनुस्मृति, अध्याय-3, श्लोक सं0 55-56.

149. अमीर खुसरो- हश्त बहिशत, पृ0 29-30.

150. विद्यापति- पद्यावली, पृ0 21 जायसी का पद्यमावत्, पृ0 130.

151. अमीर खुसरो- तुगलक नामा, तुगलककालीन भारत, रिज़वी- पृ0 202.

152. एस0 लाल- ग्रोथ ऑफ द मुस्लिम पापुलेशन इन मेडिवल इण्डिया, देहली सं0 1973, पृ0 93-269.

153. राधेश्याम- सल्तनतकालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास सं0 1987 प्रका0 वोहरा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद पृ0 291.

154. फिरोजशाह तुगलक- फुतुहात-ए-फिरोजशाही, सं0 1943, प्रका0 अलीगढ़, पृ0 10

155. ख़लील अहमद निज़ामी- सम आस्पेक्ट्स ऑफ रिलीजन ट्रेन्ड इन तुगलक पीरिएड जनरल ऑफ पाकिस्तान हिस्टॉरिकल सोसायटी सं० 1953, पृ० 234-243.
156. कृष्ण मिश्र, प्रबोध चन्द्रादेय, पृ० 24.
157. वही- पृ० 24
158. दीवान प्रतिपाल सिंह- बुन्देलखण्ड का इतिहास वि०स० 1985, पृ० 216-221.
159. संतराम सचान - अलबरूनी का भारत (आइने अकबरी अनु० संतराम- लाला नवलकिशोर प्रेस सं० 1869, पृ० 105.
160. डॉ० आर्शीवादीलाल श्रीवास्तव - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति सं० 1973, पृ० 246.
161. वही- पृ० 248.
162. दिल्ली सल्तनत, पृ० 608.
163. संतराम सचान- अलबरूनी का भारत, प्रका०- नवलकिशोर प्रेस, सं० 1869, पृ० 27.
164. वही- पृ० 28.
165. वही- पृ० 29
166. के० सी० मिश्र- चन्देल और उनका राजत्वकाल सं० 1949, पृ० 193.
167. कृष्ण मिश्र- प्रबोध चन्द्रादेय, पृ० 43-46.
168. संतराम सचान- अलबरूनी का भारत, प्रका०- नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सं० 1869, पृ० 102
169. कृष्ण मिश्र, प्रबोध चन्द्रोदय, पृ० 58.
170. एपिग्राफिका इण्डिका, भाग-1, पृ० 131-32.
171. केशवचन्द्र मिश्र - चंदेल और उनका राजत्वकाल पृ० 201, सं० 1949.
172. वही-
173. वैद्य विनायक चिन्तामणि- हिस्ट्री ऑफ मिड्वल हिन्दू इण्डिया, भाग-3, पृ० 415.
174. के०सी० मिश्र - चन्देल और उनका राजत्वकाल, सं० 1949, प्रका० बनारस, पृ० 208.
175. वही- पृत्र 211.
176. कबीरदास- बीजक
177. राधाकृष्ण बुन्देली- बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन, प्रका०- बुन्देलखण्ड प्रकाशन बांदा, सं० 1989, पृ० 119.
178. के०सी० मिश्र - चन्देल और उनका राजत्वकाल, सं० 1949, प्रका० बनारस, पृ० 213.
179. एपिग्राफिका इण्डिका, भाग-1, श्लोक सं० 30, पृ० 212.
180. नाज़िम- दी लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ सुल्तान महमूद ऑफ गजनी, पृ० 114.
181. एपिग्राफिका इण्डिका, भाग-1, पृ० 138.

182. कृष्ण मिश्र, प्रबोध चन्द्रादेय, पृ0 109.

183. ए0बी0 कीथ, हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ0 219

184. डॉ0 आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, - मुगलकालीन भारत सं0 1953, प्रका0- शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं0 आगरा, पृ0 548.

185. गौरीशंकर द्विवेदी, बुन्देल वैभव प्रथम भाग, पृ0 154.

189. मोतीलाल त्रिपाठी 'अशान्त' - बुन्देलखण्ड दर्शन, प्रका0- शारदा साहित्य कुटीर झांसी, सं0 1980, पृ0 450-51.

190. के0सी0 मिश्र - चन्देल और उनका राजत्वकाल, सं0 1949, प्रका0 बनारस, पृ0 223.

191. वही- पृ0 224.

192. के0सी0 मिश्र - चन्देल और उनका राजत्वकाल, सं0 1949, प्रका0 बनारस, पृ0 225.

193. प्रो0 हबीब- मेमायर्स ऑफ महमूद ऑफ गजनी, पृ0 322.

194. के0सी0 मिश्र - चन्देल और उनका राजत्वकाल, सं0 1949, प्रका0 बनारस, 239.

195. वही- पृ0 244.

196. डॉ0 एस0डी0 त्रिवेदी- बुन्देलखण्ड की मूर्ति सम्पदा (लेख) उ0प्र0 की पुरा सम्पदा, प्रका0- सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग सं0 1981, पृ0 106-111.

197. डॉ0 आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत सं0 1981, प्रका0- शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, पृ0 599.

198. अबुल फ़जल- आइने अकबरी, जिल्द-9, पृ0 107.

199. रोजर तथा बैवरिज (अनु0) तुजुक जहांगीरी जिल्द-9, पृ0 20.

200. डॉ0 अशीर्वादीलाल श्रीवास्तव- मुगलकालीन भारत सं0 1981, प्रका0- शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, पृ0 553

201. पण्डित, दामोदर- संगीत दर्पण, सं0 1625.

202. बसंत- संगीत विशारद, प्रका0 संगीत कार्यालय हाथरस, सं0 1988, पृ0 16.

203. अबुल फ़जल- आइने अकबरी

204. William Foster- Early Travel, Page- 183.

205. Yadunath Sarkar - Studies in Mughal India P.P. 12, 13.

206. सकी मुस्ताइद खां- मअस्सरे आलमगीरि, पृ0 526.

207. डॉ0 आशीर्वादलाल श्रीवास्तव- मुगलकालीन भारत, प्रका0- शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, पृ0 526.

208. डॉ0 अरुणेन्द्र चौरसिया- बुन्देलखण्ड का लोक संगीत, शोध प्रबन्ध, सन् 1993.

209. लक्ष्मी प्रसाद मिश्र- बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक इतिहास, भाग-1, प्रका0- विश्वभारती प्रकाशन नागपुर, सं0 1990, पृ0 11-12.

210. वही- पृ0 13

211. के0सी0 मिश्र - चन्देल और उनका राजत्वकाल, सं0 1949, प्रका0 बनारस, पृ0 254.

212. आचार्य सीताराम चतुर्वेदी - अभिनव नाट्य शास्त्र, पृ0 1013-74.

213. के0सी0 मिश्र - चन्देल और उनका राजत्वकाल, सं0 1949, प्रका0 बनारस, पृ0 255.

214. कृष्ण मिश्र- प्रबोध- चन्द्रोदय, पृ0 123.

215. मोतीलाल मिश्र 'अशान्त' बुन्देलखण्ड दर्शन, प्रका0-शारदा साहित्य कुटीर झांसी, सं0 1980, पृ0 292.

216. वही-

217. हारमोनियम मास्टर, प्रका0- नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, सं0 1869, पृ0 567.

218. वही- पृ0 593.

219. पं0 गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास प्रका0 काशी नागरी प्रचारिणी सभा सं0 वि0स0 1990, पृ0 46.

220. वही- पृ0 50-60.

221. ए0 कनिंघम, आर्कुलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया तथा जनरल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, भाग-1, सं0 1881, पृ0 42.

222. हमीरपुर गजेटियर सं0 1988, पृ0 267,

223. मोतीलाल त्रिपाठी 'अशान्त' बुन्देलखण्ड दर्शन सं0 1980, प्रका0-शारदा साहि0कुटीर झांसी, पृ0 161.

224. वही- पृ0 166.

225. वही-

226. बांदा गजेटियर- उ0 प्र0 शासन द्वारा प्रकाशित सं0 1988, पृ0 303.

227. मोतीलाल त्रिपाठी 'अशान्त'- बुन्देलखण्ड दर्शन, प्रका0शारदा साहित्य कुटीर झांसी, पृ0 167.

228. वही-

229. वही- पृ0 169-170.

230. लक्ष्मी प्रसाद मिश्र, बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक इतिहास, भाग-1, प्रका0- विश्व भारतीय प्रकाशन नागपुर सं0 1990, पृ0 153-154.

231. राधाकृष्ण बुन्देली- बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन, प्रका0- बुन्देलखण्ड प्रकाशन बांदा, सं0 1989, पृ0 56-57.

232. राजगौड़ महाराज- पृ0 138, पैराग्राफ सं0 108.

233. पं0 गोरेलाल तिवारी- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सं0 1933, प्रका0 नागरी प्रचारिणी सभा इलाहाबाद पृ0 100-101.

234. लक्ष्मी प्रसाद मिश्र- बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक इतिहास, भाग-1, प्रका0

235. वही- पृ0 144.

236. आर्कुलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग-1, पृ0 415.

237. वही- पृ0 26.

238. दीवान प्रतिपाल सिंह- बुन्देलखण्ड का इतिहास वि0स0 1985, प्रका0 नागरी प्रचारिणी सभा बनारस, पृ0 93-98.

239. वही- पृ0 105.

240. दीवान प्रतिपाल सिंह- बुन्देलखण्ड का इतिहास स0वि0ज्ञ0 1985, प्रका0 नागरी प्रचारिणी सभा बनारस पृ0 93-98.

241. राजबली पाण्डेय, अशोक के अभिलेख फलक सं0 29.

242. फ्लीट सी0आई0 आई0 भाग-3, पृ0 89.

243. एपिग्राफिका इण्डिका वाल्यूम-1, पृ0 162-179.

244. एस0डी0 त्रिवेदी, स्कल्पचर्स इन दि झांसी म्यूजियम, पृ0 74-75, चित्र- 74.

245. डिस्ट्रिक गजेटियर झांसी सं0 1965, पृ0 37.

246. आर्कुलॉजिकल सर्वे इण्डिया रिपोर्ट भाग-21, पृ0 28-29.

247. दीवान प्रतिपाल सिंह- बुन्देलखण्ड, भाग-1, वि0स0 1985, पृ0 237-238.

248. पं0 कविमणि कृष्णदास, बुन्देलखण्ड के कवि वि0सं0 1017, प्रका0साहि0सम्मेलन पन्ना पृ0 50

249. वही- पृ0 74-75.

250. वही- पृ0 92-93.

251. वही- पृ0 127.

252. वही- 130

253. राधाकृष्ण बुन्देली, मस्तानी का वंश और बांदा के नवाब (अप्रकाशित)।

254. मोतीलाल त्रिपाठी 'अशान्त' बुन्देलखण्ड दर्शन सं01980, शारदा प्रकाशन, झांसी, पृ0 451.

द्वितीय अध्याय

- इस्लाम धर्म का परिचय एवं उसके अभ्युदय के कारण।
- हजरत मोहम्मद साहब का जीवन परिचय एवं कुर्आन शरीफ में वर्णित सिद्धान्त।
- हदीस का विस्तृत परिचय एवं इसमें वर्णित नियम।
- इस्लाम धर्म के प्रचार के लिए किये गये उपाय एवं भारत में इसका आगमन।
- बुन्देलखण्ड में इस्लाम का आगमन एवं प्रचार-प्रसार।

इस्लाम धर्म और उससे सम्बन्धित संस्कृति

इस्लाम धर्म का परिचय एवं उसके अभ्युदय के कारण

इस्लाम धर्म से तात्पर्य उस धर्म से है, जिस धर्म का शुभारंभ पैगम्बर मोहम्मद साहब ने किया तथा उन्होंने कुआ़न शरीफ की उन आयतों को उजागर किया, जिन्हें खुदा के फरिश्ते रमजान के महीने में लाये। कुरान शरीफ का ज्ञान मोहम्मद साहब को 40 वर्ष की अवस्था में हुआ। उन्होंने सम्पूर्ण विश्व का मालिक अल्लाह अथवा परमपिता परमेश्वर को माना, वही सृष्टि का कर्ता-धर्ता है तथा सम्पूर्ण विश्व का स्वामी है। सुप्रसिद्ध ग्रंथ उस्वए रसूले अक्रम (सल्लल्लाहु अलैहि वसस्लम) के अनुसार- मोहम्मद साहब ने इस्लाम को इस प्रकार परिभाषित किया कि ''इस्लाम का अर्थ है खुदा की इबादत करो, किसी को उसका शरीक न ठहराओ, बजाबित नवाज पढ़ो, ज़कात अदा करो, रमज़ान में रोजे रखा करो, बैतुल्लाह का हज्ज़ करो, भली बात बताया करो, बुरी बात से रोका करो, घर वालों को सलाम किया करो।[1] जो व्यक्ति उपरोक्त बातों को स्वीकार करता है, वही इस्लाम धर्म का अनुयायी है और जो नहीं मानता, वह इस्लाम धर्म का विरोधी है।

इस्लाम धर्म के अनुसार- ईश्वर से सुन्दर कोई अन्य व्यक्ति नहीं है, वही सर्वशक्तिमान है और वही इबादत के काबिल भी।[2] परमात्मा पर विश्वास करने की सलाह इस्लाम देता है तथा पाँच महत्वपूर्ण बातों की ओर संकेत करता है -

1. फर्माया हराम बातों से दूर रहना, बड़े इबादतगुज़ार बन्दों में शुमार होगा।
2. अल्लाहतआला जो तुम्हारी तक़दीर में लिख चुका है उस पर राज़ी रहना, बड़े बेनियाज़ बन्दों में हो जाओगे।
3. जो बात अपने लिये चाहते हो वही दूसरों के लिये पसन्द करना, कामिल मुसल्मान बन जाओगें
4. अपने पड़ोसी से अच्छे सुलूक करते रहना, मोमिन बन जाओगे।
5. और बहुत कहकहे न लगाना क्योकि यह दिल को मुर्दः बना देता है।

(मुस्नदे अहमद, तिर्मिजी, तर्जुमानुस्सुन्नः)

इस्लाम का सबसे बड़ा सिद्धान्त यह है कि, धर्म वही है, जो खुदा पर पूर्ण विश्वास दिलाये, और उसका मानने वाला, खुदा, जो संसार का स्वामी है, उसके प्रति वफादार रहे। इसके साथ-साथ जो अल्लाह की किताब है (कुआ़न शरीफ), उस पर भी पूरा विश्वास रखे और उसका पाठ करे, उन्होंने बताया, जो तीन चीजों का अनुसरण करेगा, वही सच्चा मुसलमान होगा -

1. एक वह शख्स, जिसके नजदीक अल्लाह और उसका रसूल सब मासिवा से जियादः महबूब हों यानी, जितनी मुहब्बत उसको अल्लाह और उसके रसूल से हो उतनी किसी से न हो।
2. और एक वह शख्स, जिसको किसी बन्दे से मुहब्बत हो और महज अल्लाह ही के लिए हो (यानी किसी दुन्यवी गरज से न हो, महज इस वजह से मुहब्बत हो कि वह शख्स अल्लाह वाला है)।
3. और एक वह शख्स, जिसको अल्लाह तआला ने कुफ्र से बचा लिया हो। ख़्वाह पहले ही से

बचा रखा हो, ख्वाह कुफ्र से तौबा कर ली और बच गया (और इस बचा लेने) के बाद वह कुफ्र की तरफ आने को इस कद्र नापसन्द करता है, जैसे आग में डाले जाने को नापसन्द करता है (रिवायत किया इसको मुस्लिम व बुखारी ने)[3] (हयातुल्मुस्मीन)

ईश्वर से प्रेम करना ही इस्लाम का मूल सिद्धान्त है तथा जीवन के अन्त तक ईश्वर से संबंध और प्रेम बनाये रखना चाहिये। जो व्यक्ति खुदा के बन्दों से मोहब्बत करता है, वह खुदा से भी मोहब्बत करता है। हदीस में यह हिदायत दी गयी है कि ''अल्लाह तआला का इर्शाद है कि, मेरी मुहब्बत वाजिब है, उन लोगों के लिये जो बाह्म मेरी वजह से मुहब्बत करें और मेरी वजह से और मेरे तहल्लुक से कहीं जुड़कर न बैठें, मेरी वजह से बाह्म मुलाकात करें और मेरी वजह से एक दूसरे पर खर्च करें।[4] इस्लाम धर्म के अनुसार- प्रत्येक व्यक्ति को अच्छे व्यक्तियों की संगत करना चाहिये तथा भाग्य पर विश्वास करना चाहिये। सुख-दुःख का भोग खुदा का कुफ्र और बख्शिश करें, फिर भी हम तकदीर पर विश्वास न करके कर्म करते रहे। हजरत मोहम्मद साहब ने उपदेश दिया कि ''अमल किये जाओ, क्योंकि हर एक को उसी की तौफीक मिलती है, जिसके लिये वह पैदा हुआ हो। पर जो शख्स नेकबख्तों में से है, उसको सआदत तथा नेकबख्ती के कामों की तौफीक मिलती है और जो कोई बदबख्तों में से है, उसको शकावत और बदबख्ती वाले आमालेबद की ही तौफीक मिलती है। इसके बाद रसूलल्लाह ने कुरान पाक की आयतें पढ़ी।''[5] इस्लाम धर्म के अनुसार व्यक्ति को संयमी होना चाहिये। हजरत मोहम्मद साहब के अनुसार -''जियादः खामोश रहने और कम बोलने की आदत इख्तियार करो; क्योंकि यह आदत शैतान को दफा करने वाली और दीन के मुआमले में तुमको मदद देने वाली है।''[6]

इस्लाम धर्म के अनुसार लोग धर्म का अनुसरण करके लाभ कमा सकते हैं, इस्लाम ध र्म यह निर्देश देता है, कि हर व्यक्ति के साथ सद्व्यवहार किया जाये। इस्लाम धर्म की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि व्यक्ति सांसारिक सम्पत्ति से कोई प्रयोजन न रखे और जो सम्पत्ति अर्जित करे वह लोक कल्याण पर खर्च करे।

(1) उनमें एक तो यह है कि किसी बन्दः का माल सबकः की वज़ह से कम नहीं होता,

(2) और दूसरी बात यह है कि न ही जुल्म किया जायेगा किसी बन्दः पर ऐसा जुल्म जिस पर वह मज्लूम बन्दः सब्र करे, मगर अल्लाह तआला उसके इवज़ में उसकी इज़्जत को बढ़ा देगा।

(3) और तीसरी बात यह है कि नहीं खोलेगा कोई बन्दः सवाल का दरवाजः मगर अल्लाह तआला खोल देगा इस पर फक्र का दरवाजाः। इसके बाद आप सल्ल० ने फर्माया और जो बात इनके अलावः तुमसे बयान करना चाहता हूँ जिसको तुम्हे याद कर लेना और याद रखना चाहिए। वह यह है कि दुन्याः चार किस्म के लोगों के लिये है।

(1) जिन व्यक्तियों को खुदा ने शक्ति प्रदान की है, वे अपनी सम्पत्ति का कुछ भाग अल्लाह सें डरते हुए नेक कामो में खर्च करे।

(2) खुदा ने दूसरे प्रकार के ऐसे व्यक्ति बनाये है, जिनके पास कोई सम्पत्ति नहीं है, लेकिन ज्ञान है और वे ईमानदार भी हैं, किन्तु वे सोचते हैं कि यदि मुझे थोड़ी सम्पत्ति मिल जाये तो मैं भी कुछ अच्छे काम कर सकता हूँ।

(3) तीसरे किस्म के ऐसे व्यक्ति होते हैं, जिनके पास न तो सम्पत्ति है और न ही दिमांक, यदि उन्हें सम्पत्ति मिल जाये तो वे उसे गलत कार्यो में खर्च करेगें।

(4) चौथे किस्म के ऐसे व्यक्ति है जिनके पास न दिमाग है, न ही पैसा है और न वे मज़हब की राह पर चलते है इसलिये तीसरे और चौथे किस्म के लोग गुनाह करने वाले हैं।[7]

हर व्यक्ति को यह जानना चाहिये कि उसकी मृत्यु अवश्य संभव है और यह दुनिया भी कयामत के दिन खत्म होगी, इसलिये तुम्हारे गुनाहों और नेककर्मो का फैसला एक दिन जरूर होगा। हदीस के अनुसार- याद रखो कि सारी खैर और खुशगवारी और इसकी तमाम किस्से ज़न्नत में हैं और सारा दुःख और शर्र और इसकी तमाम किस्में दोज़ख में है, बस खबरदार! (जो कुछ करो) अल्लाह तआला से डरते हुए करो (और हर अमल के वक्त आखिरत के अन्ज़ाम को पेशेनज़र रखो और यकीन करो कि तुम अपने-अपने आमाल के साथ अल्लाह तआला के हुजूर में पेश किये ज़ाओगे। जिसने ज़र्रः बराबर कोई नेकी की होगी वह उसको भी देख लेगा और जिसने ज़र्रः बराबर कोई बुराई की होगी वह उसको पी पा लेगा।[8] जो व्यक्ति अल्लाह से डरता है वही श्रेष्ठ व्यक्ति है और व्यक्ति को दुनिया से दिल न लगाते हुए खुदा से मोहब्बत करनी चाहिए और उसकी इबादत करनी चाहिए। इस्लाम धर्म के अनुसार- मोहम्मद साहब का यह कथन है कि "कस्रत से याद किया करो, लज़्ज़तों को क़ता करने वाली चीज यानी मौत को।[9] मौत एक ऐसा वरदान है इससे डरने की आवश्यक्ता नही है, अच्छा कर्म करने वाला व्यक्ति कयामत के दिन अच्छी गति प्राप्त करेगा। हयातुल्मुस्लमीन के अनुसार- "ये कौन शख़्स है? जो तुम्हारे पास भेजे गये थे?" वह कहता है- "वे अल्लाह के पैगम्बर है।" एक पुकराने वाला अल्लाह की तरफ से आस्मान से पुकारता है, मेरे बन्दे ने सही जवाब दिया। इसके लिए जन्नत का फ़र्श कर दो और इसको जन्नत की पोशाक पहना दो, इसके लिए जन्नत की तरफ़ दरवाज़ः खाले दो, सो इसको जन्नत की हवा और खुशबू आती रहती है। इसके बाद हदीस में काफिर का हाल बयान किया गया है जो बिल्कुल इसकी है।[10]

इस्लाम धर्म के अनुसार- धर्म प्रचार करना भी एक धार्मिक कार्य है, प्रत्येक मुसलमान को धर्म प्रचार करना चाहिए। हदीस के अनुसार- लोग अपने पड़ोसियों से दीन का इल्म़ हासिल नहीं करते और दीन की समझ-बूझ पैदा नहीं करते और दीन से जाहिल़ रहने की इब्रत़नाक नताइज़ मालूम नहीं करते। अल्लाह की क़सम! लोग लाज़िमन अपने पड़ोसियों को दीन तालीम दें, उनके अन्दर दीन की समझ-बूझ पैदा करे, उन्हें नसीहत करे, उन्हें अच्छी बातें बतायें और उनको बुरी बातों से रोकें। नीच़ लोगों को चाहिए कि लाज़िमन अपने पडोसियों से दीन सीखें, दीन की समझ पैदा करें और उनकी नसीहतों को कबूल करें।[11] कुर्आन शरीफ में भी इसका उल्लेख मिलता है।" इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु तआ़ला अन्हु ने कहा कि अगर तुम्हे यह अंदेशः न हो कि कुर्आन की तीन आयतें रूस्वा कर देंगी तो जरूरी दीन की तब्लीग का काम करो। उसने कहा कि वे कौन सी तीन आयतें है ? इब्ने अब्बास रज़ियाल्लाहु तआ़ला अन्हु ने फमार्या- पहली आयत यह है -

अतअ़मुरुनन्नास बिल् बिर्रि व तन्सौन अन्फुसकुम्।[12]

(अनु0"क्या तुम लोगों को नेकी का बाज़ कहते और अपने को भूल जाते है।"इब्ने-अब्बास रज़ियाल्लाहु तआ़ला अन्हु ने कहा, क्या इस आयत पर अमलकर लिया है?उसने कहा, 'नहीं।

इस्लाम धर्म के सन्दर्भ में कुछ निर्देश धर्मग्रन्थों में दिये गये है, ये निम्नलिखित है-

(1) ईश्वर से डरना और उसकी शक्ति पर विश्वास रखना।

(2) हमेशा न्याय के रास्ते पर चलना तथा क्रोध में किसी को अपशब्द न कहना और न किसी के साथ अन्याय करना।

(3) जब कोई भी व्यक्ति गरीब हो, तो वह गरीबी को बर्दाश्त करे और गरीबी में खुशहाल रहे और जब खुदा उसे खुशहाली दे, तो वह घमण्ड न करे तथा गरीबों की मदद करता रहे।

(4) संसार में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के साथ हम अच्छे रिश्ते कायम करे, चाहे कोई भी व्यक्ति हमारे साथ दुर्व्यवहार और दुश्मनी क्यों न रखे।

(5) यदि किसी व्यक्ति ने मेरे साथ अन्याय किया है और मेरी उपेक्षा की है, तो भी मैं उसकी उपेक्षा न करूँ।

(6) मेरे पास उन व्यक्तियों को क्षमा करने की शक्ति हो, जिन्होंने मेरे ऊपर अत्याचार किये है और मेरे साथ अन्याय किया है।

(7) मैं हमेशा शान्त रहूँ और परमात्मा पर विश्वास करके हर चीज़ पर विचार करूँ और यह भी सोचूं कि मेरे कर्मो का मुझे क्या परिणाम मिलने वाला है, मेरा सम्बन्ध सदैव ईश्वर पर विश्वास करने वाले व्यक्तियों के साथ हो।

(8) जब किसी व्यक्ति से गोपनीय वार्ता हो, तो अल्लाह को गवाह बनाकर ये बातें की जायें। किसी को भी डरवाया-धमकाया न ज़ाये और न खुद किसी से डरा जाये।

(9) हमें चाहिए कि जो भी अच्छी चीज़े हम देखें, उनसे हम शिक्षा ग्रहण करें और उन पर अमल करे।[13]

इसके अतिरिक्त भी इस्लाम धर्म में दस बातों का उल्लेख किया गया है जिनका अनुकरण करना अनिवार्य है-

(1) किसी को खुदा की बराबरी का मत मानों, चाहे तुमको कत्ल कर दिया जाये।

(2) अपने माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन न करो, बिना किसी सम्पत्ति की लालच के वे तुम्हे निकालें तो तुम निकल जाओ।

(3) हमेशा नवाज़ पढ़ते रहो और जीवन के अंत तक नवाज़ पढ़ो।

(4) मादक पदार्थो का सेवन न करो क्योंकि मादक पदार्थ ही बुराइयों की जड़ है।

(5) गुनाहों से बचो क्योंकि खुदा गुनाह करने वालों से क्रोधित होता है।

(6) यदि धर्म के नाम पर ज़ेहाद कर रहे हो तो पीठ फेरकर मत भागों। जेहाद में लगे रहो।

(7) यदि कही संक्रामक रोग फैल जाये और लोगों की मृत्यु होने लगे तो तुम वहाँ से मौत के डर से मत भागों।

(8) उतना ही पैसा खर्च करो जितनी तुम्हांरी हैसियत हो, तुम्हारे परिवार के सदस्यों को बुरे वक्त में तकलीफ न हो इतना पैसा जोड़कर रखो फजूलखर्ची मत करो।

(9) परिवार के सदस्यों को अदब करना सीखाओ और इसके लिए सख़्ती भी करो।

(10) अपने परिवार के सदस्यों को खुदा का डर दिखाया करो ताकि वो अन्याय न करे।[14]

इस्लाम धर्म में नवाज़ पढ़ने को सर्वाधिक जोर दिया है, हदीस में इसका उल्लेख मिलता है- ''जब तुम नमाज़ के लिए खड़े हो तो उस शख़्स की सी नमाज़ पढ़ो जो सबको अलविदा कहने वाला और सबसे रूख़्सत होने वाला हो (यानी दुन्या से जाने वाले आदमी की नमाज़ जैसी होनी चाहिए, तुम हर नमाज़ वैसी ही पढ़ने की कोशिश करो) और (दूसरी बात यह याद रखो) ऐसी कोई बात जवान से न निकालो, जिसकी कल तुमको माज़िरत और जवाबदेही करनी पड़े। (यानि बात कहते वक्त हमेशा इसका ख्याल रखों कि ऐसी बात मुँह से न निकले, जिसकी जवाबदेही किसी के सामने इस दुनिया में या कयामत के दिन अल्ल़ाह तअ़ला शान्हू के हुजूर में करनी पड़े) और (तीसरी बात यह याद रखो) आदमियो के पास और उनके हाथ में जो कुछ नज़र आता है, इससे अपने आप को कतअ़न् मायूस कर लो (यानि तुम्हारी) उम्मीदो और तवज्जोह का मर्कज़ सिर्फ अल्लाह रब्बुल्-आलमीन हो और मख़्लूक़ की तरफ से अपनी उम्मीदों को बिल्कुल मुन्कते करो)।[15]

इस्लाम के अन्तर्गत सात ऐसी बातो का निर्देश है, जिसका अनुपालन आवश्यक है-

(1) गरीब और असहाय व्यक्तियों से प्रेम करो और उन्हे अपने पास रखो।

(2) गरीबो पर सदैव दया करो, जिनकी आर्थिक स्थिति हमसे कमजोर है और जरूरत पर उन लोगों की मदद करो, जिनके पास किसी चीज का अभाव है।

(3) जो अपने नज्दीकी रिश्तेदार है, उन पर भी हमदर्दी रखी जायें और उनकी भी मदद की जाये तथा उनसे अच्छा व्यवहार किया जाये, चाहे वे हमारे साथ अच्छा व्यवहार न करे।

(4) किसी भी व्यक्ति से कोई चीज़ न मांगों, जो भी मांगना हो परमात्मा से मांगों।

(5) हर वक्त न्याय की बात करना चाहिए, चाहे वह कड़वी क्यों न हो।

(6) हमेशा अल्लाह के बतायें रास्तें पर चलो और उसमें चलने पर कोई परवाह न करो।

(7) ''ला हो-ल वला कुव्वत्त इल्ला विल्लाह'' कस्रत से पैदा करो, क्योंकि ये सब बातें उस ख़ज़ाने से है, जो अर्श के नीचे है (यानी ये उस ख़ज़ाने के क़ीमती जवाहरात हैं। जो अर्शे इलाही के नीचे है अल्लाह ही जिन बन्दों को चाहता है अ़ता फ़र्माता है, किसी और की वहाँ दस्तरस नही है।[16] इसी ग्रन्थ में व्यक्ति को यह हिदायत दी गयी है कि, वह अपने जीवन का समय-समय पर मूल्यांकन करे, इस सम्बन्ध में पाँच नियमों का अनुपालन जरूरी है-

(1) हर व्यक्ति को अपने जीवन का मूल्यांकन करना चाहिए कि उसने अपनी जिन्दगी में कौन-कौन से काम किये।

(2) उसे अपनी युवावस्था के बारे में विचार करना चाहिए कि, उसने अपनी जवानी में कौन-कौन से काम किये।

(3) हर व्यक्ति को यह विचार करना चाहिए कि उसने अपनी संचित सम्पत्ति कैसे कमाई।

(4) ईश्वर के सन्दर्भ में तुमने क्या किया अर्थात् कौन से अच्छे कार्य किये जिनके कारण तुम्हारी प्रशंसा हो।[17]

हदीस में ही ऐसी चार बातों का उल्लेख मिलता है, जिनका अनुपालन सच्चे मुसलमान के लिए जरूरी है-

1- अमानत की हिफ़ाजत,

2- बातो में सच्चाई,

3- हुस्ने अख़्लाक़

4- खाने में ऐहतियात और परहेज़गारी।[18]

अपनी जिंदगी को संवारने के लिए हदीस में पाँच बातों का अनुपालन जरूरी बताया गया है-

1- गऩीमत जानों जवानी को बुढ़ापे के आने से पहले।

2- ग़नीमत जानों तन्दुरुस्ती को बीमार होने से पहले।

3- ग़नीमत जानों खुशहाली और फ़राख़दस्ती को नादरी और तंगदस्ती से पहले।

4- ग़नीमत जानों फुर्सत और फ़राग़त को मश्गूलियत से पहले।

5- ग़नीमत जानों जिन्दगी को मौत आने से पहले।[19]

इस्लाम धर्म में औरतों को भी नसीहत दी गयी और यह कहा गया है कि, व्यक्ति औरतों पर ज्यादा ध्यान दे और इन्हें अच्छे रास्ते पर चलायें क्योंकि ज्यादातर औरते जन्नत की जगह दोजख़ में जाती है। इसलिए औरतों को यह हिदायत दी गयी है- ''तुम्हे (बाहम गुफ्तगू) लानत करने की ज़ियादः आदत होती है और तुम अपने शौहर की भी बहुत नाशुक्री करती हो। मैंने तुम जैसा दीन और अक़्ल में नाक़िस होकर फिर एक दानिशमंद शख़्स पर ग़ालिब आ जाने वाला किसी को नहीं देखा।''[20]

व्यक्ति को यह हिदायत है कि, वह गुनाह न करे क्योंकि गुनाह शैतान के लिए है, गुनाह जायज़ नहीं है। इसलिए गुनाह से बचा जाये।[21] यदि किसी प्रकार की कोई कसम खाई जाये, तो उस वादे को पूरा किया जाये। इस प्रकार की कसम भी न खाई जाये जिसे पूरा न किया जा सके।[22] इसके अतिरिक्त इस्लाम में इबाद़त के समय पवित्रता, शरीर को स्वच्छ रखना, स्नान करना, बुजू करना आदि विशेष नियम है। जो व्यक्ति उपरोक्त नियमों का पालन करता है, वही सच्चा मुसलमान है। हर मुसलमान को अपने जीवन में 40 नियमों का अनुपालन करना अत्यन्त आवश्यक है-

(1) तू अल्लाह पर ईमान लाये (2) और आख़िरत के दिन पर

(3) और फरिश्तों के वुजूद पर (4) और सब आस्मानी किताबों पर

(5) और तमाम अम्बिया पर (6) और मरने के बाद दो बार जिन्दगी पर

(7) और तक़दीर पर कि भला और बुरा जो कुछ होता है सब अल्लाह ही की तरफ से है।

(8) और गवाही दे इस पर कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं और मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैही वसल्लम अल्लाह के (सच्चे) रसूल है।

(9) और हर नमाज़ के वक़्त कामिल बुजू करके नमाज़ को क़ाइम करे (कामिल वुजू वह कहलाता है, जिसमें आदाब व मुस्तहबात की रिआ़यत रखी गयी हो और हर नमाज़ के लिए नया वुजू मुस्तहब है और नमाज़ के क़ाइम करने से मुराद यह है कि उसके तमाम ज़ाहिरी व बातिनी आदाम का इहतमाम करे)।

(10) ज़कात अदा करे। (11) रमज़ान के रोज़े रखे। (12) अगर माल हो तो हज्ज करे।

(13) बारह रकअ़त सुन्नते मुवक्कदः रोज़ानः अदा करे (सुबह से पहले दो रक्अ़त, जुहर से कब्ल रक्अ़त जुह्र के बाद दो रक्अ़त, माग्रिब के बाद दो रक्अ़त और ईशा के बाद दो रक्अ़त)।

(14) वित्र किसी रात में न छोड़े (15) अल्लाह के साथ किसी जीज़ को शरीक न कर

(16) वाल्दैन की नाफ़र्मानी न कर (17) जुल्म से यतीम का माल न रख

(18) शराब न पी (19) ज़िना न कर

(20) झूंठी गवाही न दे (21) झूंठी कसम न खा

(22) ख़्हिशाते नफ़्सानियः पर अमल न कर (23) मुसल्मान भाई की ग़ीबत न कर

(24) और अ़फ़ीफ औरत या मर्द पर तुह्मत न लगा (25) अपने मुसल्मान भाई के कीन न रख

(26) लह्वोलइव में मश्गूल न हो (27) तमाशाइयों में शरीक न हो

(28) किसी पस्तः कद को ऐब (29) किसी का मज़ाक मत उड़ा

(30) न मुल्मानों के बीच चुगुलखोरी कर (31) अल्लाह जल्लशान्हू की नैमतों पर उसका शुक्र कर

(32) बला और मुसीब्त से बेख़ौफ मत हो (33) अल्लाह के अज़ाब से बेख़ौफ मत हो

(34) अइज्जः से क़ता तअल्लुकः मत कर (35) बल्कि इनके साथ सिलएरहमी कर

(36) अल्लाह की किसी मख़्लूक को लानत मत कर।

(37) सुब्हानल्लाह, अल्लाहु अक्बर और ला इलाह का अक्सर विर्द रखा कर

(38) जुम्अः और ईदैन में हाज़िरी मत छोड़

(39) और इस बात की यक़ीन रख कि जो तक्लीफ़ और राहत तुझे पहुँची वह मुक़द्दर में थी, टलने वाली न थी और जो कुछ नहीं पहुँचा वह किसी तरह भी पहुँचने वाला न था।

(40) और कलामुल्लाह की तिलावत किसी हाल में भी मत छेड़।[23]

(1) इस्लाम धर्म का परिचय-

इस्लाम धर्म खुदा पर यक़ीन करने वालों का मज़हब है, इस धर्म के पैगम्बर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम हज़रत मोहब्बत साहब थे, इन्होंने अपने धर्म के माध्यम से सम्पूर्ण अरब क्षेत्र में एकेश्वरवाद का प्रचार-प्रसार किया और बुत-पूजा व अनेक देववाद का घोर विरोध किया। प्रारम्भ में इनके धर्म को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, लेकिन सक्रिय प्रयासों के कारण कलान्तर में यह धर्म पूरे विश्व में फैला।

इस्लाम धर्म से सम्बन्धित धर्म ग्रन्थ-

इस्लाम धर्म से सम्बन्धित सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ (1) कुर्आन शरीफ़ है, जिसकी संरचना खुदा ने की थी तथा इसे रमजान के महीने में खुदा के फरिश्तों ने मोहम्मद साहब के ज़हन में उतारा था। यह धर्म ग्रन्थ इस्लाम धर्म का पवित्र ग्रन्थ है। इसे मुसलमान लोग बड़ी श्रद्धा से पढ़ते है, इसके अतिरिक्त इस धर्म के पवित्र ग्रन्थ (1) सुन्ना (2) इज़्मा (3) क्यास। इसके अतिरिक्त कुछ उपग्रन्थ भी है-

(1) सुन्नत-उल-कौल (2) सुन्नत-उल-फेल (3) सुन्नत-उल-तकरीर

इसके अतिरिक्त पवित्र हदीस भी कई भागों में विभाजित है-

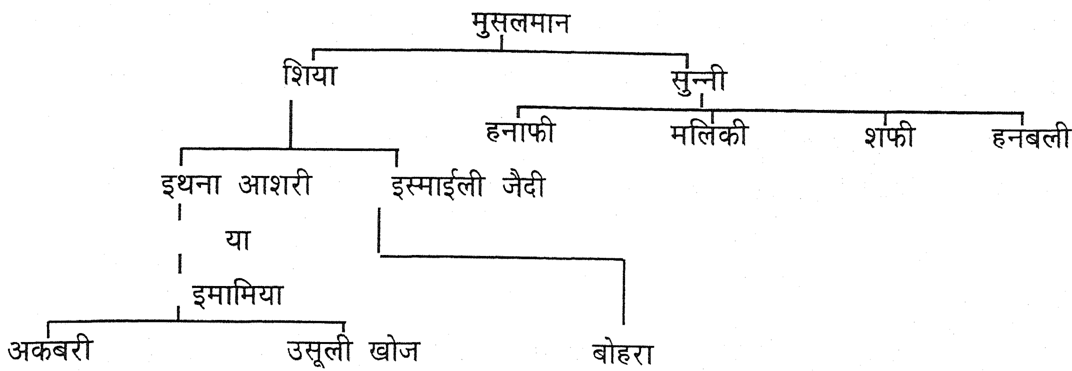
(1) अहदीस-ऐ-मुतबातर (2) अहदीस-ऐ-मशहूर (3) अखबारी-ऐ-वाहिद

पवित्र ग्रन्थ इज़्मा भी कई भागों में विभाजित है-

(1)हज़रत के साथियों का इज्मा (2) विधि शास्त्रियों का इज्मा

(3)मुस्लिम जनता का इज्मा

मुस्लिम धर्म का विभाजन- (जाति के आधार पर)



इस्लाम के धार्मिक चिन्ह-

इस्लाम धर्म का धार्मिक चिन्ह, द्वितीया का चन्द्रमा, जिसके ऊपर सितारा होता है, पूरे विश्व में सर्वमान्य है। इसके अतिरिक्त हरे रंग का ध्वज होता हैं, जो इस्लाम धर्म की धार्मिक पहचान है।

मुसलमान की धार्मिक पहचान-

दुनिया भर के मुसलमान अपनी अलग धार्मिक पहचान रखते है, इनकी धार्मिक पहचान अन्य धर्मो से बिल्कुल अलग है। ये लोग तुर्की टोपी, कुर्ता-पैजामा, तहमत, शेरवानी, और साफा बाँधते है, इनकी औरते सलवार-कुर्ता, गरारा, जम्फर आदि पहनती है और सिर के ऊपर बुर्का अथवा चादर ओढ़ती है। मर्द लोग दाढ़ी रखते हैं।

इस्लाम के धार्मिक स्थल-

इस्लाम धर्म के पवित्र धार्मिक स्थल मस्ज़िदे एवं ईदगाह है, जहाँ इस धर्म से सम्बन्धित लोग पाँच वक्त की नवाज़ अदा करते है। रमजान के महीने में हर मुसलमान रोजा रखता है और पवित्र कुर्आन् शरीफ का पाठ करता है। बहुत से मुसलमान पवित्र तीर्थ-स्थल, मक्का-मदीने का हज़ भी करते है। इसके अतिरिक्त अन्य धार्मिक स्थलों, इमामबाड़ों और दरगाहों में नमाज पढ़ते और चादर आदि चढ़ाते है।

इस्लाम धर्म के अभ्युदय के कारण-

अरब परिक्षेत्र में जब इस्लाम का अभ्युदय नहीं हुआ था, उस समय वहाँ के लोग विविध धर्मो का अनुसरण करते थे। उनमें से कुछ धर्म मूर्ति पूजा और व्यक्ति पूजा पर जोर देते थे, धर्मावलम्बियो को बुत परस्त कहा जाता था। यह मूर्ति-उपासना अरब के प्राचीन निवासियों के मध्य प्रचलित थी। इस समय अरब में कुछ लोग नास्तिक भी थे, ये लोग किसी भी प्रकार के परमात्मा को नहीं मानते थे। इसके अतिरिक्त यहूदी और इसाई भी अरब में निवास करते थे। अरब के निवासी दो प्रकार के बुतों को पूजते थे। पहले बुत वे थे, जो दिखलाई देते थे और दूसरे बुत वे थे, जो दिखलाई नहीं देते थे। दूसरे प्रकार के बुतों में घर के पूर्वज होते थे, जिनकी मूर्तियां बनाकर पूजी जाती थी, ये बुत उन बुर्जुगो के होते थे, जिन्होने अपने जीवन में नेक काम किये थे। इस युग में कोई एक सर्वमान्य देवता नहीं था, बल्कि पूर्वजों की आत्माओं की शक्ति पर विश्वास किया जाता था और उन्ही

से गुनाहों के लिए मांफी मांगी जाती थी। इस समय सम्पूर्ण अरब में (1) हुबुल (2) सुवाअ (3) वद (4) यगूस (5) यऊफ़ (6) नसर (7) उज़्ज़ा (8) लात (9) मनात (10) दवार (11) असाफ, यह कोहे सफ़ा (सफ़ा नामक पहाड़) पर था, (12) नाइल, कोहे मरवह (मरवह पहाड़) पर था, इन दो बुतों पर कुर्बानियां (बलि) की जाती थी (13) अबाअब, इस पर ऊँटों की कुर्बानी (बलि) की जाती थी (14) काबे के अन्दर हज़रत इब्राहीम की तस्वीर थी और उनके हाथ में इस्तखारह (एक प्रकार का अमल) के तीर थे, जो इज़लाम कहलाते थे और एक भेड़ का बच्चा उनके करीब खड़ा था। हज़रत इस्माईल की मूरत (मूर्ति) खाना काबा में रखी हुई थी। (15) हज़रत मरयम और हज़रत ईसा अलैहिस्लाम की भी तस्वीरें और मूरतें खाना काबा में मौजूद थी।[24]

इस्लाम धर्म के पहले अनेक पैगम्बर हुये, जिन्होंने एकेश्वरवाद का प्रचार प्रसार किया, इनमें से हज़रत मूसा का नाम प्रमुख रूप से आता है, जिनके सामने तौरात नामक ग्रन्थ की संरचना हुयी, किन्तु तौरात के सिद्धान्तों का कोई प्रभाव बहुत समय तक नहीं पड़ा। इसके पश्चात् ईसामसीह के जमाने में एन्ज़िल अथवा बाइबिल की रचना हुयी, किन्तु कुछ समय बाद इस पवित्र धार्मिक ग्रन्थ के उपदेशों को व्यक्तियों ने ठीक ढंग से नहीं स्वीकारा। अरब देशों में ईश्वरवाद का प्रचार-प्रसार वद यगूस, यऊक के ज़माने में प्रारम्भ हो गया था तथा यह ईश्वरवाद नूह अलैहि के पैदा होने तक फलता-फूलता रहा, किन्तु इन पैगम्बरों की भी मूर्तियाँ बनाकर काबें में रख दी गयी थी। जो लोग अज्ञानी थे, वे लोग मूतिर्यो की पूजा करते थे और जो ज्ञानवान व्यक्ति थे, वे प्रकृति उपासना पर बल देते थे तथा वे एक ऐसी शक्ति को भी मान्यता देते थे, जिसने सम्पूर्ण विश्व की रचना की है। नास्तिक और अधर्मी लोग खुदा, कयामत, जन्नत और दोज़ख को नहीं मानते थे, इनकी निगाह में दुनिया अमर है। धीरे-धीरे अरब में यहूदियों का प्रभाव बढ़ा, तौरात् का प्रचार अरब देश में 300 ई० को हुआ, किन्तु कुछ दिन पश्चात् व्यक्ति धर्म के नाम पर गुमराह होने लगा, इस समय एक ऐसे मसीहा की आवश्यकता थी, जो गुमराह हुए व्यक्तियों को सही रास्तें पर लायें और जो उनका वास्तविक धर्म है, उससे उनका परिचय कराये। तौरात पर विश्वास करने वाले अपने धर्म को इलहामी (आसमानी) मानते थे, वे हज़रत शीश अलैहि और इदरीश को अपना पैगम्बर मानते थे तथा रोज़ा रखते थे और पाँचो वक्त की नवाज़ पढ़ते थे, सरयारे (तारे) की पूजा करते थे। इनकी निग़ाह में खाना काबा का बड़ा सम्मान था।

जब हज़रत मोहम्मद साहब का जन्म हुआ, उस समय अरब की धार्मिक स्थिति ठीक नहीं थी। युवावस्था में मोहम्मद साहब ने तद्युगीन परिस्थितियों का गम्भीर अध्ययन किया तथा 40 वर्ष की आयु में उन्हें आध्यात्म का पूर्ण ज्ञान हुआ। इस समय रमज़ान के महीने में कुर्आन शरीफ की आयतें खुदा के फरिश्तों ने मुहम्मद साहब पर उतारी। मोहम्मद साहब ने उन आयतों के अनुसार इस्लाम धर्म का प्रचार-प्रसार किया तथा अनेक लोग जो इनके प्रभाव में आयें, वे मुसलमान धर्म को मानने लगे। इस धर्म को सर्वप्रथम मोहम्मद साहब की बीबी हदीज़ा ने अपनाया, इसके बाद अबुबक्र, अली जैद-बिन हारसा, बिलाल, उमर-बिन अम्बासा, सलमा, खालिद और बिन सईद मुसलमान बने।

इस्लाम धर्म अपने सिद्धान्तों के कारण बहुत लोकप्रिय हुआ। इस धर्म का विरोध विधर्मियों ने किया, ये लोग मुसलमानों को नवाज़ नहीं पढ़ने देते थे, लोग चोरी-छुपे नवाज़ पढ़ते थे,

इस समय मोहम्मद साहब ने सफ़ा पहाड़ पर चढ़ कर कुरैश को यह उपदेश दिया,- ''यदि मैं तुमको खबर दूँ कि दुश्मन तुम पर सुबह को आएगा या शाम को, तो क्या तुम लोग मुझे सच्चा मानोगे? कुरैश ने कहा, ''हाँ'', तब नबी सल्ल० ने फरमाया, मैं तुम को डराता हूँ आगे के सख्त अज़ाब से। खुदा के इन हुक्मों पर ईमान लाओ जो मेरे पास आये है। कुरैश इस कलाम को सुनकर अलग हो गये।''[25] कुरैशियों ने मोहम्मद साहब का घोर विरोध किया, लेकिन धीरे-धीरे इस्लाम के अनुकरणकर्ताओं की संख्या 300 तक हो गयी। जब हजरत मोहम्मद साहब धर्म-प्रचार के लिए मक्का की ओर गये, उस समय भी उनका घोर विरोध हुआ तथा उनका कुछ इस प्रकार से अपमान हुआ कि लड़को ने आपके (मोहम्मद साहब) पीछे तालियां बजानी शुरु की और ढेले मारने लगे, यहाँ तक कि आप एक बाग़ की दिवार की छाया में बैठ गये, और लड़के लोग लौट गये। जब आप को उन के शोर व गुल से सुकून हासिल हो गया तो, रात को खजूर के बाग़ में ठहर गये। आधी रात को जब आप नमाज़ के लिए खड़े हुए तो कुछ जिन्न इस तरफ से होकर गुजरे और उन्होंने इस मकाम (स्थान) पर ठहर कर कुर्आन को सुना। इसके बाद नबी सल्ल० मक्का में दाखिल हुए। मक्का वाले बदस्तूर (उसी तरह) आपकी अदावत (दुश्मनी) पर तुले हुए थे।[26]

धीरे-धीरे इस्लाम का प्रचार बढ़ता गया और लोग इसके प्रचार में रोड़े अटकाते रहे। कुछ सशस्त्र सैनिकों ने भी इस्लाम का विरोध किया, किन्तु धीरे-धीरे इस्लाम का प्रभाव मक्का से लेकर मदीने तक बढ़ गया। हज़रत मोहम्मद साहब ने मदीने का सफर किया और यहाँ जाकर उन्होंने अज़ान पढ़ी और दूसरों को पढ़ायी। कुछ लोगों ने कपट धारण कर इस्लाम से हमदर्दी दिखलाई, किन्तु वास्तविक रूप में ये लोग इस्लाम के दुश्मन थे, फिर भी 10वीं रमजान 8 हिजरी को 10 हजार सेना के साथ मोहम्मद साहब ने मक्का पर आक्रमण किया और उस पर फतेह हासिल की। इनकी सेना में 1 हजार मर्द बनूसलीम के, 1 हजार मर्द मुजीना के, 400 मर्द गफ़्फार के और 400 मर्द असलम के थे, तथा अन्य जगहों के लोग भी थे। इनका यह आक्रमण जेहाद के उद्देश्य से किया गया था। इनके मुख्य दुश्मनों में- साअद बिन खनीस, जैद, राफ़ेअ, रिफ़ाअह इब्ने जैद, कनायह आदि थे। मक्का की फतेह के बाद धीरे-धीरे इस्लाम धर्म पूरे अरब में फैल गया, मोहम्मद साहब के जीवन का अन्तिम उपदेश यह था- ''ऐ लोगो ! आग भड़की, फित्ने आ गये तुमको मालूम रहे कि जिस चीज़ को कुर्आन ने हलाल या हराम क़रार दिया है, उसके सिवा मैने किसी चीज को हराम या हलाल करार नही दिया।'' फिर हज़रत आयशा रजि० के घर में आये और वही आपका इन्तकाल हो गया।[27]

सुप्रसिद्ध विद्वान फैजी के अनुसार - "Prophet himself never claimed that Islam was a new religion. He asserted, on the other hand, that it was as old as the bills"

उपरोक्त कथन के अनुसार, इस्लाम धर्म के अन्तर्गत कोई नवीन धार्मिक नियमों का सृजन नहीं किया गया, अपितु इस धर्म में पुरातन धार्मिक नियमों को संशोधित किया गया है। इस्लाम धर्म निम्न तत्वों में विभाजित है :-

(1) इस्लाम शब्द- अरबी भाषा का है, जिसका अर्थ इश्वर की इच्छा के प्रति समर्पण करना है। (Submission to the will of God) अर्थात् जिन्होंने ईश्वर की इच्छा के प्रति अपना समर्पण किया, वे मुसलमान कहलाये।

(2) तौहीद- इस्लाम धर्म के पहले अरब में अनेक देवी-देवताओं की पूजा की जाती थी, किन्तु बाद में यह माना गया कि, ईश्वर एक है और उसकी सत्ता अविभाज्य है, अतः तौहीद से तात्पर्य है कि ईश्वर एक है।

(3) अख्वद- इस्लाम धर्म की सबसे बड़ी विशेषता है कि, सभी मानवों के बीच भाई-चारा की भावना स्वीकार की जाती है। इस धर्म के अर्न्तगत कोई छोटा-बड़ा, ऊँचा-नीचा नहीं होता, इस्लाम की दृष्टि में सभी बराबर होते हैं।

इस्लाम धर्म के विकास को हम पाँच कालों में विभाजित करते हैं-

(1) इस्लाम धर्म के विकास का प्रथम काल 622 ई० से प्रारम्भ होता है और 632 ई० तक चलता है, इस युग में कुर्आन और हदीस का विकास हुआ।

(2) यह काल 632 ई० से प्रारम्भ हुआ तथा तीसरे खलीफा उस्मान जैत के समय तक रहा, इस युग में कुर्आन की आयतों का मूल्यांकन किया गया।

(3) तीसरा युग इस्लाम के विकास का युग है, इसमें सुन्नी धर्म का विकास हुआ, जो आगे चलकर हनाफी, मालिकी, शफी, और हनबाल आदि भागों में विभाजित हुये।

(4) इस्लाम के विकास के चतुर्थ काल में केवल परम्पराओं का ही विकास हुआ, यह काल 922ई० से लेकर 924 ई० तक रहा।

(5) इस्लाम के विकास का पांचवाँ काल सुल्तान के पद की समाप्ति के बाद हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस्लाम धर्म का प्रचार-प्रसार शक्ति और धार्मिक सिद्धांतों के आधार पर हुआ।

हज़रत मोहम्मद साहब का जीवन परिचय व कुर्आन शरीफ में वर्णित सिद्धान्त

युग का यह नियम है कि, जब कोई विशेष समस्याएँ किसी स्थान पर उत्पन्न हो जाती है, तब उनके समाधान के लिये कोई न कोई पैगम्बर परमात्मा संसार में भेज देता है। जब अरब आदि देशों में व्यक्ति वास्तविक धर्म को छोड़कर बहक गये, उस समय एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी, जो भटके हुये व्यक्ति को उचित राह दिखाये। इस अवसर पर खुदा ने मोहम्मद साहब को पैगम्बर बनाकर भेजा। मोहम्मद साहब का जन्म अबरह की चढ़ाई के 55 दिन बाद 40 जुलूसे किसराए नोशीखां और 570 ई० में हुआ। हज़रत मोहम्मद साहब के पिता का नाम अब्दुल्लाह था, इन्हें हज़रत हलीमा ने दूध पिलाया तथा हलीमा के पुत्रों के साथ वे चार साल की उम्र में बकरियाँ चराते थे। उसी समय खुदा के फरिश्ते आये, जिन्होंने उनके दिल को निकालकर उससे कालाबिन्दु अलग किया, इस बात की सूचना मोहम्मद साहब की माँ आमना को दी गयी। बीबी आमना इस घटना से आतंकित नहीं हुयी और न ही हजरत साहब को इससे कोई नुकसान हुआ।

जब हजरत मोहम्मद साहब की उम्र छः वर्ष की थी, उस समय उनकी माँ बीबी आमना और उनके पिता अपने संबंधियों से मिलने के लिये मदीना गये थे, जहाँ उनका स्वर्गवास हो गया। इस तरह से मोहम्मद साहब बिल्कुल अनाथ हो गये, इनका पालन-पोषण दादा अब्दुल मुत्तलिब

ने किया तथा इन्हें अपने पुत्र अबू तालिब के सुपुर्द कर दिया, अबू तालिब ने इन्हें पिता का प्यार दिया। बचपन में ये किसी शरारती लड़के के साथ नहीं खेलते थे तथा इनके चरित्र में कोई खराबी उत्पन्न नहीं हुयी। जब ये 13 वर्ष के हुये, उस समय ये अबू तालिब के साथ सीरिया घूमने गये, यहाँ पर उन्होंने बहीरा राहिब के झोंपड़े में नबूबत की निशानियां देखी। बुहीरा राहिब ने उन्हें अपने झोपड़े के अन्दर बुलाकर गौर से देखा और उन्हें एक विशिष्ट व्यक्ति पाया, इसकी सूचना उन्होंने अपने कौम को दी।

प्रारम्भ में मोहम्मद साहब तिजारत (व्यापार) किया करते थे और वे हज़रत खदीज़तुल कुठरा का सामान लेकर बाहर जाया करते थे। इनका विवाह खदीज़ा के साथ हुआ, इस समय हजरत मोहम्मद साहब की उम्र 25 वर्ष की थी। इनका वैवाहिक जीवन बहुत ही ईमानदारी से व्यतीत हुआ तथा गृहस्थ होकर भी उन्होंने किसी भी प्रकार का कोई गुनाह नहीं किया और न सम्पत्ति के प्रति मोह पैदा किया।

जब हजरत मोहम्मद साहब 35 वर्ष के हुये, उस समय वहाँ के बादशाह कुरैश ने काबे को गिराकर पुनः बनवाना शुरू किया। यहाँ पर एक काला पत्थर था, उसे निर्माण स्थल में रखा जाना था। उस पत्थर को रखने के लिए विवाद छिड़ गया, उस पत्थर को मोहम्मद साहब ने उसी जगह रखा रहने दिया। उसके बाद मोहम्मद साहब ने उसे पवित्र स्थान समझकर वहाँ इबादत की तथा इसी के समीप एक पहाड़ी में खोह थी, जहाँ मोहम्मद साहब कई दिन तक तपस्या करते रहे, इस समय मोहम्मद साहब को लोग अमीन (अमानतदार) कहा करते थे।

जिस समय मोहम्मद साहब तपस्या कर रहे थे, उस समय उन्होंने परमात्मा के सन्दर्भ में सच्चे स्वप्न देखना प्रारम्भ कर दिये तथा बहुत से व्यक्ति आसमानी किताबों की चर्चा इनसे किया करते थे। वे परमात्मा के ध्यान में चार-चार दिन बिता देते थे। जिस समय मोहम्मद साहब 40 वर्ष के हुए, उस समय उन्हें आध्यात्म का बोध हुआ तथा कुर्आन शरीफ की आयतें खुदा के फरिश्ते इनके सामने लाने लगे। पहले ये फरिश्ते आदमी के भेष में आते थे और मोहम्मद साहब से बातें करते थे, इस समय इन्हें कानों में घण्टी की आवाज सुनायी देती थी और ये चादर ओढ़ कर लेट जाते थे, कभी-कभी घबराने भी लगते थे। हदीस शरीफ़ में इसका वर्णन इस प्रकार उपलब्ध होता है 'बहु-अ-अ-शदू-अला' (और वह मुझ पर अधिक सख्त है) सख्त जाड़े में आप पसीने-पसीने हो जाते, मतलब यह कि जो वहाँ आरम्भ में आप वर गारे हिरा में नाजिल हुयी वह यह थी-'इक़रा बिस्मिरब्बिकल लजी खलक० खलक़ल इन्सा-न मिन अलक इक़रा व रब्बिकल अक्रमुल्लजी अल्ल-म बिल क़लम, अल्लमल इन्साना मालम याअलम०।[28]

सबसे पहले मोहम्मद साहब की बीबी खदीसा ने इस्लाम स्वीकार किया, इसके बाद मोहम्मद साहब का नमाज पढ़ना अनिवार्य किया गया। इनके समय में हज़रत जिब्रील अलैहि० आए उन्होंने वुजू करके पूरे अरक़ाने नमाज व तरक़ीब आपको नवाज़ पढ़कर दिखाई, ये पुराने पैगम्बर थे, जो नवाज का तरीका सिखाने के लिये सातों आसमान पार करते हुये धरती पर आये थे और फिर वहीं तशरीफ ले गये।

मोहम्मद साहब ने अपना शेष जीवन धर्म प्रचार में बिताया और उन्होंने अरब के निवासियों में धार्मिक एकता पैदा करने का प्रयत्न किया। पहले यहाँ के निवासी बुत परस्त, अधर्मी

और बुर्जुगों को पूजने वाले थे, मोहम्मद साहब की मेहनत की वज़ह से इस्लाम धर्म का अनेक क्षेत्रो में प्रचार–प्रसार हुआ। धर्म प्रचार के लिये मोहम्मद साहब को कई स्थानों पर धर्म विरोधियों से संघर्ष करना पड़ा, इस संघर्ष को जेहाद के नाम से पुकारा गया। 10वीं रमजान 8 हिजरी को 10 हजार सेना के साथ मोहम्मद साहब ने मक्का को जीता और जेहाद करके शोहरत हासिल की। इस प्रकार मोहम्मद साहब अपने जीवन के अंतिम समय तक इस्लाम धर्म के पैगम्बर बन चुके थे।

हर व्यक्ति जो संसार में आता है, उसकी एक न एक दिन मृत्यु अवश्य होती है, हज़रत मोहम्मद साहब को अपनी मृत्यु का आभास पहले से हो गया था, अरबी महीने की 11 हिजरी तदानुसार सन् 642 ई० में मृत्यु के दो दिन पूर्व आपके सिर और शरीर में दर्द पैदा हुआ। उन्होने अपनें ससुर अबुबक्र को जो इनकी बीमारी पर दुःख प्रकट कर रहे थे, उन्हें यह महत्वपूर्ण उपदेश दिया–"मैं तुमको डरने की नसीहत करता हूँ और खुदा से, तुम्हारे लिये रहम (दया) की दरख़ास्त (प्रार्थना) करता हूँ और उसकी निगहबानी (देख–रेख) में तुमको छोड़ता हूँ और तुम को उस के सुपुर्द (हवाले) करता हूँ (ऐ लोगों) मैं तुमको खौफ और खुशखबरी दोनों सुनाता हूँ कि तुम खुदा के आदेशों में ज्यादती न करो और उसके शहरों में ज्यादती न करो और उस की मख़लूक (लोगों) पर ज्यादती (जुल्म) न करो क्योंकि खुदा ने मुझसे भी और तुम से भी यह कहा है कि आखिरत (परलोक) का घर (जन्नत) एक ऐसा मकाम (जगह) है कि, जिसका मालिक केवल उन लोगों को बनाऊंगा, जो ज़मीन में सरकशी (विद्रोह) के मुरतकिब (अपराधी) न हों और न ज़मीन में वे किसी किस्म (प्रकार) का फ़साद (दंगा) करते हो, क्योकि जन्नत पाक लोगों के लिए (उनके कर्मो का नतीजा) है और उन्होने कहा है कि क्या ज़हन्नम में मुतकब्बिर (घमंडी) लोगों के सिवा और भी होगा? अर्थात् न होगा। फिर आपने मस्जिद की तरफ के जितने दरवाज़े थे, सभी को बन्द करने का हुक्म दे दिया, केवल अबू बक्र के दरवाज़े को छोड़ कर। फिर यह कहा कि मैं किसी को अबू बक्र से ज्यादा अपनी सोहबत (महफिल) में अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) नही जानता हूँ और यदि मै किसी को अपना ख़लील (दोस्त) बनाता तो अबुबक्र को अपना खलील (दोस्त) बनाता।"[21]

उपरोक्त कथन के पश्चात् मोहम्मद साहब के शरीर का दर्द बहुत बढ़ गया और वे बेहोश हो गये, इस समय इनकी पत्नियों में फातिमा और दूसरी बेगमें इनके पास आकर बैठ गयी, इसी समय नवाज़ का वक्त आया, उन्होनें अबूबक्र को नवाज़ पढ़ाने को कहा, उसके पश्चात् हज़रत मोहम्मद साहब अपनी तीसरी बेगम आएशा के घर आये, यही उनका स्वर्गवास हो गया। मृत्यु के समय मोहम्मद साहब को 13 नवाज़े पढ़ाई गयीं। मोहम्मद साहब की मृत्यु के पश्चात् चारों तरफ दुःख का वातावरण छा गया। बहुत से लोगों को यह विश्वास नहीं हो रहा था कि हज़रत मोहम्मद साहब का स्वर्गवास हो गया। मृत्यु के पश्चात् मोहम्मद साहब के सन्दर्भ में ये आयतें अबुबक्र ने पढ़ीं–"मुहम्मद (सल्ल०) इसके सिवा कुछ नहीं कि, बस एक रसूल है, उनसे पहले और रसूल भी गुज़र चुके हैं, फिर क्या यदि वह मर जायें या कत्ल कर दिये जायें तो तुम लोग उल्टे पांव फिर जाओगे? याद रखो! जो उल्टा फिरेगा वह अल्लाह का कुछ नुकसान न करेगा। अलबत्ता जो अल्लाह का शुक्र अदा करने वाले हैं, उन्हें वह उसका इनाम देगा।"[30]

हजरत मोहम्मद साहब का अन्तिम संस्कार उसी स्थान पर किया गया, जहाँ उनका स्वर्गवास हुआ था, हज़रत आयशा के मकान में इनकी कब्र शरीफ बनायी गयी, इनकी मृत्यु के पश्चात्

हज़रत अबूबक्र ख़लीफा मुकर्रर हुये, इस समय मुज़ाहिर और अनसार उपस्थित थे, इनकी मृत्यु 63 वर्ष की आयु में 12 रबीउल अव्वल 11 हिजरी दोशाम्बा तद्नुसार 642 ई० को हुयी।

हज़रत मोहम्मद साहब तो दुनिया से चले गये, किन्तु उनका धार्मिक सन्देश इस्लाम के रूप में आज 1400 वर्ष बाद भी फलफूल रहा है और पूरी दुनिया में बड़े ही श्रद्धा और भक्ति के साथ लोग इस्लाम धर्म का अनुपालन करते हैं।

हजरत मोहम्मद साहब की चारित्रिक विशेषतायें :-

हज़रत मोहम्मद साहब वास्तव में एक विशिष्ट व्यक्ति थे, जो विशेषतायें उनके जीवन में थी, वे विशेषताएँ किसी अन्य व्यक्ति के जीवन में नहीं देखी जाती। मोहम्मद साहब सम्पूर्ण विश्व में लोकप्रिय हुये तथा उन्हें सम्पूर्ण विश्व ने एक कल्याणकारी व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया। इस्लाम के विद्वानों का यह मानना है कि, मोहम्मद साहब ने सम्पूर्ण मानवों के कल्याण के लिये और विश्व मानवता की स्थापना के लिये इस्लाम के सिद्धान्तों को अपनाया।

(1) हजरत मोहम्मद साहब मार्गदर्शक के रूप में :-

सम्पूर्ण विश्व के लोग हज़रत मोहम्मद साहब को एक पैगम्बर के रूप में इसलिये मानते हैं क्याकि उन्होंने सम्पूर्ण विश्व को एक नवीन दृष्टि दी। आम जनता को उन्होंने प्रचलित भ्रान्तियों से दूर करते हुये सच्चाई का रास्ता दिखलाया।

(2) दया और सद्भाव की मूर्ति के रूप में :-

मोहम्मद साहब सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति दया का भाव रखते थे, वे कभी भी क्रोध नहीं करते थे, सभी की बात बड़े ध्यान से सुनते थे, वे किसी की बुराई नहीं करते थे, वे किसी के दुर्गुण नहीं ढूढ़ते थे, किसी व्यक्ति के ऊपर झूठे आरोप नहीं लगाते थे, उनकी बात-चीत का ढंग बहुत अच्छा था तथा वे सबका अभिवादन करते थे।

(3) मोहम्मद साहब एक उपदेशक के रूप में :-

मोहम्मद साहब एक योग्य एवम कुशल उपदेशक भी थे। नवाज़ आदि के मौकों पर उपस्थित व्यक्तियों को उपदेश दिया करते थे। उनका कथन था कि, हर व्यक्ति इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों को माने, धर्म के प्रति वफादार रहे और विधर्मियों से लड़ने के लिये यदि जेहाद की जरूरत पड़े तो जेहाद करे। उनके सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है-बाज़ व तल्कीन के खुसूसी और मुख्तिसर जलसे तो तक्रीबन् हर नमाज़ और ख़ास तौर से नमाज़ सुबह के बाद तो मुन्अिफ़िद हुआ ही करते थे, मगर इफादः ए आम की ग़रज से एक जल्सः भी कभी-कभी तलब फ़र्मा लिया करते थे। दौराने वाज़ जिस अमृ पर निहायत ज़ोर देना होता तो उस पर इन अल्फ़ाज से क़सम खातेः ''बल्लज़ी नफ़सी बियदिहि'' यानी क़सम है उस ज़ात की जिसने दस्ते कुहत में मेरी जान है''[31] मोहम्मद साहब मौन चिन्तक भी थे।

(4) सूव्यवस्थित जिन्दगी के पक्षधरः-

हज़रत मोहम्मद साहब का यह मानना था कि, हर व्यक्ति की ज़िदगी को अत्यन्त व्यवस्थित होना चाहिए। व्यक्ति, अपने दीन पर ईमान लाते हुये, अपने व्यवसाय और नित्य कर्म को न छोड़े, हर काम में पारदर्शिता रखे। उन्होंने जिंदगी के लिये समय का विभाजन इस प्रकार किया था-

(1) एक हिस्सः अल्लाह तआ़ला की इबादत के लिये

(2) एक हिस्सः अपने घर वालों की मुआशरती हुक़ूक़ अदा करने के लिये (जिनमें हँसना-बोलना शामिल था)

(3) और एक हिस्सः अपने नफ़्स की राहत के लिये।[32]

इसके अतिरिक्त मोहम्मद साहब को अपना समय एकांत में व्यतीत करना बहुत पसंद था तथा वे लोगों को ये सिखाते थे कि, हमेशा परिवार वालों के पास जाओ, उनकी सेवा करो, वहीं से तुम्हे कुछ हासिल होगा। व्यर्थ का समय बर्बाद मत करो, जो समय तुम्हारे पास बचता है, उसे मानवता के कल्याण के लिए लगाओ।

5. नित्य कर्म पर जोर-

हज़रत मोहम्मद साहब नित्य कर्मो पर जोर दिया करते थे, वे समय पर उठते थे और समय पर सो जाया करते थे। सुप्रसिद्ध ग्रंथ हदीस में उनके आराम फ़रमाने का ढंग इस प्रकार वर्णित है-

''कि उनका विस्तर कभी टाट का होता था, कभी सिर्फ बोरिया का होता था। मुअद्दिद अहादीस हमें यह मज़्मून है कि सहाबः किराम जब नर्म बिस्तर बनाने की दरख्वास्त करते तो हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम यह इर्शाद फ़र्मा दिया करते थे कि मुझे दुन्यवी राहत व आराम से क्या काम? मेरी मिसाल तो उस राहगीर की सी है, जो चलते-चलते रास्तः में ज़रा आराम लेने के लिये किसी दरख़्तः के सायः के नीचे बैठ गया हो और थोड़ी देर बैठकर आगे चल दिया हों[33] मोहम्मद साहब के आराम करने का ढंग बिल्कुल अलग था, जब वे रात में लेटते थे, तो दोनों हाथों को दूआ मांगने की तरह मिलाकर सूरः इख़्लास और मुअब्वतज़तै़न पढ़ा करते थे और पैर से लेकर सिर तक हाथ फेरते थे तथा ऐसे घर में आराम न करते थे, जहाँ चिराग न जलता हो। मोहम्मद साहब सोने के पहले और जगने के बाद वुजू करते थे और चेहरे तथा हाथों को धोकर सोते थे, सोने के पहले कुर्ता को उतार देते थे, तहमत पहन लिया करते थे, बिस्तर झाड़ लिया करते थे, रात में सोते वक्त सुरमां लगाते थे तथा समय-समय पर स्नान भी किया करते थे। हज़रत मोहम्मद साहब अपने परिवार वालों से बहुत प्यार करते थे, वे अपने पारिवारिक सदस्यों को खाने और पहनने में कोई पाबंदी नहीं लगाते थे, ये अपनी बीबीओं को बहुत साफ-सुथरा रखना पसंद करते थे और उनसे सद्व्यवहार करते थे। मोहम्मद साहब खाने-पीने में बहुत सावधानी बरतते थे तथा भोजन हाथ-पांव धोकर करते थे। खाने के पहले बिसमिल्लाह किया करते थे, कभी-कभी वे पेय पदार्थ भी लिया करते थे।

मोहम्मद साहब को किसी भी प्रकार से गन्दे कपड़े पहनना अच्छा नहीं लगता था, वे हमेशा साफ वस्त्र पहनते थे। उन्हें तहमत, पैजामा, कमीज या कुर्ता बहुत पसंद था, कभी-कभी वे साफा भी बांधा करते थे। उनके वस्त्रों के सन्दर्भ में हदीस में यह वर्णन मिलता है- वतन में औहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम सफेद कपड़े की चिपटी हुयी टोपी ओढ़ा करते थे।

आपने सुज़नीनुमा सिले हुये कपड़े की गाढ़ी टोपी भी ओढ़ी है।[34]हज़रत मोहम्मद साहब पैरों में जूते पहनते थे और शरीर में इत्र लगाते थे। वे सिर में तेल लगाते थे तथा कंघी भी

करते थे। इस सस्न्दर्भ में हदीस में उदाहरण मिलते है- हुजूर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम शुरू में अपने सर के बालों को बेमांग निकाले जमा कर लिया करते फिर बाद में मांग निकालने लगे थे।

एक रिवायत में है कि, आप एक रोज़ नागः करके कंघा किया करते थे (नशरुत्तीब) और एक रिवायत में, हज़रत दुमैद बिन अब्दुर्रहमान रजि० से भर्ती है कि गाहे-गाहे कंघी करते थे।[35]

6) संघर्षशील व्यक्तित्व :-

मोहम्मद साहब एक संघर्षशील व्यक्ति थे, वे अपने जीवन काल में खुदा के अलावा किसी भी व्यक्ति से नहीं डरते थे। जब उन्हें धर्म का ज्ञान हुआ और उन्होंने धर्म को प्रचारित-प्रसारित करना चाहा, उस समय इनका व्यापक विरोध हुआ। इस विरोध का इन्होंने दृढ़ता के साथ मुकाबला किया तथा कई स्थानों पर इन्हें मारा-पीटा भी गया। ये किसी प्रकार से आतंकित नहीं हुए और मज़बूत इरादे के साथ बढ़ते गये तथा अन्त में अपनी उद्देश्यपूर्ति में सफल हुये। इस्लाम का प्रचार-प्रसार जो विश्व में आज दिखलाई पड़ता है, वह इनके संघर्षशील व्यक्तित्व का प्रभाव है।

कुर्आन शरीफ का परिचय एवं उसके मूल सिद्धान्त :-

कुरान शरीफ इस्लाम धर्म का सर्वाधिक पवित्र ग्रंथ है, इसे इस्लाम धर्मावलम्बी आसमानी किताब के रूप में मानते हैं। यह किताब खुदा के फरिश्ते, मोहम्मद साहब के लिये लाये थे और खुदा ने मोहम्मद साहब को हिदायत दी थी, कि लोग धर्म विमुख हो रहे हैं इसलिये तुम कुरान शरीफ की आयतों को आम आवाम के सामने बयाँ करो। मोहम्मद साहब ने कुरान शरीफ की आयतों के अनुसार धर्म का प्रचार-प्रसार किया। इसके पहले दो महत्वपूर्ण ग्रंथ खुदा ने और उतारे, पहला ग्रंथ तौरात था, जो हज़रत मूसा पर उतारा गया तथा दूसरा ग्रंथ एन्जिल अथवा बाइबिल था, जो म़रियम के पुत्र ईसा-मसीह पर उतारा गया। दोनों ग्रन्थ कुर्आन शरीफ़ की भांति एकेश्वरवाद का प्रचार-प्रसार करते है तथा किसी भी अन्य देवी-देवता के पूजा की खिलाफत करते हैं। कुर्आन शरीफ वास्तव में बड़ा ही पवित्र ग्रंथ है तथा इसमें जो बातें लिखी हैं, वह ईश्वर वाणी के रूप में स्वीकार की जाती हैं। कुर्आन शरीफ में उल्लेख उपलब्ध होता है, 'अगर तुम इसके खुदाई कलाम (ईश्वरीय वाणी) होने में शक करते हो और इसको इंसानी कलाम समझते हो, तो तुम इस जैसी छोटी से छोटी सूरः बना लाओ और तमाम ख़ास व आम (ज्ञानी व अज्ञानी) को जमा करो, हरगिज़ न बना सकोगे।,[36]

हर मुसलमान कुर्आन शरीफ का सम्मान खुदा के पवित्र कलाम के रूप में करता है, यह कुर्आन शरीफ हज़रत मोहम्मद साहब के ऊपर 40 साल की उम्र में उतरना प्रारम्भ हुआ और 23 साल तक बराबर उतरता रहा। यह ग्रंथ हज़रत मूसा के ग्रंथ तौ़रात और हज़रत ईसा के ग्रंथ की भांति एक ही बार में नहीं उतरा, अपितु इसकी संरचना में 23 वर्ष का समय लगा तथा इसकी संरचना अन्य खुदाई ग्रंथों की भांति रमजान के महीने में हुयी। उलमाओं का यह मानना है कि, कुर्आ़न की आयतें भिन्न-भिन्न समयों में भिन्न-भिन्न संख्याओं में आती रही। उपलब्ध हदीसों में कुर्आन शरीफ के सन्दर्भ में यह साक्ष्य उपलब्ध होता है-

1) फ़रिश्ता वह्य लेकर आए और एक अवाज़ घंटी जैसी मालूम हो। यह स्थिति अनेक हदीसों से साबित है और यह किस्म वहाँ की सभी किस्मों में सख्त थी। बहुत कष्ट नबी सल्लल

अलैह व सल्लम को होता था यहाँ तक कि आपने फरमाया कि जब कभी ऐसी वह्य आती है तो मैं समझता हूँ कि अब जान निकल जायेगी।

2) फरिश्ता दिल में कोई बात डाल दे।

3) फ़रिश्ता आदमी के रूप में आकर बात करे। यह क़िस्म बहुत आसान थी इसमें कष्ट न होता था।

4) अल्लाह तआला जागते में नबी सल्ल० से कलाम फ़रमाए जैसा कि शबे मेअराज (मेअराज की रात) में।

5) अल्लाह तआला सपने की हालत में कलाम फरमायें। यह किस्म् भी सही हदीसो से साबित है।

6) फ़रिश्ता सपने की हालत में आकर कलाम करे।

मगर अन्तिम दो किस्मों से कुर्आन मजीद खाली है। पूरा कुर्आन जागने की स्थिति में नाज़िल हुआ। अगरचे कुछ उलमा ने सूरः कौसर को आखिरी क़िस्म से माना है लेकिन तहक़ीक करने वालों ने इसको रद्द कर दिया है और उनके संदेह का उचित जवाब दे दिया है।[37]

पहले यह कुर्आन शरीफ मौखिक थी, अनेक हाफ़िज लोग जो इसे कंठस्थ कर लेते थे, वही इसे सुनाया करते थे। इस समय के सुप्रसिद्ध विद्वान हज़रत सिद्दीकी ने यह विचार व्यक्त किया कि, यदि इस पुस्तक को किताबी शक्ल न दी गयी, तो यह एक दिन अपने आप अस्तित्व खो देगी। पुस्तक लिखने का कार्य जैद बिन साबिद को सौंपा गया, उसके बाद इसका लेखन कार्य प्रारम्भ हुआ और लिख कर सुनाई जाती रही। उसके पश्चात् हज़रत फारुख ने उसका संशोधन किया और उसे सुधारा। कुर्आन शरीफ के लिये हज़रत उस्मान ने भी कार्य किया और कुर्आन मज़ीद की आयतों और सूरतों को तरतीब़ दी। इसके अतिरिक्त अबी-बिन काब ने भी कुर्आन शरीफ के लिये कार्य किया तथा व्याकरण की दृष्टि से इसे शुद्ध किया।

हज़रत मोहम्मद साहब की धर्मपत्नी आयशा बेगम के अनुसार, मोहम्मद साहब कुर्आन शरीफ बहुत पवित्रता से पढ़ते थे तथा उसके अर्थ को समझते थे। कुर्आन शरीफ़ पढ़ने के लिए किसी गुरु की आवश्यकता नहीं है, किन्तु वह व्यक्ति श्रेष्ठ है जो, कुर्आन शरीफ के अर्थ को भली-भाँति समझ ले तथा कुर्आन शरीफ़ में वर्णित सिद्धान्तों का अनुसरण करे। यदि वह अपनी जिंदगी में उन सिद्धान्तों का अनुसरण नहीं करता, तो उसके लिये वह अफसोस जाहिर करे। हदीस में इस बात का वर्णन उपलब्ध होता है-' हम 27 रमज़ान की रात शबे क़द्र मानते हैं। यह बहुत बरकत वाली रात है। हमें चाहिये कि इस मुबारक और बरकत वाली रात में दिल की गहराई व नेकनीयत के साथ कुरआन की तिलावत करे और अल्लाह से दुआ मांगे क्योंकि इस रात को हर बात का फैसला होता है, हर एक जानदार की जान व मौत, रिज़्क का अंदाजा होता है कि इतना शेष और इतना खत्म हो चुका है।'[38] सुप्रसिद्ध विद्वान इब्ने उमर का कथन है, क़ाबिले रश्क वह आदमी है कि जो रात और दिन के समय में कुरआन की तिलावत करता है। शबे मेअराज और बराअत में भी कुरआन मजीद की तिलवात और इबादत करता अफ्ज़ल (अच्छा) है इससे दिल की मुरादें पूरी होती है और दुआएं कुबूल होती है।'[39]

कुर्आन मज़ीद का पाठ करने के सन्दर्भ में यह उल्लेख हुआ है कि, खुदा के बन्दे को कम से कम तीन दिन में कुर्आन का पाठ कर लेना चाहिए, चाहे इसे वो समझे या न समझे। कम से कम वर्ष में दो बार हर व्यक्ति कुर्आन शरीफ पढ़े। इमाम गज़ाली के अनुसार-'अपने आप को कुर्आन मजीद के खत्म करने की गिनती पर हावी न करों बल्कि एक आयत को सोच कर पढ़ना सारी रात में दो कुरआन खत्म करने से बेहतर है।'

इस प्रकार इब्ने उमर का कथन है कि नबी सल्ल० ने मुझे पांच दिन से कम समय में पूरा कुर्आन मजीद खत्म करने की इजाज़त नहीं दी।[40]

कुर्आन शरीफ की विषय सामग्रीः-

कुर्आन शरीफ इस्लाम धर्म का पवित्र ग्रंथ है, विषय सामग्री की दृष्टि से इसका विभाजन इस प्रकार हैं-

क्र.सं	नाम पारः	आयत सं०	पृष्ठ सं०	सामान्य विवरण
1.	सूरःफातिह 5	7	1	खुदा की इबादत
2.	सूरः बक़रः 87	286 आमते 40 रुकूअ	3	ईश्वर पर विश्वास लाने के लिए
3.	सूरः आले इम्रान 89	200 आयते 20 रुकुअ	75	कुर्आन शरीफ की विशेषता
4.	सूरः निसा 92	177 ,, ,24 ,,	119	सामाजिक व्यवस्था के बारे में
5.	सूरः माइदः 112	120 ,, ,16 ,,	165	ईश्वर के लिए की जाने वाली कुर्बानियों के सन्दर्भ में
6.	सूरः अन्आम 55	165 ,, ,20 ,,	199	खुदा को दुनिया बनाने वाला बताया गया
7.	सूरः आराफ़ 39	206 ,, ,24 ,,	237	कुर्आन शरीफ की तारीफ और खुदा की तारीफ
8.	सूरः अन्फ़ाल 88	75,, ,10 ,,	279	इसमें मोहम्मद साहब को निर्देश है।
9.	सूरः तौबा 113	129,, ,16,,	295	काफ़िरों को नसीहत
10.	सूरः यूनुस 51	109 ,, 11,,	327	कुर्आन और परमात्मा के बारे में
11.	सूरः हूद 51	123,, ,10,,	349	एकेश्वरवाद पर बल
12.	सूरः यूसुफ़ 53	111 ,, ,12 ,,	371	युसूफ़ का विवरण
13.	सूरः रअद 96	43 ,, ,6 ,,	393	खुदा की तारीफ़
14.	सूरः इब्राहिम 72	52 ,, ,7 ,,	403	खुदा और कुर्आन शरीफ के बारे मे
15.	सूरः ह्रिज 54	99 ,, ,6 ,,	413	इसमें फरिश्ते और लूत के बारे में
16.	सूरः नह्ल 70	128 ,, ,16,,	423	इसमें सृष्टि-सृजन का वर्णन
17.	सूरः बनी इस्राईल50	111 ,, ,12 ,,	447	हज़रत मूसा और नूह का वर्णन
18.	सूरः कहफ़ 69	110 ,, ,12 ,,	465	कुर्आन शरीफ की तारीफ
19.	सूरः मर्यम 44	98 ,, ,6 ,,	483	ईसामसीह और मरियम के बारे में
20.	सूरः ता हा 45	135,, ,8 ,,	495	कयामत के सन्दर्भ में।

21.	सूरःअंबिया 73	112,, , 7,,	511	भटके हुओं को हिदायत
22.	सूरःह 103	78,, , 10,,	525	कयामत और हज यात्रा
23.	सरः मुआमिनून 74	118,, , 6,,	543	मुसलमानों के धार्मिक कर्तव्य
24.	सूरः नूर 102	64,, , 9 ,,	555	बदकारी व्यक्तियों को चेतावनी
25.	सूरः फर्कान 42	77,, , 6,,	571	खुदा की विशेषतायें
26.	सूरः शुअरा 47	227,, , 11,,	581	कुर्आन शरीफ पर विश्वास के निर्देश
27.	सूरः नक्ल 48	93,, , 7,,	597	कुर्आन शरीफ की हिदायते
28.	सूरः क़सस़ 49	88,, , 9,,	611	मूसा और फ़िऔन की कथा
29.	सूरः अंकबूत 85	69,, , 7,,	629	खुदा पर ईमान लाने का हुक्म
30.	सूरः रूम 84	60,, , 6,,	643	इस्लाम धर्म की तारीफ
31.	सूरः लुक्मान 57	34,, , 4,,	653	लुकमान की कहानी
32.	सूरः सज्दा 75	30 आयते 3 रूकूअ	659	कुर्आन शरीफ पर विश्वास लाने के निर्देश
33.	सूरः अहज़ाब 90	73,, , 9,,	663	खुदा से डरना और काफिरो से मुकाबला करना।
34.	सूरः सबा 58	54,, , 6 ,,	679	जालिमों से सावधान रहने की सलाह
35.	सूरः (45) फातिर35	45,, , 5 ,,	691	खुदा की रहमत
36.	सूरः यासीन 41	83,, , 5,,	699	मोहम्मद साहब की तारीफ़
37.	सूरः साफ़फ़ात 56	182,, , 5 ,,	709	इसमें जन्नत और दोज़ख की हकीकत के बारे में
38.	सूरः स़ाद 38	88,, , 5,,	721	पैगम्बरों को झुठलाले वालों से सावधानी
39.	सूरः ज़मर 59	75,, , 8 ,,	729	कुर्आन शरीफ की सत्यता
40.	सूरः मुआमिन् 60	85,, , 9,,	743	मुसलमानों को उपदेश
41.	सूरःहमीमअस्-सज्दा61	54,, , 6 ,,	757	कुर्आन शरीफ की तारीफ
42.	सूरः शूरा 62	53,, , 5 ,,	767	खुदा का पालनहार स्वरूप
43.	सूरः जुख़्कफ़ 63	89,, , 7 ,,	779	इसमें इब्राहिम और उसके परिवार का हाल
44.	सूरः दुख़ान 64	59,, , 3 ,,	789	सांसारिक कष्टों के बारे में
45.	सूरः जासिया 65	37,, , 4 ,,	793	खुदा की विशेषतायें
46.	सूरतुल अहक़ाकि 66	35,, , 4 ,,	799	कुर्आन शरीफ की तारीफ
47.	सूरः मुहम्मद 95	38,, , 4 ,,	805	मोहम्मद साहब के उपदेश काफिरो के संदर्भ में।
48.	सूरः फ़त्ह़ 111	29,, , 4 ,,	813	अच्छे कर्मो का परिणाम

49.	सूरः हुजुरात 106	18,, , 2 ,,	819	खुदा के संदर्भ में
50.	सूरः काफ़् 34	45,, , 3 ,,	823	इस्लाम धर्म के सन्दर्भ में
51.	सूरः ज़ारियात 67	60,, , 3 ,,	829	प्राकृतिक संसाधनो का विवरण
52.	सूरः तूर 76	49,, , 2 ,,	833	खुदा और कुर्आन शरीफ की तारीफ
53.	सूरः नज्म 23	62,, , 3 ,,	837	भटकों का रास्ता दिखाया गया है।
54.	सूरः क़मर 37	55,, , 3 ,,	841	कयामत का विवरण, कुर्आन के लाभ
55.	सूरः रह़मान 97	78,, , 3 ,,	845	खुदा की मेहरबानी
56.	सूरः वाक़िअः 37	96,, , 3 ,,	849	कयामत में होने वाली सामान्य घटनायें
57.	सूरः ह़दीद 94	29,, , 4 ,,	855	मुसलमानों के लिये हिदायतें
58.	सूरतुल्-मुज़ादलित् 105	22,, , 3 ,,	863	औरतों को उपदेश
59.	सूरः हश्र 101	24,, , 3 ,,	869	खुदा की शक्ति का विवरण
60.	सूरः मुम्तह्निः 91	13,, , 2,,	875	मुसलमानों को आदेश है कि काफिरों से दोस्ती न करें।
61.	सूरः स़फ़्फ 109	14,, , 2 ,,	879	मो0साहब और कुर्आन शरीफ के बारे में
62.	सूरः जुमुअः 110	11,, , 2 ,,	883	कुर्आन शरीफ और खुदा की इबाद़त
63.	सूरः मुनाफ़िकून 104	11,, , 2 ,,	885	खुदा द्वारा मोहम्मद साहब को उपदेश
64.	सूरः तग़ाबुन 108	18,, , 2 ,,	887	खुदा की मेहरबानियां है।
65.	सूरः त़लाक़ 99	12,, , 2 ,,	891	औरतों के तलाक़ के सन्दर्भ में
66.	सूरः तह़रीम 107	12,, , 2 ,,	885	तलाक़ के विषय में
67.	सूरः मुल्क 77	30,, , 2 ,,	899	इसमें ईश्वर की सार्वभौमिकता और उपदेश
68.	सूरः कलम 2	52 ,, , 2,,	903	व्यक्तिगत आचरण और चरित्र के बारे में
69.	सूरः हाक्का 78	52,, , 2,,	907	खुदा और इन्सानों के अधिकारों के बारे में
70.	सूरः मआ़रिज 79	44,, ,2,,	911	व्यक्ति के मर्ज और उनकी अन्तिम स्थिति के बारे में
71.	सूर नूह 71	28,, , 2,,	913	नूह के सन्दर्भ में विवरण
72.	सूरः जिन्न 40	28,, , 2,,	917	शैतानों का विरोध और खुदा पर विश्वास
73.	सूरः मुज़्ज़म्मिल 3	20,, ,2,,	921	धर्माचरण के सम्बन्ध में
74.	सूरः मुद्दस्सिर 4	56,, ,2,,	923	खुदा की इबादत और सहनशीलता
75.	सूरः क़ियामः 31	40,, ,2,,	927	कय़ामत की चेतावनी और खुदा की इबादत
76.	सूरः दह्र 98	41,, ,2,,	929	त़ारीफ यतीमों को मदद करने वालों की
77.	सूरः मुर्सलात	50,, ,2,,	931	इसमें खुदा और उसके क्रिया-कलाप का विवरण
78.	सूरः नबा 80	40,, ,2,,	935	कर्म के अनुसार दोजख और जन्नत का फल

106	सूरः कुरैश -29	4,, ,1,,	969	खुदा की इबादत
107	सूरः भाऊन-17	7,, 1,,	969	खराब चरित्र वाले व्यक्ति को चेतावनी
108	सूरः कौसर-15	3,, 1,,	969	खुदा के लिए कुर्बानी करना
109	सूरः काफ़िरून 18	6,, , 1,,	971	काफ़िरों की निंदा
110	सूरः नस्र 114	3,, , 2,,	971	खुदा पे यकीन करने वालों की फतह
111.	सूरः ल-हब-6	5,, , 1,,	971	बेइमानों की निंदा
112.	सूरः इख़्लास	4,, 1,,	971	खुदा की एकरूपता के बारे में
113.	सूरः फ़लक़	5,, 1,,	973	ईश्वर की शरण में जाना
114.	सूरः नास	6,, 1,,	993	संसार की बुराइयों से दूर रहने के लिए खुदा से दुआएं मांगना।

कुर्आन शरीफ में कुल पारों की संख्या 30 है। ऐसी लोकोक्ति है कि कुर्आन शरीफ के 30 पारः रमजान के महीनें में मोहम्मद साहब पर उतारे गये, ये पारः निम्नलिखित है :-

1. अलिफ़-लाम-मीम
2. स-यकूल
3. तिलकर्रू सुल
4. लन तनालू
5. वल् मुहसनात
6. ला युहिब्बुल्लाह
7. व इज़ा समिअ़
8. व लौ अन्नना
9. कांलल म-ल-उ
10. वअ़लमू
11. यअ़ तजिरून
12. वमा मिन दाब्बतिन्
13. व मा उबरिंउ
14. रू-ब-मा
15. सुब्हानल्लजीं
16. का-ल अलम
17. इक़्त-र-ब लिन्नासि
18. क़द अफ़-ल-ह
19. व क़ालल्ल जी-न
20. अम्मन-ख-ल-क
21. उत्लू मा ऊहि-य
22. . मयक्जुत
23. व मा लि-य
24. फमन अन्लम्
25. इलैहि युरद्दु
26. हामीम
27. क़ा-ल फ़मा ख़त्बुकुम
28. क़द समिअ़ल्लाहु
29. तबारकल्ल जी
30. अम-म

उपरोक्त पारों में इस्लाम धर्म का पूर्ण आध्यात्म भरा हुआ है, जो भी व्यक्ति कुर्आन शरीफ का पाठ करता है, उसे इस्लाम धर्म के सम्बन्ध में मौलिक ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इसमें कोई सन्देह नही कि, हजरत मोहम्मद साहब के समय में एकेश्वर वाद के सिद्धान्त की आवश्यकता थी, इससे अरब के निवासी एकता के सूत्र में बधें तथा तद्‌युगीन समाज में व्याप्त अन्धविश्वास और कुरीतियों को दूर करने में इस्लाम सहायक हुआ। तद्‌युगीन व्यक्तियों को यह धर्म खुदा के यहां जाने का सीधा और सरल रास्ता दिखा, इसलिए इसकी लोकप्रियता धीरे-धीरे पूरे विश्व में बढ़ती गयी तथा संसाधनशील व्यक्तियों ने इसके प्रचार-प्रसार के लिए अपनी शक्ति और साधन का प्रयोग किया।

कुर्आन शरीफ की मुख्य विशेषताएँ-

कुर्आन शरीफ जैसे पवित्र धार्मिक ग्रंथ की अनेक विशेषतायें है, जो भी व्यक्ति बुद्धिमान है तथा जिसने कुर्आन शरीफ को समझने का प्रयत्न किया है, उसे कुर्आन शरीफ में विश्व मानवता के दर्शन स्पष्ट रूप से होते हैं। यह ग्रंथ व्यक्तियों को धार्मिक यथार्थ के दर्शन कराता है, संगठन और

साहस की शक्ति प्रदान करता है तथा स्वतः न्याय के रास्ते पर चलते हुये विधर्मियों से लड़ने की प्रेरणा भी प्रदान करता है। प्राचीन सर्वमान्य परम्पराओं की अवहेलना न करते हुये, उन्हें अपनी मौन स्वीकृति प्रदान करने का मूल कारण यह था कि, इस्लाम स्वीकार करने के बाद व्यक्तियों को जीवन शैली के परिवर्तन में कोई कठिनाई का सामना न करना पड़े। कुर्आन शरीफ की निम्न विशेषताएँ है-

1) खुदाई किताब के रूप में कुर्आन शरीफ की मान्यता-

इस्लाम धर्मावलम्बी व्यक्ति कुर्आन शरीफ को खुदाई किताब के रूप में स्वीकार करता है, कुर्आन शरीफ में खुदा खुद कुर्आन शरीफ की तारीफ करता हुआ, उस पर यकीन करने को इस प्रकार कहता है 'मेरे वे एहसान याद करो, जो मैंने तुम पर किये थे और उस इक़रार को पूरा करो, जो तुम ने मुझ से किया था। मैं उस इक़रार को पूरा करूंगा, जो मैंने तुमसे किया था और मुझी से डरते रहो(40) और जो किताब मैंने (अपने रसूल मुहम्मद सल्ल० पर) नाज़िल की है, जो तुम्हारी किताब (तौरात) को सच्चा कहती है, उस पर ईमान लाओ और उसके पहले इन्कारी न बनो और मेरी आयतों में (घटा-बढ़ा करके) उनके बदले थोड़ी सी कीमत न हासिल करो और मुझी से खौफ़ रखो।[41] कुर्आन शरीफ में यह वर्णन मिलता है कि, इस किताब का बेजा इस्तेमाल न किया जाये और इसके जरिये किसी को गुमराह न किया जाये। जो लोग किताब से उन (आयतों और हिदायतों) को जो उसने नाज़िल फ़रमायी है, छिपाते और उनके बदले थोड़ी-सी कीमत (यानी दुनिया का फ़ायदा) हासिल करते हैं, वे अपने पेटों में सिर्फ आग भरते हैं, ऐसे लोगों से खुदा कयामत के दिन न कलाम करेगा और न उनको पाक करेगा और उनके लिये दुःख देने वाला अज़ाब है।[42] इस प्रकार हम देखते हैं कि कुर्आन पर अमल करने की हिदायत दी गयी। एक स्थान पर यह उल्लेख मिलता है कि कुर्आन शरीफ की रचना तौरात और एन्जिल के बाद की गयी, जो लोग कुर्आन की आयतों पर विश्वास नही करेंगें, उनसे खुदा बदला लेगा। कुर्आन शरीफ में इसका वर्णन इस प्रकार उपलब्ध होता है, उसने (मुहम्मद सल्ल!) तुम पर सच्ची किताब नाजिल की जो पहली (आसमानी) किताबों कि तस्दीक करती है और उसी ने तौरात और एन्जिल नाजिब की (3) (यानी) लोगों कि हिदायत के लिये पहले (तौरात और एन्जिल उतारी और फिर कुर्आन, जो हक और बाबिल को अलग-2 कर देने वाला (है) नाजिल किया जो लोग खुदा की आयतों से इन्कार करते है, उन को सख्त अजाव होगा।[43]

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि, कुर्आन शरीफ मे खुदा और इस्लाम के सन्दर्भ में जो भी वर्णित है, उसे खुदा का हुक्म और संदेश के रूप में ही ग्रहण किया जाना चाहिये। उसकी समीक्षा और आलोचना करने का अधिकार जन-सामान्य को नही है।

2. कुर्आन शरीफ में वर्णित खुदा अथवा परमात्मा की शक्ति का स्वरूप :-

कुर्आन शरीफ जैसे पवित्र ग्रंथ में खुदा अथवा परमात्मा को सर्वोपरि स्वीकार किया गया, वह सृष्टि सृजेता और विश्व का स्वामी है। उसने संसार के समस्त प्राणियों को जन्म दिया है और वही उनकी परवरिश भी करता है, किन्तु यह खुदा निराकार और सर्वव्यापी होने के कारण किसी भी व्यक्ति अथवा भक्त को अपने दर्शन नही कराता, अपितु कुर्आन में वर्णित खुदा को कुछ विशिष्ट निशानियों के आधार पर ही पहचाना जा सकता है, कुर्आन शरीफ का शुभारम्भ ही खुदा की इबादत अथवा ईश्वर बन्दना से होता है। इसका उदाहरण कुर्आन शरीफ में इस प्रकार उपलब्ध होता है,- सब

की तारीफ़ खुदा ही के लिये है, जो तमाम मख्लूकात का परवरदिगार है। (1)बड़ा मेहरबान, निहायत रहम वाला (2) इन्साफ़ के दिन का हाकिम (3)(ऐ परवरदिगार!) हम तेरी ही इबादत करते हैं, और तुझी से मदद मांगते हैं, (4) हम को सीधे रास्ते पर चला।'[44]

खुदा की इबाद्त के पश्चात् कुर्आन शरीफ के रचनाकार ने कुर्आन शरीफ को भी खुदा का दिया हुआ वरदान माना है। जो खुदा पर यक़ीन करते है, उनके लिये यह जरूरी है कि वे कुर्आन शरीफ को खुदा का हिदायतनामा मान कर स्वीकार करें। इसका वर्णन कुर्आन शरीफ में इस प्रकार मिलता है। यह किताब (कुर्आन मजीद) इसमें कुछ शक नहीं (कि खुदा का कलाम है, खुदा से) डरने वालों की रहनुमा है, (2)जो ग़ैब पर ईमान लाते और आदाब के साथ नमाज़ पढ़ते और जो कुछ हमने उन को दे रखा है, उसमें से खर्च करते हैं (3) और जो किताब (ऐ मुहम्मद!) तुम पर नाजिल हुयी और जो किताबें तुम से पहले (पैगम्बरों पर) नाज़िल हुयीं, सब पर ईमान लाते और आखिरत का यकीन रखते हैं[45] (4)कुर्आन शरीफ में खुदा को सृष्टि का कर्ता-धर्ता स्वीकार किया गया है, आज पृथ्वी में मनुष्य जो सुख भोगता है वह खुदा की दी हुयी चीजों से भोगता है, इसका उल्लेख कुर्आन शरीफ में इस प्रकार मिलता है- ''जिसने तुम्हारे लिये जमीन को बिछौना और आसमान को छत बनाया आसमान से मेह बरसा कर तुम्हारे खाने के लिये किस्म-किस्म के मेवे पैदा किये, किसी को खुदा का हमसर न बनाओ और तुम जानते तो हो।''[46]

कुर्आन शरीफ में यह स्वीकार किया गया है कि सम्पूर्ण संसार का स्वामी खुदा अथवा परमपिता परमात्मा है, उसके अलावा संसार में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, जो खुदा अथवा परमात्मा का मुकाबला कर सके, जमीन से लेकर आसमान तक उसी की सत्ता सर्वत्र दिखाई देती है, यथा-''तुम्हें मालूम नहीं कि आसमानों और जमीन की बादशाहत खुदा की ही है और खुदा के सिवा तुम्हारा कोई दोस्त और मददगार नहीं है।'[47] इस प्रकार हम देखते हैं कि कुर्आन शरीफ में खुदा को सर्वशक्तिशाली और संसार का सृजेता माना गया है।

3-कुर्आन शरीफ में वर्णित धर्माचरण :-

कुर्आन शरीफ में व्यक्ति के आचरणों का विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है, इस आचरण का सम्बन्ध इस्लाम धर्म से जुड़ा हुआ है, मुख्य रूप से जिस धर्माचरण का उल्लेख कुर्आन शरीफ में उपलब्ध होता है, वह है कि, खुदा की इबादत करना, उसको सर्वशक्तिमान समझना और उसके लिये अपने आप को समर्पित कर देना, नियमपूर्वक पाँच वक्त की नमाज़ अदा करना, कुर्आन शरीफ पर श्रद्धा रखना, उसका सम्मान करना और नियमानुसार उसका पाठ करना, रमज़ान के महीने में रोज़ा रखना, ज़कात देना, यतीमों और बेसहारों को सहारा देना, हर व्यक्ति के साथ सद्व्यवहार करना, सच्ची जबान बोलना, झूठी कसम न खाना, अपने पैगम्बर हज़रत मोहम्मद साहब का सम्मान करना और श्रद्धा रखना, धर्म विरुद्ध व्यक्तियों और काफ़िरों को राह में लाने के लिये जेहाद करना और धर्म के नाम पर कभी-कभी के लिये कुर्बानी करना।

कुर्आन शरीफ में धर्माचरण के सम्बन्ध में अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं-इस सन्दर्भ में पहला उदाहरण नवाज़ पढ़ने का है तथा इसी उदाहरण में जकात देने का वर्णन भी मिलता है-

नवाज़ पढ़ा करो और ज़कात दिया करो तथा खुदा के आगे) झुकने वालों के साथ झुका करो।[48]

कुर्आन शरीफ में यह उल्लेख है कि हर व्यक्ति को अच्छे आचरण करना चाहिये और जो व्यक्ति तुम्हारे साथ जैसा व्यवहार करे, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये-'मोमिनो! तुम को मक्तूलों के बारे में क़िसास (यानी खून के बदले खून)[49] का हुक्म दिया जाता है(इस तरह पर कि) आजाद के बदले आज़ाद (मारा जाये), गुलाम के बदले गुलाम, औरत के बदले औरत, अगर कातिल को उसके (मक़्तूल) भाई (के क़िसास में) से कुछ माफ कर दिया जाये।(178) कुर्आन शरीफ में रमजान के महीनों में रोजा रखने का निर्देश दिया गया क्योकि कुर्आन शरीफ की संरचना इसी महीनें में हुयी थी,- (रोजों का महीना) रमज़ान का महीना (है) जिसमें कुर्आन (अव्वल-अव्वल) नाज़िल हुआ, जो लोगों का रहनुमा है और जिसमें हिदायत की खुली निशानियां है और (जो हक व बातिल को) अलग-अलग करने वाला है तो जो कोई तुममें से इस महीने में मौजूद हो, चाहिये कि पूरे महीने के रोजे रखे और जो बीमार हो या सफ़र में हो तो दूसरे दिनों में (रखकर) उनकी गिनती पूरी कर ले, खुदा तुम्हारे हक़ में आसानी चाहता है और सख्ती नही चाहता और (यह आसानी का हुक्म) इसलिये (दिया गया है) कि तुम रोजों का शुमार पूरा कर लो और इस एहसान के बदले कि खुदा ने तुमको हिदायत बख्शी है, तुम उसको बुजुर्गो से याद करो और उसका शुक्र करो। (185)[50]

कुर्आन शरीफ में मुसलमानों को यह निर्देश दिया गया है कि हर मुसलमान अपनी सामर्थ्य के अनुसार हज़ किया करे, और हज़ के समय वह परहेज़ किया करे। 'जो शख्स इन महीनों में हज़ की नीयत कर ले तो हज (के दिनों) में न औरतों से मिले, न कोई बुरा काम करे, न किसी से झगड़े और जो नेक काम तुम करोगे, वह खुदा को मालूम हो जाएगा और ज़ादेराह (यानी रास्ते का खर्च) साथ ले जाओ क्योंकि बेहतर (फ़ायदा) जोरदार (का) परहेजगारी है और ऐ अक़्ल वालो! मुझसे डरते रहो।[51](197)

कुर्आन शरीफ में परोपकार अथवा परहित की बहुत प्रशंसा की गयी तथा इसे धर्म का प्रमुख अंग माना गया, इस सन्दर्भ में भी कुर्आन शरीफ में उदाहरण उपलब्ध है-(ऐ मुहम्मद!) लोग तुमसे पूँछते है कि (खुदा की राह में) किस तरह का माल खर्च करें। कह दो कि (जो चाहो खर्च करो, लेकिन जो माल खर्च करना चाहो, वह (दर्जा-व-दर्जा हक वालों, यानी। माँ-बाप को और करीब के रिश्तेदारों को और यतीमों को और मुहताज़ों को, मुसाफिरों को (सबको दो) और जो भलाई तुम करोगे, खुदा उसको जानता है।(215)[52]

कुर्आन शरीफ में विविध अवसरों पर संघर्ष करने के लिये रोका गया, मुख्य रूप से पवित्र महीनों में किसी प्रकार का संघर्ष नहीं करना चाहिये। ऐसा कोई काम न करे जो काफिर करते है-'लोग तुमसे इज्ज़त वाले महीनों में लड़ाई करने के बारे में पूँछते हैं। कह दो कि इनमें लड़ना बड़ा (गुनाह) है और खुदा की राह से रोकना और उससे कुफ्र करना और मस्जिद हराम (यानी खाना-ए-काबा)में जाने से (बन्द करना) और मस्जिद वालों को उसमें से निकाल देना (जो ये काफिर करते हैं)[53]

इस्लाम धर्म में ब्याज लेना गुनाह माना गया है, यद्यपि व्यवसाय करना कोई गुनाह नहीं है। सूद लेने वाले की बहुत अधिक निन्दा कुर्आन शरीफ में की गयी है-'जो लोग सूद खाते हैं, वे (कब्रों से) इस तरह (हवास खोये) उठेंगे जैसे किसी जिन्न ने लिपट कर दीवाना बना दिया हो, यह

इसलिये कि वे कहते हैं कि सौदा बेंचना भी तो (नफा के लिहाज़ से) वैसा ही है जैसे सूद (लेना) हालांकि सौद को खुदा ने हलाल किया है और सूद को हराम, तो जिस शख्स के पास खुदा की नसीहत पहुँची और वह (सूद लेने से) बाज आ गया, तो जो पहले हो चुका, वह उस का, और (कियामत में) उस का मामला खुदा के सुपुर्द और जो फिर लेने लगा, तो ऐसे लोग दोज़खी हैं कि हमेशा दोज़ख में (जलते) रहेंगे।(275)[54]

धर्म के लिये जेहाद करना धर्म आचरण का एक अंग है, जेहाद उन लोगों के खिलाफ किया जाता है, जो बुतपरस्त तथा ईश्वर विरोधी हैं। इसका उदाहरण कुर्आन शरीफ में इस प्रकार उपलब्ध होता है- मोमिनो! (जेहाद के लिये) हथियार ले लिया करो, फिर या तो जमाअत-जमाअत होकर निकला करो या इकठ्ठे कूच किया करो (71)[55]

कुर्आन शरीफ में जानवरों की कुर्बानी की अनुमति दी गयी है, किन्तु इसमें कुछ प्रतिबन्ध भी लगाये गये हैं। ये प्रतिबन्ध इस प्रकार हैं-'तुम पर मरा हुआ जानवर और (बहता) लहू और सुअर का गोश्त और जिस चीज पर खुदा के सिवा किसी और का नाम पुकारा जायें और जो जानवर गला घुट कर मर जाए और जो चोट लगाकर मर जाए और जो गिरकर मर जाए और जो सीग लग कर मर जाए, ये सब हराम है और वे जानवर भी, जिसको दरिंदे फाड़ खाएं, मगर जिसको तुम (मरने से पहले) जिब्ह कर लो और वे जानवर भी, जो थान पर जिब्ह किया जाये ओर यह भी पांसों से किस्मत मालूम करों'[56](3)

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुर्आन शरीफ में हर मुसलमान को यह हिदायत दी गयी है कि वह धर्माचरण करे और दीन के प्रति सच्चा रहे।

<u>कुर्आन शरीफ में वर्णित सामाजिक व्यवस्था :-</u>

कुर्आन शरीफ में तद्युगीन सामाजिक व्यवस्था का विवरण है-इस सामाजिक व्यवस्था का सम्बन्ध अरब देशों की सामाजिक व्यवस्था से है, इसके अन्तर्गत गरीबों और धनियों के मध्य सम्बन्ध, स्त्री व पुरुषों के कर्तव्य और उनके मध्य सम्बन्ध, व्यापार और आर्थिक व्यवस्था, पारिवारिक संबंध, वैवाहिक नियम, जमीन-जायदाद की हिस्सेदारी आदि शामिल है। इसके अतिरिक्त विविध प्रकार के उत्पन्न विवादों का समाधान भी कुर्आन शरीफ में उपलब्ध होता है। यह समाधान तद्युगीन परिस्थितियों के अनुसार प्रस्तुत किया गया है, जो वर्तमान समय में भी इस्लाम धर्मावलम्बियों के लिये उपयोगी प्रतीत होता है। कुर्आन शरीफ में यह विवरण उपलब्ध होता है कि, व्यक्ति चाँद से अपनी तारीखें समझकर या जानकर व्यक्तियों से सम्पर्क किया करे, किसी के घर चोरी-छिपे न जाये बल्कि लोगों के घर सामने से आया जाया करे, कहने का तात्पर्य यह है कि समाज के किसी भी व्यक्ति से चोरी-छिपे संबंध बनाने के बजाय खुले और पारदर्शी संबंध बनाये जाये तथा व्यर्थ के संघर्षो से सदैव दूर रहा जाये, (ऐ मुहम्मद!) लोग तुमसे नये चांद के बारे में पूछते हैं (कि घटता-बढ़ता क्यों है)? कह दो कि वह लोगों के (कामों की मीयादें) और हज के वक्त मालूम होने का जरिया है और नेकी इस बात में नहीं कि (एहराम की हालत में) घरो में उनके पिछवाड़े की तरफ से आओ, बल्कि नेक वह है जो परहेज़गार हो और घरों में उनके दरवाजों से आया करे और खुदा से डरते रहो ताकि निजात पाओ(189)[57]

समाज के जो व्यक्ति गरीब है, उनके प्रति हमदर्दी रखना समाज के व्यक्तियों का कर्तव्य है गरीब और अनाथ व्यक्तियों की इसलिये सहायता करनी चाहिये, कि वे भी समाज के अंग है और हमारे भाई हैं और कभी यही स्थिति हमारी भी हो सकती है। कुर्आन शरीफ में यह वर्णन मिलता है-'तुमसे यतीमों के बारे में पूँछते हैं, कह दो कि उनके (हालात का) सुधार बहुत अच्छा काम है और अगर तुम उनसे मिल-जुल कर रहना (यानी खर्च इकठ्ठा रखना) चाहो तो वे तुम्हारे भाई है और खुदा खूब जानता है कि खराबी करने वाला कौन है और सुधार करने वाला कौन और अगर खुदा चाहता तो तुमको तकलीफ़ में डाल देता। बेशक खुदा ग़ालिब और हिम्मत वाला है। (220)[58]

कुर्आन शरीफ में स्त्रियों के सन्दर्भ में कुछ विशेष नियम दिये गये है। कुर्आन शरीफ़ में इसका विवरण इस प्रकार उपलब्ध होता है-'' और तुमसे हैज के बारे में पूँछते है! कह दो कि वह तो नजासत है, सो हज़ के दिनों में औरतों से अलग रहो और जब तक पाक न हो जायें, उनसे करीब न होओ। हाँ, जब पाक हो जाएँ तो जिस तरीके से खुदा ने तुम्हें इर्शाद फरमाया है, उनके पास जाओ। कोई शक नहीं कि खुदा तौबा करने वाले और पाक-साफ रहने वालों को दोस्त रखता हैं(222) तुम्हारी औरतें तुम्हारी खेती हैं, तो अपनी खेती में जिस तरह चाहो जाओ और अपने लिये (नेक अमल) आगे भेजो और खुदा से डरते रहो और ध्यान रखो कि (एक दिन)तुम्हें उसके सामने हाज़िर होना हैं और (ऐ पैगम्बर) ईमान वालों को खुशखबरी सुना दो (223)[59]

जो व्यक्ति अपनी पत्नी से नाराज़ है और उसके पास न जाने की कसम खा ले तो उसे 4 महीने तक अपनी औरत के पास न जाना चाहिये और किसी औरत को तलाक दे रहे हो तो उसे मुद्दत की अवधि तक पूरा खर्चा दो। कुर्आन शरीफ में यह भी वर्णन है कि औरतों का भी हक मर्दो पर हैं ठीक उसी प्रकार जैसा मर्दो का हक औरतों पर होता है। औरतों को पहले दो बार तलाक दिया जाये यदि उसका आचरण सुधर जाए तो उससे तलाक वापस ले लो। यदि कोई मर्द अपनी औरत को छोड़े और उसकी औरत किसी दूसरे मर्द से निकाह न कर ले, तब तक वह निकाह नही कर सकता। इद्दत की अवधि पूरी हो जाने के पश्चात् यदि औरत किसी दूसरे मर्द से निकाह करती है तो उसे रोकना न चाहिए। यदि औरत किसी बच्चे की मां है तो उसके बच्चे को तब तक वापिस न ले जब तक बच्चा दूध पीता हो तलाक देने के पश्चात् मैहर की रक़म औरतों को दे दी जाये।[60]

जो औरत विधवा हो जाये और मर्द औरत के हक में वसीयत कर जाये, उसके बाद उसे एक वर्ष तक पूरा खर्च दिया जाये तब तक वह दूसरे मर्द से निकाह न कर ले।[61]

जब व्यक्ति किसी से पैसे का लेन-देन करे तो उसमे बहुत ही ईमानदारी का व्योवहार रखे तथा किसी का नुकसान न करे और पैसे के-लेन-देन की याददाश्त के लिए दस्तावेज़ में वास्तविक धनराशि लिखे, यदि जरूरत पड़े तो दो लोगो को गवाह भी बना ले।[62]

कुर्आन शरीफ में पारिवारिक सम्पत्ति के बंटवारे के बारे में भी कुछ निर्देश दिये गये है। कुर्आन शरीफ के अनुसार, किसी भी जायदाद व सम्पत्ति में लड़की का हिस्सा लड़के के हिस्से से आधा होता है किन्तु जिसके सिर्फ लड़कियाँ हो तो उनको दो तिहाई हिस्सा मिलेगा और एक लड़की को दो से आधा हिस्सा मिलेगा और अगर किसी व्यक्ति के सन्तान न हो और उसके माता- पिता ही उसके उत्तराधिकारी हो तो उसकी सम्पत्ति का एक तिहाई माँ का और अगर उसके कोई दूसरा

भाई हो तो माँ का छठवाँ हिस्सा, यदि उस पर कोई कर्ज हो तो कर्ज की रकम निकालकर यह बँटवारा किया जाए।[63]

यदि कोई औरत अपनी सम्पत्ति छोड़कर मर जाये, उसके कोई औलाद भी हो तो उसकी सम्पत्ति में से आधा हिस्सा उसके पति का और आधा हिस्सा औलाद का होगा। यदि कोई मर्द मरता है अगर उसके कोई औलाद नहीं है तो सम्पत्ति में औरत का हिस्सा 1/4 भाग और अगर कोई औलाद है तो 1/8 भाग होगा, यह बँटवारा कर्ज अदा करने के बाद होगा।[64]

कुर्आन शरीफ में यह स्पष्ट निर्देश है कि जो स्त्रियाँ पुरुषों के निर्देश में नहीं रहती, उनके साथ निम्न व्यवहार करना चाहिए-'मुसलमानों! तुम्हारी औरतों में जो बदकारी कर बैठे, उन पर अपने लोगों में चार आदमियों की गवाही लो। अगर वे (उनकी बदकारी की) गवाही दें, तो इन औरतों को दारों में बन्द रखो, यहाँ तक कि मौत उनका काम तमाम कर दे या खुदा उनके लिये कोई और रास्ता (पैदा) करे (15) और जो मर्द तुम में से बदकारी करे, तो उनकी ईज़ा (तक़लीफ) दो फिर अगर वे तौबा कर ले और भले बन जाएं तो उनका पीछा छोड़ दो।[65]

कुर्आन शरीफ में यह साफ हिदायत दी गयी है कि पुरुष किसी भी औरत के साथ जबरदस्ती न करे और न उसकी सम्पत्ति का मालिक बने, जो वह स्वेच्छा से दे वही लो यदि तुम एक औरत को छोड़कर किसी दूसरी औरत से निकाह करते हो तो पहले वाली औरत की सम्पत्ति पर अधिकार मत जताओ, जिन औरतों से तुम्हारे बाप ने निकाह किया हो, उन औरतों से निक़ाह न करों[66] तुम्हें अपनी माता, बेटी, बहन, फूफी, खाला, भतीजी, भाँजी और वे औरतें जिन्होंने तुम्हें दूध पिलाया हो, उन्हे बुरी निगाह से न देखो। ऐसी औरते जिन्होने तुम्हारे पालने में मदद की हो उसी प्रकार सगे बेटों की औरतों को भी बुरी नज़र से न देखो तथा वे औरतें जिनका विवाह हो चुका है और जो अपने मर्दो के साथ रहती हैं उन्हें भी बुरी दृष्टि से न देखो।[67]

कुर्आन शरीफ में यह भी निर्देश दिया गया है''मर्द औरतों पर हाकिम व मुसल्लत है इसलिये कि खुदा ने कुछ को कुछ से अफ्जल बनाया है और इसलिये भी कि मर्द अपनी माल खर्च करते हैं तो जो नेक बीबियाँ हैं, वे मर्दो के हुक्म पर चलती हैं और उन के पीठ पीछे खुदा की हिफ़ाजत में (माल व आवक की) खबरदारी करती है और जिन औरतों के बारे में तुम्हें मालूम हो कि सरकशी (और बदचलनी) करने लगी, तो (पहले) उनको (जुबानी) समझाओ, (अगर न समझे) फिर उनके साथ सोना छोड़ दों।अगर इस पर भी न माने तो मारो-पीटो और अगर फरमाबरदार हो जाएँ तो फिर उनको तक्लीफ देने का कोई बहाना मत ढूंढ़ो बेशक खुदा सबसे ऊँचा और जलीलुल कद्र (ऊँची इज्जत वाला) है।[68](84)

अनाथ बच्चों के लिये कुर्आन शरीफ में यह निर्देश दिया गया है कि तुम उनकी हिफाजत करो और जिस बात की कसम खाओ, उसको पूरा करो- 'खुदा तुम्हारी बे-इरादा कसमों की तुमसे पकड़ न करेगा, लेकिन पुख़्ता कसमों पर (जिनके खिलाफ़ करोगे, तो) पकड़ लेगा, तो उस का कफ़्फ़ारा दस मुहताजों को औसत दर्जे का खाना खिलाना है, जो तुम अपने बाल-बच्चों को खिलाते हो या उन को कपड़े देना या गुलाम आजाद करना, और जिसको यह न मिले, वह तीन रोजे रखे। यह तुम्हारी कसमों का कफ़्फ़ारा है, जब तुम कसम खा लो (और उसे छोड़ दो) और (तुमको) चाहिये

कि अपनी कस्मों की हिफाजत करो। इस तरह खुदा तुम्हारे (समझाने के) लिये अपनी आयतें खोल-खोल कर बयान फ़रमाता है, ताकि तुम शुक्र करों(89)[69]

इस प्रकार हम देखते है कि कुर्आन शरीफ में तद्‌युगीन सामाजिक व्यवस्था का वर्णन विस्तार में मिलता है, आज भी यह सार्थक प्रतीत होता है।

कुर्आन शरीफ़ में वर्णित तद्‌युगीन इतिहास :-

कुर्आन शरीफ़ की संरचना हज़रत मोहम्मद साहब की समकालिक रचना है इसलिये स्वाभाविक है कि उस ग्रंथ में तद्‌युगीन परिस्थितियों और ऐतिहासिक घटनाओं का प्रभाव निश्चित ही पड़ा होगा क्योंकि इस्लाम धर्म के इस पवित्र ग्रंथ में कुछ पूर्व प्रचलित नियमों को और धार्मिक मान्यताओं को उसी प्रकार से अपना लिया गया है, और कुछ धार्मिक मान्यताओं में थोड़ा बहुत सुध ार किया गया है। कुर्आन शरीफ में सर्वप्रथम याकूब (बनी इसराईल) की घटना उपलब्ध होती है जो तौरात् नामक पवित्र ग्रंथ पर विश्वास करता था, इसकी कौम को फिऔन (मिश्र का बादशाह) परेशान करता था और उसके बेटे-बेटियों का कत्ल कर देता था खुदा ने दरियाँ फाड़ कर उसके परिवार को डुबो दिया।[70]

कुर्आन शरीफ में दूसरी ऐतिहासिक घटना हज़रत मूसा की मिलती है, खुदा ने उस पर भी रहमत की थी तथा मूसा को भी एक धार्मिक ग्रंथ तौरात प्रदान किया था[71] इसके पश्चात् कुर्आन शरीफ में ईसा मसीह और मरियम का वर्णन उपलब्ध होता है। खुदा ने जिनको बाइबिल नाम का ग्रंथ दिया था और यह आशा की थी कि इस ग्रंथ से सम्पूर्ण मानवता का कल्याण होगा किन्तु मानवता के दुश्मनों ने ईसा मसीह को ही खत्म कर दिया।[72]

कुर्आन शरीफ में एक अन्य घटना सुल्तान सुलेमान की उपलब्ध होती है यह जादू टोनों पर विश्वास करता था और खुदा पर यकीन न करता था।[73] कुर्आन शरीफ में एक घटना इब्राहिम और इस्माइल के सन्दर्भ में उपलब्ध होती है वह खुदा का सच्चा इबादतगार था।[74]

कुर्आन शरीफ में नूह और बर्नी इस्राइल के सन्दर्भ में विवरण उपलब्ध होता है कि जो भी व्यक्ति दंगा फसाद करता है अथवा खुदा की मर्जी के बगैर कोई कार्य करता है तो उसे बहुत कष्ट झेलना पड़ता है।[75]

मोहम्मद साहब के पहले अरब देश के निवासी बुतों और अपने पूर्वजों की पूजा करते थे, इब्राहीम ने अपनी पिता से यह कहा कि वह अपने पूर्वजों की पूजा न करके खुदा की इबादत करे इससे उसके परिवार वाले नाराज हो गये तथा उसने खुदा की ही इबादत की और परिवार वालों की परवाह नहीं की।[76]

कुर्आन शरीफ में लुकमान का कथानक भी उपलब्ध होता है, वह खुदा की इबादत किया करता है और खुदा पर यकीन करता है, उसने अपने बेटे को नसीहत दी थी कि, वह खुदा पर यकीन करें, लड़ाई झगड़ा न करे, नियम से नवाज पढ़े और मुसीबत में सब्र करे।[77]

हम देखते है कि सम्पूर्ण कुर्आन शरीफ में दो प्रकार के व्यक्तियों का विवरण उपलब्ध होता है, पहले प्रकार के व्यक्ति वे है जो इस्लाम विरोधी है तथा दंगा फसाद में विश्वास रखते हैं। दूसरे प्रकार के वे व्यक्ति है, जो इस्लाम के समर्थक है तथा अमन-चैन और न्याय पसंद करने वाले है।

द्वोजक और जन्नत :-

अन्य धर्मों के अनुसार, इस्लाम धर्म में भी व्यक्ति के कर्म के अनुसार स्वर्ग और नरक की उपलब्धि को दर्शाया गया है, जो व्यक्ति अच्छे कर्म करता है और खुदा के बताये रास्ते पर चलता है, उसे जन्नत का सुख मिलता है और जो व्यक्ति खुदा के बताये रास्ते पर नहीं चलता है तथा शैतान का अनुकरण करता है, उसे द्वोज़क का दुःख देखना पड़ता है। कुआ़र्न शरीफ के अनुसार, जब कयामत आयेगी उस समय सभी व्यक्तियों को कब्रों से उठाया जायेगा, जो खुदा के खास बन्दे थे, उन्हें स्वर्ग का सुख दिया जायेगा, स्वर्ग में उन्हें खाने के लिये दैवीय फल जो स्वर्ग के बागों में उगते हैं, दिये जायेंगे उन्हें तख्त में सम्मानपूर्वक बैठाया जायेगा और अमृत पिलाया जायेगा तथा उनके बगल में स्वर्ग की अप्सरायें बैठी होगी।[78]

कुआ़र्न शरीफ के अनुसार, नर्क का निर्माण जालि़म व्यक्तियों के लिये किया गया, उन्हें नर्क के निचले हिस्से में रखा जायेगा और उन्हें गर्म पानी दिया जायेगा और नाना प्रकार के कष्ट दिये जायेंगे।[79]

शैतान और फरिश्ते :-

कुआ़र्न शरीफ में भी दो प्रकार की शक्तियों का विवरण सर्वत्र उपलब्ध होता है, इनमें अच्छी शक्तियों को फरिश्तों के नाम से पुकारा गया है तथा ये सर्वत्र मानवों के कल्याण में लगे हुये दिखलाई देते हैं। इनकी संख्या 5 हजार बतायी गयी है, ये व्यक्तियों को अच्छे कार्य के लिये प्रेरित करते हैं तथा व्यक्ति की जब मृत्यु होती है, तो उन्हें कयामत के पश्चात् स्वर्ग की गति दिलाने में यही फरिश्ते सहयोग करते हैं।[80] कुआ़र्न शरीफ में शैतानों का भी वर्णन उपलब्ध होता है, शैतान अथवा राक्षस कभी भी खुदा के बताये रास्ते पर नहीं चलते तथा वे पृथ्वी के लोगों गुमराह करते रहते हैं तथा व्यक्ति को इस काबिल बना देते हैं कि वे धर्मविरुद्ध कार्य करे और नरक में जायें।[81]

काफि़र :-

कुआ़र्न शरीफ में अनेक स्थानों पर काफि़रों का उल्लेख आया है किन्तु काफि़र शब्द को निश्चित रूप से परिभाषित नहीं किया गया इसलिये काफि़र शब्द से कई अर्थ निकाले जा सकते हैं। इसका प्रथम शाब्दिक अर्थ यह होता है कि, जिनसे खुदा नाराज़ है अर्थात् जिन पर खुदा कुफ्र करता है, वे व्यक्ति काफि़र है। स्पष्ट है खुदा का कुफ्र अथवा क्रोध उन व्यक्तियों पर होता है। जो खुदा की ताकत पर भरोसा नहीं करते तथा धर्म विरुद्ध आचरण करते है और सीधे-साधे व्यक्तियों को परेशान करते है। काफिर शब्द का दूसरा अर्थ, उन व्यक्तियों से संबंधित है, जो एकेश्वरवाद को न मानकर अनेक देवी-देवताओं को पूजते हैं, अपने पूर्वजों की उपासना करते हैं और मूर्ति-पूजा भी करते है। काफि़र शब्द का एक अर्थ यह भी निकलता है कि, जो भी व्यक्ति ईश्वर की शक्ति पर विश्वास नहीं करता, ईश्वर को मात्र कल्पना समझता है तथा किसी भी प्रकार धर्माचरण नहीं करता है, वह भी काफि़र है। कुल मिलाकर वह व्यक्ति, जो परमात्मा के विरुद्ध आचरण करता है और घमण्ड करता है तथा व्यक्तियों को गुमराह करता है, वह काफि़र है और शैतान का दूसरा रूप हैं।[82]

कयामत (आखि़रयत)

अन्य धर्मों की भाँति कयामत की चर्चा कुआ़र्न शरीफ में भी उपलब्ध होती है, जब

व्यक्ति माता के गर्भ से जन्म लेता है और वह बालक युवक, प्रौढ़, और वृद्ध होता है, तो यह भी सुनिश्चित हो जाता है कि, उसकी मृत्यु भी सुनिश्चित है। इसी प्रकार संसार और संसार की सभी वस्तुयें नाशवान है, केवल एक खुदा ही ऐसा है, जो अजर-अमर है, इसका कभी विनाश नहीं होता, वहीं प्रलय के दिन शेष रह जायेगा। प्रलय के दिन सूरज का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा, तारों का प्रकाश खत्म हो जायेगा, पृथ्वी और पहाड़ समाप्त हो जायेगें, नदियों का जल आग से जल जायेगा और रूहें शरीरों से निकाल ली जायेंगी और आसमान का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा, उस समय द्वोज़क और जन्नत खुदा के पास रह जायेंगे, जिस प्रकार रात्रि के पश्चात् तारों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार संसार का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा।[83]

कुर्आन शरीफ में कहा गया है कि, कयामत के दिन आसमान फट जायेगा, सब तारे झड़ पड़ेंगे, सब नदियाँ एक दूसरे से मिल जायेगी, सब कब्रें उखाड़ दी जायेगी, उस समय हर व्यक्ति को यह अनुभव होगा कि, उसने क्या किया और उसे क्या करना चाहिये था।[84]

कुर्आन शरीफ से मिलने वाली शिक्षायें

कुर्आन शरीफ़ वास्तव में एक पवित्र ग्रंथ है, यह केवल इस्लाम का अनुकरण करने वाले व्यक्तियों के लिये ही नहीं अपितु सभी धर्म मानने वालों के लिये अनुकरणीय हैं। इससे निम्नलिखित शिक्षायें उपलब्ध होती हैं-

(1) संसार का स्वामी एक मात्र खुदा (परमात्मा) है, जो समस्त सृष्टि का कर्ता-धर्ता है तथा जिसकी इच्छा से समस्त सृष्टि का निर्माण होता है। उसी की इच्छा से विनाश भी होता है।

(2) समस्त मानव प्राणी एक कौम के हैं, इनका विभाजन ऊँच-नीच, छोटे-बड़े तथा नस्ल के आधार पर नहीं किया जा सकता।

(3) हर व्यक्ति को खुदा की इबादत (नवाज़) करना चाहिए और धर्म के बनाये रास्ते पर चलना चाहिये तथा उसे यतीमों पर दया करना चाहिये, समय-समय पर इन्सानों से हमदर्दी जाहिर करते हुये उनकी मदद करना चाहिये।

(4) कुर्आन शरीफ़ एक खुदाई किताब है, उस पर श्रद्धा रखनी चाहिये और उसका पाठ करना चाहिये।

(5) मोहम्मद साहब को खुदा का पैगम्बर स्वीकार करते हुये, उनका सम्मान करना चाहिये।

(6) जिन्दगी के अन्त तक इन्साफ़ का रास्ता अपनाना चाहिये। ब्याज नहीं लेना चाहिये। किसी की सम्पत्ति का अपहरण नहीं करना चाहिये और न झूठी कसम खाना चाहिये।

(7) रमज़ान के महीनों में रोजे रखना चाहिये। जक़ात देना चाहिये और खुदा के नाम पर कुर्बानी करना चाहिये।

(8) हमेशा धर्म विरोधियों से ज़ेहाद करने के लिये तैयार रहना चाहियें।

(9) कयामत और आखिरियत का ख्याल करते हुये हमेशा नेक कार्यो में लगा रहना चाहिये ताकि द्वोज़क और जहन्नुम का दुःख न झेलना पड़े और आख़िरयत में जन्नत मिले।

हदीस का विस्तृत परिचय एवं इसमें वर्णित नियम-

हज़रत मोहम्मद साहब की मृत्यु के पश्चात् उनके धार्मिक उपदेशों को तद्युगीन विद्वानों ने अत्यन्त विस्तार के साथ अन्य ग्रंथों में आबद्ध किया। इन ग्रंथों में सामाजिक व्यवस्था, संस्कार विधि, न्यमितिक कर्म, धार्मिक कर्म तथा अन्य आचार विचारों को सविस्तार वर्णित किया गया है, ये ग्रंथ हदीस के नाम से विख्यात हुये। प्रारम्भ में इन ग्रंथों की संरचना अरबी भाषा में हुयी तथा अरबी भाषा में ही उनका प्रचार-प्रसार उन स्थानों पर किया गया जहाँ इस्लाम धर्म को मानने वाले लोग निवास किया करते थे। इन हदीस ग्रंथों को तीन भागों में विभाजित किया गया है।

1)	अहदीस-ऐ-मुतबातर	Ahidis-i-Mutwatar
2)	अहदीस-ऐ-मशहूर	Ahidis-i-Mashura
3)	अखबारी-ऐ-वाहिद	Aphbari-i-Wahid

वर्तमान समय में अनेक ग्रंथों की रचना पूरे विश्व में हुयी, इन ग्रंथों का सम्बन्ध इस्लाम धर्म और उसकी संस्कृति से है, इनमें से अनेक ग्रंथ जो हदीस से संबंधित है वे भारतवर्ष में भी उपलब्ध होते हैं इनमें से अनेक ग्रंथ जो हदीस से संबंधित है, वे भारतवर्ष में भी उपलब्ध होते हैं इनमें से 1) बुखारी शरीफ 2) मुस्लिम शरीफ (3) मिश्कात शरीफ (4) तिर्मिजी-शरीफ (5) बाहकी (6) जमाउल कवाइद (7) मआलिमुतजीन (8) नसाई आदि ग्रंथ यहाँ उपलब्ध है, जो हदीस से संबंधित है जिन परम्पराओं का अनुसरण मुसलमान लोग करते हैं। इस सन्दर्भ में के०पी० सक्सेना का कथन महत्वपूर्ण प्रतीत होता है -

"In spite of so much adverse criticism discreditory or minimising the importance of traditions, their value in the development of the law and the interpretation and historical study must not be over-looked."

हदीस पर विस्तृत अध्ययन करने के लिये, उसकी विषय सामग्री पर विशेष ध्यान देना होगा और विषय वस्तु के अनुसार, उसका वर्गीकरण करते हुये उसका अध्ययन आवश्यक होगा।

हदीस की विषय-सामग्री :-

हदीस ग्रंथ एक ग्रंथ के रूप में उपलब्ध नहीं होता, बल्कि यह ग्रंथ अनेक भागों में विभाजित है। इन ग्रंथों की रचना इस्लाम धर्मावलम्बी प्रसिद्ध विद्वानों ने की, इन ग्रंथों के अध्ययन को ऐसा प्रतीत होता है कि, इन ग्रंथों की रचना मोहम्मद साहब की मृत्यु के सैकड़ों वर्ष बाद की गयी। इन ग्रंथों में हज़रत मोहम्मद साहब के जीवन को आदर्श मानकर उसके विविध पहलुओं का विश्लेषण एक आदर्श मुस्लिम समाज के निर्माण के लिये किया गया है। इन सभी हदीसों में लिखे गये सामान्य नियम एक से प्रतीत होते हैं, किन्तु देश-काल परिस्थितियों के अनुसार उनमें व्यापक अन्तर प्रतीत होता है, यह अन्तर किसी भी प्रकार के तर्क का विषय नहीं बन सकता। विषय-सामग्री के अनुसार सम्पूर्ण हदीसों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है-

1- खुदा और उसकी इबादत से सम्बन्धित धार्मिक नियम :-

हदीस के अनुसार इस्लाम धर्म से तात्पर्य उस धर्म से है, जो खुदा पर पूरा यकीन रखता है और अल्लाह के अलावा किसी पर यकीन नहीं रखता। हज़रत मोहम्मद साहब को अपना पैगम्बर

मानता है तथा उनके द्वारा रचित कलाम पाक को वास्तविक धार्मिक रसूल मानता है। इस धर्म के अनुसार (1) नवाज़ अदा करना (2) ज़कात देना (3) रमज़ान के महीने में रोज़े रखना (4) हैसियत के अनुसार इस्लामिक तीर्थ स्थलों की यात्रा करना, इसी को सच्चा इस्लाम धर्म माना गया है।

इस्लाम धर्म के अनुसार खुदा सभी इन्सानों का मददगार है, वह हमें देखता है किन्तु हम उसे नहीं देख पाते, इसलिये हर इन्सान को खुदा के एहसान के बदले उसकी इबादत सच्चाई से करना चाहिये।

हर मुसलमान को अपने जीवन के अन्त और आने वाली कयामत पर पूर्ण विश्वास करना चाहिये, जब कयामत आयेगी, उस समय मनुष्य संसार के स्वामी खुदा को पहचानेगा और उसका करिश्मा देखने के लिये, तुम देखो कि संसार में जो व्यक्ति गरीब रहा है और बकरियाँ चराता रहा है, वह एक दिन धनी बनकर बड़ी-बड़ी इमारतों का मालिक हो जाता है। खुदा के फरिश्ते ही मोहम्मद साहब के पास आकर उन्हें दीन और इस्लाम की शिक्षा देते रहे।[85]

इस्लाम धर्म के अनुसार- सच्चा मुसलमान वही है, जो कुर्आन शरीफ और मोहम्मद साहब पर श्रद्धा रखता हुआ खुदा के पाँच हजार फरिश्तों पर यकीन करे तथा खुदा के बनाये हुये रसूलों को माने, ज़न्नत व द्वोज़क पर यकीन करे तथा खुदा से डरता हुआ पाँच वक्त नवाज़ पढ़े और किसी प्रकार का गुनाह न करे तथा समय-समय पर जक़ात देता रहे। धर्म पर दिये नियमों का पालन करने में लापरवाही न करें।[86]

धर्म के मामले में एक बात की हिदायत दी गयी है कि, कोई भी व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को खुदा की बराबरी में न रखे तथा वह हमेशा अच्छी बात किया करे, बुरी बात से परहेज़ करे, घर वालों को सलाम किया करे। जो उपरोक्त नियमों का पालन करता है, वही सच्चा मुसलमान है।[87] हद़ीस में यह भी निर्देश मिलता है कि, किसी भी मुसलमान को किसी व्यक्ति के ऊपर किसी भी प्रकार की ज्याद़ती और जुर्म नहीं करना चाहिये, जो व्यक्ति अपने चरित्र में सुधार कर ले और अपने गुनाहों का प्रायश्चित करे, वही सच्चा मुसलमान है।[88]

हद़ीस में यह भी उल्लेख मिलता है कि, वह व्यक्ति मुसलमान नहीं हो सकता जो अपने माता-पिता और औलाद से ज्यादा खुदा से मोहब्बत नहीं करता।[89]

वही व्यक्ति सच्चा मुसलमान है, जो अपने मजहब पर ईमानदारी से अमल करे, धोखे से भी उससे कोई गलत कार्य हो जाये तो उसका अफसोस करे।[90]

इस्लाम में यह हिदायत दी गयी है कि, वही सच्चा मुसलमान है जो दुनिया की भलाई सोचे और भलाई करे तथा जब भी अकेले में बैठे, तब वह हमेशा खुदा का जिक्र करे, अपनी जब़ान को नियन्त्रण पर रखे, क्योंकि नेकी करना ही वास्तविक धर्म है और यह भावना नेक व्यक्तियों की संगत करने से आती है।[91]

इस प्रकार हम देखते हैं कि हद़ीस ग्रंथों में धर्माचरण में विशेष बल दिया गया है।

2- खुदा की इबादत के तौर-तरीके :-

समस्त हद़ीस ग्रन्थों में खुदा को सर्वोपरि माना गया है, इसलिये इबादत के अनेक तौर-तरीके मुसलमानों के लिये निधार्रित किये गये हैं। खुदा की इबादत के लिये हदीस में अनेक प्रकार

के विवरण उपलब्ध होते हैं। इसमें सबसे पहले व्यक्ति के हृदय तथा शरीर की पवित्रता है, यदि कोई भी व्यक्ति दिल से खुदा पर यकीन नहीं रखता और केवल दिखावे के लिये इबादत करता है, तो वह ठीक नहीं है, इबादत करने का हक उसी को है जो मोहम्मद साहब को पैगम्बर मानता है तथा क़ुर्आन पर यकीन रखता है।[92]

इबादत करने के लिये निम्न बातों का ध्यान रखना बहुत जरूरी है-(1)मिस्वाक करना (2) नाक में पानी लेकर सफाई करना (3) मूँछों का तरश्वाना (4) दाढ़ी का छोड़ना (5) नाखून तरश्वाना (6) उँगलियों के जोड़ों को एहतिमाम से धोना (7) बगल के बाल लेना (8) मुए जेरे नाफ़ की सफाई करना (9) पानी से इस्तिन्जा करना।[93]

जब व्यक्ति न्यमितिक कर्म, शौच आदि क्रिया करे, तो भी वह खुदा को न भूले, इसके पश्चात् जब व्यक्ति वुजू करे तो भी खुदा को न भूलें। हदीस में यह नियम मिलता है कि, जिन्दगी के वसूलों का निर्माण इसलिये किया गया है, ताकि तुम्हारी औलादें ठीक रहें और उनसे सबक लेती रहें। जब कोई धार्मिक स्थल सामने मिल जायें तो उसकी तरफ मुँह करो, जब व्यक्ति स्नान स्थल पर जाये तो बहुत सावधानी बरतें तथा शौच आदि जाने में भी विशेष सावधानी बरतें।[94] शौच आदि कर्मो के सन्दर्भ में 26 प्रकार के नियम हदीस में दिये गये हैं, जो अत्यन्त उपयोगी है। उसी प्रकार के नियम मुंह की स्वच्छता, दातून आदि करने से संबंधित है। हदीस में दातून करने से संबंधित नियम सविस्तार से दिये गये हैं, इसमें पुरुषों और स्त्रियों के लिये अलग-अलग नियम है, पुरुषों के लिये तीन नियम और स्त्रियों के लिये 18 नियमों का अनुपालन करना जरूरी है।[95]

हदीस ग्रंथों में मुसलमानों के लिये स्नान के तरीकों का भी उल्लेख किया गया है। स्नान करते समय दोनो हाथ धोना, वुजू करना, बालों की जड़ो तक पानी डालना और पूरे बदन में पानी डालना आवश्यक था, स्नान करने के बाद गीले बदन को कपड़े से पोछने की हिदायत दी गयी, स्नान करते समय मुँह और नाक की सफाई भी करना चाहिये। स्नान के सन्दर्भ में निम्न विवरण हदीसो में उपलब्ध होता है। यदि पानी उपलब्ध न हो तो वह हफ्तें में एक दिन शुक्रवार को स्नान अवश्य करे और सारे बदन को अच्छी तरह धोए, यह स्नान जुमूअः के दिन, ईद के दिन और हज़ करने के समय बहुत जरूरी बताया गया है।[96]

हदीस ग्रंथो में वुजू की तरीके भी बतलाये गये है, वुजू करने वाले व्यक्ति अख़िरयत के दिन खुदा के कोप भाजन नही होगे। इसमें यह वर्णन मिलता है कि, पहले अपने हाथों को तीन बार धोना चाहिये, फिर मुँह और नाक की सफाई करना चाहिये, उसके बाद दाँयें और बाँयें हाथ की कोहनी तक धोना चाहिये, उसके बाद नवाज़ पढ़ना चाहिये।[97]

हदीस के सभी ग्रंथो में मुसलमानो के लिये पाँच वक्त की नवाज़ अदा करना बहुत पवित्र माना गया हैं। इस्लाम धर्म के अनुसार, जो भी व्यक्ति ईमानदारी के साथ नवाज़ अदा करता है, उसे कयामत के बाद अच्छी गति उपलब्ध होती है- ये नवाज़े इस प्रकार की है- (1) नवाज़े फज्र (2) नवाज़े जुहर (3) नवाज़े असिर (4) नवाज़े मगरिब (5) नवाज़े इशा। किसी की मुसलमान को नवाज़ अदा करने में किसी प्रकार की भूल नही करना चाहिये, जब नवाज़ का वक्त आये तो उसे तैयार होकर आ जाना चाहिये तथा जब वह घर में हो तो उसे और उसकी औरतो को नवाज़ पढ़ना चाहिये। जब

वह नवाज़ पढ़ना भूल जाये तो वह दो वक्त की नवाज़ एक वक्त में पढ़ ले। जब वह हज में जाये तो वह ऐसे स्थान में नवाज़ पढ़े, जहाँ नवाज़ अदा की जाती है। नवाज़ पढ़ने के पहले और बाद में अल्लाह का नाम लेना बहुत जरूरी है, किन्तु नवाज पढ़ने के लिये कुछ प्रतिबंध लगाये गये। इसके अतिरिक्त नवाज पढ़ने के तरीको का वर्णन भी हदीस में सविस्तार उपलब्ध हो जाता है तथा इसमें यह भी नियम है कि, यदि किसी प्रकार की भूल हो जाये तो उसका प्रायश्चित भी करना चाहिये, इस प्रायश्चित के अनुसार, नवाज़ को दोबारा पढ़े फिर दुआ पढ़े, तो भूल सुधार हो जाती है। नवाज़ो के बाद कुछ खास प्रकार की दुआएं खुदा से मांगी जाती है, कि वह अपने बंदे को भलाई के रास्ते पर चलाये ताकि वह द्वोज़क के कष्ट से बच सके। नवाज़ पढ़ने के सन्दर्भ में विभिन्न हदीसो में विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है।[98] हदीसो में हज़रत मोहम्मद साहब की नवाज़ के प्रतिफल सुबह और शाम की नवाज़, सुन्नते जुहर, नवाज़े इशा, फजिर नवाज़ से सम्बन्धित हिदायते, जिसके अन्तर्गत मस्जिदो की नवाज़, घर की नवाज़, औरतो की नवाज़, औरत और मर्द की नवाज़ो में फर्क, नवाज़े इस्तिखार, सलातुल हाजात, नवाज़े कुसूफ़, नवाजे इतिस्का।

खुदा से दुआ मांगने का तरीका- दुआ के लिये हाथ उठाना, दुआ में यकीन करना, भाई के लिये दुआ करना, अपने से छोटो के लिये दुआ करना, खराब सपनों से डरना, विभिन्न अवसरो पर नवाज़ अदा करना, मस्जिद जाने के तरीके, अज़ान देने के तरीके, रोज़े रखने के तरीके, ईद मनाने के तरीके, हज़ जाने के तरीके, मक्का और मदीने में इबादत करने के तरीके तथा ज़कात देने के तरीके हदीस में उपलब्ध होते है। इसी ग्रंथ में हिज्रत, ज़ेहाद और शहादत के बारे में भी पूर्ण विवरण उपलब्ध होता है तथा इससे सम्बन्धित अनुकरणीय नियम हदीस ग्रंथो में उपलब्ध होते है।

व्यक्तिगत और सामाजिक जिन्दगी के सन्दर्भ में हदीस में उपलब्ध विवरण-

हदीस में उन आचरणो के बारे में उदारण उपलब्ध होते है, जो एक सच्चे मुसलमान को अपने जीवन में करना चाहिये। हर मुसलमान खुदा द्वारा प्रदत्त अपने शरीर का मालिक है, उसका पूरा शरीर और उसके प्रत्येक अंग तथा उस शरीर में व्याप्त आत्मा उसकी खुद की है। इसलिये उसे अपनी इच्छाओ का मालिक बनाया गया है, उसे उतने ही काम करने की हिदायत दी गयी है। जितनी शक्ति उसके शरीर में हो तथा जितना काम करने से वह खुश रहें।[99]

हर मुसलमान को यह हिदायत दी गयी है कि, वह अपनी जवानी में इस तरह का आचरण करे कि उसे आने वाले बुढ़ापे में कोई तकलीफ न हो, जब तुम स्वस्थ हो तो ऐसे आचरण करो कि बीमारी तुम्हारे पास न आवे, जब तुम्हारे पास जरूरत से अधिक धन एकत्रित हो जाये, तो तुम उसका दुरुपयोग न करो और उसे धर्म के काम में ही खर्च करो। बहुत ज्यादा बेफिक्र मत रहो जिन्दगी में परेशानियाँ कभी भी आ सकती हैं इसलिये भविष्य की भी चिन्ता करो। हर व्यक्ति जो संसार में पैदा हुआ है, वह अमर नहीं है, उसकी एक दिन मृत्यु अवश्य होगी, इसलिये उसे अपनी जिंदगी में घमंड नहीं करना चाहिये तथा उसे धर्म और नेक कामों में लगना चाहिये।[100]

संसार में हमारा जन्म हमारे माता-पिता की वज़ह से हुआ है, इसलिये प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह माता-पिता का सम्मान करे।[101]

हमें ऐसे आचरण नहीं करना चाहिये, जो माता-पिता को पसन्द न हो और जो परिवार की शान के खिलाफ़ हो। उसे परिवार की खुशहाली के लिये वक्त पर नवाज़ पढ़ना चाहिये, अल्लाह के रास्ते पर चलना चाहिये और ज़ेहाद करना चाहिये।[102]

हद़ीस शरीफ में यह उल्लेख मिलता है कि, माता-पिता की खुशामत करना चाहिये, उन पर दया करना चाहिये और उनके साथ सद्व्यवहार करना चाहिये।[103] यदि माता-पिता क्रोधित हो जायें, तो भी उनके क्रोध का बुरा न माने और उनके क्रोध की अवहेलना न करे। जो लोग माता-पिता की सेवा नहीं करेंगे, उनको ज़न्नत कभी नहीं मिल सकती, माता-पिता के आदेश को न मानना एक बहुत बड़ा गुनाह है, प्रलय के दिन खुदा इस गुनाह का बदला लेता है।[104]

हद़ीस में यह भी विवरण उपलब्ध होता है कि, माता-पिता के मित्रों के साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिये। जो पुत्र अपने माता-पिता का कर्ज़ अदा करता है और उनके द्वारा किये गये वादे को पूरा करता है, उसकी सर्वत्र प्रशंसा होती है। यदि कोई खुदा का इबादत करने वाला होता है और माता-पिता का कहना नहीं मानता, तो खुदा की निगाह में वह व्यक्ति नफ़रमान समझा जायेगा।[105] यदि किसी के पुत्र का निधन हो जाता है और उसके माता-पिता जिन्दा रहते हैं तो उसमें माता-पिता का भी अधिकार रहता है।[106]

हद़ीस ग्रंथों में पति-पत्नी के मधुर सम्बधों की चर्चा भी है, हदीस का मानना है कि स्त्री और पुरुष दोनों में प्रेम संबंध अच्छे होने चाहिये, औरत का फर्ज़ है कि जब वह अपने मर्द को देखे तो खुश हो जाये और जो वह हुक्म फर्मायें उसे पूरा करे।[107] स्त्री का यह भी कर्तव्य है कि जब मर्द कहीं बाहर जायें तो उसकी गैर मौजूदगी में उसकी सम्पत्ति की हिफ़ाज़त करे।[108]

मर्दो को भी हिदायत दी जाती है कि, वह अपनी बीबियों से मोहब्बत करे, उन्हें अच्छा खाना खिलाएं और अच्छे कपड़े पहनाये, अगर स्त्री कोई कसूर करे तो उसे मत मारो, उसे भला बुरा मत कहो और औरत से रूठ कर कहीं बाहर मत जाओ।[109]

माता-पिता का यह फर्ज़ है कि, वह अपनी औलादों के साथ इन्साफ़ का बर्ताव करे। यदि किसी मुसलमान की लड़की है तो उसका पालन-पोषण अच्छी तरह करे और उसे अच्छी शिक्षा प्रदान करे, यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो उसे मत मारो, उसे द्वोजक का दुःख भोगना पड़ेगा तथा वह अपने लड़कों को भी अच्छी तालीम दे।[110]

जब किसी के औलाद पैदा हो तो वह अपनी औलादों के नाम, पैगम्बरों के नाम पर रखा करे। हद़ीस के अनुसार- ''रसूल्लाह सल्लुल्लाह शलैह व सल्लम ने फ़र्माया है कि तुम पैगम्बरों के नाम पर रखा करो और अल्लाह तआला के नजदीक जियादः प्यारा नाम अब्दुल्लाह और अब्दुर्रहमान है और सबसे सच्चा नाम हारिस और हम्माम है।''[111]

हर माँ-बाप का फर्ज़ है कि हर औलाद को धन कमाने का जरिया, अच्छी शिक्षा और नेक सलाह देना, किसी लड़के के साथ पक्षपात न करो, हद़ीस शरीफ़ में यह वर्णन मिलता है कि ''अगर एक बेटे को कोई चीज़ दो तो दूसरे को भी वैसी ही दो वर्नः नाइन्साफी बुरी बात है''[112] व्यक्ति जो सम्पत्ति कमाता है, उसकी सम्पत्ति पर बेटे और बेटियों का अधिकार होता है।[113] हद़ीस ग्रंथ में यह भी उल्लेख है कि कमाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यतीमों पर रहम करना चाहिये और

उनकी परवरिश करना चाहिये। हदीस में लिखा है कि, ऐसी औरत जिसका शौहर मर गया हो अथवा जिसके शौहर ने उसको तलाक दे दिया हो और उसके बच्चे हों उसको सहयोग देना चाहिये।[114] हदीस में यह भी वर्णन मिलता है कि, पड़ोसियों के साथ अच्छा बर्ताव किया जाये- अगर कोई पड़ोसी बीमार हो जाये तो उसकी तीमारदारी में सहयोग करे, अगर वह मर जाये तो उसके जनाज़े में साथ जायें अगर वह कर्ज़ मांगे तो उसे कर्ज़ दे। यदि पड़ोसी के पास वस्त्र नहीं है तो उसे वस्त्र दान में दें, यदि वह अच्छा काम करे तो उसे मुबारकबाद दे, अगर उसके ऊपर मुसीबत आवें तो उसे तसल्ली दे, पड़ोसी के मकान से अपना मकान ऊँचा न करे, अपने चूल्हे के धएँ से उसको नुकसान न पहुँचाए।[115]

हदीस ग्रंथों में मित्रों के साथ अच्छा बर्ताव करने के लिये कहा गया है यदि कोई दोस्त मुसलमान हो तो उसकी हर हालत में हिफाज़त करना चाहिये।[116] किसी चुगली करने वाले को अपना दोस्त न बनायें, चुगली करने वाले व्यक्ति दोस्तों के हृदय में फर्क डाल देते हैं, दोस्त से कोई ऐसी बात न करे जो इसके दिल को बुरी लगे, मित्र को उचित सलाह दें, दोस्तों पर दया की भावना रखे।[117] हर मुसलमान को अपने अधिकारों को भली प्रकार समझना चाहिये, उससे प्रेमपूर्वक मुलाकात करना चाहिये तथा मुलाकात के समय छः नियमों का पालन करना चाहिये-

1- जब उससे मुलाकात हो उसको सलाम कर,

2- जब वह तुझको बुलावे तो क़बूल कर,

3- जब तुझसे खैरख्वाही चाहे तो उसकी खैरख्वाही कर,

4- छींक ले और ''अल्हम्दुलिल्लाह'' कहे तो ''यर्हमकल्लाहु'' कह,

5- मर जाये तो उसके जनाजें के साथ जा।[118]

जब किसी व्यक्ति से सम्बन्ध टूट जाये और तीन दिन का वक्त बीत जाये तो उसके मित्र को चाहिये कि उसके घर जाए और उसे सलाम करे और दोस्ती तोड़ने की वजह पूँछे। हर मुसलमान को अपनी इज्ज़त सुरक्षित रखने का अधिकार है इसलिये किसी भी व्यक्ति को जलील न करना चाहिये और जब रास्ते पर चलो तो हर जगह मत बैठो, बुरी चीज पर नजर न डालो, रास्ता रोककर न चलो, यदि कोई तुमसे सलाम करे तो तुम उससे सलाम करो।

यदि किसी मरीज के पास जाओ तो उसे तसल्ली दो उसे निराश न करो।[119]

मनुष्य की तरह जानवर भी खुदा का बनाया हुआ है, जिस तरह तुम्हे भूख और प्यास लगती है, उसी प्रकार जानवर को भी लगती है, इसलिये जो भी जानवर पालो उसे समय पर खाना पीना दो।[120]

यदि कोई शासक है और अल्लाह ने उसे बादशाह बनाकर जमीन में शासन करने के लिये भेजा है, तो वह अपनी प्रजा के साथ दया का बर्ताव करें, उसका कल्याण सोचें और किसी प्रकार का जुल्म न करें, यदि राजा किसी प्रकार से जुल्म करता है, तो प्रजा उसे किसी प्रकार से हमें सहन कर ले, यदि कोई औरत अपने पति के घर गयी तो वही उसका वास्तविक घर है जो समाज वहाँ पर है उस सबकी वह मालकिन है, जो भी नौकर वहाँ है वे सब उसके हुक्म का पालन करेंगे।[121] मालिक और नौकर, राजा और प्रजा के मध्य के संबंध अच्छे होना चाहिये, नौकर का यह कर्तव्य है कि, वह मालिक के हुक्म को मानें और मालिक का यह कर्तव्य है कि वह गुनाह करने का हुक्म न

दे, अगर वह गुनाह करने का हुक्म देता है, तो मुसलमान उसकी अवहेलना कर सकता है।[122]

मुसलमान को ऐसे रोजगार करने की हिदायत दी गयी है, जिसमें वह ईमानदारी और मेहनत से अपनी रोटी कमायें तथा उस आमदनी से अपना पेट भरे और अपने बूढ़े माँ-बाप की परवरिश करे।[123] हदीस शरीफ में नज़ायज कमाई के सन्दर्भ में विवरण उपलब्ध होता है- कि (इन्सान का जिस्म) जिस गोश्त ने हराम आमदनी से नश्वोनमा पाई वह जन्नत में (सज़ा पाये बगैर) दाखिल नहीं होगा।[124] हदीस शरीफ में ईमानदारी की कमाई को उत्तम माना गया है, उसका विवरण इस प्रकार उपलब्ध है-"हज़रत आइशः रज़ियल्लाहु तआला अन्हा फर्माती है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इर्शाद फर्माया-"जो चीज़ तुम खाते हो उसमें सबसे बेहतर वह है, जो तुम अपने हाथों से कमा कर खाओ और तुम्हारी औलाद की कमाई भी जाइज़ है।"[125]

हदीस में व्यापारी के उत्तम गुणों का उल्लेख है जो इस प्रकार हैं-

1- जब वह (किसी से कोई चीज़ खरीदें तो उसकी) बुराई न करे और

2- जब वह (किसी के हाथ कोई चीज़) फरोख्त करें तो (उसकी बेजा यानी बेकार) तारीफ न करें और बैअ में तद्लीस न करे (यानी खरीदार से माल का ऐब न छिपायें) और

3- इस (मुआमलः) के दरमियान (झूठी) कसम न खायें (अस्बहानी)

व्यापार में किसी प्रकार का गुनाह मत करो, हर एक से अच्छा बर्ताव करो, किसी के साथ बदकारी मत करो, कम नापना और कम तौलना गुनाह है, यदि किसी से कर्ज़ लो, तो उसे ईमानदारी से अदा करो, कर्ज़ देते समय किसी से सूद मत लो तथा कर्ज अदा करने के लिये उसे पर्याप्त समय दो। किसी भी व्यक्ति को रिश्वत देना इस्लाम धर्म में गुनाह माना गया है, रिश्वत देने वाला और लेने वाला दोनों गुनाही हैं। हदीस शरीफ के अनुसार- "कि रिश्वत देने वाला और रिश्वत लेने वाला दोनों दोज़ख की आग में झोंके जायेंगे।"[126]

सामाजिक व्यवस्था से संबंधित नियम-

हदीस ग्रंथ में सामाजिक व्यवस्था का सविस्तार वर्णन उपलब्ध होता है, जब किसी के घर मिलने जाओ उस समय उसके घर प्रवेश करने के लिये अनुमति मांगो चाहे, उसके घर में कितने नजदीकी संबंध क्यों न हो, यदि इजाजत न मिले तो वापस आ जाना चाहिये। जो भी व्यक्ति घर में मिले उसको सलाम करना चाहिये, कहते हैं, जो व्यक्ति घर जाकर किसी से सलाम करता, मस्जिद में जाकर नवाज़ पढ़ता और खुदा के नाम पर जेहाद करता है खुदा की नेकनज़र उसके पास होती है।[127]

सलाम करने के तरीकों में हाथ मिलाना, गले मिलना और हाथ चूमना जायज़ माने गये हैं।[128] यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकार का उपहार देता है, तो वह उपहार ग्रहण किया जा सकता है, बशर्ते उपहार देने वाले को कोई रंज न हो, उपहार देने वाले का शुक्रिया अदा करना चाहिये। हदीस के अनुसार- अगर कोई तुम्हारी खातिरदारी को खुशबू, तेल, दूध व तक्यः कमर से लगा लो तो कबूल कर लो, इन्कार व उजू मत करो, क्योंकि इन चीजों में लम्बा-चौड़ा एहसान नहीं होता जिसका बार तुमसे नहीं उठ सकता हो और दूसरे का दिल खुश हो जाता है।[129]

इस्लाम धर्म में छींक को बहुत बुरा माना गया है और ऊँघने को अच्छा नहीं माना गया

है, यद्यपि छींक स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छी है, फिर भी खराब मानी जाती है। जम्हाई लेने के सन्दर्भ में हदीस में वर्णन मिलता है कि तुममें से जिस किसी शख्स को जमाई आए, तो उसको चाहिये कि इम्कान भर उसको रोके वर्नः बांया हाथ मुँह पर रख लो।[130]

हदीस ग्रंथों में यह उल्लेख मिलता है कि, पत्र लिखने में सर्वप्रथम खुदा का नाम इस प्रकार लिखा जाये-''बिस्मिल्लारर्हिरहमार्निरहीम'' के पश्चात् उस व्यक्ति को सम्बोधित करना चाहिये, उसे सलाम लिखना चाहिये जिसके लिये पत्र लिखा जा रहा हो और जो तारीख तथा जो संवत् हो उसका उल्लेख भी पत्र में होना चाहिये। उसके बाद पत्र की तहरीर लिखी जाती है तथा पत्र लिखने के लिये कागज़ और कलम का इन्तजाम पहले से कर लेना चाहिये।[131]

मुसलमानों की वेश-भूषा

हदीस में यह विवरण मिलता है कि, यह शरीर परमात्मा का दिया हुआ है इसलिये इस शरीर को बिगाड़ना अच्छा कार्य नहीं यद्यपि शैतान मनुष्य को यह सलाह देंगे, किन्तु खुदा उनको भी तालीम और नसीहत देगा। हदीस में इसका वर्णन इस प्रकार है- ''हुजूरे अक्रम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इर्शाद फर्माया कि अल्लाह तआला ने और शैतान ने यूँ कहा कि, मैं उनको (और भी) तालीम दूँगा जिससे वह अल्लाह तआला की बनाई गई सूरत को बिगाड़ा करेंगे।[132]

हदीस में यह वर्णन मिलता है कि लम्बे नाखून को कटवाना, बगल के बाल बनवाना यदि दाढ़ी मुट्ठी भर से अधिक है उसको कटवाना जायज़ है, इसके अतिरिक्त जमाने के अनुसार अपनी वेश-भूषा को परिवर्तित करने का निर्देश हदीस में है।[133]

वस्त्रों के बारे में यह निर्देश है कि, मुसलमान ऐसे वस्त्र पहने, जिससे किसी प्रकार का घमण्ड न झलकें वस्त्र कुछ इस प्रकार होना चाहिये, हज़रत सालिम रजियल्लाहु तआला अन्हु बयान करते है कि, जनाबे रसूलुल्लाह सल्ललाहु अलैहि व सल्लम ने इर्शाद फर्माया- लटकाना, पजामा, तहबन्द, कुर्तो और साफे में भी हो सकता है, जो आदमी तकब्बुर के ख्याल से पाजामः तहबन्द कूर्ता या साफः का शमूलः ज़ियाद नीचा लटकायेगा उसकी तरफ अल्लाह तआला नज़रे रहमत से न देखेगा'[134]

हदीस अदि ग्रंथों में मेहमानो का स्वागत सत्कर की हिदायत दी है, जब कोई मेहमान घर में आवे, तो कोई ऐसी बात मुँह से न निकाले जो मेहमानों को बुरी लगे।[135]

जो व्यक्ति अच्छा हो, उसकी दावत कुबूल कर लेना चाहियें और पापी के घर में किसी प्रकार का खाना चहिये, हदीस में इसका वर्णन इस प्रकार आया है'' हज़रत इम्रान रज़ियल्लाहु तआला अन्हु (बिन हुसैन) फ़र्माते है कि नबी करीब सल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फासिक लोगों की दावत क़बूल करने से मना फ़र्माया है।[136]

हदीस में मुसलमान औरतों के लिए यह निर्देश दिया गया है कि, जवान औरते पर्दे में रहे और हमेशा अपनी निगाहे नीचे रखे। गाने-बजाने और खुशहाली की अवाज़े न सुने, अपने दिल और शरीर को पाक रखे। औरतों को भी हदीस ग्रंथों में सलाह दी गयी है कि वे मर्दो का कहना माने और नफ़र्मानी न करें, यदि वह कोई गलती करती तो थोड़ा बहुत उसे मारा-पीटा भी जा सकता है। लेकिन औरतों को परेशान नहीं किया जा सकता। कुआ़न शरीफ में यह वर्णन आया है- मुसलमान

औरतो से (भी) कह दीजये कि (वह भी) अपनी निगाहे नीची रखा करे और अपनी आबरू की हिफ़ाजत करे और अपनी हुस्नोजमाल न दिखाया करें मगर जो चीज़ उसमे (ग़ालिबन) खुली ही रहती है और अपनी ओढ़नियाँ अपने सीनें पर डाले रहा करें और अपने हुस्नों-जमाल को (किसी पर) ज़ाहिर न होने दें (सिवाय उनके जो शर्अन मह्रम है)। और मुसलमानों ! (तुम से जो इन अहकाम में कोताही हो गयी तो) तुम सब अल्लाह तआला के सामने तौबः करे ताकि तुम फ़लाह पाओ वर्नः मासीयत माने फलाहे कामिल हो जाती है।[137]

जब कोई औरत अपने घर से बाहर जायें तो वह बीच रास्तें में न चले, बल्कि किनारे चले। किसी भी औरत को तन्हाई में न रहने देना चाहियें और न ही किसी गैर मर्द से उसे मिलने देना चाहिए, चाहे वह मर्द उसका देवर ही क्यों न हो। हदीस मे वर्णन मिलता है- 'या रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ! देवर के बारे में क्या राय है ? आप सल्ल ने फ़र्माया-'देवर तो मौत है यानी इससे बहुत मुहमात रहने की ज़रूरत है'।[138] यह भी वर्णन मिलता है कि जब कोई गैर मर्द किसी गैर औरत के साथ तन्हाई में होता है, तो उनके दरमियान तीसरा शैतान आ दाखिल हो जाता है और अपना जाल फैलाने लगता है, स्त्री को सिर से लेकर पैर तक अपने शरीर को ढ़के रहना चाहिए। स्त्री की वेशभूषा के सन्दर्भ में यह वर्णन उपलब्ध होता है- औरतों के लिए यह जरूरी है कि वह ऐसा कपड़ा पहने जिसकी आस्तीनें पूरी हो, आधी आस्तीन का कुर्ता या क़मीज पहनना सख़्त गुनाह है और ऐसा बारीक लिबास पहनना भी मना है, जिससे बदन झलकता हो। ऐसी औरते कियामत में बरह्नः उठाई जायेगी।[139] हदीस ग्रन्थों में शराब पीने की मनाही की गयी इस सन्दर्भ में हदीस मे यह वर्णन उपलब्ध होता है- हज़रत इब्ने उमर रज़ियल्लहु तआला अन्हु फ़र्माते है कि रसूलल्लाहु सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने इर्शाद फ़र्माया कि अल्लाह तआला ने लानत फ़र्मायी है शराब पर, इसके पीने वाले पर, इसके निचोड़ने वाले पर, इसके बेचने वाले पर, इसके खरीदने वाले पर, इसके पिलाने वाले पर, इसके उठाने वाले पर, और उस शख़्स पर जिसके लिए उठाकर ले जायी गयी।[140]

इस्लाम धर्म ने जुआँ, अय्याशी, ब्याज तथा शतरंज आदि खेलो से लोगों को आगाह किया। इस सन्दर्भ में हदीस में यह कथन उपलब्ध होता है- हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु तआला अन्हु फर्माते है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने शराब पीने, जुआ खेलने से मना फ़र्माया है और नर्द (चौसर गोट) और शतरंज, नक़्क़ारः और बर्बत से भी मना फ़र्माया है और फ़र्माया है- हर नशा वाली चीज़ हराम है।[141]

इस्लाम धर्म में शराब और गाने-बजाने को अच्छा नहीं माना गया है। इस सन्दर्भ में हदीस में यह वर्णन उपलब्ध होता है- मुस्नदे इमाम अहमद में है कि हुजूर सल्लल्लाहु अलैहि व आलिही व सल्लम ने फ़मार्या है- "अल्लाह तआला ने मुझे रहमतुल्लिल्आलमीन बनाकर भेजा है और मुझे हुक्म दिया है साज़ और बाजों को मिटा दूँ।"[142]

हदीस आदि ग्रन्थों में यह उल्लेख उपलब्ध होता है कि हर मुसलमान कुर्आन शरीफ का पाठ किया करे। इस सन्दर्भ में यह कहा गया है- "अपने घरों में अक्सर कुर्आन मज़ीद पढ़ते रहा करो, क्योंकि जिस घर में कुर्आन मज़ीद नहीं पढ़ा जाता उसमें ख़ैरों बरकत नहीं होती।[143] कुर्आन

शरीफ के पाठ के अतिरिक्त अच्छे व्यक्तियों की संगत करना, प्रतिमाओं को न तोड़ना, अकेलापन दूर करने के लिए अच्छा मित्र बनाना, किसी की ज़मीन-जायदाद न हड़पना, परेशानी की हालत में दूसरों की मदद करना, किसी भी मुसलमान भाई से बहस न किया करो, न उससे ऐसी दिल्लगी करो (जो उसको नागवार हो) और न उससे कोई ऐसा वादा करो, जिसको तुम पूरा न कर सको।[144] मुसलमान भाई की विपत्ति पर मदद किया करो, अपने घरों को साफ रखा करो। इस सन्दर्भ में हदीस में यह विवरण मिलता है-'अपने घरों के सहनों को साफ रखा करो, क्योंकि वह यहूदियों के मुशाबिह है जो अपने घरों के सहनों को अमूमन् गन्दा रखते हैं।[145] जब कोई व्यक्ति बीमार पड़ जाये तो उसके ठीक होने के लिये परमात्मा से दुआ करना चाहिये इसके पश्चात् कुछ रोगों के लिये झाड़-फूंक का सहारा लिया जा सकता है।[146] यदि किसी को नजर लग जाये तो कुर्आन शरीफ की कुछ आयतों को पढ़ना जरूरी है, ये आयतें-मुअव्वज़तैन, सूरः फातिहः, आयतल कुर्सी वगैरः। इसी प्रकार जब किसी व्यक्ति को जाड़ा देकर बुखार आये या मिर्गी आये, या किसी प्रकार का उसे भय सतावे, बदन में दर्द हो, दाँत में दर्द हो, नाक से खून आता हो, तो उसे जो किताबें उपलब्ध हों, उनसे इलाज करना चाहिये।[147] जब किसी को कोई परेशानी घेरे, उस समय यह मंत्र पढ़कर परेशानी दूर करना चाहिये-''ला हौल वला कुव्वत इल्ला बिल्लाह'' इसके अलावा आयतल कुर्सी पढ़ने पर भी मुसीबतें दूर हो जाती हैं, इसी प्रकार अनेक मंत्र गरीबी दूर करने, सिर का दर्द दूर करने, हर दर्द और बला दूर करने, भोजन करने के भी हैं।

कुर्आन शरीफ में मुसलमानों को ज्यादा खाना खाने के लिये मना किया है, खाना खाते वक्त कमर सीधी रखे, दो हिस्सा खाना खाए, एक हिस्सा पानी पिएं और एक हिस्सा सांस के लिये जगह रखे। मरीज यदि खाना न खाना चाहे तो उसे मजबूर न करे, मरीज को दूध दे सुबह-शाम शहद का इस्तेमाल करे, फल खायें, कलौजी का प्रयोग करे, जैतून के तेल का प्रयोग मालिश के लिये करे, जब किसी के सीने अथवा हृदय में दर्द हो तो खजूर की गुठलियां निकालकर उसका इस्तेमाल करो, यदि कोई व्यक्ति सात खजूर रोज सुबह खा ले तो उसे ज़हर भी नुकसान न करेगा।

<u>व्यवहार कुशलता</u> :-

हदीस ग्रंथों में उत्कृष्ट शिष्टाचार और व्यक्तियों के सद्व्यवहार के संबंध में अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं, सर्वोत्तम व्यक्ति वे है जो समय पर नवाज़ पढ़े और रोजे रखे। जिस व्यक्ति का चरित्र खराब है, वह दूर रखने काबिल है, वह व्यक्ति अच्छा है जिसका शरीर सुन्दर हो और उसके विचार भी अच्छे हों। इस सन्दर्भ में हदीस में एक उदाहरण उपलब्ध होता है- आप सल्ल० ने फ़र्माया-''लोगों के लिये अपने अख़्लाक को बेहतर बनाओ यानी बन्दगाने खुदा के साथ अच्छे अख़्लाक से पेश आओ।[148] अच्छे व्यक्ति को हमेशा परोपकार करते रहना चाहिये, यदि उसके ऊपर कोई एहसान कर दे तो, उसका शुक्रिया अदा करना चाहिये, हमेशा काम में मन लगाना चाहिये। इस सन्दर्भ में हदीस में एक उदाहरण उपलब्ध होता है-रसूल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़र्माया- अच्छी सीरत और इत्मीनान व वकार से अपने काम अंजाम देने की आदत और मियानःखी एक हिस्सः है नुबुब्वत के चौबीस हिस्सों में से।[149] हर व्यक्ति को चाहिये कि वह इन्साफ का साथ दे, अपने जज़्बात पर काबू रखे तथा ऐसे कर्म करे, जिससे उसे जन्नत मिले, वह खुदा और उसके रसूल से मोहब्बत

करे, अमानत पर खियानत न करे, उम्र का लिहाज करके बातचीत करे। हदीस में उस व्यक्ति की आलोचना की गयी है, जो उम्र का लिहाज नहीं रखता ''इब्ने अब्बास रजियल्लाहु तआलाअन्हु फ़र्माते हैं कि रसूल्लुलाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फर्माया कि जो अपने छोटे पर रहम न खाये, बड़ों की ताज़ीम न करे और उम्र बिल् माकफ़ और न ही अनि़ल मुन्कर न करे, वह हमारे मश्रब का इन्सान नहीं।''[150] हर व्यक्ति को शर्म और हया रखनी चाहिये, स्वभाव का नर्म होना चाहिये, सब्र रखना चाहिये और बड़ी बात का सारांश जल्दी समझना चाहिये, सब्र करना चाहिये, अच्छे कार्यो के लिये दानशीलता का परिचय देना चाहिये, संतोष रखना चाहिये, किफ़ायतशियारी करना चाहिये, गुनाहों के लिये माफी मांगना चाहिये, यदि कोई दूसरा गुनाह करे तो उसे माफ कर देना चाहिये, ज्यादातर खामोश रहना चाहिये, स्वार्थ का त्याग करना चाहिये, बेकार के तर्क नहीं करना चाहिये तथा व्यक्ति को रहम-दिल होना चाहिये, हमेशा दूरदर्शिता से काम लेना चाहिये, व्यर्थ के आडम्बरों पर विश्वास नहीं करना चाहिये और दिखावे के लिये कोई कार्य न करना चाहिये।

इस्लाम धर्म में बलात्कार को बहुत बड़ा अपराध माना गया है। इस सन्दर्भ में यह विवरण मिलता है-हज़रत अबुहुरेरेह रजियल्लाहु तआ़ाला अ़न्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इर्शाद फ़र्माया कि दोनों आँखों का जिन्ना निगाह करना है और दोनों कानों का ज़िना बातें सुनाना है और ज़बान का ज़िना बातें करना और हाथ का ज़िना किसी का हाथ वग़ैरह पकड़ना है और पाँवों का ज़िना से कदम उठाकर जाना है और कल्ब का ज़िना यह है कि वह ख्वाहिश है और तमन्ना करता है। अल् आखिर।[151]

अक्सर यह देखा गया है कि व्यक्तियों को क्रोध बहुत आता है, यदि किसी को क्रोध आये तो वह बैठ जाए, फिर भी गुस्सा बांकी रहे तो लेट जाये, हर व्यक्ति को अपने क्रोध पर नियन्त्रण रखना चाहिये।

हदीस में यह विवरण उपलब्ध होता है, हुजूरे अक्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इर्शाद है कि रिज़ाए इलाही के लिये गुस्सः के घूँट पी जाने से बढ़कर कोई दूसरा घूँट नहीं है।'' अच्छे व्यक्ति को किसी प्रकार कुधारणा नहीं रखनी चाहिये और दोहरा व्यवहार नहीं रखना चाहिये, किसी की चुगलखोरी भी नहीं करना चाहिये, किसी भी काम को कराने के लिये झूठ का सहारा नहीं लेना चाहिये, बदले की भावना से कार्य नहीं करना चाहिये, किसी पर दोषारोपण नहीं करना चाहिये, किसी से ईर्ष्या नहीं रखनी चाहिये और अपने हृदय को कठोर मत बनाओ तथा ऐसी आदतें डालो जिससे न तुमको नुकसान हो न दूसरे को, किसी के साथ जुल्म न करो और न जुल्म करने वालों का साथ दो, कुल मिलाकर हदीस में 26 बातें ऐसी दी गयी हैं जो न करना चाहिये।[152]

कर्तव्यों का निर्वाह:-

हदीस ग्रंथ में न्यमित्तिक कर्तव्यों पर बहुत बल दिया गया है तथा उन्होंने मोहम्मद साहब के जीवन को एक आदर्श जीवन के रूप में स्वीकार किया है। हदीस ग्रंथ इस बात का संकेत देते हैं कि शौच आदि क्रियाओं के पश्चात् हर व्यक्ति को वुजू करके मस्जिद में नवाज़ पढ़ने जाना चाहिये, नवाज़ पढ़ने के पश्चात् वहीं पर अन्य लोगों के साथ बैठ कर विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिये आपस में वार्ता करनी चाहिये।

जब व्यक्ति दोपहर की नवाज़ पढ़े तो वह नवाज़ के बाद लोगों का दुःख दर्द दूर करने के लिये प्रयत्न करे, लोगों की बातचीत को ध्यान से सुने और उस पर अपनी राय दे। यदि वह किसी प्रकार का स्वप्न देखे तो वह उस स्वप्न का बयान करें और उसके सन्दर्भ में तर्क करें।[153] हदीस शरीफ में प्रातः काल से लेकर शाम तक पांचों वक्त की नवाज़ पढ़ने पर बल दिया गया है, इसके बाद रात्रि के समय व्यक्ति को आराम करने की सलाह दी गयी है। यदि उसकी अनेक पत्नियां हों तो वह जिस पत्नी के यहाँ सोना चाहता हो, वहीं सोये तथा घर के कामों में हाथ बटाये और हो सके तो खाना भी खुद पकाने का प्रयत्न करे।

सुबह उठने के पश्चात् दोनों आँखों और चेहरे को मलकर नींद को दूर करे और फिर खुदा का नाम ले। सर्वप्रथम तीन बार अल्हम्दिल्लाह कहे फिर ''ला इलाह इल्लल्लाह, मुहम्मदर्रसूलुल्लाह'' पढ़े। जब कभी घर से बाहर निकले तो यह कहकर निकले-

''बिस्मिल्लाहि तवक्कल्तु अल़ल्लाहि लाहौल वला कुव्वत इल्ला बिल्लाह।''

दोपहर को भोजन करने के उपरान्त थोड़ा विश्राम करना चाहिये, इसका वर्णन इस प्रकार हदीस में मिलता है- रात के इलावः अगर किसी वक्त नींद का गलबः हो तो दोपहर का फौलूलः तो ठीक है मगर सुबह व शाम सोना हमाक़त, बेअक्ली और नादानी की दलील है या इन औकात में सोना तबीअत में ये ख़साइल व सिफ़ात पैदा कर देता है।[154]

रात के वक्त जब व्यक्ति सोने लगे, तब उसे चाहिये कि वह इसके पहले किस्से कहानियों की महफ़िल में न जाया करे। पता नहीं उस वक्त घर में कौन सा हादसा घट जाए, रात को अपने घर के दरवाजे बन्द कर लिया करे, मरकीजों का मुँह बाँध दिया करे। बर्तनों को औंधा कर दिया करो चिराग गुल कर दिया करो।[155] रात में जब कुत्ते भौंकें और गधे रेंगने लगे, तो यह समझना चाहिये कि कुछ न कुछ अशुभ घटना होने वाली है, रात के समय बाजार और सड़कों में न जाएं।[156] रात के वक्त जब सोएं, उस समय हदीस के इस नियम का पालन करे-''जब कोई अपने बिस्तर पर लेटने का इरादः करे तो उसे चाहिये कि अपने लुंगी के अन्दरूनी पल्लू खोलकर उससे बिस्तर झाड़ ले, मालूम नहीं क्या चीज़ उसके बिस्तर पर पड़ी हो। फिर दायें करवट पर लेटे और यह दुआ पढ़ेः

''बिइस्मिक रब्बी व ज़ातु जम्बी फ़इनिहतसबत नफ़सी फ़र्ह्म्हा व इन् अर्सल्तहा फ़ह्फ़ज़ूहा बिभा तह्फ़्जु बिहिस्सालितीन अवक़ाल इबादुकस्सालिहीन''[157]

रात को सोते समय कुर्आन शरीफ की निम्न आयतें पढ़ना चाहिये।

1- सूरए हदीद (पारः :- 28)
2- सूरए हश्र (पारः :- 28)
3- सूरए सफ़ (पारः :- 28)
4- सूरए जुम्अः(पारः :- 28)
5- सूरए तग़ाबुन (पारः :- 28)
6- सूरए अल् आला (पारः :- 28)

हदीस में वर्णित संस्कारः-

हदीस ग्रंथों के अनुसार, इस्लाम धर्म में विवाह को प्रथम संस्कार माना गया है और उसे निकाह के नाम से पुकारा गया है। इसका वर्णन हदीस में इस प्रकार उपलब्ध होता है-हज़रत इब्ने मस्ऊद रज़ियल्लाहु तआला अन्हु का बयान है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इर्शाद

फ़र्माया– ''नौजवान! तुम में से जो निकाह की जिम्मःदारियाँ उठाने की ताकत रखता हो, उसे निकाह कर लेना चाहिये, क्योंकि इससे निगाहें नीची रहती हैं और शर्मगाहों की हिफ़ाजत होती है और जो निकाह की जिम्मेदारियाँ न उठा सकता हो, उसको चाहिये कि शह्वत का ज़ोर तोड़ने के लिये रोजे रखे।''[158]

कोई भी युवक किसी भी औरत से उसका सौन्दर्य व उसकी सम्पत्ति देखकर विवाह न करें, यदि वह औरत शरीफ है और इस्लाम धर्म पर विश्वास करती है तो उससे विवाह किया जा सकता है। इस संदर्भ में हदीस में यह विवरण मिलता है ''दीन की बुन्याद पर उससे शादी करो और काली-कलूटी बांदी जो दीन और अ़ख्लाक से आरास्तः तो, वह बहुत बेहतर है उस खानदानी हसीनः से जो बदअ़ख्लाक़ हो।''[159] शादी करने से पहले लड़के और लड़की की रज़ामन्दी और परिवार वालों की इज़ाजत जरूरी है। विवाह के समय मैहर की जो रकम सार्वजनिक रूप से घोषित की जाये, उसको पूरा करने के लिये सच्चा वादा किया जाये और विवाह के समय दो मर्द और एक औरत अथवा दो औरतें और एक मर्द होना जरूरी है, जो अपने कानों से ''क़ुबूल है'' शब्द सुने।[160] निकाह के पश्चात् काजी एक प्रमाण पत्र नवविवाहित दम्पत्ति को प्रदान करता है। विवाह के उपरान्त विवाहित जोड़े को मुबारकबाद देना जरूरी है, वह मुबारकबाद इस तरह दी जाती है–

''बिस्मिल्लाह अल्लाहुम्म जन्निबना रशैतान व जन्निबिश्शैतान मा रज़क्तना''

विवाह के उपरान्त सगे सम्बन्धियों को दावत देना जरूरी है, इस दावत को वलीमा के नाम से पुकारा जाता है। हदीस ग्रन्थों में इसका विवरण इस प्रकार मिलता है- शबे अरूसी गुज़ारने के बाद अपने अज़ीजों, दोस्तों और रिश्तेदारों और मसाकीन को दावते वलीमः का खाना खिलाना सुन्नत हैं।

वलीमः के लिये बहुत बड़े पैमाने पर इंतजाम करने जरूरत नहीं है, थोड़ा खाना चन्द लोगों को खिला देना भी काफी है।[161]

विवाह के समय दहेज़ देने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन है। इस सन्दर्भ में हदीस ग्रन्थों में यह उदाहरण मिलता है- रसूलूल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने अपनी प्यारी बेटी के साथ जो सामान दिया, वह चाँदी के बाजूबन्द, दो यमनी चादरें, चार गद्दे, एक कम्बल, एक तक्यः, एक पियालः, एक चक्की, एक पलंग, एक मरकीज़ह और घड़ा था।[161]

विवाह के उपरान्त लड़की को पानी पिला कर विदा किया जाता था, फिर माँ लड़की से गले मिलकर उसे विदा करती है, और उसके सिर पर पानी फेरती है और कल्मा पढ़ा जाता है।[162]

जन्म संस्कार-

बच्चे के उत्पन्न होने के कुछ दिन पश्चात्, उसको नहलाया धुलाया जाता है और उसके दाहिने कान में अजान और बाएं कान में इक़ामत कही जाती है। हदीस में इसका इस प्रकार वर्णन मिलता है- जब अब्दुल्लाह बिन जुबेरे रज़ियल्लाहु तआ़ला अन्हु पैदा हुये तो मैंने उनको नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की गोद में दिया। आप सल्ल० ने खुर्मा मंगवाया और चबाकर लुआ़बे मुबारक अब्दुल्लाह बिन जुबैर के मुँह में लगाया और खुर्मा उनके तालू में मला और खैरोबरकत की दुआ फ़र्मायी।[164] जन्म के पश्चात् नवजात शिशु को खजूर का घोल दिया जाता है, यह घोल उसके

जीभ से लगाया जाता है, उसके पश्चात् उसकी खैर और बरकत के लिये दुआ मांगी जाती है।

नामकरण संस्कार-

जन्म के पश्चात् बच्चे का नामकरण संस्कार किया जाता है। इस्लाम धर्म के अनुसार, बच्चे का नाम अल्लाह के नाम से रखा जाना चाहिये। इसके सन्दर्भ में हदीस में यह वर्णन मिलता है-''बच्चे के लिये अच्छा सा नाम तज्बीज़ करना चाहिये जो या तो अल्लाह के नाम से पहले लफ़ज अब्द लगाकर ततीब दिया गया हो जैसे-अब्दुल्लाह, अब्दुर्रहमान वग़ैरः या फिर पैगम्बरों के नाम पर होना चाहिये या कोई और नाम, जो मानवी एतिबार से बेहतर हो। नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का इर्शाद है कि कियामत के रोज तुम्हें अपने-अपने नामों से पुकारा जायेगा, इसलिये बेहतर नाम रखा करो।[165]

उपनयन अथवा शिक्षा संस्कार-

हदीस के अनुसार नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का इर्शाद है, जब तुम्हारी औलाद बोलने लगे तो उसको-लाइल-ह-इल्लल्लाह सिखा दो, फिर मत पर्वाः करो कि कब मरे और जब दूध के दाँत गिर जायें तो नमाज़ का हुक्म दो।[166]

बच्चे की हिफ़ाजत के लिये, उसे जादू टोना से बचाने के लिये, उसे एक ताबीज़ निम्न दुआ लिखकर पहना देना चाहिये-

''अब्जु बिकलिमातिल्ला हित्ताम्मति मिन् शर्रि कुल्लि शैतानिंव् व हाम्मति व मिन् शर्रि कुल्लि ऐनिल्लाम्मातिन्''

अक़ीक-

कभी-कभी नवजात शिशुओं के लिये मान्यतायें मानी जाती हैं, जब किसी के लड़का उत्पन्न हो तो उसे अक़ीक के लिये दो बकरियों की क़ुर्बानी करना चाहिये और लड़की के लिये एक बकरी की क़ुर्बानी करना चाहिये। यह मान्यता जन्म के सात दिन बाद पूरी करना चाहिये, यदि सात दिन में मान्यता पूरी न कर सके, तो सात दिन का नाम लेकर यह मान्यता पूरी कर ले।[167]

खतनः अथवा मुसलमानी-

इस्लाम धर्म में इसे भी एक संस्कार माना जाता है। हदीस के अनुसार, - हज़रत इब्ने अ़ब्बास रज़ियल्लाहु तआला अन्हु ने फर्माया कि लोग आम तौर से लड़का का खत्नः उस वक्त तक न करते थे जब तक वह समझदार न हो जाता और इमाम हम्बल रहमतुल्लाह अलैहि फर्माते है कि अगर सातवें दिन खत्नः कर दिया जाये तो उसमें कोई हरज नहीं।[168]

मृत्यु :-

इस संसार में कोई भी व्यक्ति अमर होकर नही आया, व्यक्ति जन्म से लेकर बचपन, युवावस्था, वृद्ध अवस्था को पार करता हुआ मृत्यु के अंतिम बिराम पर पहुँचता है। यदि व्यक्ति खुदा का नाम लेता रहे और अल्ला तआ़ला की इबादत करता रहे तो उसकी हर प्रकार की परेशानी दूर हो जाती है, जब व्यक्ति बीमार पड़ जाये तो उसकी तीमारदारी की जानी चाहिए। तीमारदारी के सन्दर्भ में हदीस में यह वर्णन उपलब्ध होता है- जनाबे रसूलल्लाहु सल्ललाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़र्माया :- बेशक ! अल्लाह तआ़ला शान्हू ने मरज़ भी नाज़िल किया और दवा भी उतारी और हर मरज़ के

लिए दवा पैदा की, इसलिए दवा करे, अल्बत्तः हराम चीज़ से इलाज़ न करो।[169] जब कोई व्यक्ति बीमार पड़े तो उसकी त़ामीरदारी बहुत अच्छी तरह होना चाहिए और जो चीज वह मांगे उसे देना चाहिए लेकिन वो चीज़ नहीं दे जो नुकसानदायक हो, उसको ठीक होने की तसल्ली देता रहे और खुदा से उसके लिए दुआ मांगता रहे, दुआ के लिए यह आयत 40 बार पढ़नी चाहिए- ''ला इलाह इल्ला अन्त सुब्हानक इन्नी कुन्तु मिनज़्ज़ालिमीन''[170] मृत्यु के समय अपने किये हुए कर्मो का प्रायश्चित् करना चाहिए और इन गुनाहों के लिए जो हमने अपनी जिंदगी मे किए है, उनके लिए माफी मांगना चाहिए। हर व्यक्ति को अपनी मौत को याद रखना चाहिए इसलिए जिन्दगी में अच्छे कर्म करना चाहिए। इस सन्दर्भ में हदीस में यह विवरण उपलब्ध होता है-हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत है कि रसूलूल्लाह सल्लल्लाह अलैहि व सल्लम ने फ़र्माया कि ''मौत मोमिन का तुहफः है''। [171] जब व्यक्ति की मृत्यु होती है तो उसका शरीर निष्क्रिय होने लगता है, किसी व्यक्ति के हाथ-पैर ढ़ीले हो जाये, नाक टेढ़ी हो जाये और कनपटी दब जाये, तो उस व्यक्ति की मृत्यु समीप आ जाती है। व्यक्ति के मर जाने के पश्चात् मृतक के हाथ-पैर सीधे कर दे, उसके कपड़े उतारकर उसे चादर उढ़ा दो, उसके मृत शरीर को चारपाई अथवा तख़्त पर रख दो और उसकी मृत्यु की नवाज़ ज्यादा से ज्यादा लोगो से पढ़वाई जाये।[172]

मृत्यु व्यक्ति का एक स्वाभाविक कर्म है, हर व्यक्ति को एक दिन मरना पड़ेगा, इसलिए मृत्यु के समय विलाप नहीं करना चाहिए बल्कि उसके लिए दुआ करना चाहिये। हदीस में मृत्यु का इस प्रकार विवरण उपलब्ध होता है-

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को उनकी यह हालत देखकर रोना आ गया। अब और लोगों ने आप पर गिर्यः के आसार देखे तो वह भी रोने लगे। आपने इर्शाद फ़र्माया- लोगों अच्छी तरह सुन लो और समझ लो कि अल्लाह तआ़ला आँख के आँसू और दिल के ग़म पर तो सज़ा नहीं देता, क्योंकि इस पर बन्दः का इख्तियार और काबू नहीं है। फिर ज़वान की तरह इशारः फ़र्माया, लेकिन इसकी ग़लती पर यानी ज़वान से नेहिः व मातम करने पर सज़ा भी देता है और पढ़ने पर दुआ व इस्तिग़फार करने पर रहमत भी फ़र्माता है।[173] कहते है रोना और आँसू बहाना जायज़ इसलिए भी है कि इससे दिल का बोझ हल्का हो जाता है और सदमा दूर हो जाता है। मृतक के शरीर के माथे का बोसः लेना जायज़ फर्माया गया है। इसका वर्णन हदीस में मिलता है - मैयित को वुफ़ूरे महब्बत या अक़ीदत से बोसः देना जाइज़ है, बसा औकात आप सल्ल० मैयित का बोसः ले लेते जैसा कि आपने उस्मान बिन मज्ऊन रज़ियल्लाहु तआ़ला अन्हु का बोसः लिया और रोए। इसी तरह हज़रत अबूबक्र सिद्दीकी रज़ियाल्लाहु तआला अन्हू ने नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की वफ़ात के बाद आप सल्ल० की पेशानी को बोसः दिया।[174]

जब किसी के घर में किसी की मृत्यु हो जायें तो उसका अंतिम संस्कार शीघ्रता से करना चाहिए और मृत्यु का समाचार शीघ्रता से उसके रिश्तेदारों के यहां भेजना चाहिए। इस सन्दर्भ में हदीस में यह वर्णन उपलब्ध होता है- जब तुम्हारा कोई आदमी इंतिकाल कर जाए तो उसको देर तक घर में मत रखो और कब्र तक पहुँचाने और दफ़न करने मे सुर्अत से काम लो और

दफ़्न के बाद सर की जानिब सूरए बक़्र की इब्तिदाई आयत मुफ्लिहून तक और पाँव की जानिब उसकी आखिरी आयत ''आमनर्रसूल से खत्म सूरत बक़्र तक पढ़ो।[175]

जब किसी के घर में किसी की मृत्यु हो जायें तो उसके घरवालों को खाना भेजना जरूरी है, इस सन्दर्भ में हदीस में यह विवरण मिलता है- बालिद-माजिद हज़रत जाफ़र बिन अबी तालिब रज़ियल्लाहु तआ़ला अन्हू की शहायत की खबर आयी तो रसुलुल्लाह सल्लल्लहु अलैही व सल्लम ने अपने घरवालो से कहा ''जाफ़र के घरवालो के लिए खाना तैयार किया जाये वह इस इत्तिलाम की वज़ह से ऐसे हाल में है कि खाने की तरफ तवज्जोंह न कर सकेगे।[176] मौत के समय व्यक्ति को धीरज धारण करना चाहिए और मृत के लिए चार महीने तक शोक मनाना चाहिए। इसका विवरण हदीस शरीफ में इस प्रकार मिलता है- ''किसी मोमिन के लिए यह जाइज नहीं कि तीन दिन से ज़ियादः किसी का सोक़ मनाये, अल्बत्तः बेवः के सोक की मुद्दत चार महीने दस दिन है। इस मुद्दत में वह कोई रंगीन कपड़ा न पहने, न खुशबू लगाये और न बनाव-सिंगार करे।[177] जिस परिवार में गमी हुयी हो, वहां जाकर मृतक के लिए शोक प्रकट करे और सांत्वना दे तथा मृत्यु के समय अंतिम संस्कार इस प्रकार करे- हुजूर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम मैयित पर ऐसे उमूर से एहसान फ़र्माते है, जो उसके लिए कब्र और कियामत से सूदमंद और नाफ़े हो जाये और उसके अक़ारिब और घरवालों के साथ ताज़ियत और पुर्सिरो अहवाल और तज्हीजो तक्फ़ीन में मदद के साथ एहसान फ़र्माते और सहाबः किराम की अजमाअत के मद्फन तक जनाज़े के साथ जाते और कब्र के सिरहने खड़े होकर उसके लिए दुआ फर्माते और मुन्कर नकीर के सवाल व जवाब सिखाते और उसकी कब्र पर मिट्टी बगैरः डालक़र तैयार करते और रहमत व मग़्फ़िरत के नुजूल की ख़ातिर सलाम व दुआ से मख़्सस तवज्जोह फ़र्माते। साहबः किराम से मर्वी है कि यह उम्र साबिद शुदः है कि हुजूर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने जो आखिरी नमाज़े ज़नाज़ः पढ़ायी, उसमें चार तक्बीरे थी और यही मुकर्रर व मुतऐयिन हो गया और दो सलाम के साथ नवाज़े जनाज़ः खत्म फ़र्माई। यही मज़हब इमाम अबू हनीफः रहमतुल्लाह अलैह का है।[178]

जब किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो उस व्यक्ति को जिस पानी से स्नान कराया जाता है, उसे बेरी की पत्ती डालकर गर्म किया जाता है। पहले मुँह फिर हाथ व पीठ धोई जाती है। स्नान कराने के पश्चात् मृतक को तहमत् पहनाया जाता है, फिर उसके पेट मे हाथ फेरा जाता है और मिट्टी के ढेले से उसके शरीर को साफ किया जाता है। उसके कफ़न और कान के दोनों सुराखों में इत्र लगाते है, बालों में कंघी नहीं की जाती है और नाखून नहीं काटे जाते, यह स्नान परिवार के किसी सदस्य को कराना चाहिए।[179]

मृत व्यक्ति को क़फ़न के लिए निम्नलिखित कपड़े देने की व्यवस्था है-

मर्द के लिए :-

1. इज़ार 2. कुर्ता 3. लिफाफ

औरतों के लिए मस्नून पाँच कपड़े है :-

1. कुर्ता 2. इज़ार 3. सरबन्द

4. चादर या लिफ़ाफा और 5. सीन बन्द

जो व्यक्ति मृतक को स्नान करायें, वह मृतक शरीर को दफ़नाने के बाद खुद स्नान करे। जब जनाज़े को कब्रिस्तान की ओर ले जाया जाता है तो पहले बिसमिल्लाह करके अल्लाह का नाम लिया जाता है और जनाज़े को चार लोग उठाते है और पैदल कब्रस्तान तक ले जाते है तथा थोड़ी-थोड़ी दूर पर कंघा बदलते रहते है, जनाज़े को रखने के पहले बैठना चाहिए तथा जनाजे को कब्रिस्तान तक तेजी से ले जाना चाहिए।[180]

हदीस ग्रंथों में कब्र के सन्दर्भ में यह वर्णन उपलब्ध होता है- किसी भी व्यक्ति की कब्र उसकी लम्बाई के हिसाब से खोदी जायें, अगर ज़मीन बहुत नर्म हो तो बगली कब्र न खोदी जाये उस स्थिति में मृत व्यक्ति को किसी संदूक में रखकर दफ़न कर दिया जाये और उस संदूक में मिट्टी बिछा दी जाये, यह भी निर्देश है कि कब्र को बहुत ऊचाँ न बनाया जाये, उसके ऊपर कोई पक्का निर्माण न कराया जाये। इसी प्रकार कब्र की गहराई कम से कम इतनी हो जिसमें मृतक को आसानी से दफ़न किया जा सके, दफ़न करने के पश्चात् मृतक के लिये खुदा से दुआ करो तथा कब्र के ऊपर न बैठो और न चलो। जहाँ आपके परिवार की कब्रें बनी हों, वहाँ हफ्ते में कम से कम एक बार जाना चाहिये। हदीस में इसका विवरण इस प्रकार उपलब्ध होता है-"हर हफ्तः में कम से कम एक मर्तबः ज़ियारते कुबूर की जाये और ज़ियादः बेहतर यह है कि वह दिन जुम्मः का हो। बुजुर्गों की कब्रों की ज़ियारत के लिये सफ़र करके जाना भी जाइज़ है जब कि कोई अक़ीदः और अमल खिलाफे शअ न हो, जैसा कि आजकल उर्सो में मफासिद होते हैं।

कभी-कभी कब्र की ज़ियारत करना मुस्तहब्ब है।

कभी-कभी शबेबरात को भी क़ब्रिस्तान में जाना साबित है।"[181]

हदीस की समीक्षा:-

हदीस ग्रंथों का इस्लाम धर्म के लिये विशष महत्व है, यह अनेक भागों में उपलब्ध होते हैं तथा कुर्आन शरीफ़ की भांति पवित्र माने जाते हैं। इन ग्रंथों में उन हिदायतों का वर्णन है, जिनका अनुपालन करना, प्रत्येक मुसलमान का फर्ज है। इन ग्रंथों में खुदा के सन्दर्भ में जानकारी, खुदा से मोहब्बत करना, खुदा की इबादत करना, कुर्आन शरीफ का पाठ करना तथा व्यक्तिगत जीवन के लिये विशेष हिदायतें दी गयी हैं।

हदीस ग्रंथों में प्रातःकाल से लेकर शाम तक के न्यमित्रिक कर्मो पर प्रकाश डाला गया है, इसमें प्रातःकाल उठना, दातून करना, स्नान करना, हाथ-पैर धोना, पाँच वक्त की नवाज़ अदा करना, और खुदा से दुआ मांगना, नज़दीकी लोगों को सलाम करना, मस्जिद जाने के तौर-तरीके, वस्त्र धारण करना, रोज़े रखना, ईद का त्यौहार मनाना, कुर्बानी करना, ज़कात देना, और धर्म युद्ध करने का विवरण उपलब्ध होता है।

हदीस ग्रंथों में अधिकार और कर्तव्यों का विवरण उपलब्ध होता है इनके अन्तर्गत हमारे खुद के कर्तव्य, माता-पिता के अधिकार, लड़के -लड़कियों की परवरिश, भाई और बहनों के अधिकार गरीबों पर रहमदिली, एक सच्चे मुसलमान के कर्तव्य, व्यवसाय और धन्धों में नियमों का पालन, कर्ज़ की अदायगी तथा ब्याज न लेने के नियम शामिल है। इसके अतिरिक्त रिश्वत लेने देने में भी पाबन्दी हदीस ग्रंथों के माध्यम से की गयी।

व्यक्तिगत जीवन में जो तौर-तरीके हम अपनाते हैं, उनका विवरण भी हदीस ग्रंथों में उपलब्ध होता है। इसमें अभिवादन के तरीके, पत्र लेखन, वस्त्र, सामाजिक दावते, औरतों की वेश-भूषा और शराब, जुआँ, अय्याशी के खेल और संगीत पर पाबंदी, कुर्आन शरीफ का पठन-पाठन, विविध वस्तुओं और जेवरों का प्रयोग तथा बीमारी की स्थिति में विविध प्रकार के इलाज उपलब्ध होते हैं।

हदीस ग्रंथों में जीवन के आदर्शो का भी उल्लेख मिलता है। अपने शरीर का सौन्दर्य, विविध प्रकार के भलाई के कार्य, क्रोध पर नियन्त्रण, अमानत को सुरक्षित रखना, उम्र का लिहाज़ करना, शर्म और हया रखना, सब्र करना, खामोश रहना, अच्छे गुणों को अपनाना तथा किसी प्रकार का गुनाह न करना हदीस ग्रंथों से ही मालूम पड़ता है।

हद़ीस ग्रंथों में प्रातःकाल से लेकर शाम तक के न्यमित्रिक कर्मो का विवरण उपलब्ध होता है, दिन में हमारे कर्तव्य क्या है, ये कर्तव्य व्यक्तिगत अपने लिये, परिवार के लिये, समाज के लिये और धर्म के लिये विविध प्रकार से किये जाते हैं, इसके साथ-साथ खुदा की याद भी बनाई रखी जाती है। हद़ीस में ही घर की व्यवस्था, रात की सावधानी, बिस्तर बिछाने और सोने के तरीके तथा स्नान आदि के सन्दर्भ में विस्तृत जानकारी मिलती है।

हद़ीस ग्रंथों में मुस्लिम समाज से संबंधित विविध प्रकार के संस्कारों का विवरण उपलब्ध होता है -इस धर्म में विवाह संस्कार को पहला संस्कार माना जाता है तथा तलाक आदि देने के नियम हदीस में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त औलाद का पैदा होना, उसका पालन-पोषण, तहज़ीब, अक़ीक और खतना के संबंध के नियम भी हद़ीस में उपलब्ध होते हैं।

संसार में हर व्यक्ति की मौत होती है यद्यपि बीमार होने पर हर व्यक्ति की तीमारदारी की जाती है, मरीज को दवा के साथ-साथ तसल्ली व हमदर्दी दी जाती है। हद़ीस ग्रंथों में मृतक या अंतिम संस्कार का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है, इस धर्म के अनुसार मृतक शरीर को कब्र में दफन किया जाता है तथा इस संबंध में अनेक नियमों का पालन भी किया जाता है। अफसोस जाहिर करने के लिये अनेक प्रकार के कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हदीस ग्रंथ इस्लामी संस्कृति को संरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इतिहासकार राधाकृष्ण बुन्देली के अनुसार-''हदीस ग्रंथों ने कुर्आन शरीफ का विश्लेषण प्रस्तुत किया है और इस्लामी संस्कृति को स्थायित्व प्रदान किया है। इन ग्रंथों का

महत्व सम्पूर्ण विश्व में है तथा बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में रहने वाले मुसलमान हदीस ग्रंथों का समादर कुर्आन शरीफ की भांति करते हैं और उसमें वर्णित हिदायतों का अनुपालन करते हैं।''[182]

इस्लाम धर्म के प्रचार के लिये किये गये उपाय एवं भारत में इसका आगमन

सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुस्लिम आक्रमणकारियो के साथ-साथ इस्लाम धर्म का आगमन भारत वर्ष में हुआ। तत्कालीन समय में यहाँ अनेकों धर्म तथा उनकी अनेक उपशाखायें स्थापित थी। भारत की आर्थिक समृद्धि को देखकर अरबी आक्रमणकारियो व अन्य विदेशी शासको ने अपनी प्रभुसत्ता यहाँ स्थापित करने की परिकल्पना की।

हज़रत मोहम्मद साहब की मृत्यु के पश्चात् इस्लाम धर्म का उदय हुआ और धीरे-धीरे इसका विस्तार ईरान तथा पश्चिमी एशिया में हुआ। इस्लाम धर्म के उदय के पश्चात् थल मार्ग से होने वाले व्यापार में प्रतिकूल असर पड़ा तथा यह व्यापार समुद्री मार्ग से होने लगा। इस समय यह धारणा थी, कि जो भारतीय समुद्री यात्रा करता है, उसकी जाति भ्रष्ट हो जाती है इसलिये उसे यह निर्देश था कि वह समुद्री व्यापार से अलग हो जायें।[183]

ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार, भारतवर्ष के मालाबार क्षेत्र मे अरबी व्यापारी आकर रहने लगे थे, इस समय यह क्षेत्र राष्ट्रकूट शासकों के हाथ में था, राष्ट्रकूट शासकों ने इन्हें रहने की जगह दी और इबादत करने के लिये इन्हें मस्ज़िद बनवाने की अनुमति प्रदान की।

डा० आर्शीवादीलाल के अनुसार-''सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जिस समय मुहम्मद साहब_अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे और उनके उत्तराधिकारी पूर्ण वेग से निकटवर्ती राज्यों को अपने अधीन कर रहे थे, उस समय हर्ष उत्तर-पश्चिमी भारत में एक विशाल साम्राज्य की नींव डाल रहा था। परन्तु इस राज्य में सम्पूर्ण उत्तरी भारत भी शामिल न था। विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिणी प्रदेश को जीतकर अपने राज्य में मिलाने की सारी कोशिशें जो हर्ष ने की, बेकार हुयी।[184] इस समय सम्पूर्ण भारतवर्ष चार भागों में विभक्त था-

1- हिमालय के पहाड़ी राज्य
2- गंगा और सिन्धु का राज्य
3- दक्षिणी राज्य और
4- दक्षिणी प्रायद्वीप के राज्य

भारतवर्ष का प्राचीनतम राज्य सिन्ध राज्य था, जहाँ शूद्र वंश के राजा राज्य करते थे उसके पश्चात् वहाँ चच का शासन स्थापित हुआ, उसके बाद उसके पुत्र दाहिर ने वहाँ राज्य किया। दाहिर के शासनकाल में मोहम्मद बिन कासिम ने यहाँ पर आक्रमण किया, चूंकि सिन्ध के शासक बौद्धों पर अत्याचार करते थे इसलिये जनता ने यहाँ के शासक दाहिर का साथ नहीं दिया। सिन्ध का राज्य काफी विस्तृत था, पूर्व में यह कन्नौज तक, उत्तर में काश्मीर तक, दक्षिण में समुद्र तक और पश्चिम में बिलूचिस्तान तक फैला हुआ था। इसकी तद्युगीन राजधानी अलोर अथवा रोहेरा थी। यह साम्राज्य

चार प्रान्तों में बंटा था, इनके शासक सामंत अथवा राजा कहलाते थे। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार, यहाँ का शासक शूद्र जाति का था और बौद्ध मत का अनुयायी था।[185] डा० आशीर्वादीलाल के अनुसार-"सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में फ़ारस के राजा निमरोज ने सिन्ध पर हमला किया और वहाँ का शासक शेरियाज युद्ध में मारा गया। शेरियाज के बाद उसका पुत्र साहसीराय द्वितीय गद्दी पर बैठा किन्तु उसका ब्राह्मण मंत्री चच, उसकी हत्या कर स्वयं गद्दी पर बैठ गया। इस अनाधिकारी राजा ने साहसी राय द्वितीय की विधवा पत्नी के साथ विवाह किया और गर्वनरों के विद्रोह को शान्त किया, जिन्होंने इसे शासक मानना अस्वीकार कर दिया था। इसने मकरान के एक भाग को जीतकर, उस प्रदेश के कन्दाबिल पर भी अपना अधिकार जमा लिया।"[186]

भारत और अरब के बीच व्यापारिक संबंध अत्यन्त प्राचीन काल से थे। अरब देश के निवासी, व्यापार और वाणिज्य के कारण समुद्र तट के प्रदेशों में आया करते थे। उनका पहला आक्रमण, बम्बई के निकट थाना को जीतने के लिये खलीफा उमर के समय में 636 ई० में हुआ था, किन्तु वे खदेड़ दिये गये थे। इसके बाद बरोच, सिन्ध की देबल खाड़ी तथा बलोचिस्तान पर लगातार हमले होते रहे क्योंकि वे उस समय सिन्ध के ही एक अंग थे। अनेक कठिनाइयों तथा पराजयों के बाद भी अरबों ने जल तथा थल से सिन्ध की सीमाओं पर हमले जारी रखे। यह वर्णन अन्य ग्रंथों में भी उपलब्ध होता है।[187]

सन् 659 ई० में अल-हेरिस तथा सन् 664 ई० में अल-मुहल्व ने यहाँ आक्रमण किया, इसके पश्चात् मोहम्मद-बिन-कासिम ने सन् 712-713 ई० में यहाँ आक्रमण किया तथा उसने सिन्ध प्रान्त को जीत लिया। हज़रत मोहम्मद साहब की मृत्यु के 100 वर्ष बाद, उन्होंने अपने साम्राज्य विस्तार की योजना बनाई थी, सिन्धु पर भी इसी योजना के अन्तर्गत आक्रमण किया गया था। इस आक्रमण के दो उद्देश्य थे, पहला उद्देश्य, आर्थिक लाभ प्राप्त करना तथा दूसरा उद्देश्य, धर्म-प्रचार करना था।

डा० आर्शीवाद लाल के अनुसार-"उनकी प्रेरणा का मुख्य आधार धार्मिक जोश था, जिससे वे अनुभव करने लगे थे, कि ईश्वर ने उन्हें संसार में इस्लाम का प्रचार करने और काफ़िरों का विनाश करने के लिये भेजा है। वास्तव में ध्रुव सत्य यह है, कि अरबों ने अपने विजित देशों में केवल अपने धर्म और संस्कृति का ही प्रचार नहीं किया, अपितु प्रायः वहाँ के सभी धर्म और उनकी परम्पराओं को समूल नष्ट कर दिया। इस भाँति सिन्ध पर अरबों के आक्रमण के अनेक उद्देश्य थे किन्तु धर्म का प्रचार उनका मूल उद्देश्य था।"[188]

मोहम्मद बिन कासिम की सेना में पन्द्रह हजार सैनिक थे, इसमें सीरिया के छः हजार घुड़सवार, खलीफा की छः सौ ऊँटों की सेना, तीन हजार समान ढोने वाले ऊँट तथा इनके पास एक तोपखाना भी था, जिसमें पाँच पत्थर फेंकने वाली मशीनें थीं। इसमें प्रत्येक मशीन को चलाने के लिये पाँच सौ आदमी लगते थे तथा तोपखाना चलाने वाले दो हजार पाँच सौ व्यक्ति थे। धीरे-धीरे यह

सेना पच्चास हजार हो गयी, इस बड़ी सेना के सामने सिन्ध नरेश दाहिर न टिक सका और वह हार गया। आक्रमणकारियों ने यहाँ के निवासियों से इस्लाम धर्म चुनने को कहा, इस सन्दर्भ में डा० आशीर्वाद लाल का यह विवरण उपयुक्त प्रतीत होता है-''अरबों को अपनी संख्या की अधिकता पर भरोसा था इसलिये वे सीढ़ियाँ लगाकर दीवारों पर चढ़ गये और देवल पर अधिकार कर लिया। नगर-निवासियों से इस्लाम और मृत्यु में से किसी एक को चुन लेने के लिये कहा गया, उन्होंने मृत्यु का वरण किया अतः तीन दिन तक भयंकर हत्याकाण्ड चलता रहा। सत्रह वर्ष तथा उससे अधिक अवस्था के सभी पुरुषों का वध कर दिया गया, उनके बच्चों तथा स्त्रियों को दास बना लिया गया, मन्दिर नष्ट किये गये और उनके स्थान पर मस्जिदें खड़ी कर दी गयीं। विजेताओं को विभिन्न प्रकार की बहुमूल्य वस्तुएं लूट में मिलीं, जिनमें मनुष्य भी सम्मिलित थे। लूट के सामान का 1/5 भाग नियमानुसार हज्जाज के द्वारा खलीफा के पास भेज दिया गया। इस प्रकार पहला भारतीय नगर अरबों के हाथों में आया, किन्तु इस पराजय का कारण भारतीय सैनिकों की कायरता नहीं, बल्कि एक भारतीय नरेश का प्रमाद और शत्रु सेना की अधिकता थी''[189] इसके पश्चात् सिन्ध में गर्वनर नियुक्त किया गया। धीरे-धीरे मुसलमानों का उत्साह बढ़ा तथा उन्होंने जाटों के क्षेत्र पर आक्रमण किया। यह आक्रमण मोहम्मद निरून के नेतृत्व में हुआ। दाहिर की मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी रानी बाई ने अरबों से युद्ध किया, उसने 15 हजार सैनिकों के साथ अरबों से मुकाबला किया, उसके पश्चात् उसने जौहर व्रत किया।[190]

भारतीय नरेशों के हार के प्रमुख कारणों की चर्चा करते हुये यह कहा जा सकता है, कि अरबों की संख्या, भारतीय सैनिकों से अधिक थी तथा जो धार्मिक समुदाय सिन्ध में निवास करता था, वह शासक वर्ग से बहुत नाराज था इसलिये उसने सिन्ध नरेश को सहयोग नहीं किया। इस समय राष्ट्रीय भावना का अभाव था और केन्द्रीय शासन कमजोर था। प्रारम्भ में मोहम्मद बिन कासिम ने हिन्दुओं पर अत्याचार किये, किन्तु उसके बाद उसने अपनी नीति में परिवर्तन किया। उसने हिन्दुओं को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की किन्तु जज़िया कर भी लगाया। गैर मुस्लिमों को तीन वर्गो में विभाजित किया गया, पहले वर्ग को 48 दिरहम, दूसरे वर्ग को चौबीस दिरहम तथा तीसरे वर्ग को 12 दिरहम जज़िया कर देना पड़ता था। मोहम्मद बिन कासिम की मृत्यु सन् 715 अथवा 716 ई० में हो गयी। इसकी मृत्यु के सन्दर्भ में एक ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होता है, वह इस प्रकार है- दाहिर की पुत्रियाँ सूर्यदेवी और परमालदेवी जब खलीफा वाहिद के सम्मुख उपस्थित की गयीं तो उन्होंने उससे कहा कि मुहम्मद बिन कासिम ने आपके पास भेजने से पहले ही हमें भ्रष्ट कर दिया है। इस पर खलीफा को बहुत क्रोध आया उसने आज्ञा दी कि अपराधी को जीवित ही बैल की खाल में सीकर मेरे सामने उपस्थित किया जाये। मुहम्मद ने शीघ्र ही इस आज्ञा का पालन किया और तीन दिन के अन्दर उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। जब पिटारी खलीफा के सामने खोली गयी तो दाहिर की पुत्रियों ने यह समझकर कि हमने पिता की मृत्यु का बदला ले लिया है, सन्तोष की साँस ली और खलीफा से कहा कि मुहम्मद निर्दोष था।''[191]

खलीफा का प्रभाव 150 वर्ष तक सिन्ध क्षेत्र में रहा, 717 ई० में उमर द्वितीय खलीफा हुआ, इसके पश्चात् इस क्षेत्र में धीरे-धीरे अरबों का प्रभाव कम होता चला गया। भारतीय दर्शन, शासन-प्रबंध, ज्योतिष, संगीत, चित्रकला, चिकित्सा पद्धति और स्थापत्यकला ने अरबो को प्रभावित किया, उन्होंने भारतीय ग्रंथों का अरबी में अनुवाद कराया तथा भारतीय शिल्पियों और चित्रकारों को अपने यहाँ मस्ज़िद बनाने और सज़ाने के लिये नौकर रखा।[192] अरबों की प्रगति उसी समय हुयी जब वे भारतवर्ष के सम्पर्क में आये। इन्होंने भारतीय ज्ञान को यूरोपीय देशों में भी पहुँचाया

धीरे-धीरे अरब निवासियों ने 643 ई० में ईरान को जीतने के पश्चात् अफगानिस्तान की ओर बढ़ना प्रारम्भ किया। सन् 683 ई० से लेकर 692 ई० तक अफगानिस्तान पर अरबों का प्रभाव बढ़ता गया, सन् 870 ई० तक अफगानिस्तान अरब शासकों के प्रभाव में आ गया।[193] इस तरह अरबों और इस्लाम धर्म का प्रभाव भारतवर्ष में पड़ा।

इस्लाम धर्म का प्रचार-प्रसार :-

इस्लाम धर्म के प्रसार के लिये जो नीति अपनायी गयी, वह वर्तमान परिवेश में प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती। सन् 712-13 ई० में सिन्ध प्रान्त में मुसलमानों का अधिकार हो जाने के पश्चात् वहाँ के हिन्दुओं के साथ मोहम्मद बिन कासिम को परिस्थितियों से विवश होकर हिन्दुओं के साथ वैसा ही व्यवहार करना पड़ा था, जैसा कि अरब और खिलाफत के अन्य भागों में ईसाइयों और यहूदियों के प्रति किया जाता था।''[194] इस्लाम धर्म के प्रचार के लिये निम्न सिद्धान्तों को अपनाया गया।

जेहाद अथवा शक्ति का सिद्धान्त :-

इस्लाम धर्म के अन्तर्गत जेहाद (धर्मयुद्ध) को धर्म का अंग माना गया, जब भारतवर्ष में सल्तनत स्थापित हुयी, उस समय सुल्तानों का व्यवहार अत्यधिक कटु नहीं था। डॉ० आर्शीवादीलाल श्रीवास्तव के अनुसार- ''कुरान और हदीस मुसलमान शासकों को अपने शासन में हिन्दुओं को रहने देने की अनुमति नहीं देते थे, ''इस्लाम या मृत्यु'' दोनों में से एक का चुनाव करने को कहते थे, इसलिये उलेमा समय-समय पर सुल्तानों पर दबाव डालते थे कि, शरीअत के कानूनों का पालन किया जाये और हिन्दुओं को या तो मुसलमान बना लिया जाये या उनका निर्ममतापूर्वक वध कर दिया जाये। धर्मान्ध उलेमाओं द्वारा सुल्तानों पर इस प्रकार के दबाव डालने के अनेक उदाहरण समकालीन तवारीखों के पृष्ठों में मिलते हैं।''[195] उलेमाओं के दबाव के कारण इल्तुतमिश के शासनकाल में यह नीति अपनाई गयी किंतु इस पर यह तर्क रखा गया यदि उलेमाओं का कथन माना गया और धर्म के नाम पर ज़ेहाद किया गया तो, मुसलमानों की संख्या बहुत कम होने के कारण इसमें कामयाबी नहीं मिल सकेगी और इसके लिये यह आशा की गयी- ''कुछ ही वर्षो पश्चात् जब मुसलमान राजधानी, प्रदेशों और छोटे-छोटे कस्बों में अच्छी तरह जम जायेंगे और सेनायें बड़ी हो जायेंगी, तब हिन्दुओं में 'मृत्यु या इस्लाम' का चुनाव सम्भव होगा''[196] सन् 1296 से लेकर 1316 के मध्य अलाउद्दीन

खिलज़ी के शासनकाल में काज़ी मुगिसउद्दीन ने यही मांग की थी। उसने कहा था कि- "चूँकि हिन्दू पैगम्बर के सबसे कट्टर शत्रु हैं, इसलिये खुदा ने स्वयं ही हिन्दुओं का पूर्ण दमन करने का आदेश दिया है। पैगम्बर ने कहा कि, वे या तो इस्लाम स्वीकार करें, नहीं तो उन्हें कत्ल कर दिया जाये या गुलाम बना लिया जाये और राज्य तथा उनकी सम्पत्ति जब्त कर ले। अन्य विद्वानों का यही मत है कि, मृत्यु या इस्लाम के सिवा उन्हें और कोई रास्ता नहीं है।"[197] सल्तनत काल में हिन्दुओं को उत्पीड़ित किया गया और उनके ऊपर जज़िया कर लगाया गया, इसके अतिरिक्त हिन्दुओं को सार्वजनिक रूप से उपासना करने और धर्म प्रचार करने की अनुमति नहीं थी। डॉ० आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव के अनुसार- "अलाउद्दीन खिलजी, फिरोज़ तुगलक और सिकन्दर लोदी जैसे धर्मान्ध सुल्तानों के शासनकाल में तो हिन्दू न अच्छे वस्त्र पहन सकते थे, न घोड़े पर सवार हो सकते थे और यहाँ तक कि अच्छे हथियार तक नहीं रख सकते थे। कभी-कभी तो उन्हें पान तक न खाने न दिया जाता था और न मुसलमानों जैसे वस्त्र ही पहनने दिये जाते थे। शरीयत के अनुसार- हिन्दुओं को नये मन्दिर बनाने देना और पुराने मन्दिरों की मरम्मत कराना वर्जित था। केवल युद्ध या सैनिक अभियानों के समय ही नहीं, बल्कि शान्तिकाल में भी हिन्दुओं के मन्दिर गिरा दिये जाते थे और उनकी देव मूर्तियों के टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते थे। फ़िरोज़ तुगलक की अपनी फतुहाते फ़िरोजशाही के उल्लेखानुसार एक बार वह पूर्ण शान्ति के समय भी मलह नामक एक गाँव पर गया। इस गाँव के तालाब के किनारे हिन्दू पूजा के लिये एकत्र हुये थे और एक मेला भी लगा हुआ था। फिरोज़ तुगलक ने पूजा-अर्चना बन्द करा दी। इतना ही नहीं उसने मन्दिरों को भी ध्वस्त कर डाला और उपासकों को कत्ल कर देने का हुक्म दे दिया।"[198]

उत्तरी भारत के मथुरा, अयोध्या और वाराणसी के ही नहीं, बल्कि कई अन्य स्थानों के संग्रहालय टूटी हुयी मूर्तियों से भरे पड़े हैं। जहाँ कहीं प्राचीन मन्दिर थे, उनके स्थान पर उन्हीं मन्दिरों की सामग्री से मस्जिदें और मकबरे बने दिखाई देते है। मुहम्मद नाज़िम का कथन है कि, अगर मूर्तियों तोड़ी गयी तो कोई हानि नहीं हुयी, क्योंकि इसने हिन्दुओं को यह सिखाया कि ईश्वर एक है और उसकी मूर्ति बनाना पाप है।[199] सूफी मतावलम्बियों के अनुसार, हिन्दू मन्दिरों में स्वर्ण एवं रजत की मूर्तियों होती थी, जिन्हें देखकर मुसलमान प्रलोभित होते थे और उनमें लूट-पाट करते थे, इस प्रकार हम देखते हैं कि, शक्ति के बलबूते पर भारतवर्ष में इस्लाम धर्म का प्रचार किया गया।

प्रलोभन द्वारा धर्म प्रचार :-

भारतवर्ष में मुसलमान बनाने के लिये प्रलोभन की नीति भी अपनाई गयी। इस सन्दर्भ में एक ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होता है "फिरोज तुगलक ने घोषणा की थी कि जो भी इस्लाम स्वीकार कर लेगा और कलमा पढ़ेगा, उसे जजिया कर से मुक्त कर दिया जायेगा। फिरोज तुगलक बड़े दम्भ से लिखता है कि, इस घोषणा का इच्छित प्रभाव पड़ा और बहुत से हिन्दू मूसलमान बन गये।[200] कोई भी व्यक्ति इस्लाम के पैगम्बर के विरुद्ध एक भी शब्द नही कह सकता था, इस्लाम

की आलोचना करने वाले को मृत्युदण्ड दिया जाता था, इस सन्दर्भ में ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होता है- सिकन्दर लोदी ने एक ब्राह्मण को इसलिये कत्ल करा दिया था कि उसने यह कहने का साहस किया था कि हिन्दू धर्म और इस्लाम दोनो ही सत्य धर्म है।[201] इसके अतिरिक्त यदि कोई इस्लाम स्वीकार कर लेता था तो वह दुबारा हिन्दू नही बन सकता था। सन् 1414 से लेकर 1430 ई० के मध्य बंगाल में सैकड़ो हिन्दुओं को मुसलमान बनाया और जो नही बने उन पर अत्याचार किया गया। इसी प्रकार दिल्ली के सुल्तानों में फिरोजतुगलक और सिकन्दर लोदी ने हिन्दुओं पर अत्याचार करके मुसलमान बनाया।

सामाजिक संबंध स्थापित करके मुसलमान बनाया जाना :-

भारतवर्ष में मुसलमानों के आगमन के पश्चात् हिन्दू और मुसलमानों के मध्य नज़दीकी संबंध भी बने तथा दोनों ने एक दूसरे को समझने का प्रयत्न किया। जो लड़के हिन्दू थे और वे मुसलमान लड़कियों से प्रेम संबंध बना लेते थे, वे मुसलमान बनने के बाद ही उनसे विवाह कर सकते थे। इसी प्रकार जो हिन्दू लड़कियाँ मुसलमानों के सम्पर्क में आती थी, वे उनसे विवाह करके मुसलमान बन जाती थी। अनेक सुल्तानों ने हिन्दू लड़कियों से वैवाहिक संबंध स्थापित किये थे और उन्हें अपनी बेगम बनाया था। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति मुसलमानों के यहाँ खाने-पीने लगता था, उसे हिन्दू लोग अपवित्र मानने लगते थे तथा उसका बहिष्कार कर देते थे, मजबूर होकर उसे इस्लाम धर्म स्वीकार करना पड़ता था। सुप्रसिद्ध इतिहासकार राधाकृष्ण बुन्देली के अनुसार- ''हिन्दू धर्म में फैली संकुचित विचारधाराओं के कारण और छुआ-छूत की प्रथा के कारण भी इस्लाम धर्म को हिन्दुस्तान में विकसित होने का अवसर मिला तथा वह अपने आप प्रचारित और प्रसारित हुआ।[202] भारतवर्ष में सामाजिक संबंधों के कारण इस्लाम की प्रगति हुयी।

कुर्आन शरीफ़ के आदर्श सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार :-

भारतवर्ष के कतिपय विद्वानों को इस्लाम धर्म का एकेश्वरवादी सिद्धान्त बहुत पसन्द आया, इसके साथ ही साथ जो व्यक्ति बहुदेववाद तथा मूर्ति-पूजा के विरोध करते थे, उन्होंने इस्लाम धर्म अपना लिया। तद्‌युगीन हिन्दू समाज में पक्षपातपूर्ण वर्ण आश्रम व्यवस्था लागू थी, जिसके अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को उच्च श्रेणी में रखा गया था। इन लोगों का व्यवहार निम्न जातियों से अच्छा नहीं था, इसलिए सवर्णो के उत्पीड़न से तंग आकर निम्न जाति के लोगों ने इस्लाम धर्म अपना लिया था। मुसलमान बन जाने के पश्चात् उनके साथ कोई जातीय भेदभाव नहीं होता था, क्योकि मुसलमानों में वर्ण व्यवस्था नहीं थी और न छुआ-छूत थी।

इसी समय सूफी सन्त भारत वर्ष में आये, जिन्होंने इस्लाम का प्रचार धार्मिक मेल-मिलाप स्थापित करके किया। इन्होंने हिन्दुओं के साथ कोई पक्षपात नहीं किया, उनका किसी प्रकार से उत्पीड़न नहीं किया तथा अपने सिद्धान्तों को बड़े ही प्रेम के साथ तर्कपूर्ण ढंग से समझाने का प्रयत्न किया। सूफी सन्तो की मृत्यु के उपरान्त उनकी स्मृति में, जो दरगाहें बनायी गयी, उन

दरगाहों में हिन्दुओं की पर्याप्त श्रद्धा रही। इनके प्रभाव में आकर यदि हिन्दुओं ने अपना धर्म नहीं बदला तो भी उनकी मौलिक संस्कृति में व्यापक परिवर्तन आया। हिन्दुओं ने मुसलमानों के अनेक रीति-रिवाज और तौर-तरीके अपना लिये।

सूफी धर्म के माध्यम से इस्लाम धर्म का प्रचार :-

सूफी धर्म के माध्यम से इस्लामी रहस्यवाद को प्रचारित-प्रसारित किया गया, यह मत सन् 1206 के पूर्व भारत वर्ष में आया। सूफी सन्त भारत वर्ष के अनेक क्षेत्रों में बस गये, कालान्तर में उत्तर भारत में आकर रहे। डॉ० युसूफ हुसैन के अनुसार-सूफी धर्म का जन्म इस्लाम के पक्ष में हुआ था, यह विदेशी विचारों और रस्मों से प्रभावित नहीं हुआ। इस धर्म के अन्तर्गत ईष्टदेव का विचार, आत्मा-परमात्मा का सम्बन्ध तथा भारतीय दर्शन को सूफी सन्तों ने अपना लिया था। इस्लाम धर्म के अनुसार, खुदा को संसार का मालिक माना गया है और संसार में रहने वाले व्यक्ति उसके सेवक है। इस धर्म में उपवास करना, शरीर को यातना देना, चिल्ला माकूस करना (अपने आप को रस्सी में बाँधकर कुएँ में उलटा लटका देना और 48 रातों तक तपस्या करना) ये भारतीय धर्म को सूफियों की देन है, इनके गुरु शेख कहलाते थे तथा इन्हें झुककर सलाम किया जाता था।[203]

सूफी मतावलम्बी बहादातुल वुजूद के दार्शनिक सिद्धान्त के अनुसार- "ईश्वर के सिवा कुछ नहीं है, ईश्वर के सिवा वहाँ किसी का अस्तित्व नहीं है, यहाँ तक कि 'वहाँ' जैसा भी कुछ नहीं है, सभी चीजों का सार एक ही है।"[204] जब व्यक्ति परमात्मा में लीन हो जाता है तो वह ईश्वरमय हो जाता है। सूफी सन्तों ने अपने आध्यात्म के अन्तर्गत इस्लाम में व्यक्त मानवतावाद का प्रचार-प्रसार किया तथा उन्होंने इस्लाम के प्रचार के लिए भारतीय भाषायें सीखी और हिन्दुओं के सामाजिक जीवन को समझा, उन्होंने उर्दू भाषा को जन्म दिया और उसी के माध्यम से धर्म-प्रचार करते थे। भारत वर्ष में जो सूफी सम्प्रदाय अस्तित्व में रहे, उनमें चिश्तिया, सुहारावर्दिया, नक्षावेदिया, कादिरी, कलंदारिया और शुस्तरी सम्प्रदाय महत्वपूर्ण है। इन सम्प्रदायों को 'सिलसिले' कहते है।

शिक्षा के माध्यम से धर्म प्रचार :-

भारत वर्ष के इस्लाम धर्म का प्रचार-प्रचार शिक्षा के माध्यम से हुआ, सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव के अनुसार- "मध्ययुगीन भारत में मुसलमानों की शिक्षा व्यवस्था से न केवल उनकी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संस्थाओं का रूप ही निश्चित किया, बल्कि उसके चरित्र और जीवन के प्रति दृष्टिकोण को भी निर्मित किया, मध्ययुगीन भारत के तरुणों की सभी प्रकार की शिक्षा की अच्छी व्यवस्था थी, लेकिन इसका मुख्य दुर्गुण यह था कि, वह अत्यधिक मजहबी थी। वास्तव में मजहबी विचारों से वह इतनी प्रभावित थी कि जन साधारण का आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक हित साधन करने वाले अन्य विषय लगभग उपेक्षित ही रह जाते थे।[205]

शिक्षा संस्थाओ मे जो मौलवी नियुक्त किये जाते थे, वे विदेशी होते थे और वे केवल

इस्लाम की ही शिक्षा देते थे। डा० यूसूफ हुसॅन के अनुसार-" मध्ययुग में सोचने का दृष्टिकोण महजबी था। राजनीति दर्शन और शिक्षा महजबी नियन्त्रण में थे। उन्हें महजबी परिभाषाओं के अनुकूल बना लिया गया था। लोगों के सोचने और अभिव्यक्ति करने तक का दृष्टिकोण महजबी होता था।"[206]

इस समय भारतवर्ष में तीन प्रकार की शिक्षा संस्थायें थी- मकतब, मस्जिदें और खानकाहों के मक़बत और मदरसे। प्रथम दो प्रकार के मकतब प्राथमिक पाठशालायें- सी होती थी, जिसमें अरबी और विशेष रूप से फारसी पढ़ना और लिखना सिखाया जाता था। इनमें कुरान पढ़ाया जाता था और बिना समझे ही विद्यार्थियों को उसे कंठस्थ कर लेना पड़ता था।[207] इस्लाम की शिक्षा देने के लिये ऊपर से नीचे तक उलेमा ही शिक्षक थे, जो धर्मान्ध मुसलमान का निर्माण करते थे।

भाषा के माध्यम से इस्लाम का प्रचार :-

भारतीयों की बात-चीत समझने के लिये एक नयी भाषा के नाम का अविष्कार सन् 1206 से लेकर 1526 ई० तक होता रहा, इस भाषा को उर्दू भाषा के नाम से जाना गया। यह एशियन, तुर्को, और हिन्दुओं के मध्य की सम्पर्क भाषा थी, इसे लश्करी अथवा बाजारों की भाषा के नाम से सम्बोधित किया। भारतवर्ष मे जब तक मुसलमानो का शासन रहा, उस समय उर्दू सम्पर्क भाषा के रूप में रही। डॉ० मसूद हुसैन के अनुसार- सल्तनत काल के प्रारम्भ में दिल्ली की बोलचाल की भाषा हरियानी थी। वे लिखते है कि, "जब फारसी का हरियानी पर रोपण हुआ, तो उसके परिणामस्वरूप उर्दू भाषा का जन्म हुआ।"[208] इस भाषा के माध्यम से धर्म प्रचार किया गया, सूफी मत वालों ने इस भाषा को अपना कर धर्म प्रचार का साधन बनाया-

जो हाल मिसकी मकुन तगाफुल दुराय नैना बनाय बतियाँ।
कि ताने हिज्रां न दाश्म, ऐ जां! न लेहू काहे लगाय छतियाँ।।
शबाने हिज्रां दराज चूँ जुल्फ व रोजे वसलत चूँ उम्र कोतह।
सखी ! पिया का जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।।

गुजरी तो किदर हुस्नो लताफत चूँ मही।
ई देगे दही बरसरे, तू चहरे शही।।
अज हर दो लबृत शहद ओ शकर भी रेजद।।
हरगाह के गुई कि दही लेहो दही।। अमीर खुसरो।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस्लाम धर्म का प्रचार-प्रसार उर्दू भाषा के माध्यम से किया गया।

बुन्देलखण्ड में इस्लाम का आगमन एवं प्रचार-प्रसार

जब कन्नौज में तद्युगीन शासक जयपाल था, उस समय भारत की उत्तरी-सीमा पर गजनी नरेश सुबुक्तगीन का आक्रमण हुआ। इस समय चन्देल नरेश गुर्जर प्रतिहारों के मांडलिक थे, तद्युगीन चन्देल नरेश धंग, जयपाल की सहायतार्थ अपनी सेना लेकर आर्यावर्त की सीमा पारकर सेना

सहित सुबुक्तगीन से संघर्ष करने के लिये पहुँचे। फरिश्ता के अनुसार-''सुबुक्तगीन और जयपाल के बीच इस दूसरे संघर्ष का कारण यह था कि जयपाल ने उस निर्धारित रकम को अदा करने से अस्वीकार कर दिया था जिसे पहली बार उसने माना था।''[209]

इसके अतिरिक्त जयपाल ने सुबुक्तगीन के द्वारा भेजे हुये व्यक्तियों को बन्दी भी बना लिया था। कन्नौज नरेश को दिल्ली, अजमेर तथा कालिंजर के नरेशों ने सहायता दी थी। उत्बी ने बतलाया कि अमीर ने हिन्दुस्तान के बादशाह की सीमा का उल्लंघन किया इसलिये शस्त्र उठाने के अलावा दूसरा चारा नहीं था। इसके अतिरिक्त जयपाल ने इस युद्ध में सुबुक्तगीन के राज्य का एक बड़ा हिस्सा अपने राज्य में मिला लिया था, इसलिये सुबुक्तगीन को दुबारा आक्रमण करना पड़ा। इस बार जयपाल की सेना मुसलमानों के आक्रमण का सामना न कर सकी। मुसलमानों से पराजित होने के बाद भी बुन्देलखण्ड के ऐश्वर्य में कोई कमी नहीं आयी। यह आक्रमण सन् 997 के पूर्व हुआ था, इस आक्रमण से बुन्देलखण्ड नरेश मुसलमानों से परिचित हुये थे, किन्तु बुन्देलखण्ड में मुसलमानों का पदार्पण नहीं हुआ था।[210]

सन् 1002 और 1003 ई० में धंगदेव के स्थान पर गंडदेव चन्देल नरेश बना, इसी समय गजनी में सुबुक्तगीन का पुत्र महमूद गजनबी सुल्तान बना। महमूद गजनबी ने सन् 1008 में लाहौर पर आक्रमण किया था। इस समय लाहौर का शासक आनन्दपाल था, उसके आक्रमण की सूचना पाकर कालिंजर, ग्वालियर, कन्नौज, अजमेर और उज्जैन के शासक उसका मुकाबला करने के लिये पहुँचे। इस युद्ध में महमूद गजनबी परास्त होने वाला था किन्तु इसी समय आनन्द पाल के हाथी बारूदी आग से भड़क गये, जिसके कारण सेना में भगदड़ मच गयी और जीता हुआ युद्ध नेतृत्व की कमी के कारण भारतीय सेना हार गयी और 8 हजार सैनिक मारे गये।

महमूद गजनबी उन नरेशों से बदला लेना चाहता था, जिन्होंने आनन्दपाल को सहयोग प्रदान किया था। उसने सर्वप्रथम अपना आक्रमण बुन्देलखण्ड पर किया। इस समय चन्देलों का राज्य काफी विस्तृत था तथा कच्छपघाट और ग्वालियर के शासक चन्देलों के आधीन थे। इस सन्दर्भ में एक अभिलेख दुबकुण्ड में उपलब्ध हुआ।[211] तद्कालीन इतिहासकार निजामुद्दीन महमूद गजनबी के ग्वालियर आक्रमण के सन्दर्भ में यह विचार प्रस्तुत करता है-''उसने नन्द के राज्य पर आक्रमण किया। जब वह ग्वालियर के दुर्ग पर पहुँचा तो उसने इसे घेर लिया। चार दिनों के पश्चात् किले के गवर्नर के आदेश से एक दूत भेजा गया।''[211] सुल्तान महमूद गजनबी चन्देल शासक गंडदेव को दंड देना चाहता था, इसलिये पहले उसने कन्नौज के तद्युगीन शासक राजपाल पर आक्रमण किया, इस युद्ध में राजपाल परास्त हुआ तथा चन्देल नरेश का पुत्र विद्याधरदेव राजपाल से बहुत नाराज हुआ, उसने राजपाल की गर्दन तीर से उड़ा दी।

श्रीविद्याधर देवकार्यनिरतः श्रीराज्यपालं हठात्।
कण्ठास्थिच्छिदद्नेकबाण निवर्हे हैत्वामहत्वामहत्याहवे।। [212]

राजपाल की मृत्यु के पश्चात् चन्देल राज्य और भी ज्यादा विकसित हो गया, सन् 1019 में महमूद गजनबी ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किया था। उसे रोकने के लिये राजकुमार विद्याधर देव 1 लाख 45 हजार पैदल सैनिक, 36 हजार घुड़सवार और 390 हाथियों के साथ आगे बढ़ा। कन्नौज नरेश जयपाल ने उस आक्रमण को रोकने का प्रयत्न किया, पर वह असफल रहा। इस आक्रमण के सन्दर्भ में यह विवरण मिलता है कि "जब सुल्तान ने नन्द की सेना के समक्ष अपना शिविर गिराया, तब तत्काल उसने एक दूत उसके पास भेजा। दूत यह सन्देश लेकर गया था कि वह अविलम्ब आत्मसमर्पण कर दे और इस्लाम स्वीकार कर ले। नन्द ने आधीनता के इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया, तब सुल्तान एक ऊँचे स्थान पर गया ताकि, वह नन्द की सम्पूर्ण सेना को भली प्रकार देख सके और उसकी शक्ति का अनुमान लगा सके। जब उसने उस सैन्य-समुद्र को देखा तो उसको बड़ा पश्चाताप हुआ, फिर उसने समर्पण और आत्मग्लानि के भाव से पूर्ण अपने मस्तक को भूमि पर टेककर दयानिधि से विजय के लिये प्रार्थना की।"[213] महमूद गज़नबी ने उसके राज्य पर आक्रमण करने से पहले ग्वालियर पर डेरा डाला।[214] ग्वालियर का शासक अर्जुन महमूद गज़नबी का मुकाबला न कर सका, भयभीत होकर उसने 35 हाथी महमूद गज़नबी को उपहार में दिये।[215] ग्वालियर के पश्चात् सुल्तान ने कालिंजर पर आक्रमण किया, कालिंजर का दुर्ग कठोर पत्थरों से निर्मित था और एक ऊँची पहाड़ी पर स्थित था। "इस दुर्ग में 5,00,000 आदमियों, 20,000 पशुओं और 500 हाथियों के लिये स्थान था। इसमें पर्याप्त सामग्री, शस्त्रास्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुएँ विद्यमान रहती थीं। भारत में अपनी दुर्धर्ष स्थिति तथा अजेय स्वरूप के लिये वह अद्वितीय था।"[216] महमूद के लिये दुर्ग में प्रवेश ही दुर्गम था। उधर चन्देल सेना आयात मार्ग के अवरोध के कारण विचलित हो रही थी। तब गंड ने सम्मान्नजनक संधि का प्रस्ताव महमूद के पास भेजा। गंड ने 300 हाथी दिये और वार्षिक कर देने का वचन दिया। किन्तु उसने हाथियों को किले के बाहर खुले छोड़ दिया और महमूद को उन्हें पकड़वा लेने का संकेत दिया। महमूद न इस विनोद का समाधान अपने तुर्क सैनिकों को यह आदेश देकर किया कि वे उन्हें पकड़कर सवारी कर लें। यह तुर्क-शौर्य को चुनौती थी। सैनिकों ने सारथी-विहीन हाथियों पर सवारी कर ली। गंड इससे बहुत प्रभावित हुआ। उसने स्वनिर्मित एक कविता सुल्तान की प्रशंसा में भेंट की। यह हिन्दी में लिखी गयी थी।"[217] महमूद के साथ जो विद्वान भारत आये थे उन्होंने उस कविता की प्रशंसा की इससे खुश होकर महमूद गजनबी ने उससे संधि की तथा 15 अन्य दुर्गों का शासनभार उसे सौंपा। चन्देल नरेश गंड को उसके सम्मान में एक परिधान और बहुमूल्य उपहार भी दिये। इस प्रकार सुल्तान कालिंजर नरेश से मित्रता करके सन् 1023 में गजनी लौटा।[218] महमूद के आक्रमण के कारण इस्लामी संस्कृति का कोई विशेष प्रभाव बुन्देलखण्ड में नहीं पड़ा क्योंकि उसने यहाँ पर लोगों को जबरन मुसलमान नहीं बनाया।

केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार- अरब में छठी सदी में जिस इस्लाम धर्म का प्रादुर्भाव हुआ, वह पूर्व और पश्चिम में एक ही समय फैला। इस धर्म के प्रचारक दूत, शस्त्र और सैन्यबल से

सुसज्जित होकर, अनेक देशों में मुहम्मद की वाणी के प्रचार के लिये पिल पड़े। कुछ ही सदियों के भीतर, उन्होंने ईरान और भारत के उत्तर-पश्चिम में फैले हुए समस्त यूनानी देशों का धर्म-परिवर्तन कर दिया और साथ ही उन देशों पर अपना शासन भी स्थापित कर लिया। दसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अरब का यह नवोदित प्रकाश भारत के उत्तर-पश्चिम-गोपुर पर भी आ चमका, किन्तु इस समय तक प्रचारकों की पद्धति, लक्ष्य और साधनों में पर्याप्त अन्तर हो गया था। इस्लाम धर्म के प्रति असीम उत्साह और प्रचार के निमित्त देश विजय के स्थान पर मुसलमानों में अनापेक्षित विध्वंस, लूट और सर्वनाश की भावना व्याप्ति हो गयी थी।''[219] चन्देल वंश में परमार्दिदेव सन् 1165 में शासक में शासक बना, उसके शासनकाल में अनेक आक्रमण हुये। इसका युद्ध सन् 1182-1183 में पृथ्वीराज चौहान से हुआ तथा सन् 1201 के लगभग चन्देल राज्य के कुछ भाग पर पृथ्वीराज चौहान का अधिकार हो गया था। पृथ्वीराज ने इस शासन की व्यवस्था के लिये सेनापति पज्जुन को महोबा का शासक नियुक्त कर दिया। जब दिल्ली से पृथ्वीराज चौहान का शासन समाप्त हुआ और उसके स्थान पर मोहम्मद गोरी का गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली का शासक बना, उस समय यह क्षेत्र उसके राज्य को अपने आप आ गया। कुतुबुद्दीन ऐबक ने अपने राज्य का विस्तार करने के लिये कालिंजर पर आक्रमण किया। हसन निज़ामी ने अपनी पुस्तक ताजुल माँ अतहर में इस आक्रमण का विवरण इस प्रकार दिया है-''हि० 599 (सन् 1202 ई) में कुतुबुद्दीन ने कालिंजर पर आक्रमण किया। उस अभियान में उसके साथ साहिब किशन शम्सुद्दीन अल्तमश भी था। कालंजर का राजा, अभिशप्त परमार, लड़ाई के मैदान में सामना करने के पश्चात् भग्नाश किले में भाग गया। बाद में आत्मसमर्पण करके उसने गले में पराधीनता का कंठभूषण पहन लिया किन्तु राजभक्ति का वचन देने के पश्चात् उसे उसी रूप में ग्रहण कर लिया गया जिस रूप में महमूद सुबुक्तगीन द्वारा उसके पूर्वज ग्रहण किये गये थे। उसने कर और हाथी देने की शर्त स्वीकार की किन्तु इन शर्तो में से किसी एक का भी पालन करने के पूर्व ही उसकी स्वाभाविक मृत्यु हो गयी। उसका दीवान, जिसका नाम अजदेव था, उतनी सरलता से आत्मसमर्पण करने के लिये तैयार नहीं था। जितनी सरलता से उसके मालिक ने कर दिया था। अपने शत्रुओं को वह परेशान करता रहा। जब किले के भीतर सब जलाशय सुखा दिये गये तब अंत में वह आत्मसमर्पण के लिये बाध्य किया जा सका। बीसवीं राजब, सोमवार को दुर्गरक्षक सेना अत्यन्त छिन्न-भिन्न और दुर्बल रूप में आयी। उसे अपने स्थान को खाली करके छोड़ देना पड़ा। 'कालंजर दुर्ग' जो विश्व भर में सिकंदर की दीवार की भाँति मजबूती के लिये प्रसिद्ध था, ले लिया गया। मंदिर मसजिद बना दिये गये। सौजन्य के स्थान, अक्षमाला के जाप करने वालों के स्वर और प्रार्थना के लिये आमंत्रित करने वालों की वाणी सबका अंत हो गया। मूर्तिपूजा का नाम ही मिटा दिया गया। पचास हजार आदमी गुलाम बनाये गये। वह भाग हिन्दू-विहीन हो गया। हाथी, पशु और अगणित शस्त्रास्त्र भी विजेता के हाथ लगे। 'विजय की बागडोर इसके बाद महोबा की फेरी गयी और कालंजर का शासन हाजाब्बारुद्दीन हसन के जिम्मे किया गया।''[220]

सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ फरिश्ता के अनुसार, इस युद्ध में परमार्दिदेव की मृत्यु नहीं हुयी थी बल्कि उसने दिल्ली के सुल्तान के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया था। राजा का मंत्री इस अपमानजनक संधि को स्वीकार नहीं करना चाहता था इसलये उसने राजा परमार्दिदेव को बुलाकर उसकी हत्या कर दी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुतुबुद्दीन ऐबक के आक्रमण के पश्चात् ही बुन्देलखण्ड के लोग वास्तविक रूप से इस्लाम धर्म से परिचित हुये तथा यहाँ भी इस्लाम धर्म के प्रचार-प्रसार के वही साधन अपनाये गये, जो पूरे भारतवर्ष में उन्होंने अपनाये थे।

1- बुन्देलखण्ड में शक्ति के आधार पर इस्लाम का प्रचार-

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में इस्लाम का आगमन मुसलमान आक्रमणकारियों और शासकों द्वारा लाया गया। इसके पहले यहाँ के लोग प्रकृति, शक्ति, शिव और विष्णु उपासक थे क्योंकि जो भी धर्म स्थल बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होते हैं, वे सब इन्हीं धर्मो से संबंधित हैं। सर्वप्रथम सन् 1019 से लेकर सन् 1022 तक महमूद गजनबी ने ग्वालियर और कालिंजर पर आक्रमण किया यद्यपि बुन्देलखण्ड का यह आक्रमण बहुत अधिक विध्वंसक नहीं था। डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव के अनुसार-''मुसलमानों ने पवित्र मथुरा नगरी के मन्दिरों को अपवित्र और ध्वस्त किया उसमें उत्तरी भारत के कुछ प्रमुख राजाओं की आत्मा को बड़ी ठेस लगी।''[221] कालिंजर में ऐसी जनश्रुति है कि महमूद गजनबी ने कालिंजर के सगरा बाँध को क्षति पहुँचाई और अनेक लोगों को मुसलमान बनाया तथा अनेक मन्दिरों को तुड़वाकर मस्ज़िदें बनवा दीं।

जब दिल्ली में कुतुबुद्दीन ऐबक का साम्राज्य स्थापित हुआ, उस समय बुन्देलखण्ड में चेदि और कल्चुरियों का शासन था। कुतुबुद्दीन ऐबक ने सन् 1202 और 1203 में कालिंजर पर आक्रमण किया और उसे जीत लिया। यहाँ भी मुसलमानों ने हिन्दुओं का उत्पीड़न किया, धार्मिक स्थलों का विध्वंस किया और व्यक्तियों को बलात् मुसलमान बनाया। सन् 1231 में इल्तुतमिश ने ग्वालियर में आक्रमण किया। यहाँ के प्रतिहार शासक राजा मलयवर्मनदेव ने एक वर्ष तक इल्तुतमिश की सेना से मुकाबला किया, अन्त में वह पराजित हुआ। उसी समय इल्तुतमिश ने बैयाना और ग्वालियर के सूबेदार मलिक तयसाई को कालिंजर पर आक्रमण करने के लिये भेजा। कालिंजर नरेश त्रिलोक्यवर्मन तुर्की सेना का मुकाबला नहीं कर सका और वह कालिंजर छोड़ कर भाग गया। तुर्को ने कालिंजर को लूटा, किन्तु तुर्क यहाँ बहुत दिनों तक टिक नहीं सके। बलबन ने भी कालिंजर पर आक्रमण किया था, यह आक्रमण सन् 1247 से लेकर 1251 के मध्य हुआ, उस समय कालिंजर का दुर्ग दलकी व मलंकी के संरक्षण में था तथा यहाँ का शासक त्रैलोक्यवर्मन था। इस युद्ध में अनेक पुरुषों का वध कर दिया गया और स्त्रियों तथा बच्चों को गुलाम बना लिया गया।[222]

इतिहासकारों ने बलवन को पक्का सुन्नी मुसलमान माना है, जो इस्लाम द्वारा निर्धारित कर्तव्यों का सावधानी से पालन करता था। डा० आशीर्वादी लाल के अनुसार- ''उसकी सच्चरित्र

मुस्लिम धर्माधीशों के सत्संग में अधिक रुचि थी। कहा जाता है कि वह सदैव उन्हीं के साथ भोजन करता और उनसे मुस्लिम कानून तथा धर्म पर वार्तालाप किया करता था। वह धर्मान्ध था तथा अपनी बहुसंख्यक प्रजा के प्रति उसका व्यवहार असहिष्णुतापूर्ण था।[223]

इस प्रकार हम देखते है कि सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में शक्ति का प्रदर्शन कर इस्लाम धर्म को फैलाने का प्रयत्न किया। सुप्रसिद्ध इतिहासकार केशवचन्द्र मिश्र का मत है कि ''उस धर्म की तत्कालीन व्यवस्था, अवस्था और स्थिति का दिग्दर्शन भी किया जाना चाहिए, जो उसके कुछ कट्टर समर्थकों द्वारा बलपूवर्क काबुल, जाबुल और पंजाब के हिन्दुओं में फैलाया जा रहा था। सुबुक्तगीन और महमूद दोनों ने जीते हुए देशों के हिन्दुओं को बालात् धर्म-परिवर्तन के लिए बाध्य करने की नीति अपनाई। वे राजनीतिक सिद्धि तथा धार्मिक कट्टरता दोनों भावनाओं से प्रेरित थे। उन्हें सफलता अवश्य मिली, किन्तु शेष भारत अछूता रह गया। महमूद स्वयं भारत के मध्यवर्ती भाग में अपनी बलात् परिवर्तन नीति को कार्यान्वित करने में भय खाता था। मध्यभारत-बुन्देलखण्ड विशेष रूप से इस्लाम के प्रभाव से बाहर रहा। कुतुबुद्दीन ने मंदिरों का विनाश यहाँ अवश्य किया किन्तु उसने धर्म परिवर्तन के मौलिक प्रश्न को स्पर्श ही नहीं किया। यहाँ के लोग भी अपेक्षाकृत अधिक दृढ़ हिन्दू थे। इन्हीं सब कारणों से यहाँ के हिन्दू अपनी धर्म-भावना में कहीं फिसल न सके।[224]

बुन्देलखण्ड में प्रलोभन द्वारा धर्म प्रचार -

जब मुगलों ने बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अपनी सत्ता स्थापित की, उस समय उन्होंने प्रलोभन देकर भी लोगों को मुसलमान बनाया। मुगल शासकों ने उदारता का परिचय देते हुए कुछ लोगों को पदाधिकारी नियुक्त किया और उन्हें मुसलमान बनने के लिए प्रेरित किया। कहने को तो बाबर एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था, किन्तु धार्मिक कट्टरता उसमें नहीं थी। उसने गैर मुसलमान काफिरों को सताना, अपना कर्तव्य नहीं समझा। उसकी श्रद्धा और विश्वास ने दूसरे मत-पंथ के लोगों के साथ मित्रता करने से उसे नहीं रोका, यद्यपि भारत वर्ष में उसने धार्मिक उदारता का विशेष परिचय नहीं दिया। उसके सन्दर्भ में डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव का यह कथन दृष्टव्य है- ''अयोध्या में उसने अपनी मस्जिद ऐसे स्थान पर निर्माण करायी थी, जिसे श्री रामचन्द्र जी का जन्म-स्थान मान लाखों हिन्दू पूजते थे। चुंगी-कर हटाने में भी उसने हिन्दू-मुसलमान के भेदभाव को माना था। मुसलमान व्यापारियों से तो चुंगी बिल्कुल हटा दी गयी थी जबकि हिन्दुओं से यह पूर्ववत ली जाती थी। लेकिन यह सब होते हुए भी यह कहना उचित ही होगा कि यहाँ की जनता के प्रति बाबर का व्यवहार सल्तनत युग के अन्य शासकों के व्यवहार की भाँति बुरा नहीं था।[225] उसने अपने सद्व्यवहार से व्यक्तियों को प्रलोभित किया और लोगों को प्रेम से मुसलमान बनाया। अकबर ने भी उदारता की नीति का अनुसरण किया तथा उसने अपने अनेक हिन्दू मित्र बनाये। उसके मित्रो में राजा टोडरमल, बीरबल, राजा मानसिंह तथा तानसेन थे। बीरबल, मानसिंह तथा कालिंजर के राष्ट्रकूट जमींदार ने अकबर द्वारा चलाया गया, धर्म दीन-ए-इलाही स्वीकार किया। तानसेन मुसलमान बन गये, उन्होंने

मुसलमान लड़की से विवाह किया। मानसिंह की बहन जोधाबाई ने सम्राट अकबर से विवाह किया। इस प्रकार प्रलोभन के कारण अनेक लोगों ने इस्लाम धर्म स्वीकार किया।

बुन्देलखण्ड में सामाजिक सम्बन्ध स्थापित कर इस्लाम का प्रचार-प्रसार-

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में हिन्दू और मुसलमानों के बीच सामंजस्य स्थापित करने के प्रयत्न किये गये। इसके लिए अनेक उपधर्म निर्मित हुए, इनमें मुख्य रूप से कबीर-पन्थ, गुरुनानक पन्थ, उदासी सम्प्रदाय, सतनामी सम्प्रदाय, और प्रणामी सम्प्रदाय ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बुन्देलखण्ड केसरी महाराजा छत्रसाल ने अनेक अर्न्तजातीय और अर्न्तधर्मी विवाह किये, छत्रसाल की सम्पूर्ण रानियों की संख्या 19 थी तथा एक मुसलमान रानी भी थी, जिसकी तीन सन्ताने थी, उन सन्तानों के नाम खान्ज़हान, शमशेर बहादुर और तीसरी लड़की जिसका नाम मस्तानी था, इसका विवाह बाजीराव पेशवा से हुआ।[226]

इस युग में एक प्रसिद्ध कवि भी हुए है, जिनका नाम दिल-दरयाव था, इन्होंने भी एक मुसलमान लड़की से विवाह किया। गुरु प्राणनाथ ने हिन्दू और इस्लाम धर्म एकीकरण किया, इस सन्दर्भ में यह कहावत प्रसिद्ध है -

कृष्ण, मुहम्मद, देवचन्द्र, प्राणनाथ, छत्रसाल।
इन पंचन को जो भजे दुःख हरे तत्काल।।[227]

इस युग में धार्मिक मेल-मिलाप बढ़ा, किन्तु हिन्दुओं की संकुचित विचारधारा के कारण मुसलमानों का ही लाभ हुआ क्योंकि जिन हिन्दुओं ने मुसलमान लड़कियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये, उनकी सन्तानों को हिन्दू धर्म ने स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार कई उपजातियाँ इस युग में उत्पन्न हुयी, जो हिन्दू संस्कारों का अनुसरण करते थे किन्तु वे मुसलमान कहलाते थे। इन जातियों में चिकवा, बेहने और मनिहार आदि शामिल थे।

बुन्देलखण्ड में कुर्आन शरीफ के सिद्धान्तों के अनुसार धर्म-प्रचार-

चन्देल युग में धार्मिक एकता को प्रोत्साहित किया गया किन्तु मुसलमानों को अपना धर्म फैलाने का विशेष अवसर प्रदान नहीं किया गया। उसके पश्चात् सल्तनत काल में जब बुन्देलखण्ड का कुछ भाग मुसलमानों के अधिकार में आ गया तो उस क्षेत्र में तद्‌युगीन सूफी सन्तों और इस्लाम धर्म के विद्वानों ने अपने धर्माचरणों के माध्यम से यहाँ के लोगों को प्रभावित किया। यंहाँ के व्यक्ति कुर्आन शरीफ में वर्णित एकेश्वरवाद और भाई-चारे की भावना से बहुत प्रभावित हुए। यहां तक कि केशवचन्द्र और घननन्द जैसे कवि भी इस्लामिक संस्कृति से प्रभावित हुए। कवि लाल और भूषण इस्लाम के बड़े प्रशंसक थे, उन्होंने अपनी कविता में सर्वाधिक उर्दू और अरबी शब्दों का प्रयोग करके यह सिद्ध किया कि वे इस्लाम से काफी प्रभावित है। उर्दू शब्द मिश्रित तद्‌युगीन कविता इस प्रकार थी-

नहिं तात न भ्रात न साथ कोऊ नहिं द्रव्यहु रंचक पास होती।
नहिं सेनहु साज समाज हती नहिं कौनऊ और सहाय होती।।

कर हिम्मत किस्मत अपनी सों लई धरती और बढ़ाई रती।

बलभद्र मने लख पाठक बृंद हिए में गुमो छत्रसाल गती।। बलभद्र मिश्र।।[228]

स्वतः छत्रसाल महाराज ने अपनी कविताओं में उर्दू शब्दों का प्रयोग किया-

दूर करहु द्विविधा दिल सों अरु ब्रह्म स्वरूप को रूप बखाने।

जागृति सुप्ति सुपुप्ति हु के तीज को तुरिया उनको पहिचानो।।

तीनहु श्रेष्ठ कहे सब वेद सो पूर्व श्रषी हमहु ठहरानों।

कारण ज्यों भस्मासुर तारण कामिनी सो प्रभु आप दिखानो।।[229] छत्रसाल कवि।।

इस प्रकार हम देखते है कि अनेक स्थानों में धार्मिक उपदेशकों के माध्यम से कुर्आन शरीफ और उसके सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार हुआ तथा इसके सिद्धान्तों से प्रभावित होकर बुन्देलखण्ड के अनेक नरेशों ने मुसलमानों को धार्मिक स्थल बनाने की इजाज़त दी, जो आज सर्वत्र बुन्देलखण्ड में दिखाई देते है।

बुन्देलखण्ड में सूफी धर्म के माध्यम से इस्लाम धर्म का प्रचार-

सूफी धर्म सन् 1206 में भारत आया तथा इसके पश्चात् पूरे बुन्देलखण्ड म् फैल गया। इस धर्म के सन्दर्भ में डा० आशीर्वाद लाल श्रीवास्तव का विचार है- सूफी धर्म की उत्पत्ति विवादग्रस्त है और इस पर भी विरोधी मत है कि सूफी धर्म शुद्ध इस्लामी है अथवा वह विदेशी प्रभावों और विचारों से प्रभावित हुआ है।[230] यह सम्प्रदाय हिन्दू विचारधारा और रीति-रिवाजों से बहुत ज्यादा प्रभावित है, इसमें ईश्वर की परिकल्पना प्रियतमा और भक्त की परिकल्पना प्रियतम के रूप में की गयी है। उन्होंने कुछ सिद्धान्त जैनियों और ईसाइयों से भी ग्रहण किये। बुन्देलखण्ड में बहादातुल वुजूद का सिद्धान्त सूफी मत के प्रचार के लिए अपनाया गया। इस धर्म के अन्तर्गत, परमात्मा में लीन हो जाने को मारिफात या वस्ल कहते हैं। परमात्मा में लीन होने के लिए दस अवस्थाओं में गुजरना पड़ता है, ये अवस्थायें निम्नलिखित है- तौबा़ (पश्चाताप), वारा (विरक्ति), जुहद (पवित्रता), फक्र (निर्धनता), सब्र (धैर्य), शुक्र (कृतज्ञता), खौफ (भय), रजा (आशा), तबक्कुल (संतोष) और रिजा (ईश्वरेच्छा के प्रति आधीनता)।[231] अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सूफी सन्त भौतिक जीवन का परित्याग करते थे, उनके हृदय में मानवता के प्रति प्रेम पैदा हो जाता था, वे पैसे की परवाह नहीं करते थे, शाकाहारी भोजन करते थे। संक्षेप में सूफियों का लक्ष्य केवल परमात्मा से सीधे बौद्धिक और भावनात्मक सम्बन्ध स्थापित करना ही नहीं था, अपितु मानवता की सेवा करना भी था।

सूफी धर्मावलम्बियों ने अपने धर्म के प्रचार के लिए दो उद्‌देश्य रखे- (1) आध्यात्मिक उन्नति करना। (2) इस्लाम के माध्यम से मानवता की सेवा करना। सूफी सन्त बुन्देलखण्ड में विशेषकर निम्न जातियों के हिन्दुओं को इस्लाम का सन्देश देने को उत्सुक थे। डा० आशीर्वादी लाल के अनुसार- हिन्दुओं को प्रभावित करने के लिए और उन्हें इस्लाम स्वीकार कराने के लिए सूफियों को जन-भाषा सीखनी पड़ी और उनको तत्कालीन प्रचलित धर्म के दार्शनिक एवं आध

यात्मिक विचार ही नहीं, बल्कि उनके रीति-रिवाज भी समझने पड़े, इसलिए उन्होंने हिन्दी पढ़ी और हिन्दू सर्वसाधारण में प्रचलित उपासना के तौर तरीके, धार्मिक उत्सवों और सामाजिक तथा धार्मिक जीवन के बारे में समझा। भारत में सबसे पहले के सूफी सन्तों के उपदेशों में बहुत से हिन्दी शब्द मिलते है।[232] इस समय प्रसिद्ध सूफीसन्तो का प्रभाव बुन्देलखण्ड में पड़ा, इसमें अजमेर के मुईनुद्दीन चिश्ती बहुत प्रसिद्ध सन्त है, इनका जन्म 1141 ई० में ईरान के सिजिस्तान में हुआ था। ये युवावस्था में भारत आये तथा ये पहले लाहौर में रहे, बाद में अजमेर में रहने लगे, इन्हें अजमेर वाले ख्वाजा के नाम से जाना जाता है। इस सम्प्रदाय के दूसरे सन्त ख्वाजा हमीदुद्दीन नागौरी थे, ये अजमेर वाले ख्वाजा के शिष्य थे। एक अन्य शिष्य कुतुबुद्दीन बख्तियार भी थे, इनका जन्म भारत में हुआ, ये रहस्यवादी गीतों के बड़े प्रेमी थे। ऐसी एक गायक गोष्ठी में भक्ति आवेश में वे मूर्च्छित हो गये और कहा जाता है कि चार दिन मूर्च्छित रहने के पश्चात् , पांचवी रात्रि 15 नवम्बर 1235 ई० को उनका देहान्त हो गया।[233] इसके अलावा फरीदुद्दीन-गंज-ए शिकार भी अच्छे सूफी सन्त थे, इनका जन्म मुल्तान के समीप सन् 1175 ई० में हुआ था। ये कुतुबुद्दीन के शिष्य थे, वे पहले हांसी में बसे और फिर अजोधान चले आये। उनके कई पत्नियाँ और सन्ताने थी, इनकी सदैव ही भूखों मरने की नौबत बनी रहती थी।[234] इसके पश्चात् निजामुद्दीन औलिया प्रसिद्ध सूफीसन्त हुए है, इनका जन्म बदायूँ में 1236 में हुआ, सन् 1258 में वे ग्यासपुर में रहने लगे तथा बाबा फरीद के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्होंने सन् 1265 में खिलाफतनामा की रचना की, इसके कारण जन-साधारण का झुकाव मजहब और नवाज़ की ओर हो गया, इनकी मृत्यु सन् 1335 को हुई। इसके पश्चात् एक अन्य सूफी सन्त शेख सलीम चिश्ती हुए, ये अकबर के समकालीन थे।

सूफी सम्प्रदाय का एक मत सुहारावर्दी सूफी सम्प्रदाय से सम्बन्धित था। इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत बहाउद्दीन जकरिया, शेख शर्फद्दीन यह्य मनिहारी हुयें, इनका प्रभाव भी बुन्देलखण्ड में पड़ा। इसके अतिरिक्त कादिरी सम्प्रदाय ने भी बुन्देलखण्ड को प्रभावित किया। ये लोग पहले फतेहपुर सीकरी के दीवाने-आम में नवाज़ पढ़ा करते थे। शाहजहाँ के ज्येष्ठ-पुत्र दारा-शिकोह कादिरी सूफी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। उन्होंने इस सम्प्रदाय के सन्त मियाँ-मीर से सन् 1550 और सन् 1635 के मध्य लाहौर में भेंट की थी। इसके अतिरिक़्त सूफीयों का एक नक्शबन्दी सम्प्रदाय भी था। इनका अस्तित्व सन् 1563 से लेकर सन् 1603 तक रहा, इस सम्प्रदाय के संस्थापक ख्वाजा बहाउद्दीन थे। इनके प्रमुख शिष्यों में शेख अहमद सरहिन्दी, शाहवली उल्लाह, ख्वाजा मीर दर्द आदि थे। इन्होंने अपना एक अलग मत चलाया था जिसे इल्में इलाही मुहम्मद (मुहम्मद के उपदेशों में ईश्वरीय ज्ञान) कहते थे। वे उर्दू और फारसी के अच्छे कवि थे और सूफी धर्म पर इन्होंने कई ग्रन्थ लिखे थे।[235] इस प्रकार हम देखते है कि सूफी मत ने इस्लाम धर्म का प्रचार-प्रसार बुन्देलखण्ड में किया।

बुन्देलखण्ड में शिक्षा के माध्यम से धर्म प्रचार :-

बुन्देलखण्ड में शिक्षा के माध्यम से भी इस्लाम धर्म का प्रचार-प्रसार किया गया। 12वीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी तक, जो क्षेत्र सुल्तानो और मुगलों के अधिकार में आये, वहाँ उन्होंने अपने धर्म को सुदृढ़ करने के लिए धार्मिक स्थलों का निर्माण कराया। इस युग में अनेक मस्ज़िदे बुन्देलखण्ड के विभिन्न भागों में निर्मित हुयी, इन मस्जिदों के नज़दीक मदरसे भी खोले गये। प्रारम्भ में इन मदरसों के शिक्षक विदेशी मुसलमान होते थे, बाद में इन मदरसो के शिक्षक भारतीय मुसलमान होने लगे। वे यहां के मुस्लिम बालकों को उर्दू और अरबी की शिक्षा, कुर्आन पढ़ना, कलमा पढ़ना तथा इस्लाम धर्म के तौर तरीकों का ज्ञान देते थे। इस युग में शिक्षा संस्थाओं को कोई सरकारी अनुदान नहीं मिलता था। तद्‌युगीन मदरसों की स्थिति कुछ इस प्रकार थी- एक समकालीन कवि एक बार मदरसे को देखने गया। उस पर इस मदरसे का जो प्रभाव पड़ा, उसका वर्णन उसी के शब्दों में इस प्रकार है, ''इस पवित्र इमारत के प्रवेश द्वार से जैसे ही मैं प्रविष्ट हुआ, वैसे ही संसार के मैदान जैसा एक समतल मैदान देखा। इसका सहन आत्मा को प्लवित करने वाला था और उसका विस्तार जीवनदायक। इसकी धूल जैसे कस्तूरी के सुवासित थी और उसकी खुशबू में अम्बर की सुगन्धि व्याप्त थी। चारो ओर हरियाली थी और तुलसी, गुलाब और रंग-बिरंगे फूल खिल रहे थे और जहां तक आदमी की आंख जाती थी, वहां दूर-दूर तक सुन्दर क्यारियां बिछी हुयी थी। ऐसा लगता था कि जैसे पिछले साल की फसल में उस साल के फल जैसे अनार, नारंगियाँ, अमरूद, नाशपतियाँ और अंगूर आदि पहले ही लग गये हों। ऐसा लगता था जैसे चारों ओर बुलबुलें गा रही हो और वे अपने पंजों में सितार और चोंचों में बासुरियाँ लिये हों।''[236]

प्रारम्भ में मदरसो का पाठ्यक्रम विदेशो से लिया गया, इन पाठ्यक्रमों में धर्म शिक्षा का महत्व रखा गया। इनके अन्तर्गत सभी स्थानों पर जो मुख्य विषय पढ़ाये जाते थे, उनमें तफसीर (धर्मग्रन्थों की टीका), हदीस (परम्परायें) और फिक (न्याय शास्त्र) आदि थे। धार्मिक विषयों के अलावा पढ़ाये जाने वाले विषय थे- व्याकरण साहित्य, तर्कशास्त्र और कलाम, लेकिन इनका भी दृष्टिकोण मजहबी ही होता था।[337] अकबर के ज़माने तक यही पाठ्यक्रम रहा किन्तु 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में शिक्षा पद्धति में परिवर्तन हुआ और निम्नलिखित विषय पढ़ाये जाने लगे- (1) सिर्फ (विभक्ति और क्रिया पदों के रूप), इसमें ये किताबें पढ़ायी जाती थी- मिजान, मुशैव सर्फे मीर, पंचगंज, जुब्दा, फुसुल-ए-अकबरी और शाफिया। (2) नह्व (व्याकरण और वाक्य रचना) इसकी मान्य पुस्तके थी- नह्व मीर, शरह-ए-भाटा, आमिला, हिदायतुन नह्व काफिया, शरह-ए-जामी। (3) मन्तीक (तर्कशास्त्र) इसकी पुस्तकें थीं- शुगरा कुब्रा, इसागोजी तहजीब, शर्फ-ए-तहजीब, कुतुब-ए-मा, मीर और सल्लामत उत्मा। (4) हिकमत (दर्शनशास्त्र), इसमें ये पुस्तकें पढ़ायी जाती थीं- मैबाजी, सह, शम्स-ए-वजीगा। (5) रियाजी (गणित), इसकी पुस्तकें थी- खुलासा तुल हिसाब, तहरीरे उकलीद्स मकालैउला तशरी अफलाक, रिसाल-ए-कौशाजिया, शरहे चगमानी बाने अव्वल (6) बालागट (साहित्य

शास्त्र) इसकी मान्य पुस्तकें थीं -मुख्तसिर मानी, मुतव्वल, से मानी कतलूतक। (7) फिक (न्याय शास्त्र), इसकी मान्य पुस्तके थी- शरहें वाक्या अव्वविन हिदाया अरवेरिन। (8) उसूले फिक (न्याय शास्त्र के सिद्धान्त) मान्य पुस्तकें थीं- नूरूल अनवर, तौहीदे तलविह, मुसल्लीमस सुबूत (मबादी-ए-कल्मा) (9) कलाम (तर्क विद्या) मान्य पुस्तकें थी- नसफी, शरह-ए-अकैदे जलाली मीर जाविद और शरह-ए-मबाफीक (10) तफसार (धर्म ग्रन्थ टीका) मान्य पुस्तकें थी- जलालैन और वैजाबी (11) हदीस (परम्परायें) इसका मान्य ग्रन्थ था-मुरकात अल्यासबीह।

बताया जाता है कि कुछ शताब्दियों पश्चात् ये चार विषय भी इस पाठ्यक्रम में जोड़ दिये गये थे। (1) अदब (साहित्य) किताबें-नफातुल यमन सावा मैलाका, दीवाने मुनतन्नवी, मुकामत-ए-हरीरी और हमसा (2) फरामज (कर्तव्य)- इसकी किताब थी शरीफिया (3) मुनाजरा (वाद-विवाद)- इसकी कोई निश्चित पुस्तक न थी। (4) उसूले हदीस।[237] इस युग में जो लोग अपनी शिक्षा पूर्ण करते थे, उन्हें योग्यतानुसार उपाधियाँ भी प्रदान की जाती थीं। ये उपाधियाँ निम्नलिखित थीं- जो विद्यार्थी तर्कशास्त्र और दर्शन में विशेष योग्यता प्राप्त करते थे उन्हें फाज़िल की उपाधि प्रदान की जाती थी और जो साहित्य में विशेष योग्यता प्राप्त करते थे, उन्हें काबिल की उपाधि दी जाती थी, उपाधि वितरण के लिये एक समारोह होता था।[238]

बुन्देलखण्ड में स्त्री शिक्षा के सन्दर्भ में कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते, ज्यादातर लड़कियाँ घर में ही शिक्षा प्राप्त करती थीं, मुगलकाल में अनेक पढ़ी-लिखीं औरतों का उल्लेख मिलता है, इन प्रसिद्ध पढ़ी-लिखी औरतों में गुलबदन अकबर की माता हमीदाबानू बेगम, माहम अनगा, सलीमा, सुल्ताना बेगम, नूरजहाँ, चाँद-सुल्ताना, मुमताज़ महल, आदि पढ़ी-लिखी औरतें थीं। मौंसरोट के अनुसार-''अकबर शहजादियों की शिक्षा-दीक्षा का बड़ा ध्यान रखता है। उन्हें मनुष्यों की नजरों से दूर रखा जाता है। उन्हें लिखना-पढ़ना सिखाया जाता है और वृद्ध स्त्रियाँ उन्हें अन्य बातों की शिक्षा देती हैं।''[239] बुन्देलखण्ड में स्त्रियों के लिये पृथक शिक्षा संस्थायें नहीं थी, फिर भी शेख आलम और राय-प्रवीण जैसी स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी थी और उन्हें इस्लाम का ज्ञान था। अनेक मुसलमान औरतों ने हिन्दू विद्वानों से प्रभावित होकर उनसे वैवाहिक संबंध भी स्थापित किये थे। कदौरा, अलीपुरा, चरखारी, बिजावर, छतरपुर, झाँसी तथा बाँदा में जहाँ इस्लाम का व्यापक प्रभाव था, वहाँ मदरसों के माध्यम से इस्लाम का प्रचार होता था।

बुन्देलखण्ड में भाषा के माध्यम से इस्लाम धर्म का प्रचार :-

बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र उत्तर में यमुना नदी, दक्षिण में नर्मदा नदी, पूर्व में टौंस नदी और पश्चिम में चम्बल नदी से आवृत्त है, इस सम्पूर्ण परिक्षेत्र में 27 जनपद आते हैं तथा इसका कुल क्षेत्रफल 48310 वर्ग मील है तथा इसकी जनसंख्या 16111704 हैं। यह जनसंख्या 1991 की जनगणना के अनुसार है। पूरे बुन्देलखण्ड में 40 लाख इस्लाम धर्मावलम्बी निवास करते हैं, अनुमानतः प्रत्येक जनपद में 1 लाख 80 हज़ार धर्मावलम्बियों का निवास है, इनकी पूजा पद्धति अन्य धर्मावलम्बियों से

अलग है। ये लोग ईद, बकरीद, मुहर्रम, शबेरात, बारावफात, आदि त्योहारों को मनाते हैं, इन्होंने यहाँ के अन्य व्यक्तियों की तरह बुन्देली भाषा को बोलचाल में अपना लिया है, सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में बुन्देली और उसकी उपभाषायें निम्न प्रकार से बोली जाती हैं।[240]

सम्भाग	जिला	भाषा
1. झांसी	जालौन	लुधाटी, स्तरीय बुन्देलखण्ड,राठौरी
	हमीरपुर	लुघाटी (दक्षिणी पूर्वी भाग) कुरडी, राठौरी
	बाँदा	बनाफरी, कुडरी
	ललितपुर	स्तरीय बुन्देली
	झांसी	स्तरीय बुन्देली
2. ग्वालियर	ग्वालियर	पूर्वी भाग में प्रमाणित बुन्देलखण्डी उत्तरी भाग में पवारी बुन्देलखण्डी
	मुरैना	भदावरी, तोमरगढ़ी
	शिवपुरी	,,
	भिंड	,,
3. सागर	दतिया	पवाँरी
	सागर	प्रमाणित बुन्देलखण्डी
	दमोह	खटोला
	टीकमगढ़	प्रमाणित बुन्देलखण्डी
4. जबलपुर	मण्डला	गोंडवानी
	नरसिंहपुर	लुघाटी
	गडरवाड़ा	लुघाटी
	जबलपुर	खटोला, प्रमाणित बुन्देलखण्डी
5. रीवां	पन्ना	खटोला, कुडरी, प्रमाणित बुन्देलखण्डी
	छतरपुर	प्रमाणित बुन्देलखण्डी, बनाफरी, कुडरी
	हुसंगाबाद	छिन्दवाड़ी, बुन्देलखण्डी (मराठी भाषा मिश्रित) नागपुरी हिन्दी
	सिहोर	खटोला[241]

स्थानीय भाषाओं के अतिरिक्त यहाँ के मुसलमानों ने अरबी, फारसी और उर्दू से अपना संबंध बनाये रखा, क्योंकि अधिकांश इस्लामी ग्रंथ-अरबी, फारसी और उर्दू में ही लिखे मिलते हैं। यहाँ के मुसलमानों ने बोलचाल में स्थानीय बुन्देलखण्डी भाषा अपना ली है, किन्तु वे धर्माचरण में उर्दू, अरबी, फारसी का ही प्रयोग करते हैं तथा सामान्य बोल-चाल में भी इनका प्रयोग देखने को

देखने को मिलता है। डा० आर्शीवादीलाल के अनुसार-उर्दू को प्रचार-प्रसार के लिये उपयुक्त माना जा सकता है ''जनसाधारण की इस नवीन भाषा उर्दू को विचारों की अभिव्यक्ति के लिये उपयुक्त भाषा बनने में कम से कम 100 वर्ष, अवश्य ही लग गये होंगे। अमीर खुसरो के समय तक यह काफी उन्नति कर गयी थी। खुसरो ने जिस सुगमता और खूबी से उर्दू का इस्तेमाल किया, वह आश्चर्यजनक है। सोलहवीं सदी तक खुसरो और उसके पश्चात के लेखक जिस भाषा का प्रयोग करते रहे हैं।[242] सुप्रसिद्ध विद्वान अमीर खुसरो अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ नूह-सिफर में बोलता है-''दिल्ली और उसके चारों ओर प्रचलित भाषा वही हिन्दवी है जो प्राचीन काल से हिन्द में इस्तेमाल होती है और जो सभी तरह की बातों में उपयोग की जाती है जब ये अरबी लिपि में लिखी जाती है तो उर्दू कहलाती है और जब देवनागरी लिपि में लिखी जाती है, तो हिन्दी कहलाती है तद्युगीन सूफी सन्तों ने पद्मावत, मृगावती, आदि ग्रंथ इसी भाषा में लिखे गये मुसलमान लेखक और कवि अपनी भाषा में अरबी और फारसी भाषा का प्रयोग बहुत अधिक करते थे, जिसके कारण 300 वर्षो के शासनकाल में उर्दू को अलग पहचान मिली, सन् 1718 से लेकर 1748 तक मुगल बादशाह शाह ने उर्दू को अलग संरक्षण दिया, जिसके कारण मुसलमानों ने अपनी मातृभाषा अरबी-फारसी को न मानकर उर्दू को माना, उर्दू में प्राचीन काल से ही गज़ल, और कसीदा लिखने का प्रचार बढ़ा, इसका प्रचलन मीर हसन ने किया ये सर्वश्रेष्ठ मसनवी लेखक थे, ये बहुत अच्छे ढंग से शायरी गाते थे, उर्दू से प्रभावित होकर नवआगुन्तक अंग्रेजों ने उर्दू को अपनी राज्य भाषा बना लिया, तद्युगीन उर्दू शायरी का नमुना इस प्रकार है-

साजन सकारे जायेंगे और नैन मरेंगे रोय।
बिधना ऐसी कीजियो, कि भोर कबहुँ न होय।। शाहबू अली कलन्दर।।[243]

तद्युगीन धर्म प्रचारकों ने बुन्देलखण्ड के लोगों को स्थानीय बुन्देलखण्डी भाषा में इस्लाम धर्म के सिद्धान्त सिखलायें, कि नियमित रूप से पाँच वक्त की नवाज़ अदा करें, ज़कात दे, रमजान के महीने में रोज़ा रखा करे, कुर्आन शरीफ का नियमित पाठ करे, हदीस ग्रंथों के नियमों का अनुपालन करे, यतीमों पर रहम करे, अपने से बड़ों को सलाम करे, इस्लाम धर्म से संबंधित तीज़-त्योहारों पर श्रद्धा रखा करे और माल होने पर हज़ करे और हर वक्त खुदा का नाम जबान पर रखा करे, ऐसे बुरे काम न करे कि आखिरयत में उन्हें जन्नत की जगह दोज़क मिले। काफिरों से कोई दोस्ती न रखे। मज़हब के लिये जेहाद करे।

कुछ पत्र ऐतिहासिक महत्व के है जिनमें उर्दू भाषा का प्रयोग किया गया है, जिनका संबंध बुन्देलखण्ड से है, इन पत्रों का नमूना इस प्रकार है, पत्र-राव साहब के नाम नवाब बाँदा का है।

''छः रजब सम्वत् 1914 पितृतुल्य की सेवा में पुत्रवत् अलीबहादुर का चरण मस्तक टेककर आदाब व तसलीमात। निवेदन है कि 20 रजब (7 मार्च 1858) तक पितृतुल्य की कृपा से

मुकाम बान्दा में सेवक का सब हाल ठीक है। विशेष यह कि पेशवा जी का श्रीमंत राजमान्य राज्यश्री नारायण रावसाहब के नाम का पत्र पितृतुल्य की ओर से आया (उसे मैंने) अहलकार द्वारा उनके पास रवाना कर दिया। उत्तर आने पर सेवा भेजूँगा (मेरा) अन्दाज है कि मेरी प्रार्थना के अनुसार ही (यह पत्र) भेजा गया होगा। राजापुर के घाट के बन्दोबस्त के सम्बन्ध में सेवक को वहाँ की सब कार्यवाहियों का पता है।......................फाल्गुन शुक्ल के आज्ञापत्र में हुक्म सादिर हुआ है कि इधर जो कुछ कार्यवाही होगी वह आपकी सलाह से होगी। किसी बात की चिन्ता न करे। पितृतुल्य के चरण सब पार लगा देंगे। आपने अपनी ओर से जो बन्दोबस्त किया है, वह उसी प्रकार बनाये रखे। इससे भी सेवक की खातिरजमाई हुयी है। इस ओर के सब हाल पितृतुल्य की सेवा में निवेदन करना आवश्यक है। आगे जैसी आज्ञा होती रहेगी उसे सिर पर चढ़ाकर काम करने को तैयार हूँ। सेवा में निवेदन है।''

उपरोक्त पत्र में इस्लाम धर्मालम्बियों की भाषा का पता लगता है और यह पता लगता है कि उस युग में बुन्देलखण्ड में उर्दू भाषा लिखने ओर बोलने का आम रिवाज़ था। एक अन्य पत्र राव साहब के नाम तात्या टोपे का भी उपलब्ध होता है जो इस प्रकार है–

''छः रजब शक 1779 स्वामी की सेवा में निवेदन है कि सेवक रामचन्द्र पाण्डुरंग टोपे का दोनों हाथ जोड़कर साष्टांग नमस्कार। निवेदन है कि छः 23 माह रजब तक मुकाम चरखारी में सेवक का सब हाल ठीक है। विशेष हुजुर का आज्ञापत्र 21 माह को मिला। मजूकर समझा। उनके उत्तर तथा इधर के मजकूर निवेदनः-

1. रानी की ओर से तीन लाख रुपये आये। इस सम्बन्ध में पेशवाजी ने प्रार्थनापत्र में निवेदन किया है।

1. किले वगैरह का बन्दोबस्त सरकार की आज्ञानुसार करूंगा।

1. तोपखाना आदि फालतू-फालतू असवाब राज श्री वामनराव के साथ रवाना कर देता है।

1. राजा रूपसिंह, निरंजन सिंह और महेन्द्र सिंह के साथ रामभाऊ सिमधर वाले को भेजने की पूरी व्यवस्था की गयी है। पेशवाजी के प्रार्थनापत्र में लिखा गया है। रामभाऊ करे जोशी के साथ रवाना कर रहा हूँ।

1. विश्वासराव लक्ष्मण जालौन वाले से चालीस हजार रुपये निकासी लेने का करार हुआ है सरकार ने यह बहुत अच्छा किया।

1. सरकार को सवारी के लिये घोड़ा चाहिये, पर यहाँ घोड़ा नहीं है। प्राप्त करने की तज़वीज कर रहा हूँ।

2. पालक एक हाती अठारायानी इस सम्बन्ध में पेशजी ने प्रार्थना की है जैसी आज्ञा होगी वैसा करूंगा। यह मजकूर लिखा है। आपके सामने आयेगा। अधिक क्या लिखें। यह निवेदन

प्रातःकाल एक प्रहर दिन 244

तद्युगीन बुन्देली भाषा में उर्दू शब्दों का बोलबाला हमेशा रहा तथा उसे काव्य में भी प्रयोग किया जाता रहा। पद्माकर का यह छन्द देखने के काबिल है-

करि धक्का धक्की, ढक्का ढक्की, उक्का मुदित मची।

तत्त दुक्का दुक्की, मुक्का मुक्की, डुक्का डुक्की होन लगी।। (पद्माकर)

(अजीजा ह्प्रकाश)

सामान्य रूप से स्त्री और पुरुष जिनका संबंध इस्लाम धर्म से होता थात्र, वे अपने पत्रों और सन्देशों में भी इस्लाम धर्म को मानते रहने का सन्देश देती थी।

''अब्बा अवै घर में नईया, रसूलिन से कह दइयों कि बा हमीद को ख्याल राखे और हमीद खा समझा दें कि वो पाँच वक्त की नवाज़ अदा करे और कलाम पाक को पाठ रोज करे और जो घर में बड़े बूढ़े आये, उन्हें आदाब और सलाम करे, अगर कोई शरारत करे, हमें लिखियो हम ऊखाँ डांटें।

तुम्माई फूफी

आएशा

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस्लाम का प्रचार भाषा के माध्यम से काफी हुआ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ० मोहम्मद अब्दुल हई अनु० डॉ० खालिद बिन यूसुफ खां एवं अल्लाह इकबाल उस्वार रसूले अकरम (सल्लल्लाहू अलैहि वसल्लम) सं० 1997, प्रका० मिल्लत प्रेस दोहापुर अलीगढ़, यू०पी० पृ० 176.
2. मुस्नदे अहमद, अबुदाउद मिश्कात बयान हज़रज अबुहरैरह, पृ० 178.
3. डॉ० मुहम्मद अब्दुल हुई उस्वार रसूले अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) अनु० डा० खालिद बिन यूसुफ खां डॉ० अब्दुलल्लाह इकबाल सं० 1997, प्रका० मिल्लत प्रेस दोधपुर अलीगढ़।
4. मुवत्ता इमाम मालिक मुआरिफुल हदीस।
5. मआरिफुल हदीस- सूर बल्लैल पार 30
6. मुहम्मद अब्दुल हुई उस्वार रसूले अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) अनु० डॉ० खालिद बिन यूसुफ खां डॉ० अब्दुल्लाह इकबाल सं० 1997, पृ० मिल्लत प्रेस दोधपुर अलीगढ़, पृ० 191.
7. जामे तिर्मिजी, मुआरिफुल, हदीस।
8. मुस्नदे अहमद, इमाम शफाई मुआरिफुल हदीस।
9. तिर्मिजी, नसाई, इब्नेमाज, हयातुल, मुस्लिमीन।
10. मुस्नदे अहमद हयातुलमुस्लमीन।
11. तबरानी, मुआरिफुल हदीस,
12. कुर्आन शरीफ, सूर, बक्र, रूक-5, पार : 1
13. मआरिफुल हदीस रजीन
14. मुस्नदे अहमद, मआरिफुल हदीस,
15. वही-
16. मुस्नदे अहमद
17. जामे तिर्मिजी, मआरिफुल हदीस,
18. मुस्नदे अहमद बैहबकी मआरिफुल हदीस
19. जामे तिर्मिजी, मआरिफुल हदीस
20. बुखारी व मुस्लिम, तर्जुमानुरसुन्नः
21. नसाई मिश्कात
22. अबूदाउद, इब्नेभाजः मिश्कात
23. डॉ० मुहम्मद अब्दुल हई उस्वए रसूले अकरम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) अनु० डॉ० खालिद बिन युसुफ खां अब्दुल्लाह इकबाल सं० 1997, मिल्लत प्रेस दोधपुर अलीगढ़, पृ० 30, 31, 32.

24. फतेह मोहम्मद खां साहब जालन्धरी, (तर्जुमाकार) कुर्आन मजीद प्रका0- महमूद एण्ड कम्पनी मरोल पाइप लाइन बम्बई-59, पृ0 26 (भूमिका)।

25. फतेह मुहम्मद खां साहब जालन्धरी (तर्जुमाकार), कुर्आन मजीद प्रका0 महमूद क0 बम्बई-59, पृ0 30

26. वही- पृ0 31, 32.

27. वही- पृ0 37

28. हदीस शरीफ (तर्जुमाकार)

29. फतेह मोहम्मद खां जालन्धरी, कुर्आन मजीद प्रका0 महमूद कम्पनी बम्बई-59, पृ0 36.

30. वही- पृ0 38.

31. मुहम्मद अब्दुल हई- उस्वए रसूले अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) अनु0 खालिद बिन यूसुफ खां, अब्दुल्लाह इकबाल सं0 1997, प्रका0- मिल्लत प्रेस दोधपुर अलीगढ़, पृ0 101.

32. वही- पृ0 103.

33. खसाइले नबवी- हदीस

34. अलसिराजुल मुनीर- हदीस

35. शमाइले तिर्मिजी नशरुत्तीब- हदीस

36. कुर्आन मजीद पारः 15 रुकूअ- 10

37. फतेह मोहम्मद खां जालन्धरी (तर्जुमाकार) कुर्आन मजीद, प्रका0 महमूद एण्ड कम्पनी बम्बई-59, पृ0 6-7, (भूमिका भाग)

38. वही- पृ0 11

39. इब्न उमर, रजि0- बुखारी व मुस्लिम शरीफ

40. हदीस सही बुखारी

41. फतेह मोहम्मद साहब जालन्धरी (तर्जुमाकार) कुर्आन मजीद- सूरः बकरः-2 आयत सं0 40, 41

42. वही सूरः बकरः 2 स यकूल-2 आयत सं0 174, पृ0 87

43. वही उसूरः आले इमान 89 आयत सं0 3 तिल कर्रुसुल-3, पृ0 75

44. वही 1 सूरः फातिहः 5 आयत सं0-1 से5 तक फातिहः 1 पृ0 1

45. वही सूरः बकरः 87 आयत सं0 1 से 4 तक अलिफ-लाम-भीम, पृ0 3

46. वही सूरः बकर 2 आयत सं0 22, पृ0 7

47. वही सूरः बकरः 2, आयत सं0 107, अलिफ लाम मीम 1, पृ0 23.

48. वही सूरः बकरः 2 अलिफ लाम मीम 1, आयत सं0 43, पृ0 11

49. वही, सूरः बकरः 2 आयत सं0 178, स-यकूल 2, पृ0 39.

50. वही, सूरः बकरः 2, आयत सं० 185, सं० यकूल 2, पृ० 41
51. वही, सूरः बकरः , आयत सं० 197, सं० यकूल 2, पृ० 45
52. वही, सूरः बकरः 2, आयत सं० 215, सं० यकूल 2, पृ० 49.
53. वही, सूरः बकरः 2, आयत सं० 218, सं० यकूल 2 पृ० 51.
54. वही, सूरः बकरः 2, आयत सं० 275, सं० यकूल 2 पृ० 71
55. वही, सूरः बकरः निसा 4 आयत सं० 71 वल मुहसनात पृ० 139
56. वही, सूरः माइद 5, आयत सं० 3, या मुहिब्बुल्लाह 6, पृ० 167.
57. वही, सूरः बकरः 2, आयत सं० 189, सं० यकूल 2, पृ० 43.
58. वही, सूरः बकरः 2 आयत सं० 220, सं० यकूल 2 पृ० 51
59. वही, सूरः बकरः 2, आयत सं० 220-223, सं० यकूल 2 पृ० 53
60. वही, सूरः बकरः 2, आयत सं० 222-228 सं० यकूल 2 पृ० 54 से 59 तक
61. वही, सूरः बकरः 2, आयत सं० 39 सं० यकूल 2, पृ० 59.
62. वही, सूरः बकरः 2, आयत सं० 282-283, तिल फर्कसुल 3, पृ० 73.
63. वही, सूरः निसा-4, आयत सं० 11 लन तनालू 4, पृ० 121
64. वही, सूरः निसा 4 आयत सं० 12, लन तनालू 4 पृ० 123.
65. वही, सूरः निसा 4 आयत सं० 14, पृ० 123
66. वही, सूरः निसा 4 आयत सं० 19 से 22 लन तनालू 4 पृ० 125.
67. वही, सूरः निसा 4 आयत सं० 23 वल मुहसनात- 5, पृ० 127.
68. वही, सूरः निसा 4 आयत सं० 34, पृ० 129.
69. वही, सूरः माइद 5 आयत सं० 89 व इजा समिअ 7 पृ० 191.
70. वही, सूरः बकरः 2 आयत सं० 40-50 अलिफ-लाम-मीम-1, पृ० 11
71. वही, सूरः बकरः आयत सं० 51-90 तक का अलिफ-लाम-मीम-1, पृ० 13 से 20 तक
72. वही, सूरः मरयम 19, आयत सं० 32-48 का-ल-अलम-16, पृ० 487 से 495 तक
73. वही, सूरः बकरः 2 अलिफ-लाम-मीम-1 आयत सं० 102, पृ० 23.
74. वही, सूरः बकरः 2, आयत सं० 123 से 140 तक अलिफ-लाम-मीम-1, पृ० 27 से 30 तक
75. वही, सूरः बर्ना 2, इस्राईल-17, आयत सं० 2 से 6 तक सुब्हानल्लजी-15, पृ० 447.
76. वही, सूरः जुख्रूफ 43 आयत सं० 26 से 32 तक इलैहि युरद्दु पृ० 781.
77. वही, सूरः लुक्मान 31, आयत सं० 11 से 200 तक उत्लु मा उहि-य-21 पृ० 655.
78. वही, सूरः साफ्फात- 37, आयत सं० 37 से 50 तक वा मालि-य-23 पृ० 711
79. वही, सूरः साफ्फात- 37 आयत सं० 62 से 70 तक व मालि-य-23, पृ० 711.
80. वही, सूरः बकरः 2 आयत सं० 30 से 33 तक अलिफ-लाम-मीम-1, पृ० 9

81. वही, आयत सं० 34 से 39 तक
82. वही, सूरः बकरः 2 आयत सं० 34 से 39 तक अलिफ-लाम-मीम-1, पृ० 9.
83. वही, सूरः तक्वीर-81, आयत सं० 1 से 29 अम-य-30, पृ० 943.
84. वही, सूर इन्फितार-82, आयत सं० 1 से 10 अम-य-30, पृ० 943.
85. सहीह मुस्लिम व बुखारी, मआरिफुल हदीस डॉ० मोहम्मद हई-उस्वए रसूल अक्रम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) अनु० डॉ० खालिद बिन यूसुफ खां अब्दुल्लाह इक्बाल-हिस्साए चहारूम (चतुर्थ भाग) बाब-1-प्रका० मिल्लत प्रेस- दोघपुर अलीगढ़ यू०पी० सं० 1997, पृ० 175.
86. अल्हिलिमः तर्जुमानु स्सुन्न वही पृ० 176.
87. हाकि, तर्जुमानस्सुनः, डॉ० मुहम्मद अब्दुल हई, उस्वए रसूले अक्रम (सल्लाहु व सल्लम)
88. मआरिफुल हदीस, बुखारी व मुस्लिम वही सं० 1997.
89. वही
90. मआरिफुल हदीस मुस्नदे अहमद वही पृ० 179.
91. बैहकी की शोबुल ईमान ह्यातुल मुस्लिमीन वही पृ० 187.
92. सहीह मुस्लिम, मआरिफुलं हदीस वही पृ० 218, बाब-2
93. वही
94. अबुदाऊद, इब्ने माजः मआरिफुल! हदीस जामें तिर्मिजी, सुनन अबी दाऊद, मआरिफुल हदीस अलीगढ़ यू०पी० पृ० 223.
95. मआरिफुल हदीस, मुस्नदे अहमद सुनन अबी दाऊद, शोबुल ईमान बैहकी मआरिफुल हदीस वही पृ० 227.
96. (अ) सहीह बुखारी व सहीह मुस्लिम
    (ब) मआरिफुल हदीस, जामें तिर्मिजी
    (स) सहीह बुखारी, सहीह मुस्लिम व मआरिफुल हदीस
    (द) अबू दाऊद, जामे तिर्मिजी मआरिफुल हदीस
97. सहीह बुखारी व मुस्लिम व मआरिफुल हदीद वही पृ० 232-239.
98. बुखारी व मुस्लिम, मदारिजुन्नुबुल्व- डॉ० मोहम्मद हई-उस्वए अक्रम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम/अनु० डॉ० खालिद बिन यूसुफ खां- अब्दुल्लाह इक्बाल-बाब-2, पृ० 241 से 246 तक सं० 1997 प्रका० मिल्लत प्रेस दोधपुर अलीगढ़ यू०पी०।
99. बुखारी व मुस्लिम, हयातुल मुस्लमीन- डॉ० मोहम्मद हई-उस्वए रसूले अक्रम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) अनु० डॉ० खालिद बिन यूसुफ खां, अब्दुल्लाह इक्बाल- हिस्सए चहारुम बाब-3-सं० 1997 प्रका० मिल्लत प्रेस दोधपुर अलीगढ़ यू०पी० पृ० 481.
100. तिर्मिजी, हयातुल्मुस्लिमीन वही पृ० 481.

101. अबूश्शैख फित्तौबीख, अलअदबुलमुफरिद वही पृ0 482.
102. बुखारी व मुस्लिम वही
103. मुस्नदे अहमद अलअदबुल्मुफरिद वही
104. अलअदबुल्मुफारिद, अहमद, अलअदबुमुल्फरिद, हाकिम वही पृ0 483
105. अलअबुलमुफरिद वही पृ0 483.
106. मिश्कात, अबूदाउद, अल्अदबुलूमुफरिद डॉ0 मुहम्मद अब्दुल हई उस्वए रसूले (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) डॉ0 खालिद बिन यूसुफ खां, अब्दुल्लाह इक्बाल, हिस्सए चहारुम बाब-3 पृ0 485 प्रका0 मिल्लत प्रेस दोधपुर अलीगढ़ यू0पी0 1997.
107. नसाई, हयातुल, मुस्लिमीन, वही पृ0 487.
108. सुनन अब दाउद वही
109. अबुदाऊद, हयातुल मुस्लिमीन- वही
110. तबरानी वही पृ0 490
111. अबुदाऊद, नसाई वही पृ0 491.
112. तिर्मिजी वही पृ0 492.
113. अल्अदबुलमुफरिद वही 493
114. अबुदाऊद, मिश्कात, हयातुल मुस्लिमीन- डॉ0 मुहम्मद हई- उस्वए रसूले अक्रम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) डॉ0 खालिद बिन यूसुफ खां, अब्लुल्लाह इक्बाल, हिस्सए चहारुम, बाब-3 मिल्लत प्रेस दोधपुर अलीगढ़ सं0 1997, पृ0 494.
115. तबरानी, मुस्नदे अहमद, वही पृ0 497.
116. बुखारी व मुस्लिम- वही पृ0 498.
117. इब्ने माजः हयातुल मुस्लिमीन, वही पृ0 499.
118. तिर्मिजी, हयातुल मुस्लिमीन, वही पृ0 500
119. तिर्मिजी, इब्नेमाजः अबी सईद वही पृ0 502
120. बुखारी, मुस्लिम- डॉ0 मुहम्मद अब्दुल हई-उस्वए रसूले अक्रम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) अनु0 खालिद बिन यूसुफ खां, अब्दुल्लाह इक्बाल- हिस्सए चहारुम बाब-3 मिल्लत प्रेस दोधुपर अलीगढ़ सं0 1997, पृ0 503.
121. मुस्नदे अहमद बुखारी व मुस्लिम, अबुदाउद, तिर्मिजी- वही पृ0 504.
122. बुखारी व मुस्लिम, मिश्कात- वही पृ0 504.
123. बुखारी व मुस्लिम- वही पृ0 509.
124. मिश्कात बहवालः अहमद व दारमी- वही पृ0 509.
125. तिर्मिजी, नसाई इब्नेमाजः, मिश्कात वही-

126. अल्अदबुल व मुस्लिम- डॉ० मोहम्मद अब्दुल हई, उस्वए रसूले अक्रम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) अनु० डॉ० खालिद बिन यूसुफ खां- अब्दुल्लाह इक्बाल हिस्सए चहारुम बाब-3 पृ० 517 प्रका० मिल्लत प्रेस दोधपुर अलीगढ़ यू०पी० 1997.
127. अल्अद्बुल मुफरिद- वही पृ० 519.
128. अज़अत्तर्गीब व तर्हीब, लिल्लमुन्जिरी, वही पृ० 524.
129. तिर्मिजी वही पृ० 526.
130. अल्अदबुल मफरिद
131. अल्अदबद्बुल्मफरिद- डॉ० मोहम्मद हई-उस्वए रसूले अक्रम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) अनु० डॉ० खालिद बिन यूसुफ खां, अब्दुल्लाह इक्बाल- हिस्सए चहारुम बाब-4 प्रका० मिल्लत प्रेस दोधपुर अलीगढ़ यू०पी० सं० 1997, पृ० 528.
132. नसाई, वही, पृ० 529.
133. हयातुल मुस्लिमीन- वही
134. अबुदाऊद, नसाई इब्नेमाजः वही पृ० 530-531.
135. बुखारी व मुस्लिम, अल्अदबुल्मुफरिद, वही पृ० 532.
136. मिश्कात, वही बाब-4, पृ० 1997
137. अल्कुर्आन वही पृ० 536-537.
138. बुखारी व मुस्लिम तिर्मिजी वही पृ० 538.
139. मिश्कात, बाहिश्ती जेवर वही पृ० 540.
140. अबूदाऊद इब्नेमाजः मिश्कात वही पृ० 541.
141. अबूदाऊद, मिश्कात वही-पृ० 542.
142. तिर्मिजी वही पृ० 545
143. दारे कुतनी, किस्सुनन-वही पृ० 546.
144. तिर्मिजी हयातुल मुस्लिमीन वही पृ० 548.
145. तबरानी, वही पृ० 549.
146. जादुल्मआद, वही, पृ० 565
147. मदारिजुन्नुबुल, वही पृ० 567
148. मौता इमाम मालिक, मआरिफुल हदीस, वही पृ० 578.
149. जामें तिर्मिजी, मआरिफुल हदीस वही- पृ० 581
150. तिर्मिजी, तर्जुमानुस्सुन्न-वही पृ० 584.
151. मुस्लिम, हयातुलमुस्लिमीन-वही पृ० 598.
152. बुखारी व मुस्लिम वही पृ० 599.

153. मदारिजुन्नुबुब्ब-वही पृ0 619.
154. अदुल्मुफरिद, वही, पृ0 626.
155. बुखारी, अलअदबुल महरिद-वही, पृ0 630.
156. मिश्कात- वही पृ0 630-631.
157. मिश्कात, अल्अदबुलमुफरिद-वही पृ0631-632.
158. बुखारी व मुस्लिम-वही पृ0 637.
159. इब्ने माजः-वही पृ0 638.
160. शर्हुल बिदायः बिहिश्ती जेवर-वही पृ0 640.
161. तिर्मिजी, इब्नेमाजः बिहश्ती जेवर-वही पृ0 645.
162. हिस्से हसीन, वही पृ0 649.
163. शमाइले तिर्मिजी-वही पृ0 650
164. जादुलमआद- वही
165. अबुदाऊद-वही पृ0 651.
166. इब्नेसिन्नी, तिर्मिजी, जादुलमआद वही पृ0 251
167. जादुल मआद-वही- पृ0 653.
168. वही
169. वही पृ0 654.
170. तिर्मिजी नसाई इब्ने माजः वही पृ0 660
171. शोबुल ईमान, लिल्बैहकी- वही पृ0 662
172. शर्हुत्तबीर बिहश्ती जेवर-वही पृ0 665
173. सहीह बुखारी, सहीह मुस्लिम, मआरिफुल हदीस-वही-पृ0 666.
174. जादुल मआद-वही पृ0 668.
175. बैहकी, शोबुलईमान, मआरिफुल हदीस-पृ0 669
176. जामे तिर्मिजी इब्नेमाजः मआरिफुल हदीस, वही
177. तिर्मिजी बुखारी- वही- पृ0 670
178. मदारिजुन्नुबुब्ब, जादुलमआद, वही, 671.
179. अ. फतवा हिन्दरीय बिहिश्ती जेवर, अदर्दुरलमुख्तार

   ब. शरह इम्दादियः बिहिश्ती जेवर

   स. शरह हिदायः- डा0 मोहम्मद हई उस्वए रसूले अक्रम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) अनु0 डा0 खालिद बिन युसुफ खॉ-अब्दुल्लाह इक्बाल-हिस्सए चहारम-बाब-8, प्रका0 प्रेस जोधपुर अलीगढ़ यू0पी0 पृ0 673.

180. अ. सुनन अबीदाऊद, मआरिफल हदीस-वही पृ0 673

ब. सुनन अबीदाऊद, मआरिफुल हदीस-वही पृ0- 674-675

स. मआरिफुल हदीस, सहीह बुखारी व सहीह मुस्लिम वही, पृ0 678

181. बिहिश्ती गौहर, बाब-8, वही पृ0 687.

182. राधाकृष्ण बुन्देली - बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक मूल्यांकन पृ0 90 (अप्रकाशित)

183. सतीश चन्द्र-मध्यकालीन भारत- सं0 1998 प्रका0 जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स नई दिल्ली पृ0 सं0 1.2

184. डा0 आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव - दिल्ली सल्तनत- स01989 प्रका0 शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा पृ0-1

185. थामस वार्टर्स- युवानच्यांग की भारत यात्रा-जिल्द-2 पृ0 252 इलियट एण्ड डाउसन जिल्द-1 पृ0 410-411

186. डा0 आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव - दिल्ली सल्तनत- स01989 प्रका0 शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा-3 पृ0-10

187. अ. वही- पृ0 11

ब. बिलादुरी-के.एफ.बी.भाग- 2 पृ0 209-210

188. डा0 आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव -दिल्ली सल्तनत- स01989 प्रका0 शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा पृ0-13.

189. वही- पृ0 15.

190. अलियट एण्ड डाउसन- चचनामा-जिल्द-1 पृ0 172

191. डा0 आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव - दिल्ली सल्तनत- स01989 प्रका0 शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा पृ0-24

192. अलबरनी-इण्डिया (अनु0) साचाऊ पृ0 31.

193. (अ) इलियट एण्ड डाउसन- नुरद्दीन मुहम्मद उफी की जमी-उल-हिकायत-जिल्द-2 पृ0 176-177.

(ब) एच0सी0रे-डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया।

194. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति सं0 1973 प्रका0 शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, पृ0 36.

195. वही

196. अ) सनाय मुहम्मदी- मिडीवल इण्डिया-क्वार्टरली-अलीगढ़ जिल्द-1-भाग-3 पृ0 100-105.

ब) निजामी. रिलीजन एण्ड पॉलिटिक्स आदि पृ0 315-316.

197. बरानी, तारीखे फिरुगशाही, विबलोथिका इण्डिका, पृ० 209-211.

198. इलियट डाउसन, जिल्द-3 पृ० 380-81.

199. महमूद नाज़िम महमूद ऑफ गजनी पृ० 39 (मध्यकालीन भारतीय संस्कृति से उद्धृत)

200. फतुहाते फिरोजशाही, अलीगढ़ देवस्ट, शेख अब्दुर रशीद द्वारा अनुवादित पृ० 40 (मध्यकालीन भारतीय संस्कृति से उद्धृत).

201. फरिश्ता, भाग-1, पृ० 28.

202. राधाकृष्ण बुन्देली - बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक मूल्यांकन (अप्रकाशित) पृ० 98.

203. के०ए० निज़ामी, रिलीजन एण्ड पॉलिटिक्स, पृ० 178-199.

204. फुतुहात-ए-मक्किया-कुर्आन शरीफ, पृ० 813.

205. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति सं० 1973 प्रका० शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, पृ० 85.

206. हुसैन, यूसुफ, गिलिम्पसिज ऑफ मिडीवल इण्डियन कल्चर, पृ० 69.

207. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव- मध्यकालीन भारतीय संस्कृति सं० 1973 प्रका० शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, पृ० 86.

208. वही, पृ० 121.

209. अलबरुनी तारीख-ए-फरिश्ता (अनु०) ब्रिग्स भाग-1, पृ० 17-18.

210. इब्नुल अतहर और निजामुद्दीन-किताब-ए-यामिनी, मेमायर्स ऑफ सुबुक्तगीन पृ० 34-35.

211. डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्थ इण्डिया, भाग-2, पृ० 689.

212. निजामुद्दीन अहमद-तबकात-ए-अकबरी, पृ० 14.

213. एपिग्राफिका इण्डिका, भाग-2, पृ० 237.

214. निजामुद्दीन-तबकाते अकबरी (अनु०) वी०दे० कलकत्ता, पृ० 12.

215. अबू सैय्यद गर्दिजी- किताब जैमुल अकबर-स०एम० नाज़िम, पृ० 79.

216. केशवचन्द्र मिश्र- चन्देल और उनका राजत्वकाल सं० 1974, प्रका० नागरी प्रचारिणी सभा-बनारस, पृ० 93.

217. अबू सैय्यद गर्दिजी- किताब जैमुल अकबर स०एम० नाज़िम, पृ०-8.

218. (अ) वही, पृ० 80.
     (ब) इब्न-उल-अतहर-अल-तारीख-उल कामिल, पृ० 149.

219. केशवचन्द्र मिश्र- चन्देल और उनका राजत्वकाल सं० 1974, प्रका० नागरी प्रचारिणी सभा बनारस, पृ० 81.

220. हसन निज़ामी, ताजुल-सा-अतहर (अनु०) इलियट, भाग-2, पृ० 251.

221. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - दिल्ली सल्तनत सं० 1989, प्रका० शिवलाल अग्रवाल एण्ड

कम्पनी आगरा, पृ० 59.

222. Elliot & Dowson- History of India Vol. II P.P. 720-30

223. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - दिल्ली सल्तनत सं० 1989, प्रका०- शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, पृ० 123.

224. केशवचन्द्र मिश्र- चन्देल और उनका राजत्वकाल सं० 1974, प्रका० बनारस पृ० 210-211.

225. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मुगलकालीन भारत सं० 1981, प्रका० शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, पृ० 38.

226. गोरेलाल तिवारी- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास वि०स० प्रका० काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० 231.

227. राधाकृष्ण बुन्देली - बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन सं० 1989, प्रका०- बुन्देलखण्ड प्रकाशन बांदा यू०पी०, पृ० 119.

228. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास- संवत् 1990, प्रका० नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० 224.

229. वही, पृ० 228.

230. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति सं० 1976 शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, पृ० 66.

231. वही, पृ० 68.

232. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति सं० 1976, प्रका० शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, पृ० 68.

233. वही, पृ० 71.

234. सियारल औलिहा, पृ० 66-67.

235. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति सं० 1976, प्रका०- शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, पृ० 83.

236. के०ए० निज़ामी, स्टडीज इन मिडीवल इण्डियन हिस्ट्री, पृ० 88.

237. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति सं० 1976, प्रका०- शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, पृ० 91.

238. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति सं० 1976, प्रका०- शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, पृ० 95.

239. मॉंसरेट, कमेण्टारियस, पृ० 203.

240. डॉ० अरुणेन्द्र चौरसिया, बुन्देलखण्डी लोकसंगीत में सामाजिक साहित्यिक और सांस्कृतिक तत्व शोध प्रबन्ध सं० 1994, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, पृ० 53-54.

241. वही, पृ० 130-131.

242. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, प्रका०- शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, पृ० 122.

243. श्रीनिवास, बालाजी हर्डीकर- तात्या टोपे सं० 1985, प्रका०- नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, पृ० 239 से 242 तक।

तृतीय अध्याय

- इस्लाम के आगमन के पूर्व बुन्देलखण्ड की राजनीतिक व्यवस्था।
- बुन्देलखण्ड में महमूद गजनवी का आक्रमण एवं तद्‌युगीन राजनीतिक व्यवस्था।
- बुन्देलखण्ड में सुल्तानों का आधिपत्य एवं उनका राजनीतिक प्रभाव।
    - सल्तनल काल में बुन्देलखण्ड की राजनीतिक स्थिति।
    - सल्तनत काल में बुन्देलखण्ड की सामाजिक व्यवस्था।
    - सल्तनत काल में बुन्देलखण्ड की आर्थिक स्थिति।
- मुगल शासकों का बुन्देलखण्ड में प्रभाव।
    - मुगल शासनकाल में बुन्देलखण्ड की राजनीतिक व्यवस्था।
    - मुगल शासनकाल में बुन्देलखण्ड की सामाजिक व्यवस्था।
    - मुगल शासनकाल में बुन्देलखण्ड की आर्थिक स्थिति।
- मुगलकाल की समाप्ति के पश्चात बुन्देलखण्ड की स्थिति।

बुन्देलखण्ड का राजनीतिक परिवेश

1- इस्लाम के आगमन के पूर्व बुन्देलखण्ड की राजनैतिक व्यवस्था-

बुन्देलखण्ड का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है, प्राचीनकाल में जब सभ्यता का विकास नहीं हुआ था, उस समय भी यहाँ मानव बस्तियाँ थी। यहाँ के मौलिक इतिहास के संबंध में सुप्रसिद्ध इतिहासकार आर०के०मुखर्जी का यह कथन सत्य प्रतीत होता है -

"The facts of local history underthed by specilized work on the spot, and study at its various sources, will give flesh and blood, colour and form to the dry bones, the dead skeleton of a mean and meagre general history."[1]

बुन्देलखण्ड के दक्षिण में नर्मदा नदी के तट पर जबलपुर जनपद के ऊपरी और निचले भाग में कुछ इतिहासकारों ने खोज की थी, इसी प्रकार बांदा जनपद में कॉकवर्ण जैसे विद्वानों ने सर्वेक्षण किया था। यहाँ पर पाषाण-युगीन 167 नमूने प्राप्त हुये हैं, ये नमूने बलुये पत्थर से निर्मित है। इनका उपयोग तद्‌युगीन व्यक्ति शिकार करने, मांस और फल काटने के लिये किया करते थे। ये अस्त्र-शस्त्र बांदा, हमीरपुर, झांसी, सागर, दमोह, पन्ना और जबलपुर में उपलब्ध्‌ हुये हैं। बांदा जनपद के ग्राम कौहारी जो बागे और केन नदी के समीप है, वहाँ अनेक पुरा-पाषाण युगीन अस्त्र-शस्त्र उपलब्ध हुये। इसी प्रकार जबलपुर में भेंडाघाट और पन्ना जनपद में पाण्डव फॉल के समीप इनकी उपलब्धि हुयी।[2]

बांदा गजेटियर के अनुसार पाषाण युग में यहाँ के लोग प्रस्तर अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग करते थे, जिससे तद्‌युगीन सभ्यता का पता लगता है।[3] सुप्रसिद्ध इतिहासकार के०डी०बाजपेयी ने भी पुरा-पाषाण युगीन सभ्यता के सन्दर्भ में पर्याप्त प्रकाश डाला है।[4] जालौन जिले में भी आदिम जातियों के पास से पुरा-पाषाण युगीन अस्त्र-शस्त्र उपलब्ध हुये, जिनका प्रयोग कोल-भील जाति के लोग किया करते थे। आर्यो के आगमन के पूर्व इन्हीं जातियों का अस्तित्व जालौन जनपद में था।[5] सुप्रसिद्ध इतिहासकार ड्रेक ब्रोकमैन के अनुसार-सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड विन्ध्यपर्वत माला से आवृत्त था, इसलिये स्वाभाविक रूप से पाषाण युग से ही यहाँ सभ्यता का विकास प्रारम्भ हो गया था।[6] हमीरपुर जनपद में सर्वेक्षण के दौरान पाषाण-युगीन कुल्हाड़ियाँ, हथौड़े और कई आकृतियों के अस्त्र-शस्त्र उपलब्ध हुये हैं, इसमें लहचौरा में जो अस्त्र-शस्त्र उपलब्ध हुये हैं, वे उत्तर-पाषाण युग के प्रतीत होते हैं।[7] सुप्रसिद्ध इतिहासकार ए० घोष ने भी यह स्वीकार किया है ''कि जो अस्त्र-शस्त्र नकरा नामक ग्राम में उपलब्ध हुये हैं, उससे यह प्रतीत होता है कि यह क्षेत्र घनघोर जंगलों से आवृत्त था, जहाँ जंगली जातियां गौड़, कोल, काछी और कुर्मी निवास किया करते थे, इन अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग वे परम्परागत तरीके से करते थे।[8]

झांसी और ललितपुर गजेटियर के अनुसार यहाँ भी पुरा-पाषाण-युगीन सभ्यता के अवशेष मिले हैं। प्राचीन काल में यहाँ कोल, भील, सहरियां, गौंड, भर, बांगड़ और खंगार जातियों के लोग

निवास करते थे।[9] अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थों में यह जानकारी उपलब्ध होती है कि ललितपुर क्षेत्र के कुछ हिस्सों में पाषाण-युगीन अस्त्र-शस्त्र उपलब्ध हुये हैं। इन अस्त्र-शस्त्रों में हस्ता कुठार तथा अन्य प्रकार के औजार है।[10]

सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० कन्हैयालाल अग्रवाल के अनुसार-''सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पुरा-पाषाण युग और उत्तर-पाषाण युग के अस्त्र-शस्त्र काफी मात्रा में उपलब्ध हुये हैं, इनकी सर्वाधिक उपलब्धि बांदा जनपद में हुई। लेखक के अनुसार-''पूर्व पाषाण काल के अस्त्र बांदा जिला के बरियारी ग्राम से प्राप्त हुये हैं। यह स्थान यमुना की सहायक केन नदी के दक्षिणी तट पर स्थित है। इस काल के शल्क निशान नरैनी (बांदा) से लगभग आधा किलोमीटर उत्तर की ओर स्थित रामचन्द्र पहाड़ी से प्राप्त हुये हैं।[12] इनमें हस्त-कुठार, पिबल-टूल्स और अवशिष्ट अनुपयुक्त प्रस्तरांश से बनाये गये गंडासे भी सम्मिलित हैं। ललितपुर, देवगढ़, सधुआ (पन्ना), इतरपछार (रीवा), बरधी (सीधी), चन्द्रावली और शिकारगंज (शहडोल) से भी कुछ उपकरण प्राप्त हुये हैं।[13] कुछ प्राचीन पाषाणयुगीन उपकरण एरन (सागर) के समीप बीना नदी की घाटी से प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी द्वारा प्रकाश में लाये गये। 1967-68 ई० में कारलाइल को पुराने रीवा राज्य में लघु-पाषाण उपकरण मिले थे।[14] पूर्व पाषाणकाल में मानव जीवन तत्कालीन जटिल परिस्थितियों पर निर्भर था। उन्होंने वन्य-पशुओं से रक्षा, आखेट एवं दैनिक उपयोग हेतु पाषाण के विभिन्न उपकरणों का निर्माण किया।[15]

शैलचित्र

उत्तर-पाषाण युग में बुन्देलखण्ड के निवासी गुफाओं में रहने लगे। इस युग के व्यक्तियों ने अपने निवास स्थलों को विविध प्रकार के प्राकृतिक दृश्यों और पशु-पक्षियों का चित्रण करके सजाया था। इस युग के अनेक शैल-चित्र बांदा जनपद के शैलाश्रयों में उपलब्ध होते हैं। इन शैलाश्रयों की खोज सुप्रसिद्ध विद्वान सिल्वेराड़ ने की थी। ये शैलचित्र-सरहट, मलवा, कुरियाकुण्ड, अमवा, उलटन और बरगढ़ में उपलब्ध हुए हैं। इन शैलचित्रों में अश्वारोहियों का समूह, हाथी, सांभर का आखेट करता हुआ युवक, धनुर्धर, अश्वारोही, पशु सहित मानवाकृतियाँ, कृषि सभ्यता की उन्नत अवस्था के चित्र , बारहसिंगों आदि का अंकन उपलब्ध है।[16] सुप्रसिद्ध विद्वान काकवर्ण ने चित्रकूट के समीप हनुमानधारा में शैलचित्र होने का उल्लेख किया है, कुछ शैल चित्र मार्कुण्डी और मझावन में भी है। इसी प्रकार के शैल चित्र पन्ना जनपद में बागे नदी के समीप बृजपुर में भी है तथा उसी जनपद के करपटिया नामक ग्राम में चालीस शैलाश्रय है, जहाँ इसी प्रकार के शैल चित्र है। कुछ शैल चित्र बिजावर तहसील के देवरा ग्राम में भी है। सागर जनपद में कटनी सागर रेलवे लाइन में निधौरा रेलवे स्टेशन से 6 किमी० दूर आबचन्द्र ग्राम में शैल-चित्र उपलब्ध हुये हैं, इनका अन्वेषण के०डी० बाजपेयी ने किया था। यहाँ के मुख्य चित्रों में शिकार, जानवरों की सवारी, युद्ध, नृत्य, संगीत तथा घरेलू जीवन सम्बन्धी दृश्य हैं।[17]

बुन्देलखण्ड का प्रारम्भिक इतिहास वैदिक युग से उपलब्ध होता है, तथा इसे निम्न रूपों में विभाजित करके देखा जा सकता है :-

वैदिक युग - वैदिक युग में यह क्षेत्र चेदि जनपद में था। यहां का पहला नरेश कसु था। यह बड़ा दानवीर था, उसकी दानवीरता का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। भगवान राम के युग में बुन्देलखण्ड का कुछ भाग कौशल राज्य में था। कुत्ते के साथ न्याय करते हुये भगवान श्रीरामचन्द्र ने कालिंजर क्षेत्र का महंत एक भरवंशी ब्राम्हण को बना दिया -

प्रतिज्ञातं त्वया वीर किं करोमिति विश्रुतम्।
प्रयच्छ ब्राम्हणस्यास्य कौलपत्यं नराधिप।।38।।
कालंजरे महाराज कौलपत्यं प्रदीयताम्।[18]

महाभारत युग में यह क्षेत्र चेदि राजाओं के आधीन था, वहाँ के नरेश उपरिचर बसु थे,

न च पिता विभन्यन्ते पुत्रा गुरुहति रताः।
मुज्जते धुरि नो गाश्र कृशान् संधुक्षयन्ति च।।11।।
सर्वे वर्णाः स्वधर्मस्थाः सदा चेदिषु मानद।
न तेडस्त्यविदितं किंचित् त्रिषुलोकेषु यद् भवेत्।12।[19]

भगवान श्रीकृष्ण के युग में यहाँ राजा दमघोष था, जिसका विवाह कृष्ण की बुआ के साथ हुआ था। उसी वंश में शिशुपाल पैदा हुआ, जिसका वध श्रीकृष्ण ने किया। करुष और दशार्ण बुन्देलखण्ड के ही उपप्रदेश थे, यहाँ के राजाओं ने महाभारत के युद्ध में भाग लिया था। गोरेलाल तिवारी के अनुसार-बुन्देलखण्ड का प्रथम शासक वसु था, जिसके दूसरे पुत्र मत्स्य ने विराट का मत्स्य राज्य स्थापित किया था। चेदिराज्य बुन्देलखण्ड के पूर्वी भाग में था, वर्तमान दमोह जिला और उसके उत्तर के रजवाड़ों का प्रान्त महाभारत के समय में चेदि देश में था। इसका विस्तार पश्चिम में बेतवा और उत्तर में यमुना नदी तक था। दशार्ण देश भी बुन्देलखण्ड का एक भाग था, इसके अर्न्तगत सागर जिले का कुछ भाग और विदिशा का क्षेत्र शामिल था, विदिशा इसकी राजधानी थी तथा दशार्ण नदी के प्रवाहित होने के कारण, इस क्षेत्र का नाम ''दशार्ण'' पड़ा।[20]

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में आर्यो और अनार्यो दोनों का निवास था तथा वैदिक काल में आर्यो व अनार्यो में परस्पर वैवाहिक संम्बन्ध स्थापित होते थे। इस सन्दर्भ में पं० गोरेलाल तिवारी का यह कथन ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है-''शांतनु का विवाह एक मछली मारने वाले धीमर की लड़की के साथ हुआ था। यह धीमर निषाद था। मत्स्य देश के राजा विराट की उत्पत्ति भी इसी प्रकार हुयी थी।''[21] आर्यो के समय में वर्ण व्यवस्था प्रारम्भ हो गयी थी तथा अनेक उपजातियाँ जन्म लेने लगीं। महाभारतकाल के पश्चात् जातीय बन्धन कठोर हो गये और बहुविवाह प्रथा प्रारम्भ हो गयी। यहाँ पर राजतन्त्र की सत्ता स्थापित थी तथा सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में हिरण्यवर्मा, सुधर्मा, शिशुपाल इत्यादि राजाओं का राज्य था। इस समय चेदि और दशार्ण एकसत्तामक राज्य थे,

इनमें राजघराने का ज्येष्ठ पुत्र राजा बनाया जाता था। राजा अपना शासन चलाने के लिये आठ मंत्रियों की राज्यसभा बनाता था।

अष्टानां मन्त्रिणां मध्ये मन्त्रं राजावेधारयेत्।[22]

लेकिन कहीं-कहीं 18 मंत्रियों का उल्लेख मिलता है। पं० गोरेलाल तिवारी के अनुसार ये मंत्री निम्नलिखित थे-(1)प्रधानमंत्री (2) पुरोहित (3) युवराज (4) चमूपति (5) द्वारपाल (6) अतखेशक (7) बंदीगृहों का अध्यक्ष (8)कोषाध्यक्ष (9)व्ययनिरीक्षक (10)प्रदेष्टा (11)धर्माघ्यक्ष (12)नगर का अध यक्ष (13)राज्यसंस्था को आवश्यक समान ला देने वाला (14)सभाध्यक्ष (न्याय विभाग का प्रधान कर्मचारी) (15)दंडधारी (16)दुर्गरक्षक (17)सीमारक्षक (18)जंगलों का रक्षक।[23]

ग्रामों का शासन ग्राम अधिपति किया करते थे, इन ग्राम अधिपतियों को जंगल की आमदनी वेतन के रूप में मिलती थी। राज्य का खर्च चलाने के लिये लगान और व्यवसाय कर से होने वाली आमदनी का सहारा लिया जाता था। लगान, उपज के अनुसार 1/6 भाग तथा 1/10 भाग तक सीमित था। जो व्यक्ति जानवरों ओर सोने का व्यवसाय करते थे, उन्हें आय का 50वाँ भाग राजा को कर के रूप में देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त माल की कीमत पर भी कर लगता था।

विक्रयं क्रयभध्वानं भक्तं च सपरिच्छदम्।
योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य वणिजां कारयेत कान्।।[24]
पशूनामधिपच्चाशद्विरण्यस्य तथैव च।
धान्यस्य दशमं भागं दास्यामः कोशवर्धनम् ।।[25]

इस समय भूमि का स्वामी किसान होता था तथा किसानों को अधिकार था कि वह स्वेच्छा से अपनी जमीन का क्रय-विक्रय करे। इस समय स्वर्ण सिक्कों का प्रचलन था, जिन्हें निष्क कहा जाता है।

'तस्मात्क्रीत्वा मही दद्यात्स्वपामपि विचक्षणः।'[26]

इस समय शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता था। प्रत्येक राज्य में परिषदें थी, जो शिक्षा का कार्य देखा करती थी।

महाभारत काल से लेकर मौर्य युग के पहले तक का कोई इतिहास, जिसका सम्बन्ध बुन्देलखण्ड से है, उपलब्ध नहीं होता है। जो उपलब्ध होता है, उसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है।

मौर्य युग के पूर्व की व्यवस्था-

बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र महात्मा बुद्ध के समय चेदि जनपद में था, जो सोलह महाजनपदों में से एक था। चेतियजातक ग्रन्थ में चैद्य राजाओं को महासम्मत और मानधाता का वंशज कहा गया है। एक जातक कथा में उल्लेख है कि इस वंश के शासक उपचर के पाँच पुत्र थे, जिन्होंने हत्थिपुर, अस्सपुर, सिंहपुर, उत्तर पंचाल और दद्दपुर नगर बसायें।[27]

मौर्य युग के पूर्व इस क्षेत्र में मगध साम्राज्य का अस्तित्व स्थापित हो गया, इस वंश के नरेश

नंद ने अनेक महाजनपदों को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड उनके राज्य के आधीन था।

मौर्य युग में बुन्देलखण्ड का अस्तित्व-

विक्रम संवत के 300 वर्ष पहले लगभग 350 ई0 पू0 में मौर्यो का साम्राज्य स्थापित हो गया था। जब सिकन्दर ने भारत वर्ष पर आक्रमण किया, उस समय भारत वर्ष में अनेक गणराज्य थे जो सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् समाप्त हो गये थे। इसके बाद भारत वर्ष का सबसे शक्तिशाली सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य था, जो नंद वंश के शासक को मारकर राजा बना था। इसका मंत्री कौटिल्य बहुत बुद्धिमान था। इस समय सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र मौर्य शासन मे शामिल हो गया। मौर्य शासन चार भागों में विभक्त था, प्रत्येक भाग की अलग राजधानी थी। बुन्देलखण्ड क्षेत्र उज्जैन के शासक बिन्दुसार के पुत्र अशोक के आधीन था। वह विक्रम संवत् 215 में मौर्य साम्राज्य का उत्तराधिकारी बना। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में तद्‌युगीन राज्य व्यवस्था का सविस्तार वर्णन मिलता है। इस समय का सम्पूर्ण वाणिज्य और व्यवसाय राज्य के नियन्त्रण मे था। प्रत्येक गांव और बड़े स्थानों में न्यायालय थे, राज्य में जन्म और मृत्यु का लेखा-जोखा रखा जाता था। शिक्षा व्यवस्था अच्छी थी तथा उच्च शिक्षा काशी और तक्षशिला मे दी जाती थी। अशोक ने कई स्थानों पर धर्म प्रचार के लिए शिलालेख खुदवायें। ये शिलालेख बुन्देलखण्ड के नागौद और जबलपुर में उपलब्ध हुए। सम्भवतः एरण बुन्देलखण्ड की राजधानी थी। ब्रहद्रथ के वध के पश्चात् मौर्य वंश का अंत हो गया।

बुन्देलखण्ड में शुंग वंश का प्रभाव-

वृहद्रथ का सेनापति पुष्यमित्र शुंग मगध का शासक बना। उसका साम्राज्य दक्षिण में नर्मदा नदी तक विस्तृत था, किन्तु उसकी राजधानी पाटिलपुत्र ही रही। इस समय वह बुन्देलखण्ड का शासन अपने पुत्र अग्निमित्र से चलवाता था, जो विदिशा का शासक था। इस वंश का अंतिम शासक देवभूति था, जिसे उसके अमात्य वासुदेश ने मार डाला था। शुंगवंशीय शासकों के कुछ अभिलेख बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होते है।[28] इसके पश्चात् कण्व वंशीय शासको का अस्तित्व रहा, जिनका प्रभाव शुंगो के पतन के पश्चात् 75 ई0 पू0 से प्रारम्भ हुआ। उनका शासनकाल घटना विहीन रहा। दक्षिण के सातवाहनों ने कण्वों का उन्मूलन कर आकर (पूर्वी भालवा) और अवन्ति (पश्चिम मालवा) तक अपनी प्रभुसत्ता का विस्तार किया।[29]

बुन्देलखण्ड में मित्रवंशीय शासकों का प्रभाव-

ई0पू0 द्वितीय शताब्दी के मध्य बुन्देलखण्ड के कुछ भाग में मित्रवंशीय शासकों का अधिकार रहा, इनकी राजधानी कौशाम्बी थी। इनके नाम बृह अथवा बृहस्पति, ब्रह्ममित्र, वरुणमित्र, गोमित्र, शिवमित्र, जेठमित्र, देवमित्र आदि है। कौशाम्बी से ज्ञात कुछ अन्य शासकों के नाम शुंगवर्मा, बवघोष, अश्वघोष, ज्येष्ठगुप्त, पर्वत, इन्द्रदेव, विष्णुदेव, धनदेव आदि है। कौशाम्बी से करीब 25 शासकों के नाम अभी तक प्रकाश में आये है।[30] इस वंश के कुछ नरेशों का उल्लेख भरहुत स्तूप के अभिलेखों

में मिलता है। इन अभिलेखों में धनभूति के पिता गौप्तीपुत्र (प्राकृत आगरजु), पितामह गार्गीपुत्र विश्वदेव पुत्र कुमार व्याधपाल (प्राकृत वाधपाल) के नाम मिलते है। भरहुत स्तूप के पूर्वी तोरण पर "वाच्छिपुत धनभूति" का अभिलेख है।"[31]

सुप्रसिद्ध के०डी० वाजपेयी को "अगरजुस" लेख युक्त दो सिक्के भरहुत से प्राप्त हुए है। इन सिक्कों के साथ अग्निमित्र और वृहस्पतिमित्र के सिक्के भी मिले है। अतः उनका यह अनुमान समीचीन प्रतीत होता है, कि अगरजु आदि शासक कौशाम्बी के शुंगों की आधीनता में शासन कर रहे थे और उनका राज्य भरहुत तक विस्तृत था।[32] किन्तु अभी तक यह निश्चित नहीं हुआ कि भरहुत कौशाम्बी के आधीन था अथवा मथुरा के। भरहुत के अभिलेख में विदिशा के शासक रेवतीमित्र और वेणिमित्र के नाम उपलब्ध होते है।[33]

बुन्देलखण्ड में मद्यवंशीय शासकों का अस्तित्व-

बुन्देलखण्ड में 130 ई० पू० में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना करने वाले मद्यवंशीय शासकों का व्यापक प्रभाव पड़ा। उनके सन्दर्भ में अनेक अभिलेख बाधौगढ़, गिंजा पहाड़ी, कौशाम्बी तथा मीटा से उपलब्ध हुए।[34] इस वंश का शुभारम्भ कौत्सीपुत्र प्रौष्ठश्री से हुआ। इस वंश का तृतीय शासक भद्र मद्य था, इसकी समतुलना बान्धवगढ़ अभिलेख में वर्णित भद्रदेव से की गयी। इसके राज्य में बुन्देलखण्ड का अनेक भाग शामिल था। डा० कन्हैयालाल अग्रवाल के अनुसार- मद्य राजवंश में शिवमद्य, शतमद्य, भीम वर्मा, विजयमद्य, जयमद्य आदि अन्य शासक हुए। वसिष्ठीपुत्र विचित्रसेन, वासिष्ठीपुत्र शिवघोष, स्वामिदत्त, नव, नविक और धनदेव के नाम भी अनेक अभिलेखों तथा सिक्कों पर मिले है। इन परवर्ती नामों में से जिनके अन्त में मद्य शब्द नहीं है, वे राजवंशों के प्रतीत होते।[35]

बुन्देलखण्ड में बोधिवंश का अस्तित्व -

सागर विश्वविद्यालय ने जबलपुर में त्रिपुरी के नज़दीक उत्खनन कार्य कराया था। इस उत्खनन कार्य में अनेक मुद्राये उपलब्ध हुयी है, ये मुद्रायें मिट्टी की है। इनमें बोधिवंश के शासकों का नाम मिलता है। इन शासकों में शिवबोधि, वीरबोधि और चंद्रबोधि प्रमुख है। इनका अस्तित्व बुन्देलखण्ड में 200 ई० से लेकर 300 ई० तक रहा तथा इनका शासन जबलपुर के समीपवर्ती क्षेत्रो में था।[36]

नागवंश-

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में नागों का अस्तित्व, वाकाटकों और गुप्त शासन के पूर्व था। इनके शासन का मुख्य केन्द्र एरण और विदिशा था तथा उत्तर में इनका राज्य पद्यमावती, कांतिपुरी तथा मथुरा तक विस्तृत था। इस वंश के अनेक सिक्के उत्खनन में विदिशा और एरण में उपलब्ध हुए।[37] नागवंशों के सन्दर्भ में विस्तृत वर्णन विष्णुपुराण में उपलब्ध होता है। उसमें लिखा है, कि नागवंश में नौ राजाओं ने राज्य किया, इनका राज्य पद्यमावती और कान्तिपुरी में था। यह क्षेत्र ग्वालियर के सन्निकट हैं। इस वंश के राजाओं की वंशावली इस प्रकार है-

1. भीम नाग	विक्रम संवत् 57
2. रवा (खर्जुर नाग)	विक्रम संवत् 82
3. वा (वर्म्मा या वत्स)	विक्रम संवत् 107
4. स्कन्द नाग	विक्रम संवत् 132
5. बृहस्पति नाग	विक्रम संवत् 187
6. गणपति नाग	विक्रम संवत् 202
7. व्याघ्र नाग	विक्रम संवत् 227
8. देवनाग	विक्रम संवत् 277 [37]

इस वंश का अधोपतन गणपति नाग के समय में हुआ, इसे समुद्रगुप्त ने परास्त किया था। इसका उल्लेख इलाहाबाद के विजयस्तम्भ मे है। रूद्रदेव-मतिल-नागदत्त-चन्द्रवर्म्म गुप्त-गणपतिनाग-नागसेनाच्युत-नन्दि-बलवर्म्मा-द्यनेकार्य्यावर्त्तराज-प्रसभोद्वरणोदृत-प्रभाव-महतः परिचारकीकृत-सर्व्वाट-विक-राजस्य।[38] नागों के सन्दर्भ में जानकारी देने के लिए 30 मुद्रायें पवाया में उपलब्ध हुयी तथा एक अभिलेख भी उपलब्ध हुआ है। उपलब्ध सिक्को में 20 सिक्के गणेन्द्र गणपति के, 6 सिक्के देवेन्द्र के और एक स्कन्द नाग का है।

बुन्देलखण्ड मे शकों आधिपत्य-

बुन्देलखण्ड में तीसरी और चौथी शताब्दी में शकों की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गयी तथा इनका राज्य सांची और एरण के पास रहा। इस सन्दर्भ में श्रीधर वर्मा नामक शक राजा का अभिलेख तथा अनेक क्षत्रपों की मुद्रायें उपलब्ध हुयी तथा इनका अस्तित्व चन्द्रगुप्त द्वितीय के युग तक रहा।[39] शकों ने सर्वप्रथम पंजाब में अपना अधिकार किया, उसके पश्चात् ये लोग उज्जैन, काठियांवाड़ और महाराष्ट्र की ओर फैले। इनके प्रान्तीय शासक क्षत्रप और महाक्षत्रप कहलाते थे। इनके जो सिक्के यहां उपलब्ध है, उनमे एक ओर यवन भाषा और दूसरी ओर ब्राह्मणी अक्षरों में शासकों के नाम लिखे है। शकों ने अपना राज्य मालवा में स्थापित किया। इस शासन की कुछ मूर्तियाँ जबलपुर के सन्निकट भेड़ाघाट में उपलब्ध हुयी है। इन मूर्तियों की स्थापना भूमक की पुत्री ने की थी। इससे यह सिध्द होता है कि शकों का शासन जबलपुर तक था। बुन्देलखण्ड में शकों का शासन कितने वर्ष रहा, यह कहना कठिन है। यह पता लगता है कि रुद्रदमन यहाँ का शासक था, विक्रम संवत् 358 तक इसका राज्य यहाँ रहा।

बुन्देलखण्ड में कुषाणों का शासन-

कुषाणवंशीय शासकों का राज्य सबसे पहले काबुल में स्थापित हुआ। धीरे-धीरे इस साम्राज्य का विस्तार हुआ और बुन्देलखण्ड का कुछ भाग, जो मालवा के आस-पास था, इनके राज्य में शामिल हो गया। इस वंश के तीन नरेशों के नाम राजतरंगिणी में उपलब्ध होते है। इन नरेशों के नाम कनिष्क, हविष्क और वासुदेव थे। ये तुरुष्क वंश के थे। इस वंश के जो सिक्के उपलब्ध हुए है, उससे प्रतीत

होता है, कि इसका दूसरा नरेश शैव उपासक था। इस वंश का प्रतापी नरेश कनिष्क था, जो बौद्ध धर्म का अनुयायी था। कनिष्क की मृत्यु के पश्चात् बुन्देलखण्ड में कुषाणवंश का अस्तित्व समाप्त हो गया।

बुन्देलखण्ड के वाकाटकों का अस्तित्व-

बुन्देलखण्ड में वाकटकों का अस्तित्व शकों के शासन के समय था। डा० जायसवाल के अनुसार- ये लोग बुन्देलखण्ड के मूल निवासी थे, चिरगाँव से 9 किमी० पूर्व में बाघाट नामक स्थान के रूप में अभी भी स्थल है, जो इनकी मौलिक जन्म स्थली थी।[40] प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी ने भी इसकी पुष्टि की है।[41] किन्तु सुप्रसिद्ध विद्वान मिराशी ने इनका उद्‌गम स्थल मध्य दक्षिण में माना है। इस वंश का शक्तिशाली नरेश विन्ध्यशक्ति था, जिसने अपने राज्य का विस्तार किया। इसके बाद पृथ्वीषेण को इस वंश का शक्तिशाली नरेश माना जा सकता है, इसका प्रभाव बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड में रहा होगा।

बुन्देलखण्ड में गुप्तों का प्रभाव-

इस परिक्षेत्र में गुप्तों का प्रभाव सन् 319 ई० के पश्चात् पड़ा। इस वंश का ऐतिहासिक पुरुष श्री गुप्त था, उसका उत्तराधिकारी घटोत्कच गुप्त, उसके बाद चन्द्रगुप्त प्रथम राजा हुआ। समुद्रगुप्त के शासनकाल में बुन्देलखण्ड का कुछ भाग उसके राज्य में शामिल हो गया।[42] उसने गणपति नाग, नागसेन और नंदिनाग को युद्ध में हराया। समुद्र गुप्त के पश्चात् पश्चिमी शक क्षत्रप् प्रभावशाली हुए, जिन्होंने समुद्रगुप्त के ज्येष्ठपुत्र रामगुप्त को पराजित किया और उसकी भार्या गुरुदेवी की मांग की किन्तु चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शकों के शासन को समाप्त कर दिया और एरण में अपनी सत्ता कायम रखी। इनका शासन बुन्देलखण्ड में सन् 485 तक रहा, उसके बाद यह समाप्त हुआ।

बुन्देलखण्ड में हुणो का प्रभाव-

गुप्तयुग में हुणो का प्रभाव बुन्देलखण्ड में बढ़ा। इनके प्रमुख शासक तोरमाण, मिहिरकुल हुये है। ग्वालियर में उपलब्ध शिला लेखो में इनके नाम मिलते है। इनका अस्तित्व विं० सं० 589 में था। हुणो को तद्‌युगीन शासक यशोधर्मन ने परास्थ किया था। यशोधर्मन का पिता विष्णुधर्मन था, हुणो का अस्तित्व बुन्देलखण्ड में केवल 40 वर्षो तक रहा।[43]

बुन्देलखण्ड में परिव्राजको का प्रभाव-

उचेहरा के समीप खोह नामक स्थान में परिव्राजक महाराज हस्तिन और उसके पुत्र शंखशोभा के कई तामपत्र उपलब्ध हुये है, जिससे यह सिद्ध होता है कि परिव्राजक गुप्तो के माण्डलिक शासक थे। उपलब्ध ताम्रपत्रो में उनकी वंशावली इस प्रकार दी है-'' सुशर्मा, देवाढ्‌य, प्रभंजन, दमोदर हस्तिन और शंखशोभा''। परिव्राजक महाराज हस्तिन का समय वि० सं० 532 और शंखशोभा का वि० सं० 575 है। संभवतः महाराज सुशर्मा विं०सं० 432 में मौजूद थे।[44]

जिस समय राजा हस्ती, डाहल (बुन्देलखण्ड) में शासन कर रहा था, उस समय कांलिजर

मण्डल में हरिगुप्त का शासन था, इसलिये परिव्राजको का समय 5वीं शताब्दी का अन्तिम चरण माना जा सकता है।[45] इछावर में उपलब्ध कांस्य प्रतिमा लेख में हरिराज का नाम आया है, इसकी समतुलना हरिगुप्त से की जा सकती है।

बुन्देलखण्ड में उच्चकल्पवंशीय शासको का प्रभाव-

प्राचीनकाल में उचेहरा भी एक राजनीतिक शासन केन्द्र था, इस स्थल में अनेक अभिलेख उपलब्ध हुये है, जिनमें उच्चकल्पवंशीय शासको का उल्लेख मिलता है-

ओधदेव

कुमार देव

जयस्वामी

व्याघ्र

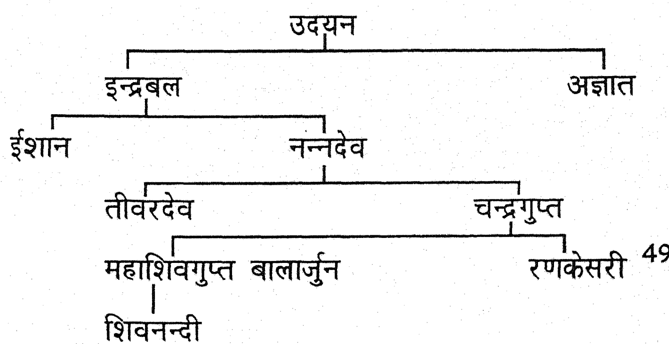
जयनाथ (ज्ञात तिथियाँ 174, 177, 182 गु0 सं0)

सर्वनाथ (,, ,, 193, 197, 214, गु0 स0)[46]

पन्ना जिले की गुनौर तहसील में एक अभिलेख उपलब्ध हुआ है, जिसमें यह वर्णन है कि व्याघ्रदेव नामक किसी नरेश ने पृथ्वीषेय के राजत्वकाल में अपने माता-पिता की पुण्य वृद्धि हेतु एक स्तम्भ का निर्माण कराया।[48] इससे उच्च कल्पवंश के सन्दर्भ में जानकारी मिलती है चूंकि व्याघ्रदेव उच्च कल्प वंश का था, उसके समय के दो पत्र भी उपलब्ध हुए है। जिसमें सर्वनाथ का अस्तित्व 512 से लेकर 533 ई0 तक स्वीकार किया गया है।[48]

बुन्देलखण्ड में पाण्डुवंश का प्रभाव-

बुन्देलखण्ड के कुछ भागों में, मुख्य रूप से उत्तर-पूर्व में पाण्डुवंशीय और सोमवंशीय शासको का अस्तित्व था। इस सन्दर्भ में अनेक प्रस्तर लेख और ताम्रपत्र उपलब्ध हुए है, जिनमें उनकी वंशावली इस प्रकार दी है-



ऐसा प्रतीत होता है कि पाण्डुवंशीय शासकों का राज्य कालिंजर में ही रहा, वहाँ पर उन्होंने विष्णु के एक मन्दिर का निर्माण कराया।[50] मिराशी के अनुसार- इस वंश के शासक को परिव्राजक हस्ति ने परास्थ कर दिया, यह शासक उदयिन का पुत्र इन्द्रबल था।[51]

बुन्देलखण्ड में महाराज लक्ष्मण का अस्तित्व -

पाली (इलाहाबाद) सिंगरौली (सीधी) में दो ताम्रपत्र उपलब्ध हुये हैं। ये महाराजा लक्ष्मण के है, इसमें 158 तिथि अंकित है। डा० रमेशचन्द्र मजूमदार के अनुसार- ये अभिलेख गुप्त यग के है तथा महाराज लक्ष्मण का अस्तित्व 477-478 ई० में था। यह सम्राट बुद्ध गुप्त का समकालीन था। इसकी राजधानी जैयपुर अर्थात अजयगढ़ थी।[53]

बुन्देलखण्ड में उत्तर-गुप्तों का अस्तित्व-

हुणों के शासन के पश्चात् उत्तर गुप्तों का उदय एरण और विदिशा के आस-पास हुआ, इन्होंने गुप्त युग को पुर्नजीवित करने का प्रयत्न किया तथा इनका अस्तित्व नवीं शताब्दी तक रहा। बाणभट्ट के हर्षचरित्र में माधवगुप्त का उल्लेख मिलता है। कामसूत्र की जयमंगल टीका में मालवा प्रान्त का उल्लेख है, यहाँ का प्रधान शासक गुप्तों के पतन के बाद भी उसके अधीन रहा। गुप्तों ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनायें रखी, बुन्देलखण्ड का अधिकांश भाग उनके साम्राज्य में था। एरण में कुछ मुद्रायें उपलब्ध हुयी तथा एक स्तम्भलेख भी मिला है। इस स्तम्भ की ऊँचाई 38 फुट है और इसमें 5 फुट ऊँचाई की दो मूर्तियां है। इस अभिलेख में प्रथम विष्णु की वंदना है, फिर तद्‌युगीन शासक बुद्ध गुप्त का नाम है, फिर उसके मंत्री मात्रविष्णु और धान्यविष्णु का उल्लेख है। यह स्तम्भ लेख वराह अवतार मंदिर में है। ऐसा लगता है कि, इस मन्दिर का निर्माण भी मात्रगुप्त और विष्णु गुप्त ने करवाया, इनका अस्तित्व विक्रम संवत् 542 में था।

बुन्देलखण्ड में वर्धन साम्राज्य का विस्तार -

गुप्तों के पतन के पश्चात वर्धन साम्राज्य का विस्तार हुआ। यह राज्य प्रभाकरवर्धन के राज्यकाल में स्थापित हुआ। प्रभाकर वर्धन के पश्चात् राज्यवर्धन शासक हुआ, जिसका बध शशांक ने कर दिया। उसके पश्चात् उसका भाई हर्षबर्धन उत्तराधिकारी बना। हर्षवर्धन ने अपना राज्य विस्तृत किया तथा बुन्देलखण्ड में भी अपनी सत्ता स्थापित की। इसके शासनकाल में ह्वेनसांग नामक चीनी यात्री आया, जिसने बुन्देलखण्ड अथवा जेजाकभुक्ति की पहचान चि-चि-टो के नाम से की।[54] हर्षचरित सार में वर्णन मिलता है कि हर्ष अपनी बहन राजश्री को ढूँढ़ता हुआ, विन्ध्य आटवी गया था, यहाँ के आटविक सामंत ने उसको सहयोग दिया था।[55] वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार- ''पश्चिम में चम्बल से लेकर सिन्ध-बेतवा-केन के मध्यवर्ती प्रदेश को शामिल करके, पूरब में शोण तक आटविक राज्यों का सिलसिला फैला था। उन्हीं के भौगोलिक उत्तराधिकारी अभी तक बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड के छोटे-छोटे रजवाड़े थे।[56]

हर्षवर्धन के बाद इस क्षेत्र में यशोवर्मा से सम्बन्धित अभिलेख उपलब्ध होते है। यह कन्नौज का शासक था तथा इसका अधिकार गौड़वाने में था। डा० वी०पी० सिन्हा के अनुसार- कालान्तर में इस वंश के नरेश पराजित हुए और उनका साम्राज्य सीमित हो गया। यशोवर्मा को कश्मीर के शासक ललितादित्य मुक्तापीड ने हराया।[57]

बुन्देलखंड में गुर्जर प्रतिहारों का अस्तित्व-

ईसा की नौवीं शताब्दी तक गुर्जर प्रतिहारों का अस्तित्व रहा तथा बुन्देलखण्ड का बहुत सा क्षेत्र उनके शासन के आधीन था। इस सन्दर्भ में एक ताम्रपत्र कालिंजर मंडल से ८३८ ई० का तथा दूसरा अभिलेख ८८६ ई० का देवगढ़ से उपलब्ध हुआ। तीसरा अभिलेख सियादोही (आधुनिक सेरोन जिला ललितपुर) में उपलब्ध हुआ है। इनका अधिपत्य टीकमगढ़, झाँसी, ललितपुर आदि क्षेत्रों में था, इन्होंने अपने शासनकाल में अनेक धार्मिक स्थलों का निर्माण, देवगढ़, बरूआसागर, मड़खेरा आदि में कराया।[58]

बुन्देलखण्ड में कल्चुरियों का अस्तित्व-

बुन्देलखण्ड में कल्चुरियों का अस्तित्व नर्मदातट से लेकर कालिंजर तक विस्तृत था। इस वंश का संस्थापक बामराज देव था। नवीं सदी के उत्तरार्ध में वह कालिंजर का शासक बन गया।[59] इसके पश्चात् बुन्देलखण्ड के अन्य क्षेत्रों में भी उनका अधिकार हो गया। [60] इस क्षेत्र पर बामराज ने 675ई० से लेकर 700 ई० तक शासन किया। इस सन्दर्भ में सागर में एक अभिलेख उपलब्ध हुआ है, यह अभिलेख ८वीं शताब्दी के मध्य का है। इस वंश का शक्तिशाली शासक शंकरगण था, उसने सन् ८२५से लेकर ८५० तक शासन किया। इसके अधिकार में चित्रकूट का परिक्षेत्र भी था। उसने यहाँ के गुहिल वंशीय शासक हर्ष को पराजित किया तथा चन्देलवंशीय राजकुमारी नट्टा से विवाह किया। उसके पश्चात् उसका पुत्र बालहट शासक बना, इसने गौड़ अधिपति, मालव नृपति और दक्षिण के कौशल अधिपति को पराजित किया।[61]

इसके पश्चात् राष्ट्रकूटों और कल्चुरियों ने मिलकर सन् 916-917 में प्रतिहार नरेश महिपाल पर आक्रमण किया। वह आक्रमण से भयभीत होकर कन्नौज भाग गया। इसके पश्चात् कल्चुरियों और राष्ट्रकूटों का मनमुटाव हुआ तथा दोनों के मध्य युद्ध हुआ, जो पयोष्ठी युद्ध के नाम से विख्यात हुआ। इस युद्ध में राष्ट्रकूट पराजित हुये। इस वंश में निम्नलिखित शक्तिशाली शासक हुये।

कल्चुरि राजाओं के नाम

चेदि सं०	विक्रम सं०	राजाओं के नाम
0	306	चेदि या कल्चुरि संवत् का आरम्भ
1	307	काकवर्ण (चेदि का राजा, इसे शिशुपाल के वंशजों ने मारा)
271	557	शंकरगण (चेदि का राजा)
301	607	बुद्ध (चेदि का राजा। इसका लड़का मंगल चालुक्य से हारा)
431	737	हैहय (जिसको विनयादित्य चालुक्य ने हराया)
481	787	हैहय (की राजकुमारी लोकमहादेवी का विवाह) विक्रमादित्य (दूसरा) चालुक्य के साथ हुआ।

626	932	कोकल्ल (पहला) (कन्नौज के राजा भोज का समकालीन)
651	957	मुग्धतुंग
676	982	युवराज
701	1007	लक्ष्मण ने विलहरी मे लक्ष्मणसागर नामक तलाब बनाया।
726	1032	युवराज (वाक्पति का समकालीन)
751	1057	कोकल्ल (दूसरा/गंडदेव का समकालीन)
771	1077	गांगेयदेव [62]

बुन्देलखण्ड में चन्देलों का अस्तित्व-

बुन्देलखण्ड में चन्देलों का राज्य सवार्धिक गौरवपूर्ण राज्य रहा तथा इसे बुन्देलखण्ड का स्वर्णयुग भी कहा जाता है। इस वंश का संस्थापक नन्नुकदेव था, उसके पश्चात् उसका उत्तराधिकारी वाकपति हुआ। उसके दो पुत्र जयशक्ति और विजय शक्ति हुये। जिस क्षेत्र में चन्देलों का शासन था, उसका नाम जयशक्ति के कारण जेजाकभुक्ति पड़ा।[63] यह श्लोक इस प्रकार है-

अखण्ड राजस्य पौत्रेण श्री सोमेश्वर सुमुना।

जेज्जाकभुक्ति देशोयम् पृथ्वीराजेन सोभिता।।

राहिल इस वंश का पाँचवां शासक था, उसने चौहानवंश की राजकुमारी कंचुका से विवाह किया।।[64] जब गुर्जर प्रतिहारों, भोज द्वितीय और महिपाल के मध्य युद्ध छिड़ा, उस समय चन्देल नरेशों ने महिपाल का साथ दिया। यशोवर्मा के राजत्व काल में चन्देल नरेशों की शक्ति में वृद्धि हुयी, इसने गुर्जर प्रतिहारों से ग्वालियर दुर्ग जीत लिया, इससे गुर्जर प्रतिहारों की शक्ति कमजोर पड़ गयी। खजुहारों के लक्ष्मण मन्दिर में प्राप्त अभिलेख के अनुसार- ''खेल-खेल में ही अपनी विशाल और शक्तिमान् भुजाओं से कालंजर तथा मालवनंद के तट पर चेदि देश की सीमा तक और फिर गोपाद्रि तक जो चमत्कारों का पर्वत है, विजय प्राप्त की।''[65] इस वंश में निम्नलिखित नरेश थे-

विक्रम संवत्	राजाओं के नाम
857	नन्नुक देव
992	वाक्पति
...	विजय
...	राहिल
...	हर्षदेव
982	यशोवर्मादेव
1010	धंगदेव
1056	गंडदेव [66]

इस्लाम के आगमन से पूर्व बुन्देलखण्ड की राजनैतिक समीक्षा-

बुन्देलखण्ड की राजनीतिक व्यवस्था के सन्दर्भ में, अति प्राचीन काल के ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नही होते है। वेदों, पुराणों, वाल्मीकि रामायण, तथा अन्य साहित्यिक ग्रंथों में कुछ क्षेत्रों का विवरण अवश्य उपलब्ध होता है, किन्तु उन्हें ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं माना जा सकता है। महाभारत काल से लेकर मौर्य काल तक का कोई ऐतिहासिक साक्ष्य यहाँ उपलब्ध नहीं है। इसी प्रकार गुप्त साम्राज्य में यहाँ छोटे-छोटे राज्य थे, जो अलग-अलग हिस्सों में राज्य करते थे। एरण तथा चेदि में दो महाजनपद थे, जिनका अस्तित्व मौर्य काल के बाद समाप्त हो गया था। जब सम्राट हर्षवर्धन ने अपने राज्य का विस्तार किया, उस समय बुन्देलखण्ड क्षेत्र उनके राज्य का अंग बन गया। इतिहासकार राधाकृष्ण बुन्देली के अनुसार-हर्ष वर्धन के साम्राज्य के बाद बुन्देलखण्ड के उत्तरी भाग में ब्राह्मण राजवंश बहुत दिनों तक रहा, परन्तु इसका कोई इतिहास प्राप्त नहीं होता है। उसके बहुत दिनों के बाद चेदिदेश में कोकल्लदेव प्रथम का राज्य था। उत्तर बुन्देलखण्ड में चन्देलों का राज्य था और मालवा में परमारों का राज्य था। इसी समय ग्वालियर और नरवर में कछवाहा राजपूतों का राज्य था और कन्नौज में भोजदेव और उनके वंशजों का राज्य था। चन्देलों के पहले बुन्देलखण्ड में परिहारों का राज्य था। ये लोग गुर्जर शाखा के थे। चन्देलों के अधिकार में जो क्षेत्र था, वह धसान नदी के पूर्व में और विन्ध्यांचल पर्वत के उत्तर और पश्चिम में था। यह राज्य उत्तर में यमुना नदी तक, दक्षिण में केन नदी के उद्गम स्थान तक फैला हुआ था। केन नदी इस देश के मध्य में बहती है। महोबा तथा खजुराहो इसके पश्चिम में, कालिंजर और अजयगढ़ इसके पूर्व में है। इस प्रदेश में वर्तमान बाँदा, हमीरपुर, चरखारी, छतरपुर, बिजावर, जैतपुर, अजयगढ़ और पन्ना जनपद आदि है। बाद में चन्देलों ने अपनी सीमा बेतवा नदी तक बढ़ा ली थी।[68]

इस प्रकार हम देखते है कि इस्लाम के आगमन के पूर्व बुन्देलखण्ड राज्य किसी एक शासक के आधीन नहीं रहा, बल्कि कई राज्यों में विभक्त रहा। इस्लाम के आगमन के पूर्व यहाँ चन्देल राज्य सर्वाधिक शक्तिशाली था, जो जेजाकभुक्ति के नाम से प्रसिद्ध था।

बुन्देलखण्ड में महमूद गजनबी का आक्रमण एवं तद्युगीन राजनीतिक व्यवस्था

जब महमूद गजनवी का आक्रमण भारत वर्ष में हुआ, उस समय भारत वर्ष की राजनीतिक व्यवस्था भिन्न थी। भारत वर्ष की पश्चिमी सीमा से अरब के व्यापारी आया करते थे, जिनका मुख्य उद्देश्य व्यवसाय करना था, किन्तु 10वीं शताब्दी में हमारे देश के अंग मुल्तान और मंसूरा विदेशी शासकों के आधीन हो गये। यहाँ की जनता को बलात् मुसलमान बना लिया गया था। दक्षिणी भारत में भी मालाबार के कुछ क्षेत्र अरबों के उपनिवेश थे। यहाँ के शासको ने अरबो को यहाँ की जनता को मुसलमान बनाने की आज्ञा प्रदान कर दी थी। जब सुबुक्तगीन महमूद गजनबी ने यहाँ आक्रमण किया, तो उनकी सहानुभूति उनके साथ हो गयी। तद्युगीन राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार सन्

871 ई0 में मुल्तान सिंध का एक भाग था। कुछ दिनों बाद यह स्वतन्त्र हो गया था। इन क्षेत्रों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। ये लोग अरब के खलीफ़ा पर विश्वास करते थे, क्योंकि सिन्ध परिक्षेत्र पर अरबों का शासन था।

भारत वर्ष के अनेक क्षेत्रों में हिन्दू राजाओं का आधिपत्य था, इन्होंने 200 वर्षो तक अरब आक्रमणकारियों का मुकाबला किया, अन्त में ये परास्त हुए। इन्होंने अफगानिस्तान पर अपना अधिकार छोड़ दिया और वहाँ से हटकर उदयभण्डपुर और बैहन्द को अपनी राजधानी बनाया। 836 ई0 में कन्नौज में गुर्जर प्रतिहार नरेश जयपाल का अधिकार था। गुर्जर प्रतिहार अपने को रामचन्द्र जी के अनुज लक्ष्मण का वंशज मानते थे, किन्तु अन्य इतिहासकारों के अनुसार- आठवीं शताब्दी में एक बार एक राष्ट्रकूट राजा ने उज्जैन में यज्ञ किया, उस समय एक प्रतिहार सामन्त ने उसके द्वारपाल की हैसियत से काम किया। इस प्रसंग में सम्भवतः सर्वप्रथम 'प्रतिहार' शब्द का प्रयोग हुआ। वत्सराज प्रतिहार वंश का प्रसिद्ध शासक हुआ। उसने सम्राट की उपाधि धारण की।[68] इस वंश का नागभट्ट दितीय सर्वाधिक शक्तिशाली शासक था, इसने बंगाल के शासक धर्मपाल को पराजित किया, किन्तु वह राष्ट्रकुटों द्वारा पराजित हुआ, फिर भी उसका शासन कन्नौज और गुर्जर प्रतिहारों पर कायम रहा। राष्ट्रकुटों और गुर्जर- प्रतिहारों का संघर्ष बराबर चलता रहा। राष्ट्रकुट शासक इन्द्र तृतीय ने प्रतिहार राजा महिपाल को पराजित किया। महिपाल अपनी राजधानी कन्नौज छोड़कर भाग गया, किन्तु चन्देल नरेश ने उसे पुनः कन्नौज की गद्दी पर बैठा दिया। महिपाल अपनी राजसत्ता को स्फूर्ति नहीं दे पाया, जिसके कारण बुन्देलखण्ड के चन्देल, गुजरात के चालुक्य और मालवा के परमार शासक स्वतन्त्र हो गये। इस वंश का अंतिम राजा राजपाल था, जो पूरी तरह शक्तिहीन था। जब बुन्देलखण्ड में चन्देलवंशीय नरेश धंग देव का शासन था, उस समय उसने अपने राज्य का विस्तार किया। इसके समय में महमूद गजनबी के पिता सुबुक्तगीन ने भटिण्डा के राजा जयपाल पर चढ़ाई की, इसकी सहायता धंगदेव ने की थी।

धंगदेव के पश्चात् उसका पुत्र गंडदेव चन्देल वंश का शासक बना, यह भी अपने पिता के समान पराक्रमी था। पं0 गोरेलाल तिवारी के अनुसार- उसने कन्नौज पर इसलिये चढ़ाई की थी क्योकि कन्नौज के राजा ने महमूद गजनवी की आधीनता स्वीकार कर ली थी। इसकी चढ़ाई वि0स0 1077 में हुयी थी। इस बार कन्नौज पर अधिकार कर वह वापस चला गया था। इस समय कन्नौज में राठौर वंशीय राजा महेन्द्रपाल राज्य करता था।[69] चन्देल नरेश गंड ने कन्नौज पर चढ़ाई करके महेन्द्रपाल को अपने आधीन कर लिया। इस बात की खबर महमूद गजनवी को भी लगी, किन्तु सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा0 सुशील कुमार सुलेरे उपरोक्त तथ्य से इन्कार करते हैं, उनके अनुसार-अनेक इतिहासकार गण्ड का तादात्म्य उस नंद नामक शासक से करते हैं, जिसका उल्लेख मुस्लिम लेखक कन्नौज के शासक राजपाल को मारने अथवा दण्डित करने वाले के रूप में करते हैं। यदि गण्ड ने उस समय की तेजी से बदलती हुयी युद्ध बहुल राजनीति में भाग लिया होता, तो प्रत्यक्ष अथवा

अप्रत्यक्ष रूप से चन्देल अभिलेखों में उसकी चर्चा अवश्य होती है।[70] डा० विशुद्धनन्द पाठक ने भी डा० सुलेरे के कथन की पुष्टि की है।[71] इसमें कोई शक नहीं कि गंड एक शक्तिशाली शासक था। सुप्रसिद्ध विद्वान केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार-''धंगदेव के पुत्र गंडदेव ने चन्देल राज्य का उत्तराधिकार प्राप्त किया और राजपूत राज्यों के प्रति अपने पिता की नीति का वस्तुतः अनुसरण करता हुआ, वह अल्प समय में ही इतना विख्यात हो गया कि, तत्कालीन मुसलमान इतिहासकारों ने उसे अपने समय का सर्वशक्तिशाली भारतीय शासक माना। ध्यान देने की बात यह है, कि उसकी नीति अपेक्षाकृत कुछ कठोर थी। वह दुर्बल राज्यों को आधीन कर लेने की अपेक्षा, मिला लेना अधिक अच्छा समझता था।[72]

इस समय उत्तरी-भारत में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे, इनमें गुजरात के चालुक्य, बुन्देलखण्ड के चन्देल, मालवा के परमार अधिक महत्वपूर्ण थे। ये सभी कन्नौज के प्रतिहारों के आधीन थे, जो अब स्वतन्त्र हो गये थे।

महमूद गजनवी का परिचय :-

गजनी के शासक सुबुक्तगीन की मृत्यु सन् 997 ई० में हो गयी थी। उसने अपने राज्य का उत्तराधिकारी अपने छोटे पुत्र स्माइल को बनाया था। उसके बड़े पुत्र महमूद ने स्माइल को गृह युद्ध में पराजित किया और वह गजनी का सुल्तान बन गया। महमूद गजनबी का जन्म 1 नवम्बर, सन् 971 ई० में हुआ तथा सन् 998 में वह गजनी की गद्दी पर बैठा। इस समय इसकी आयु 27 वर्ष की थी। उसके राज्य में अफगानिस्तान और खुरासान पहले से शामिल थे। उसके शासक बनने के पश्चात् उसे बगदाद के खलीफा अल-कादिर-बिल्लाह ने महमूद को पद की मान्यता प्रदान की। डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव के अनुसार- खलीफा ने उसे न्यामीन-उद्-दौला तथा यामीन-उल-मिल्लाह की उपाधियों से विभूषित किया। इसीलिये उनका वंश यमीनी के नाम से विख्यात् है।

महमूद एक अत्यन्त महत्वकांक्षी युवक था, उसने खलीफा को एक पत्र लिखकर यह आश्वासन दिया था, कि वह भारतवर्ष के काफिरों पर प्रतिवर्ष आक्रमण करेगा। उसने इस प्रण का निर्वाह भी किया। महमूद का शरीर सुन्दर नहीं था, वह हष्ट-पुष्ट और कुरूप था, परन्तु वह एक महान सेनानायक और सैनिक था। वह व्यक्ति की बुद्धि और गुणों की परीक्षा आसानी से कर लेता था। साहस, बुद्धिमत्ता तथा साधन सम्पन्नता उसके विशेष गुण थे। वह कुशल राजनीतिक था और उसके क्रिया-कलाप राजाओं जैसे थे। वह व्यक्तियों के आभाव में भी अपना कार्य चला सकता था। सुप्रसिद्ध इतिहासकार हबीब के अनुसार- जीवन के प्रति महमूद का दृष्टिकोण पूर्णतया सांसारिक था और अन्धकारपूर्वक मुस्लिम उलैमा की आज्ञाओं का पालन करने के लिए वह तैयार न होता था। महमूद धर्मान्ध न था, किन्तु उसके जीवन और कार्यो से स्पष्ट है कि इस्लाम में उसकी अपार श्रद्धा थी और वह यह भी समझता था कि अकारण ही भारतीय काफिरों के राज्य पर आक्रमण करके मैं इस्लाम की सेवा कर रहा हूँ।[73] इसी प्रकार तद्युगीन दरबारी इतिहासकार उत्बी अपनी पुस्तक में

उल्लेख करता है- ''सुल्तान ने अपने मन्त्रियों की सभा बुलायी और उसने कहा कि मुझे आशीर्वाद दो, जिससे मैं धर्म का झण्डा ऊँचा करने, सदाचार का क्षेत्र विस्तृत करने, सत्य को प्रकाशित करने और न्याय की जड़ों को दृढ़ करने की अपनी इस योजना में सफलता प्राप्त कर सकूँ।[74]

उपरोक्त कथन से यह सिद्ध होता है कि, उसने भारत वर्ष पर धर्म प्रचार के लिए आक्रमण किया, किन्तु यह भी सत्य है कि वह भी अन्य आक्रमणकारियों की भांति धन का लोभी था और महान योद्धा बनने का ख्वाब देखता था। वह हिन्दू राज्य के अस्तित्व से अपने को खतरा अनुभव करता था इसलिए उसने भारत वर्ष में आक्रमण करने का दृढ संकल्प किया।

महमूद गजनबी का भारत पर आक्रमण :-

महमूद गजनबी ने अपना पहला आक्रमण सन् 1000 में किया, इस आक्रमण के पश्चात् उसने सीमावर्ती किलों को अपने अधिकार में कर लिया।[75] महमूद के दरबार में रहने वाले इतिहासकार तद्युगीन शासक जयपाल को इस्लाम का शत्रु मानते थे। उससे बदला लेने के लिए महमूद ने सावधानी से काम लिया और स्वयं सेना का निरीक्षण करके उसमें से 15,000 सर्वोत्तम घुड़सवार छाँटें। 27 नवम्बर, 1001 ई० के दिन पेशावर के निकट घोर संग्राम हुआ। महमूद ने अश्वारोहियों का सफलतापूर्वक संचालन करते हुये, वीरतापूर्वक युद्ध किया, इस युद्ध में जयपाल की पराजय हुयी। अपने पुत्रों, नातियों तथा अनेक सम्बन्धियों और पदाधिकारियों सहित वह बन्दी हुआ।[76] महमूद गजनवी ने भारत वर्ष पर आक्रमण निम्न उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया।

1. जेहाद - इस्लाम धर्म का शुभारम्भ महमूद गजनवी के अस्तित्व के साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व हुआ था। इस धर्म को प्रचारित-प्रसारित करने के लिए शक्तिशाली शासकों ने जेहाद (धर्मयुद्ध) का सहारा लिया। सुप्रसिद्ध लेखक उत्बी के अनुसार- ''सुल्तान महमूद ने पहले साजिस्तान पर आक्रमण करने का संकल्प किया, किन्तु बाद में उसने हिन्द के विरुद्ध ज़ेहाद (धर्मयुद्ध) करना ही अधिक अच्छा समझा।[77] इसलिए ज़ेहाद के उद्देश्य से उसने भारत वर्ष पर आक्रमण किया।

2. साम्राज्य का विस्तार- महमूद गजनबी अपनी राज्य की सीमाओं को विस्तृत करना चाहता था तथा वह यह भी चाहता था कि, अन्य पराक्रमी बादशाहों की भांति वह भी ज्यादा से ज्यादा भू-भाग जीतकर अपना नाम कमायें और अपनी शक्ति का परिचय दे। डॉ० आशीर्वादी लाल के अनुसार- ''महमूद महत्वाकांक्षी था और अधिक से अधिक विस्तृत साम्राज्य पर शासन करने की उसकी अभिलाषा थी।''[78] उस अभिलाषा को साकार रूप देने के लिए उसने भारत वर्ष के अनेक क्षेत्रों पर आक्रमण किये और यहाँ के अनेक शासकों को अपने आधीन कर लिया। इस समय भारत वर्ष में राष्ट्रीय भावनाओं की कमी थी और यहाँ के नरेश एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए आपस में ही युद्ध करते रहते थे। डा॰ आशीर्वादी लाल के अनुसार- वह यथार्थवादी था, और पड़ोस में स्थित एक शक्तिशाली तथा शत्रुतापूर्ण हिन्दू राज्य के अस्तित्व से उसकी स्वतन्त्रता और विशेषकर आक्रमणकारी नीति को खतरा था, इस बात को भी यह भलीभांति समझता था। इन्हीं सब कारणों

से सिंहासन पर बैठने के उपरान्त शीघ्र ही उसने भारत के विरुद्ध आक्रमणकारी नीति जारी रखने का दृढ़ संकल्प कर लिया।[99]इस प्रकार हम देखते है कि साम्राज्य विस्तार की उसकी नीति सदैव से रही है।

धन का प्रलोभन - महमूद गजनबी अन्य शासको की भांति धन का लोभी था। उसकी यह आकांक्षा थी कि भारत वर्ष के वैभवशाली क्षेत्रों को अपने अधिकार में करे, वहाँ पर भयंकर लूट-पाट करके अपने राज्य के लिए सम्पत्ति एकत्रित करे। उसके सन्दर्भ में डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव का यह मत सही प्रतीत होता है- कि सभी पराक्रमी लोगों की भांति वह भी धन का लोभी था और उसने भारत का अपार धन सम्पत्ति की कहानियाँ सुन रखी थी। इसके अतिरिक्त महान योद्धा होने के नाते वह सैनिक यश का भी भूखा था।[80] उसने भारत वर्ष में जो भी आक्रमण किया, उसमें अपार सम्पदा लूट-पाट से प्राप्त की।

भारत वर्ष में महमूद का आगमन-

महमूद का महत्वपूर्ण आक्रमण भारंत वर्ष में 27 नवम्बर सन् 1001 ई० में पेशावर के पास हुआ। इस आक्रमण के सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध इतिहासकार उत्बी लिखता है कि, जिनके चेहरे पर कुफ्र के चिन्ह स्पष्ट दिख पड़ते थे, मजबूत रस्सियों से बाँधकर पापियों की भांति सुल्तान के सम्मुख उपस्थित किया गया। ऐसा प्रतीत होता था मानों बाँधकर उन्हें नरक भेजा जा रहा है। उसमें से कुछ के हाथ बलपूवर्क पीछे बाँध दिये गये थे और कुछ की गर्दन पकड़कर घूँसों द्वारा धकेला गया था। महमूद के सैनिकों ने जयपाल के कण्ठ से मणि की माला उतार ली थी। जिसका मूल्य दो लाख दिरहम था। इसी प्रकार उनके साथियों के आभूषण छीन लिये गये। विजेताओं को लूट में इतना धन मिला कि उसका हिसाब लगाना असम्भव है। जयपाल मुक्त कर दिया गया और उसके बदले में उसने महमूद को बहुत सा धन तथा 50 हाथी देने का वचन दिया। अपनी विजय के उपरान्त महमूद जयपाल की राजधानी वैहन्द (उदयभण्डपुर, आधुनिक उण्ड) तक आगे बदा और मार्ग के प्रदेश को उसने निर्दयतापूवर्क लूटा। विजय तिलक से विभूषित वह अपार धन लेकर गजनी को लौट गया।[81]

भारत वर्ष में महमूद के महत्वपूर्ण आक्रमण -

1. सन् 1000 में महमूद का सीमान्त किलों पर आक्रमण।
2. 27 नवम्बर 1001 में पेशावर पर आक्रमण, सन् 1006 में मुल्तान पर आक्रमण, यह युद्ध फतेह दाउद और महमूद गजनवी के मध्य हुआ।
3. सन् 1008 ई० में महमूद का युद्ध सुकपाल और दाऊद की सेना से हुआ, सन् 1009 में महमूद का युद्ध बैहन्द के मैदान में आनन्दपाल से हुआ। इस सन्दर्भ में इतिहासकार उत्बी का कथन इस प्रकार है- नगरकोट की लूट में इतना धन मिला कि उतने ऊँट न मिल सके, उसे ढोने के लिए इसलिए वह धन अफसरों में बाँट दिया गया था। केवल सिक्कों का मूल्य ही उस समय 70,000 दिरहम था। 7 लाख दिरहम के मूल्य का सोना-चाँदी भी मिला,

जिसका वजन 400 मन था। इसके अतिरिक्त मोती और सुन्दर वस्त्र भी अत्यधिक मात्रा में प्राप्त हुयें। इतने सुन्दर, कोमल और जडाऊँ वस्त्र महमूद के लोगों ने कभी न देखे थे। लूट में एक सफेद चाँदी का घर भी मिला, जिसकी बनावट धनी पुरुषों के घरों की सी थी और जो तीस गज लम्बा और पन्द्रह गज चौड़ा था। उसके विभिन्न भागों को अलग-अलग करके पुनः पूर्ववत जोड़ा जा सकता था। एक रोमी कपड़े का शामियाना भी था, जिसकी लम्बाई 40 गज और चौड़ाई 20 गज थी। वह ढ़ले हुये दो सोने और दो चाँदी के खम्भों पर सधा हुआ था।[82]

4. सन् 1014 ई0 में उसने आनन्दपाल के पुत्र त्रिलोचन पर आक्रमण किया।

5. जब भारत वर्ष में चन्देल शासक विद्याधर की शक्ति बढ़ रही थी, उस समय उसने उसकी शक्ति को तोड़ने के लिए सन् 1019 में भारत वर्ष में आक्रमण किया, इस युद्ध में तद्युगीन शासक त्रिलोचन पुनः पराजित हुआ और किसी ने सन् 1021 और 1022 में उसकी हत्या कर दी।

6. सन् 1018-1019 में ही उसने मथुरा पर आक्रमण किया, डा0 आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव के अनुसार- वह उत्तरी भारत का सबसे घना बसा हुआ तथा समृद्धशाली नगर था। श्रीकृष्ण की जन्मभूमि होने के कारण वह हिन्दुओं का बेथेलहम था। नगर भलीभांति सुरक्षित तथा विशाल मन्दिरों से सुशोभित था, किन्तु रक्षा सेना ने पवित्र नगर तथा कलापूर्ण मन्दिरों को बचाने का प्रयत्न नहीं किया, आक्रमणकारी सेना ने अनेक मन्दिरों को ध्वस्त कर दिया तथा उसकी युग-युग से संचित सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। मथुरा कितना भव्य नगर था और धर्मान्ध मुसलमानों ने किस प्रकार उसका सत्यानश किया।[83] इसी सन्दर्भ में इतिहासकार उत्बी का कथन भी महत्वपूर्ण प्रतीत होता है - ''महमूद ने एक ऐसा नगर देखा जो योजना तथा निर्माण-कला की दृष्टि से आश्चर्यजनक था। ऐसा प्रतीत होता था मानो उसके भवन स्वर्ग के है, किन्तु नगर का सौन्दर्य शैतान लोगों की कृति का परिणाम था, इसलिए कोई बुद्धिमान व्यक्ति उसके वर्णन को सुनकर विश्वास नहीं कर सकता था...... उसके चारों ओर पत्थर के बने हुए एक हजार दुर्ग थे। जिनका मन्दिरों की भांति प्रयोग किया जाता था। उसके मध्य में एक सबसे ऊँचा मन्दिर था। जिसके सौन्दर्य और सजावट का वर्णन करने में न किसी लेखक की लेखनी समर्थ है और न किसी चित्रकार की तूलिका। उस पर मन का स्थिर करना और विचार करना भी कठिन है।[84] महमूद गजनवी ने भी अपने संस्मरण में मथुरा के सन्दर्भ में यह विचार व्यक्त किये। ''यदि कोई व्यक्ति उस जैसे भवन का निर्माण करना चाहे तो उसे एक हजार दीनार की एक लाख थैलियाँ व्यय करनी पड़ेगी और कुशल से कुशल शिल्पियों की सहायता से भी वह 20 वर्षो में पूरा नहीं होगा।[85]

7. सन् 1018 में मथुरा में किये गये आक्रमणों से उत्तेजित होकर हिन्दू राजाओं ने एक संघ महमूद के आक्रमण को रोकने के लिए बनाया। इससे महमूद क्रोधित हुआ, तथा उसने 1022 के लगभग त्रिलोचनपाल को परास्त करके वह बुन्देलखण्ड की ओर बढ़ा। चन्देल नरेश ने उसकी शक्ति को रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु अचानक गंड मैदान छोड़कर भाग गया। उसने चन्देलों के राज्य को बुरी तरह लूटा और गज़नी लौट गया।

बुन्देलखण्ड में महमूद का आक्रमण -

बुन्देलखण्ड में महमूद का आक्रमण एक चिरस्मणीय घटना थी। कन्नौज राज्य को अपने आधीन कर लेने के पश्चात् महमूद गजनवीं ने विक्रम संवत् 1078 में चन्देल नरेश के ऊपर कालिंजर में सीधा आक्रमण किया। पं० गोरेलाल तिवारी के अनुसार- चन्देल राजा गंड ने बड़ी वीरता से उसका सामना किया। यह 36000 पैदल, 45000 घुड़सवार और 640 हाथियों का हलका लेकर गजनवी का आक्रमण रोकने के लिए आया था। इसके विरोध के कारण महमूद गजनवी आगे न बढ़ सका और उसे लौट जाना पड़ा।[86] डा० आशीर्वादी लाल के अनुसार-उसी वर्ष के अन्त में चन्देलों की शक्ति का पूर्णतया नाश करने के उद्देश्य से महमूद फिर भारत आया। चन्देलों के प्रसिद्ध गढ़ कालिंजर पहुँचने से पहले मार्ग में उसने ग्वालियर के किले को जीतने का प्रयत्न किया, वहाँ का राजा चन्देलों का करद सामन्त था। परन्तु किला इतना सुदृढ़ था कि महमूद उस पर अधिकार न कर सका। उसने मार्ग में अधिक विलम्ब करना उचित नहीं समझा, इसलिये ग्वालियर के कछवाह राजा से सन्धि करके वह कालिंजर की ओर बढ़ा। उसने कालिंजर को घेर लिया, किन्तु सरलता से उस पर अधिकार न कर सका। घेरा दीर्घकाल तक चलता रहा। महमूद गजनी लौटने का इच्छुक था, इसलिये उसने चन्देल राजा से सन्धि कर ली। राजा ने कर के रूप में 300 हाथी सुल्तान को देना स्वीकार कर लिया। कहा जाता है कि उसने महमूद की प्रशंसा में एक कविता भी लिखी, जिसे सुनकर सुल्तान इतना प्रसन्न हुआ कि उसके 15 किले उसे इनाम के रूप में दे दिये। इस सन्धि के उपरान्त लूट का धन लेकर महमूद गजनी को लौट गया।[87]

बुन्देलखण्ड में महमूद गजनवी के आक्रमण के सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री केशवचन्द्र मिश्र का यह कथन भी महत्वपूर्ण प्रतीत होता है कि संघीय सेना का नेतृत्व गंडदेव का पुत्र विद्याधर कर रहा था। गंडदेव की इस नीति से महमूद बड़ा उत्तेजित हो गया और ग्वालियर होते हुए उसने सन् 1019 में सीधे उस पर आक्रमण किया। सुल्तान ने कालिंजर किले पर घेरा डाला। लंबे दिनों तक घेरा चलने के कारण जल और खाद्य के अभाव में गंडदेव संधि के लिए उद्यत हुआ। दोनों में सम्मान जनक संधि हुयी। महमूद वापस चला गया। इस प्रकार की पराजय आखिर क्यों हुयी- यह एक विचारणीय प्रश्न है। इसमें हिन्दुओं की तत्कालीन सामान्य दशा और गंडदेव की राजनीतिक भूल अधिक दायित्व रखती है।[88] यह आश्चर्य की बात है कि उसने कालिंजर दुर्ग को लूटा नहीं, बल्कि एक सम्मान जनक संधि की और वह वापस चला गया। इसका अर्थ यह भी होता है कि महमूद चन्देलों की अजेय शक्ति से काफी प्रभावित हुआ था।

महमूद गजनवी के आक्रमण का भारतवर्ष एवं बुन्देलखण्ड पर प्रभाव

महमूद गजनवी के आक्रमण का भारतवर्ष एवं बुन्देलखण्ड में व्यापक प्रभाव पड़ा तथा उसके बाद भारतवर्ष की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों को जो हानि उठानी पड़ी, उसका अनुमान लगाना आसान नहीं। इसके आक्रमण के प्रभाव और परिणाम का मूल्यांकन हम इस प्रकार कर सकते हैं-

1-हिन्दू राज्य शक्ति को भीषण झटका

महमूद गजनवी के आक्रमण के पूर्व सम्पूर्ण भारतवर्ष में हिन्दू राजाओं का बाहुल्य था, जो भारतवर्ष के अनेक भागों में शासन करते थे। उसके आक्रमण से हिन्दू राज्य शक्ति को भीषण झटका लगा। महमूद की शक्ति के आगे हिन्दू राजा नहीं टिक सके और वह सतत विभिन्न आक्रमणों में आगे बढ़ता गया। उसने अनेक राजाओं को परास्त किया और उनकी राजधानियों को लूटा। उसके यह आक्रमण 1050 ई० तक लगातार चलते रहे। उसने मथुरा, कन्नौज, ग्वालियर, कालिंजर, और काठियावाड़ को भी अपनी शक्ति से पराजित किया, कहीं-कहीं पर उसकी सन्धियाँ भी हुयी। हिन्दू राज्य शक्ति का भंग होना, भारत के लिये कोई अच्छी बात नहीं थी, यद्यपि इस सन्दर्भ में बुन्देलखण्ड के नरेशों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस सन्दर्भ में डा० आशीर्वादी लाल का यह कथन उचित प्रतीत होता है-बुन्देलखण्ड के चन्देल राजा का नाम अग्रगण्य है। इस शक्तिशाली राजा ने (उसे कोई गण्ड कहता था और कोई विद्याधर) अपने देश और धर्म की रक्षा के लिये कुछ प्रमुख शासकों का एक संघ बनाया।[89] यद्यपि इस संघ का कोई सार्थक परिणाम नहीं निकला।

2-बलात् धर्म परिवर्तन और हिन्दू धर्म स्थलों का विध्वंस

महमूद के आक्रमण का एक उद्देश्य जेहाद करना भी था, इसलिये उसने भारतवर्ष में आक्रमण करके यहाँ के धर्म को नष्ट किया। महमूद गजनवी ने काठियावाड़ मे स्थित सोमनाथ के मंदिर में आक्रमण किया। यहाँ का राजा भीमदेव अपने अनुयायियों के साथ भाग गया। इस सन्दर्भ में डा० आशीर्वादी लाल का कथन है- महमूद ने बिना अधिक कठिनाई के उस स्थान पर अधिकार कर लिया और कत्लेआम की आज्ञा दे दी। 50,000 से भी अधिक स्त्री-पुरुष मौत के घाट उतार दिये गये। सुल्तान ने स्वयं सोमनाथ की मूर्ति को तोडकर उसके टुकड़ों को गजनी, मक्का और मदीना भिजवा दिया। वहां वे गलियों में और खास मस्जिद की सीढ़ियों पर डलवा दिये गये, जिससे नमाज के लिए जाने वाले मुसलमान उन्हें अपने पैरों के नीचे रौंद सके। इस मूर्ति की गणना संसार की महान आश्चर्यजनक वस्तुओं में की जाती थी। वह मन्दिर के बीच में स्थित थी और नीचे अथवा ऊपर बिना किसी सहारे के सधी हुई थी। जो भी उसे आकाश में स्थित देखता था, आश्चर्यचकित हो जाता था। छत में चकमक पत्थर के जो टुकड़े लगे हुए थे, उन्हें महमूद ने हटवा दिया, तुरन्त ही मूर्ति पृथ्वी पर गिर पड़ी और उसे तोडकर छोटे-छोटे खण्डों में विभाजित कर दिया। कहा जाता है कि मन्दिर की लूट में 20,00,000 दीनार से भी अधिक का धन आक्रमणकारियों को प्राप्त हुआ, जिसे लेकर महमूद

सिन्ध के मार्ग से गजनी लौट गया।[90] उसने जहाँ भी आक्रमण किया था, वहाँ के निवासियों को बलात् मुसलमान बनाया तथा भारतीय धार्मिक आस्था को आघात पहुँचाया।

आर्थिक क्षति-

महमूद गजनवी के आक्रमणों के कारण भारतवर्ष को बहुत अधिक हानि उठानी पड़ी थी। उसने जहाँ भी आक्रमण किया, उसे लूटा। भारतवर्ष में उसके सन्दर्भ में यह धारणा थी कि वह शैतान का अवतार है। भारतीयों की दृष्टि में वह एक साहसी डाकू, लालची, लुटेरा तथा कला का नाशक था। उसने हमारे दर्जनों समृद्धशाली नगरों के लूटा तथा अनेक मन्दिरों को, जो कला के आश्चर्यजनक आदर्श थे, धूल में मिला दिया।[91] धन के सन्दर्भ में वह बहुत अधिक बेईमान भी था, इस सन्दर्भ में यह कथन दृष्टव्य है- धन का असीम लालच उसके जीवन का सबसे बड़ा कलंक था, इससे उसकी कार्यक्षमता और ख्याति दोनों को काफी धक्का लगा। शाहनामा, लिखने के लिये उसने फिरदौसी को प्रत्येक छन्द के लिये एक स्वर्ण-मुद्रा देने का वचन दिया था, किन्तु बाद में देने से इन्कार कर दिया। मृत्यु शैय्या पर उसने यह सोचकर सिसकियाँ भरी, कि मैं अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति पीछे छोड़े जा रहा हूँ। ये कहानियाँ सत्य भले ही न हों, किन्तु इनसे इस बात का स्पष्ट ज्ञान होता है कि उसके जीवन-काल में तथा उसकी मृत्यु के बाद, दीर्घकाल तक जनता की उसके चरित्र के विषय में क्या धारणा थी।[92] यद्यपि महमूद के दरबार में अलबरूनी, फिरदौसी, ऊँसरी और फारुखी जैसे विद्वान रहा करते थे, जिन्होंने महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थों की संरचना की थी, उन्होंने ही उसे न्यायप्रिय शासक विद्या-प्रेमी और दयालु स्वभाव के कारण उसकी प्रशंसा भी की थी, किन्तु धन के प्रलोभन के कारण वह बहुत अधिक कलंकित हुआ और अपने द्वारा अर्जित सम्पत्ति को वह अपनी मृत्यु के साथ जन्नत नही ले जा पाया।

नव मुस्लिम और हिन्दुओं के बीच नफरत की भावना :-

जब महमूद गजनवी जैसे आक्रमणकारियों ने शक्ति के प्रयोग से इस्लाम धर्म का प्रचार किया तो निश्चित है कि यहाँ कि व्यक्तियों ने भय और आतंक के कारण इस्लाम धर्म तो स्वीकार कर लिया, किन्तु उस धर्म के प्रति उनकी हृदय से कोई आस्था नहीं रही। वे हिन्दू धर्मावलम्बी, जिन्होंने मुस्लिम आक्रमणकारियों का ताण्डव नृत्य देखा था और अपने धार्मिक स्थलों का विनाश देखा था, वे मुसलमानों से नफरत करने लगे। उन मुसलमानों को, जो हिन्दू धर्म त्यागकर मुसलमान बने थे, उन्हें धोखेबाज और गद्दार समझने लगे। नफरत की यह भावना आज भी बनी हुयी है, जिसके कारण दोंनों संस्कृतियों में मेल-जोल स्थापित नहीं हो पाया।

हिन्दू धर्म के अन्दर उदारवादी दृष्टिकोण सदैव से रहे है, इन्होंने यूनानी, शक, और हूणों को अपनी धर्म संस्कृति में मिला लिया था, किन्तु वे अरब, तुर्क, अफगान आक्रमणकारियों को अपने में नहीं मिला पाये। इतिहासकारों का मानना है कि यदि हिन्दुओं द्वारा मुसलमानों को ऐसा अवसर प्रदान किया जाता तो मुसलमान अपने दृष्टिकोण, भावना और जीवन-पद्धति में तत्परता से हिन्दुओं

के अनुरूप हो जाते, परन्तु हिन्दुओं ने उन्हें स्वयं ही अपने से दूर रखा तथा उनके साथ खानपान और विवाह आदि करने से इन्कार कर दिया।[93] यह मत पूर्णतः उपयुक्त नहीं है। कतिपय इतिहाकार उपरोक्त कथन को सत्य नहीं मानते। इतिहासकारों के अनुसार-हमारे शासकों ने विदेशियों को न केवल वाणिज्य सम्बन्धी प्रत्येक सुविधा प्रदान की, अपतु कुछ हिन्दू धर्मावलबियों को अपना धर्म-परिवर्तन करके इस्लाम को अंगीकार करने हेतु निश्चित प्रोत्साहन भी दिया। कालीकट के जमोरिन ने ''यह आदेश दिये थे कि उनके राज्य में रहने वाले महुओं के प्रत्येक कुटुम्ब में से एक या एक से अधिक पुरुष सदस्य का मुसलमान बनाकर पालन-पोषण किया जाना चाहिये।''[94] कुछ हिन्दुओं ने इस्लाम और हिन्दू धर्म के उद्देश्यों को एक बताया है। उन्होने राम-रहीम, कृष्ण-करीम, ईश्वर और अल्लाह में कोई अन्तर नहीं समझा तथा दोनों धर्मो में एकता स्थापित करने के प्रयत्न किये, फिर भी कतिपय कारणों से दोनों धर्मो में एकता स्थापित न हो सकी। उसका मूल कारण यह था कि हिन्दू सदैव औपचारिक शुद्धता, शारीरिक, मानसिक, शुद्धता पर बल देते थे, इसके विपरीत मुसलमान, अरबी संस्कृति को अपनाने में बल देते थे। कतिपय इतिहासकारों के अनुसार-हिन्दू सामान्यतः शाकाहारी थे, और ऐसे हिन्दू जो मांसाहारी थे, वे भी गौ-मांस से घृणा करते थे। इसके विपरीत, मुसलमान लगभग शत-प्रतिशत मांसाहारी एवं सामिषभोजी थे और वे गो-हत्या तथा गो-मांस भक्षण को, जिसे वे धार्मिक कृत्य समझते थे, त्यागने के लिये तैयार नहीं थे। उन्होंने भक्ति पंथ को ग्रहण करने से इन्कार कर दिया। वे अपनी श्रेष्ठता एवं उच्चता में विश्वास करते थे और हिन्दुओं को तुच्छ, अशक्त एवं अप्रगतिशील जाति-'दाल के खाने वाले'-कहकर तिरस्कृत करते थे।[95]

इस युग के मुसलमान कट्टर थे तथा उन्हें इस बात का स्वाभिमान था कि, युद्ध के साथ-साथ वे धर्म का प्रचार भी करते है। मुहम्मद साहब के सन्देश को गैर-मुसलमानों के सम्मुख प्रस्तुत करना एवं उनमें से जितने हो सके, उन्हें धर्म-परिवर्तन करके मुसलमान बनाना, वे अपना धार्मिक कर्तव्य समझते थे तथा आक्रमणकारी स्वतः अपनी धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान बनाये रखना चाहते थे। हिन्दू भी उन्हें नफरत की दृष्टि से देखते थे और उन्हें म्लेच्छ कहते थे। हिन्दू लोग धर्म परिवर्तन करने वाले हिन्दू को कोई भी दण्ड नहीं दे पाते थे, यदि कोई हिन्दू धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बन जाता था और दुबारा हिन्दू बनना चाहता था, तो मुसलमान उसे मौत के घाट उतार देते थे। कुर्आन शरीफ के अनुसार- ''उन स्त्रियों से जो मूर्ति-पूजक है, तब तक विवाह मत करो, जब तक कि वह इस्लाम में विश्वास न करें। निश्चित रूप से वह परिचारिका, जो इस्लाम में विश्वास करती है, मूर्ति-पूजक स्त्री से अच्छी है, भले ही वह आपको अधिक रिझाती हो। इस्लाम में विश्वास करने वाली स्त्रियों को मूर्ति-पूजक पुरुषों से विवाह तब तक न करने दें, जब तक कि वह पुरुष इस्लाम में विश्वास न करने लगे। क्योंकि निश्चित रूप से एक भृत्य जो सच्चा विश्वासी है, मूर्ति-पूजक से अच्छा है, चाहे वह आपको ज्यादा रुचिकर क्यों न लगता हो।''[96]

कुरान शरीफ़ में इस बात का निर्देश है कि इस्लाम धर्मावलम्बी अपने धार्मिक नियमों का

पालन पूर्ण आस्था और विश्वास के साथ करें। कुरान-शरीफ में मूर्ति-पूजकों की निंदा करते हुये कहा गया है-"न तो पैगम्बर साहब को न उनका जो वास्तविक विश्वासी है, यह इजाजत है कि वे मूर्तिपूजकों के लिये यह जानने के बाद भी प्रार्थना करें कि वे नरक के निवासी है चाहे वे अपने कुटुम्बीजन ही क्यों न हो। अब्राहम ने भी केवल दिये हुये वचन के अतिरिक्त अपने पिता के लिये क्षमा नहीं मांगी और जब उसको यह मालूम हो गया कि वे ईश्वर के शत्रु थे, तब तो उसने स्वयं को इनसे बिलकुल ही मुक्त एवं असम्बन्धित घोषित कर दिया।[97]

कुर्आन के उपरोक्त कथन के अनुसार भारत के मुसलमान अपने उन सम्बन्धियों से किसी प्रकार का संबंध नहीं बना सकते थे, जो हिन्दू धर्म का अनुपालन करते थे। इस सन्दर्भ में कुर्आन शरीफ का निर्देश है कि "ए सच्चे विश्वासियो, ऐसे व्यक्तियों को अपने मित्र न मानो जिनको तुमसे पूर्व ही धर्म ग्रन्थ प्राप्त हो चुके हैं अथवा जो ईश्वर के प्रति कृतघ्न या काफिर है जो कि तुम्हारे ध र्म की हंसी उड़ाते या उसका मजाक बनाते हैं।"[98]

स्पष्ट है कि महमूद गजनवी के द्वारा धर्म-प्रचार के लिये जो बर्बरता का प्रदर्शन किया गया उसके फलस्वरूप हिन्दुओं के मस्तिष्क में नफरत की भावना पैदा हुयी, जिसके फलस्वरूप हिन्दू और मुसलमानों के मध्य में एक गहरी खाई खुद गयी, जिसका पाटना अब तक संभव नहीं हो सका।

बुन्देलखण्ड में सुल्तानों का आधिपत्य एवं उनका राजनीतिक प्रभाव

जब तुर्कों का आक्रमण भारतवर्ष में हुआ, उस समय पंजाब और उसका नजदीकी क्षेत्र सन् 1186 ई० तक महमूद गजनवी के साम्राज्य का अंग बना रहा। इसी समय गुज के तुर्कों ने गजनी के शासक खुसखशाह को गजनी से मार भगाया। वह कुछ समय तक पंजाब में रहा, पंजाब की राजधानी इस समय लाहौर थी, ये पूरी तरह मुसलमानों के आधीन थी तथा दूसरा मुसलमानी राज्य सिंध था, जिसमें उत्तर के पेशावर और सियालकोट के भाग शामिल थे तथा उसकी सीमायें जम्मू-कश्मीर तक फैली थीं।

मध्य भारत और दिल्ली के आस-पास पृथ्वीराज चौहान प्रथम एक शक्तिशाली सम्राट था, इसके संघर्ष मुसलमानों से होते रहते थे। उसके पश्चात् उसके उत्तराधिकारी अजयराज ने सन् 1112 में गजनी के एक अधिकारी बहलीम को हराकर नागौर का क्षेत्र अपने आधीन कर लिया। इसके पश्चात् विग्रह राज तृतीय ने 1167 ई० में पंजाब में गजनवी सुल्तान से झाँसी छीन लिया। उसके उत्तराधिकारी पृथ्वीराज द्वितीय ने तुर्कों से अपने राज्य की रक्षा के लिये किलेबन्दी की और तुर्कों से भटिण्डा छीन लिया। उसने अपनी राज्य की सीमाओं का विस्तार फिरोजपुर तक कर लिया। इस समय पंजाब में तुर्की राज्य का पतन हुआ, गजनी का अंतिम शासक मलिक खुसख बिलासी और निकम्मा था। वह अपने राज्य की रक्षा नहीं कर पाया। कभी-कभी उसका सेनापति हिन्दू राज्यों में आक्रमण करके उन्हें लूट ले जाता था। इस समय गजनी का सुल्तान करमाथियों के आधीन हो गया था और

सिन्ध भी सुभ्र नाम के स्थानीय जाति के आधीन हो गया था। ये सिया सम्प्रदाय के मुसलमान थे।

भारत का मध्य भाग राजपूतों के आधीन था। राजपूत अपने आप को क्षत्रियों का वंशज मानते थे, जबकि विभिन्न इतिहासकार उन्हें मिश्रित नस्ल का मानते है। ये लोग शकों, हूणों और कुषाणों के भी वंशज थे, जो हिन्दू धर्म में मिला लिये गये थे। इनका चरित्र और इनकी वीरता तुर्को से अच्छी थी। ये लोग सामन्त थे तथा झूठी यश प्रशंसा में विश्वास किया करते थे, इसी कारण राजपूतों का पतन भी हुआ। ये लोग विलासी होते थे तथा स्त्रियों को प्राप्त करने के लिये इनके युद्ध होते हैं।

'जाके बिटिया सुन्दर देखे, ताके तुरतै लेई बियाह'

आल्हखण्ड की उपरोक्त पंक्ति से इनके नैतिक पतन का मूल्यांकन किया जा सकता है इसके अतिरिक्त ये शत्रु को नीचा दिखाने के लिये बेवजह युद्ध किया करते थे-

बातन-बातन बड़-बड़ हुई गे बातन-बातन हुई गे रात।

बातन-बातन तेगा चलगे, बातन चमक उठी तलवार।।

राजपूतों के अंदर राष्ट्रीय भावना का अभाव था, उन्होंने सम्पूर्ण भारत को एक राष्ट्र के रूप में कभी नहीं देखा। वे अपने राज्य को ही राष्ट्र समझते थे, इसीलिये भारत तुर्को का गुलाम बना।

जिस समय तुर्को का आगमन हुआ, उस समय पश्चिमी भारत में अन्हिलवाड़ में चालुक्यों का शासन था। सिद्धराज जयसिंह इस वंश का शक्तिशाली शासक था, उसने सन् 1102 से लेकर 1143 तक शासन किया। उसने मालवा के परमार राज्य के अधिकांश भाग को अपने राज्य में मिला लिया। उसका युद्ध चित्तौड़ के गुहिलौतों से हुआ और उन्हें पराजित किया। उसने नाडौल और काठियावाड़ को भी जीता, किन्तु उसके बाद पुनः छोटे-छोटे राज्य स्वतन्त्र हो गये, केवल काठियावाड और गुजरात उसके अधिकार में रह गया। जब मोहम्मद गोरी ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया, उस समय इस वंश का शासक मूलराज द्वितीय था।

अजमेर में चौहानों का शासन था, 11वीं शताब्दी में अजयपाल ने इस वंश की नींव डाली। उस वंश के शासक अर्णोराज ने सन् 1153 से लेकर 1164 तक शासन किया तथा कुछ समय के लिए इस वंश ने चालुक्यों की आधीनता को स्वीकार किया। इस वंश के शासक विग्रहराज तृतीय ने सन् 1151 में तोमरों से दिल्ली और गजनवी वंश के शासकों से हाँसी छीन ली। पृथ्वीराज द्वितीय इस वंश का महत्वपूर्ण शासक हुआ, उसने सन् 1167 से लेकर 1169 तक राज्य किया। उसके पश्चात् उसका पुत्र पृथ्वीराज तृतीय उत्तराधिकारी हुआ, जो राय पिथौरा के नाम से विख्यात हुआ। इसने महोबा के चन्देल नरेश परमार्दिदेव को युद्ध में पराजित किया।

इस समय कन्नौज में गहडवाड़वंशीय राजपूत शासकों का शासन था। पहले इनका शासन बनारस, कौशल, कौशिक तथा इन्द्रप्रस्थ प्रदेशों में था, किन्तु बाद में इन्होंने अपने राज्य का विस्तार किया और इनकी राज्य सीमा पटना तक पहुंच गयी। इन्होंने सन् 1155 से लेकर 1170 तक राज्य

किया। इस वंश का अंतिम शासक जयचन्द्र था, जो मोहम्मद गोरी का समकालिक था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तर और पश्चिमी सीमा को छोड़कर राजपूतों का शासन था, किन्तु राजपूतों में एकता की भावना न होने के कारण और आपसी वैमनस्य होने के कारण इस परिक्षेत्र में और सम्पूर्ण राष्ट्र में तुर्कों के शासन की स्थापना हुयी। सुप्रसिद्ध विद्वान सतीशचन्द्र के अनुसार-1206 ई० में मुईज्जुद्दीन मुहम्मद की मृत्यु के समय तक तुर्कों ने एकल प्रयासों के बल पर बंगाल में लखनौती तक, राजस्थान में अजमेर और रथम्भौर तक, दक्षिण में उज्जैन की सीमाओं तक एवं सिन्ध में मुल्तान और ऊँच तक अपने शासन का विस्तार कर लिया था, किन्तु उन्हें कई आतंरिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और लगभग सौ वर्षो तक उनका साम्राज्य न्यूनाधिक ज्यों-का-त्यों बना रहा। तुर्को के समक्ष असंख्य आन्तरिक व बाह्य कठिनाइयां थी। सबसे पहले तो उन्हें कुछ सत्ता-च्युत शासकों, विशेषकर राजस्थान और बुन्देलखण्ड एवं निकटवर्ती क्षेत्रों जैसे बयान और ग्वालियर के राजपूत शासकों द्वारा अपने पूर्व राजक्षेत्रों को पुनः प्राप्त करने के लिए किए जाने वाले प्रयासों से निपटना था।[99] तद्युगीन राजपूतों ने एकजुट होकर तुर्कों को भारत से बाहर करने का प्रयत्न नहीं किया इसलिए राजपूत अपनी राजनीति में सफल नहीं हो सके। अतः यहाँ पर तुर्को का शासन स्थापित हो गया।

अ- सल्तनत काल में बुन्देलखण्ड की राजनीतिक स्थिति-

11वीं शताब्दी के अन्त में सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र दो भागों में विभक्त था। बुन्देलखण्ड का एक भाग चेदि एवं कल्चुरियों के हाथ में था, ये लोग जबलपुर के आस-पास शासन करते थे। दूसरा भाग चन्देलों के आधीन था, जो महोबा और कालिंजर परिक्षेत्र में शासन करते थे। इस समय चन्देल अपनी शक्ति का विस्तार कर रहे थे तथा उनका राज्य गंगा, यमुना, दोआबा के दक्षिणी भाग तक फैल गया था, बुन्देलखण्ड इनके शासन का अंग था। मदनवर्मा चन्देलवंश का शक्तिशाली शासक था, इसने मालवा के परमारों तथा गुजरात के सिद्धराज को पराजित किया तथा उसने 12वीं शताब्दी के अन्त में कल्चुरियों को भी पराजित किया। गहरवाड़ वंशीय शासक भी इससे पराजित हुए। पं० गोरेलाल तिवारी के अनुसार- मदनवर्मा का राज्य बहुत दिनों तक रहा। इसके समय के बहुत से शिलालेख मिले है। सबसे पहला लेख वि०स० 1186 का है और सबसे बाद का वि०स० 1220 का है। महोबा के निकट जो सुन्दर तालाब मदनसागर नाम का है, वह इसी का बनवाया हुआ है। तालाब के किनारे दो मन्दिर भी इसी ने बनवाए थे, जो अब तक मौजूद हैं। इसी के समय में चन्देल राज्य अपनी उन्नति के शिखर पर फिर से पहुँचा था। इसने गुर्जर प्रान्त के राजा को भी हरा दिया था। यह इसके समय के लेखों से ज्ञात होता है। मदनवर्मा के बसाए हुए नगर का नाम मदनपुर है, जो सागर जिले में हैं।[100]

सुप्रसिद्ध विद्वान डा० सुशील कुमार सुलेरे के अनुसार- चन्देल अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मदनवर्मन ने आक्रामक नीति अपनाकर चन्देलों की विलुप्त प्रतिष्ठा को पुर्नअर्जित किया

तथा राज्य सीमाओं में वृद्धि की। कालिंजर, खजुराहो, अजयगढ़, महोबा सहित बुन्देलखण्ड में मुख्य स्थान उसके राज्य में सम्मिलत थे, साथ ही बघेलखण्ड के रीवा वाले राज्य भी उसमें सम्मिलित थे। उसके राज्य की सीमा उत्तर में यमुना, दक्षिण-पश्चिम में बेतवा, पूर्व में रीवा और दक्षिण में नर्मदा तक फैली थी।[101]

सुप्रसिद्ध विद्वान केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार-मदनवर्मा के राज्यकाल में चन्देलों का तृतीय उत्थान हुआ। सन् 1129 और 1165 ई० के बीच उसने अत्यन्त ही प्रभावकारी ढंग से शासन किया। फलस्वरूप इस वंश का गौरव एक बार फिर चमक उठा। वह कालिंजर, खजुराहो, अजयगढ़ और महोबा का निर्विवाद रूप से स्वामी था। सागर, दमोह, जबलपुर, बाँदा और झांसी के वर्तमान जिले उसकी सीमा में थे। ग्वालियर भी करद रूप से आधीन रक्खा गया। मालवा के शासक पर आक्रमण करके उसकी बढ़ती उच्छृंखलता का भी उसने दमन किया। मदनवर्मन देव ने गुजरात पर महत्वपूर्ण आक्रमण किया और वहाँ के शासक सिद्धराज को संधि करने के लिए बाध्य किया। चन्देलों को इस दिशा में अभूतपूर्व सफलता मिली, जो इस सीमा तक पहुंच गई थी कि उनका संबंध अनिहल पाटन के चालुक्यों से हो गया था। मदनवर्मन की इस सफलता का कारण उसका विजय कौशल और सैन्य संगठन था।[102]

बुन्देलखण्ड में सुल्तानों के आक्रमण और उनका राजनीतिक प्रभाव :

परमार्दिदेव के शासनकाल तक किसी भी मुसलमान शासक ने जिसने दिल्ली में स्थाई सत्ता स्थापित की थी, उसने बुन्देलखण्ड को प्रभावित नहीं किया था। सर्वप्रथम मोहम्मद गोरी के गुलाम शासक कुतुबद्दीन ऐबक ने इस क्षेत्र को प्रभावित किया। उसने सन् 1197-98 में राष्ट्रकूटों को पराजित किया और उनसे बदायूँ छीन लिया। बनारस को भी कुतुबुद्दीन ऐबक ने दो बार विजित किया, किन्तु उस को मालवा में स्थाई सफलता नहीं मिली, यद्यपि उसने वहाँ अधिकार करने का प्रयत्न किया। इसके पश्चात् उसकी नजर बुन्देलखण्ड के चन्देलवंशीय शासक परमार्दिदेव के ऊपर पड़ी। कुतुबुद्दीन ऐबक ने सन् 1202 और 1203 में परमार्दिदेव की राजधानी कालिंजर पर आक्रमण किया।[310] डॉ० आर्शीवादी लाल के अनुसार- चन्देलों ने अत्यन्त वीरता और साहस के साथ युद्ध किया किन्तु शत्रु सेना की अधिकता के कारण उन्हें भागकर किले में शरण लेनी पड़ी। घेरा दीर्घकाल तक चलता रहा और परिमार्दिदेव उससे इतना परेशान हुआ कि अन्त में वह तुर्को का प्रभुत्व स्वीकार करने को तैयार हो गया, किन्तु समझौते पर हस्ताक्षर होने से पहले ही उसकी मृत्यु हो गयी। उसके मुख्यमंत्री अजयदेव ने प्रस्ताव वापस ले लिया और युद्ध जारी रखा। उसके पास किले में काफी रसद थी और पास के पहाड़ी झरनों से उसे खूब पानी मिलते रहने का विश्वास था। तुर्को ने संभवतः स्थानीय गुप्तचरों से चन्देलों की शक्ति का पता लगा लिया और चालाकी से झरने के बहाव का मार्ग बदल दिया।जब अजयदेव ने देखा कि सैनिकों के लिये पानी की एकदम कमी हो गयी है तो उसने सन्धि की प्रार्थना की और कालिंजर का किला खाली कर दिया। इस प्रकार कालिंजर, महोबा और

खजुराहो पर तुर्कों का अधिकार हो गया, जिनको उन्होंने एक सैनिक किले के रूप में संगठित कर दिया।[103] यह आक्रमण कालिंजर में हिजरी 599 तद्नुसार सन् 1202 में हुआ। इलियट डाउसन के अनुसार-जब दुर्ग के अन्दर सभी जलाशय सुखा दिये गये, तब अन्त में वह आत्मसमर्पण करने के लिये बाध्य हुआ। बीसवीं राजब, सोमवार को दुर्ग रक्षक सेना अत्यन्त छिन्न-भिन्न और दुर्बल रूप में बाहर आयी। कालिंजर दुर्ग, जो विश्वभर में सिकन्दर की दीवाल की भाँति दृढ़ता के लिये प्रसिद्ध था, हस्तगत कर लिया गया। मन्दिर मस्जिदों में परिवर्तित कर दिये गये। सौजन्य के स्थान, अक्षमाल के जप करने वालों के स्वर और प्रार्थना के लिये आमन्त्रित करने वालों की वाणी सबका अन्त हो गया। मूर्ति-पूजा का नाम ही मिटा दिया गया। पचास हजार व्यक्ति दास बनाये गये। मैदान हिन्दुओं से अलकतरे की तरह काला हो गया। हाथी, पशु और अनगिनत शस्त्रास्त्र भी विजेता के हाथ लगे-विजय की बागडोर उसके बाद महोबा की ओर प्रवर्तित की गयी और कालिंजर शासन हजबुरुद्दीन हसन अर्नाल को सौंपा गया।[104]

इल्तुतमिश का बुन्देलखण्ड में आक्रमण :-

कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के पश्चात् बुन्देलखण्ड का ग्वालियर राज्य स्वतन्त्र हो गया था। सन् 1231 ई० में इल्तुतमिश ने ग्वालियर के प्रतिहार राजा मलयवर्मन देव पर आक्रमण किया। यह युद्ध एक वर्ष तक चला, अन्त में मलयवर्मन देव की पराजय हुयी। पं० गोरेलाल तिवारी के अनुसार-इल्तुतमिश ने ग्वालियर पर यह आक्रमण विक्रम संवत् 1288 में किया, इस समय यहाँ पर सारंगदेव परिहार का राज्य था। इसमें हिन्दुओं ने बहादुरी के साथ युद्ध किया किन्तु वे हार गये। राजा सारंगदेव भी मारा गया, यहाँ की स्त्रियों ने जौहर व्रत किया।[105]

ग्वालियर के पश्चात् इल्तुतमिश ने सूबेदार मलिक तयसाई को कालिंजर जीतने के लिये भेजा। इस समय यहाँ का राजा त्रिलोक्यवर्मन था, जो तुर्की सेना का मुकाबला नहीं कर सका और कालिंजर छोड़कर भाग गया। तुर्कों ने उसे लूटा किन्तु पड़ोस के चन्देलों ने उसे इतना त्रस्त किया कि वे अधिक प्रगति न कर सके और भाग खड़े हुये।

इल्तुतमिश भी कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसने हिन्दुओं को कष्ट पहुँचाया और उनके धार्मिक स्थलों को नष्ट किया। इस सन्दर्भ में यह ऐतिहासिक साध्य उपलब्ध होता है कि उसने भेलसा के मुख्य मन्दिर को तथा उज्जैन के महाकाली के उस मन्दिर को नष्ट कर दिया था, जिसके निर्माण में तीन सौ वर्ष लगे थे। वह विक्रमादित्य तथा अन्य प्रजावत्सल राजाओं की अष्टधातु-निर्मित मूर्तियों को भी अपने साथ दिल्ली ले गया था[106]

ग्यासुद्दीन बलबन का बुन्देलखण्ड में आक्रमण :-

गयासुद्दीन बलबन ने वि०स० 1304 में अर्थात् दिसम्बर 1247 में कालिंजर दुर्ग पर चढ़ाई की, इस समय कालिंजर दुर्ग में बघेल राजा के प्रतिनिधि दलकेश्वर और मलकेश्वर का अधिकार था। यह क्षेत्र त्रिलोक्यवर्मन के अधिकार से निकल गया था। इस आक्रमण में बलबन की ओर से

नसीरुद्दीन सैन्य संचालन कर रहा था। पं० गोरेलाल तिवारी के अनुसार- इन दोनों भाइयों ने नसीरुद्दीन से घोर युद्ध किया, पर हार गये। इसने कालिंजर को मनमाना लूटा। इसके पश्चात् इसने वि०स० 1307 में नरवर में चढ़ाई की और यहाँ के शासक चहाड़देव को पराजित किया। यहाँ से वह चंदेरी होता हुआ, मालवा गया। यहाँ के राजा भी इसके आधीन हो गये। इस प्रकार नसीरुद्दीन महमूद ने बुन्देलखण्ड का बहुत सा भाग अपने आधीन कर लिया। नसीरुद्दीन ने वि०स० 1304 में बघेल राजाओं को परास्त कर कालिंजर को मनमाना लूटा। उसके जाते ही हिन्दुओं ने उसे फिर मुसलमानों से छीन लिया। अंत में इसने वि०स० 1308 में एक बड़ी सेना लेकर कालिंजर पर चढ़ाई की। इस समय इसने दिल्ली, ग्वालियर, कन्नौज और सुल्तान कोट से भी सेना बुलवाई थी। इस समय तो कालिंजर मुसलमानों के हाथ आ गया, फिर उनसे निकल कर हिन्दुओं के हाथ में चला गया। इस समय से यह किला कोई अढ़ाई सौ वर्षो तक बराबर हिन्दू राजाओं के पास रहा आया।[107] सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान मिनहाज ने उपरोक्त कथन की पुष्टि की है जबकि भारतीय विद्वान एच०वी०राय त्रिलोक्य वर्मन को ही कालिंजर का तद्युगीन शासक मानते हैं।[108] डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव के अनुसार- उसने कालिंजर के चन्देल राजा के विद्रोह को दबाया। 1251 ई० में उसने ग्वालियर के हिन्दू राजा पर चढ़ाई की, किन्तु मालवा और मध्यभारत में तुर्की सत्ता पुनः स्थापित करने का उसने प्रयत्न नहीं किया।[109]

सिकन्दर लोदी का बुन्देलखण्ड में आक्रमण :-

सन् 1502 ई० के लगभग सिकन्दर लोदी ने धौलपुर और ग्वालियर को जीतने की योजना बनाई। यह युद्ध बहुत लम्बे समय तक चला, इस समय यहाँ का राजा विनायक देव था, जिसे सुल्तान ने परास्त कर दिया, किन्तु वह ग्वालियर को नहीं जीत सका। इस समय ग्वालियर का शासक मानसिंह तोमर था, उसने युद्ध को जारी रखने के लिये आगरा में अपनी सैनिक छावनी बनाई। इस समय आगरा एक छोटा सा गाँव था और बयाना के आधीन था। सिकन्दर अपने जीवन काल में कोई विशेष सफलता नहीं प्राप्त कर सका।

इब्राहीम लोदी का बुन्देलखण्ड पर आक्रमण :-

इब्राहीम लोदी सिकन्दर लोदी का पुत्र था, उसने राजा मानसिंह को जीतने का प्रयत्न किया तथा उसके पश्चात् उसके पुत्र विक्रमाजीत से भी उसका युद्ध चलता रहा। इब्राहीम लोदी सिकन्दर लोदी के समान बुद्धिमान नहीं था। उसने ग्वालियर घेरने के लिये आजम हुमायूँ शेरवानी को 30 हजार घुड़सवार और 300 हाथियों की फौज के साथ भेजा तथा उसे सहयोग देने के लिये एक दूसरी सेना भी भेजी। उसकी सेना ने ग्वालियर दुर्ग को घेरा, पहले उसका ग्वालियर के बाहरी क्षेत्र पर अधिकार हुआ और अन्त में ग्वालियर दुर्ग पर उसकी जीत हुयी तथा विक्रमाजीत का शासन इब्राहीम लोदी के आधीन हो गया।

बुन्देलखण्ड में सुल्तानों का राजनीतिक प्रभाव :-

बुन्देलखण्ड में सुल्तानों का राजनीतिक प्रभाव बड़ा व्यापक था। विक्रम संवत् 1308 में बुन्देलखण्ड का बहुत बड़ा भाग नसीरुद्दीन महमूद के अधिकार में आ गया। वि0स0 1323 में यहाँ के नरेशों ने स्वतन्त्र होने का प्रयत्न किया, किन्तु उनके विद्रोहों को दबा दिया गया। सन् 1350 में जमालुद्दीन खिलजी ने माण्डव गढ़ पर चढ़ाई की और उसे लूटा। दमोह जनपद के बटियागढ़ स्थान में एक शिलालेख मिला है, यह विक्रम संवत् 1381 का है, इसमें ग्यासुद्दीन का उल्लेख है। इसी प्रकार का एक शिलालेख विक्रम संवत् 1385 का यहीं उपलब्ध हुआ है, जिसमें मोहम्मद तुगलक और उसके सूबेदार जुलचीखाँ का नाम लिखा है, यह चन्देरी का सूबेदार था। सल्तनत काल में कालिंजर और अजयगढ़ का क्षेत्र स्वतन्त्र था, कालपी और महोबा के प्रान्त इनके आधीन थे। यहाँ पर मोहम्मद खाँ सूबेदार था, जो बाद में स्वतन्त्र हो गया। उसकी मृत्यु के बाद मालिक वासिल मुबारिक शाह और इब्राहिम शाह यहाँ के राजा हुये। बाद में यह क्षेत्र मालवा के आधीन हो गया। तैमूर लंग के आक्रमण के समय अराजकता की स्थिति पैदा हुयी, इस समय ग्वालियर में नरसिंह राय के पुत्र ब्रह्मदेव का शासन था। इसके पहले नरसिंह राय कटेहर का राजा था, उसने मौके का फायदा उठाया और वह विक्रम संवत् 1459 में ग्वालियर का शासक बन गया। इसके पहले ग्वालियर का शासक वीरमदेव था। विक्रम संवत् 1461 में ग्वालियर, झलवार, श्रीनगर के नरेशों की सम्मिलित सेना ने मुलयकबालखाँ पर चढ़ाई की। महमूद की मृत्यु के पश्चात् दौलत खाँ लोदी शासक बना, इसने कटेहर के राजा नरसिंह पर चढ़ाई की, बाद में उसने आधीनता स्वीकार कर ली। विक्रम संवत् 1473 में दौलतखाँ कैद कर लिया गया। उस समय खिज्रखाँ सैय्यद ने विक्रम संवत् 1478 में कोटले पर आक्रमण किया, उसके बाद वह ग्वालियर की ओर आया। विक्रम सं0 1535 में ग्वालियर नरेश कीर्तिसिंह ने हुसैन शाह सर्की की सहायता की। उसका कालपी के पास जौनपुर के शासक से युद्ध हुआ, इस युद्ध में बहलोल ने जौनपुर के शासक को हरा दिया। बुन्देलखण्ड का बहुत सा भाग, जो मालवा के आधीन नहीं था, वह जौनपुर के आधीन हो गया।

सल्तनत काल के अंतिम दिनों में मुसलमान शासकों ने हिंदुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाना आरम्भ कर दिया था, परन्तु बुन्देलखण्ड में इसका अधिक जोर नहीं था। ब्राह्मणों ने हिन्दू समाज को मुसलमानों के संसर्ग से बचाने के लिये बड़े-बड़े नियम बनाये। कबीर, रामानंद, नानक और चैतन्य इत्यादि धर्मगुरु इसी समय हुये। कविवर विद्यापति ठाकुर और चंडीदास भी इसी काल के हैं।[110]

इस प्रकार हम देखते हैं कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र में सल्तनत काल के सभी शासक अपना राजनीतिक प्रभाव किसी न किसी प्रकार यहाँ छोड़ते रहे हैं। उनके अस्तित्व को समझने के लिये इस परिक्षेत्र में अभिलेखीय और पुस्तकीय साक्ष्य उपलब्ध होते हैं।

(ब) बुन्देलखण्ड में सल्तनतकाल की सामाजिक व्यवस्था :-

इस समय बुन्देलखण्ड का समाज दो भागों में विभक्त था। प्रथम भाग में वे मुसलमान शामिल किये जाते हैं, जो शासक वर्ग में शामिल थे। ये लोग तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर 16वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक तुर्कों के साथ ईरान, अरब, तथा मिश्र से अये थे। ये लोग विदेशी शासन के संरक्षक और इनके वास्तविक नेता थे। तेरहवीं शताब्दी के अंत तक तुर्कों की शासन सत्ता इनके हाथ में थी। ये लोग भारतीय मुसलमानों पर विश्वास नहीं करते थे। भारतीय मुसलमानों को राजनीति से दूर रखा गया तथा उन्हें कोई अच्छी नौकरियाँ नहीं दी गयीं। कुतुबुद्दीन ऐबक से लेकर कैकूदार तक विदेशी मुसलमानों ने अपना एकाधिकार बनाये रखा। बलबन स्वतः निम्न कुल में उत्पन्न मुसलमानों से घृणा करता था। धीरे-धीरे असंख्य विदेशी मुसलमान भारतवर्ष में आये और एक-दूसरे से घुल-मिल गये। खिल्जी शासनकाल में विदेशी मुसलमानों का एकाधिकार समाप्त हो गया और उसके स्थान पर भारतीय मुसलमानों को स्थान दिया गया, केवल गैर मुसलमानों के साथ भेद-भाव पूर्ण नीति जारी रही।

इस युग में भारतीय मुसलमान कोई विशेष सम्मान नहीं रखते थे, जबकि ये अपना मूल धर्म परित्याग करके मुसलमान बने। इनकी संख्या में धीरे-धीरे वृद्धि हो रही थी। डा० आशीर्वादी लाल के अनुसार-मुसलमानों में नीची जातियों के हिन्दू थे, जो अनेक कारणों से अपने पूर्वजों का धर्म छोड़कर मुसलमान हो गये थे। भारतीय मुसलमानों को विजेताओं की श्रेणी में सम्मिलित नही किया गया तथा उन्हें आर्थिक तथा सामाजिक विशेषाधिकारों में भी हिस्सा नहीं मिलता था। सम्पूर्ण तथाकथित गुलाम युग में इमादुलमुल्क रावत को छोड़कर किसी भी भारतीय मुसलमान को उच्च्य पद पर नही नियुक्त किया गया था। इमाद भी इसलिये उच्च्य पद पर पहुंच सका क्योकि उसने अपने माता-पिता का नाम छिपा रखा था और विदेशी मुसलमानों की सन्तान होने का बहाना बना दिया था।[111]

बलबन स्वतः किसी भारतीय मुसलमान को देखना पसंद नहीं करता था। इल्तुतमिश को भी भारतीय मुसलमानों से बहुत घृणा थी। सुप्रसिद्ध इतिहासकार बरनी इस भावना को सुल्तानों का पराभव मानता हुआ, अपने यह विचार व्यक्त करता है-राज्य के अमीर तथा नौकर सब शुद्ध तुर्की रक्त के थे और उच्च्य वंश के ताजिक थे, किन्तु इमामउद्दीन एक हिजड़ा और नपुंसक था, इसके अतिरिक्त वह हिन्दुस्तान की जातियों में से एक में उत्पन्न हुआ था। फिर भी वह इन सब अमीरों पर शासन करता था। वे इस अवस्था से तंग आ गये थे और अधिक समय तक इसे सहन नहीं कर सकते थे।[112] 14वीं शताब्दी के पश्चात् भारतीय मुसलमानों की परिस्थितियों में कुछ परिवर्तन आया और उन्हें प्रशासन में कुछ उच्च्य पद दिये गये, किन्तु प्रशासनिक नीति-निर्धारण में उन्हें कोई स्थान नहीं दिया गया। भारतीय मुसलमानो को स्वाभिमान की दृष्टि से नीचा माना जाता था।

इस समय मुसलमान दो प्रकार के थे। प्रथम श्रेणी मे वे मुसलमान थे, जो तलवार के धनी

थे। ये लोग सेना में भर्ती होते थे और युद्ध में भाग लेते थे। ये लोग विदेशी मुसलमानों की सन्तान थें, इनमें मुख्य रूप से खान, मलिक, अमीर, सिपहसलाह, सरेखेल आदि श्रेणियों थी। उपरोक्त संगठन कार्य की दृष्टि से विभाजित था। 14वीं व 15वीं शताब्दी में यह संगठन महत्वहीन हो गया। दूसरे वर्ग के मुसलमान लेखनी के धनी थे। ये लोग गैर तुर्की विदेशी और, उनके वंशज थे। इनका मुख्य काम मुंशीगिरी, अध्यापन, और धार्मिक सेवा करना था। धर्म अधिकारियों को उलेमा के नाम से जाना जाता था। ये लोग मौलवी, अध्यापक और काजी भी होते थे।

मुस्लिम समाज में सबसे नीचा स्तर शिल्पी, क्लर्क और छोटे व्यापारियों का था। मुसलमान लोग अधिकतर शहर में रहते थे, गांव में इनकी जनसंख्या बहुत कम थी। इन्हें शासक और सामन्त अपने यहाँ गुलाम रखा करते थे, जो उनके घर का काम देखते थे।

समाज में उलेमा की स्थिति :-

मुस्लिम समाज में उलेमा की स्थिति बहुत अच्छी थी। ये लोग धर्माधिकारी थे और अपने कर्तव्यों को भली प्रकार समझते थे। सल्तनत काल में इनका महत्वपूर्ण स्थान रहा, किन्तु इनसे काफी नुकसान भी हुआ। डा० आशीर्वादीलाल के अनुसार-''राज्य में उलेमा का प्रभाव तथा राजनीतिक और शासन-सम्बन्धी विषयों में उनका हस्तक्षेप अत्यधिक हानिकारक सिद्ध हुआ। उलेमा कितने ही विद्वान रहे हों, वे राजनीतिक अथवा शासक नहीं थे। वे सभी समस्याओं को संकीर्ण दृष्टिकोण से देखा करते थे, इसलिये उनकी सलाह बहुधा शासकों को कठिनाइयों में फंसा दिया करती थी। धार्मिक विषयों में भी उलेमा का प्रभाव घातक था। वे काफिरो के विरूद्ध जेहाद का उपदेश दिया करते थे। मूर्तिपूजा का सर्वनाश करना ही उनकी नीति नहीं थी, वे इस्लाम के आन्तरिक भेदों को भी पूर्णतया नष्ट करना चाहते थे।[113] कुल मिलाकर बुन्देलखण्ड में मुस्लिम समाज की वही स्थिति थी, जो भारतवर्ष के अन्य स्थानों में थी।

बुन्देलखण्ड में हिन्दुओं की सामाजिक दशा -

तुर्क शासनकाल में हिन्दुओं की जनसंख्या पूरे भारतवर्ष में 95% थी। इनके आगमन के पहले सम्पूर्ण राज्य सत्ता हिन्दुओं के हाथ में थी और यहाँ अनेक धनी सामंत थे। शासन का सम्पूर्ण राजस्व विभाग हिन्दुओं के हाथ में था। खुत चौधरी तथा मुकद्दम के पदों पर हिन्दु नियुक्त किये जाते थे। इस युग के प्रमुख व्यापारी और दुकानदार हिन्दू थे। साहूकारी का व्यवसाय हिन्दुओं के हाथ में था। अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों में मुस्लिम साहूकारों का उल्लेख भी मिलता है, ये लोग मुल्तान के थे तथा उच्च कोटि के तुर्की अमीरों और साहूकारों को रुपया उधार दिया करते थे। तद्युगीन तुर्की सेना को हिन्दू बंजारे रसद पहुंचाया करते थे। डा० आशीर्वादी लाल, के अनुसार-हिन्दुओं का एक बहुसंख्यक वर्ग कृषि से ही जीविकोपार्जन करता था। अनेक हिन्दू अध्यापन, चिकित्सा आदि पेशे भी करते होगे। ब्राह्मण लोग सामान्यतः अध्ययन तथा धार्मिक कृत्यों में अपना समय बिताते होंगे।[114]

इस देश में तुर्को ने लगभग 350 वर्ष तक शासन किया। उन्होंने अपनी विजय अभियान के

दौरान लाखों हिन्दुओं को मार डाला और लाखों स्त्रियों और बच्चों को मुसलमान बनाकर दास के रूप में बेंच दिया। जब मोहम्मद तुगलक ने तैमूर मे युद्ध किया तब एक लाख हिन्दू बन्दियों का कत्ल करवा दिया गया। हिन्दुओं का जितना उत्पीड़न तुर्क युग में हुआ, उतना कभी नहीं हुआ। तुर्कों ने कभी हिन्दुओं को उच्च्च कोटि की नौकरियां नहीं प्रदान की तथा हिन्दूओं को नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़े। डा० आशीर्वादी लाल के अनुसार-तुर्की सुल्तान तथा उनके प्रमुख अनुयायी समृद्ध हिन्दू परिवारों में अपने लिये पत्नियाँ प्राप्त करने के इच्छुक रहते थे और इस हेतु वे उच्च्च सामन्तों को अपनी लड़कियाँ देने पर विवश करते थे। मुस्लिम कानून के अनुसार इन हिन्दू लड़कियों को पहले अपने धर्म से वंचित करके मुसलमान बना लिया जाता और तब उनके साथ विवाह किया जाता था। इन सब के कारण सम्मान प्रिय हिन्दुओं को निरन्त अपमानित होना पड़ता था।[115]

तद्‌युगीन हिन्दू समाज जाति व्यवस्था पर आधारित था। तुर्कों के उत्पीड़न के कारण ये जातीय बन्धन और कठोर किये गये। तुर्क सुन्दर हिन्दू लड़कियों को अपनी पत्नियाँ बनाने का शौक रखते थे, इसलिए हिन्दू लोग बाल-विवाह करने लगे और उच्च्च-कुल की महिलायें पर्दे में रहने लगी। प्राचीन काल में उच्च्च वर्ग को छोड़कर स्त्रियों की कोई शिक्षा व्यवस्था नहीं थी। केवल लड़कों के लिए शिक्षा व्यवस्था थी। प्रत्येक गाँव में पाठशाला थी, जहाँ पढ़ने-लिखने और गणित की शिक्षा दी जाती थी। पढ़े-लिखे हिन्दू एकेश्वरवाद पर विश्वास करते थे, किन्तु अनपढ़ मूर्ति-पूजा पर विश्वास करते थे। हिन्दुओं का नैतिक और चारित्रिक जीवन उच्च्च कोटि का था। हिन्दू लोग कर्ज अदा किया करते थे और मूल धन पर ब्याज भी लिया करते थे। डा० आशीर्वादी लाल के अनुसार सम्पूर्ण सल्तनत-युग में सिद्धपाल ही पहला तथा अंतिम हिन्दू था, जिसे दिल्ली दरबार में स्थान मिल सका। वह भी इसलिए महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सका क्योकि उसका चरित्र वैसा ही था जैसा तुर्की अमीरों का। विशेषकर वजीर को भी एक ऐसे मित्र की खोज थी, जो सुल्तान का वध करने में उसको सहायता दे सकता।[116]

किसी हिन्दू को चतुर्थ श्रेणी के पद पर भी नियुक्त नही किया जा सकता था। सुल्तान की सेना में हिन्दू सैनिक निम्न पदों पर रखे जाते थे। इस सन्दर्भ में डा० आशीर्वादी लाल का कथन सत्य प्रतीत होता है- प्रकृति के कोप के कारण जब जनता के सिर कोई विपत्ति आ टूटती है, तो हिन्दू लोग वेदना से चिल्लाने लगते है, ''ईश्वर तथा तुर्क दोनों हमारे पीछे पड़े हैं।'' इन भावनाओं को सरलता से समझा जा सकता है, क्योंकि धर्म तथा पारिवारिक सम्मान यही मनुष्य की दो बाहुल्य निधियाँ है और तुर्की-शासन में इनमें से एक भी सुरक्षित नहीं थी।[117]

इस प्रकार हम देखते है कि तुर्की शासन में हिन्दुओं की स्थिति ठीक नहीं थी।

(स) सल्तनत काल में बुन्देलखण्ड की आर्थिक स्थिति -

तुर्कों के आक्रमण से पूर्व सम्पूर्ण भारत वर्ष एक धनी देश समझा जाता था। बुन्देलखण्ड भी खनिज सम्पदा से भरा हुआ था तथा चन्देल काल में जो आर्थिक समृद्धि इस क्षेत्र की थी, उसी से लालायित होकर महमूद गजनवी ने बुन्देलखण्ड के विभिन्न भागों में आक्रमण किया था। दिल्ली के

सुल्तानों ने भी बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किया था तथा उसे मनमाना लूटा। कुतुबुद्दीन ऐबक का कालिंजर आक्रमण तद्युगीन ऐतिहासिक साक्ष्य है।

हिन्दूओ की आर्थिक प्रगति का कारण कृषि उपज और खनिज सम्पदा थी। यहाँ से रूई, गन्ना, तिलहन अफीम आदि बाहर भेजी जाती थी। इस कृषि और खनिज सम्पदा से तुर्कों को पर्याप्त राजस्व प्राप्त होता था। इसके अतिरिक्त दो प्रकार के औद्योगिक संघ थे, जिनसे भी आर्थिक लाभ उपलब्ध होता था। पहले प्रकार के उद्योग राजाश्रय से संचालित होते थे और दूसरे प्रकार के उद्योग निजी स्वामित्व वाले थे। बुन्देलखण्ड में सूती, ऊनी, रेशमी, वस्त्रों की रंगाई तथा छपाई का काम चन्देरी, ललितपुर, मऊरानीपुर, दूधिया, चाँदपुर में होता था। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- करवी, चंदेरी, चरखारी, दतिया आदि में रेशम और ज़री का काम होता है।[118] धातु का कार्य छतरपुर, विजावर और श्रीनगर में होता था। कागज का कार्य कालपी में होता था तथा जूते बाँदा के खांईपार और भरूआ में बनते थे। शराब सर्वत्र बनायी जाती थी तथा मिट्टी के बर्तन प्रत्येक गांव में बनते थे। यहाँ पर उत्तम कोटि के हीरे, पन्ना पहाड़ी खेरा के पास उपलब्ध होते थे। बुन्देलखण्ड के अनेक भागों में प्रचुर मात्रा में जड़ी-बूटियाँ भी पायी जाती थी।

बुन्देलखण्ड में धन का वितरण बड़ा विषम था। कुछ सामंत और धनी व्यक्तियों के हाथ में सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था केन्द्रित थी। यहाँ का अधिकांश व्यक्ति गरीब था, जो छोटे-मोटे व्यवसाय और नौकरी से अपना भरण-पोषण करता था। इस सन्दर्भ में डा० आर्शीवादी लाल का यह कथन सत्य प्रतीत होता है- सल्तनत युग में उच्च्य सैनिक तथा असैनिक पदाधिकारियो के वेतन बहुत भारी थे। पदाधिकारी तथा सामन्त विशाल प्रासादों में रहते, अनेक दास-दासियाँ उनकी सेवा करती तथा वे विलास और वैभव का जीवन बिताते थे। मध्य-वर्ग भी, जिसमें विभिन्न पेशों के लोग, क्लर्क तथा व्यापारी सम्मिलित थे, काफी सम्पन्न था। किन्तु देश की बहुसंख्यक सामान्य जनता दरिद्र थी और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए भी उसके पास पर्याप्त साधन नहीं थे।[119] यहाँ की कृषि प्रकृति पर निर्भर थी। जब कभी समय पर वर्षा नहीं होती थी, उस समय अकाल पड़ जाया करता था, जिसमें हजारों की संख्या में व्यक्ति मर जाया करते थे। जैसा जलालुद्दीन फिरोज खिलजी और मोहम्मद तुगलक के समय में भीषण अकाल पड़ा था। बुन्देलखण्ड में भूमि की बनावट बड़ी विषम थी तथा यह क्षेत्र विन्ध्याचल की पर्वत श्रेणियों से आवृत था। यहाँ आवागमन के साधनों का आभाव था, इसलिए आकाल के दिनों में वस्तुओं के दाम बढ़ जाया करते थे। मुख्य रूप से विदेशी पर्यटकों ने तद्युगीन आर्थिक परिस्थितियों का वर्णन भ्रमण के दौरान किया है। भारत वर्ष में मार्कोपोलों 1288 में, इब्नबतूता 1334 में और माहुआ 1406 में भारत आया। इन यात्रियों ने यहाँ की आर्थिक परिस्थितियों का वर्णन किया है। बुन्देलखण्ड में भी आर्थिक स्थिति वैसी थी, जैसी अन्य क्षेत्रों में। यहाँ पर तुर्क शासन काल में बुन्देला वंश के शासकों का उदय हुआ और दक्षिणी बुल्देलखण्ड में गौड़ वंशीय शासकों की शक्ति बढ़ी। इन शासकों की वजह से तुर्क यहाँ की आर्थिक स्थिति को बहुत अधिक प्रभावित नही कर सके।

मुगल शासकों का बुन्देलखण्ड में प्रभाव

इब्राहीम लोदी सल्तन काल का अंतिम शासक था, जो बहुत ही कमजोर था। उसके समय में अनेक प्रकार की राजनीतिक उथल-पुथल पूरे भारत वर्ष में मची थी। इसका फायदा आगे चलकर मुगल आक्रमणकारी बाबर को हुआ, जो मुगल साम्राज्य का संस्थापक था। बाबर ने स्वतः अपने संस्मरण ग्रंथ तुजुक-ए बाबरी में लिखा है- जब उसने हिन्दुस्तान पर विजय प्राप्त की, उस समय सारा हिन्दुस्तान किसी एक शासक के आधीन नही था। अपितु यहाँ अनेक छोटे-छोटे राजा राज्य करते थे और उनमें से प्रत्येक अपने को सम्राट समझता था। ममलूको के समय में तो दिल्ली हिन्दुस्तान की राजधानी रही, किन्तु फिरोज तुगलक की मृत्यु के पश्चात् सल्तनत में पतन और बिखराव आ गया।[120]

केन्द्रीय सत्ता के विखराव के कारण सम्पूर्ण भारतवर्ष अलग-अलग राज्यों में विभक्त हो गया। जिस समय बाबर ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया, उस समय उसने यहॉ की केन्द्रीय शक्ति का अंदाज लगा लिया था। इस समय बंगाल मे हुसैन शाह ने स्वतन्त्र राज्य सत्ता की स्थापना की थी। सन् 1519 में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र नुसरतशाह गद्दी पर बैठा।

मालवा में इस समय खिलजियों का स्वतन्त्र शासन था, इस समय यहाँ का शासक सुल्तान महमूद द्वितीय था। इस समय मालवा के आस-पास मेवाड़ और गुजरात के राजा आपस में युद्ध किया करते थे।

गुजरात में इस समय मोहम्मद शाह द्वितीय का शासन था। सन् 1525 में उसकी मृत्यु के पश्चात् बहादुर शाह वहाँ का शासक हुआ। इस समय गुजरात की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। सन् 1531 और 1532 के लगभग बहादुर शाह ने बीदर खान देश और अहमद नगर पर अधिकार कर लिया। सन्1533 में उसने रणथम्भौर पर अधिकार कर लिया।

दक्षिण में बहमनी शासकों का अधिपत्य था, उनकी शक्ति धीरे-धीरे कमजोर पड़ती गयी। सन् 1485 में यहाँ का शासक महमूद गवान था, जो षड़यन्त्र में फंस गया और उसका राज्य कई छोटे टुकडों में बँट गया।

खानदेश में फारूकी राजवंश का अधिकार था। इसके अधिकार में असीरगढ का दुर्ग था, जो सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था। सन् 1457 से लेकर 1501 तक यहाँ आदिलखाँन द्वितीय शासन करता रहा।

सोलहवीं सताब्दी के प्रारम्भ में राजपूताना के राजपूत पुनः शक्तिशाली हो गये। इनमें सिसोदिया वंश मेवाड़ में और राठौर वंश स्वतंत्र राजवंशों के रूप में उभरे। मेवाड़ के शासक राणासंग्राम सिंह प्रमुख शक्तिशाली शासक थे।

दक्षिण में विजय नगर एक शक्तिशाली हिन्दू राज्य था। बाबर ने स्वतः यहाँ के शासक को काफिर नृपतियों में सर्वाधिक शक्तिशाली कहा हैं। इस समय यहॉ का शासक कृष्ण देव राय था। इसने

सन् 1509 से लेकर 1529 तक यहाँ शासन किया।

डा० आशीर्वादीलाल यह स्वीकार करते हैं कि ''दिल्ली की सल्तनत, जिसका राज मुहम्मद बिन तुगलक के राज्यकाल से ही आरम्भ हो गया था, अब सारे देश पर प्रभुत्व और प्रभाव जमाये रखने योग्य नहीं रहा था। इब्राहीम लोदी 1517 ई० में दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। इसका राज्य विस्तार दिल्ली, आगरा, दोआब, जौनपुर तथा बिहार के कुछ भाग तक था, जो बयाना और चन्देरी के आगे नहीं बढ़ सका। इब्राहीम लोदी मूर्ख और हठी राजा था। वह अपने अफगान सामन्तों के चरित्र और स्वभाव को भी समझ न सका।[122]

जब लोदी वंश का शासन था, उस समय सरदारों ने उसके खिलाफ विद्रोह खड़ा कर दिया, जिससे उसकी शक्ति कमजोर पड़ गयी। जिसकी वजह से सिन्ध का प्रान्त स्वतन्त्र हो गया था, यहाँ पर सुगरा राजवंश शासन करता था। इस समय कंधार का गर्वनर शाहबेग अरंगों था, बाद में उसे कंधार छोड़ने के लिये विवश किया।

इस समय पंजाब भी एक स्वतन्त्र राज्य बन गया। दौलत खां लोदी पंजाब का गर्वनर था, वह स्वतन्त्र शासक बन गया।

कश्मीर में भी स्वतन्त्र सत्ता थी। पहले यहाँ हिन्दू राजवंश का शासन था, बाद में यहाँ के शासक के नौकर मिर्जा ने राजसत्ता अपने अधिकार में कर ली और मुसलमानी राजवंश की नींव डाली। इस वंश का शासन 1339 से लेकर 1470 के बाद तक रहा। इसका सर्वाधिक चर्चित शासक सुल्तान जैनुल आबदीन हुआ है, इसे कश्मीर का अकबर कहा जाता है।

उड़ीसा में इस समय हिन्दू शासक थे, सल्तनत काल में यहाँ की राजनीतिक व्यवस्था पर कोई परिवर्तन नहीं आया।

सल्तनत का सबसे बड़ा नुकसान राजस्थान का शासको के माध्यम से हुआ। इस सन्दर्भ में डा० आशीर्वादी लाल के ये विचार तर्क संगत प्रतीत होते है- राणा सांगा के नेतृत्व में राजपूतों की वीरता ने न केवल आन्तरिक रूप से छिन्न-भिन्न दिल्ली सल्तनत के सीमा- विस्तार को रोकने मे सफलता प्राप्त की, बल्कि दिल्ली के ऊपर राजपूत राज्य स्थापित करने की इनकी आकांक्षा ने दिल्ली सल्तनत का अस्तित्व ही खतरे में डाल दिया। मेवाड़ के सिसोदियो द्वारा सुल्तान इब्राहिम को बुरी तरह पराजित होना पड़ा था, साथ ही अपने विजय अभियान पर आगे बढ़ने के तमाम आयोजन उसे त्याग देने पड़े।[123]

मुगल काल के संस्थापक बाबर का चरित्र-

भारत वर्ष में मुगल साम्राज्य की स्थापना जहीरूद्दीन मोहम्मद बाबर ने सन् 1526 में की थी। उसने एक ऐसे साम्राज्य की नींव डाली, जिसने सन् 1804 तक भारत वर्ष में अपना अस्तित्व कायम रखा। जहीरुद्दीन मोहम्मद बाबर का जन्म 14 फरवरी सन् 1483 में फरगना में हुआ था। इसके पिता का नाम उमर शेख मिर्जा था, यह फरगना का शासक था। यह पितृ पक्ष की ओर से तैमूर का पाँचवां

वंशज था और माता कुतुलुगनिगार खानम की ओर से चंगेज खाँ का 14 वाँ वंशज था तथा इसकी जाति चतगाई तुर्क थी। इसका पिता एक असन्तुष्ट शासक था तथा उसका राज्य फरगाना मावरून नहर अथवा ट्रान्स ऑक्सियान का उत्तरी भाग था। उसके पिता के भाई अहमद मिर्जा समरकन्द और बुखारा के शासक थे। बाबर के पिता की मृत्यु 8जून सन् 1494 में हो गयी, उसके पश्चात् वह यहाँ का शासक बना, इस समय इसकी आयु 4 वर्ष 11 माह की थी।

जिस समय यह उत्तराधिकारी बना, उस समय उसकी बुद्धि काफी प्रखर थी। उसने अरबी, फारसी और अपनी मातृभाषा का ज्ञान अच्छी तरह प्राप्त कर लिया था। वह प्रारम्भ से ही व्यवहार कुशल और कूटनीतिज्ञ था। सन् 1444 से लेकर 1502 तक वह फरगना का शासक रहा। उसकी दादी का नाम एहसान दौलत बेगम था, वह बहुत अनुभवी थी। बाबर ने सर्वप्रथम अपने देश की रक्षा आक्रमणकारियों से की, फिर उसने सीमा विस्तार की योजना बनाई। इसकी योजना में अनेक स्वामीभक्त सैनिक शामिल हुये। सबसे पहले उसने 1497 से 1502 के मध्य समरकन्द पर अधिकार किया, इसके पश्चात् कुछ दिनों के लिये उसकी सैन्य शक्ति कमजोर पड़ी। 1502 में वह शैबानीखाँ से पराजित हुआ, और समरकन्द उसके हाथ से निकल गया। उसने अपनी बहन का विवाह शेबानीखाँ से कर दिया। सन् 1561 में उसने शाह स्माइल की मदद से समरकंद में दोबारा विजय प्राप्त की। सन् 1512 में बाबर का युद्ध उबेदुल्ला खाँ से हुआ, इस युद्ध में बाबर पराजित हुआ। उसके पश्चात् वह पूर्वजों का राज्य प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहा। सन् 1514 और 1519 के मध्य उसने उस्ताद अली नामक तुर्क को अपना तोपची बनाया और बन्दूक धारियों की एक सेना तैयार की। इसने ईरानियों से विस्फोटकों का प्रयोग करना सीखा। उसने अपने बचपन में तैमूर के भारत आक्रमण की कथा सुनी थी इसलिए उसकी भी उत्कंठा भारत जीतने की हुई। उसने अपना एक राजदूत दौलत खाँ लोदी के यहाँ भेजा था, जिसे दौलत खाँ लोदी ने बन्दी बना लिया था। बाबर का पहला आक्रमण भारत वर्ष में सन् 1519 में हुआ तथा दूसरा आक्रमण भी उसी वर्ष हुआ। इस आक्रमण कें उसने युसुफ जई अफगानों को अपने अधिकार में कर लिया। बाबर का तीसरा आक्रमण सन् 1520 ई० में हुआ, इस अभियान में उसने बाजौर और भेरा नगर को अपने अधिकार में कर लिया । इस अभियान में सियालकोट भी उसके अधिकार में आ गया। बाबर का चौथा आक्रमण सन् 1524 में हुआ । पजांब के गर्वनर दौलत खाँ लोदी ने बाबर को आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया, इसी बीच इब्राहिम लोदी ने दौलत खाँ को दबाने का प्रयत्न किया। दौलत खाँ इब्राहिम लोदी से परास्त हुआ और भाग गया।

बाबर का अंतिम आक्रमण 21 अप्रैल सन् 1526 ई० में भारत में हुआ। इस युद्ध के सन्दर्भ में ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होते है। दौलत खाँ और गाजी खाँ भय से काँप उठे और मिलावत के दुर्ग में छिपकर बैठ गये। बाबर ने तुरन्त उस दुर्ग के चारों ओर घेरा डाल दिया और दौलत को आत्मसमपर्ण के लिए बाध्य किया। उसने दौलत खाँ को अपने सम्मुख उपस्थित किये जाने की आज्ञा

दी। बाबर ने हुक्म दिया कि'' जिन दो तलवारों को गर्दन में बाँधकर दौलत खाँ मुझसे लड़ने के लिये तैयार हुआ था। उन तलवारों को गर्दन में लटकाये हुये वह मेरे सामने उपस्थित हो।'' जैसे ही दौलतखाँ ने बाबर के सम्मुख झुकने में विलम्ब किया, बाबर ने आज्ञा दी कि उसकी टांगें खींच ली जाये। जिससे वह झुक जाये और अपने विद्रोही व्यवहार के लिये लज्जित हो। इसके पश्चात् उसे भेरा नगर में बन्दी बनाकर भेज दिया गया, किन्तु वहाँ जाते हुये मार्ग में दौलतखाँ की मृत्यु हो गयी। लगभग इसी समय आलमखाँ बड़ी दयनीय दशा में बाबर की शरण में आया। बाबर ने एक बार फिर पंजाब को सुगमता से अधिकृत कर लिया।[124] इसके पश्चात् बाबर का युद्ध इब्राहीम लोदी से हुआ, इस युद्ध में बाबर की सेना कम थी। फिर भी इसके अन्दर युद्ध कौशल था। सर्वप्रथम उसने बचाव स्थान बनाये, फिर तोपखाना रखा। तोपखाने का उस्ताद अली दाहिनी ओर और मुस्तफा बांयी ओर था। तोपखाने के पीछे गार्ड थे। बाबर ने अपनी सेना को खाइयों और मिट्टी की दीवाल से सुरक्षित किया। सेना के दाहिनी ओर तुगलामा को नियुक्त किया गया तथा अब्दुल अजीज को घुड़सवारों का सेनानायक बनाया गया। दाहिनी ओर हुमायूँ और रक्षक ख्वाजा किला, बाँईं ओर मोहम्मद सुल्तान मिर्जा और मेंहदी ख्वाजा युद्ध का नेतृत्व कर रहे थे। इस युद्ध में इब्राहीम लोदी युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। इस युद्ध में 15 हजार अन्य सैनिक भी मारे गये। ग्वालियर नरेश विक्रमाजीत जो लोदी की तरफ से युद्ध कर रहे थे, वे भी घायल हो गये। इस युद्ध के सन्दर्भ में बाबर लिखता है-''जब आक्रमण प्रारम्भ हुआ तो सूर्य नारायण ऊँचे चढ़ गये थे। युद्ध दोपहर तक चलता रहा, मेरे सैनिक विजयी हुये और शत्रु को चकनाचूर कर दिया गया। सर्वशक्तिमान परमात्मा की अपार अनुकम्पा से यह कठिन कार्य मेरे लिये सुगम बन गया और वह विशाल सेना आधे दिन में ही मिट्टी में मिल गयी।''

इस युद्ध में बाबर की विजय हुयी और उसने भारतवर्ष में स्थाई रूप से मुगल शासन की स्थापना की। इसने भारतवर्ष में जीत के लिये अनेक लोगों को उपहार दिये। इस सन्दर्भ में डा० आशीर्वादीलाल का वर्णन ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में प्राप्त किया जा सकता है- बाबर ने आदमियों को बड़ी उदारता पूर्वक पुरस्कृत किया। उसने प्रत्येक प्रमुख वेग को 6 लाख से 10 लाख दाम प्रदान किया। प्रत्येक सैनिक और शिविर-रक्षक से लेकर निकृष्ट व्यक्ति तक को लूट का भाग प्राप्त हुआ। फरगाना, खुरासान, काशगर और ईरान में अपने मित्र-मिलापियों को बाबर ने सोने, चाँदी के उपहार तथा अन्य मूल्यवान वस्तुए भेजी, जिनमें दास भी सम्मिलित थे। मक्का-मदीना, समरकन्द और हिरात जैसे तीर्थस्थानों को अमूल्य भेट भेजी गयी। काबुल के प्रत्येक निवासी- स्त्री-पुरुष, बाल-बच्चे को एक-एक चाँदी का सिक्का प्रदान किया गया। बाबर ने दिल्ली, आगरा और ग्वालियर की युगों से एकत्र अपार धन-राशि को हस्तगत कर ऐसी उदारता से वितरित किया और अपने लिए इतना कम छोड़ा कि मजाक में उसे 'कलन्दर' कहा जाने लगा। उसने यह उपहार विजय की खुशी में प्रदान किया था।[124]

तद्युगीन बुन्देलखण्ड की राजनीतिक व्यवस्था :-

जिस समय भारतवर्ष में मुगलों का अधिकार हुआ, उस समय बुन्देलखण्ड में अनेक स्वतन्त्र राज्य थे, ये निम्नलिखित थे-

1-बुन्देलखण्ड में बघेलों का राज्यः-

बुन्देलखण्ड में बघेलों के राज्य की स्थापना विक्रम संवत् 1290 में हुयी। इनका राज्य सर्वप्रथम कालिंजर के सन्निकट मड़फा में स्थापित हुआ। यहाँ पर तद्युगीन बघेलावारी और बघेलिन नाम के दो ग्राम हैं, जो इनके राज्य के ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में आज भी देखे जा सकते हैं। इस राज्य का संस्थापक व्याघ्रदेव बघेल था। ये लोग राजस्थान के अनहिलबाड़ा पाटन क्षेत्र के थे तथा चालुक्य और सोलंकी राजाओं के वंशज थे। इस वंश के राजाओं का अस्तित्व गुजरात में भी था। बघेलों के कथनानुसार व्याघ्रदेव धवल का ज्येष्ठ पुत्र था। उसने कई वर्षो तक बुन्देलखण्ड में शासन किया। यह वि०स० 1290 में कालिंजर के पास मड़फा में आया। इसके पांच पुत्र थे, इसके बाद इसका पुत्र वीरसिंह देव हुआ। यह सिकन्दर लोदी का मित्र था। हुमायूं के शासनकाल में वीर भानुदेव इस वंश का शासक था। इसने हुमायूं के परिवार की रक्षा शेरशाह सूरी से की। अकबर के जमाने में रामचन्द्र बघेल यहाँ का शासक था। इस राज्य का अस्तित्व उस काल से लेकर अब तक रहा। बाद में इस राज्य की राजधानी मड़फा से हटकर रीवा हो गयी।

बुन्देलखण्ड में गौड़ों का राज्य

बुन्देलखण्ड में गौड़ों का राज्य अतिप्राचीन है। मुगल शासकों ने खानदेश और उड़ीसा के मध्य भाग को गौड़वाना माना है, किन्तु वर्तमान समय में यह क्षेत्र नर्मदा के दक्षिण, ताप्ती और वर्धा नदियों के उत्तर में है। इनका राज्य विस्तार एक समय देवगढ़ और दुधई चांदपुर तक पहुंच गया था। पृथ्वीराज रासो के रचयिता चन्दवरबाई ने अपने ग्रंथ में गौड़ों का उल्लेख किया। पं० गोरेलाल तिवारी के अनुसार-कन्नौज में जगनायक ने आल्हा से कहा था, कि मैंने देवगढ़, चांदा और सब गौड़ देश को अपने अधिकार में कर लिया है। आल्हा के समय परमाल चन्देल राजा था और परमाल के समय देवगढ़ चन्देल राज्य में था। फिर पृथ्वीराज ने परमाल का बहुत सा राज्य ले लिया। संभवतः कीर्तिवर्मा चंदेल की मृत्यु के पश्चात् गौड़ लोगों ने यहाँ अधिकार किया हो, पर पीछे से जगनायक ने देवगढ़ फिर से वापस ले लिया हो। पृथ्वीराज के मंत्री ने परमाल के गढ़ पर चढ़ाई करने का हाल पृथ्वीराज से कहा। पृथ्वीराज रासो में जो गौड़ देश लिखा है, उसका अर्थ इसी गोंड राज्य से है।[125]

गौंडों की राजधानी प्रारम्भ में गढ़ा मंडला थी। यहाँ पर मोती महल में एक अभिलेख उपलब्ध हुआ है, इसमें गौड़ वंशीय राजाओं की वंशावली उपलब्ध हुयी है,। इस वंश का प्रथम शासक यादव राय था तथा इस वंश का शक्तिशाली शासक संग्राम शाह था, इसका एक नाम अमनदास भी था। इस वंश की वंशावली इस प्रकार है-माधव सिंह, जगन्नाथ, रघुनाथ, रुद्रदेव, बिहारी सिंह, नरसिंह देव, सूरजभान, वासुदेव, गोपालशाह, भूपाल शाह, गोपीनाथ, रामचन्द्र, सुलतान सिंह,

हरिहर देव, कृष्णदेव, जगतसिंह, महासिंह, दुरजनमल, यशकर्ण, प्रतापदित्य, यशचन्द्र, मनोहरसिंह, गोविन्दसिंह, रामचन्द्र, करन, रतनसिंह, कमलनयन, वीरसिंह, नरसिंह, त्रिभुवनराय, पृथ्वीराज, भारतीचंद, मदनसिंह, उग्रसेन, रामसिंह, ताराचंद, उदयसिंह, भानुमित्र, भवानीदास, शिवसिंह, हरिनारायण, सबलसिंह, राजसिंह दादीराय, गोरखदास, अर्जुनदास और संग्रामशाह। इस वंश का अंतिम शासक दलपति शाह था।

संग्राम शाह ने इस वंश की कीर्ति चारों और फैलाई तथा उसने संवत् 1500 से लेकर 1586 तक 52 दुर्गो पर अधिकार कर लिया। ये 52 दुर्ग इस प्रकार थे-(1)गदा (2)मारूगढ़ (3)पचेल (4) सिगोरगढ़ (5)आमोदा (6)कनोजा (7)बगमार (8)टीपागढ़ (9) रामगढ़ (10)प्रतापगढ़ (11) अमरगढ़ (12)देवहार (13)पाटनगढ़ (14)फतेहपुर हुसंगाबाद (15)निमुवागढ़ (16)भँवरगढ़ (17)बग्गी (18)घुनसौर (19)चौराई (20)डोंगर ताल (21)करवागढ़ (22)झंझनगढ़ (23)लांकागढ़ (24)सातागढ़ (25) दियागढ़ (26)बैकागढ़ (27)पवई (28)शाहनगर (29)धमौनी (30)हटा (31)मड़ियादा (32)गढ़ाकोटा (34)शाहगढ़ (35)गढ़पैहरा (36)दमोह (37)रेहली (38)इटावा (39)खिमलासा (40)गनोर (41)बाड़ी (42)चौकीगढ़ (43)राहतगढ़ (44)मकरही (45)कारोबाग (46)कुरवाई (47)रायसेन (48)भँवरसो (49)भोपाल (50)उपदगढ़ (51) पनागढ़ (52)देवरी (53)गौरझामर आदि दुर्ग उनके अधिकार में थे।[127]

गौड़ों को राजपूत वंश का माना जाता है। दलपत शाह का विवाह रानी दुर्गावती से हुआ था तथा सम्राट अकबर के जमाने में इस राज्य का प्रमुख नगर चौरागढ़ था। पं० गोरेलाल तिवारी के अनुसार-इसका राज्य विस्तार भी बहुत था। इस समय राज्य का प्रधान नगर चौरागढ़ था, यहाँ का किला संग्रामशाह ने बनवाया था। अकबरनामा का लेखक कहता है कि रानी दुर्गावती के राज्य में असंख्य धन और सत्तर हजार समृद्धशाली गाँव थे। इस राज्य की संपत्ति और विभूति मुगलों से न देखी गयी और उन्होंने गोंडवाने पर आक्रमण करने का निश्चय किया।[129] रानी दुर्गावती के पश्चात् इस वंश का अस्तित्व धूमिल पड़ गया।

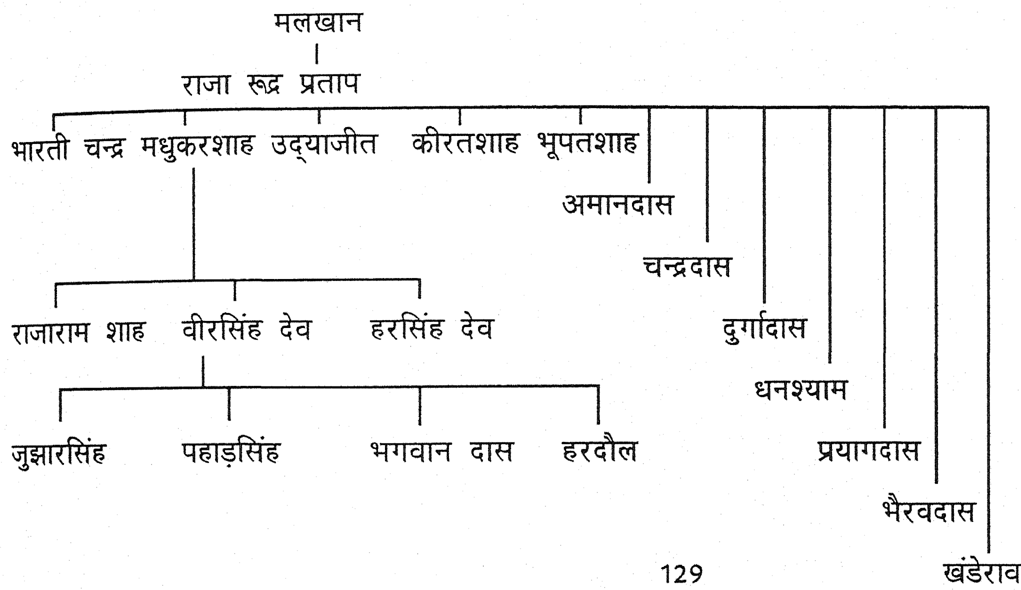
बुन्देलखण्ड में बुन्देलों का राज्य :-

बुन्देलों की सत्ता यहाँ सल्तनत काल में प्रारम्भ हो गयी थी। उसका विकास मुगल काल में हुआ। वर्तमान समय में जिस क्षेत्र में बुन्देलो ने शासन किया, उसे बुन्देलखण्ड के नाम से पुकारा जानें लगा। चन्देल काल में इस क्षेत्र को जेजाक भुक्ति अथवा जुझौति देश के नाम पुकारा जाता था। बुन्देलों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में यह किमंवदन्ती है, कि इस वशं के किसी पुरूष ने विन्ध्यवासिनी देवी का अपनी ऊँगली के रक्त से अभिवादन किया था, तभी से ये लोग बुन्देला कहलाये। बुन्देलखण्ड में इनके शासन की स्थापना पंचमदेव ने की। सर्वप्रथम यह राज्य महौनी में स्थापित हुआ, उसके पश्चात् इस वशं ने खंगारों को परास्त किया और गढ़कुडार को अपनी राजधानी बनाया। पहले बुन्देला वशं गहरवार वशं से संबंधित था। इस वंश का संस्थापक हेमकरन, करनपाल का पुत्र तथा वीर और अरिब्रह्म का भाई था। जब बुन्देलखण्ड में बुन्देलो का शासन स्थापित हुआ, उस समय चन्देल सत्ता समाप्त हो गयी थी और बुन्देलखण्ड के शासक स्वतन्त्र हो गये थे। इसका लाभ बुल्देलों ने भी उठाया

इस वशं में वीर भट्ट, करनपाल, अर्जुनपाल, सोहनपाल, सहजेन्द्र राम सिंह, अर्जुन देव, मलखान सिंह रूद्र प्रताप, भारती चन्द्र, मधुकरशाह, रामसिंह, आदि प्रसिद्व शासक हुयें । इसके पश्चात् वीर सिंह जू देव और उनके पुत्रों ने दतिया राज्य की स्थापना की। चंपतराम और छत्रसाल ने पन्ना राज्य की स्थापना की, इस प्रकार यह राज्य औरगंजेब के सामने तक काफी विस्तृत हो गया था।

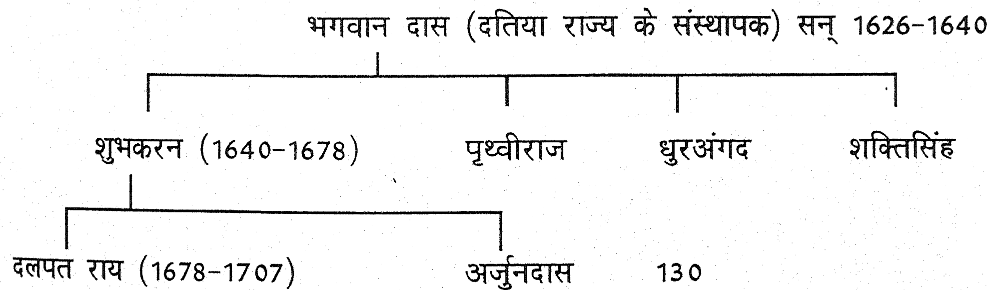
इस प्रकार हम देखते है कि बुन्देलखण्ड में मुगल शासनकाल में बुन्देले शासकों का राजनीतिक महत्व बढ़ गया था।

ओरछा शाखा



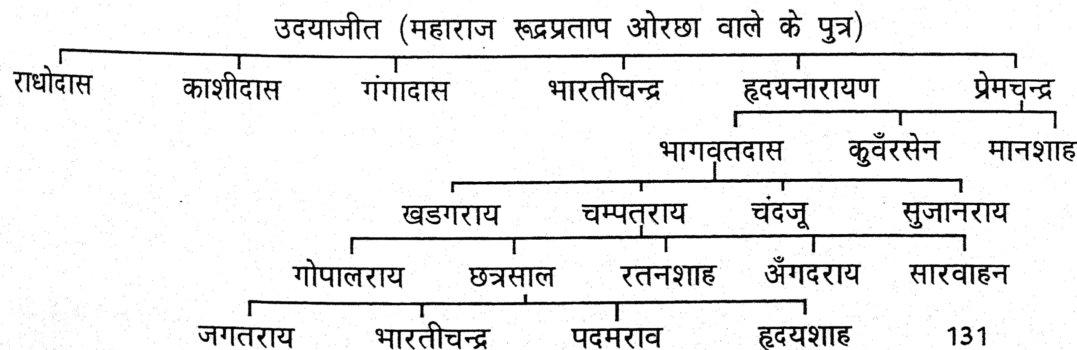
129

दतिया शाखा



130

पन्ना शाखा



131

बुन्देलखण्ड में मुगल कालीन घटनाक्रम(बाबर-मेदिनी राय युद्ध)

मुगल साम्राज्य का संस्थापक बाबर अपने राज्य का विस्तार करना चाहता था। सन् 1521 के लगभग बाबर ने भोपाल के निकट मालवा और बुन्देलखण्ड की सीमा पर स्थित चंदेरी पर आक्रमण किया । इस आक्रमण के सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० आर्शीवादी लाल का यह कथन है कि बुन्देलखण्ड की सीमा पर स्थित चन्देरी के विरूद्ध बाबर ने स्वयं अभियान किया। चन्देरी इस समय प्रसिद्ध राजपूत सरदार मेदिनीराय के अधिकार में था, जिसने मालवा के राजाओं के निर्माता के रूप में अपनी प्रतिष्ठा बना रखी थी। मुगलों ने उसके विरूद्ध घेरा डाल दिया। दुर्गरक्षकों ने अधिक समय तक सामना न करने की स्थिति का अनुभव करके, अपनी स्त्रियों को मौत के घाट उतार दिया और नंगी तलवार लेकर शत्रुओं पर टूट पड़े। उनमें से प्रत्येक अन्तिम दम तक शत्रु से लड़ता रहा। 29 जनवरी 1528 ई० को बाबर ने उस स्थान पर अधिकार कर लिया।[132]

हुमायूँ का कालिंजर अभियान-

बाबर की मृत्यु के पश्चात् जब हुमॉयू मुगल सामाज्य का शासक बना, उसने सन् 1531 ई० में कालिंजर दुर्ग पर आक्रमण किया। इस दुर्ग का शासक अफगानों का शुभ चिन्तक था। हुमायूँ का कालिंजर अभियान कई महीनों तक चलता रहा, इस अभियान में वह कालिंजर नरेश को परास्त नही कर सका, अन्त में हुमायुँ ने उससे सुलह की। पं० गोरेलाल तिवारी के अनुसार बुन्देलखण्ड का पश्चिमी भाग भी, जो बहादुर शाह के अधिकार में था, अब हुमायुँ के अधिकार में आ गया। इसने कालिंजर पर भी चढ़ाई की थी, किन्तु किला फतेह करने के पूर्व इसे वापस आना पड़ा। उस समय यहाँ चन्देलवंशीय शासक राज्य किया करता था, यहाँ के राजा ने हुमाँयू की आधीनता स्वीकार कर ली थी, इससे हुमाँयू ने फिर किले को नही घेरा।[134]

शेरशाह सूरी का कालिंजर दुर्ग पर आक्रमण

वि० स० 1600 में रायसेन को जीतने के बाद शेरशाह सूरी ने कालिजंर पर आक्रमण किया। कालिजंर में तद्‌युगीन शासक ने शेरशाह का वीरता से मुकाबला किया। बाद में यह दुर्ग शेरशाह सूरी के हाथ लगा और यहीं पर उसकी मृत्यु भी हो गयी। इस समय यहाँ कौन शासक था, इसका कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नही होता। मुसलमान इतिहासकार अहमद यादगार के अनुसार-शेरशाह ने कालिंजर पर आक्रमण इसलिए किया था, कि कालिजंर में वीरसिंह नामक बुंदेला छिपा था। वह शेरशाह का दुश्मन था। कालिजंर के लिए बुंदेलो ने खूब लड़ाई की, परन्तु शेरशाह ने कालिजंर ले ही लिया और मधुकरशाह हार गया। किन्तु यह कथन सत्य प्रतीत नहीं होता, कुछ इतिहासकारों का मत है कि इस समय कालिंजर में कीर्ति सिंह चन्देल का राज्य था। इस युद्ध में कीर्ति सिंह चन्देल भी बलिदान हुआ और बारूद में आग लग जाने के कारण शेरशाह सूरी भी यहीं मारा गया। शेरशाह सूरी की मृत्यु के पश्चात शेरशाह का पुत्र इस्लामशाह उसके साम्राज्य का स्वामी बना। वि०स० 1062 में यह चुनार से अपने पिता का धन ग्वालियर लाया और अपने राज्य विद्राहियों को उसने ग्वालियर दुर्ग

में कैद कर लिया। डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव के अनुसार-कालिंजर में आक्रमण का मुख्य कारण रीवां का राजा वीरमान बघेला, जिसे दरबार में बुलाया गया था, कालिंजर के राजा कीरत सिंह के यहां शरण पाने के लिए चला गया था। शेरशाह ने कालिंजर के राजा से प्रार्थना की थी कि राजा वीरमान को उसे सौंप दिया जाये किन्तु उसकी यह प्रार्थना ठुकरा दी गयी, जिससे अफगान बादशाह को उसके विरुद्ध कार्यवाही करने का अवसर प्राप्त हुआ।[135] यह आक्रमण 20 मई सन् 1545 में हुआ था। जब वह कालिंजर दुर्ग नहीं जीत सका, उस समय उसने सामने वाली पहाड़ी में अपनी तापें चढ़वाई, वहाँ से उसने एक तोप का गोला दुर्ग के अन्दर फेंका, जो टकराकर वापस आ गया और फट गया, जिससे उसके तोपखाने में आग लग गयी। उसका यह आक्रमण सफल हुआ और यह दुर्ग अफगानों के हाथ में आ गया। इस प्रकार 22 मई 1945 में यह दुर्ग शेरशाह ने जीता। साथ ही शेरशाह सूरी की मृत्यु भी इसी स्थल पर हो गयी तथा उसका पुत्र इस्लामशाह यहीं पर उसके राज्य का उत्तराधिकारी बना।

सम्राट अकबर का बुन्देलखण्ड पर प्रभाव-

हुमायुँ की मृत्यु के पश्चात 10 फरवरी 1556 में अकबर भारत का मुगल सम्राट घोषित किया गया। सर्वप्रथम इसका मुकाबला आदिलशाह से हुआ, यह चुनार का शासक था तथा इसका मंत्री हेमू बक्काल था। हुमायूँ की मृत्यु के पश्चाम् हेमू बक्काल ने मुगल साम्राज्य की कमजोरी का फायदा उठाते हुये ग्वालियर पर आक्रमण किया। इस समय यहाँ का गर्वनर इस्कन्दर खाँ उज्बेग था, वह हेमू से डरकर दिल्ली की ओर भाग गया तथा इस भगदड़ मे उसके तीन हजार सिपाही भी मारे गये। इस समय ग्वालियर से लेकर सतलज तक का सम्पूर्ण क्षेत्र हेमू के अधिकार में आ गया था और उसने विक्रमादित्य के नाम से अपने आप को दिल्ली का शासक घोषित कर दिया, किन्तु बाद में वह पराजित हुआ। इस समय ग्वालियर का शासक राजा राम शाह पुनः अपनी पैत्रक सम्पत्ति को प्राप्त करना चाहता था। हेमु सन् 1557 में अकबर की सेना से हार गया, इस विजय के लिए तद्युगीन सेनापति अलीकुली खाँ को खानजमाँ की उपाधि दी गयी।

सम्राट अकबर का गौड़वाना में आक्रमण -

सन् 1564 ई० तक बुन्देलखण्ड का गौड़वाना क्षेत्र अकबर के राज्य में नही था। इस राज्य की सीमा पूर्व में रतनपुर से पश्चिम में रायसेन तक और उत्तर में रीवा से लेकर दक्षिण की सरहद तक फैला हुआ था। इस समय इस राज्य की शासक रानी दुर्गावती थी, जो महोबा और कालिंजर के चन्देल शासक कीर्ति वर्मा की पुत्री थी। उसके पुत्र का नाम नारायण था, रानी उसी के नाम से शासन करती थी। वह कुशल सेना नायिका भी थी, उसकी सेना में 20 हजार घोड़े, 1000 हाथी और एक बहुत बड़ी पैदल सेना थी। इस साम्राज्य को अपने राज्य में मिलाने के लिये अकबर ने एक योजना बनाकर यहाँ आक्रमण किया। इस सन्दर्भ में डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव ने इस प्रकार के ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत किये है- अकबर ने अकारण ही गौड़वाना पर आक्रमण करने की

योजना बनाई थी। आसफखाँ के नेतृत्व में आक्रमण हेतु, जो फौज तैयार की गयी, उसमें 50 हजार सैनिक थे, किन्तु रानी दुर्गावती ने इस विशाल फौज के मुकाबले अपनी कम सेना से ही गढ़ के उत्तर नरही नामक स्थान पर दो दिन तक शत्रु का डटकर सामना किया। इसमें वीर नारायण घायल हो गया और अपनी माता के कहने से उसे युद्ध क्षेत्र से भी हट जाना पड़ा। जिससे रानी की सीमित सैनिक शक्ति क्षीण हो गयी। कुछ समय बाद बीरता पूर्वक सामना करती हुयी, रानी के भी दो तीर आकर लगे, जिनमें वह घायल हो गयी। अपने आप को शत्रु द्वारा पकड़े जाने तथा अपमानित होने की आशंका से रानी ने छुरा भोककर स्वयं अपनी हत्या कर ली।[135]

पं0 गोरेलाल तिवारी ने भी इस युद्ध का बड़ा ही मार्मिक वर्णन इस प्रकार किया - विक्रम संवत् 1610 में आसफ खां ने गोंडवाने की अतुल सम्पत्ति लुटने के उद्देश्य से उस पर चढ़ाई की। उस समय रानी दुर्गावती की फौज सिगोरगढ़ नामक किले में थी। अपनी फौज लेकर रानी लड़ने आयी, इसकी और आसफ खाँ की फौजों का सामना संग्रामपुर नामक स्थान में हुआ। संग्रामपुर सिंगोरगढ़ से दो कोस की दूरी पर है। युद्ध बहुत देर तक होता रहा। अंत में रानी की फौज का हटना पड़ा और वह गढ़े की ओर चली। रानी ने अपनी फ़ौंज गढ़ा से 12 मील की दूरी पर मंडला की तरफ की एक पहाड़ी के पास एकत्र की। यहां पर आसफ खां की फौज को हार खानी पड़ी। परन्तु इसी समय आसफ खां की सहायता के लिए उसकी और भी फौज आ पहुंची और दूसरे दिन फिर युद्ध हुआ। इस समय भी रानी दुर्गावती वीरता से लड़ती रही। दुर्भाग्यवश एक तीर उसकी आंख में ऐसा लगा, जिसे वह निकाल न सकी और निकालते ही तीर टूटकर आंख में रह गया। उसकी यह हालत देखकर उसकी फौज ने हिम्मत छोड़ दी और रानी दुर्गावती को मण्डला की ओर भागना पड़ा। इसी समय रानी दुर्गावती के गले पर दूसरा तीर लगा, जिससे उसके जीने की आशा खत्म हो गयी और अपने को मुसलमानों के हाथ से बचाने के उद्देश्य से रानी दुर्गावती अपने हाथ से अपने पेट में कटार मारकर मर गयी। वीरनारायण भी इस युद्ध में मारा गया।[136] कतिपय इतिहासकारों का मानना है कि यह युद्ध अकबर के चरित्र पर एक स्थाई कलंक है, उसे एक विधवा स्त्री के साथ अकारण युद्ध नहीं करना चाहिए। जब हम सम्राट अकबर को महान कहते है और उसके चरित्र को पूर्णिमा के चन्द्रमा की भांति प्रकाशवान मानते है। वहीं पर गौड़वाने पर यह आक्रमण चन्द्रमा में स्थायी कलंक की भांति सुशोभित होता है।

सम्राट अकबर का कालिंजर अभियान :-

सम्राट अकबर ने सन् 1569 ई0 में कालिंजर दुर्ग पर अधिकार करने के लिए मजनू खां काकशाह के नेतृत्व में एक बड़ी सेना भेजी। सम्राट अकबर का यह मानना था कि उसका पिता हुमायूँ और शेरशाह सूरी भी इस दुर्ग को जीत नहीं पाया था। इस समय यह दुर्ग रामचन्द्र बघेल के अधिकार में था, रामचन्द्र बघेल ने इस युद्ध में अकबर का सामना नहीं किया। डॉ0 आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव के अनुसार- अगस्त 1569 ई0. में मजनू खां काकशाह को उसके विरुद्ध रवाना कर दिया

गया। रामचन्द्र, चित्तौड़ और रणथम्भौर के साथ जो कुछ हुआ था, उससे परिचित था, इसलिए उसने विशेष दृढ़ता से प्रतिरोध नहीं किया और शीघ्र ही आत्मसमर्पण कर दिया। राजा को इलाहाबाद के पास एक जागीर दे दी गयी और कालिंजर को मजनू खां के अधिकार में रख दिया गया[137] पं० गोरेलाल तिवारी ने उपरोक्त युद्ध का वर्णन नहीं किया, किन्तु यह बात स्वीकार की है कि बघेल शासक रामचन्द्र ने कालिंजर दुर्ग शेरशाह के दामाद अलीखां से ले लिया था। कई इतिहासकार इसका नाम बिजली खां भी बतलाते हैं। यह उस समय कालिंजर का सुबेदार था। इस युद्ध के सन्दर्भ में गोरेलाल तिवारी केवल इतना कहते है- बघेल राजा रामचन्द्र वीरमान का पुत्र है। यह वि०स० 1612 में गद्दी पर बैठा था। इसके गद्दी पर बैठते ही इब्राहीम सूर ने चढ़ाई की, वह इस युद्ध में हार गया। किन्तु बघेल राजा रामचन्द्र ने इसके साथ बहुत ही अच्छा व्यवहार किया और इसे अतिथि के समान अपने यहां रखा। इसने वि०स० 1626 में कालिंजर और उसके आस-पास का बहुत सा प्रदेश अकबर को दे दिया।[138] गौरीशंकर द्विवेदी तथा मिश्र का कथन है कि राजा रामचन्द्र बघेल के दरबार में पुरुषोत्तम दुबे (बीरबल) और तानसेन रहा करते थे। रामचन्द्र बघेल ने इन दोनों को अकबर को सौंप दिया, जो आगे चलकर अकबर के नौ रत्न बनें।

अकबर का वीर सिंह जू देव से संघर्ष :-

अकबर के शासनकाल में ओरछा के आस-पास बुन्देलों ने अपनी शक्ति का विस्तार कर लिया था। वीर सिंह जू देव ओरछा और उसके आस पास के शासक थे। वे अकबर के पुत्र सलीम के मित्र थे तथा अकबर से उनकी शत्रुता थी। इस समय सलीम इलाहाबाद में रहता था। अकबर का प्रिय मित्र अबुल फजल, जो दक्षिण में रहता था, अकबर ने उसे सलीम के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिये दक्षिण से बुलवाया था। जब वह अकबर से मिलने के लिये आ रहा था, उसी समय सलीम ने अ़बुल फ़जल की नरवर के आस-पास 19 अगस्त 1602 ई० को ओरछा के विद्रोही बुन्देला सरदार वीर सिंह जूदेव द्वारा हत्या करवा दी। इस समाचार से अकबर बहुत दुःखी हुआ और उसने वीर सिंह जू देव को पकड़ लेने और उसे मार डालने की आज्ञा जारी कर दी। वीर सिंह जू देव वहाँ से सुरक्षित भाग निकले और जहांगीर की कृपा से जीवित बने रहे।

पं० गोरेलाल तिवारी ने इस अभियान के सन्दर्भ में यह ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत किये हैं :- वि०स० 1659 में राजा वीरसिंह जू देव ने अबुल फजल को मार डाला। जब इसकी खबर अकबर को मिली, तब उसे इस बात का बहुत दुःख हुआ। उसने दो दिन तक भोजन न किया। उसे सांत्वना देने और सहानुभूति दिखाने के लिये खानआजम, राजा राम कछवाहा, शेख फरीद, राजा भोजराय, दुर्गादास, जगन्नाथ इत्यादि दरबारी आये। इन सब लोगों ने इसे बहुत धीरज बंधाया, पर अकबर को धैर्य न हुआ। अंत में उसने वीर सिंह जूदेव को पकड़ने के लिये सेना भेजी। इस सेना के साथ राजसिंह राजाराम और रामशाह भी आये। ग्वालियर में इन्हें बेरछा के सुजानराय पंवार, प्रतापराय और सुजानशाह भी अपनी-अपनी सेना के साथ आ मिले। यहां से ये सब आंतरी आये। यह देख शहजादा

सलीम ने राजा वीरसिंह देव को युद्ध ने करने की सलाह दी।[139] कृष्ण कवि के अनुसार-अकबर के प्रधान सेनापति अबुल-फजल के मारे जाने पर, सन् 1602 में बादशाही सेना ने ओरछा विजय कर वीरसिंह का पीछा किया, किन्तु वह ओरछा के जंगलों में निकल गये। रामसिंह अपने पिता के समान योग्य, नितिश और शक्तिशाली शासक नहीं थे। इससे इनके भाई इन्द्रजीत प्रतापराय और वीरसिंह की लूट मार के कारण राज्य में अशान्ति थी।[140]

बुन्देलखण्ड में शाहजहाँ का प्रभाव-

शाहजहाँ के शासन काल में चंपतराय महेवा के जागीरदार थे, यह जागीर ओरछा राज्य में थी। चंपतराय एक बहादुर सेनानायक थे, उन्हे मुगलों की आधीनता अच्छी न लगती थी। जहांगीर की मृत्यु के पश्चात् चंपतराय ने वीरसिंह जू देव को यह सलाह दी कि वह शाहजहाँ को कर न दे। उनकी सलाह मानकर उन्होंने ओरछा राज्य को मुगलों के शासन से अलग कर लिया। यह बात शाहजहाँ को अच्छी न लगी। इस सन्दर्भ में पं० गोरेलाल तिवारी ने यह ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत किया- उसने बाकी खाँ नामक सरदार को एक बड़ी सेना के साथ में देकर बुंदेलों को वश में करने के लिये भेजा। इस समय चंपतराय, वीरसिंह देव तथा अन्य बुंदेले एक हो गये। इससे बाँकी खाँ की इस बड़ी सेना को हार खानी पड़ी। बाँकी खाँ हार मानकर वापस चला गया और बुंदेलों की स्वतन्त्रता कायम रही।[141] शाहजहाँ ने बुन्देलखण्ड के विद्रोह को शान्त करने के लिये महावत खाँ के नेतृत्व में सेनायें भेजी। डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव के अनुसार- महावत खां की सहायता करने के लिये दो और सेनायें, एक अब्दुल्ला खाँ के नेतृत्व में पूरब से तथा दूसरी खानजहाँ के नेतृत्व में दक्षिण से भेजी गयी। जूझरसिंह का एक सम्बन्धी भरतसिंह, जिसकी लालायित आंखे सदैव बुन्देलखण्ड की ओर लगी रहती थी, जूझर सिंह के विरुद्ध शाही सेना की मदद देने के लिये तोड़ लिया गया। शाहजहाँ, जिसे बुन्देला शौर्य का पूर्ण ज्ञान था। बुन्देलों को अपनी उपस्थिति से भयभीत करने के उद्देश्य से स्वयं, बुन्देलखण्ड के पड़ोसी राज्य ग्वालियर में जनवरी 1629 ई० में जा पहुंचा। अब्दुल्ला खाँ ने आक्रमण करके ओरछा पर, जो अब झांसी में है, अधिकार कर लिया और खानजहाँ ने दक्षिण की ओर से बुन्देलखण्ड को तहस करना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार जूझरसिंह चारों ओर से घिर गया। अपनी प्रजा के कई प्रमुख व्यक्तियों के विरोध से तंग आकर तथा सुदृढ़ शाही सेनाओं का सामना कर सकने में अपनी असमर्थता का अनुभव कर, उसने आत्मसमर्पण कर दिया और अपनी जागीर के एक भाग को शाहजहाँ को अर्पित कर दक्षिण में जाकर सम्राट की सेवा करने को सहमत हो गया। अतः फरवरी 1629 ई० में उसे क्षमा प्रदान की दी गयी।[142] इस संदर्भ में पं० गोरेलाल तिवारी ने इस प्रकार ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत किये हैं- इसी समय बुन्देलखण्ड में एक बड़ा अकाल पड़ा और लोगों को अन्न का कष्ट होने लगा। इस कारण बुन्देलों ने भी सोचा कि संधि कर लेना अच्छा होगा। राजा वीरसिंह देव का भी इसी समय देहान्त हो गया। इस कारण शाहजहाँ ने वीरसिंह के पुत्र जुझार सिंह को ओरछे का राजा स्वीकार किया। ऐसे ही बुन्देलों की सेना के नेता चंपतराय की वीरता की प्रशंसा कर उसे

कोंच का परगना दिया और उसकी गणना शाही दरबार के अमीरों में करना स्वीकार किया। इस प्रकार दिल्ली दरबार ने ओरछे को स्वतंत्र राज्य माना और चंपतराय के शौर्य की प्रशंसा की।[143]

औरंगजेब का बुन्देलखण्ड में प्रभाव-

. शाहजहाँ के उपरान्त जहांगीर मुगल साम्राज्य का उत्तराधिकारी बना। इस समय बुन्देलखण्ड में चंपतराय का प्रभाव बुंदेलों के मध्य में था। उसने यह कहकर मुगलों के खिलाफ विद्रोह कर दिया कि मुगलों ने बुंदेला क्षत्रियों के साथ अन्याय किया। चूंकि चंपतराय की शक्ति औरंगजेब के मुकाबले बहुत कम थी, इसलिये उसे सन् 1661 में औरंगजेब से संधि करनी पड़ी। जिस समय चंपतराय अस्तित्व में आये, उस समय ओरछा के नरेश मधुकर शाह के पुत्र रामशाह थे। रामशाह मुगल सेना का मनसबदार भी था तथा दतिया साम्राज्य, ओरछा साम्राज्य के आधीन नहीं था। इधर चंपतराय की सलाह मानकर ओरछा राज्य भी स्वतंत्र हो गया था। उत्तराधिकार के लिये ओरछा में भी संघर्ष होते रहे, किन्तु औरंगजेब की महान कृपा से चंपतराय को कोंच की जागीर उपलब्ध हो गयी थी। वि०स० 1715 में चंपतराय का दर्जा बढ़ा दिया गया था, वह दिल्ली दरबार में उमराव कहलाने लगा था तथा वह 12 हजार सवारों का मनसबदार था।

इसी बीच औरंगजेब और चंपतराय में कई कारणों से अनबन हो गयी। जब चंपतराय औरंगजेब की आज्ञा से दारा से युद्ध करने गया, उस समय उसने एक बहुत अच्छा घोड़ा पकड़ा। यह घोड़ा बहादुर खाँ का था। चंपतराय ने यह घोड़ा औरंगजेब को देने से इन्कार कर दिया। इस युद्ध पर वास्तविक प्रकाश पं० गोरेलाल तिवारी ने इस प्रकार डाला है- औरंगजेब ने चंपतराय को हुक्म दिया कि तुम इलाहाबाद शुजा से लड़ने जाओ। यह हुक्म चंपतराय को बहुत बुरा लगा और उन्होंने जाने से इन्कार कर दिया। इन कारणों के सिवाय चंपतराय का औरंगजेब के साथ बिगाड़ होने का असली कारण चंपतराय की स्वतंत्र राज्य स्थापित करने की इच्छा थी। उस समय औरंगजेब और शुजा का युद्ध खत्म न हुआ, चम्पत राय ने यही मौका औरंगजेब से स्वंतत्र होकर अपना राज्य स्थापित करने का सोचा।[144] कालान्तर में औरंगजेब ने चंपतराय से अपनी सुविधायें वापस ले ली क्योंकि चंपतराय औरंगजेब की आधीनता स्वीकार नहीं करना चाहते थे।

औरंगजेब से स्वतंत्र होकर चंपतराय ने सर्वप्रथम भांडेर को लूटा, उसके पश्चात् एरच के किले पर विजय प्राप्त की। इसी समय दतिया नरेश औरंगजेब की तरफ से चंपतराय से युद्ध करने के लिये आ गया। चंपतराय ने औरंगजेब की सेना से युद्ध किया, किन्तु इनकी सेना कम थी, इसलिये ये विजय प्राप्त नहीं कर सके तथा चंपतराय की मृत्यु वि०स० 1721 में हुयी। इन्होंने अपनी रानी लालकुंवर सहित कटार मारकर अपनी हत्या कर ली।

छत्रसाल और औरंगजेब-

छत्रसाल ने स्वतः अपने व्यक्तित्व से अपनी शक्ति का विस्तार किया। इस सन्दर्भ में शिवाजी की मित्रता से उन्हें लाभ हुआ। छत्रसाल के समय में ओरछा के राजा जसवंत सिंह थे और

दतिया का राज्य शुभकरण के हाथ में था। छत्रसाल अपने राज्य को मुगलों से स्वतंत्र कराना चाहते थे, उन्होंने वि0स0 1728 में एक सेना गठित की। इसका समाचार औरंगजेब को लगा, उसने बुन्देलों को दबाने के लिये ग्वालियर के सूबेदार फिदाई खाँ को हुक्म दिया। पं0 गोरेलाल तिवारी के अनुसार-ग्वालियर के सूबेदार फिदाई खां को जो हुक्म औरंगजेब ने दिया। उसमें यह भी लिखा था कि मुसलमान लोग बुन्देलखण्ड के लोगों को जबरदस्ती मुसलमान बनावें, जो न बने उन्हें जान से मारें, मंदिरो को तोड़े और मूर्तियों को फोड़े। औरंगजेब की फौज जब कोई देश जीतने जाती थी, तब उसे यही हुक्म दिया जाता था और जो देश औरंगजेब के राज्य में थे, वहां भी हिंदुओं की अच्छी दशा न थी।[145] छत्रसाल ने अपना प्रभाव व्यापक रूप से बढ़ा लिया था तथा मुगल सेना उससे भय खाने लगी थी। इस संदर्भ में कवि भूषण का यह पद दृष्टव्य है-

चाक चक चमू के अचाक चक चहूँ ओर,

चाक सी फिरति धाक चंपति के लाल की।

भूषण मनत पातसाही मारि जेर कीन्ही,

काहू उमराव ना करेरी करबाल की।।[146](छत्रसाल दशक) कवि भूषण

धीरे-धीरे छत्रसाल ने धमौनी, मैहर, बांसा, पर अधिकार कर लिया। उसके पश्चात् छत्रसाल ने ग्वालियर के सूबेदार पर आक्रमण किया। ग्वालियर का सुबेदार इस समय मुनौवर खाँ था, वह बड़ी सेना लेकर छत्रसाल से लड़ने आया। इस युद्ध में मुगल सेना पराजित हुयी। छत्रसाल ने ग्वालियर में लूट-पाट की, करीब सवा करोड़ रुपया और कीमती रत्न उनके हाथ लगे। उन्होंने सिंरौज के थानेदार मोहम्मद हासिम को भी परास्थ किया। धीरे-धीरे छत्रसाल के पास एक बड़ी सेना तैयार हो गयी तथा इनकी सेना के प्रमुख सरदार-रतनसाह, अमरदीवान, सबल सिंह, केशवराय परिहार, धारूशाह, प्रमार, दीवान दीपचंद बुंदेला, पृथ्वीराज, माधव सिंह, उदयभानु, अमीरसिंह, प्रताप सिंह, राव इंद्रदमन, उग्रसेन कछवाहा, जगतसिंह (बलदिवान के पुत्र), राजसिंह, जय सिंह, यादवराय, करण सिंह, गाजीशाह, गुमन सिंह दौआ। इन सब को मिलाकर एक बड़ी सेना तैयार की गयी थी। ये लोग अब पहाड़ियों न रहकर शहरों और महलों में रहते थे तथा मुसलमानों की विशाल सेना का सामना करने के लिये अच्छी तरह से तैयार थे।[147]

छत्रसाल का युद्ध दक्षिणी बुन्देलखण्ड में रणदूलह खाँ से हुआ। औरंगजेब ने उसे नीचा दिखाने के लिये दरबार के 22 वजीरों, 8 सरदारों को सेना तैयार करने का हुक्म दिया। इसका सेनापति रणदूलह खाँ बनाया गया था। रणदूलह खाँ के पास 30 हजार सवार तथा पैदल सिपाहियों की सेना थी और अच्छा तोपखाना भी था। छत्रसाल के पास भी अच्छी सेना थी। यह संग्राम गढ़ाकोटा में हुआ तथा वि0स0 1715 में छत्रसाल ने गढ़ा कोटा को अपने आधीन कर लिया। इस युद्ध में बादशाह औरंगजेब की सेना दुहरी मार को न सह सकी और रणदूलह खाँ को सागर की ओर भागना पड़ा। इस युद्ध में रणदूलह खाँ के दस सरदार और सात सौ सिपाही मारे गये और दस तोपें छत्रसाल

के हाथ लगी। छत्रप्रकाश के रचयिता लाल कवि ने इस युद्ध का वर्णन सविस्तार किया है-

जोत जामगिन में जगी, लागे नखत दिखान।

रन असमान मा, रन समान असमान।।

पहर रात भर भई लराई। गोलिन सर सैथिन झर लाई।।

खाइ घाइ सब स्वान अधानै। लोह मानि जति कोह परानै।।[148]

छत्रसाल ने सन् 1675 में पन्ना पर अपना अधिकार कर लिया और अपने गुरु प्राणनाथ की आज्ञा से उसे अपनी राजधानी बनाया। सन् 1679 से 1680 के मध्य जब जोधपुर के नाबालिग राजा जसवंत सिंह के पुत्र दुर्गादास के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा गया, उस समय औरंगजेब का विरोध दक्षिण भारत में प्रारम्भ हो गया था। उसी समय मुगल सेनापति तहाब्बर खां सेना एकत्रित करके हमीरपुर के सन्निकट छत्रसाल से युद्ध करने के लिये आ गया। इस समय छत्रसाल अपने विवाह में व्यस्त थे। छत्रसाल का युद्ध तहाब्बर खां से हुआ, इस युद्ध में 30 हजार सैनिकों ने भाग लिया। इस युद्ध का वर्णन कृष्ण कवि ने इस प्रकार किया है- इस अवसर पर छत्रसाल चुने हुए 30 हजार सवार साथ में लेकर 'सायर' की ओर रवाना हुए और पीछे से बल दिमान ने आकर तहाब्बरखां की फौज पर हमला किया। 'सायर' के किले से भी शाही सेना पर तोपों के गोले बरसाये गये। दोनों ओर से तापों और बन्दूकों की मार पड़ने से शाही सेना भाग खड़ी हुयी। जब दोनों ओर से घमासान युद्ध चल रहा था, भीतर किले में छत्रसाल की भांवरे पड़ रही थी। बाहर रण बाद्य और भीतर किले के विवाह के मंगल वाद्य एक साथ बज रहे थे। विवाह हो जाने पर छत्रसाल ने कंकण छुड़ाई के नेग में एक घोड़ा दिया था और इधर तहाब्बरखां की पराजय रूपी नेंग विजय का डंका बजाते हुए बल दिमान ने दिया।[149] तहाब्बर खां से छत्रसाल का दूसरा युद्ध कालिंजर से दो मील दूर राम नगर ग्राम में हुआ। यह युद्ध 18 दिन तक चला, इस युद्ध में भी छत्रसाल की विजय हुयी। तहाब्बर खाँ से छत्रसाल का तीसरा युद्ध सन् 1679 में हमीरपुर के पास हुआ, यह युद्ध बड़ा भयंकर था। इसमें चार हजार सेना छत्रसाल की और 13 हजार सेना मुगलों की मारी गयी। इस युद्ध के बाद राठ, पनवारी और 550 गाँव छत्रसाल के अधिकार में आये तथा 75 लाख वार्षिक आय की भूमि उन्हे प्राप्त हुयी। इसी सन् में धमौनी के फोंजदार सद्रूद्दीन से भी उनका युद्ध हुआ, इस युद्ध में सदरूद्दीन हार गया। छत्रसाल ने धमौनी को अपने अधिकार में कर लिया तथा जीत में काफी धन इन्हे मिला।

छत्रसाल का एक युद्ध सन् 1680 में ग्राम सादीपुर परगना सुमेरपुर जिला हमीरपुर में अब्दुल समद से हुआ, यह युद्ध 22 फरवरी 1680 में हुआ। इस युद्ध में छत्रसाल के भाई अगंदराय घायल हुये तथा इस युद्ध में छत्रसाल की पराजय हुई। किन्तु उनके भावी विजय अभियान में कोई फर्क नहीं पड़ा। पं० गोरेलाल तिवारी के अनुसार-अब की बार खास दिल्ली के सूबेदार अब्दुलसमद को छत्रसाल से लड़ने का हुक्म मिला, बादशाह औरंगजेब की आज्ञा पाते ही अब्दुल समद ने 30 हजार सवार और कई सौ पैदल सिपाहियों की सेना तैयार की और बुन्देल खण्ड की ओर चला। इस विशाल

सेना का मुकाम मौदहा पर हुआ। छत्रसाल भी अपनी सेना लेकर लगभग दो कोस की दूरी पर पहुँचे। उन्होने अपनी सेना के विभाग कर दिये। एक पर स्वयं छत्रसाल, दूसरे पर बलदिवान, तीसरे में कुँवरसेन घंघेरे और चौथे पर अंगद राय नियुक्त हुये। इस समय युद्ध खुले मैदान में हुआ। इस युद्ध में बादशाही फौज की सारी नजर छत्रसाल के ऊपर ही थी। एक समय देवकरण नामक बादशाही सरदार ने छत्रसाल को घेर लिया और छत्रसाल का घोड़ा भी घायल हो गया। परन्तु छत्रसाल वीरता से लड़ते रहे। यह खबर पाकर अंगदराय अचानक अपनी सेना लेकर आ पहुंचे और मुगल सेना को भगा दिया। युद्ध एक ही दिन हुआ और उसी दिन युद्ध का फैसला भी हो गया। मुगल सेना अच्छी तरह से हार गयी। अंगदराय ने मुसलमानों का तोपखाना ले लिया। उसमें 21 तोपें बुन्देलों को मिली। अब्दुल समद हार मानकर पीछे हट गया और छत्रसाल कालिंजर होते हुए पन्ना आये।[150] इस युद्ध में छत्रसाल घायल हुए। कुछ दिन पन्ना में रुकने के पश्चात उन्होंने भेलसा पर आक्रमण किया, उनसे मुकाबला करने के लिए, बहलोल खां 9 हजार सैनिकों के साथ छत्रसाल से लड़ने आया। धमौनी का सरदार इस युद्ध में पराजित हुआ और जगत सिंह नाम का एक जागीरदार भी मारा गया। छत्रसाल के हाथ में शाहगढ़ का किला भी आ गया। इस युद्ध में बहलोल खां हारा और मारा गया। इस समय छत्रसाल का राज्य विस्तार महोबा और बांदा तक विस्तृत हो गया था। सिहोड़ा का प्रबन्ध अब भी दलेल खां के सूबे में था तथा उसकी ओर से मुराद खाँ इस प्रान्त का प्रबन्ध देखता था। यहाँ छत्रसाल की सेना का युद्ध मुराद खाँ से हुआ, इस युद्ध में मुराद खां मारा गया। दलेल खां और चम्पतराय में मित्रता थी इसलिए आगे यह युद्ध नहीं चला।

छत्रसाल को पराजित करने के लिए औरंगजेब ने शाहकुली को आक्रमण करने के लिए भेजा। उसने घुरहट, कोटरा ओर जलालपुर को जीत लिया, उसके बाद वह नौली पर रूका। यहां इसका युद्ध छत्रसाल से हुआ। इस युद्ध में थोड़े समय के लिए छत्रसाल पराजित हुए। किन्तु बाद में बुन्देलों की विजय हुयी। अस्मत खां को कैद कर लिया गया। अन्त में शाहकुली हार गया और यहां से अलीपुरा की ओर भाग गया। छत्रसाल ने इसे कैद करके दण्ड दिया। इसी बीच वि०स० 1764 में औरंगजेब की मृत्यु हो गयी तथा उसके पश्चात आजम्शाह औरंगजेब का उत्तराधिकारी बना। औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त देशी नरेश स्वतन्त्र हो गये इसलिए तद्युगीन मुगल शासक ने हिन्दू राजाओं से मित्रता करनी चाही। उसने अपने वजीर खानखाना को मित्रता करने के लिए भेजा तथा लोहागढ़ जीतने के लिए उसने छत्रसाल से सहयोग भी मांगा। छत्रसाल ने वि०सं० 1668 में लोहागढ़ का दुर्ग जीतकर मुगल सम्राट को भेट कर दिया तथा शहज़ादा मुअज्जम छत्रसाल से बराबरी का व्यवहार करने लगा। तद्युगीन कवि भूषण ने महाराजा छत्रसाल की प्रशंसा इस प्रकार की है-

"राज़त् अखंड तेज छाजत सुजस बड़ो।

....

साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को।।[151]

बुन्देलखण्ड में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगलो का प्रभावः-

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल साम्राज्य अराजकता के दौर से गुजरने लगा, इस अवसर का लाभ उठाकर बुन्देलखण्ड की अनेक रियासतों ने अपने आप को स्वतन्त्र घोषित कर लिया तथा दक्षिण में साहू जी ने भी यही किया। बहादुर शाह की मृत्यु वि०स० 1749 में हुयी। उसके पश्चात् फरुखसियर दिल्ली की मुगल सत्ता का उत्तराधिकारी बना, इस समय दिल्ली में सैय्यद बन्धुओं का प्रभाव बढ़ गया था, इनके नाम अब्दुल्ला और हुसैन अली थे।

इसी समय सैय्यद बन्धुओं ने मोहम्मद खां बंगश को शासन में उच्च पदवी प्रदान की और उसे बुन्देलखण्ड के एरच, कोंच, कालपी, सेवड़ा, मौदहा, सीपरी और जालौन परगना का सुबेदार बना दिया। मोहम्मद खां बंगश ने अपनी ओर से यहां दलेल खाँ, अहमद खाँ, पीर खाँ और सुजान खाँ को अलग-अलग परगनों का प्रशासनिक अधिकार सौपा। इस बीच मुगल सम्राट मोहम्मद शाह और सैय्यद बन्धुओं में मन मुटाव हो गया। मोहम्मद बंगश ने इस अवसर का लाभ उठाया। बादशाह ने उसे 7 हजार सवारों का मनसबदार बनाया और 7 लाख रुपया ईनाम में दिये। वि०स० 1778 में मोहम्मद खां बंगश इलाहाबाद का सुबेदार बनाया गया। उसने अपनी ओर से पीर खां को कालपी का प्रशासक नियुक्त किया। इसी समय छत्रसाल ने उस पर आक्रमण करके पीरखां को समस्त क्षेत्र अपने अधिकार में कर लिया और कालपी में बनवाई गयी मस्जिदे तुड़वा दी गयी। इस बात को मोहम्मद बंगश सहन नहीं कर सका। उसने कई बार छत्रसाल पर आक्रमण किये, उन आक्रमणों में वह सफल नहीं हो सका। मोहमद बंगश का एक मित्र दलेल खाँ था, जो कभी हिन्दू राठौर वंश का क्षत्रिय था। छत्रसाल चाहते थे, दलेल खां उसको सहयोग करें, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। छत्रसाल से युद्ध करने के लिए उसने दिल्ली दरबार से सहायता मांगी। दिल्ली के अमीर-उल-उमरा खां-दौरान ने बहुत सी सेना बंगश की सहायता के लिए भेजी। इस सब सेना को एकत्र करके बंगश ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। बाँदा और सेहुड़ा पर उसने कई धावे किये। परन्तु इसी समय मराठों ने ग्वालियर पर आक्रमण कर दिया, जिससे मुहम्मद बंगश को ग्वालियर की ओर जाना पड़ा। जब बंगश ग्वालियर की ओर गया, तब राजा छत्रसाल ने बंगश के प्रदेशों पर आक्रमण कर दिये, इसलिए बंगश फिर इलाहाबाद को लौट आया।[152]

एक ऐसा ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध हुआ है जिसमें स्वतः छत्रसाल ने अपने पुत्रों की निंदा की है और दलेल खां की तारीफ की है तथा उसके युद्ध कौशल को सराहा है।

हिरदेसाह से नहि छली, कीरत से न कपूत।

....

....

....

तब दलेल भुइसा गिरे खड़क न घाई कीन।।[153]

कृष्ण कवि ने मोहम्मद वंगश का परिचय इस प्रकार दिया है- मुहम्मद खाँ बंगश करलानी कागजाई नामक पठान जाति का था। यह जाति कोहाट के पहाड़ी इलाका, जिसे वंगश कहते थे, उसी के आस-पास बसी थी, इससे वहां के पठान बंगश कहे जाते थे। इनके बहुत से बंगश जीविका की खोज करते हुये, दोआव में आकर फर्रूखाबाद से 21 मील पश्चिम मऊ रशीदाबाद के आस-पास बस गये थे। मुहम्मद खाँ बंगश का पिता मलिक ऐन खाँ औरंगजेब के जमाने में मऊ-रशीदाबाद चला आया था। उसके हिम्मत खाँ और मोहम्मद खाँ नाम के दो पुत्र थे। पिता के मरने पर हिम्मत खाँ मुगल सेना में भर्ती होकर, दक्षिण के युद्ध में मारा गया। मुहम्मद खाँ 1665 ई० के लगभग 21 वर्ष की उम्र में यानीस खाँ बंगश के गिरोह में शामिल हो गया। यासीन खाँ मऊ-रशीदाबाद के पठानों में सबसे दुःसाहसी और शक्तिशाली गिरोह का मुखिया था।[154] बाद में वह मुगल साम्राज्य का प्रिय सैनिक बन गया।

जब मोहम्मद बंगश की ओर से गुलाम दिलेर खाँ कालपी और जलालपुर का प्रशासन देखता था, उस समय छत्रसाल के पुत्र जगतराय ने उसके ऊपर आक्रमण किया। यह युद्ध 1720 में हुआ तथा 21 मई सन् 1721 तक यह युद्ध बराबर चलता रहा। इस युद्ध में दिलेर खाँ मारा गया। दिलेर खाँ का परिचय इस प्रकार प्राप्त होता है-

-दिलेर खाँ का परिचय-

बंगश को चेला प्रबल, भयो गुलाम दिलेर।

....

मुसलमान वंगश इनहिं, लयौ बना सिरमौर।।3।।[155]

हरिकेश कविकृत जगतराज दिग्विजय नामक ग्रंथ में इस युद्ध का सविस्तार वर्णन किया है, यह युद्ध नाद और गहबरा के मैदान में हुआ। इस युद्ध में जगतराय घायल हुये और सुंगरा के रामसिंह युद्ध में शहीद हुये तथा कुल मिलाकर 1200 बुंदेले सैनिक वीरगति को प्राप्त हुये। रामसिंह की विधवा पत्नी विजय कुंवरि युद्ध भूमि में हाथी में सवार होकर लड़ने आयी और अपने पति के शव को उठा ले गयी। कवि भूषण ने भी इस युद्ध का सटीक वर्णन इस प्रकार किया है-

हरै-हरै हिलियों त्यों पिंलियों बुन्देल वीर,
हरीरी चराई मौत नरसिंह गढ़ मार की।
आसपास वारी लगी लाल पर श्यान हूँ कि,
भूषण सुजान कहै लागे न उवार की ।।
नवल संग जगतराय ढूँक्यौं तुवक लेय
मार बगदायौ मूंज खाई आँत सार की।
भागत दलेला क्यों अकेला यार छोड़ छोड़,
भारत बुन्देला रूचि राखत शिकार की।।[156] कवि भूषण।।

मोहम्मद बंगश से सन् 1724 में बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किया, उसका यह आक्रमण हिन्दू धर्म के विनाश के लिए हुआ था। इस युद्ध में मुकाबला करने के लिये हिन्दू और मुसलमान दोनो ही प्रतिज्ञाबद्ध थे। इस युद्ध में मोहम्मद बंगश के पास 15 हजार शक्तिशाली सैनिक थे, जिसकी सेना का प्रथम पड़ाव कालपी के सन्निकट भोगीपुर में पडा।[157] यह युद्ध लगातार छः महीनें तक चलता रहा तथा यह बाँदा जनपद में शेरपुर सिहोड़ा तक विस्तृत हो गया। इस समय पन्ना नरेश हृदयशाह रीवाँ राज्य में थे शासन कर रहे थे। इनकी सेना में 20 हजार सवार और 1 लाख सैनिक थे। मोहम्मद बंगश के जाते ही बुन्देलखण्ड का प्रभाव पुनः बढ़ गया और बुन्देलों ने अपनी प्रभुसत्ता दोबारा कायम कर ली। मोहम्मद बंगश ने सन् 1726 से लेकर सन् 1729 के मध्य अनेक बार आक्रमण किये। 2 फरवरी सन् 1727 में मोहम्मद बंगश ने प्रयाग के पास यमुना नदी को पार कर अपनी 20 हजार सेना के साथ बुन्देलखण्ड पर आक्रमण कर दिया। इस सेना का सेनापति उसका तृतीय पुत्र अकबर खां था। इस युद्ध में कुछ देशी राजाओं ने भी मोहम्मद बंगश का साथ दिया। उसने इस क्षेत्र में बुन्देलों का अधिकार हटाने के लिए उसने लूक, चौखण्डी, गड़, ककरेड़ी, कल्याणपुर, रामनगर, बीरसिंहपुर माध ावगढ़ और सिंहोड़ा के समीप तक आक्रमण किया। इस समय बुन्देलों की सेना कर्वी के सन्निकट ताराहवन किले में थी। इसके पास 12 हजार सवार और 12 हजार पैदल सिपाही थे। इस सेना का नेतृत्व छत्रसाल के नाती समा सिंह कर रहे थे तथा इसके नेतृत्व में तीन दुर्ग और थे। इस युद्ध में छत्रसाल की पराजय हुयी तथा यह युद्ध 12 दिसम्बर 1727 तक चला। युद्ध के बाद कायम खां का अधिकार छोटे-मोटे किलों पर हो गया।[158] इसी समय मोहम्मद बंगश ने सिहोड़ा से पश्चिम की ओर इचौली में आक्रमण किया। इधर जब छत्रसाल के पास मोहम्मद बंगश से अकेले युद्ध करने का साहस न रहा, तो उसने पेशवा बाजीराव को यह पत्र लिखा और उसे अपने दूत के माध्यम से पूना भेजा-

जो बीती गजरात पर, सो बीती अब आय।
बाजी जात बुन्देल की, राखों बाजीराय।। [159]

यह पत्र पाकर बाजीराव पेशवा मार्च सन् 1729 में अपनी सेना के सहित जैतपुर के समीप आ गया। इस समय छत्रसाल ने साम, दाम, दण्ड, भेद से काम लिया। उनके पुत्र जगतराय और हृदयशाह भी युद्ध में भाग लेने के लिये आये। सन् 1728 में कायम खां के वापिस जाते ही समासिंह ने पुनः उस क्षेत्र पर अपनी सत्ता स्थापित कर ली। मोहम्मद बंगश से मोर्चा लेने के लिये जगत राज के सहायक हिरदेशाह और हिन्दूपत चन्देल भी अपनी-अपनी सेनाओं सहित युद्ध स्थल पर पहुंच गये थे। इस समय बुन्देलों की संयुक्त सेना में लगभग 20000 सवार और 40000 पैदल सैनिक थे। जगतराय की निजी सेना में पन्द्रह हजार सवार थे। बंगश के पास प्रारम्भ में 15-16 हजार सवार थे और नयी भरती के सैनिक इस सेना में अतिरिक्त थे। इचौली का युद्ध सन् 1727 को प्रारम्भ हुआ था।[160] यह युद्ध हृदयशाह और मोहम्मद बंगश से हुआ। उसके बाद यह युद्ध महोबा के सन्निकट सालहट की पहाड़ियों पर हुआ। उसके पश्चात् यह युद्ध जैतपुर में हुआ। जैतपुर युद्ध में हृदयशाह और

जगतराय की संयुक्त सेना में 20 हजार सवार और 40 हजार पैदल सैनिक थे, इसके अतिरिक्त 20 हजार सवार और एक लाख पैदल सैनिक छत्रसाल के सहयोग के लिये आ गये थे। जबकि मोहम्मद बंगश की सेना के पास 15 या 16 हजार सवार और उसके भाई हादी दाद खां और लड़के कायम खां के पास 12 हजार सवार और 12 हजार पैदल सैनिक थे। यह युद्ध काफी दिनों तक चलता रहा। इस समय अनेक हिन्दू राजाओं ने मोहम्मद बंगश का साथ दिया। इनमें ओरछा के राजा उदोतसिंह, दतिया के राजा रामचन्द्र, सिहोड़ा के जागीरदार पृथ्वी सिंह, चन्देरी के राजा दुर्जन सिंह, अष्टगढ़ी के राजा व जागीरदार, मौदहा के जागीरदार जय सिंह के अतिरिक्त सैय्यद नजीमुद्दीन अली खां, साबित खां, जॉनिसार खां, बजारत अली खां मोहम्मद बंगश के साथ थे। यदि ऐन वक्त पर पेशवा बाजीराव की सेना छत्रसाल के सहयोग के लिये न आती, तो उन्हें पराजित होना पड़ता। यह सेना 29 नवम्बर सन् 1728 को अमझेरा के युद्ध को जीतती हुयी, 12 मार्च सन् 1729 में बुन्देलखण्ड पहुंची। बाजीराव पेशवा ने आपा जी को यह सूचना दी कि वह बुन्देलखण्ड में शीघ्र प्रवेश करे।[161] सरदेसाई के अनुसार-बाजीराव के पास करीब 25 हजार सवार थे। पिलाजी जाघव, नारो शंकर, तुफोजी पवार तथा दावलजी सोमवंशी सदृश विश्वस्त व्यक्ति इनके नेता थे। 12 मार्च को यह महोबा पहुंच गया। यहां पर छत्रसाल के पुत्र ने उसका स्वागत किया। अगले दिन छत्रसाल स्वयं घेरे से भागकर विविध उपहारों व सम्मानित राजचिन्हों सहित उसके समक्ष उपस्थित हुआ। बाजीराव बंगश के विरुद्ध आगे बढ़ा।[162] राधाकृष्ण बुन्देली के अनुसार-बाजीराव को जब यह ज्ञात हुआ कि कायम खां फौज सहित आ रहा है तो उसने पिता पुत्र को एक साथ न मिलने देने के लिये कायम खां के विरुद्ध अभियान किया। जैतपुर(बेलाताल) के निकट कायम खां परास्त हुआ और अपने थोड़े से अनुचरों सहित भाग निकला। उसने मुश्किल से अपने प्राणों की रक्षा की। रण स्थल से पिलाजी जाधव लिखता है कि 70 हजार सैनिकों की नयी फौज लेकर कायम खां बंगश ने हमारे विरुद्ध प्रयास किया। हमने उसको पिता से मिलने से रोक दिया। भयंकरता से उससे युद्ध किया, रक्तपात के बाद वह पूर्णतः परास्त हो गया। इस युद्ध की लूट में 3 हजार घोड़े और तेरह हाथी प्राप्त हुये। मुहम्मद बंगश को परास्त करने के पश्चात् उससे यह प्रतिज्ञा कराई गयी, कि वह दुबारा बुन्देलखण्ड में आक्रमण नहीं करेगा।[163] एक कवि ने छत्रसाल की प्रशंसा करते हुये उनके मोहम्मद बंगश के साथ युद्ध को इस प्रकार वर्णित किया है-

''देवगढ़ देश नाहि दक्खिन नरेश नाही,
चांदाबाद नहीं जहां घने महल पाई हो।
सौदागर सान नाही देवन को थान नाही,
जहां तुम पाहुने लै बहुतक उठ घहिहो।।
मै सो सुन चंपत को युद्ध बोच लैहो हाथ,
यह जिय जान उलटी चौथ दे पठाइयों।

लिखदौ परवाना महाराज छत्रसाल जू ने,

औरन के धोखे में यहां कबहूँ न आइहो।[164]

सन् 1729 में मोहम्मद बंगश युद्ध हार गया तथा युद्ध जीतने के अवसर पर एक समारोह का आयोजन किया गया। इस समारोह में जैतपुर में छत्रसाल ने बाजीराव पेशवा को अपना तृतीय पुत्र माना और अपनी पुत्री मस्तानी का विवाह बाजीराव पेशवा से कर दिया। यद्यपि मस्तानी की उत्पत्ति के सन्दर्भ में ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते, फिर भी राधाकृष्ण बुन्देली के अनुसार मस्तानी छत्रसाल की 19वीं रानी, जो हुजूरिन रानी के नाम से विख्यात थी, की पुत्री थी तथा उसके दो भाई खानजहां और समशेर खां थे। उन्होंने अपने राज्य का एक भाग भी बाजीराव पेशवा को दिया। छत्रसाल के जीवन के यह अन्तिम दिन थे। कुछ दिनों पश्चात् छत्रसाल का शान्तिपूर्ण और यशस्वी जीवन समाप्त होने वाला था। उसने बाजीराव पेशवा का यथोचित सम्मान किया। उसे बहुत सा धन दिया। उसके सम्मान में जैतपुर में खुले दरबार का आयोजन किया। हृदय शाह और जगतराय को पेशवा के सामने उपस्थित कर दिया और बाजीराव के ऊपर उनकी रक्षा का भार सौंप दिया। साथ ही अपने राज्य का 1/3 भाग जागीर के रूप में उसे प्रदान किया है। उसने बाजीराव को अपना तृतीय पुत्र अथवा दामाद माना।[165]

डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने भी इस युद्ध का मार्मिक वर्णन किया है- मुहम्मद खाँ बंगश का पुत्र कायम खाँ अपने पिता की सैन्यशक्ति बढ़ाने के लिये आ रहा था, किन्तु इन मित्रों, छत्रसाल और बाजीराव ने जैतपुर के निकट उसे खदेड़ दिया। इसके बाद उन्होने स्वयं मुहम्मद खाँ पर आक्रमण किया और उसे हरा दिया। इस युद्ध में बहुत अधिक हत्यायें हुई। जब मुहम्मद खाँ ने इस बात का लिखित वचन दें दिया, कि वह बुन्देलखण्ड जाकर छत्रसाल को फिर कभी तँग नहीं करेगा, तब उसे फरूखाबाद जाने की आज्ञा दे दी गयी। छत्रसाल ने खुला दरबार किया और अपने दोनों पुत्र हिरदेशाह और जगतराय को बाजीराव के संरक्षण में सौंप दिया। उसने बाजीराव को अपने राज्य का एक बड़ा भाग भी दे दिया, किन्तु शर्त यह लगा दी कि वह (बाजीराव) उसके पुत्रों के साथ अपने छोटे भाइयों जैसा व्यवहार करेगा और सदैव उनकी रक्षा करता रहेगा। शायद इसी समय छत्रसाल ने बाजीराव को सुन्दरी मस्तानी भेंट की।[166]

मोहम्मद बंगश और उसकी मृत्यु के सन्दर्भ में कवि भूषण का यह उद्गार दृष्टव्य है-

बालपनै में तहाब्बखान को, सैन्य समेत अचैगवो भाई।

''भूषण'' ज्वानी में रौंद करी, सु समृद्ध अचै कुछु थान न पाई।।

वैश बुढ़ापे की भूख बढ़ी, गयो बंगश बंश समेत चबाई।

खाये मलेच्छन के छुकरा पै तक डुकरा कें डकार न आई।।[167]

मोहम्मद बंगश के छत्रसाल से युद्ध के बारे में जिस प्रकार से पठानों की हार हुयी और बुन्देलों की जीत हुयी, उसके सन्दर्भ में पं० गोरेलाल तिवारी ने यह विचार प्रस्तुत किये हैं- जिन

मुसलमानों ने अपने हथियार छोड़कर मराठों से अभयदान मांगा, उन्हें बाजीराव पेशवा ने क्षमा प्रदान करके छोड़ दिया। इसी समय कुछ थोड़े से पठानों की सहायता से मोहम्मद खां बंगश जैतपुर का किला छोड़कर भाग गया और मराठों और बुन्देलों ने उस किले पर अधिकार कर लिया। फिर वह किला छत्रसाल महाराज के अधिकार में रहा। इस प्रकार इस बड़े युद्ध में भी मराठों की सहायता से बुंदेलों की विजय श्री प्राप्त हुयी। इस किले के लेने में छः मास लगे थे।[168]

दिल्ली में मुगलों की शक्ति कमजोर होने के कारण छत्रसाल के पश्चात् मुसलमानों ने कोई विशेष राजनीतिक प्रभाव नहीं डाला। केवल छोटी-मोटी घटनायें यदा कदा हो जाती थी। धीरे-धीरे हिन्दू और मुसलमानों के बीच फैली हुयी नफरत की भावनायें दूर हो रही थी।

बुन्देलखण्ड में मुगलों के प्रभाव की समीक्षा-

सल्तनत काल के उपरान्त मुगलों की सत्ता सम्पूर्ण भारतवर्ष में सन् 1526 ई० के बाद स्थापित हुयी। इस साम्राज्य का संस्थापक बाबर था। मुगल साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् बाबर बहुत ही जल्दी स्वर्गवासी हो गया, फिर भी उसने बुन्देलखण्ड को प्रभावित किया। बाबर के पश्चात् हुमायूँ ने कालिंजर आदि क्षेत्रों में आक्रमण किया, उसके पश्चात् कुछ समय के लिये अफगानों की सत्ता यहां पुनः प्रारम्भ हुयी। इस वंश के प्रभावशाली शासक शेरशाह सूरी ने कालिंजर दुर्ग को जीतने का यत्न किया और वहीं उसकी मृत्यु हो गयी। मुगल सम्राट अकबर ने गौड़वाना, कालिंजर तथा बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों को अपने अधिकार में कर लिया था। अकबर के ही शासन काल में वीरसिंह जू देव ने अबुल फजल का वध करके अकबर का विरोध किया था, किन्तु जहांगीर से उसकी मित्रता थी। शाहजहां के शासनकाल में भी बुंदेलों का विद्रोह मुगलों से चलता रहा। औरंगजेब के शासनकाल में मुगलों के विरुद्ध संघर्ष और तेज हुआ, उसका मूल कारण यह था कि औरंगजेब हिन्दू धर्म का घोर विरोधी था। उसने हिन्दू धर्म को क्षति पहुंचाने का प्रयत्न किया। औरंगजेब की हिन्दू विरोधी भावना के कारण मुगल साम्राज्य की नींव ढहने लगी, जिसका परिणाम उसके उत्तराधिकारियों ने भोगा।

यदि सल्तनत काल के शासकों की तुलना मुगल काल के शासकों से की जाये तो लगता है कि सल्तनत काल के शासकों की भावना हिन्दुओं के प्रति अत्यन्त कठोर थी। वे जेहाद के नाम पर हिन्दू धर्म के धार्मिक स्थलों को नष्ट करने में ज्यादा दिलचस्पी लेते थे तथा लोगों को जबरन मुसलमान भी बनाते थे। उन्होंने हिन्दुओं को दबाने के लिये जजिया कर लगाया तथा हिन्दुओं को किसी भी महत्वपूर्ण पद में नियुक्त नहीं किया। सुल्तानों का भारतीय मुसलमानों के साथ भी अच्छा व्यवहार नहीं रहा, वे उन्हें वर्णशंकर और काफिरों की औलाद मानते रहे। इसकी तुलना में मुगल बादशाहों ने हिन्दुओं के साथ अच्छा व्यवहार किया। बाबर और औरंगजेब को छोड़कर किसी अन्य बादशाह ने हिन्दुओं को परेशान नहीं किया। सम्राट अकबर, जहांगीर और शाहजहां के शासनकाल में हिन्दुओं का सम्मान किया गया और उन्हें उच्च्य राजनीतिक पद दिये गये, इससे अनेक हिन्दू राजा

मुगल शासकों के मित्र बन गये और समय पर वे उनकी सहायता भी करते रहे। यहां तक कि चंपतराय और छत्रसाल ने भी मुगलों को सहयोग प्रदान किया था। औरंगजेब की हिन्दू विरोधी राजनीति के कारण जो कटुता पैदा हुयी उससे मुगल साम्राज्य की काफी हानि उठानी पड़ी तथा मुगल साम्राज्य के आधीन रियासते, जो बुन्देलखण्ड में थी, वे भी मुगलों के हाथ से निकल गयी।

मुगल शासनकाल में बुन्देलखण्ड की सामाजिक व्यवस्था-

मुगल काल में समाज मुख्य रूप से दो धर्मो के बीच विभाजित था। ये धर्म हिन्दू और इस्लाम धर्म के नाम से जाने जाते थे। हिन्दू और मुसलमानों के बीच जो कटुता की भावना सल्तनत काल में उत्पन्न हो गयी थी, उसे दूर करने का प्रयत्न सम्राट अकबर जहांगीर और शाहजहां ने किया। इन्होंने हिन्दुओं के साथ वैवाहिक संबंध भी स्थापित किये और हिन्दुओं का सम्मान भी किया। इस्लाम धर्म, जो कभी तलवार के बलबूते पर यहां फैलाया गया था, मुगल काल में ऐसी कोई हरकत नहीं हुयी बल्कि हिन्दु मुसलमानों में प्रेम भावना उत्पन्न करने के प्रयत्न किये गये। हिन्दू वर्ग जो कभी मुसलमानों को अपना घोर शत्रु समझता था, वह अब मुसलमानों को अपना मित्र मानने लगा। इस समय यहां की सामाजिक स्थिति का अध्ययन इस प्रकार किया जा सकता है-

हिन्दू समाज-

इस युग में हिन्दू समाज थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ-आश्रम व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था का अनुपालन करता था। 18वीं शताब्दी में विभिन्न गुटों और समुदाय के सामाजिक व आर्थिक हित, जाति प्रथा, पारिवारिक और धार्मिक संस्थाओं के जटिल नियमों द्वारा संचालित थे। समाज के नैतिक नियम कुछ विशेष वर्ग या समुदाय के निजी हितों पर आधारित हो गये थे, जिससे अन्य वर्ग के सदस्यों के दैहिक अधिकार सीमित रह गये थे। सम्पूर्ण समाज का संचालन जाति नियमों पर आधारित था। समाज में उत्पादन व्यवस्था के हित भी जाति प्रथा से जुड़े हुए थे। इस स्थिति में समाज के विभिन्न वर्गो को एकाधिकार के रूप में आर्थिक व्यवसाय प्रदान किये गये थे, जो जाति विभाजन के अनुकूल थे।[169]

भारत वर्ष में हिन्दू जाति के लोग विभिन्न वर्ण और सम्प्रदायों में विभाजित थे। डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव के अनुसार- हिन्दू बहुसंख्या में थे और वे जातियों में बंटे हुये थे। इसमें जैन, बौद्ध और सिक्ख भी सम्मिलित थे। राजपूत, ब्राह्मण, कायस्थ और वैश्य ऊंची जातियां समझी जाती थी, किन्तु इनमें अन्तर्जातीय भोज और विवाह नहीं होते थे। जाति बन्धन आजकल के बन्धनों से अधिक कठोर थे। जाति के नियमानुसार राजपूत फौजी आदमी समझे जाते थे। उनकी जाति के नेता प्रदेशों के शासक और शाही फौज में ऊँचे-ऊँचे मनसबदार होते थे। ब्राह्मण, पुरोहित अथवा अध्यापक होते थे। उत्तरकालीन मुगलों के शासनकाल में तो कुछ नगरों में ब्राह्मण प्रान्तों के राज्यपाल भी हो गये थे। वैश्य व्यापारी जाति थी और कायस्थ अधिकतर क्लर्क, सेक्रेटरी और लगान अफसर थे।[170]

मुसलमान जाति-

मुसलमान जाति व धर्म के व्यक्ति दो भागों में विभाजित थे। इसमें प्रथम वर्ग के वे मुसलमान थे, जो मूल रूप से भारतीय नहीं थे। ये लोग अरब फारस और दूसरे देशों से नौकरी अथवा व्यापार करने के लिये यहां आये थे। दूसरे वे मुसलमान थे, जो पहले हिन्दू थे और बाद में मुसलमान बन गये थे अथवा सल्तनत काल के मुसलमान थे। भारतवर्ष में विदेशी मुसलमानों की अपेक्षा देशी मुसलमानों की संख्या अधिक थी। जो मुसलमान बुन्देलखण्ड में बसे थे, वे धार्मिक रीति-रिवाजों की भिन्नता के कारण, सुन्नी, शिया, बौहरों और खोजों में बँटे हुये थे। इनमें सुन्नियों की संख्या सर्वाधिक थी। कभी-कभी सुन्नी और शिया के मध्य झगड़े हुआ करते थे। वंश और जाति के अनुसार तुर्क अफगान, परसियन, सैय्यद और हिन्दुस्तानी मुसलमानों में बंटे हुये थे। हिन्दुस्तानी मुसलमानों में से कुछ ऐसे थे, जो अपनी हिन्दू जाति की कुछ समानता अभी तक रखे हुये थे।[171]

बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में अनेक जातियों ने, जिन्होंने हिन्दू धर्म छोड़कर इस्लाम धर्म अपनाया था, उन्होंने अपने वंश गत संस्कारों और रीति-रिवाजों का परित्याग नहीं किया। वे लोग हिन्दू-रीति रिवाज का अनुपालन मुसलमान होने के बाद भी करते रहे। मुख्य रूप से बिहना, चिकवा, मनिहार, झींपा, तथा राजपूत, जो बगरी मुहार वंश के थे, उन्होंने भी अपने रीति-रिवाजों का परित्याग नहीं किया तथा उन्होंने पूरी तरह से अरबी, फारसी और मुगल संस्कृति को भी नहीं अपनाया। वे यहीं की बुन्देलखण्डी भाषा बोलते रहे।

यहां की निवास करने वाली हिन्दुओं जातियों ने मुसलमानों से प्रभावित होकर उनके रीति-रिवाज और पहनावों को अपना लिया तथा उनके तीज-त्योंहारों में बराबरी का भाग लेने लगे। बुन्देलखण्ड नरेश छत्रसाल ने गुरु प्राणनाथ के कथनानुसार प्रणामी सम्प्रदाय की स्थापना की, जहां हिन्दू मुसलमान दोनों को सम्मान प्रदान किया गया। इस सन्दर्भ में ये उदाहरण उपलब्ध होता है-

कृष्ण, मुहम्मद, देवचंद, प्राणनाथ छत्रसाल।
इन पंचन को जो भजे दुःख हरे तत्काल।।[172]

इस युग में उच्च और मध्यम श्रेणी के लोग अंगरखा और चूड़ीदार पैजामा पहनते थे, कुछ लोग सफेद और रेशमी अथवा सूती पटका कमर में बांधते थे, जो एड़ी तक लटका रहता था। कुछ लोग कंधे पर साफी डालते थे। साधारण हिन्दू कुर्ता-धोती पहनते थे और निर्धन मुसलमान कुर्ता, पैजामा पहनते थे। डा० आशीर्वादी लाल के अनुसार- हिन्दू अँगरखे के बन्द बांयी ओर, मुसलमान दांयी ओर लगाते थे। हिन्दू स्त्रियां साड़ी पहनती थी और मुसलमान स्त्रियाँ पाजामा या घाघरा और जाकट पहनती थी तथा दुपट्टे से अपने सिर को ढक लेती थी।[173] शारीरिक स्वच्छता के लिये लोग दाल, मैदा और रीठे से बना साबुन प्रयोग करते थे। यहां के लोग बालों में खिजाब का प्रयोग करते थे और गंजेपन दूर करने के लिये अनेक प्रकार की दवायें प्रयोग में लाते थे।

स्त्रियां अपने शारीरिक सौन्दर्य का विशेष ध्यान रखती थीं। वे अनेक प्रकार के लेप

तथा चंदन का प्रयोग करती थीं। हाथ पैरों में महावर और आंखों में सुरमा लगाती थी, पान से ओठों में लालिमा बनाये रखती थी, खुशबूदार तेल का प्रयोग भी औरतें करती थी। हिन्दू और मुसलमान दोनों औरतों को गहनों का बहुत शौक था। ये व्यक्तिगत स्वच्छता, स्वास्थ्य रक्षा, सदाचार पर विशेष बल देती थीं। दांतून करना, आँख और मुख धोना, मालिश करना, कपड़े से बदन को रगड़ना, उपटन लगाना, स्नान करना, सुरमा लगाना, पाउडर लगाना और पान खाना स्वास्थ्य के लिये उपयोगी माने जाते थे।

हिन्दू और मुसलमानों के भोजना में समानता थी, किन्तु मुसलमानों के भोजन में मांसाहार जायज था, जबकि हिन्दू मांसाहार के विरोधी थे। उच्च कुल के लोग अच्छे किस्म भोजन करते थे, जबकि सामान्य वर्ग के लोग भोजन में मोटे अनाज और दालों का प्रयोग करते थे। मदिरापान सामान्य कोटि के व्यक्ति नहीं करते थे। भोजन में उच्च तथा मध्यम श्रेणी के लोग फलों का प्रयोग करते थे। डा० आशीर्वादीलाल के अनुसार- शाकाहारी हिन्दुओं के भोजन में मक्खन, दाल, साग-भाजी, चावल और रोटियां रहती थीं। रसोईघर को स्वच्छ रखना, हिन्दुओं में धार्मिक कर्तव्य समझा जाता था। हिन्दू बाजार की बनी चीज़ें नहीं खाते थे।[174] मुसलमान लोग चीनी, सीसे और मिट्टी के बर्तन प्रयोग करते थे, जबकि हिन्दू लोग पीतल, तांबा, चांदी और कांसे के बर्तन प्रयोग में लाते थे। हिन्दू लोग खाने के पहले और बाद में हाथ-मुंह धोते थे। उच्च वर्ग के लोग मदिरापान किया करते थे। राजपूत शराब और अफीम दोनों का सेवन करते थे। हिन्दू लोग भांग पीने के आदी थे। जहांगीर के शासनकाल तक तम्बाकू का प्रयोग भी बढ़ गया था।

बुन्देलखण्ड के लोग मनोरंजन के बहुत शौकीन थे। शतरंज, चौपड़ गुट्टीमार आदि खेल स्त्री-पुरुष दोनों खेला करते थे। शिकार खेलना, पशु युद्ध कराना और चौगान खेलना, ये धनी व्यक्तियों के खेल थे। इसके अलावा कुश्ती लड़ना, बाजीगरी तथा जादुगरी के खेल सर्वत्र होते थे। पतंग उड़ाना, नकल उतारना, आंख मिचौली खेलना, लपक डण्डा तथा अनेक प्रकार के खेल खेले जाते थे। ऊंचे घराने की स्त्रियां नृत्य, नाटक, साहसिक और प्रेम कहानियों से मनोरंजन करती थीं।

समाज में सार्वजनिक मेलों और उत्सवों का आयोजन किया जाता था। हिन्दू और मुसलमान दोनों उत्सवों में भाग लिया करते थे। मुगल दरबार में भी अनेक उत्सव होते थे, जिनमें स्त्री और पुरुष दोनो भाग लेते थे। डा० आशीर्वादीलाल के अनुसार- सम्राट शाहज़ादों के जन्म-दिवस तथा दशहरा, बसन्त, दीपावली, ईद, शुबरात, बारावफात इत्यादि हिन्दू-मुसलमानी त्योहारों पर महल बहुत अच्छी तरह सजाये जाते थे और उस दिन खास दरबार, विशेष भोज और विशेष नाच-रंग आदि होते थे। कभी-कभी अच्छे-अच्छे बाजार लगते थे, जिनमें उच्च कुल की स्त्रियां आकर मनोरंजन और आनन्द मनाती थी। इनके अतिरिक्त हिन्दू और मुसलमानों में अनेक धार्मिक उत्सव होते थे।[175]

मुगलकाल में स्त्रियों को विशेष प्रतिष्ठा उपलब्ध नहीं थी। इस्लाम धर्म के प्रभाव के कारण मुसलमान शासक और सरदारों के दुराचार के कारण बुन्देलखण्ड में पर्दा प्रथा और बाल-विवाह

का प्रचलन पूरे बुन्देलखण्ड में हो गया। नीच जाति की स्त्रियों को छोड़कर उच्च कुल की कोई स्त्री घर से बाहर नहीं निकलती थी। मुसलमानों में पर्दा प्रथा भी थी। डा० आशीर्वादीलाल के अनुसार- लड़की का जन्म अपसकुन माना जाता था और लड़के का जन्म आनन्ददायक माना जाता था। बाल-विवाह के कारण समाज में विधवाओं की संख्या बहुत बढ़ गयी थी और इन्हे पुनर्विवाह करने का अधिकार नहीं था। मुसलमानों में बहुविवाह प्रचलित था क्योंकि सुन्नी परम्परा के कारण एक सुन्नी मुसलमान चार स्त्रियों के साथ विवाह कर सकता था तथा शिया चार स्त्रियों से अधिक स्त्रियों के साथ विवाह कर सकता था। हिन्दुओं में तलाक प्रथा नहीं थी, किन्तु मुसलमानों में स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे को तलाक दे सकते थे।[176]

इस प्रकार हम देखते है कि मुगलकाल में सामाजिक व्यवस्था तद्‌युगीन वातावरण के अनुकूल थी, जिसे बहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता।

मुगलकाल में बुन्देलखण्ड की आर्थिक स्थिति-

बुन्देलखण्ड एक ऐसा प्रदेश है, जहां की प्राकृतिक बनावट पूरी तरह विषम है। इस सन्दर्भ में दीवान प्रतिपाल सिंह की यह कविता तर्क संगत प्रतीत होती है-

बर-बीर -देश 'बुन्देलखण्ड'! तप - त्याग-केन्द्र, हिय भरतखंड।
तुव विशद विंध्यागिरि गगन ताहि, नद, गर्त्त गूढ़ पाताल जाहि।[177]

यह प्रदेश सर्वत्र सघन वनों से घिरा हुआ था। इस प्रदेश के उत्तरी भाग में कोई उल्लेखनीय जंगल नहीं थे। मैदानी भागों में बबूल, क्षखेरी, छेवला, और झांडीदार वृक्ष उपलब्ध होते थे। पहाड़ी क्षेत्रों में घने जंगली वृक्ष उपलब्ध होते थे, जो आय के मुख्य स्रोत थे। यहां के जंगलों को डांग कहा जाता था। इस जंगल में मुख्य रूप से साल, सागौन, तेंदु, महुआ, खैर, बांस, चन्दन, लाल चन्दन, इमली, आम, शरीफा, अचार, ताड़, खजूर, बबूल बेर, सैमर, सलैया, गबदी, अमलतास, हड्डवा, गूलर, हल्दू, सिहाक, कचनार, स्यासा, जामुन, चिल्ला, दूधी-करधई, बेल, मुनगा, कुसुम, पीपल, बरगद, नीम, धावा, अशोक, हर्र, बहेरा, आंवला, शीशम, ढाक, पापड़ा आदि के वृक्ष होते थे। इन वृक्षों से यहां निवास करने वाले आदिवासियों को अच्छी आय हो जाती थी।[178]

वृक्षों के अतिरिक्त यहां करौंदा, करेल, रीयां, चमरेल, माहुल, इंगुआ, जरिया, मकुइया, रकतबिजर, गटान, थूहड़, और नागफनी की झाड़िया उपलब्ध होते थे। इनसे अनेक प्रकार के उपयोगी पदार्थ उपलब्ध होते थे। इसके अतिरिक्त जंगल से लाख, गोंद, मोम, शहद, बैंचादी, सफेद मूसली, बंस लोचन, बिलाईकंद, कुसेरा, साभर सींग, चमड़ा खंखूदन, नौती धवई, हड्डी, महुआ, अचार, आंवला, हर्र बहेरा, आदि वन सम्पदा उपलब्ध होती थी, जो आय का मुख्य स्रोत था। इसके अलावा यहां पर चौदह प्रकार की घास उत्पन्न होती थी। इन्हें पखा, कैला, मुसेल, गनेर, सौंटा, कांस, धुनियां, सैद, रोसा, डकरी, लियासा, लंपू, मुर्जना, गंदली, चेगुड़ा, पनबसा, पंडप आदि नाम से पुकारा जाता था। इनसे अनेक वस्तुएं निर्मित होती थीं, जिससे आदिवासी और किसान लाभ उठाते थे।

यहां के व्यक्ति जंगलों में उपलब्ध होने वाले जानवरों के मांस व चर्म से भी आर्थिक लाभ कमाते थे। मुख्य रूप से शेर, तेंदुआ, चीता, भालू, हिरन, नील गाय, चिनकारा, छिकरा, सांभर चौसींगा, भेड़िया, लोमड़ी, खरगोश, बंदर, चमगादड़, नेवला, सांप, बिच्छु, गोह, गोहरा, छछूंदर आदि जानवर यहां उपलब्ध होते थे।

यहाँ पर अनेक प्रकार के जलजीव पाये जाते थे, इनमें मछली सर्वाधिक जलाशयों में उपलब्ध होती थी। मुख्य रूप से महशेर, गुलाबी मछली, बहुवा, नैनी, मिरगिल, बैकरी, रोह, गौंच, कलबांस, तेंगुरी, सौंर, ग्वाली, चपटा, बाजी, पड़हन, अनबारी, चिलवा, बाम, झिंगरा, सिलंद, सिरी, मुई, स्वांग, दिगर, बवास, बस, करटा, बजुरी, करौसर नामक मछलियां यहां उपलब्ध होती थी। इसके अतिरिक्त घड़ियाल, मगर, कछुआ, सूस, उदविलाव, केकड़ा आदि भी यहाँ पाये जाते थे। यहाँ के आदिवासी लोग जलजीवों का मांस आदि बेचकर आर्थिक लाभ कमाते थे।

यहाँ पर नाना प्रकार के पक्षी भी उपलब्ध होते थे। मुख्य रूप से मोर, तोता, कौआ, फाख्ता, गौरैया, सारस, मुर्गी, बत्तख, सिलगिला, हाड़ल, कबूतर, पिड़ी, तीतर, बटेर मुरेला, मंगूरा राज-हंस, भर-तीतर, छपका, लालमुनैया, गलगलिया और पनडुब्बी आदि पक्षी पाये जाते थे। व्यक्ति इन पक्षियों को पालकर या उनका शिकार करके आर्थिक लाभ उठाते थे।

बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में अच्छे किस्म के हाथी पाये जाते थे। आइने अकबरी के अनुसार- अकबर के समय में कालपी के जंगल में हाथी थे। अकबर स्वयं हाथी का शिकार करने के लिये कालपी में आया था।[179] उस युग में हाथी प्रमुख वाहन के रूप में प्रयोग किया जाता था तथा वस्तुओं को ले जाने का सर्वोत्तम साधन भी था। उच्च कोटि के व्यापारी, सामंत अपने लिये हाथी उपयोग में लाते थे। यह आर्थिक समृद्धि का परिचायक भी था।

यहाँ के लोग खनिज सम्पदा से भी धन उपार्जित करते थे। यहां पर लोहा, तांबा, हीरा, कोयला, इमारती पत्थर, सर्वाधिक मात्रा में उपलब्ध होता था। मुख्य रूप से यहां चूने का पत्थर, गिट्टी, कंकड, इमारती पत्थर, गौरा पत्थर, संगे-जराहत, अगेट (शजर) आदि उपलब्ध होते थे। इसके अतिरिक्त यहां लोहे का पत्थर, मैग्नीज, एल्युमीनियम, फिटकरी, सोना, चांदी, और सीसा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता था। इस खनिज सम्पदा से नाना प्रकार के उद्योग संचालित होते थे, इनसे यहां के लोग आर्थिक लाभ उठाते थे।

बुन्देलखण्ड के निवासियों का प्रमुख व्यवसाय कृषि था। पहाड़ी क्षेत्रों में कृषि की स्थिति अच्छी नहीं थी, किन्तु मैदानी भागों में कृषि की स्थिति बहुत अच्छी थी। सिंचाई के संसाधनों का अभाव होने के कारण कृषि पूरी तरह से वर्षा पर आधारित थी। यहां पर रबी, खरीफ, जायद तीन फसलें होती थी। इन फसलों में गेहूँ, चना, ज्वार, तिलहन आदि उत्पन्न होते थे। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के फल यहां उत्पन्न किये जाते थे। निर्धन लोग कोदो को भोजन के रूप में इस्तेमाल करते थे। इसके अलावा रॉली, चुटकी, बसारा, समा, मटा, धान, भी यहां पैदा किया जाता था। इस

क्षेत्र में मूंग, मौठ, उड़द, बाजरा, बट्टा, मुकसा, मकई, गेंहूँ, उत्पन्न होते थे। तिलहन में तिली, सरसों, अलसी, अंडी, महुआ की गुली काफी मात्रा में यहां उपलब्ध होती थी, जिसका तेल विभिन्न कार्यों में प्रयुक्त होता था। इसके अतिरिक्त गन्ना, कपास, सिंघाड़ा और सन का उत्पादन बुन्देलखण्ड में काफी मात्रा में होता था।

इस परिक्षेत्र में नाना प्रकार के फल बगीचों में उत्पन्न होते थे। मुख्य रूप से पाकर भौर-सिली, खिरनी, जामुन, कमरख, लुकाट, फालसा, आदि यहां पर उत्पन्न होते थे। इसी प्रकार खेतो में खरबूज, तरबूज, घिया, तरोई, लौकी, कुमड़ा, खीरा, ककड़ी आदि उत्पन्न होते थे तथा इसके अतिरिक्त जमी कन्द सूरन अरुई, आलू, रतालू, भतुआ, पंवार, चौका, पालक, खुरफा, चौलाई, तथा नौनिया भाजी भी यहां उपलब्ध होती थी। इसकी उपज से कछवारों को आर्थिक लाभ होता था।

इसी प्रकार मालियों के लिये इस परिक्षेत्र में केवड़ा, केतकी, गुलाब, चंपा, चमेली, मोतियां, मोंगरा, सेवती, शब्बू, रायबेला, जुई, निवारी, बेला आदि सुगन्धित फूल होते थे। इनसे माली लोग आर्थिक लाभ उठाते थे। इसके अतिरिक्त सुगन्धित तेल बनाने वाले और इत्र बनाने वाले भी इनसे आर्थिक लाभ उठाते थे।

यहाँ अनेक प्रकार के मसाले भी उत्पन्न होते थे। मुख्य रूप से लाल मिर्च, अदरक धनियां, सौंफ, मेथी, राई, जीरा अजवाइन, सोंठ, कलौंजी, आदि यहां उत्पन्न होती थीं। इनसे किराना व्यवसायी आर्थिक लाभ उठाते थे। इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड में पान की उपज काफी मात्रा में होती थी। यहाँ का पान भारतवर्ष के अनेक क्षेत्रों में भेजा जाता था।

यहां पर पालतू पशुओं के माध्यम से भी व्यक्ति आर्थिक लाभ उठाते थे। मुख्य रूप से बैल, गाय, घोड़े, टट्टू, खच्चर, ऊँट, गधे, बकरी, और भेंड यहां के मुख्य पालतू पशु माने जाते थे। इन पशुओं से यहां के निवासियों को घी, दूध, दही, मक्खन और खोवा उपलब्ध होता था। इसके अतिरिक्त इन जानवरों को कृषि कार्यो और व्यावसायिक कार्यों में प्रयोग किया जाता था। माल ढोने में पशुओं का प्रयोग किया जाता था। उस युग में यही आवागमन के साधन थे। भेंड़ों से हमे ऊन प्राप्त होती थी। पालतू पशुओं के मल-मूत्र से खाद तैयार की जाती थी।

यहाँ पर व्यापारी लोग अपने व्यवसाय के लिये अनेक प्रकार के सोने-चांदी और तांबे के सिक्के प्रयोग में लाते थे। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- जबलपुर जिले में एक दफ़ीने में 1311 ई० से 1553 ई० तक के दिल्ली, गुजरात, काश्मीर, गुलबर्ग और मालवा के खिलजी और जौनपुर के शरकी आदि मुसलमान बादशाहों के 146 सोने के तथा 36 चांदी के सिक्के मिले थे। इनमें से कदाचित् 3 सोने के सिक्के नेपाली थे।[180]

नाप-तौल के लिये यहां अनेक प्रकार के पैमाने प्रयोग में लाये जाते थे। इन्हें पैला, पोली, चौरी, चौथिया, अद्धे और माना कहते थे। तौल के लिये जो बांट बने थे, उनमें झांसी का सेर, अठ्ठाइसा सेर, पचीसा सेर, चौबीस सेर, बीसा सेर, अठेरियां सेर आदि प्रचलित थे। भूमि की पैमाइश

के लिये 'जून' 'जोर', डंडुक आदि का प्रयोग होता था। भूमि देशी बीघा के रूप में नापी जाती थी।

बुन्देलखण्ड में साहूकारी प्रथा अत्यन्त प्राचीनकाल से थी। ये लोग अनाज, जेवर और भूमि रहन करके किसानों और व्यापारियों को उधार रुपया देते थे तथा उनसे ब्याज लेते थे। इस ब्यांज से साहूकारों को अच्छी आमदनी हो जाती थी।

शिल्प और उद्योग के माध्यम से यहाँ के कारीगर और शिल्पकार आर्थिक लाभ उठाते थे। मुख्य रूप से बुन्देलखण्ड में अच्छी किस्म का कपड़ा बनाया जाता था। इस कपड़े को कोरी और कबीर पंथी बनाते थे। इसके अतिरिक्त यहां ठठेर लोग तांबा, पीतल और फूल के बर्तन बनाते थे। छतरपुर, खड़गपुर, हटा, दमोह आदि में धातु के बर्तन बनते थे। श्रीनगर में पीतल की मूर्तिया और खिलौने बनते थे। स्वर्णकार, सोना और चाँदी के आभूषण बनाते थे। हटा, मौदहा के चाँदी के आभूषण बहुत प्रसिद्ध थे। इसके अतिरिक्त यहां कम्बल, टाट फट्टी, जरी और रेशम के कपड़े भी बनते थे। बुन्देलखण्ड में लोहे, चमड़े और लकड़ी का काम भी अच्छा होता था। कहीं-कहीं पर लाख और कांच की चूड़ियां भी बनती थीं। मिट्टी का काम प्रायः प्रत्येक गांव में होता था। दमोह और जबलपुर के मिट्टी के बर्तन प्रसिद्ध थे। टीकमगढ़ और मऊ के मिट्टी के खिलौने बहुत अच्छे होते थे। बुन्देलखण्ड में कागज का काम कालपी, छतरपुर, सागर और दमोह में होता था। कपड़े धोने का साबुन छतरपुर में बनता था। सजर पत्थर के लिये बांदा प्रसिद्ध था। इस प्रकार हम देखते है कि बुन्देलखण्ड की अर्थव्यवस्था कुटीर उद्योगों पर आधारित थी। बुन्देलखण्ड में मार्गो का विकास बहुत कम था, जिससे आयात एवं निर्यात बहुत कम हो पाता था।

तद्युगीन समाज आर्थिक दृष्टि से उपभोक्ता और उत्पादक दो भागों में विभक्त था। उत्पादकों में किसान, कारीगर और व्यापारी शामिल थे तथा उपभोक्ताओं में नागरिक, फौजी, अफसर, व्यवसायी, धार्मिक कार्यकर्ता, सेवक, दास और भिखारी शामिल थे। इस समय हिन्दू और मुसलमानों में दान देने की प्रथा का विकास हुआ था, इसलिये भिखारियों की संख्या बढ़ गयी थी।

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में तीन वर्ग के लोग निवास करते थे। प्रथम वर्ग धनी व्यक्तियों का था, जो अच्छी तनख्वाह पाते थे, ये लोग विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। धनी लोग उत्तम कोटि का भोजन करते थे तथा बढ़िया वस्त्र एवं आभूषण धारण करते थे। ये अपने धन को पुत्र और पुत्रियों के विवाह में, विदेशी वस्तुएं खरीदने में, मकान बनवाने में, मकबरे, मस्जिद और मन्दिर बनवाने में खर्च करते थे।

मध्य वर्ग के लोग व्यवसायी, कलाकार और राज कर्मचारी होते थे। उच्च्व वर्ग और मध्य वर्ग के व्यापारियों की आर्थिक दशा अच्छी थी। होशियार कारीगरों की हालत बहुत अच्छी थी, किन्तु मोटा काम करने वाले मजदूर, चपरासी और छोटे-छोटे दुकानदारों की दशा अच्छी नहीं थी। निम्न श्रेणी के मनुष्य इतने निर्धन थे, कि वे साधारण सुख-सुविधा का उपभोग भी नहीं कर सकते थे। इन लोगों के पास जीवनोपयोगी वस्तुएं भी बहुत कम थी।[181] अकबर के लेकर औरंगजेब के

शासनकाल तक किसान, मजदूर, चपरासी की आर्थिक स्थिति बिगड़ती गयी। यदुनाथ सरकार के अनुसार- ''इस प्रकार भारत की आर्थिक दशा का महान पतन आरम्भ हो गया। इस काल में राष्ट्रीय सम्पत्ति की ही अवनति नहीं हुई, अपितु यान्त्रिक निपुणता और सभ्यता का भी बहुत कुछ पतन हो गया तथा कला और संस्कृति के तो दूर-दूर तक दर्शन दुर्लभ हो गयें।[182]

सम्राट अकबर के जमाने में आवश्यक वस्तुओं के दाम बहुत कम थे, उसके शासनकाल में एक रुपये का लगभग गेहूँ 12 मन, जौ 18 मन, बढ़िया चावल 10 मन, मूंग 18 मन, उरद 16 मन और नमक 16 मन था। डेढ़ रुपये की एक भेड़, एक रुपये का 17 सेर माँस और 44 सेर दूध मिलता था। मजदूरों की दैनिक मजदूरी भी बहुत कम थी। मोटा काम करने वाले मजदूर को 2 दाम अर्थात् 1/20 रुपया प्रतिदिन मिलता था और बढ़ई तथा निपुण कारीगर को 7 दाम प्रतिदिन मिलता था। अकबर के उत्तराधिकारियों के समय में भी लगभग ये ही भाव थे। लड़ाई और अकाल के समयों को छोड़कर सम्पूर्ण मुगल काल में वस्तुएं सस्ती थी। सस्ती वस्तुओं के कारण साधारण मनुष्य भी सरलता से जीवन बिता सकता था।[183]

सन् 1955-56, सन् 1995-96, सन् 1630-32, तथा उसके बाद अनेक बार अकाल की स्थिति पैदा हुयी। उस समय शासन ने सहयोग प्रदान किया। तद्‌युगीन स्थिति का वर्णन इस प्रकार उपलब्ध होता है। अकबर से लेकर जितने भी मुगल सम्राट हुए, उन सबने जनता की कठिनाइयों को दूर करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। उन्होंने अकाल पीड़ितों को तकावियाँ बॉटी और उनका लगान माफ कर दिया, किन्तु वे अकाल की समस्या को हल करने में सफल नहीं हुए क्योंकि एक तो यह समस्या ही जटिल थी, दूसरे शासन व्यवस्था भी संतोषजनक नहीं थी।[184]

दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- बुन्देलखण्ड में औसत से प्रति पाँचवें वर्ष अकाल पड़ जाता है। प्राचीन समय के अकालों का ठीक पता तो नहीं चलता है, पर अनुमान होता है कि यही दशा रही होगी। भास होता है कि लड़ाई-झगड़ों के कारण तथा अन्य प्रान्तों से अन्न पहुँचने का सुभीता न होने से पहले समयों में अकालग्रस्त प्रान्तों को अनिर्वचनीय कष्ट पहुँचा होगा।[185]

इब्नबतूता के अनुसार हिजरी संवत् 744 में उत्तरी भारत में बहुत बड़ा अकाल पड़ा था। ग्वालियर, कन्नौज और बड़े-बड़े मुकामों का नाम इसमें वर्णित है- जब यहाँ पर आकाल पड़ा था उस समय अनेक कहावते बुन्देलखण्ड में आकाल से सम्बन्धित प्रचलित हो गयी थी।

(1) कहीं अमावस मंगल, मूल।
अन्न बिकैहे सोने तूल।

(2) सावन पहली पंचमी, जो गरजै अधरात।
तुम जैयो पिय मालवै, हम जैवी गुजरात।।[186]

मुगल काल में बुन्देलखण्ड की आर्थिक स्थिति यहाँ की सामाजिक व्यवस्था के अनुसार थी। मुख्य आय के स्रोत कृषि, खनिज सम्पदा, कुटीर उद्योग से जुड़े हुए थे। आर्थिक दृष्टि से समाज

धनी वर्ग, मध्यम वर्ग, सामान्य वर्ग और पिछड़े वर्ग में विभाजित था। गरीबों की स्थिति अच्छी नहीं थी तथा कभी-कभी यहाँ की जनता को प्राकृतिक प्रकोप भी झेलना पड़ते थे।

5. मुगलकाल की समाप्ति के पश्चात-बुन्देलखण्ड की स्थिति-

कतिपय इतिहासकार मुगल शासनकाल को बहुत सफल शासनकाल मानते है और उसे स्वर्ण युग के नाम से सम्बोधित करते है। उसके लिए निम्न कारण प्रस्तुत करते है :-

1. मुगल शासनकाल के पश्चात् ब्रिटिश शासन की स्थापना हुयी और अंग्रेजों के प्रति घृणा की भावना पैदा हुई, उसकी समतुलना में मुगल शासन को श्रेष्ठ कहना उचित था।
2. मुगल शासनकाल में सल्तनत काल से अधिक उन्नति हुयी तथा हिन्दुओं के साथ अकबर से लेकर शाहजहाँ के शासनकाल तक कोई अपमानजनक व्यवहार नहीं किया गया।
3. अकबर बादशाह ने अपनी व्यवहार कुशलता के कारण सभी वर्ग के लोगों का सम्मान किया तथा हिन्दुओं को बिना जातीय भेदभाव के सर्वोच्च पदों में नियुक्त किया।
4. मुगल काल में साम्प्रदायिक सद्भाव पैदा किया गया, किन्तु यह भी सच है कि हिन्दुओं ने ऐसा कुछ नहीं किया, जो मुसलमानों को खराब लगता। इस युग तक बहुसंख्यक हिन्दू, मुसलमानों को विदेशी मानते रहे।
5. अनेक मुसलमान इतिहासकारों ने मुगलकाल की असफलताओं को छिपाने का प्रयत्न किया है। इससे भ्रम की स्थिति पैदा हो गयी।

मुगल शासनकाल जिसे हम सफल और सराहनीय शासनकाल की संज्ञा देते है, वह वास्तव में वैसा नहीं था, बल्कि उसमें कई कमजोरियाँ थी -

1. मुगल शासक अपने आप को विदेशी मानते थे। डा० आशीर्वादीलाल के अनुसार - उनके आदर्श, उनकी मान्यतायें, उनके जीवन का रहन-सहन और उनकी सरकार का रंग-ढंग सभी विदेशी था। बाबर ने तो हिन्दुस्तान में दफनाया जाना भी पसन्द नहीं किया था।[187]
2. सुल्तानों की भांति मुगल शासक भी कट्टर थे। ऐसे अनेक उदाहरण उपलब्ध होते है, जबकि जहाँगीर और शाहजहाँ ने अपनी कट्टरता का परिचय देकर हिन्दुओं के मन्दिर गिरवाये और हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बना लिया। इसलिए यह कहना असत्य है कि मुगल काल में राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ, ये शासक इस्लामी राज्य का सपना देखते थे।
3. मुगल शासन की प्रशासनिक विधि देशी और विदेशी दोनों सिद्धान्तों पर आधारित थी। इस शासन में अरबी और फारसी तत्वों की प्रधानता थी। उनका बाहरी कलेवर तो भारतीय था, किन्तु आत्मा विदेशी थी। यदुनाथ सरकार के अनुसार- ''मुगल शासकों की सरकार के सिद्धान्त उसकी धर्म नीति, उसके कर लगाने के लिए नियम, उसका विभागों का बंटवारा, उसके अफसरों और पदों के नाम तक विदेशी थे और भारत में ज्यों का त्यों लाये गये थे, किन्तु देश में जो शासन प्रणाली प्रचलित थी, जिससे यहाँ के निवासी पूर्णतयः परिचित थे, उसको भी इस विदेशी

प्रणाली ने अपना लिया। इस विदेशी शासन प्रणाली ने ऐसे सुधार कर दिये गये, जिनसे कि वह स्थानीय आवश्यकता के अनुकूल पड़ जाये।[188]

4. मुगल सरकार के लगभग सभी कार्यकर्ता विदेशी थे। अकबर के शासनकाल में भी सत्तर प्रतिशत बड़े-बड़े अफसर फारसी, तुर्की, उजबेग और अफगानिस्तान के थे। उसके शासन में तीस प्रतिशत भारतीय मुसलमान और हिन्दू थे। अकबर ने अपने चालीस वर्ष के शासन में पॉच सौ मनसबदारों में केवल इक्कीस हिन्दू मनसबदार नियुक्त किये। इसके अतिरिक्त छोटे-छोटे हिन्दू राजाओं को भी कुछ पद दिये थे।

5. मुगल शासन का व्यवसाय फौजी व्यवसाय था, उसमें एक बहुत बड़ी फौज रहती थी। जिसके सैनिक और असफर विदेशी थे। इसका कार्य आक्रमण करना, लूट-पाट करना तथा जबरन मुसालमान बनाना था। सम्राट अकबर ने केवल पच्चीस वर्ष ही हिन्दुओं के साथ समान व्यवहार किया। डा० आशीर्वादी लाल के अनुसार- जहाँगीर ने तो अकबर के पूर्व के दिनों की भेदभाव की नीति को जानबूझकर अपना लिया था। इसने हिन्दुओं पर मुसलमान लड़कियों के साथ विवाह करने की रोक लगा दी थी और ऐसा करने वाले को मृत्युदण्ड देने तक की घोषणा कर दी थी। शाहजहाँ भी उसी के पद चिन्हों पर चला। औरंगजेब और उसके उत्तराधिकारी तो कट्टर मुसलमान थे ही।[189]

6. मुगल शासनकाल में भी हिन्दुओं की सामाजिक स्थिति के शासनकाल में हिन्दुओं के साथ अच्छा व्यवहार नही किया गया। इस युग में आये विदेशी लेखकों और व्यापारियों ने जो वर्णन किया है, उससे यह स्पष्ट होता है, कि मुगल शासन हिन्दुओं के लिए एक अभिशाप था और उस शासन में उनका जीवन, उनकी प्रतिष्ठा और उनकी सम्पत्ति सुरक्षित नहीं थी। यदुनाथ सरकार के शब्दों में - ''इस सारे विनाश का कारण इस्लामी धर्मान्धता है। शरियत के कट्टर कानून, जब मनुष्यों व सरकार की जटिल समस्याओं के सुलझाने के लिए लागू किये जाते है, तब जनता की एकता तथा राजनीतिक समानता नष्ट हो जाती है और जनता सदा के लिए दो भागों में बंट जाती है। इनमें से एक मुसलमान और दूसरा गैर-मुसलमान अथवा काफ़िर कहलाने लगता है।[190]

7. मुसलमानों की नीति हमेशा दमनकारी रही है। अकबर के शासनकाल में लगान से मिलने वाली आमदनी कुछ कम ही थी, वह औरंगजेब के शासनकाल तक और बढ़ गयी। इसके अतिरिक्त हिन्दुओं पर जजिया कर लगाया गया। तद्‌युगीन अंग्रेज यात्री बर्नियर, टैवर्नियर और मनुची जैसे समकालीन यूरोपियन यात्रियों ने लिखा है, कि साधारण हिन्दू जनता को मुगल दरबार तथा निकम्मी नौकरशाही की शान-शौकत बनाये रखने तथा उनकी फिजूलखर्ची के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता था। वे हमें बताते है कि खेती करने के लिए लोगों को बाध्य किया जाता है और राज्य द्वारा किसानों पर टैक्सों का असह्‌य बोझ डालकर शोषण किया जाता था।[191]

8. जहाँ तक आर्थिक स्थिति का प्रश्न है, मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं की आर्थिक स्थिति सोचनीय थी। हिन्दुओं के लिए लगान की जो दरे, अकबर के जमाने में निर्धारित की गयी थी, जहाँगीर और औरंगजेब के जमाने में उनमें बढ़ोत्तरी की गयी, जिनसे हिन्दुओं की आर्थिक स्थिति बिगड़ गयी। मुसलमान शासक हमेशा हिन्दू जनता के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार करते थे, यद्यपि कतिपय हिन्दू चापलूसों ने सम्राट अकबर महिमा मण्डित किया। तद्युगीन हिन्दू पण्डितों ने भी ''दिल्लीश्वरोवा जगदीश्वरोवा' की घोषणा कर दी थी और 'वे अकबर में अंवतार की सम्भावना करने लगे।'' दर्शनीय ब्राह्मण तो प्रातःकाल अकबर के दर्शन किये बिना जलपान भी नहीं करते थे। दरबारी खुशामदी तो डींग मारने में और भी आगे बढ़ गये थे और वे अकबर को सिद्ध पुरुष तक कहने लगे थे, किन्तु वे फिर भी मुगलों को हिन्दू धर्म में मिलने में सर्वथा असफल रहे।[192]

मुगल शासनकाल में कुछ अच्छे कार्य भी हुये, जिनकी प्रशंसा की जानी चाहिए :-

1. मुगल काल में भारत के सम्बन्ध विदेशों में स्थापित हुये, इससे भारत का सम्पर्क सूत्र बढ़ा। मुख्य रूप से भारत वर्ष ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रवेश किया। मुख्य रूप से बुखारा, समरकन्द, बलख, खुरसान, ख्वारिज्म, फारस और मलयदीप से भारत के व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुये।
2. मुगल साम्राज्य के कारण दक्षिण भारत और उत्तर-भारत के मध्य एकीकरण स्थापित हुआ तथा सम्पूर्ण भारत वर्ष में एक सी शासन व्यवस्था की स्थापना मुगल काल में हुयी।
3. मुगलकाल के शासक सल्तनत काल के शासकों से बहुत अच्छे थे। इनके शासनकाल में व्यापार कृषि और उद्योगों को प्रोत्साहन दिया गया। तद्युगीन सरकार ने सूती, ऊनी, कपड़े, कालीन, झींट, सोने-चांदी के गहने और विलासिता की अनेक वस्तुओं के बड़े-बड़े कारखाने स्थापित किये थे।
4. मुगल शासनकाल में लेखन कला को समुचित प्रोत्साहित दिया गया। इस युग में इतिहास, एतिहासिक पत्र और उच्च कोटि के साहित्य की रचना हुयी।
5. मुसलमान और हिन्दू दोनों के मध्य नफरत की भावनायें समाप्त हुयी तथा दोनों एक दूसरे के नज़दीक आये। मुख्य रूप से अबुल-फज़ल, अब्दुल रहीम खानखाना, और दाराशिकोह इसी युग के लेखक थे। इसी युग में सन्त तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, रसखान जैसे महाकवि भी हुए तथा इस्लाम के एकेश्वरवाद के सिद्धान्त का प्रभाव हिन्दुओं पर पड़ा।
6. मुगल काल में स्थापत्य कला, चित्रकला, संगीतकला, का विकास हुआ तथा अनेक इमारते इस युग में निर्मित हुयी। इनमें से अधिकांश इमारते बुन्देलखण्ड में भी थी।
7. मुगलकाल में शांति और सुरक्षा उत्तम कोटि की थी। सल्तनत काल की अपेक्षा इस युग में शांति व्यवस्था अधिक थी, जो व्यक्ति के विकास में सहायक सिद्ध हुयी।
8. हिन्दुओं के रीतिरिवाजों का प्रभाव मुसलमानों पर पड़ा और मुसलमानों के रीति-रिवाजों का प्रभाव हिन्दुओं पर पड़ा। मुख्य रूप से वेश-भूषा, रहन-सहन, भाषा और लोक व्यवहार का

प्रभाव उच्च्व वर्ग और मध्य वर्ग के हिन्दुओं पर विशेष रूप से पड़ा।

9. मुगल काल में युद्ध कला का विकास हुआ। पहले यहाँ के क्षत्रिय प्राचीन परम्परा से युद्ध किया करते थे। इन्होंने तुर्क, मंगोला, फारसीयों और उजबेगों से तोपखाने का प्रयोग सीखा तथा सैन्य नियन्त्रण की कला भी सीखी। हाथियों के स्थान पर घोड़ों की सेना को महत्व दिया जाने लगा।

10. इस युग की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि सम्पूर्ण राजसत्ता सम्राट के हाथों में केन्द्रित थी तथा प्रशासनिक व्यवस्था उत्तम कोटि की थी। मुगलों के दरबारी शिष्टाचार, वेशभूषा और अदब का जनता पर चमत्कारपूर्ण प्रभाव पड़ा तथा अर्द्धस्वतन्त्र राजाओं ने भी इसे अपना लिया। कालान्तर में ये भारतीय जीवन का अंग बन गये। इसके अतिरिक्त सुन्दर वस्त्रों का प्रयोग, स्वादिष्ट पदार्थो का भोजन तथा चीनी और काँच के बर्तनों का प्रयोग बढ़ गया। सुगन्धित वस्तुओं और संगीत, नृत्य का भी विकास हुआ।

इतना सब कुछ होते हुए भी मुगल शासन अधोगति को प्राप्त हुआ। उसका मूल कारण यह था-

1. मुगल बादशाहों का नैतिक पतन हो गया था तथा केन्द्रीय सत्ता होने के बाद भी उनका शासन पर कोई नियन्त्रण नहीं था।

2. मुगल शासकों के अतिरिक्त मुगल सरदारों का भी नैतिक पतन हो गया था। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के इतिहास निर्माता बैरामखाँ, मुनीम खाँ, मुजफ्फर खाँ, रहीम खानखाना, एतयादुद्दौला, महावत खाँ, तथा आसफखाँ और सादुल्लाखाँ ने भी इस बात को स्वीकारा है कि मुगल शासकों के चरित्र का प्रभाव उनके शासकों पर भी पड़ा।

3. मुगल साम्राज्य के पतन का यह भी कारण था कि धीरे-धीरे उसकी सेना निकम्मी हो गयी थी, सेना का चयन प्रक्रिया न्यायसंगत न होने के कारण निकम्मे व्यक्ति सेना में भर्ती कर लिये जाते थे। एक कारण यह भी हो सकता है कि सैनिकों का वेतन शाही खजाने नहीं दिया जाता था, उनका वेतन मनसबदार देते थे।

4. धीरे-धीरे सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य आर्थिक दृष्टि से दिवालिया हो गया था, जिसके कारण उसके उत्तराधिकारी शासन व्यवस्था की देख-रेख नहीं कर पाये।

5. औरंगजेब की धार्मिक नीति मूर्खतापूर्ण थी। औरंगजेब ने देश के बहुसंख्यक हिन्दुओं पर जो धार्मिक अत्याचार किये, उसका परिणाम उलटा हुआ। औरंगजेब ने हिन्दुओं पर घृणित जजिया कर लगाया। मारवाड़ के राज परिवार को मुसलमान बनाने का प्रयत्न किया, जिसके कारण राठौर, सिसौदिया, बुन्देले, सिक्ख और जाट औरंगजेब के विरोधी हो गये। बदले की भावना से हिन्दुओं ने मथुरा के उस जिला अफसर पर हमला कर दिया, जिसने पवित्र हिन्दू मन्दिर की जगह अब्दुलनवीस मस्जिद बनवाई थी और अनेक हिन्दू कन्याओं का अपहरण किया था।[193]

6. मुगल सल्तनत के पतन का कारण औरंगजेब की वह धार्मिक नीति थी, जो इस्लाम धर्म के अन्य

फिरकों के खिलाफ थी। वह हिन्दुओं की तरह सिया मुसलमानों पर भी अत्याचार करने लगा, उसके जमाने में सिया और सुन्नियों का झगड़ा बहुत बढ़ गया था।

7. औरंगजेब की दक्षिण नीति के कारण मुगल सल्तनत का पतन हुआ। दक्षिण के अनेक युद्धों में औरंगजेब के कुशल सिपाही और सेनापति मारे गये, जिसकी क्षतिपूर्ति वह नहीं कर पाया। इस युग में मराठों को अत्यन्त अनुकूल अवसर मिल गया। उन्होंने राजपूतों, बुन्देलो और दूसरे हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को उभारा और वे बाजीराव से उस समय जा मिले, जब वह मृत प्राय मुगल साम्राज्य की कमर तोड़ने चल पड़ा था।[194]

8. मुगल सल्तनत के पतन का एक कारण यह भी है कि मुगल सम्राटों को बाहरी और भीतरी खतरों का एक साथ सामना करना पड़ रहा था। इस समय नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण हुये। इसके अतिरिक्त जाट, सिक्ख, मराठे और बुन्देले अपनी आन्तरिक स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष करने लगे। मुगल सरदार भी दो भागों में विभाजित हो गये। मुख्य रूप से अमीर खाँ, इशाकखाँ और बुरहानुलमुल्क ऐसे सरदार थे, जो आपस में लड़ते रहते थे। इस आपसी झगड़े ने मुगल शासन की नींव ढहा दी।

9. मुगल शासन के पतन का यह भी कारण था, कि 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुस्लिम जाति के शासक बौद्धिक रूप से दिवालिया हो गये थे। उनमें सामाजिक चेतना का अभाव था। इस साम्राज्य के अनेक शासक स्वार्थ से परिपूर्ण और विश्वासघाती हो गये थे, जिसका दुष्परिणाम मुगलों ने भोगा। उस समय मुसलमानों में कोई अच्छा दार्शनिक नेता नही था, जिसके कारण मुसलमानों का नैतिक पतन हुआ।

10. अकबर के बाद वाले शासकों ने अपना कर्तव्य केवल देश में भीतरी और बाहरी सुरक्षा व्यवस्था बनाये रखना और कर वसूलना मात्र समझा। जब सरकार असफल रही तो आम जनता, अधीनस्थ शासक स्वतन्त्र हो गये और उन्होंने मुगल सम्राट को कर देना बन्द कर दिया। डा० आशीवादी लाल श्रीवास्तव के अनुसार- मुहम्मदशाह के शासनकाल के आरम्भ में निजामुलमुल्क दक्खिन के छः सूबों का स्वतन्त्र शासक बन गया और सआदत खाँ बुरहानुलमुल्क ने अवध में तथा अलीवर्दी खाँ ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा में दिल्ली सरकार की अवहेलना करके अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये। मराठों ने तो इससे बहुत पहले अपनी स्वतन्त्रता स्थापित कर ली थी। इसके बाद तो उन्होंने मुगलों के मालवा, बुन्देलखण्ड और गुजरात प्रान्तों पर भी अधिकार जमा लिया और वे सारे देश पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न करने लगे।[195]

11. मुगल साम्रज्य के पतन का एक कारण यह भी था कि सन 1739 में नादिर शाह ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया। उसने मुगल बादशाह मोहम्मदशाह को हराया। वह अपने साथ सत्तर करोड़ के मूल्य का मयूर सिंहासन तथा मनमाना धन लूट कर ले गया। उसके पश्चात् अहमद शाह अब्दाली ने भी भारत पर आक्रमण किया और भारत को लूटा। जिसके कारण भी मुगल शासन का अंत हुआ।

12. मुगलों के पतन का एक कारण, ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भारत आना था। इनकी सैन्य पद्वति मुगलों से अच्छी थी। उसी के विस्तार की वजह से मुगल शासन का अंत हुआ।

13. मुगलों के पतन का एक यह भी कारण था, कि ये लोग विदेशी थे। इनके नियम कानून भारतीय जनता के अनुकूल नही थे, उन्हे कभी भारतीय जनता का सहयोग उपलब्ध नही हुआ। विदेशी सत्ता तभी तक रह सकती है, जब तक वह शक्तिशाली रहे और जब मुगल सरकार स्वयं दुर्बल हो गयी, तो उसका पतन स्वाभाविक ही था।[196]

मुगल सत्ता के पतन के बाद बुन्देलखण्ड की स्थिति

औरंगजेब की मृत्यु 3 मार्च सन् 1707 में हुयी तथा उसका अंतिम संस्कार दौलताबाद के 4 मील पश्चिम में शेख जैन तुल-हक के मजार के पास हुआ। उसके पश्चात मुगल साम्राज्य भी अंतिम साँसे गिनने लगा। डा0 अरूणेन्द्र चौरसिया के अनुसार-छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् बुन्देलों का शक्तिशाली साम्राज्य तीन भागों में विभाजित हो गया। इस साम्राज्य का प्रथम भाग हदय शाह को, दूसरा भाग जतगराय को तथा तीसरा भाग मराठा सरदार बाजीराव को प्रदान किया गया। बाजीराव की ओर से गोबिन्द पंडित सागर में रहकर बुन्देलखण्ड का शासन देखता था। इसी समय भारतवर्ष में नादिशाह व अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण हुये। इसमे मराठों ने मुगलों का साथ दिया, फिर भी नादिर शाह व अहमदशाह अब्दाली जीते।[197] मुगलो के पतन के पश्चात् सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में लगभग पचास वर्ष तक मुगल शासको की छोटी-मोटी हरकतें बनी रही। मुख्य रूप से कड़ा और इलाहाबाद का सुबेदार मोहम्मद बंगश इस क्षेत्र को आंतकित किये रहा। उसे बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में सन् 1711 ई0 में एक जागीर उपलब्ध हुयी थी, तभी से मोहम्मद बंगश के विरोध में अनेको युद्ध हुये। इन युद्धो का वर्णन बंगश द्वारा लिखे गये पत्रों का एक वृहद संग्रह" खजिस्ता-ए कलाम" में उपलब्ध होता है। सुप्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकार विलियमन इरविन ने अपने ग्रंथ"सोसाइटी ऑफ बंगश नवाब" में मोहम्मद बंगश का जिक्र किया। इसके अलावा एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल में भी उसका जिक्र है। मोहम्मद बंगश के छत्रसाल तथा उनके पुत्र जगतराय से कई बार युद्ध हुये। अंतिम युद्ध 1728-29 में हुआ, जिसमें छत्रसाल बाजीराव पेशवा के सहयोग से विजयी हुए।

इसी समय बुन्देलखण्ड अनेक-छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हुआ तथा छत्रसाल द्वारा बाजीराव को तीसरा पुत्र माने जाने के कारण यहाँ मराठों का साम्राज्य भी स्थापित हुआ।

बुन्देलखण्ड में मराठा साम्राज्य :-

मुगल सत्ता के कमजोर पड़ जाने के कारण बुन्देलखण्ड में मराठों का साम्राज्य विस्तार दक्षिण में सिरौंज से लेकर उत्तर की ओर यमुना नदी तक फैल गया है। इनके पास इस समय बहुत बड़ी सेना थी। मल्हारराव होल्कर बाजीराव पेशवा के एक सरदार थे। विक्रम संवत् 1789 में मल्हारराव ने बुन्देलखण्ड से आगरे तक धावा मारा तथा मुजफ्फरखाँ और खानदौरान को हराकर उनके अधिकार का बहुत सा प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया।[198]

मराठों ने अपने साम्राज्य विस्तार के लिए वि0स0 1793 में मथुरा, इलाहाबाद, इटावा आदि स्थानो में आक्रमण किये। इन युद्धों में छत्रसाल के पुत्र जगतराय ने विशेष सहयोग दिया। मराठों को बुन्देलखण्ड के कई स्थानों से चौथ मिलने लगी। बुन्देलो की ओर से डिंगणकर और कृष्णा जी अमेततांबे मराठों की ओर से बुन्देलखण्ड का शासन देखते थे। गोविन्दराव पन्त के सहयोग से इनके साम्राज्य का क्षेत्र और विस्तृत हुआ। जब मराठों का साम्राज्य अत्यन्त विस्तृत हो गया, उस समय अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग सरदार नियुक्त किये गये। झांसी, ग्वालियर, कालपी और बाँदा में मराठों का साम्राज्य स्थापित हुआ। जब दिल्ली में सत्ता संघर्ष हो रहा था, उस समय बुन्देलखण्ड क्षेत्र का समस्त कार्य गोविन्द राव पन्त देखते थे। उन्होंने सागर से अपना स्थान बदलकर कालपी कर लिया तथा शासन का कुछ भाग अपने दामाद गोविन्द चांदारेकर को सौंप दिया। वे अपने पुत्र गंगाधर गोविन्द और बाला जी गोविन्द के साथ कालपी में रहने लगे।

बुन्देलों का आपसी संघर्ष :-

छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् बुन्देलों में आपसी संघर्ष प्रारम्भ हो गये, जिसके कारण जैतपुर साम्राज्य तीन भागों में विभाजित हो गया। साम्राज्य का एक भाग गुमान सिंह को, दूसरा खुमान सिंह को तथा तीसरा गज सिंह को मिला। इसमें बांदा और अजयगढ़ का राज्य गुमान सिंह को, चरखारी का राज्य खुमान सिंह को और जैतपुर का राज्य गज सिंह को मिला। पन्ना का राज्य हिन्दू पत के हाथ में रहा। बुन्देलों की आपसी लड़ाई का फायदा हिम्मद बहादुर गोसाई नें उठाया। इस समय यह लखनऊ के नवाब सिजाऊद्दौला के यहां कार्य करता था। उसने बांदा में आक्रमण किया तथा नोने अर्जुन सिंह से उनका युद्ध वि0स0 1839 में हुआ। इसी समय उसने दतिया के राजा रामचन्द्र को परास्थ किया और उससे चौथ वसूली। उसने मोठ, गुरसराय आदि पर भी अपना अधिकार कर लिया। कुछ दिनों बाद अलीबहादुर प्रथम, जो बाजीराव के नाती तथा शमशेर बहादुर प्रथम के पुत्र थे, बांदा में नवाबी करने के लिए सन् 1787 में यहां आ गये। अली बहादुर बांदा के शक्तिशाली नवाब थे। इन्होंने बांदा में अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की तथा उन्होंने अपने साम्राज्य का विस्तार चारों ओर किया। उन्होंने अपने विजय अभियान में हिम्मत बहादुर गोसाई को शामिल किया।

पं0 गोरेलाल तिवारी के अनुसार- अलीबहादुर, हिम्मत बहादुर से मित्रता कर लेना चाहता था। हिम्मत बहादुर बड़ा लालची मनुष्य था। उसने अपना लाभ अली बहादुर की मित्रता में समझा। उसने सिंधिया की नौकरी छोड़ दी और अलीबहादुर को सहायता देने का वचन दे दिया। अलीबहादुर ने हिम्मतबहादुर को देश का कुछ भाग देने का वचन दिया और हिम्मतबहादुर ने अली बहादुर को बांदा का नवाब बना देने की प्रतिज्ञा की।[199] धीरे- धीरे अलीबहादुर ने अपना क्षेत्र विस्तार कर लिया, उस का अधिकार अजयगढ़ में भी हो गया। वि0सं0 1853 में उसने रीवां पर आक्रमण किया, उसके पश्चात् कालिंजर में आक्रमण किया। वि0सं0 1857 में अलीबहादुर की मृत्यु कालिंजर में हो गयी तथा हिम्मत बहादुर उससे अलग हो गया।

बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों का प्रभाव :-

वि0सं0 1859 में अलीबहादुर की मृत्यु के पश्चात् सन् 1803-1804 के लगभग अंग्रेजों का प्रभाव बुन्देलखण्ड में पड़ा। 12 जनवरी सन् 1804 में बांदा के नवाब और अंग्रेजों के मध्य संधि हुयी। इसी प्रकार झांसी, ओरछा, दतियां, समथर, पन्ना, अजयगढ़, चरखारी, जैतपुर, बिजावर, छतरपुर, कालिंजर, पालदेव, तराव, भैसोंदा, चौबेपुर, पहरा, कामता-रजोला, मैहर, गौरिहार, बरौदा या पाथर कछार, जस्सो, अलीपुरा, अठभैया जागीर (बड़ा गांव), चिरगांव, टोरी फतेहपुर, धुरवई, विजना, बंका-पहाड़ी, बेड़ी, बीहट, गरैली, खनियाधान, नैगवाँ रिवई, कदौरा, लुगासी, सरीला, जिगनी, आदि रियासतों और जागीरो से अंग्रेजों की संधियां हुयी।

उपरोक्त संधियों से यह स्पष्ट होता है कि मुसलमानों का प्रभाव 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ से बुन्देलखण्ड में घटा और उसके स्थान पर अंग्रेजों का प्रभाव बढ़ा। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार बुन्देलखण्ड में निम्नलिखित राज्य थे :-

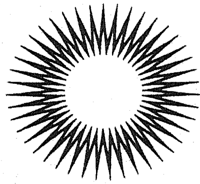
बुन्देलखण्ड के राज्य	शासकों का वंश और उपाधि
1. ओरछा	बुन्देला- हिज हाइनेस-सरामदे राजहाय बुन्देलखण्ड महाराजा महेन्द्र सवाई बहादुर
2. दतियाँ	बुन्देला- हिज हाइनेस महाराजा लोकेन्द्र बहादुर
3. समथर	गूजर-हिज हाइनेस महाराजा बहादुर
4. पन्ना	बुन्देला- हिज़ हाइनेस महाराजा महेन्द्र बहादुर
5. चरखारी	बुन्देला- हिज हाइनेस-महाराजाधिराज सिपहदारुलमुल्क बहादुर
6. अजयगढ़	बुन्देला- हिज़ हाइनेस महाराजा सवाई बहादुर
7. बिजावर	बुन्देला- हिज़ हाइनेस महाराजा सवाई बहादुर
8. बावनी	मुसलमान- हिज़ हाइनेस अजमुल उमरा इफ़खारुद्दौला इमादुलमुल्क साहिबे जाह मिहिन सरदार नब्बाव बहादुर
9. छतरपुर	पँवार-हिज हाईनेस महाराजा बहादुर

बुन्देलखण्ड की जागीरें तथा उनके जागीरदार

1. सरीला	बुन्देला- राजा
2. दुरबई	बुन्देला- दिवान
3. बिजना	बुन्देला- रामबहादुर दीवान
4. टोड़ी फतेहपुर	बुन्देला- दिवान
5. बंका पहाड़ी	बुन्देला- राव
6. जिगनी	बुन्देला- दिवान

7.	लुगासी	बुन्देला- राव
8.	बीहट	बुन्देला- राव
9.	बेरी	बुन्देला- राव
10.	अलीपुरा	परिहार- राव
11.	गौरिहार	ब्राह्मण, जुझौतिया-पण्डित
12.	गरौली	बुन्देला-दीवान बहादुर
13.	खनियाँ धान	बुन्देला- राजा
14.	नैगुवाँ रिवई	अहीरदौवा- कुँवर
15.	बिलहरी	दीक्षित, जुझौतियाँ- दीक्षित [200]

इस प्रकार हम देखते है कि सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड मुगलों के पश्चात् 42 रियासतों में विभाजित हो गया, जो प्रशासनिक दृष्टि से स्वतन्त्र थे। सन् 1804 के पश्चात् यहाँ मुसलमानों का प्रभाव कम हुआ और अंग्रेजों का प्रभाव बढ़ा। यहां की बहुसंख्यक हिन्दू जनता के हृदय में लगातार मेल-जोल से मुसलमानों के प्रति किसी प्रकार विद्वेष की भावना नहीं रह गयी तथा आपसी सामंजस्य की भावना विकसित हुयी।



सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Mookerij, R.K. An Indroduction to an Early History of Kausambi, Edi. 1935 P.
2. Alchin, B. "Middle stone Age" Institute of Archorlogy (London) Bulietin- No. 11.
3. बाँदा गजेटियर सं० 1977, पृ० 29.
4. के०डी० बाजपेयी - युग युग उ० प्र०, पृ० 42.
5. जालौन गजेटियर सं० 1989, पृ० 15
6. Drake-Brockman, D.L, Jaluan. A Gazetter. P. 115.
7. हमीरपुर गजेटियर सं० 1980, पृ० 20
8. अ) Indian Archorology- 1963-64 A Review, Edi- A.G. Ghosh, Delhi 1967. P. 45.

   ब) Alkinson, E.T. : Statistical, Descriptive And Historical Account of the Narth, Western Provinces of India, Vol. I, Bundelkhand Division, P. 524.
9. झाँसी गजेटियर सं० 1965, पृ० 17.
10. (अ) Beams Jhon (Edf.) : Memori on the History, folk and Distribution of the Races of Narth-Western Provinces of India, Vol I, P.P. 33, 95, 153.

    (ब) Sankalia, H.D. Pre- History and proto history in India and Pakistan, Bombay, 1962, P. 58, India Archology, 1956-57 A Review, P. 79.
11. इण्डियन आर्केलॉजिकल ए रिव्यू सं० 1955-56, प० 4
12. वही, सं० 1961, पृ० 80
13. वही, पृ० 8, 9, 32, 84.
14. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, पृ० 94.
15. सिल्वेराड- जनरल ऑफ एशियाटिक सोसाएटी ऑफ बंगाल (न्यू सीरिज) जिल्द-8, सं० 1907, पृ० 86.
16. कन्हैयालाल अग्रवाल, विन्ध्यक्षेत्र का ऐतिहासिक मूल्यांकन भूगोल सं० 1987, प्रका०- सतना (म०प्र०), पृ० 3.
17. ऋग्वेद- 7, 5, 37-9.
18. श्रीमद् बाल्मीकि रामायण- उत्तरकाण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर सं० 2045, श्लोक सं० 38, पृ० 1598.
19. महाभारत- आदिपर्व, अध्याय-63, श्लोक सं० 11-12, संवत् 2045, पृ० 173.
20. गोरेलाल तिवारी- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, संवत् 1990, प्रका०- काशीनागरी प्रचारिणी सभा, पृ० 4.
21. वही, पृ० 5

22. महाभारत, शान्तिपर्व अध्याय-5, श्लोक सं0 11.
23. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास संवत् 1990, प्रका0- काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ0 8.
24. महाभारत शान्तिपर्व- अध्याय 87, श्लोक सं0 13.
25. वही, अध्याय 67, श्लोक सं0 23.
26. महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय 67, श्लोक सं0 34.
27. ए0के0 मित्तल- हिस्ट्री ऑफ उड़ीसा, पृ0 259 उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल पृ0 427.
28. के0डी0 बाजपेयी, ज्योग्राफिकल इन्साइक्लोपीडिया ऑफ ऐश्यट मेडिवल इण्डिया, बनारस सं0 1967, खण्ड 26 पृ0-1.
29. एपिग्राफिका इण्डिया, खण्ड 8, पृ0 60
30. वही, खण्ड 15, 22 पृ0 44, 45, 131.
31. भण्डारकर, छाबड़ा और गाइ- कर्पिस खण्ड-2 भाग-2 अभिलेख सं0 12, 3, 4, 12.
32. वी0 मिश्र, ट्रेड कट्स सी0 एण्ड लैण्ड इन इण्डिया एज खिल्डि इन दि बुद्धिस्ट लिटरेचर भरहुत में उद्धृत, पृ0 19.
33. ए0 कनिंघम, स्तूप ऑफ भरहुत, पृ0 132, 140, 142.
34. एपिग्राफिका इण्डिका- जिल्द- 26, पृ0 237.
35. कन्हैयालाल अग्रवाल- विन्ध्यक्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल सं0 1987 सुषमा प्रेस सतना, पृ0 8.
36. अ) रैप्सन, कैन्टालॉग, पृ0 सी0-115, पृ0 207, 10
    ब) मध्य प्रदेश संदेश, 15 मई, 1971, पृ0 6.
    स) बाजपेई, के0डी0 सागर थ्रू एजेज सागर, 1964, पृ0 6.
37. गोरेलाल तिवारी- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास संवत् 1990 प्रका0- नागरी प्रचारिणी सभा बनारस, पृ0 14.
38. वासुदेव उपाध्याय - प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन सं0 1961, प्रका0- मोतीलाल बनारसीदास बनारस, पृ0 47, 48.
39. अ) के0डी0 बाजपेयी - सागर थ्रू एजेज सागर 1964, पृ0 7-11.
    ब) वी0वी0 मिराशी - कार्पस- एपिग्राफिका इण्डिका खण्ड-4, पृ0 13.
40. के0पी0 जायसवाल - हिस्ट्री ऑफ इण्डिया सं0 1993, पृ0 67.
41. वही, खण्ड 18, पृ0 807.
42. आर0 के0 मुखर्जी - गुप्त-एम्पायर, बम्बई 1947, पृ0 21.

43. मंडसर अभिलेख, वि०सं० 589
44. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास- प्रका० काशी नागरी प्रचारिणी सभा, संवत् 1990, पृ० 22.
45. आर०के० मुखर्जी - क्वायनेज ऑफ दि गुप्त एम्पायर बम्बई, 1947, पृ 319.
46. भण्डारकर, छाबड़ा गाइ- कार्पस खण्ड 3, पृ० 127.
47. एपिग्राफिका इण्डिका खण्ड- 17, पृ० 12-13.
48. भण्डारकर छाबड़ा गाई- कार्पस खण्ड-3, पृ० 107.
49. एपिग्राफिक इण्डिका, खण्ड-8, पृ० 284.
50. (अ) वही, पृ० 254, टिप्पणी-4
    (ब) ए० कनिंघम - आर्कुलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, खण्ड-21, पृ० 40.
51. मिराशी, स्ट्डीज इन इण्डोलॉजी एण्ड, खण्ड-1, पृ० 240.
52. आर०सी० मजूमदार- क्लॉसिकल एकाउण्ट्स ऑफ इण्डिया कलकत्ता, सं० 1960, पृ० 31.
53. वी०सी० सिन्हा - डिक्लाइन ऑफ दि किंगडम ऑफ मगध पटना सं० 1954, पृ० 127-29.
54. बाटर्स, खण्ड-2, पृ० 251.
55. बाणभट्ट, हर्षचरित सार, पृ० 189.
56. बासुदेव शरण अग्रवाल - हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 189.
57. वी०सी० सिन्हा - डिक्लाइन ऑफ दि किंगडम ऑफ मगध, पटना सं० 1954, पृ० 316.
58. एपिग्राफिका इण्डिका- जिल्द 194, पृ० 18-309.
59. भण्डारकर, छाबड़ा गाई- कार्पस खण्ड- 4, पृत्र 118.
60. वी०वी० मिराशी - कल्चुरि नरेश और उनका काल भोपाल, वि०स० 222, पृ०-12.
61. भण्डारकार, छाबड़ा, गाई - कार्पस खण्ड74, पृ० 204 से 224, श्लोक सं० 24.
62. गोरेलाल तिवारी- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास संवत् 1990 नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० 40.
63. एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द-1, श्लोक- 10, पृ० 221.
64. वही, श्लोक सं० 21, पृ० 126.
65. वही, जिल्द-1, श्लोक सं० 45, पृ० 124-134.
66. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास संवत् 1990, प्रका०- बनारस, पृ० 42-43
67. राधाकृष्ण बुन्देली- बुन्देलखण्ड का एतिहासिक मूल्यांकन सं० 1989,प्रका०बु०प्र० बांदा, पृ० 52.

68. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - दिल्ली सल्नत सं० 1989, प्रका०- शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, पृ० 46.
69. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, संवत् 1990, प्रका०- नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० 46.
70. सुशील कुमार सुलेरे - अजयगढ़ और कालिंजर की देव प्रतिमायें सं० 1974, पृ० 55.
71. विशुद्धानन्द पाठक - उत्तर भारत का राजनीति इतिहास- वि०स० 2029, प्रका०- उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, पृ० 404.
72. केशव चन्द्र मिश्र - चन्देल और उनका राजत्वकाल, प्रका० बनारस, सं० 1974, पृ० 176.
73. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - दिल्ली सल्तनत सं० 1989, प्रका० आगरा, पृ० 54.
74. (अ) वही, पृ० 54.
    (ब) उत्बी, तारीखें- यामिनी।
75. सर हेनरी इलियट- हिस्ट्री ऑफ इण्डिया जिल्द-1, परिशिष्ट- डी, पृ० 434-68.
76. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव - सल्तनत सं० 1989, प्रका० शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, पृ० 54.
77. उत्बी- तारीखें यामिनी, पृ० 54.
78. वही
79. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - दिल्ली सल्तनत सं० 1989, प्रका० 54.
80. वही,
81. वही, पृ० 55.
82. वही, पृ० 56.
83. वही, पृ० 58.
84. वही,
85. वही,
86. गोरेलाल तिवारी- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, संवत् 1990 प्रका० काशी नागरी प्रचारिंणी सभा, पृ० 46.
87. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव - दिल्ली सल्तनत, सं० 1989, प्रका० आगरा पृ० 60.
88. के०सी० मिश्र - चन्देल और उनका राजत्वकाल, सं० 1974, प्रका० बनारस पृ० 269.
89. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव - दिल्ली सल्तनत सं० 1989, पृ० 60.
90. वही, पृ० 60-61
91. वही, पृ० 62-63.
92. वही, पृ० 63.

93. वही, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति सं० 1973, पृ० 252.
94. वही,
95. वही, 253
96. जार्ज सेल 'दि कुर्आन' पाठ-2, पृ० 31.
97. वही, पाठ-9, पृ० 196.
98. वही, पाठ 5, पृ० 107.
99. सतीशचन्द्र- मध्यकालीन भारत सं० 1998, प्रका० जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली, पृ० 25.
100. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास संवत् 1990, प्रका०- काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० 251.
102. सुशील कुमार सुलेरे - अजयगढ़ और कालिंजर की देव प्रतिमायें सं० 1974, दिल्ली पृ० 70.
103. केशवचन्द्र मिश्र - चन्देल और उनका राजत्वकाल, सं० 1974 प्रका०- बनारस, पृ० 271.
104. हसन निज़ामी- ताजुल-मा-अतहर (अनु०) इलियट भाग-2, पृ० 231-232.
105. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास वि०सं० बनारस, पृ० 75.
106. तबकात-ए-जासिरी (अनु०) रेवर्टी, पृ० 102.
107. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास संवत् 1990, प्रका० बनारस, पृ० 76.
108. एस०सी० राय - डायनेस्टिक हिस्ट्री जिल्द-2, पृ० 720-730.
109. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव - दिल्ली सल्तनत सं० 1989, प्रका० आगरा, पृ० 112.
110. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सं० 1990, बनारस, पृ० 87.
111. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - दिल्ली सल्तनत सं० 1989 प्रका० आगरा, पृ० 309.
112. वही, पृ० 309.
113. वही, पृ० 312.
114. वही, पृ० 1
115. वही, पृ० 313.
116. वही, पृ० 314.
117. वही, पृ० 315.
118. दीवान प्रतिपाल सिंह - बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग-1, संवत् 1985, प्रका० बनारस, पृ० 127.
119. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - दिल्ली सल्तनत सं० 1989, प्रका०- आगरा, पृ० 317.
120. वही, मध्यकालीन भारत सं० 1998, प्रका० हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निर्देशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ० 1.

121. वही, मुगलकालीन भारत सं0 1981, प्रका0 आगरा, पृ0 1.

122. वही, पृ0 7.

123. वही, पृ0 19.

124. Memories of Babar- (Translated into English by Mr. M.S. Bevridge) P. 21

125. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त संवत् 1990, प्रका0 बनारस, पृ0 97-98.

126. वही, पृ0 99.

127. जनरल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, सं0 1837, पृ0 644-46 तक

128. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास संवत् 1990, काशी नागरी प्रचारिणी सभा बनारस पृ0 102.

129. वही, पृ0 384.

130. रामस्वरूप ढेगुला - बुन्देलखण्ड का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन सं0 1987, संचयन गोविन्द नगर कानपुर, पृ0 221.

131. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, संवत् 1990, प्रका0- बनारस, पृ0 386.

132. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मुगलकालीन भारत, सं0 1981, प्रका0 आगरा, पृ0 30.

133. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, वि0सं0 बनारस, पृ0 88.

134. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मुगलकालीन भारत, सं0 1981, प्रका0 आगरा, पृ0 101.

135. वही, पृ0 152.

136. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, सं0 1990, प्रका0 102-103.

137. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मुगलकालीन भारत, सं0 1981, प्रका0 आगरा पृ0 155.

138. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, संवत् 1990, प्रका0 बनारस, पृ0 94.

139. वही, पृ0 134.

140. कविमणि पं0 कृष्णदास- बुन्देलखण्ड का इतिहास, ओरछा खण्ड, सं0 1981, प्रका0- राजकवि बुन्देला दरबार पन्ना, पृ0 104.

141. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, सं0 1990, प्रका0 बनारस, पृ0 141.

142. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मुगलकालीन भारत, सं0 1981, प्रका0- आगरा, 308-309.

143. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास संवत् 1990, प्रका0 बनारस, पृ0 143-144.

144. वही, पृ0 159.

145. वही, पृ0 179-180.

146. वही, पृ0 183.

147. वही, पृ० 188-189.
148. लाल कवि- छात्र प्रकाश.
149. कवि मणि, पं० कृष्णदास- बुन्देला का इतिहास वि०सं० 2031, प्रका० छतरपुर (म०प्र०), पृ० 93.
150. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास संवत् 1990, प्रका०- बनारस, पृ० 201-220.
151. वही, पृ० 207.
152. वही, पृ० 212.
153. वही, पृ० 211.
154. कविमणि पं० कृष्णदास- बुन्देलखण्ड का इतिहास, वि०सं० 2031, प्रका० छतरपुर (म०प्र०), पृ० 162.
155. वही, पृ० 164.
156. वही, पृ० 167.
157. जनरल ऑफ हिस्ट्रोरिकल रिपोर्ट, भाग-5-8, सं० 1878, पृ० 42.
158. (अ) खुजिस्ता, पृ० 81.
    (ब) जनरल ऑफ हिस्ट्री रिपोर्ट बंगाल, सं० 1878, पृ० 289-90.
    (स) इरविन, भाग-2, पृ० 232.
159. पन्ना राज्य पत्रावली- 23, 34, 36, 37.
160. कविमणि पं० कृष्णदास- बुन्देला का इतिहास वि०सं० 2031, प्रका० छतरपुर, पृ० 177.
161. पेशवा जिल्द- 13, 14, 15, 18, 22, 23, 29, 30.
162. गोविन्द सरदेसाई, सखाराम- मराठों का नवीन इतिहास, सं० 1980, प्रका० आगरा, पृ० 93.
163. राधाकृष्ण बुन्देली - बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन सं० 1989, प्रका० बांदा, पृ० 116.
164. वही, पृ० 115.
165. वही, पृ० 116, 117.
166. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मुगलकालीन भारत सं० 1981, प्रका० आगरा, पृ० 463-464.
167. कविमणि, पं० कृष्णदास- बुन्देलखण्ड का इतिहास वि०सं० 2031 छतरपुर (म०प्र०), पृ० 191.
168. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास वि०सं० 1990, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० 217-218.
169. अरविन्द सिन्हा - मध्यकालीन भारत, भाग-2, सम्पादक हरिश्चन्द्र वर्मा, सं० 1998, प्रका० हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निर्देशालय दिल्ली विश्व विद्यालय, पृ० 813.

170. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मुगलकालीन भारत सं० 1981, प्रका० आगरा, पृ० 531.

171. वही, पृ० 532.

172. राधाकृष्ण बुन्देली - बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन सं० 1989, प्रका० बांदा, पृ० 119.

173. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मुगलकालीन भारत, सं० 1981, प्रका० आगरा, पृ० 533.

174. वही, पृ० 534.

175. वही, पृ० 535.

176. वही, पृ० 356.

177. दीवान प्रतिपाल सिंह - बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग-1, सं० 1985, प्रका० बनारस, पृ० 1.

178. वही, पृ० 42 से 49 तक.

179. दीवान प्रतिपाल सिंह- बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग-1, वि०सं० 1985, बनारस, पृ० 55.

180. वही, पृ० 109.

181. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मुगलकालीन भारत, सं० 1981, प्रका० आगरा, पृ० 539.

182. यदुनाथ सरकार स्टडीज इन मुगल इण्डिया, पृ० 539.

183. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मुगलकालीन भारत सं० 1981, प्रका० आगरा, पृ० 539-540.

184. वही, पृ० 540.

185. दीवान प्रतिपाल सिंह - बुन्देलखण्ड का इतिहास संवत् 1985, प्रका० काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० 101.

186. वही, पृ० 104.

187. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मुगलकालीन भारत सं० 1981, प्रका० आगरा, पृ० 568.

188. Sarkar J.N. Mughal Adminestration (4th edition) P.P. 569.

189. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मुगलकालीन भारत, सं० 1981 प्रका० आगरा, पृ० 570

190. Sarkar J.N. Downfall of The Mughal Empire, Vols.-I, 4th P.P. 570.

191. Bernier, Travels in the Mughal Empire (1656-16668) Edited by Constable and Smit) P.P. 570.

192. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मुगलकालीन भारत, सं० 1981 प्रका० आगरा पृ० 575.

193. वही, पृ० 586.

194. वही, पृ० 587.

195. वही, पृ० 589.

196. वही, पृ० 590.

197. डॉ० अरुणेन्द्र चौरसिया (शोध प्रबन्ध) बुन्देलखण्डी लोक संगीत में सामाजिक साहित्यिक

और सांस्कृतिक तत्व सं० 1995, पृ० 100.

198. गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास संवत् 1990, प्रका०- काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० 240.

199. वही, पृ० 272.

200. दीवान प्रतिपाल सिंह - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, संवत् 1985, प्रका० बनारस, पृ० 155 से 159 तक।

चतुर्थ अध्याय

- बुन्देलखण्ड के निवासियों की संस्कृति एवं उसका धर्म।
- बुन्देलखण्ड में निवास करने वाली पिछड़ी जातियों का विवरण एवं उनका धर्म।
- बुन्देलखण्ड में निवास करने वाली कुलीन जातियों की संस्कृति एवं धर्म।
- बुन्देलखण्ड में निवास करने वाली विदेशी जातियाँ एवं उसका धर्म।
- बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक विरासत।
    - परम्परा, लोकरीति एवं तीज त्योहार।
    - बुन्देलखण्ड के निवासियों की भाषा।
    - बुन्देलखण्ड के निवासियों की वेश-भूषा एवं अलंकार।
    - बुन्देलखण्ड के निवासियों की लोक संस्कृति एवं कला।
    - बुन्देलखण्ड में उपलब्ध महत्वपूर्ण साहित्य।
    - बुन्देलखण्ड की खनिज सम्पदा।

बुन्देलखण्ड की संस्कृति एवं धर्म

महिमामंडित बुन्देलखण्ड अपने निवासियों के यशपूर्ण कृत्यो के कारण अजर अमर है तथा उनका यह व्यवहारिक स्वरूप बुन्देलखण्ड की संस्कृति को जन्म देने के कारण बना । यहाँ की संस्कृति अन्य क्षेत्रों से अपनी पृथक पहचान बनाये हुए है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार के0के0 शाह ने बुन्देलखण्ड की पहचान उसकी पृथक संस्कृति के आधार पर की है, लेखक के अनुसार -

The need arises, in the first place , from the fact that there is hardly any agreement among the scholars and writers about its geographical extent and, in the second, though a lot has been written about its history and culture none , so far , has delved deep into the origin and antiquity of its name .[1]

यहाँ की संस्कृति का अध्ययन करने के लिये यहाँ के मूल-निवासियों के सन्दर्भ में अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता हैं। अभी तक यह विवादास्पद है कि यहाँ के मूल निवासी कौन थे। उपलब्ध पौराणिक ग्रंथों में यहाँ पर आर्यो के पहले अनार्यो का निवास था। यहाँ का भौगोलिक वातावरण मानव के निवास के अनुकूल था, इसलिये इस क्षेत्र में मानव की प्राचीनतम बस्तियाँ बसी। डा0 कन्हैया लाल अग्रवाल के अनुसार, विन्ध्यक्षेत्र का अधिकांश भाग जंगली था, जिसमें शबर, पुलिन्द, भिल्ल आदि जातियां रहती थी। वन्य तथा शैल-गृह जीवन के अतिरिक्त ग्राम्य एवं नागरिक जीवन का भी अस्तित्व इस क्षेत्र में था।[2] स्कन्द पुराण के अनुसार- जजाहुति देश में बयालिस हजार गाँव और डाहलदेश में नौ लाख गांवो का उल्लेख मिलता हैं।[3] इब्न उल अतहर द्वारा रचित पुस्तक में यह वर्णन मिलता है कि जब बुन्देलखण्ड में चन्देलों का राज्य था, उस समय उनकी सैनिक संख्या एक लाख चौरासी हजार थी। जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता कि तद्‌युगीन जनसंख्या इससे कई गुनी रही होगी।[4] गार्दिजी के अनुसार, चन्देलों के पास एक लाख पैतालिस हजार लडाकू सैनिक थे। इससे यह अनुमान लगया जा सकता हैं कि तद्‌युगीन बुन्देलखण्ड मे एक करोड़ पैतालिस लाख व्यक्ति निश्चित ही निवास करते रहे होगें, जिनके जीवन यापन के लिये पर्याप्त संसाधन यहाँ होगे। यह क्षेत्र कृषि प्रधान और खनिज सम्पदा का धनी क्षेत्र था ।[5] सुप्रसिद्ध विद्वान फरिश्ता ने भी उपरोक्त कथन की पुष्टि की है, किन्तु इन ऐतिहासिक साक्ष्यों से यहाँ के मूल निवासियों का अनुमान नही लगाया जा सकता।[6]

जब आर्यो का आगमन भारतवर्ष में हुआ, तो वे धीरे - धीरे अनार्यो को हटाते हुये विन्ध्यक्षेत्र की ओर बढ़े। वैदिक काल में यह क्षेत्र चेदि वंशियो के आधीन था। जिसका उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है।[7] ऋग्वेद के पश्चात् बाल्मीकि रामायण एक ऐसा ग्रंथ हैं, जिसमें यहाँ निवास करने वाली मूल जातियों का उल्लेख मिल जाता हैं।[8] उस युग में इन्हें राक्षस के नाम से पुकारा जाता था। वास्तव में जो व्यक्ति बुन्देलखण्ड में निवास करते है, वे कई जातियो के मिश्रण है। मुख्य रूप से यहाँ रहने

वाली प्राचीन जातियों में आर्य, द्रविण, शक, कुषाण आदि थे। जिनके सम्मिश्रण ने बुन्देलखण्ड की संस्कृति को जन्म दिया । इस सन्दर्भ में एक अभिलेख उपलब्ध हुआ है, जो बनाफर राजपूत सारनाथ बोधिसत्व की मूर्ति मे उल्लिखित है ।[9] लेकिन कुछ पर्वतीय क्षेत्र ऐसे है जहाँ रक्त का सम्मिश्रण नही हैं। बाल्मीकि रामायण में राक्षस और शबर जातियों का उल्लेख मिलता हैं। ऐसा लगता हैं कि बुन्देलखण्ड के मध्य भाग में कोल, भील, शबर, उलिन्द, मुण्ड, दृविण आदि जातियों का निवास था। इसका उल्लेख अजयगढ़ में भोज वर्मा के प्रस्तर अभिलेख में उपलब्ध होता है।

आज्ञाकरान पल्लिनिवासिनोडयं चकार भिल्लाच्छबरान् पुलिन्दान्[10]

इनके व्यक्तित्व के सन्दर्भ में यह बात ज्ञात होती हैं, कि यहाँ के मूल निवासियों का रंग काला, कद ठिगना, नाक चौडी, बाल घने और काले होते थे। ऐतिहासिक ग्रंथों में ऐसे व्यक्तियों को विन्ध यक्षेत्र का निवासी बतलाया गया हैं। जबकि इनकी तुलना में आर्य जनों का व्यक्तित्व आर्कषक था, आकृति मुलायम, बाल घुँघराले, दाढी और मूछें घनी, नाक नुकीली और ऊँची, सिर लम्बे थे। यह अर्ध सभ्यजनों से अलग दिखलाई देते थे।

दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार यहाँ के मूल निवासी निश्चर, अनार्य, तिब्बती, असुर, वर्मीय, कोल, सुर, नाग, सूर, दिति, दनुज, गरूण, द्रविण, सु-गौंड व आर्य लोग थे - यथा-

निश्चर, अनार्य, तिब्बती, असुर,
वर्मीय, कोल, सुर, नाग, सूर।
दिति, दनुज, गरूण, द्रविण, सु-गौंड
सुत सरल, आर्यन दिय बगौंड़ ।[11]

दीवान प्रतिपाल सिंह ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक बुन्देलखण्ड का इतिहास (प्रथम भाग) में यहाँ के मूल निवासियो का वर्णन सविस्तार किया है। प्रतिपाल सिंह यह स्वीकार करते है कि 6600 ई० पू० से लेकर 5900 ई० पू० तक यहाँ पर अनेक विदेशी जातियों का आगमन हुआ। ये जातियां आर्यकुल की नही थी। मुख्य रूप से ये लोग तिब्बत, वर्मा और कोलारियन से भारतवर्ष आये थे, जो विन्ध्यक्षेत्र के अनेक भागों में आकर बस गये। ये लोग लोहे का प्रयोग करना जानते थे और अपनी जीविकोर्पजन के लिये कृषि करते थे। ये मुख्य रूप से अपनी रक्षा के लिये हड्डी और पत्थर के अस्त्र शस्त्र प्रयोग में लाते थे। ये पशुपालन नही जानते थे। जो लोग बुन्देलखण्ड में बसे, वे लोग कोल, मुंडा, संथाल, भील आदि के नामों से जाने गये। सौंर और कौंदर भी इन्ही जातियों में शामिल थे।[12]

उपरोक्त जातियों के उपरान्त यहाँ पर मध्य एशिया से द्रविणों का भी आगमन हुआ। पहले ये लोग पंजाब और सिंध में बसे, उसके पश्चात धीरे-धीरे इनका आगमन बुन्देलखण्ड क्षेत्र में हुआ। ये लोग उपरोक्त जातियों से अधिक सभ्य थे। ये कृषि तथा पशुपालन की विधि जानते थे तथा नाग और पृथ्वी का पूजन करते थे। इसके अतिरिक्त पीतल के अस्त्रशस्त्र युद्ध में प्रयोग करते थे।

ये लोग प्रशासनिक व्यवस्था जानते थे और अपनी रक्षा के लिये किलों का निर्माण करते थे। बुन्देलखण्ड में इनके वंशज तामील, तैलंग, कनारी, खांड और गौंड कहलाते थे । दीवान प्रतिपाल सिंह ने कुछ जातियों का उल्लेख किया हैं तथा व्यक्तियों के मूल स्वरूप का वर्णन इस प्रकार दिया है - बुन्देलखण्ड में आर्यो से पूर्व के निवासियों को भाषा हीन, दुराचारी, कुरूप, काला, असुर, दैत्य, दानव आदि कहकर बहुत हीन स्थिति का दिखलाया गया है।[13] ये लोग जंगलों में रहते थे, धनुषबाण से शिकार खेलते थे तथा अपनी रक्षा के लिये किले बनाते थे। आर्यो द्वारा रचित ग्रंथों में इन्हें दस्यु अथवा राक्षस कहा गया है तथा इनकी भाषा को असुरी भाषा कहा गया है। इनमें कपि, ऋक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस, नाग आदि जातियां प्रमुख थी।

इसके अतिरिक्त अनार्यो में तिब्बती जाति के लोग भी शामिल थे। इनमें से कुछ लोग बुन्देलखण्ड में आकर रहने लगे थे। ऐसा लगता है कि स्वयंभू मनु के छोटे पुत्र प्रियवृत असुर जाति के थे, जो सम्पूर्ण एशिया के सम्राट हुये। इसी वंश में जड़भरत तथा उनके पिता ऋषभदेव भी हुये, जिन्होने जैन मत चलाया। वर्मी जाति के लोग भी बुन्देलखण्ड में आये थे, ये लोग देवकुल उत्तान पाद की सुरशाखा से संबंधित थे । इन जातियों मे यक्ष, ऋक्ष, गंधर्व, कपि, कीटक, पारावत, पिशाच, आर्जिक, व्रात्य, आदि लोग वर्मीशाखा के थे। इसके अतिरिक्त यहाँ पृथु निषाद तथा प्रचेतस आदि का भी उल्लेख मिलता हैं। विन्ध्यक्षेत्र में कपि तथा यक्ष जातियों का उल्लेख भी मिलता हैं। श्रृक्ष जाति की कन्या जांबवती का विवाह कृष्ण के साथ हुआ था। इससे यह प्रतीत होता है कि कपि, श्रृक्ष और पृथु के भाई तथा निषाद वंश के लोग कोल कुल के थे। इनका अस्तित्व बुन्देलखण्ड में 6300 ई० पू० में था।

बुन्देलखण्ड में नागों का अस्तित्व बहुत अधिक था। जब समुद्र मंथन हुआ, उस समय नागों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस वंश का शक्तिशाली शासक तक्षक था। इसने अभिमन्यू के पुत्र परिक्षित का वध किया था। इन लोगों का राज्य छोटा नागपुर से लेकर मथुरा के समीप पवाया और मालवा के संन्निकट विदुशा तक विस्तृत था। अनेक इतिहासकारों ने, इन्हे तिब्बती शाखा का माना है। इनका आर्यो से कोई संघर्ष नही हुआ बल्कि आर्यो से इनके वैवाहिक सम्बन्ध भी हुये। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार-साधारणतया इनका आर्यो से झगड़ा नही था। युवनाश्व, हर्यर्श्व, यदु, अर्जुन जख्कारू, कुश आदि के ब्याह सम्बन्ध नागों से हुयें थे। [14]

नागों के अतिरिक्त दैत्यों का प्रभाव भी बुन्देलखण्ड में था। ये लोग देवताओं के सौतले भाई थे। इनके गुण, कर्म तथा शौर्य आर्यो के समान थे। ये कभी-कभी आर्यो के पुत्रों को गोद लेते थे। इनकी तुलना दक्षिण के द्रविणों से की जाती हैं, इसी वंश के गरूण और गौंड बुन्देलखण्ड में निवास करते थे।

बुन्देलखण्ड में राक्षसों का भी बाहुल्य था। ये लोग यातुधान और निश्चर भी कहलाते थे। इनका सम्बन्ध अनार्य कुलों से था। मग, ब्रात्य, कीटक, आर्जिक, महावृष, बाह्रीक, भूंजवन, आदि

अनार्य थे और आर्यो के शत्रु भी। अनार्य लोग भूत-प्रेत, पर्वत, वृक्ष आदि की पूजा करते थे। बुन्देलखण्ड में रहने वाले भील, द्रविण, गौंड, संथाल तथा सौर आदि जाति के लोग इनका अनुसरण करते थे।

रामायण तथा महाभारत के समय में भी इस देश का बहुत सा भाग जंगलों से ढका था तथा यहाँ कोल, भील तथा अनार्य जातियों का निवास था । 232 ई० पू० के बाद जब सम्राट अशोक का यहाँ साम्राज्य था, उस समय भी यहाँ पाठा क्षेत्र में कर्बी और मानिकपुर के सन्निकट कई स्थानों पर शैल चित्र उपलब्ध हुये है, ये चित्र अनार्यो के प्रतीत होते हैं।[15]

हमीरपुर गजेटियर के अनुसार यह वर्णन उपलब्ध होता है, कि सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड प्रांत का पूर्वी भाग जंगलों से ढका हुआ था। यहाँ के वासी जंगली, असभ्य, गौंड, कोल, भील, आदि थे । ईसा की तीसरी शताब्दी तक यहाँ अनार्य जातियों का बाहुल्य था। उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार - हमीरपुर के मकरबई गाँव में कोल, भील और अहीर रहा करते थे। मौदहा में भी कोल, भीलों का बाहुल्य था, जिन्हें शेख अहमद और उनके लडके हुसैन ने यहाँ से भगा दिया था। पनवाडी गाँव में भी पहले कोलभीलों का निवास था । ईसा की 9 वीं शताब्दी में उन्हें यहाँ से निकाल दिया गया।[16]

जालौन गजेटियर के अनुसार- यहाँ के मौलिक निवासियों के सन्दर्भ में कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नही होते, केवल यह स्वीकार किया जा सकता हैं, कि बुन्देलखण्ड के अन्य क्षेत्रों की भाँति यहाँ के मूल निवासी कोल, भील, गौड़, बैगा आदि रहे होगें।[17]

झांसी के सन्दर्भ में भी कोई प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नही होती। ऐसा कहा जाता हैं कि यहाँ भी पहले जंगल था और मौर्य साम्राज्य के पहले इस क्षेत्र में असभ्य जाति के लोग रहते थे। ताल-बेहट के समीप बिजरौठा में पहले आदिवासी निवास करते थे, ये लोग भील और गौड़ थे। इसका वर्णन गजेटियर में इस प्रकार मिला हैं।

The early history of the Jhansi district is intimately connected with the region which was known at different times as chedi - desha, chedi-rashtra or chedi janapada, Jejakabuhukti, Jejahuti or Jajhati and Bundelkhand of which it forms the western boundary. In prehistoric times this region seems to have been inhabited by Certain primitive people like the Bhils, Kols, Saheriya, Gonds, Bhars, Bangars, and Khangars.[18]

सागर गजेटियर में भी यह वर्णन उपलब्ध होता है कि यहाँ के निवासी आदिवासी थे । ये सौर जाति से सम्बन्धित थे। ये लोग शहद और जंगली पैदावार एकत्रित करके अपनी जीविका चलाते थे। इस सन्दर्भ में यह वर्णन मिलता हैं कि इस जाति के लोग अपने विवाह में बिरादरी वालों को रोटी के छोटे-छोटे टुकडें बाँटते थे । जिन्हें लोग अपनी पगड़ी में खोस लिया करते थे तथा पाँच कौड़ी मेहमानों को भेट में देते थे। ये लोग भवानी देवी और दूल्हादेव की पूजा करते थे । बीमारी के समय

पर देवता का सन्तुष्ट करने के लिये जंगल में आग लगा दिया करते थे।[19]

छतरपुर गजेटियर में उल्लेख मिलता हैं कि देवरा गाँव के समीप गढ़ नामक स्थान था, जहाँ आदिवासी निवास करते थे । यहाँ पर पर्वत में एक चितावर का पेड़ था, उसकी यह विशेषता थी कि वह स्पर्श मात्र से लोहा काट देता था। देवरा पहाड़ के ऊपर भूतों का वास है। कहते हैं, इस पर्वत के ऊपर जो भी गया, वह आज तक जिंदा नही लौटा। यहाँ के आदिवासी उसे बहुत मानते थे।[20]

अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों के अध्ययन से यह पता लगता है कि सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अनार्यो का ही वास था। यहाँ आर्यो का आगमन बहुत समय बाद हुआ ।

बुन्देलखण्ड में आर्यो का आस्तित्व :-

बुन्देलखण्ड में आर्यो का आगमन ईसा से लगभग 3000 वर्ष पूर्व हुआ तथा आर्यो के प्रमुख ऋषियों ने इसे अपनी तपोभूमि बनाया। जिनका वर्णन अनेक धर्मग्रंथों में हैं। मुख्य रूप से अगस्त, सुतीक्ष्ण, अत्री, मार्कण्डेय, तथा सारंग ऋषि आदि यही निवास करते थे। महर्षि बाल्मीकि और वेदव्यास ने भी इसे अपनी कर्म भूमि बनाया। आर्यो में सर्वोच्च स्थान ब्राह्मणों का था। इन्हें राजाओं के यहाँ मुख्यमंत्री, पुरोहित, सन्धि विग्रहिक और राजकवियों के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता था।[21] इस क्षेत्र में कल्चुरियों और चन्देलों के ताम्रपत्र उपलब्ध हुये हैं, उनमें भी ब्राह्मणों का विशेष उल्लेख उपलब्ध होता है।[22] आर्यो की दूसरी सबसे बड़ी जाति क्षत्रिय थी। ये लोग सैन्य प्रशासन, राजव्यवस्था, राज्य रक्षा, युद्ध और सन्धि के कार्य देखते थे । चन्देल युगीन अनेक अभिलेखों में इनका उल्लेख हैं। मुख्य रूप से वि० स० 1208 के अजयगढ़ अभिलेख में यह वर्णन उपलब्ध होता हैं।[23]

आर्यो में कायस्थ जाति विशेष महत्वपूर्ण थी। ये लोग राज्य में लिपिक का कार्य करते थे तथा बुद्धिजीवी माने जाते थे। इन्हें प्रतिहार, सचिव, कोषाधिकारिपति आदि महत्वपूर्ण पदों में रखा जाता था। कल्चुरि शासक कर्ण का एक अभिलेख इस सन्दर्भ में रीवाँ में उपलब्ध हुआ हैं।[24] कायस्थों के पश्चात् वैश्यों का महत्वपूर्ण स्थान था। इन लोगों को श्रेष्ठी अथवा सेठ कहा जाता था । डा० एन० एस० बोस ने अपनी पुस्तक में इनका वर्णन किया है।[25] सम्पूर्ण विन्ध्य क्षेत्र में निम्न जातियों के सन्दर्भ में कोई विशेष अभिलेख उपलब्ध नही होते। केवल एक अभिलेख वीर वर्मा के समय का तामृपत्र के रूप में डाही में उपलब्ध हुआ हैं, जिसमें अनेक जातियों का उल्लेख हैं।[26] इस तामृपत्र में मुख्य रूप से कायस्थ, हरकारे, गोपाल, अजयपाल, माली आदि जातियों का उल्लेख हैं । वि० स० 1346 का एक तामृपत्र चरखारी में उपलब्ध हुआ हैं। इस तामृपत्र में महरो, धीवरों, मेंधी और चाण्डालों का वर्णन मिलता हैं, इस समय चाण्डालों को बहुत हेय दृष्टि से देखा जाता था।[27]

तद्युगीन विदेशी यात्री फाह्यान ने भी अपनी यात्रा वर्णन में चाण्डालों की निन्दा की हैं। फाह्यान के अनुसार चाण्डालों को दुष्ट कहा जाता हैं। उन्हें नगर के बाहर रहना पडता हैं। जब जब वे नगर या बाजार में प्रवेश करते हैं, तब उन्हें भूमि पर एक छड़ी ठोककर ध्वनि करनी पड़ती

हैं, ताकि सवर्ण लोग उन्हें पहचान कर अलग हट जाये और इस प्रकार उनके स्पर्श से बच जायें। केवल चाण्डाल ही शिकार करते और मांस बेचते थे।[28]

यदि बुन्देलखण्ड के निवासियों का वर्गीकरण उनके व्यवसाय एवं कर्म के आधार पर किया जाये तो निम्नलिखित जाति के लोग यहाँ निवास करते थे,।

1. **राजसेवक** :- अनेक ऐसे व्यक्ति बुन्देलखण्ड में निवास करते थे, जिनकी जीविका राज्य अथवा शासन की सेवा से चलती थी। इनमें विभिन्न श्रेणियों के सैनिक, राज्य पदाधिकारी, शिल्पकार एवं मजदूर शामिल थे। इस समय राज्य की सेवा करना गौरवपूर्ण कार्य माना जाता था। कभी-कभी पिता के स्थान पर उनके पुत्रों को वंश परम्परानुसार नौकरी दी जाती थी। इस सन्दर्भ में एक प्रस्तर अभिलेख मऊ में उपलब्ध हुआ है।[29] इसी प्रकार का एक अन्य अभिलेख परिमार्दिदेव के समय का भी उपलब्ध हुआ हैं।[30]

2. **श्रमिक या मजदूर** :- बुन्देलखण्ड की बहुत बड़ी जनसंख्या मजदूरी करके अपना पेट पालती थी। ये कृषि कार्य एवं भवन निर्माण में सहयोग प्रदान करते थे। खजुराहो की अनेक कलाकृतियों में इनके चित्र अंकित है।[31] इस सन्दर्भ में सियाद्रोणी में भी प्रस्तर अभिलेख उपलब्ध हुआ हैं, जिसमें पत्थर तोडने वाले मजदूरों को शिलाकूट कहा गया हैं।[32]

3. **वणिक** :- सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में एक ऐसा समुदाय भी था, जिसे वैश्य के नाम से पुकारा जाता था। ये लोग कृषि, पशुपालन और व्यापार करते थे। इस सन्दर्भ में बाघोंगढ़ में एक अभिलेख उपलब्ध हुआ हैं।[33]

4. **स्वर्णकार** :- इस युग में जो व्यक्ति स्वर्ण के आभूषण बनाते थे, उन्हें स्वर्णकार अभव हिरण्यकार कहा जाता था।[34] यहाँ उपलब्ध बौद्ध साहित्य में एक कथानक उपलब्ध होता है, उस कथानक के अनुसार - बौद्ध भिक्षुणी इसिदासी पूर्व जन्म में एरछनगर (दशार्ण जनपद) के एक अत्यन्त समृद्ध परिवार में पुरुष रूप में उत्पन्न हुयी थी, उस समय वह स्वर्णकार थी।[35] स्वर्णकारों के सन्दर्भ में बांधौगढ़ अभिलेख भी तद्‌युगीन जानकारी देता हैं।[36] चन्देल युग में आभूषण कला का पर्याप्त विकास हुआ। ये लोग मुख्य रूप से गुच्छकहार, ग्रेवयेक मेखला आदि रत्न जड़ित आभूषण बनाते थे, इन लोगों को रीतिकार, पीतलहार और पीतलकार कहते थें।[37]

5. **मणिहारक** :- बुन्देलखण्ड में मनिहारों की जाति भी निवास करती थी, यद्यपि इनके सन्दर्भ में कोई अभिलेख ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में उपलब्ध नही होते, फिर भी इनका आस्तित्व समझ में आता हैं। ये लोग मोतियों और मणियों को धागे में पिरोकर सुन्दर हार बनाया करते थे। इन लोगों की जनसंख्या बुन्देलखण्ड में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती थी तथा अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों में इनका उल्लेख किया गया है।[38]

6. **ताम्रकार** :- बुन्देलखण्ड में बर्तन निर्माताओं का एक वर्ग निवास करता था, जो विभिन्न धातुओं से विविध प्रकार के बर्तनों का निर्माण करता था, इन्हें ताम्रकार के नाम से पुकारा जाता था ।

डा० उर्मिला अग्रवाल के अनुसार-धातुदर्पण नामक ग्रंथ से यह ज्ञात होता हैं, कि चन्देल युग में बर्तन निर्माण करने वाले कुशल ताम्रकार निवास करते थे।[39]

7. **शस्त्रकार** :- बुन्देलखण्ड में अनेक ऐसे व्यक्ति भी निवास करते थे जिनका व्यवसाय अस्त्रशस्त्र बनाना था। ये लोग सोना और सीसा के अतिरिक्त किसी अन्य धातु से अस्त्रशस्त्रों का निर्माण करते थे। वैदिक युग में भी इनका प्रभाव था।[40] बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में बाधौगढ़ में उपलब्ध अभिलेख में भी ऐसी जातियों का उल्लेख हुआ हैं, ये लोग उच्च्य कोटि की तलवारें और अस्त्रशस्त्र बनाते थे।[41]

8. **तन्तुकर्मी** :- बुन्देलखण्ड में वस्त्र निर्माण करने वालों का निवास अत्यन्त प्राचीन काल से हैं।। इस जाति का वर्णन वेदों में भी उपलब्ध होता है।[42] प्राचीन काल में जो स्त्रियॉ बुनाई का कार्य करती थी, उन्हें ''सिरी'' कहा जाता था। एक अभिलेख कुमार गुप्त और बन्धुवर्मा का मंदसौर में उपलब्ध हुआ। अभिलेख के अनुसार लाटदेश से दशपुर में आये हुये पट्टवायों की एक श्रेणी का मनोंरजक वर्णन मिलता हैं, यहाँ आकर उन्होने अनेक अन्य व्यवसाय भी अपनाये, जबकि अधिकांश लोग रेशम बुनने के अपने वंशानुगत धंधे में लगे रहे।[43] डा० कन्हैयालाल अग्रवाल के अनुसार-बुन्देलखण्ड में कपास उत्पन्न होने का उल्लेख मिलता हैं। कलचुरि और चन्देलकालीन मूर्तियों को विविध प्रकार के वस्त्र धारण किये हुये अंकित किया गया है। अतः ज्ञात होता हैं कि विवेच्यकाल में न केवल तन्तुवाय विद्यमान थे। अपितु वे अपने कार्य में पूर्णतया दक्ष थे। संभव हैं कि विन्ध्यक्षेत्र में सूती तथा ऊनी वस्त्रों का निर्माण किया जाता रहा हो। इस क्षेत्र के उत्तर पश्चिमी भागों मे आजकल बुनकर, कोरी और जुलाहा नामक जातियां प्राचीन तन्तुवायों का प्रतिनिधित्व करती हैं।[44]

9. **दर्जी** :- इस कर्म को करने वाले लोग भी बुन्देलखण्ड में निवास करते थे। विविध प्रकार के परिधान जो बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होते है, उनको देखने से यह पता लगता हैं कि उनको सिलने वाले व्यक्ति यहाँ निवास करते थे।[45]

10. **कुम्भकार** :- बुन्देलखण्ड में मिट्टी से बर्तन बनाने वाले कलाकार अत्यन्त प्राचीन काल से रह रहे हैं, उन्हें कुम्भकार के नाम से पुकारा जाता हैं। वैदिक युग में इस जाति के लोगों कुलात कहा जाता था ।[46] कुम्हार लोग मिट्टी के घड़े, तश्तरियां तथा घर में उपयोग होने वाले घरेलू बर्तनों का निर्माण करते थे। जिस प्रकार मिट्टी का पिंड चक्र पर संपीडित किया जाता हैं और हाथों की सहायता से वह विभिन्न प्रकार के आकार गृहण करता हैं, उसी प्रकार मनुष्य का शरीर भी निर्मित होता हैं यह बर्तन वायु पुराण में इस प्रकार उपलब्ध होता हैं -

मृतपिण्डस्तु यथा चक्रे चक्रवत्तेन पीडितः ।
हस्ताभ्यां क्रियमाणस्तु विश्वत्वभुगच्छति ।। [47]

जो उत्खलन कार्य त्रिपुरी (जबलपुर) तथा एरण में हुआ हैं, उसमें अनेक मिट्टी के पात्र उपलब्ध हुये है, उन पात्रों से यह प्रतीत होता हैं, कि उस युग में अच्छे कुम्भकार यहाँ मौजूद थे।[48]

11. **बान मूझ रस्सी के निर्माता** :- बुन्देलखण्ड में उपलब्ध मूर्तियों को ऐतिहासिक साक्ष्य

मानते हुये यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता हैं कि क्षेत्र में रस्सी बान और मूझ निर्माताओं का एक वर्ग रहता था । जो यहाँ यह कार्य किया करता था।[49]

12. **चर्मकार** :- बुन्देलखण्ड में चर्मकारों का निवास अत्यन्त प्राचीन काल से हैं। ये लोग पशुचर्म से विविध प्रकार के सामान बनाते थे । मुख्य रूप से पैरों मे पहने जाने वाले जूतों का निर्माण करना उनका प्रमुख कार्य था । इसके अतिरिक्त वे पानी भरने की मसक और अस्त्रशस्त्र रखने के खोल भी बनाते थे। इस जाति का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में हैं।[50]

13. **बढ़ई (बर्द्धकि)** :- वैदिक युग के पूर्व भी बुन्देलखण्ड में बढ़ई जाति के लोग निवास करते थें। उस युग में इन्हें "तक्षन्" या पष्ट्रा कहते थे। उत्तर वैदिक काल में यह एक जातीय संगठन केरूप में परिणित हो गया।[51] ये लोग कृषि कार्य, भवन निर्माण तथा अस्त्रशस्त्रों के लिये लकड़ी का सामान बनाते थे । बांधौगढ़ अभिलेख में इनका उल्लेख है तथा इन्हें "काष्टकारि" के नाम से पुकारा गया है।[52]

14. **मूर्तिकार** :- बुन्देलखण्ड में दो प्रकार के मूर्तिकार निवास करते है, प्रथम प्रकार के मूर्तिकार विविध प्रकार के पत्थरों से मूर्तियों का निर्माण करते हैं। दूसरे प्रकार के मूर्तिकार हाथी दाँत लकड़ी और धातुओं से मूर्ति का निर्माण करते हैं। डा० कन्हैया लाल अग्रवाल के अनुसार - विन्ध्यक्षेत्र के अनेक स्थानों पर प्रचुर शिल्प सम्पदा इनकी विद्यमानता के प्रमाण हैं । सांची के मुख्य स्तूप का दक्षिणी द्वार विदिशा के हाथी दाँत के कारीगरों द्वारा बनाया गया।[53] अनेक चन्देल अभिलेखों में भी मूर्तिकारों का वर्णन उपलब्ध हो जाता हैं।[54]

15. कारीगर :- बुन्देलखण्ड में सर्वत्र स्थापत्य कला के बेजोड़ नमूने उपलब्ध होते हैं। ये नमूने राजप्रसाद, धार्मिक स्थल और देवालयों के रूप में उपलब्ध होते हैं । निश्चित हैं कि इन स्थलों के निर्माता भी इसी क्षेत्र में रहते थे। डा० कन्हैया लाल अग्रवाल के अनुसार - वास्तुशास्त्र में निर्धारित लक्षणों के आधार पर विभिन्न मंदिरों, मठों आदि का निर्माण होता था । वास्तुकला में निष्णात व्यक्तियों ने उनका निर्माण किया । निमार्ण कार्य में लगे हुये कारीगरों को निर्देश देना, वास्तुविंदी का कार्य था। [55] अनेक चन्देल अभिलेखो मे भी इसका उल्लेख मिलता है।[56]

16. चिकित्सक एवं वैद्य :- बुन्देलखण्ड में एक ऐसा वर्ग भी निवास करता था, जिसका कार्य अस्वस्थ व्यक्तियों की चिकित्सा करना था । सुश्रुत, चरक, तथा धन्वन्तरि जैसे वैद्य प्राचीन काल में प्रसिद्ध हुये। कल्चुरियों एवं चन्देलों के काल में भी अच्छे वैद्य थे। इसका पता तद्‌युगीन चन्देल अभिलेखों से लगता है।[57]

17.देवदासियाँ एवं नृत्यांगनायें :- प्राचीन काल में भी मनोरंजन की दृष्टि से और धार्मिक दृष्टि से गायन, वादन एवं नृत्य कला का अस्तित्व था। कतिपय नर्तकियाँ महत्वपूर्ण स्थान रखती थी । कालिंजर स्तम्भलेख में इसका वर्णन उपलब्ध होता है।[58] इस युग में पद्यमावती नाम की महानचनी थी, जो कालिंजर के नीलकंठ मंदिर में धार्मिक अवसरों पर नृत्य करती थी । डा० हेमचन्द्र रे के

अनुसार - वह राजसभा की प्रमुख नर्तकी थी। स्थिति कुछ भी हो, यह निश्चितपूर्वक कहा जासकता है कि चन्देलयुग में नर्तकियों का एक वर्ग विद्यमान था।[59]

18. नापित (नाऊ) :- बुन्देलखण्ड में नाईयों, बारीओं का निवास अत्यन्त प्राचीन काल से है। बौद्ध साहित्य में इन्हें कप्पहा कहा जाता था। इनका वर्णन कई चन्देल अभिलेखों में भी है।[60] कतिपय ग्रंथों में इन्हें विभिन्न नामों से सम्बोधित किया गया हैं। कालान्तर में इस जाति के लोग विवाह आदि अवसरों पर पुरोहितों के सहायक बन गये।[61]

19. धींवर :- बुन्देलखण्ड में प्राचीन ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है, कि इनका निवास बुन्देलखण्ड में अतिप्राचीन काल से हैं। इनके सन्दर्भ में एक प्राचीन अभिलेख तामृपत्र के रूप में प्राप्त हुआ हैं, जो वि० स० 1346 के चरखारी ताम्रपत्र के रूप में विख्यात है। उसमें इस जाति का उल्लेख स्पष्ट रूप से हुआ है।[62] इसके अतिरिक्त बिलहरी अभिलेख में भी इस जाति का उल्लेख स्पष्ट रूप से मिलता है।[63]

डा० कन्हैयालाल अग्रवाल के अनुसार - आज कल के ढ़ीमर मछलियां पकड़ने का कार्य करते हैं । संभव हैं कि पहले यह शब्द मछलियों की टोकरियों के लिये प्रयुक्त होता रहा हो और बाद में जाति विशेष का सूचक बन गया हो।[64]

20. माहर :- ये बुन्देलखण्ड में रहने वाली निम्न श्रेणी की जाति थी। इन्हें शूद्र वर्ण में शामिल किया जाता था। ये लोग वही कर्म करते थे, जो चाण्डाल और चर्मकार करते थे। इनके सन्दर्भ में विस्तृत वर्णन चरखारी तामृपत्र में उपलब्ध होता है।[65]

21. मेद :- बुन्देलखण्ड में रहने वाली यह जाति वर्णसंकर जाति थी। यह वैदहे जाति के पुरूष और करावरजाति (चर्मकार) की स्त्री के संयोग से उत्पन्न हुयी। मनुस्मृति के अनुसार इस जाति के लोगों को ग्राम में निवास करने का अधिकार नही था, क्योंकि ये लोग मृतपशुओं का मांस खाते थे।

मृतानां गोमहिण्यादीनां मांसमश्मन्तोः मेदाः । नीलकण्ठः[66]

22. चाण्डाल या डुमार :- यह जाति बुन्देलखण्ड में अत्यन्त प्राचीन काल से निवास करती थी। इन्हें बहुत ही निम्न माना गया हैं। इनकी उत्पत्ति शूद्र पुरुष और ब्राह्मण स्त्री के संयोग से हुयी। इस जाति को बुन्देलखण्ड में अछूत माना गया है। डा० कन्हैयालाल अग्रवाल के अनुसार- यह अस्पृश्य जाति थी, जो शिकार करती और मांस बेचती थी। खजुराहो कला में तोता, मोर, हंस, गिद्ध, उलूक आदि का चित्रण स्त्रियों के हाथों पर बैठे हुये या देवताओं के वाहनों के रूप में किया गया है। इनमें से कुछ पक्षियों को पाला जाता रहा होगा।[67] बाणभट्ट ने भी अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ कादम्बरी में इस जाति का वर्णन इस प्रकार किया है। विदिशा की एक चाण्डाल कन्या वेदों में निष्णात एक तोता लेकर राजाशूद्रक की राजसभा में उपस्थित हुयी थी।[68]

23. मृतप :- बुन्देलखण्ड में यह जाति भी अत्यन्त प्राचीन काल से रहने वाली जाति थी। इसे भी शूद्र जाति के अर्न्तगत माना जाता था। ये लोग श्मशान भूमि में रहते थे तथा मुर्दो को जलाते

थे। इनके झूठे पात्र में कोई भोजन नही करता था। इनकी जाति चाण्डालों से भिन्न थी। पाणिनी के महाभाष्य में इसका उल्लेख है।[69]

24.घसियारे :- यह जाति भी बुन्देलखण्ड में रहने वाली एक जाति थी। चन्देलकाल में इस जाति के लोग घोड़ा, बैल, बकरी, भैस आदि पशुओं के लिये घास एकत्रित किया करते थे तथा पशुओं को चराते थे। बिलहरी अभिलेख में यह त्रणमूलक नाम से सम्बोधित किया गया है।

''सवनतृणयूतिगोचरपर्यन्तः''[70]

एक अन्य कल्चुरी अभिलेख में भी इसका वर्णन उपलब्ध होता है।

25. ताम्बूलिक (तमोली, चौरसिया):- यह जाति भी चन्देल काल से पहले बुन्देलखण्ड में निवास करती थी। मुख्य रूप से महोबा के समीपवर्ती क्षेत्र तथा शेरपुर सिहोड़ा में इन जातियों का बाहुल्य था। ये लोग पान की खेती करते थे और पान लगाकर बेचते थे । कुलीन वर्ग के लोग पान मुख्य रूप से खाया करते थे। सियाडोणी प्रस्तर अभिलेख में इनका वर्णन उपलब्ध होता है।[71]

26.कल्लपाल (कलार या जायसवाल):- वैदिक काल से लेकर आजतक इस जाति के लोगशराब बनाकर बेचते थे क्योंकि वैदिक काल में सुरापान का प्रचलन था।[72] चरक संहिता में भी इनका वर्णन उपलब्ध होता है।[73] इस ग्रंथ के अनुसार - गौड़ी, पैष्टी, मादवी, कादम्बरी, हैताली, लांगलेया, तालजाता आदि विभिन्न प्रकार की सुराओं का उल्लेख हुआ है। डा० कन्हैयाल लाल अग्रवाल के अनुसार- गुप्त युग मे सुराकार का व्यवसाय उत्कर्ष पर था। प्रतीत होता है कि गुर्जर-प्रतिहार और चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड में सुरापान व्यापक रूप से प्रचलित था।[74]

27. कन्दुक या हलवाई :- बुन्देलखण्ड में एक ऐसी जाति भी निवास करती थी, जिसका कार्य विभिन्न अनाजों तथा पेय और खाद्य पदार्थो से मिष्ठान बनाना था। सियाडोणी प्रस्तर अभिलेख में इस जाति को कन्दुक के नाम से सम्बोधित किया गया है।[75] ये लोग बुन्देलखण्ड मे मिष्ठान निर्माण के अतिरिक्त उनकी बिक्री भी करते थे । वर्तमान समय में इन्हें हलवाई या मिठइया के नाम पुकारा जाता है।

28. तेली :- ये लोग तिली, सरसों, अंडी, लाही, आदि को कोल्हू में पेरकर उससे तेल निकालते थे। तेल का उपयोग खाद्य पदार्थ के रूप में किया जाता था। इसके अतिरिक्त रंग बनाने, दवा बनाने,शरीर में मलने तथा विभिन्न प्रकार के रथों में तेल का प्रयोग होता था । इनका वर्णन सियाडोणी के प्रस्तर अभिलेख में उपलब्ध होता है।[76]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुसलमानों के आने से पूर्व सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में अनार्यो की अनेक जातियां, आर्यो की अनेक जातियां तथा वर्णसंकर जातियां निवास करती थी। इनके अपने पृथक व्यवसाय थे, इन जातियों ने यहाँ की संस्कृति निर्मित की।

बुन्देलखण्ड में मुसलमानों का आस्तित्व :- महमूद गजनवी के आक्रमण से पूर्व बुन्देलखण्ड के लोग मुसलमानों से किसी भी रूप से परिचित नही थे । महमूद गजनवी के आक्रमण

के पश्चात यहाँ के लोग मुसलमानों से परिचित हुये। सबसे पहले चन्देलशासक धंगदेव ने विदेशियों के आक्रमण के विरूद्ध देशी राजाओं के संघ का साथ दिया। श्री केशव चन्द्र मिश्र के अनुसार- धंगदेव ने, जो उस समय वर्तमान में राजा था, सुबुक्तगीन के आक्रमण के विरूद्ध बने संघ में बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य किया। इस संघ ने तुर्कों के बढ़ाव को कुछ देर के लिये रोक दिया, किन्तु यह संघ अधिक समय तक चलने में असफल रहा।[77] इस युग में भारतवर्ष में शासन करने वाले राजपूत अपने हृदय में राष्ट्रीय भावनाओं को जन्म नही दे सके। डा० हेमचन्द्र राय के अनुसार- मध्य एशिया के बुभुक्षु और पर्यटनशील समूह की, जिसने अपनी विलक्षण धारणा के अनुरूप इस्लाम की व्याख्या से अपने को अधिक पुष्ट कर लिया था, लूट और विनाश की अतृप्त प्यास और दुःसाहस था। इसके अतिरिक्त तुर्कों के विशिष्ट नेतृत्व तथा युद्ध मान्यता ने भी काम किया । चन्देल कम वीर नही थे, किन्तु वे महमूद गजनवी अथवा मुयजुद्दीन को जन्म न दे सके। यही उनकी भारी दुर्बलता हैं।[78]केशव चन्द्र मिश्र के अनुसार - तत्कालीन सभी शासकों की उपेक्षा और उदासीनता सामान्य रूप में रही । कहने की आवश्यकता नही कि उसी से दो उत्तराधिकारी गंड और विद्याधर देव ने इसे अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण समझा, फलतः उन्हें अपने राज्य में शत्रु का सामना करना पड़ा और बाद के समय में तो सीमा नीति सर्वथा उपेक्षित ही हो गयी।[79]

पुरूषों की अपेक्षा हिन्दू स्त्रियों में राष्ट्रीय भावना अधिक थी। तारीखे फरिश्ता के अनुसार-''हिन्दू वीरांगनाओं ने अपने जवाहरात बेच डाले, अपने स्वर्णाभूषण गला डाले और इस ध र्म युद्ध के संचालन के लिये उन्होंने दूरस्थ देशों से भी अपनी सहायता भेजी।[80]

इस प्रकार हम देखते है कि मुसलमान बुन्देलखण्ड मे यहाँ के शासकों की व्यक्तिगत कमजोरी के कारण आये और उन्होने यहाँ की राष्ट्रीय कमजोरियों और आन्तरिक संघर्ष से लाभ उठाया।

मुसलमानों से सम्पर्क :- सम्पूर्ण विश्व में इस्लाम का प्रचार- प्रसार शक्ति के बलबूते पर किया गया। यह कार्य भारतवर्ष में सुबुक्तगीन और महमूद गजनवी ने दृढ़ता से किया, किन्तु बुन्देलखण्ड में धर्म परिवर्तन करने के लिये किसी प्रकार का कोई दवाब नही डाला गया । केशव चन्द्र मिश्र के अनुसार - बुन्देलखण्ड विशेष रूप से इस्लाम के प्रभाव से बाहर रहा। कुतुबुद्दीन ने मंदिरों का विनाश यहाँ अवश्य किया, किन्तु उसने धर्म परिवर्तन के मौलिक प्रश्न को स्पर्श ही नही किया । यहाँ के लोग भी अपेक्षाकृत अधिक दृढ हिन्दू थे। इन्ही सव कारणों से यहाँ के हिन्दू अपनी ध र्म भावना में कही फिसल न सके।[81]

चन्देलों की उदार धार्मिकता ने अन्य सम्प्रदायों को भी फलने फूलने का समान अवसर प्रदान किया। उसी उदारता के कारण मुसलमान बुन्देलखण्ड में बस सके, किन्तु वे तुर्कों की धार्मिक भावनाओं को स्वीकार नही कर सके। उन्हें वे धर्म विनाशक समझते थे, इसलिये उन्होने अपने शासनकाल में मुसलमानों को मस्जिद बनाने का अवसर प्रदान नही किया तथा वे उनसे बराबर संघर्ष करते रहे। केशव चन्द्र मिश्र के अनुसार -यही कारण था कि इस वंश के शासनकाल पर्यन्त मुसलमानों के

धर्मपरिवर्तन की नीति बुन्देलखण्ड में सफल न हो सकी। इसमें रंचमात्र भी सन्देह नही, कि उत्तर भारत हो या दक्षिण, समस्त समकालीनशासकों में अपनी धार्मिक समग्रता को विदेशी झोकों से रक्षित कर लेने में और युग की धार्मिक अव्यवस्था में धार्मिक एका बनाये रखने में चन्देलशासक सबसे अधिक सफल सिद्ध हुये।[82]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुसलमानों का आगमन आज से लगभग 1000 वर्ष पूर्व हुआ। अब ये सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में काफी संख्या में निवास करते है।

बुन्देलखण्ड में निवास करने वाले मुस्लिमों के वर्ग :- मुसलमानों के धर्म में जिन 12 जातियों का अस्तित्व स्वीकार किया जाता हैं, उनमें से बहुम कम इस क्षेत्र मे निवास करते है। मुख्य रूप से सैय्यद, पठान,शेख, केसर, जाति के कुछ वर्ग यहाँ रहते है। किन्तु यह वर्ग अरबी और तुर्की मुसलमानों की भांति पूर्णशुद्ध प्रतीत नही होता है। व्यवसायिक दृष्टिकोणों को ध्यान में रखकर इसका वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है -

1. काजी एवं मुल्ला :- हिन्दुओं की भांति मुसलमानों में भी धार्मिक कृत्य कराने वाला एक वर्ग होता है इसमें मौलवी पवित्र ग्रंथ कुरानशरीफ व हदीस का ज्ञाता होता है वह धर्मोपदेश देकर मुस्लिम जनता को धर्म के रास्ते पर चलते रहने का निर्देश देता है। इसी प्रकार काजी मुस्लिम समाज में होने वाले विवाहों को सिया और सुन्नी वर्गो के नियमानुसार सम्पन्न कराते है। मौलवियों का एक वर्ग इमाम भी कहलाता है, जो मस्जिदों की देखभाल करते है तथा मौलवी ही मुसलमान छात्रों को अरबी और फारसी की शिक्षा देते है।

2.फकीर :- बुन्देलखण्ड में फकीर लोग भीख मांगकर अपना गुजर बसर चलाते है तथा इनकी वेश भूषा अन्य मुसलमानों से कुछ हटकर होती हैं। कुछ फकीर लोग कब्रिस्तान के मालिक होते है। जब कोई मुसलमान मर जाता है, उस समय फकीर लोग उसको दफनाने के लिये कब्रिस्तान अथवा तकिए में जगह देते है। इनके लिये मुसलमान वर्ग के लोग कुछ धन उपलब्ध कराते है।

3. हज्जाम :- हिन्दू धर्म के भांति हज्जाम (नाऊ) का महत्व मुसलमानों में बहुत अधिक है। ये लोग दाढी और बाल बनाने के अतिरिक्त, जब किसी बच्चे की मुसलमानी होती है, उस समय इन्हें खतना करने के लिये बुलाया जाता हैं। इसके लिये उन्हें एक सुनिश्चित धनराशि प्राप्त होती हैं।

4. चिकवा :- मुसलमानों का यह वर्ग विविध प्रकार के जानवरों का वध करके व्यक्तियों को भोजन के लिये मांस उपलब्ध कराता हैं। मुसलमानों में हिन्दुओं की अपेक्षा मांसाहार का प्रचलन बहुत अधिक हैं। चिकवे अथवा कसाई बुन्देलखण्ड में सर्वत्र उपलब्ध होते हैं।

5. भिस्ती :- मुसलमानों का यह वर्ग मसक के द्वारा पानी भरने का कार्य करता था। ये लोग चमड़े की मसक से पानी भरते थे। चमड़े की मसक से भरा हुआ पानी अशुद्ध माना जाता था, इसलिये कोई भी हिन्दू प्राचीन काल के मुसलमानों के घर का पानी नही पीता था ।

6. रंगरेज :- ये लोग, सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में जहाँ कपड़ा बुनने का व्यवसाय होता था, वहाँ कपड़ा रंगने का कार्य करते थे।

7. बेहना :- बुन्देलखण्ड किसी जमाने में भारतवर्ष का बहुत बड़ा रूई उत्पादक केन्द्र था। यहाँ की रूई पूरे भारतवर्ष में निर्यात की जाती थी तथा रूई के उत्पादन के कारण इसके कई क्षेत्रों में उच्च कोटि के कपड़े का निर्माण होता था। मुख्य रूप से मऊरानीपुर, ललितपुर, चन्देरी,शेरपुर, सिहोड़ा आदि क्षेत्रों में कपडे का उत्पादन होता था। रूई को रेशे में परिणित करने के लिये बेहने महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। ये लोग रुई धुनकते थे तथा सूती वस्त्रों से निर्मित रजाई गद्दों में रूई भरा करते थे। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार - बुन्देलखण्ड में बेहना बहुत है। जिनके विश्वास और बर्ताव हिन्दुओं जैसे है।[83]

8. बुनकर या कबीरपंथी :- यहाँ के कपड़ा बुनने वाले व्यक्तियों ने इस्लाम धर्म अपना लिया था, इसलिये उन्हें कोरी ने कहकर कबीरपंथी या बुनकर कहा जाने लगा था। इनकी जनसंख्या बुन्देलखण्ड में काफी अधिक थी। ये लोग कपड़ा बुनने के लिये सूत कातते थे और करघे के माध्यम से विविध प्रकार के जनाने और मर्दानें कपड़े बनाते थे।

9. छींपा :- ये लोग सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में बुने हुये कपड़े में विविध रंगों से लकड़ी के सांचे बनाकर कलात्मक छपाई किया करते थे । बुन्देलखण्ड में रजाई, गद्दे, लिहाफ तथा चादरों की छपाई इसी वर्ग के द्वारा की जाती थी।

10. हकीम :- ये लोग हिन्दू वैद्यों की भांति बीमार मुसलमानों की चिकित्सा पारसी और तुर्की पद्वति से करते थे। हिन्दू वैद्य और हकीम पद्वति में थोड़ें बहुत अन्तर के साथ काफी कुछ समानता थी। ये लोग काढ़ा, भस्म, चूर्ण आदि से चिकित्सा करते थे तथा विविध प्रकार से नाणी परीक्षण भी किया करते थे ।

11. मनोरंजन करने वाला वर्ग :- इस वर्ग में नाटक, नौटंकी, खेल, तमाशा, स्वांग आदि करने वाले लोग शामिल थे। मुसलमानों के समय में पारसी नाटक पद्वति का विकास हुआ, ये गीत नाट्य तथा नौटंकी के रूप में जाने जाते थे। पुरूष वर्ग के लोग नारियों की भूमिका अदा करते थे, किन्तु मुसलमानों में तवायफों ने नाटक और नौटंकी में कार्य करना स्वीकार कर लिया था। ये लोग कुलीन वर्ग का मनोरंजन करती थी। इनके साथ जो वाद्य यन्त्र में सहयोग करते थे, उन्हें भडुओ के नाम से जाना जाता था।

12. खानाबदोश :- ये लोग अपनी रोजी रोटी के लिये पूरे बुन्देलखण्ड में भ्रमण करते रहते थे। ये मुख्य रूप से गृहोपयोगी सामान बनाकर बेचते थे। भूखों मरने की स्थिति में ये लोग भीषण अपराध भी करते थे, इन्हें कुचबदिंया भी कहा जाता था।

13. खानसामा:- मुसलमानो में एक ऐसा वर्ग भी था, जो सुल्तानो, जमीदारों, जागीरदारो और उच्च वर्ग के घरों में विविध प्रकार के शाकाहारी व माँसाहारी भोजन का निर्माण करता था, उसे खानसामा कहा जाता था।

14. गुलाम :- प्राचीन काल में मानव की बिक्री पशुओं की भांति होती थी। कुलीन वर्ग के

मुसलमान अपनी खिदमत के लिये किसी व्यक्ति विशेष को हमेशा के लिये खरीद लिया करते थे, इन्हें खादिम अथवा गुलाम कहा जाता था । इन्हें किसी प्रकार का वेतन उपलब्ध नही होता था, केवल जीवनोपयोगी वस्तुए इन्हें प्रदान की जाती थी। मालिक के प्रति वफादार रहने में इन्हें विशेष सहूलियत मिल जाती थी। गुलाम स्त्री पुरूष दोनों ही हुआ करते थे । कभी-कभी सुन्दर स्त्रियाँ, जो इनकी गुलाम होती थी, उन्हें निकाह पढ़वाकर बीबी बना लिया जाता था ।

15.शासक वर्ग :- चूकि भारतवर्ष में 10 वींशताब्दी के बाद मुसलमानों की सत्ता स्थापित हो गयी थी इसलिये मुसलमानों का एक वर्ग शासन सत्ता से जुड़ गया। इस वर्ग में बादशाह, सुल्तान, सूबेदार, जमीदार, जागीरदार, मनसबदार, सिपहसलार, फौजदार, कोतवाल, राजस्व अधिकारी, लिपिक वर्ग के लोग तथा पटवारी आदि शामिल थे। इस समय शासन सत्ता के लिये किसी प्रकार की कोई नियमावली नही थी । मुंसिफ और परगना अधिकारी शासन सत्ता देखते थे। कभी-कभी मौलवी लोग कुर्आन शरीफ और हदीस का सहारा लेकर न्याय व्यवस्था एवं प्रशासन में सहयोग करते थे ।

16. कलाकार एवं मजदूर :- मुसलमानों में एक ऐसा वर्ग भी था, जो वास्तुशिल्प अथवा भवन निर्माण कला से जुड़ा हुआ था, इन्हें दस्तकार अथवा कारीगर के नाम से पुकारा जाता था । एक ऐसा भी वर्ग था, जो लकड़ी के काम में बहुत माहिर था तथा इसमें एक ऐसा भी वर्ग था जो विभिन्न तरह के अस्त्रशस्त्रों का निर्माण करता था। इसके अतिरिक्त यहाँ विविध प्रकार के नग तराश भी रहा करते थे, जो कीमती पत्थरों को तराशकर उन्हें आभूषण के योग्य बनाते थे। इसी वर्ग में चित्रकारों का भी एक वर्ग था, जो आलीशान भवनों में सुन्दर पच्चीकारी करता था, उन्हें रंगता था और विविध प्रकार के चित्र बनाया करता था। इसमें एक वर्ग ऐसा था। जो मजदूरी करके पेट पालता था। ये लोग रईसों की पालकी तथा सामान ढ़ोते थे, कृषि कार्यो में सहयोग करते थे, रईसों के लिये कपड़े सिलते थे तथा उनके लिये जूते आदि भी बनाते थे ।

बुन्देलखण्ड में मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बी भी निवास करते थे। मुख्य रूप से जैन, बौद्ध, तथा प्राकृतिक धर्म के उपासक यहाँ चिरकाल से निवास करते थे, जिनकी जीवनशैली हिन्दुओं की भांति थी। इसमें भी अनेक वर्ग थे, किन्तु विशेष प्रकार की भिन्नता न होने के कारण इनका पृथक अध्ययन अनिवार्य नही है। चूंकि इस्लामी संस्कृति भारतीय संस्कृति से पूर्णरूपेण भिन्न थी, जो यहाँ की मूल संस्कृति के साथ सामंजस्य स्थापित नही कर सकी, इसलिये यहाँ पर उसे ही सन्दर्भित किया गया है।

बुन्देलखण्ड की संस्कृति की प्रमुख विशेषतायें :- सम्पूर्ण भारतवर्ष में विभिन्न क्षेत्रीय संस्कृतियों का विकास हुआ है, उसमें बुन्देलखण्डी संस्कृति भी अपना पृथक स्थान रखती थी। इसकी निम्नलिखित विशेषताये है -

1. मिश्रित संस्कृति :- बुन्देलखण्ड क्षेत्र की सबसे बड़ी विशेषता मिश्रित संस्कृति हैं। सभ्यता

के प्रारम्भ में यहाँ अनार्य लोग रहा करते थे। कालान्तर में इस क्षेत्र में आर्यो का आगमन हुआ तथा दोनों संस्कृतियों के मध्य एक सामंजस्य स्थापित हुआ। इसके बाद यहाँ हूणों,शकों तथा बैक्ट्रियन के आक्रमण हुये। यह क्षेत्र कुषाणों के प्रभाव में भी आया। 10वीं शताब्दी के आस पास यहाँ तुर्की और अरबी संस्कृति का आगमन हुआ। इस प्रकार जितने भी विदेशी आक्रमण कारी यहाँ आये, उन सभी की संस्कृति के साथ यहाँ की संस्कृति मिश्रित होती गयी, परिणामस्वरूप जो नई संस्कृति उत्पन्न हुयी, उसे मिश्रित संस्कृति के नाम से पुकारा जा सकता है।

2. प्राकृतिक पर्यावरण से प्रभावित संस्कृति :- बुन्देलखण्ड की संस्कृति स्वतः जन्य संस्कृति हैं, यहाँ की प्रकृति व पर्यावरण ने मिलकर इसकी संरचना की हैं । भूमि संरचना की दृष्टि से जो भी इस परिक्षेत्र में उत्पन्न हुआ, उसी को यहाँ के लोगो ने अपने जीवन का आधार मानकर गृहण किया। जब यह क्षेत्र प्राकृतिक आपदायों से घिर जाता हैं, उस समय भी यही वस्तुएं जीवन का आधार बनती है - *मघा करौटा ले गये इन्द्र बांध गये टेक ।*

बरे करौदा जो कहे मरन दैहे एक ।।[84]

गोस्वामी तुलसी दास ने भी विषम आर्थिक परिस्थितियों के कारण यहाँ के लोगों को अपराधी माना है- *नाथ हमार यहै सेवकाई, भूषन बसन न लेही तुराई ।*

उपरोक्त ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर यह सिद्ध होता हैं कि विषम प्राकृतिक संरचना और पर्यावरण ने यहाँ की संस्कृति को व्यापक रूप से प्रभावित किया है।

3. पृथक पहचान वाली संस्कृति :- बुन्देलखण्ड का निवासी अपनी पृथक वेश भूषा व भाषा से अपनी अलग पहचान रखता है। यहाँ की औरतें, जो ग्रामीण क्षेत्र मे रहने वाली है, कांचदार लाल और हरे रंग की साड़िया पहनती है, ऊपर ब्लाऊज पहनती है तथा विविध प्रकार के सोने, चाँदी, और काँसे के आभूषण पहनती है। इनके आभूषणों में बेंदी, कर्णफूल, सुतियां, ठुसी, तिदाना, बाजूबन्द, बिछुवा, कड़ा, झांझे, पैजनी, विछियां आदि धारण करती है। यहाँ के पुरुष धोती, पंचा, मिरजई, बगलबन्द, कुर्ता, साफा आदि धारण करते है। पैरों मे झब्बेदार जूते पहनते है, पुरुषों के जूतों को पनही और स्त्रियों की चप्पल को लतकरियां कहते है। इनकी भाषा तेरह प्रकार की बोली जाने वाली बुन्देलखण्डी भाषा है। इनसे इनकी क्षेत्रीय पहचान आसानी से हो जाती हैं ।

4. पृथक जातीय विरासत को संरक्षित करने वाली संस्कृति :- सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में तीन प्रकार की जातियां निवास करती हैं। इनमें अनार्य कुल की मौलिक जाति सर्वाधिक प्राचीन जाति है। वर्तमान समय में इसमें अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित जाति तथा पिछड़ी जाति के लोग शामिल हैं। मुख्य रूप से कोल, भील, गौड़, बैगा, खैरबार, डुमार, चमार, धोबी, कहार, मोची, ढीमर, अहिर गड़रिया आदि इसी कोटि में आते है। द्वितीय वर्ग के रूप मे यहाँ उत्तर से आने वाले आर्य लोग निवास करते है। यह वर्ग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,शूद्र आदि वर्गो में विभाजित है। तीसरे वर्ग में बुन्देलखण्ड में रहने वाली वे जातियां, जो बाहर से आकर यहाँ निवास करने लगी, इनमें मुख्य

रूप से कुषाण,शक, हूण, तुर्क और अरब में रहने वाली जातियां हैं । बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में एक नवीन जातीय समीकरण वर्णसंकरता के कारण उत्पन्न हुआ। वर्तमान समय मे यहाँ लगभग 375 उपजातियां निवास करती है । इनकी अलग जातीय संस्कृति है। मुख्य रूप से कहार, डीमर, धोबी, कुम्हार, नट, जोशी, तथा आदिवासी अपनी पृथक लोक संस्कृति के आधार पर यहाँ पहचाने जाते हैं, इनका लोक संगीत, लोक व्यवहार तथा परम्पराएं अन्य जातियों से पृथक हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ पर निवास करने वाले मुसलमान अलग सांस्कृतिक पहचान बनाये है।

5. उच्चकोटि की कला को जन्म देने वाली संस्कृति :- सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड विविध प्रकार की अति विशिष्ट कलाओं का केन्द्र रहा हैं। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अति विशिष्ट दुर्ग, कुलीन वर्ग के लिये आवास, उपासना स्थल, जल संसाधन स्थल प्राचीन ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में उपलब्ध होते है। इनमें से खजुराहो, देवगढ़, कालिंजर, ग्वालियर आदि विश्व प्रसिद्ध स्थल है। इसी प्रकार यहाँ की मूर्ति शिल्प अत्यन्त उच्चकोटि का है। खजुराहों का मूर्ति शिल्प बेजोड़ हैं तथा यहाँ के जलीय संसाधन की पूर्ति करने वाले बड़े -बड़े सरोवर अपने आप में अनूठे हैं। इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड के साहित्यकारों ने उच्चकोटि का साहित्य सृजन किया है। आदि कवि बाल्मीकि, कृष्ण, दैपायन, वेदव्यास, आल्हखण्ड के रचयिता जनकवि जगनिक, गोस्वामी तुलसीदास तथा पदमाकर जैसे महाकवि यही उत्पन्न हुये। अब्दुल रहीम खानखाना चित्रकूट की तपोभूमि पर कुछ वर्षो तक रहे। अकबर के नौ रत्नों में संगीतकार तानसेन और पुरुषोत्तम दुबे, इसी क्षेत्र के मूल्यवान रत्न थे । इस प्रकार यहाँ की संस्कृति ने कला और साहित्य को गौरव प्रदान किया हैं ।

6. बुन्देलखण्ड की संस्कृति को निर्धारित करने वाले तत्व :- किसी भी क्षेत्र की संस्कृति को निम्नलिखित तत्व पृथकता प्रदान करते हैं और उन्हें विशिष्ट स्थान देते है।-

1. भोजन एवं पेय पदार्थ :- यहाँ के व्यक्ति प्रकृतिजन्य अनाज एवं अन्य भोज पदार्थो को कच्चा या पकाकर भोजन के रूप में प्रयोग करते थे। चन्देल युग में उपलब्ध दानपत्रों में भोज्य पदार्थो का उल्लेख मिल जाता है। यहाँ के लोगो के सामान्य भोजन में विविध अन्न, चीनी, दूध, घी, और फल सम्मिलत थे, किन्तु बौद्ध धर्म के विलोप के साथ मांसाहारी व्यक्तियों का द्रुत गति से बढ़ाव हो रहा था। अलमसउदी का कथन है कि वे (ब्राह्मण) किसी भी पशु का मांस नही खाते थे। स्मृतियों से भी प्रकट होता है, कि ब्राह्मण साधारणया मांस खाने वाले नही थे । गाय तथा महाकाय सिंह आदि पशुओं का मांस खाने में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शुद्र सभी को रूकावट थी । किन्तु शेष तीन वर्णो द्वारा अन्य पशुओं का मांस खाया जाता था।[85]

उच्च कोटि के वर्ग अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एक दूसरे का भोजन कर सकते थे। इसमें वे लोग व्यास स्मृति का अनुसरण करते थे, तद्नुसार उनको यह जान लेना आवश्यक था कि वह द्विज परिवार का है अथवा अन्य जाति का व्यक्ति हैं ।

धर्मेणान्योन्य भोज्यान्ना द्विजास्तु विदितान्वयाः।[86]

संस्कृत नाटक प्रबोध चन्द्रोदय में यह वर्णन मिलता है कि उच्च वर्ग के लोग छोटी जातियों के साथ खान-पान नही करते थे -

दूरे तावत्स्थीयताम् । ब्राह्मणः प्रस्वेदकनिका प्रसरन्ति।[87]

मुख्य रूप से भोजन में छुआ-छूत की व्यवस्था थी। इसी प्रकार मद्यपान भी वर्जित था, किन्तु छोटी जातियों में मद्यपान होता था। मद्यपायी को समाज के व्यक्ति घृणा की दृष्टि से देखते थे। इसका भी उदाहरण प्रबोध चन्द्रादेय में उपलब्ध होता है -

भिक्षु - महाप्रसादः (इति चषक गृहीत्वा पिबति) अहो सुरायाः सौदर्यम्।[88]

बौद्ध लोग भृष्टाचार में लिप्त हो गये थे और वे सुरापान करने लगे थे। बुन्देलखण्ड के लोग शुद्ध और ज्यादा भोजन करते थे ।

<u>वस्त्राभरण :-</u> बुन्देलखण्ड में लोग ऐसे वस्त्रों का प्रयोग करते थे, जो अन्य क्षेत्र से भिन्न थे। केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार - लोग शरीर के अधोभोग में नीचे तक की लम्बी धोती, कुची ताला या परदनी पहनते थे। घुटन्ना पहनने की परिपाटी भी पुरानी हैं। भारतवासी अपेक्षाकृत कम वस्त्र पहनते थे। धोती व पगडी सामान्य पोशाक थी। अधो वस्त्रों में पैजामे का प्रयोग प्रचलित होने लगा था । ऊर्ध्व वस्त्रों मे पुरूष मिरजई और बगलबंदी के ढंग का वस्त्र पहनते थे। स्त्रियां फतुही और ॲगरखा पहनती थी।[89]

बुन्देलखण्ड में आभूषण पहनने का रिवाज भी बहुत पुराना हैं। यहाँ स्त्री, पुरुष, वृद्ध, बालक, सम्राट एवं कुलीन वर्ग के लोग अपनी हैसियत के अनुसार आभूषण पहनते थे। ये आभूषण सोने चाँदी काँसा, काँच और पीतल से निर्मित होते थे, बनवासी लोग सीप और शंख के आभूषण पहनते थे।

केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार - बुन्देलखण्ड के भाग में आभूषणों का प्रचलन उस समय अपेक्षाकृत अधिक था । स्त्रियां और बालक पैर पर पैजना, सॉकर, बिछिया और अनोटा पहनते थे। गले मे मूल्यवान कंठहार, खगैरिया और हमेल की भाति आभूषण पहनते थे। हाथ के लोकप्रिय आभूषणों मे खग्गा और बरा था। कान और सिर को मनोहर भूषणों से अलंकृत करते थे, इन आभूषणों में कर्णफूल, सॉकर,शीशफूल और बीज आदि हैं। हाथ की अँगूठी, माला आदि को स्त्री पुरूष दोनों प्रेम से पहनते थे।[90]अलबरूनी ने बुन्देलखण्ड के पहनावे के सन्दर्भ में अपने दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति की है। उसके अनुसार, यहाँ के व्यक्ति मुखाकृति को शोभित करने के लिये पान का सेवन करते थे। स्त्री पुरूष दोनों ही अपने केश सजाते थे। स्त्रियॉ अपने केशों को फूलों से अंलकृत करती थी। स्त्रियों के सौन्दर्य के सन्दर्भ में प्रबोध चन्द्रोदय के रचयिता ने बहुत सुन्दर चित्राकंन किया है -

रम्यं हर्म्यतलं नवाः सुनयनाः गुज्जद्विरेफा लताः ।
प्रोन्मीलन्नवमल्लिका सुरभयों वाताः सचन्द्राक्षयाः ।।

''एक सुरभ्य गृह युवा बालिका, मोहने वाले उसके नयन प्रसारित वह लता जिस पर बैठकर भ्रमर गुन्जन करता है, नव मकुलित मल्लिका तथा पराग भरति मलयवात ।।''[92]

इस प्रकार हम देखते है, कि वस्त्र, आभूषण, केश विन्यास शैली बुन्देलखण्ड की पृथक पहचान बनाये रखती थी ।

रीति रिवाज :- बुन्देलखण्ड के निवासी अपनी परम्परागत रीति रिवाज का अनुपालन बड़ी श्रद्धा के साथ किया करते थे । यहाँ के निवासी अतिथियों का स्वागत सत्कार किया करते थे । ब्राह्मणों का सम्मान था। विदेशियों को भी उचित सम्मान दिया जाता था। वैशाष सुदी तीज को कृषि वर्ष मानाया जाता था, इस दिन कृषि, हल, खेत, मिट्टी की पूजा होती थी । अषाढ़ सुदी एकादशी को देवशयन एकादशी तथा कार्तिक सुदी एकादशी को देवजागरण एकादशी मनायी जाती थी। बौद्ध, जैन तथा अन्य धर्म के लोग अपने-अपने अनुसार रीति रिवाज का पालन करते थे।

परम्परा एवं लोकरीति :- बुन्देलखण्ड के लोग कर्तव्यविमुख होकर भाग्यवादी हो गये थे । वह कुसमय में अपने भाग्य को कोसते थे। उनका मानना था कि यदि विधाता बाम हो जाये, तो कोई कुछ नही कर सकता। उनका मानना था कि सुकृत्य और पाप पूर्व जन्म के अनुसार व्यक्तियों को प्राप्त होते हैं । यहाँ के आदिवासी गौड़ और सौर आदि भूत प्रेतों पर विश्वास करते थे। वे अनेक कल्पित देवताओं की पूजा करके भूत प्रेतों को संतुष्ट करते थे। वे लोग भाव भक्ति से जवारा तथा झाड़ -फूंक पर विश्वास करते थे। उनका विश्वास तांत्रिको और अघोरपंथियों पर भी था। केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार - वर्तमान जीवन में बुन्देलखण्ड में जो अनेक देवी, देवताओं, प्रेतों की पूजा जगह जगह चल पड़ी हैं, यह उसी भावना का परिणाम हैं कि ऐसे में 'खेरमाता', 'घटाइया,' 'गौड़बाबा,' 'मसानबाबा,' 'नटबाबा', छीद आदि वहाँ के बडें लोकप्रिय ग्राम देवता हैं। महामारियों के देवता भी यहाँ के लोगों ने पूजने आरम्भ कर दिये थे। कुछ जातिगत विश्वास भी वहाँ के लोगों में प्रौढ़ हो रहे थे।[93]

कृषि और व्यवसाय के सन्दर्भ में भी अनेक प्रकार के अन्धविश्वास प्रचलित थे। किसी भी खेत में जहाँ हल बैल नही चलाया जाता था । कृषि के प्रारम्भ और समाप्ति पर हल, बैल तथा कृषि उपकरणों की पूजा होती थी। कृषि को दैवीय आपत्ति से बचाने के लिये अनेक प्रकार के धार्मिक कृत्य किये जाते थे। यहाँ रहने वाले मुसलमानों के प्रति और निम्न कर्म करने वाले बौद्ध भिक्षुओं के प्रति घृणा की भावना थी। यहाँ के लोग दक्षिण भारतीयों के प्रति भी अच्छी भावनायें नही रखते थे ।

आमोद-प्रमोद के साधन :- बुन्देलखण्ड़ में आमोद प्रमोद के अनेक साधन मौजूद थे। यहाँ कुलीन वर्ग के लोग शिकार से अपना मनोरंजन करते थे। गॉव के व्यक्तियों का मुख्य मनोरंजन सपेरे, अभिचारी और जादूगर करते थे।[94]सुशिक्षित व्यक्ति अपना मनोरंजन गायन, वादन, और नृत्य से करते थे, कभी कभी रंगमचों से भी उनका मनोरंजन होता था।

बुन्देलखण्ड में निवास करने वाली पिछड़ी जातियों का विवरण

बुन्देलखण्ड में रहने वाले मूल निवासी सामाजिक, नैतिक, आर्थिक रूप में आज भी पिछड़े हुये है, इसलिये यहाँ रहने वाली अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्ग की मिश्रित प्रजाति को पिछड़ी जाति के रूप में जाना जाता हैं। समाजशास्त्री दृष्टिकोणों के अनुसार प्रजाति ऐसा शब्द है, जिसे प्रायः भाषा, धर्म, संस्कृति और राष्ट्र के साथ जोड़कर परिभाषित किया जाता हैं। सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री मजूमदार के अनुसार - ''यदि व्यक्तियों के एक समूह को समान शारीरिक लक्षणों के आधार पर अन्य समूहों से पृथक पहचाना जा सके तो चाहे इस जैवकीय समूह के सदस्य कितने ही बिखरे क्यों न हो, वे एक प्रजाति के हैं।'' जैवकीय शास्त्र के अनुसार प्रजाति की निम्नलिखित विशेषतायें होती है- 1. शारीरिक लक्षण में समानता 2. कद में समानता

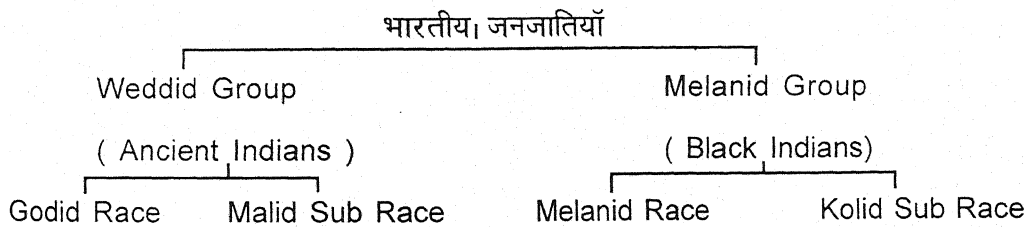
3. रक्त समूह में समानता 4. त्वचा के रंग में समानता

5. आँखों की बनावट और रंग में समानता 6. सिर और चेहरे में समानता

उपरोक्त लक्षण वाले अनेक प्रजाति के लोग बुन्देलखण्ड के विभिन्न भागों में निवास करते है तथा इनको निम्न प्रकार से पहचाना जा सकता है-

1. भाषायी आधार पर
2. क्षेत्रीय आधार पर
3. नैतिक स्तर के आधार पर
4. बैद्धिक स्तर के आधार पर
5. रक्त के आधार पर
6. संस्कृति के आधार पर
7. छुआ छूत के आधार पर
8. अलग अलग जातियों के विभाजन के आधार पर

भारत में जनजातियों का विभाजन निम्न आधार पर किया गया है :-



बुन्देलखण्ड में पिछड़ी जाति समझी जाने वाली कई जातियॉ निवास करती हैं, इनमें से कुछ पिछड़ी जातियो का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है-

1. लोधी :- इस जाति के लोग दमोह, हमीरपुर, तथा बाँदा जनपद में सर्वाधिक हैं। ये लोग गौड़ो और सौरों को हटाकर दमोह जनपद मे बस गये थे । राजा छत्रसाल ने इनको महत्वपूर्ण स्थान दिया था। इनके महत्वपूर्ण घराने हटरी, बालाकोट और रामगढ़ हैं। हमीरपुर और चरखारी के एक भूभाग को लुधयॉट भी कहते हैं।

2. अहीर :- बुन्देलखण्ड में इनकी शाखायें भरोतियॉ, जुझौतिया, कॉबरा और कमरयाँ हैं। इनकी एक शाखा दौंवा भी हैं, जो बुन्देला पुरूष और अहीर स्त्री से उत्पन्न हुयी। ये एक प्रकार से दासी पुत्र हैं। ये बाबू कहलाने में अपनी शान समझते हैं।

3. **चँडार, खँगार, दहेत :-** पूरे बुन्देलखण्ड में इनका निवास हैं, नकीब और मिरधां इनकी उपजातियाँ है। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार 13वीं व 14वीं शताब्दी में खँगारों का राज्य गढ़कुड़ार में था।

4. **गौंड :-** मुख्य रूप से इस प्रजाति की सर्वाधिक जनसंख्या दमोह जनपद में हैं। ये राजगौंड,खुटलहा और भोई तीन प्रकार के होते है। राजगौड़ अकबर के जमाने में गुजरात से बुन्देलखण्ड आये थे। खुटलहा गौंड़ो का मुख्य निवास विन्ध्यांचल और उसके दक्षिण में हैं । गढ़ा मंडला में इनका राज्य रहा है।

5. **सार :-** ये लोग गौंडों से नीचे है तथा जंगल और पहाडों में निवास करते है।

6. **बहरिया या भुमिया :-** एक ऐसी विशिष्ट जाति हैं, जिसमें विवाह की प्रथा नही हैं। ये लोग नाई का पानी नही पीते और घोडें की सवारी नही करते। यह जाति बहुत गरीब है।

7. **कोंदर -बांदर :-** यह भी एक जंगली जाति हैं, जो पहाडों के समीप जंगलों में रहती हैं। ये लोग वन उपज और लकड़ी बेचकर अपना जीवन निर्वाह करते है।

8. **गुरंदा :-** यह ठगों की एक जाति हैं तथा इनका मुख्य निवास स्थल दमोह है।

9. **चमार :-** बुन्देलखण्ड में इस जाति की संख्या सर्वाधिक है। ये लोग कृषि कार्य, मजदूरी और मरे पशुओं से चर्म निकालने का कार्य करते हैं। इनकी स्त्रियॉ चक्की चलाना तथा प्रसव में दाई गिरी का कार्य करना पसन्द करती है। ये लोग मरे जानवरों का मांस खाते हैं। ये लोग घोडें की लाश नही छूते, गाँय को नही मारते, किन्तु गोमांस खाते हैं। ये मदान नाम के ग्रामीण देवता की पूजा करते है।

10. **कोरी :-** ये लोग मजदूरी व कपड़ा बुनने का कार्य करते हैं। इनकी शाखाये कुष्टा, अहिरवार, संखवार और कम्हरिया हैं। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार -750 वर्ष हुये, तब वे बनारस से आये थे और झांसी, मऊ, एरच, गुरसराय और भांडेर के आस पास बसे थे। कुष्टा प्रायः रेशमी काम करते हैं। वे कहते हैं कि वे कोरियों से सौ वर्ष पहले चंदेरी से आये थे । चंदेरी का रेशम और मसलिन का काम प्रख्यात हैं।[96]

11. **कुर्मी :-** इनकी जनसंख्या सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में हैं। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार, बाँदा जिला की बबेरू तहसील में ये चंदेलों के समय से बसे हुये हैं। उनकी दो शाखायें बरगैया और सिंघरौल हैं। बरगैया गुजरात की टौंस नदी के किनारे के बारह गाँव से आये थे। वे सिंघरौल कुर्मियों से विवाह सम्बन्ध नही करते। सिंघरौल कहते हैं कि कोई सिंधी ऋषि यमुना की ओर से यहाँ आये थे, वे उन्हीं के वंशज है। करवी के कुर्मी चाँदौल कहलाते हैं। वे गुजरात को अपना आदिम स्थान बतलाते हैं । करवी तहसील के रैपुरा के कुरमी कहते है, कि उनको बघेल राजपूत गुजरात से साथ लाये थे।[97] इस जाति की स्त्रियाँ बलिष्ठ होती हैं। इनकी जाति में बहु विवाह और बाल विवाह प्रचलित हैं।

12. **काछी :-** इस जाति के लोग भी पूरे बुन्देलखण्ड में निवास करते हैं। इनका मुख्य व्यवसाय सब्जी उत्पन्न करना हैं। इनकी जनसंख्या शहरों की अपेक्षा ग्रामों में अधिक हैं। ये लोग वर्णसंकर

जाति के हैं। इनकी उत्पत्ति कछवाहा राजपूत और नीच जाति की स्त्री के संपर्क से हुयी। इनके वंशज बुन्देलखण्ड में एक हजार वर्ष से निवास कर रहे हैं ।

13. **केवट :-** ये लोग नदियों के किनारे रहते है तथा नाँव चलाते है। त्रेतायुग से इस जाति का अस्तित्व बुन्देलखण्ड में हैं ।

14. **बसोर :-** इन्हें बसोर के अलावा बरार और धानुक भी कहते हैं। ये लोग बाँस की विविध वस्तुओं को बनाने के अतिरिक्त सफाई का कार्य भी करते है।

15. **सेजवारी :-** इस जाति का निवास स्थल झांसी जनपद में हैं। कहते है कि जब चन्देरी के महाराज देवी सिंह ने मालेर कोटला पर चढ़ाई की थी, उस समय वे चार लड़के वहाँ से लाये थे। उसमें से एक लड़का उनकी सेज सँवारने का कार्य करता था, इसी के वंशज सेजवारी कहलाये ।

16. **माली :-** ये लोग बगीचों की देखभाल करते हैं। इनकी स्त्रियाँ फूल बेचने में होशियार होती हैं तथा स्वभाव की चंचल होती हैं। विवाह के अवसर पर इस जाति के लोग मौर बनाते है तथा देवी मंदिरों और शिव मंदिरों में पुजारी का कार्य भी करते है।

बुन्देलखण्ड की अपराधी जातियाँ :- बुन्देलखण्ड में अनेक ऐसी जातियाँ हैं, जो अपराध के माध्यम से अपनी उदर पूर्ति करती है। इनमें नट, कंजड, बेड़ीया आदि प्रमुख जातियाँ हैं। इनकी संख्या झांसी और ललितपुर में सर्वाधिक है।

इसी प्रकार की एक अपराधी जाति सनोढिया भी है। इनकी जनसंख्या ललितपुर, झांसी, ओरछा, और दतिया राज्यों में सर्वाधिक हैं। ये लोग धन लेकर दूसरों की हत्या, चोरी तथा ठगी किया करते हैं। ओरछा राज्य में इन गाँवों के नाम चरकुवां, हरपुरा, जमरार, करनारी, मनोरा,बानपुर, वीर, उदिया, महावरा, रोरी, पहाड़ी आदि है। इन्हें ब्राह्मण जाति से निकाल दिया गया था। इनकी एक सांकेतिक भाषा होती है,जिसे यह आपस में समझते हैं। ये लोग केवल दिन में ही चोरी करते हैं। चोरी का माल ये लोग कलकत्ता, वर्दवान, राजमहल, बम्बई, बडौदा, अहमदाबाद, और अमरावती में बेचते थे ।

बुन्देलखण्ड में निवास करने वाली पिछडी जातियों के उपधर्म:- मुख्य रूप से यहाँ हिन्दू, जैन और मुसलमान धर्म का अनुसरण करने वाले लोग निवास करते है। इन मौलिक धर्मो के साथ-साथ यहाँ की पिछड़ी जातियो ने अनेको उपधर्मो का विकास किया। यहाँ का हिन्दु धर्म अनेक उपशाखाओं में विभाजित है। जिन पर पिछड़ी जाति के लोग विश्वास करते है-

1. **कबीरपंथ :-** इस धर्म के संचालक संत कबीरदास थे। हिन्दुओं में कोरी जाति के लोग और मुसलमानों में बेहने और बुनकर इस धर्म को मानते थे। इस धर्म के लोग तुलसी की कंठी पहनते हैं। दीवान प्रतिपाल सिह के अनुसार ये मुर्दे जलाते है तथा मांस खाते हैं और नाममात्र के कबीरपंथी हैं। ये केवल कबीर के जुलाहे होने के कारण उनके अनुयायी हैं।[98]

2. **नानकशाही :-** इस धर्म के अनुसरणकर्ता, यहाँ पर रहने वाले कुछ व्यापारी और कुछ

रियासतों में नौकरी करने वाले व्यक्ति हैं। इस धर्म के संस्थापक गुरू नानक है। संत गुरू नानक ने हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मो से अच्छी बाते लेकर नानकशाही धर्म चलाया। इस धर्म के लोग कड़ा, कंघी, कृपाण, केश, पगड़ी आदि धारण करते हैं।

3. **धामी :-** इस धर्म का प्रचार-प्रसार छत्रसाल के गुरू प्राणनाथ ने किया। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- ये हिन्दू थे, परन्तु इन्होंने हिन्दू और मुसलमान धर्मो में ऐक्यभाव पैदा करने का प्रयत्न किया था । इसमें जाति नही हैं, ये मांस नही खाते और मूर्ति नही पूजते। इनका मुख्य मंदिर पन्ना में है। उसी में ''कुलजम'' पुस्तक है। वह सिक्खों के ग्रंथ की तरह पूजी जाती है।[99]

इतिहास कार राधाकृष्ण बुन्देली के अनुसार -छत्रसाल को समुचित प्रेरणा देने के कारण प्राणनाथ को देवताओं का सम्मान प्राप्त हुआ।[100]

4. **अघोरपंथ :-** बुन्देलखण्ड में अघोरपंथ नाम का एक अलग पंथ है, इनके क्रिया कलाप अन्य पंथों से भिन्न रहे है । दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- अघोरियों की धारणा हैं कि संसार की सब वस्तुए एक ही पदार्थ से बनी हैं और सब एक समान उत्तम हैं। वे भीख मांगने के लिये मनुष्य की खोपड़ी रखते हैं और हड्डियों का हार पहनते है। ये शराब पीते है तथा कभी कभी पेशाब भी पी जाते हैं। जब कोई इनको भीख नही देता है, तो ये उसके घरं में पैखाना फेंकने लगते हैं। ये काली ,सुर्ख सेलियां या धागे पहनते हैं और माथे पर पीला, काला रंग लगाते है।[101]

5. **नाथपंथ :-** इस सम्प्रदाय के लोग सर्प को अपना देवता मानते है तथा भगवान शिव के कंठहार होने के कारण वे सर्प के माध्यम से शिव की उपासना करते हैं। ये लोग जाति, धर्म का भेद भाव नही मानते । इस पंथ को मानने वाले युवक किसी भी धर्म जाति की औरत को अपनी पत्नी बना लेते हैं। इन्हें बुन्देलखण्ड में भोगी कहते हैं।

6. **पंचपीर के उपासक :-** ये लोग हिन्दू और मुसलमान दोनों ही होते हैं तथा ये पाँच पीरों की उपासना करते हैं। इनका धर्म उत्तर प्रदेश में गाजीमियाँ के उपासकों की तरह हैं।[102]

7. **हरदौल उपासक :-** सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में हरदौल को देवपुरूष माना जाता हैं। ये वीरसिंह जू देव के पुत्र थे और जुझारसिंह के लघु भ्राता थे। बुन्देलखण्ड में प्रत्येक गाँव के बाहर हरदौल चबूतरे होते हैं, जिनकी पूजा विवाह के अवसर पर औरतें करती है।

8. **बामपंथ :-** बामपंथ का उदय महाभारत युद्ध की समाप्ति के पश्चात हुआ। ये लोग नग्न होकर भगवान शिव की उपासना करते हैं। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- बाम मार्ग एक गुप्त पंथ हैं, जिसकी विशेषता अश्लील कर्तब्यों पर निर्भर है। कुछ बाममार्गी इस देश में भी हैं।[103]

9. **जैन :-** इस धर्म के संस्थापक महावीर स्वामी थे। इस धर्म के उपासक सत्य, अहिंसा, प्रेम, सदाचार, पर अधिक बल देते हैं। जीव हिंसा नहीं करते, मांसाहार नहीं करते तथा परमात्मा को सृष्टि का कर्ता-धर्ता मानते हैं। इनके कुल मिलाकर 24 तीर्थांकर हुए हैं तथा इनका पंथ दिगम्बर और श्वेताम्बर दो भागों में विभक्त है। बुन्देलखण्ड में प्रसिद्ध जैन तीर्थ स्थल मकसी, वाचनगजा, बमेरा,

खजुराहों, सोनगिरि तथा देवगढ़ आदि हैं। नवीन शोध के अनुसार मड़फा तथा कालिंजर में भी विविध प्रकार की जैन मूर्तियाँ उपलब्ध हुई। जिनसे जैन धर्म के अस्तित्व का पता लगता है।

इस प्रकार बुन्देलखण्ड में उपर्युक्त अनेकों उपधर्मो के साथ-साथ प्रकृति तथा अनेको ग्रामीण देवताओ की भी उपासना की जाती थी। गौड़ बुन्देलखण्ड में रहने वाली सबसे प्राचीन जाति थी, सुप्रसिद्ध इतिहासकार के०के० शाह के अनुसार -

According to K.K. Shah "Among the earlist cults the commonest most propobly ware connection with worship of trees. Here again the element of totemism steps in and we have septs among the bhils named after Jamania (Eugenia Jambolana), Rahini (Soymida Febrifuga), Avalia (Phyllanthus emblica),Mehenda (Terminalia beleria) and among the Gonds Takam (teak) Markam (Mango), Trpachi (Mahua) and Tumrachi (Tendu)[104]

पिछड़ी जातियों के पूज्य देवताः-

बुन्देलखण्ड में ग्रामीण अंचलों में अनेक देवताओं की पूजा अति प्राचीन काल से हो रही है। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार - बुन्देलखण्ड के देहातों मे कई देवता और उनकी मूतियाँ या स्थान, मंदिर आदि पूजे गये हैं। इनमें से कई एक हिन्दू धर्म के और कई अनार्य प्रथा के हैं, कई बीरत्व अथवा विशेष कीर्ति के सम्बन्ध में पूजे जाते है और कितने ही केवल भूत प्रेत हैं। कोई कोई देवता किसी विशेष स्थान या प्रान्त में माना जाता हैं, अन्य स्थानों मे वह नही मिलता हैं।[105] इस परिक्षेत्र में मुख्य रूप से हनुमान जी, खेरामाता, खेड़ापति, खेरभवानी, हरदौल, इलादेव, मिडोहिया, घटोइया, नागदेव, गौड़बाबा, मंगलदेव, पोरियाबाबा, मसानबाबा, नटबाबा, रकसा, मढ़ई देवी, गुरैयाबाबा, महादेव, भिया राने, ग्वाल बाबा, बरम देव, बुँदेलाबाबा आदि देवता पिछड़ी जातियों के द्वारा पूजित है।

बुन्देलखण्ड़ में निवास करने वाली कुलीन जातियों की संस्कृति एवं धर्म

बुन्देलखण्ड़ में कुछ ऐसी जातियॉ भी निवास करती हैं, जो उच्च वर्ग की है। इस उच्च वर्ग को हम परिस्थिति और स्तर के अनुसार तीन वर्गो में विभाजित कर सकते हैं -

1. पुरोहित वर्ग :- बुन्देलखण्ड में एक ऐसा वर्ग निवास करता हैं, जिसका सीधा सम्बन्ध धर्म और शिक्षा से जुड़ा हुआ है। यह वर्ग समाज के व्यक्तियों के धार्मिक संस्कार सम्पन्न कराता है, तथा सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों को दिशा दृष्टि प्रदान करता हैं। यही वर्ग धार्मिक स्थलों की रक्षा तथा उनकी व्यवस्था करता हैं तथा अनेक प्रकार के धार्मिक यज्ञ सम्पन्न कराता हैं। यह वर्ग समाज के उच्च वर्गो को विभिन्न विषयों की शिक्षा भी प्रदान करता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक इस वर्ग का महत्व बना रहता है। ।

2.शासक वर्ग :- इस वर्ग में उच्च कुल के वे लोग आते हैं, जिसका कार्यशासन करना,शत्रुओं से राज्य की प्रजा की रक्षा करना तथा न्याय धर्म का अनुसरण करते हुये गरीब व्यक्तियों के साथ न्याय करना, उनकी सम्पत्ति, जान, और इज्जत की सुरक्षा करना। बुन्देलखण्ड में लगभग छोटी बड़ी मिलाकर 42 रियासते आस्तित्व में थी, इनके अधिकांश शासक उच्च वर्ग के थे।

3. उत्पादक एवं व्यवसायी वर्ग :- बुन्देलखण्ड में एक ऐसा उच्च वर्ग भी हैं, जो विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन करता हैं। कृषि, पशुपालन तथा विभिन्न व्यवसायों से अपनी जीविकोपार्जन करता हैं, यह वर्ग धनी वर्ग है। जो रुपये का लेन देन करता है तथा सर्राफी का व्यवसाय करता है।

उपरोक्त तीन वर्गो के लोग बुन्देलखण्ड में सर्वत्र निवास करते है। किन्तु इसवर्ग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही आते हैं। इनमें ब्राह्मण सर्वाधिक श्रेष्ठ, क्षत्रिय मध्य, वैश्य सामान्य श्रेणी के उच्च वर्ग के लोग माने जाते हैं। इन जातियों का विवरण इस प्रकार है-

बुन्देलखण्ड में रहने वाली ब्राह्मण जातियाँ :- बुन्देलखण्ड अति प्राचीन काल से जुझौति देश के नाम से जाना जाता रहा है, इसलिये यहाँ रहने वाले प्राचीनतम् ब्राह्मण जुझौतियाँ है। इसके अतिरिक्त यहाँ (कनौजियाँ) कान्यकुब्ज, सरवरिया, सनाढ्य, बैलवार, अहिवासी, मरहठा, खेड़ावाल, सनौढिया आदि यहाँ निवास करते थे ।[106] केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार - ब्राह्मणों का प्राबल्य, जन्मना, जाति निर्धारण की मान्यता तथा भोजन एवं विवाह क्रियाओं में अंतर्जातीयता का बहिष्कार क्रम से सभी रूढ़ होने लगे थे। स्मरण रखने की बात यह हैं कि इनमें से किसी पर प्रचीनशास्त्रों की सम्मति नही प्राप्त थी । इनका प्रवेश भी पर्याप्त संघर्ष के उपरान्त ही हुआ, जो पूरे राजपूत युग मे चलता रहा ।[107] 19वींशताब्दी के इतिहासकार इब्न खुर्दद्ब के अनुसार - ब्राह्मण है, जो मदिरा और आमिष व पेयों से सर्वदा दूर रहते हैं। तीसरे क्षत्रिय हैं, जो तीन चषक से अधिक मद्य नही पीते हैं। ब्राह्मणों की कन्या उनको विवाह में नही दी जाती, किन्तु ब्राहम्ण उनकी कन्या ग्रहण करते है।[108] डा० अयोध्या प्रसाद पाण्डे के अनुसार-ब्राह्मण हिन्दू समाज मे सर्वोपरि थे । उनके उच्चादर्शो तथा उनकी विद्वता के कारण उनकी पूजा होती थी । अनेक शिलालेखों में यह उल्लेख हैं कि उनका जीवन पवित्र तथा सादा था, वे यज्ञाग्नि प्रज्जवलित रखते थे। किन्तु सम्पूर्ण ब्राह्मणवर्ग विद्वान तथा धर्मात्मा न था और न ब्राह्मणोंचित छहों धर्मो का पालन ही करता था। अनेक ब्राह्मण अपने उच्चादर्शों से पतित हो रहे थे और दिन प्रतिदिन अधिकाधिक सांसारिक होते जा रहे थे।[109] According to M.L.Nigam , 'The Brahmins injoyed certain privileges in the society for their learning and simple but choste living . They lived in agraharas or villages inhabites by the learned Brahmins only. The ali copper plate grant records the gift of an agrahara by maharaja lakshman to the Brahmin Revatisvamen of kautsigotra. [110]

According to K.K.Shah, "The caw was not merely coveted item of gift. Just as Brahmanas regards themselves as heading the human society, in the like manner, cow

came to be consideres heading the animal world . Eran stone piller inseription ends on a significant note, "May it be will to all the peple, heades by the cows and the Brahmanas."[111]
इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्राह्मणों का वर्ण, एक ऐसा वर्ण था, जो समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किये था। सभी वर्ग के लोग इन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते थे ।

क्षत्रिय (राजपूत)-बुन्देलखण्ड में ऐसे ठाकुरों और राजपूतों का बाहुल्य है। जिनका सीधा सम्बन्ध अति प्राचीन काल से है। इनमें निम्न क्षत्रिय जातियाँ विशेष महत्व की है -

1.दिखित :- क्षत्रियों की यह जाति बाँदा, हमीरपुर तथा झांसी के आस पास क्षेत्रों में पायी जाती हैं। कहा जाता है, कि हमीरपुर को बसाने वाले हमीरदेव कुल्चुरी ने कोयल के एक राजपूत को अपनी पुत्री ब्याह दी थी, उससे उत्पन्न क्षत्रिय दिखित कहलाये। उसी की पुत्री के पुत्र रामसिंह को हमीरपुर के राजा हमीरदेव ने पाला था। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार - उस पुत्री के पुत्र रामसिंह को हमीरदेव ने ही पाला था और उसका ब्याह बाँदा जिला की पैलानी तहसील के अमलोर गाँव के राजपूत की पुत्री से किया था । उसे दहेज मे मौंधा तहसील का पूर्वीभाग मिला था। पैलानी तहसील (बाँदा जिला) मे बहुत दिखित हैं और वे अपने को अवध के कोट फलोकर की शाखा का बतलाते है। कदाचित हमीरदेव की कथा सच्ची हैं। [112] एक अन्य ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार दिखित क्षत्रिय बबेरू के पास सिमौनी के रहने वाले थे, इनका अस्तित्व फतेहपुर में भी हैं। पैलानी, जौहरपुर, बेंदा और जसपुरा मे इनकी जनंसख्या काफी हैं। ये लोग स्वभाव से उपद्रवी किस्म के होते है।

2.जनवार :- यह भी क्षत्रियों की एक जाति हैं। मुख्य रूप से ये लोग बाँदा जनपद के बबेरू, गिरवाँ और मुरवल के आस पास रहते है। अलिहा निवासियों के अनुसार, इनका मूल स्थान घाघरा के तट पर बसा बहराइच जनपद का इकोना ग्राम था। ये लोग पृथ्वी राज के वंशज हैं, किन्तु मुरवल के निवासी अपने आप को गंगा किनारे बहेरा गाँव का निवासी मानते है।[113]

3.मौंहार और बागड़ी :- इनका निवास स्थान बाँदा, हमीरपुर, चरखारी, सागर तथा बुन्देलखण्ड के अन्य क्षेत्रों में भी है। ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार- सन 1182 में पृथ्वीराज चौहान ने कालिंजर के दुर्ग को जीत लिया था और वेंकटराय चौहान को वहाँ का सूबेदार नियुक्त किया था। उनके राज्य के अर्न्तगत बाँदा, मटौंध, महोबा, गौरहार, चरखारी आदि के इलाके आते थे। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार - वेंकटराय के तीन पुत्रों में एक पुत्र ने अपने आप को चौहान बनाये रखा, शेष दो ने बागडियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये, जिससे ये निम्न कोटि के क्षत्रिय माने गये। बागड़ी लोग रामसरदल सिंह को अपना पूर्वज मानते है। उनके दो पुत्र थे, जिनके नाम अमलसिंह और कुंवर मानसिंह थे। ये पृथ्वीराज चौहान के साथ महोबा आये थे। सरदलसिंह कालान्तर मे बाँदा तहसील के बरबई गाँव के भीटा पुरवा में आये थे। उन्होने अनार्यो को धोखे से कत्ल करके कहरा गाँव को अपने आधीन कर लिया। बगरी मुहाल आपस में विवाह सम्पन्न करते थे, जो अन्य राजपूतो में नही होता। सागर जिले के बगड़ी यादव अपने आप को राजपूतों के वंशज मानते है। [114]

4.गौर :- यह भी क्षत्रियों की एक शाखा है, जो हमीरपुर, बाँदा, जालौन, तथा झांसी के अनेक भागो में निवास करती हैं। इनकी तीन शाखायें है- (1) राज या मरगौर (2) ब्राह्मणगौर (3) चमर गौर। इस बात के ऐतिहासिक साक्ष्य हैं कि इनके मूल पुरूष बीजा राम राजगौर अपनी बिरादरी के साथ अजमेर से हमीरपुर आ गये थे। उन्होंने सन 1348 में पारा, हरेता आदि बारह गाँव में अधिकार कर लिया था। इनके तीन पुत्र वीरसिंह, समुटसिंह, और जयसिंह थे। इनके विवाह सम्बन्ध कल्चुरियों में हुये थे। सर्वप्रथम बीजाराम राजगौर ने हमीरपुर नरेश हमीरदेव के यहाँ नौकरी की। बाद में इन्होनें अपना निवास स्थान बाँदा जनपद पैलानी के निकट सिंघन कला में बना लिया। जब इस क्षेत्र में बुन्देलों का शासन था, उस समय इनका प्रशासनिक महत्व था । झांसी में रहने वाले इस वंश के लोग अपने आप को इंदुरखी गाँव का मूल निवासी मानते हैं। पहले ये लोग हमीरदेव कल्चुरि की सेना में सैनिक थे। झांसी जनपद की मऊ तहसील में इनकी जनसंख्या अधिक थी ।[115]

5.गौतम :- इनकी जनसंख्या बाँदा और हमीरपुर जनपद में सर्वाधिक हैं। ये लोग फतेहपुर जनपद के अरगल गाँव से सातवीं शताब्दी में यहाँ आये थे। बाँदा जनपद के पैलानी क्षेत्र में इनके 12 गाँव हैं । राजा फतेहपुर इस जाति के महापुरूष थे, जो अरगल गाँव के निवासी थे । [116]

6. पायक :- इस जाति के क्षत्रियों की संख्या बुन्देलखण्ड में बहुत कम हैं। मुख्य रूप से ये लोग दमोह के आस पास 700 वर्षो से निवास कर रहे हैं। ये लोग पहले पैदल सेना मे नौकरी करते थे इसलिये पायक नाम से प्रसिद्ध हुये ।

उपरोक्त क्षत्रिय उपजातियो के अलावा यहाँ बैस, पवांर, रघुवंशी, बुन्देला, चन्देल, चौहान, नन्दवंशी, बिसेन, गहरवार, कछवाह, सुरकी, लौडेर, तौमर, सेगर, परिहार, भदौरिया, यदुवंशी, सिकरवार, राठौर, वघेल, करचुली, परमार, राजपूत, गहलौत, सोलंकी, रावत, घँघेरे, बनाफर, बड़गूजर, अन्य राजपूत, गुप्त, हूण, नाग, भगोड़िया, चन्द्रावत, डोडिया, गोयल, जैवार, पुरबिया, अमर, खीची, भाटी, चापड़ा, देवड़ा हुजूरी, झाला, सोमवंशी, बिलकैत, चौरसिया, गौड, कमरिया, सूरजवंशी, सीसौदिया, क्षत्री, जांगडा सेंधों, ठाकुर, आदि क्षत्रिय जातियॉ निवास करती थी ।[117] डा० अयोध्या प्रसाद पाण्डेय के अनुसार -शासक वर्ग तथा उनके सम्बन्धियों का समाज में विशेष आदर था और ब्राह्मण भी उनका सम्मान करते थे किन्तु साधारण क्षत्रियों को सब सुविधायें प्राप्त न थी, जो उनके सजातीय राजवंश के पुरूषों को प्राप्त थी । समाज में उनका उल्लेख ब्राह्मणों के बाद होता था, किन्तु सुविधायें उन्हें लगभग ब्राह्मणों की ही भाति थी। [118] सुप्रसिद्ध इतिहासकार अलबरूनी के ग्रंथ के अनुसार- चोरी के अपराध में क्षत्रिय का हाथ और बाँया पैर बेकार कर दिया जाता था, परन्तु ब्राह्मणों की भाति उसे अन्धा नही किया जाता था ।[119] बुन्देलखण्ड में उपलब्ध अनेक शिलालेखों में तद्‌युगीन क्षत्रियों की वंशावली उपलब्ध होती है, उसमें चन्देल वंश, फुमेदन्दु विशाल कीर्ति का उल्लेख मिलता है।[120] इस प्रकार का अभिलेख चौहान वंश का भी उपलब्ध होता है।जिसमें प्रख्यात वंशश्चिरां लिखा हुआ है।[121] इस प्रकार क्षत्रिय वंश के लोग अपने कुलों के आधार पर जाने जाते थे ।

बुन्देलखण्ड में क्षत्रिय जाति के हाथ में सम्पूर्ण प्रशासनिक शक्ति निहित थी ।

According to M.L. Nigam, " The Krhatriyas held regal power and accoupied a respectable position "[122]

सुप्रसिद्ध इतिहासकार के० के०शाह ने भी क्षत्रियों को उत्कृष्ट सम्मानवाली जाति माना हैं तथा उसके लिये देवगढ़ में उपलब्ध शिला अभिलेख को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है।[123]

इससे यह सिद्ध होता हैं कि बुन्देलों में क्षत्रिय जाति की प्रतिष्ठा उनके द्वारा किये गये शौर्य पूर्ण कार्यो पर आधारित है।

वैश्य :- बुन्देलखण्ड में वैश्यों की जनसंख्या बहुत अधिक हैं, ये लोग व्यवसाय, कृषि और पशुपालन करते है। इनकी माली हालत अन्य जातियों से श्रेष्ठ है। इस वर्ग के कुछ लोग साहूकारी का कारोबार करते है। इस क्षेत्र में अग्रवाल, अग्रहारि, केसरवानी, कसौधन, अयोध्यावासी, मारवाडी, गहोई, ओमर, जैन आदि वैश्य जातियाँ निवास करती है। असाटियों को निम्न कोटि का वैश्य माना जाता हैं। बुन्देलखण्ड में वैश्य जाति अपने व्यापार, आय और व्यय में बुद्धिमानी का परिचय देते हैं तथा धन के कारण ही इनकी विशेष प्रतिष्ठा रहती है।

सुप्रसिद्ध विद्धान श्री अयोध्या प्रसाद पाण्डेय ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ में वैश्यों का वर्णन इस प्रकार किया है - क्षत्रियों के पश्चात वैश्यों की गणना होती थी । समाज में उनकी समान्य स्थिति थी। बौधायन धर्मसूत्र में तो यहाँ तक उल्लेख है कि वैश्यों की लगभग वही स्थिति थी जो शुद्रों की। दानों मे परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध भी होते थे और दानों ही व्यक्तिगत सेवावृत्ति तथा कृषि का व्यवसाय करते थे । उन्हें वेदाध्ययन का निषेध था और इसका कठोरता से पालन होता था। वेदमंत्रोच्चारण के अपराध में वैश्यों अथवा शुद्र का जिहाच्छेद कर दिया जाता था । आर्थिक दृष्टि से उनकी स्थिति अच्छी थी। कृषि के अतिरिक्त वे व्यापार भी करते थे और उनके व्यावसायिक संघ बनाये रखे थे ।[124]

वाणिज्य व्यवसायों से सम्बन्ध रखने वाले कुछ नियम भी ध्यान देने लायक हैं। जब कोई ब्राह्मण विपदा ग्रस्त होता था, तो वह वैश्यों की वृत्ति वाणिज्य को गृहण कर लेता था। किन्तु ब्राह्मण व्यापारी को नमक और तिल बेचने का अधिकार नही था । वह केवल उसी दशा में बेच सकता था, जब उसके ही खेत में उसी के श्रम से पैदा होता था। इसी प्रकार उसे अन्य कई वस्तुओं के बेचने की भी मनाही थी। [125] ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय वैश्य परम्परा जाति और वंशगत न होकर व्यवसायिक कर्म के अनुसार हो गयी थी । सुप्रसिद्ध के० के०शाह ने वैश्यों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया हैं तथा वे इसे उच्च्व श्रेणी का तृतीय वर्ग मानते हैं। उनके अनुसार-The third group playing significant role in polity consisted of commercial class. In capital accamulation they were second only to king like him they had the resources to finance the raising of lofty and large temples Siyadoni inseription has immoratalised the temple of

Naray and Bhattaraks set up by self merchent conduka Of the total twenty seven donation recorded in the document more than half are assigned to this very temple. Such was the influence of the self magnate.[126]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में हिन्दुओं में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को ही समाज में प्रतिष्ठा और सम्मान उपलब्ध था, अन्य जातियां निम्न कोटि की मानी जाती थी ।

कुलीन-मुस्लिम वर्ग :- बुन्देलखण्ड में ऐसे मुस्लिम वर्ग का भी अस्तित्व था, जो समाज में प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त किये हुये थे। इनमें वह वर्ग प्रमुख था, जिसकी भागीदारी तद्‌युगीन शासन व्यवस्था में थी। ये लोग बुन्देलखण्ड में सूबेदार, मनसबदार, जागीरदार, जमीदार, तालुक्येदार तथा अन्य बड़े पदों में आसीन थे। ये अपना सम्बन्ध तुर्को, अरबों और मुगलों से जोड़ते थे। इनके अतिरिक्त एक अन्य वर्ग था, जो उलेमा वर्ग कहलाता था। इसमें धार्मिक संस्कार कराने वाले मौलवी आदि शामिल थे। इनका भी प्रभाव मुसलमानों में था।

बुन्देलखण्डवासियों का प्राचीन धर्म व सम्प्रदाय :- मुख्य रूप से बुन्देलखण्ड में उपासना के सन्दर्भ में आल्हखण्ड के इस छन्द का अनुसरण किया जाता है। - यथा

सदा भवानी दाहिने गौरी पुत्र गणेश ।
तीन देव रक्षा करे ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।।

धर्म का विशेष अध्ययन करने के लिये हमारा ध्यान उन अति प्राचीन धार्मिक स्थलों की ओर जाता है, जिनका निर्माण आज से हजारों वर्ष पूर्व धर्मभीरू भक्त नरेशों ने कराया था। बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में शिव, विष्णु, शक्ति, गणेश, और सूर्य मन्दिर प्रचुर मात्रा में पाये जाते है। इन मन्दिरों में आराध्यदेव के अतिरिक्त अन्य उपदेवों की प्रतिमायें भी उपलब्ध होती है। जिनकी पूजा और उपासना बहुदेववाद के सिद्धान्तनुसार यहाँ की जाती हैं। मुख्य रूप से इन्द्र, वरूण, अग्नि, वायु, यम, हनुमान, आदि की मूर्तियां तथा शक्ति के विविध रूपों वाली योगिनी मूर्तियां और उसके मन्दिर बुन्देलखण्ड के अनेक भागों मे उपलब्ध होते है। पुराणों एवं धार्मिक ग्रंथों में वर्णित योगनियों की कुल संख्या 64 है तथा इनके मन्दिर वृत्ताकार होते है। इसके अतिरिक्त अनेक पशु पक्षी देवताओं की सवारी के रूप में यहाँ पूर्जित है। इसमें गरूण, मोर, नाग, सिंह, वृषभ आदि पशुओं की प्रमुखता है, जिनकी पूजा होती है।

इस परिक्षेत्र में अनेक धार्मिक ग्रंथ पठन-पाठन के रूप में उपयोग में लाये जाते है। यहाँ के लोग चारो वेदों को अपनी धार्मिक आस्था का केन्द्र मानते है, किन्तु इन वेदों के पठन-पाठन का अधिकार केवल बाह्मणों को ही था। इसके अलावा वेदव्यास द्वारा रचित 18 पुराणों पर भी यहाँ के व्यक्तियों की पूर्ण आस्था हैं। इसके अतिरिक्त तंत्र विज्ञान, जप, तप, वृत और दान से सम्बन्धित अनेक पुस्तको का प्रचलन भी इस क्षेत्र में हैं। उपनिषदों, स्मृति ग्रंथों और नीतिग्रंथों का भी व्यापक प्रभाव यहाँ की धार्मिक व्यवस्था पर पड़ा है। यहाँ का धर्म जिनका अनुसरण उच्च वर्ग

के लोग करते हैं निम्न रूपों में विभाजित है -

वैष्णव सम्प्रदाय एवं नव वैष्णव सम्प्रदाय :- गुप्तों के शासन काल में वैष्णव धर्म को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। वह लगभग 1000 ई० से 1200 तक बुन्देलखण्ड में प्रचारित और प्रसारित हुआ। अवतारवाद की धारणा के कारण इस धर्म के मतावलम्बियों ने महात्मा बुद्ध को अपना अवतारी माना, जिसके कारण अनेक बौद्ध और जैन वैष्णव धर्म के अनुयायी हो गये । सुप्रसिद्ध इतिहासकार केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार - लोगों को अपने चिर परिचित देव विष्णु की आराधना अहिंसा के साथ श्रीकृष्ण के रूप में करना बड़ा ही आकर्षक ज्ञात हुआ । वैदिक यज्ञ जो अनिवार्य पशु हिंसा से आबद्ध थे, छोड़ दिये गये । वैष्णवों ने वस्तुतः पशु वध और मांस भक्षण का परित्याग कर दिया।[127] वैष्णव सम्प्रदाय के लोग वेदों पर विश्वास करते थे। चन्देलशासक हर्ष तथा यशोवर्मन देव विष्णु के परम उपासक थे, उन्होंनें खजुराहो में प्रसिद्ध विष्णु मन्दिर का निर्माण करवाया था। श्रीकृष्ण और गोपियो का अनुबन्धन ही इस मत का मुख्य सिद्धान्त बना, किन्तु अभी तक राधा की कल्पना का समावेश नही हुआ था। यह ध्यान देने की बात है, कि दक्षिण और पूर्व में शैव मत के विरोध के उपरान्त भी वैष्णव मत इस रूप में विकसित होता चला जा रहा था।[128]

बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में विष्णु तथा शैव धर्म से सम्बन्धित अनेक भग्नावेश उपलब्ध हुये हैं। सुप्रसिद्ध विद्धान एम०एल० निगम के अनुसार -

It was during the Gupta age that the two great epics , Viz, Ramayana and Mahabharat, along with various puranas provided new life and blood to the Hindu Pantheon. It gave rise to them ultiple para aspect and other incornatory forms of the two gods, follwed by thier parivara devatas.[129]

विष्णु उपासना उनके सम्पूर्ण अवयवों के साथ की जाती हैं, कहीं-कहीं उनकी उपासना बासुदेव कृष्ण, उनके पुत्र प्रद्युम्न तथा नर नारायण के रूप में की जाती हैं तथा यह स्वीकार किया जाता है कि विष्णु भगवान सदैव अपने भक्तों की रक्षा के लिये अवतार धारण करते हैं। बुन्देलखण्ड में कृष्ण उपासना के सन्दर्भ में उपलब्ध ऐतिहासिक साक्ष्यों के सन्दर्भ में एम० एल० निगम का कथन हैं -

Krishna thems was equally favoured in Bundelkhand. A few stone slabs from the terraced bosament of the Dasavatara temple depect episodes from Krishna life' Devapis' handing over bady Krishana to vasudeva' Krishana Kicking at the milk cort' Krishana receiving his boyhood friend Sudama, etc... are depicted there.[130]

के० के०शाह ने बुन्देलखण्ड में वैष्णव धर्म के अस्तित्व को स्वीकार किया है, उनके अनुसार -

Vasudeva Krishna, Narayana and Visnu. It is fairly clear now that the great epic of India is not a patch work or a motley assortment of heterogenous material piled at one place and

turned into a literary monster by unpoetical theologians and commentaltors but a hermonious work having an arganic unity and concious design.[131]

इस प्रकार हम देखते हैं कि विष्णु और उनके विविध अवतार सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में कुलीन वर्ग और सवर्णो के लिये मुख्य रूप से पूज्य थे ।

शैव, नवशैव तथा लिंगायात सम्प्रदाय :- बुन्देलखण्ड में शैव धर्म वैष्णव धर्म से भी प्राचीन हैं। शैव उपासक भगवान शिव को संसार का आदि देव मानते है। जिस समय बुन्देलखण्ड में वैष्णव धर्म का विकास हुआ, उस समय शैव मतावलम्बी भी वैष्णव धर्म से प्रभावित हुये तथा उन्होने अपने धर्म मे अनेक परिवर्तन किये। तद्‌युगीन साहित्यकार भवभूति बाणभट्ट तथा कालिदास शिव के अनन्य भक्त थे। प्रसिद्ध विदेशी यात्री ह्वेनसांग ने अपनी यात्रा वर्णन में शिव की उपासना को पशुपति नाथ की उपासना के रूप में दर्शाया हैं। इस युग मे शैव उपासना का वर्णन सुप्रसिद्ध विद्वान केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार- संध्योपासना, पूजा, मंत्र, जप, होम, निवृत्ति एवं परमानन्द की प्राप्ति के लिये समय समय पर उत्सव, प्राणायाम, ध्यान, मनन, बुद्धिस्थैर्य समाधि, तप विशेष धार्मिक कृत्यों द्वारा आत्मशुद्धि तथा विविध रूपों मे लिंगोपासना पर विशेष जोर दिया।[132]

कालान्तर में शंकराचार्य के दर्शन का गम्भीर प्रभाव बुन्देलखण्ड पर पड़ा, जिसके कारण शिव लिंग उपासना का महत्व बढ़ा तथा उसके साथ नन्दी की उपासना भी होने लगी। केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार - वासव ने सामान्य जनों में प्रचलित पुरानी लिंग पूजा को कायम रखा, उनके ईश्वर की कल्पना में बाधा नही पहुंचाई । उसने भक्ति अर्थात प्रेम और समपर्ण सत्य नैतिक आचार और आत्मप्रक्षालन के महत्व को खूब दर्शाया।[133]

शैव सम्प्रदाय बुन्देलखण्ड में राष्ट्रकूटों और चोलो के आश्रम में खूब फला फूला। 10वीं सदी तक इसका विकास सर्वाधिक हुआ। चन्देल नरेश धंग शिव उपासक था, उसने शिव उपासना के लिये अनेक शिवालयों का निमार्ण करवाया। वह लिंगायतशैव मत का अनुगामी था। चन्देल वंश का अन्तिम प्रतिभा सम्पन्नशासक परमार्दिदेव भी शैव था, उसने अपने आप को परमहेश्वर की उपाधि से विभूषित किया। उच्च कुल के अतिरिक्त शैव मत को यहाँ रहने वाली अन्य जातियों ने अपनाया। सुप्रसिद्ध विद्वान एम० एल० निगम नेशैव धर्म को बुन्देलखण्ड में स्वीकार किया हैं उसके अनुसार - Shiva, one of the foremast deities of the Hindu Trinty, was equally popular in Bundelkhand. The important centres of Saivism, like Bhita, Kasam and Kalanjara are know through the epigraphic and scuptural exidence which suggest that the Saivism was flourishing from and second century B.C.. The panchmukha linga from Bhita was installed in the and second century B.C. by Nagarie son of vasathi, as per the inscription on the shift.[134]

बुन्देलखण्ड में शैव मत सर्वाधिक प्रचारित प्रसारित धर्म था। शिवरात्रि, मकर संक्रान्ति, बसन्त पंचमी आदि अवसरों पर शिव उपासना विशेष रूप से होती है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार के०के० शाह ने यह बात स्वीकार की हैं कि बुन्देलखण्ड के नरेशों ने केवल वैष्णव धर्म को ही प्रोत्साहित नही किया, अपितु शैव धर्म को भी समुचित समादर प्रदान किया।[135]

बुन्देलखण्ड में शिव उपासना लिंग मूर्ति, अर्ध नारीश्वर, उमा महेश्वर तथा बामदेव के रूप में की जाती थी। यह उपासना सामान्य नागरिकों के अतिरिक्त तांत्रिको और अघोरपंथियों के द्वारा भी की जाती थी ।

शक्ति उपासना :- शैव और वैष्णव मतों के अतिरिक्त बुन्देलखण्ड में शक्ति उपासना का प्रभाव भी व्यापक रूप से था। अन्य देशों में मातृ शक्ति की पूजा होती थी, उसी से प्रभावित होकर शक्ति उपासना इस क्षेत्र में आयी। वेदों मे भी नारी को प्रेरणाम्रोत माना जाता हैं, शक्ति उपासकों का मानना है कि शक्ति उपासना वैदिक धर्म से भी प्राचीन है। चन्देल युग में शक्ति की उपासना तांत्रिकों द्वारा सिध्दी प्राप्ति के लिये की जाती थी। सुप्रसिद्ध विद्वान केशवचन्द्र मिश्र का मानना है कि वैदिक विधियों जैसे तर्पण, सुर्योपासन और हवन क्रमशः महत्वहीन होती गयी और उनकी जगह पौराणिक देवताओं जैसे शिव, विष्णु, देवी, गणेश और सूर्य तक की उपासना तथा पूजा हिन्दू धार्मिक जीवन की प्रमुख क्रिया बनी। उस युग में प्रत्येक हिन्दू गृह में किसी न किसी देव या देवी की लघु मूर्ति प्रतिष्ठित पायी जाती थी।[136]

बुन्देलखण्ड में तीन प्रकार की शक्तियों की उपासना होती है, पहली शक्ति ब्राह्मणी दूसरी गौरी या काली तथा तीसरी शक्ति लक्ष्मी या अन्नपूर्णा है। बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों मे सुप्रसिद्ध शक्ति पीठ और देवी स्थल उपलब्ध होते हैं। मुख्य रूप से विन्ध्यवासिनी देवी,शारदा देवी, महेश्वरी देवी, रक्त दंतिका देवी, वीरगढ़ की देवी तथा चन्द्रिका महेश्वरी देवी अत्यन्त पूज्य देवियाँ थी, इसके अतिरिक्त चन्देलों की मनिया देवी भी अत्यन्त पूज्य थीं। नवरात्रि के अवसर पर देवी पूजन का विधान प्रचलित था। सुप्रसिद्ध विद्वान श्री एम० एल० निगम ने यह ने स्वीकार किया है कि बुन्देलखण्ड में शक्ति के विविध स्वरूप की उपासना होती थी। मुख्य रूप से शक्ति को देवी माता के रूप में सम्बोधित किया जाता था और विष्णु की पत्नी लक्ष्मी की उपासना सर्वत्र होती थी। इसके अतिरिक्त विविध योगिनी देवीयों की उपासना यहाँ होती थी, देवीयों को शक्ति का आधार तथा कल्याणकारी माता के रूप में माना जाता था, शक्ति उपासना के सन्दर्भ मे उनका विचार महत्त्वपूर्ण है - The cult of shakti received impetus during the Gupta age. The description of chandi in seven handered berses of the markandeya purana provided life and blood to the terrific aspects of the goddess. A terracatta plaque, showing in goddess, mahisasuramardini.[137]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नव देवियों की उपासना तथा कुछ अन्य देवियों जिसमें, गंगा, जमुना, सरस्वती, भी शामिल थी, उनकी उपासना बुन्देलखण्ड में होती थी। सुप्रसिद्ध

इतिहासकार के०के० शाह ने भी बुन्देलखण्ड में शक्ति उपासना के अस्तित्व को स्वीकार किया है।[138]

बुन्देलखण्ड में शक्ति उपासना के अनेक साक्ष्य उपलब्ध होते है। तद्युगीन साहित्यिक ग्रंथों में देवी वन्दना के अनेकश्लोक और छन्द उपलब्ध होते हैं।

सूर्य उपासना :- बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में सूर्य की उपासना अति प्राचीन काल से हो रही है। अनेक स्थलों में सूर्य मन्दिर उपलब्ध होते हैं, इसके अतिरिक्त अनेक ताम्रपत्रों में भी सूर्य की वन्दना उपलब्ध होती है। महाराजा हस्तिन के ताम्रपत्र में सूर्य वन्दना लिखी हुयी हैं।

According to M.L.Nigam-The worship of surya (songod) has been popular throughout the bundelkhand region since remate antiquity.[139]

बुन्देलखण्ड में सूर्य की उपासना छठवी शताब्दी से हो रही है। सूर्य को अन्धकार दूर करने वाला देवता माना जाता है। यह यम का पिता और आठों याम का निर्धारक है। समय और काल का निर्धारण भी सूर्य से ही होता है। गुप्तकालीन मन्दिरों में सूर्य की मूर्तियाँ विविध रूपों में उपलब्ध होती है। सूर्य की उपासना इस क्षेत्र में वैदिक धर्म के प्रभाव के कारण हुयी थी ।

के० के०शाह के अनुसार -

Of the sun cult we donot possess any positive evidence assignable to this period . But the fact that the sauras did constitue a part of population could be postulated since evidence of sunworship from earlier period we have cited and already discussed. Deserving of mention here however, is a curious fact.[140]

सूर्य उपासना में विशेष योगी, साधु-सन्यासी प्रातः काल स्नान करके सूर्य को अर्ध या जलांजलि देते थे और गायत्री मंत्र का पाठ करते थे ।

हिन्दू धर्म का प्रक्रियात्मक स्वरूप :- बुन्देलखण्ड में धर्म का दर्शन व्यक्ति की विविध क्रियाओं से झलकता है। यहाँ की धार्मिक क्रियाएं निम्न प्रकार की हैं -

1. प्रकृति पूजा :- सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में सम्पूर्ण प्रकृति और उसके विविध स्वरूप की उपासना व्यवहारिक स्वरूप में दिखलाई देती हैं। यहाँ भूमि, अग्नि, वायु, आकाश, जल आदि पंच महाभूतों की उपासना होती है। विविध अवसरों पर सूर्य, चन्द्र, शनि, गुरू, और शुक्र आदि नक्षत्रों की भी उपासना होती है। विभिन्न प्रकार के पर्वत, जल स्रोत, सरिता एवं वृक्ष की भी पूजा यहाँ होती है। इसके अतिरिक्त अनेक तिथियाँ और दिन भी पूज्य माने जाते है। मुख्य रूप से एकादशी, प्रदोष, पूर्णमासी तथा अमावस्या अत्यन्त पवित्र दिन माने जाते है। इस प्रकार हम देखते है कि सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में प्रकृति की उपासना विविध रूपों में की जाती है ।

2. देव उपासना एवं मूर्तिपूजा :- सम्पूर्ण सृष्टि का रचयिता परमपिता परमात्मा है। यह सिद्धान्त वेदों उपनिषदों तथा पुराणों में उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त यहाँ अनेक देवी देवताओं की परिकल्पना भी की गयी है। धर्म ग्रंथों के अनुसार यहाँ 35 करोड़ देवताओं की परिकल्पना की गयी

है, किन्तु इनमें से बुन्देलखण्ड क्षेत्र में कुछ देवता ही पूज्य माने गये हैं। मुख्य रूप से यहाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा इनके विविध अवतारों की पूजा होती है। इसके अतिरिक्त देवियों के नव स्वरूप तथा अनेक उपदेवियाँ यहाँ मूर्ति रूप में देवालयों में स्थापित हैं। विविध तीज त्योहारों में अनेक स्थलों पर धार्मिक यज्ञ, उत्सव और मेलों का आयोजन तथा विविध ढंग से मूर्तियों की पूजा की जाती हैं ।

3. पशु उपासना :- बुन्देलखण्ड के अनेक देवस्थलों में विविध प्रकार के पशुपक्षियों की मूर्तियाँ उपलब्ध होती है। मुख्य रूप से बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में शिववाहन के रूप में नंदीश्वर की पूजा होती है, इसके अतिरिक्त विविध अवसरों पर नागों की पूजा होती है। लक्ष्मी का वाहन उलूक, गणेश का वाहन मूसक तथाशक्ति का वाहन सिंह भी पूज्य पशुओं में माने जाते थे। अनेक स्थलों में मृगों की मूर्तियाँ उपलब्ध हुयी है, जिससे यह सिद्ध होता है कि मृगशावक भी पूज्य थे। इसके अतिरिक्त वाराह, कामधेनु और मत्स्य दर्शन को भी धर्म से जोड़ा जाता था। वैष्णव धर्मावलम्बी समस्त जीव जन्तुओं को श्रृद्धा से देखते थे और किसी प्रकार से उनकी हिंसा करना उचित नही समझते थे ।

4. धार्मिक पहचान :- बुन्देलखण्ड के अन्दर किसी भी धार्मिक व्यक्ति की पहचान करने के लिये कुछ मान्यतायें थी, जिनका अनुसरण यहाँ का व्यक्ति करता था।

1. धर्म चिन्ह धारण करना :- यहाँ के हिन्दू धर्मावलम्बी जो वैष्णव, शैव तथा शक्तिमत का अनुसरण करते थे, वे विविध प्रकार के धार्मिक चिन्ह अपने मस्तिष्क और भुजाओं में धारण करते थे तथा कंठ में तुलसी की माला, रूद्राक्ष माला तथा अन्य मालायें धारण करते थे, जिनसे इनकी धार्मिक पहचान हो जाती थी ।

2. धर्म क्रिया :- यहाँ के निवासी धार्मिक क्रियाओं से भी अपनी पहचान बनाते थे, मुख्य रूप से देव उपासना तथा यज्ञ, तप, दान, आदि की विधियों से धर्म और उसके अनुसरणकर्ताओं की पहचान हो जाती थी ।

3. सदगृंथों का पाठ :- इस क्षेत्र का प्रत्येक धर्मावलम्बी यदि शिक्षित होता था तो देव दर्शन के पश्चात् स्वतः धर्मगृंथों का पाठ करता था, मन्त्रोच्चारण करता था, यदि वह पढ़ा लिखा नही होता था तो वह अन्य स्थलों में होने वाले धार्मिक महोत्सव में श्रृद्धा पूर्वक भाग लेता था तथा धार्मिक प्रवचनों का श्रवण करता था ।

4. तीर्थाटन :- यहाँ के धार्मिक व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार पवित्र धार्मिक स्थलों सरोवरों एवं सरिताओं के दर्शन के लिये जाया करते थे। तीर्थ यात्रा में उनका उददे्श्य जहाँ भारत भ्रमण का होता था, वहाँ वे विविध संस्कृतियों के व्यक्तिओं से सम्बन्ध स्थापित करके पुन्य लाभ करते थे। देवऋण, गुरूऋण तथा पितृऋण से उऋण होने के लिये तीर्थ स्थलों में दान-पुण्य भी करते थे। इन सभी कृत्यों से यहाँ के व्यक्तियों की धार्मिक पहचान सुनिश्चित होती थी।

इस्लाम धर्म का प्रक्रियात्मक स्वरूप :- उच्च वर्ग के मुसलमानों ने बुन्देलखण्ड में जिस इस्लाम धर्म का अनुसरण किया, वह इस्लाम धर्म के कटट्र सर्मथकों के द्वारा बलपूवर्क फैलाया गया

धर्म था। जो महमूद गजनवी के आक्रमण के साथ बुन्देलखण्ड में आया था। इनका धर्म राजनीतिक सिद्धि और कट्ट्रता से परिपूर्ण था। चन्देल शासकों ने इस्लाम धर्म के प्रचार प्रसार में रोक लगाने का प्रयत्न किया। मुख्य रूप से जब कुतुबुददीन ऐबक ने बुन्देलखण्ड के अनेक स्थलों पर आक्रमण किया, उस समय उसने मन्दिर तोड़े और अनेक लोगों को मुसलमान बनाया। उसी समय से मुसलमान बुन्देलखण्ड में अस्तित्व में आये ।

कुलीन वर्ग के मुसलमानों में बुन्देलखण्ड में रहने वाले वे मुसलमान थे जो यहाँ की शासन सत्ता से सम्बन्धित थे, उन्हें यहाँ दिल्ली सल्तनत के माध्यम से सूबेदार, मनसबदार, जागीरदार, जमीदार एवं अन्य महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया गया था। व्यवहारिक जीवन में इस्लाम धर्म की उस परम्परा की निर्वाह करते थे, जो तुर्को और मुगलों जैसी था। वे अपने जीवन मे कुऑनशरीफ में वर्णित धर्म उपदेशों का सच्चाई से अनुसरण करते थे। व्यवहारिक जीवन में से लोग हदीस ग्रंथों के निर्देशों का पालन करते थे। धर्म अनुसरण करने में ये लोग निम्न नियमों का पालन करते थे -

1. खुदा संसार का स्वामी है, वह इस दुनिया का बनाने वाला है, और वही इसका विनाश करने वाला है। उससे बड़ा तथा उसकी बराबरी का इस संसार में कोई दूसरा नही है। वह अजर अमर है, अदृश्य है तथा वह कभी अवतार धारण नही करता। वह पृथ्वी के हर कण में निवास करता है तथा उसका तख्त सातवें आसमान के ऊपर है, जहाँ से वह पूरे संसार के लोगों को देखता है, उसे उसकी निशानियों से पहचाना जा सकता है।
2. कुऑनशरीफ खुदा की किताब है, जिसे फरिश्तों ने रमजान के महीने में हजरत मोहम्मद साहब के दिमाग में उतारी थी। इससे पवित्र ग्रंथ संसार में दूसरा नहीं है, इसलिये कुऑन शरीफ का पठन पाठन हर मुसलमान के लिये जरूरी है।
3. अनेक प्रकार के हदीस ग्रंथ इस्लाम धर्म के स्वरूप और सामाजिक स्वरूप का विश्लेषण करते है। इनमें सामाजिक एवं धार्मिक संस्कार के सन्दर्भ में बहुमूल्य निर्देश मुसलमानों को दिये गये है, जिनका अनुपालन करना मुसलमानों के लिये जरूरी हैं ।
4. कुऑनशरीफ के निर्देशानुसार पाँच वक्त की नवाज पढ़ना हर मुसलमान का जरूरी कर्तव्य हैं। नवाजें घर में भी अदा की जा सकती है किन्तु जुमें की नवाज मस्जिद में ही अदा करने का निर्देश है। औरतों को मस्जिद में जाने की अनुमति नही है ।
5. रमजान के महीने मे रोजे रखना और उसके बाद चाँद देखकर ईद मनाना हर मुसलमान का कर्तव्य हैं। बकरी ईद के त्योहार के समय बकरे तथा अन्य पशु की कुर्बानी देना हर मुसलमान का कर्तव्य हैं ।
6. धार्मिक तीज त्योहारों के अवसर पर जकात (धर्मदान) देना हर मुसलमान का कर्तव्य है। उसे यह भी हिदायत है कि वह बेवा औरतों, यतीम लड़के लड़कियों का पालन पोषण यथा शक्ति दान देकर करें ।

7. सामाजिक संस्कारों में वह बढ़ चढ़ कर भाग ले। मुस्लिम तीज त्योहारों मे उत्साह के साथ दिलचस्पी ले। ईद, बकरीद, बाराबफात, शुभरात, आदि त्योहारों को श्रृद्धा और भक्ति के साथ मनावें ।
8. यदि कोई मुसलमान धनवान है, तो वह हज करने जरूर जाये। इसके अलावा पीर पैगम्बरों की मजारों और दरगाहों पर चादर चढ़ाये, शक्ति के अनुसार फकीरों का दान दे और धर्म प्रचार प्रसार के लिये मस्जिदों का निर्माण करायें।
9. मुसलमानों के मध्य भाई चारा और एकता बनाये रखे। यदि कोई मुसलमान किसी तरह की मुसीबत में फंस जाये तो उसकी मदद करें तथा अन्य धर्मावलम्बियों को अपनी ओर आर्कर्षित करके उन्हें मुसलमान धर्म का अनुसरणकर्ता बनायें।
10. उच्च वर्ग के मुसलमानों का यह भी कर्तब्य है कि वे इस्लाम धर्म की रक्षा के लिये जेहाद करे, जेहाद करने वालों को प्रोत्साहित करें, तन-मन-धन से उनकी मदद करें तथा स्वतः धर्म के नाम पर कुर्बान हो जायें ।

मुसलमानों की धार्मिक पहचान :- बुन्देलखण्ड में रहने वाले मुसलमानों की पहचान निम्न प्रकार से की जा सकती है -

1. वेश भूषा द्वारा :- यहाँ के मुसलमान यहाँ के मूल निवासियों से तथा अन्य धर्मावलम्बियों से अलग वेश भूषा धारण करते है। ये लोग कुर्ता, पैजामा, शेरवानी तथा पठानी पहनते है तथा दाढ़ी रखते है। सिर में तुर्की टोपी तथा दो पलिया टोपी धारण करते है, कुछ लोग पठान शैली का साफा भी सिर पर बाधंते है। इनकी औरते सलवार शूट, गरारा, चोली आदि पहनती है तथा जब घर से बाहर निकलती है तो पूरे शरीर को ढकने वाला बुर्का पहनती है ।

2. धर्माचरण द्वारा :- मुसलमानों की पहचान बुन्देलखण्ड में धर्माचरण के माध्यम से भी होती है। जो व्यक्ति मस्जिद मे नवाज पढ़े, कुर्आनशरीफ का पाठ करें, दरगाहों और मजारों पर चादर चढ़ायें मुसलमानी तीज त्योहारों मे भाग ले, उर्स़, नादिया कलाम, कब्बाली, धार्मिक तकरीरों और मिलादशरीफ मे दिलचस्पी ले, उसे मुसलमान माना जा सकता है।

3. भाषा एवं रहन सहन के स्तर द्वारा :- इस्लाम धर्म का अभ्युदय अरब में हुआ इसलिये उस धर्म की मूल भाषा अरबी हुयी तथा उसके अधिकांश ग्रंथ अरबी, फारसी में लिखे गये। जब मुसलमानों का आगमन भारतवर्ष में हुआ तो उन्होनें एक अलग भाषा को जन्म दिया। पहले यह भाषा लश्करी भाषा कहलाती थी, बाद में यह भाषा उर्दू के नाम से विख्यात हुयी। इस भाषा की लिपि अरबी, फारसी जैसी है तथा बोलने की शैली हिन्दी भाषा जैसी है। इसमें उर्दू और फारसी शब्दों का बाहुल्य है। इसके अतिरिक्त मुसलमानों का रहन सहन हिन्दू शैली से कुछ भिन्न है। इनके यहाँ औरतों को पर्दे में रखने का रिवाज है। वे मर्दो के सामने बिना पर्दे के नही आती, इनके यहाँ बैठकं में एक तख्त होता है, उसमें कालीन बिछी होती है तथा उसके नजदीक एक हुक्का रखा होता है, तख्त के

ऊपर पान दान तथा नीचे पीकदान रखा होता है। इनके यहाँ भोजन में माँस, मछली तथा अंडों का प्रयोग सर्वाधिक होता है। तामचीनी, चीनी पत्थर और काँच के बर्तनों का प्रयोग सर्वाधिक होता है। खाना बनाने में एल्युमिनियम के बर्तन प्रयोग मे लाये जाते है। व्यवहारिक दृष्टि से छूआ छुत और झूठे गिलास में पानी पीने में कोई परहेज और पाबंदी नही मानी जाती। इनकी जवान मीठी और अतिथि सत्कार जोरदार होता है। इनके घरों में मुर्गी, बकरे आदि जानवर पले रहते है। उच्च वर्ग के मुसलमानों के यहाँ नौकरानियों को लौड़ीया और नौकर को हादिम और खितमतगार कहते है। इनका हर आदमी आदाब, आदाबर्ज, सलाम, आदि शब्दों से एक दूसरे का अभिवादन करते है। बडें बुर्जुगों के लिये हुजूर, हजरत आदि शब्दों का प्रयोग होता है।

बुन्देलखण्ड में निवास करने वाली विदेशी जातियाँ एवं उनका धर्म

बुन्देलखण्ड के इतिहास पर विहंगम दृष्टि डाली जाये, तो अनेक विदेशी जातियाँ यहाँ आती रहीं और यहाँ की मूल निवासी बनी। बुन्देलखण्ड के निवासियों के सन्दर्भ में दीवान प्रतिपाल सिंह का यह दृष्टिकोण एक अनुमानित ऐतिहासिक साक्ष्य माना जा सकता है, बुन्देलखण्ड में सभ्य आर्य कुलों के सिवाय प्राचीन अनार्य कुलों की कितनी ही असभ्य जंगली नंगी-धड़गी जातियाँ कौंदर, सौर, आदि कई स्थलों पर इस समय भी मौजूद है, जो इस भू-भाग के सम्बन्ध में आर्यो से पहले का स्पष्ट पता दे रही है। द्रविड़ कुल में माने जाने वाले दक्षिणी ब्राह्मण तथा गौंड़ अथवा कोयत्तुर भी यहाँ है। नाग भी नखर आदि में होना कहे जाते है।[141]

हम यहाँ आने वाली विदेशी जातियों का विश्लेषण इस प्रकार है :-

अनार्यो का आगमन :- इस परिक्षेत्र में अनार्यो का आगमन सर्वप्रथम हुआ। ये लोग आर्यो और द्रविणों से पहले आये थे। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार - बहुत पहले से यह भू भाग अनार्यो का मुख्य स्थल रहा है। आधुनिक इतिहासों मे वर्णन किये हुये आदिम मानवों के प्रस्तर अस्त्र यहाँ भी मिलते है।[142] प० गोरेलाल तिवारी ने अपने सुप्रसिद्ध गृंथ में यहाँ के मूल निवासियों के सन्दर्भ में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये है यमुना के नीचे सघन वन था और यहाँ उस समय उन लोगों के निवास स्थान थे जिन्हें वेदों में दस्यु, यातुधान और राक्षस कहा है। ये लोग आर्यो के समान सभ्य नही थे और इनका वर्ण भी आर्यो के समान गोरा न था।[143]

इस प्रकार हम देखते है कि जो अनार्यो यहाँ चिरकाल से रह रहे थे, वे भी इतिहासकारों के अनुसार किसी बाहरी स्थान से बुन्देलखण्ड से आये थे।

द्रविणों तथा अन्य विदेशी जातियों का आगमन :-

इतिहासकारों का यह मानना है कि इस परिक्षेत्र में अनार्यो के पश्चात् तिब्बती, वर्मी, कोलारियन जाति का आगमन हुआ। ये लोग लोहे का प्रयोग जानते थे, बुन्देलखण्ड के अनेक स्थलों

मे लोहा उपलब्ध होता था। इसी समय द्रविणों और नागों का आगमन भी यहाँ हुआ। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- यहाँ कई जगहों पर चटट्रानों में रक्त वर्ण की चित्रकारियाँ है, वे आर्यो से पहले की है । कदाचित ये तिब्बती, वर्मी, कोल अथवा द्रविडों की है। कुछ स्थानों पर पीतल के शस्त्र भी मिले है। आधुनिक इतिहास में लिखा है कि द्रविड़ पीतल के शस्त्रों का उपयोग करते थे, उनके किले थे। यहाँ के प्राचीन बड़े-बड़े पहाडी किले मनियागढ़, कालिंजर, मड़फा, मैहर आदि कदाचित् इन्ही कोल द्रविडों के है।[144]

इस प्रकार हम देखते है कि अनार्यो के पश्चात् यहाँ द्रविडों का आगमन हुआ। जिन देवियों की बुन्देलखण्ड में पूजा की जाती है, वे सभी द्रविड महिलायें थीं। इनके युद्ध अनार्यो से हुये थे, ये असुरों और अनार्यो को शत्रु समझते थे। देवियों के अनेक सुप्रसिद्ध स्थल बुन्देलखण्ड में है।

आर्यो का आगमन :- आधुनिक इतिहासकारों का यह मानना है कि बुन्देलखण्ड में आर्यो का आगमन द्रविणों के उपरान्त हुआ। कालान्तर में आर्यो ने द्रविणों से जातीय सम्बन्ध स्थापित किये और उनसे विवाह किये। लगभग 6 हजार ई0पू0 आर्य बुन्देलखण्ड में आये। भगवान राम के समय में आर्यो का आगमन बुन्देलखण्ड में हो चुका था। पं0 गोरेलाल तिवारी के अनुसार- कई ऋषि यमुना के दक्षिण में आकर रहे थे। ये ऋषि केवल तप करने वाले ब्राह्मण ही नहीं, बडे योद्धा भी थे। जो, राक्षसों से युद्ध करके, उनके स्थान में अपने आश्रम बनाकर रहने लगे थे। श्री रामचन्द्र जी को कई ऐसे आश्रम मिले। अत्रि, सुतीक्ष्ण और शरभंग ऋषियों के आश्रम यमुना के दक्षिण में ही थे। इन आश्रमों का ठीक स्थान कौन था यह बताना बड़ा कठिन है, परन्तु अत्रि का आश्रम अवश्य ही बुन्देलखण्ड में रहा होगा।[145]

सर सुन्दरलाल के अनुसार जब आर्यो का आगमन इस परिक्षेत्र में ईसा से 2500 वर्ष पूर्व मध्य एशिया से यहाँ हुआ। उस समय भी यहाँ एक सभ्यता थी। सुन्दर लाल के शब्दों में- आर्यो के आने से पहले हिन्दुस्तान बिल्कुल ही असभ्य नहीं था। प्राचीन संस्कृत साहित्य तक में हमें भारत के उन आदिमवासियों की सभ्यता की उच्चता के काफी सबूत मिलते है और इसमें भी सन्देह नही है कि कई पहलुओं से उनकी सभ्यता नये आने वाले आर्यो की सभ्यता से उच्चतर थी।[146] भारतवर्ष में आर्यो का आगमन अपने लिये बसने योग्य स्थान प्राप्ति के लिये हुआ। ये बुन्देलखण्ड में भी इसी उददे्श्य से आये।

अन्य विदेशी जातियों का आगमन :- आर्यो के पश्चात् भी इस परिक्षेत्र में अनेक विदेशी जातियों का आगमन होता रहा है। इन विदेशी जातियों में बैक्ट्रियन, यूनानी, इण्डों-ससानियन, हूण, कुषाण, शक आदि विदेशी जातियाँ 175 ई0पू0 से लेकर ईसा की 5वीं और 6वीं शताब्दी तक बराबर आती रही, इसका पता यहाँ पर उपलब्ध विदेशी मुद्राओ से चलता है। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- सन 1877 ई0 में यहाँ बहुत से बैक्ट्रियन सिक्के मिले थे। ये मिनैडर (155बी0सी0) अपोलोडोट्स, ऐन्टीमेकस, निकेफोरस, और यूक्रेटाइडस (175 बी0सी0) के राज्यकालों के है। इससे

यह सिद्ध होता है कि बैक्ट्रियन का अस्तित्व बुन्देलखण्ड में था। इसी प्रकार सन् 1905 में जबलपुर के सन्निकट मुंडवारा तहसील में इण्डों-ससानियन सिक्कों का एक संग्रह मिला था। ये सिक्के हूणों के माध्यम से बुन्देलखण्ड आये थे। हूण, शक, कुषाण, का आगमन बुन्देलखण्ड में हुआ। जिन्होनें कालान्तर में यहाँ की धर्म संस्कृति को अपना लिया। डा० कन्हैयालाल अग्रवाल के अनुसार- नृतत्वीय दृष्टि से इस क्षेत्र की जनसंख्या में आर्यो, द्रविणों, शकों, कुषाणों और हूणों का मिश्रण है। अतः रक्तशुद्धता के बारे में कुछ भी निश्चतपूर्वक कहना असम्भव है।[147] हूण जाति के लोग मध्य एशिया से भारत के अनेक क्षेत्रों को जीतते हुये बुद्ध गुप्त के शासन काल में बुन्देलखण्ड में आ गये थे तथा उनका युद्ध गुप्त नरेशों से हुआ तथा उन्होनें बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में अपना अधिकार कर लिया ग्वालियर तथा एरण में इनके अनेक अभिलेख उपलब्ध होते है।[148]

इस प्रकार हम देखते है कि तुर्को के आगमन से पूर्व यहाँ अनेक विदेशी जातियाँ आ चुकी थी और अपना प्रभाव छोड़ चुकी थी।

तुर्को का आगमन :- सातवीं शताब्दी के पश्चात् ईरानी एवं तुर्की के मुसलमानों ने मध्य एशिया में रहने वाले नागरिकों पर प्रभाव डालना शुरू किया। यहाँ के शासकों ने गुलामों और दासों को पकड़ने के लिये अपने आक्रमण इन क्षेत्रों में तेज किये तथा एक दूसरा उददे्श्य इस्लाम का प्रचार करना था। जो व्यक्ति इस्लाम के लिये युद्ध करता था, वह गाजी शब्द से सम्बोधित किया जाता था। सुप्रसिद्ध इतिहासकार सतीशचन्द्र के अनुसार - जिस गाजी भावना का प्रथम प्रयोग गैर इस्लामी तुर्को के विरूद्ध लड़ने में हुआ, उसका प्रयोग आगे चलकर भारत में गैर मुसलमानों के विरूद्ध हुआ। इस आन्दोलन के साथ सर्वाधिक घनिष्ठ रूप से जुडें व्यक्तियों में पहला व्यक्ति महमूद गजनी था, जिसके कारनामें जग जाहिर है।[149] महमूद गजनवी के समय में जो मुसलमान भारतवर्ष आये थे उनमें से बहुत से यही बस गये। सर सुन्दरलाल के अनुसार- गजनी केशासक महमूद ने यहाँ आकर कुछ नगरों के बरबाद किया, कुछ हिन्दू नरेशों के साथ सुलह करके उन्हें सुरक्षा प्रदान की, कुछ मन्दिरों को लूटा।[150]

तुर्को का आक्रमण भारत और बुन्देलखण्ड में निम्नलिखित उददे्श्य के लिए हुआ -

1. भारतवर्ष में अपने साम्राज्य को स्थापित करना।
2. भारतवर्ष की आर्थिक समृद्धि से प्रलोभित होकर यहाँ की धन सम्पत्ति को लूटना।
3. यहाँ के लोगों को बलात् इस्लाम धर्मावलम्बी बनाना। अन्य धर्मावलम्बियों के धार्मिक स्थलों को नष्ट करना।
4. अपने लिये व्यक्तियों को यहाँ से गुलाम बनाकर ले जाना।
5. जेहाद करके गाजी की उपाधि धारण करना।

तुर्क अपने इस उददे्श्य में पर्याप्त सफल हुये तथा उनके धर्म और संस्कृति का प्रभाव यहाँ व्यापक रूप से पड़ा।

मुगलों का आगमन :- डा० आशीर्वादी लाल के अनुसार - हिन्दुस्तान में तुर्क अफगानी शासक वर्ग पतित हो चुका था और इस कारण उसकी सत्ता खतरे मे थी। पानीपत में बाबर की विजय के फलस्वरूप तुर्क अफगानशासक वर्ग में नया रक्त और उत्साह संचारित हुआ। इस प्रकार मुगल साम्राज्य की स्थापना हुयी और उसके द्वारा देश को श्रेष्ठ, सुयोग्य एवं सफल शासक प्राप्त हुये जिनके अधिकार में देश को एक यौगिक संस्कृति के विकास के नवीन प्रयोग प्रारम्भ करने का अवसर मिला।[151]

सुप्रसिद्ध विद्धान एस०के० श्रीवास्तव ने तुजुब-ए-बाबरी का उदाहरण देते हुये उस समय का विवरण प्रस्तुत किया है, जब बाबर ने मुगल साम्राज्य की स्थापना के लिये यहाँ सन् 1526 ई० में आक्रमण किया था, तदानुसार बाबर लिखता है कि जब उसने हिन्दुस्तान पर विजय प्राप्त की, उस समय सारा हिन्दुस्तान किसी एकशासक के आधीन नही था। अपितु यहाँ अनेक छोटे-छोटे राजा राज्य करते थे तथा उनमें से प्रत्येक अपने को सम्राट समझता था। ममलूकों के समय से तो दिल्ली हिन्दुस्तान की राजधानी रही थी, किन्तु फिरोज तुगलक की मृत्यु के पश्चात् सल्तनत में पतन और बिखराव आ गया।[152] सर सुन्दर लाल भी यह बात स्वीकार करते हैं और उनके अनुसार पानीपत के मैदान में बाबर ने इब्राहिम लोधी को शिकस्त दी और भारत में मुगल साम्रज्य की नींव रखी।[153]

इस प्रकार हम देखते है कि मुगल भी एक विदेशी शक्ति के रूप में भारतवर्ष में आये और उन्होनें बुन्देलखण्ड में व्यापक प्रभाव डाला।

मुगलों का भारतवर्ष व बुन्देलखण्ड में आने का उददे्श्य लगभग वही था, जो तुर्को का था। उनके यहाँ आने के निम्न उददे्श्य थे -

1. मुगलों की शासन सत्ता स्थापित करना ।
2. सम्पूर्ण भारतवर्ष में इस्लाम धर्म का प्रचार-प्रसार बिना कटुता उत्पन्न किये करना।
3. सम्पूर्ण भारतवर्ष में तुर्क और मुगल संस्कृति की जडें मजबूत करना तथा इस संस्कृति से यहाँ के मूल निवासियों को प्रभावित करना ।
4. मुगली वास्तुशिल्प, कला, साहित्य को नया स्वरूप प्रदान करना।
5. हिन्दु और मुसलमानों के बीच सामंजस्य स्थापित करके नफरत और कटुता को समाप्त करना।
6. सम्पूर्ण राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधना।

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिये सर्वाधिक प्रयास अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने किये किन्तु औरंगजेब के शासनकाल में इन प्रयासों का धक्का लगा। हिन्दू और मुसलमानो में जिस सद्भाव की भावना का उदय हुआ था, वह धीरे-धीरे तिरोहित होने लगी।

ईसाई धर्म का प्रारब्ध :- ईसाई धर्म इस्लाम धर्म से लगभग 600 वर्ष पुराना है। इस धर्म के प्रर्वतक ईसा मसीह थे। इनका धर्म पश्चिम एशिया और यूरोपीय देशों में विकसित हुआ तथा इनके धर्मग्रंथ का नाम एन्जिल अथवा बाइबिल है। ईसाई धर्म के अनुसार- ईसा मसीह दया के सागर थे,

सत्य, अहिंसा, प्रेम और सहनशीलता पर विश्वास करते थे। उन्हें यहूदियों ने क्रास पर चढ़ाकर मृत्युदण्ड दिया था। बड़ा दिन, गुड फ्राइडे और ईस्टर इनके प्रमुख त्योहार है। ये लोग प्रत्येक रविवार को गिरजाघर में जाकर होने वाले धार्मिक कार्यक्रमों में भाग लेते है। बाइबिल का पाठ करते है और धर्मोपदेश सुनते है। ये लोग कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट दो भागों में विभाजित है। इनका मुख्य तीर्थ स्थल इस्रराइल में येरूशलम है। यहाँ वह स्थल भी है, जहाँ ईसामसीह को क्रास पर चढ़ाया गया था। इस धर्म के लोग पुनर्जन्म पर विश्वास नही करते और ईश्वर को निराकार मानते है किन्तु अन्य धर्मो की भांति स्वर्ग और नरक की विचारधारा पर ये लोग भी विश्वास करते है।

<u>अंग्रेजों का भारत में आगमन</u> :- 14 वीं शताब्दी तक यूरोप के निवासियों को भारतवर्ष पहुँचने का मार्ग ज्ञात नही था। सन् 1498 में कोलम्बस ने भारत वर्ष को खोजने का प्रयत्न किया, किन्तु वह भारत की जगह अमेरिका पहुँच गया। 22 मई सन् 1498 को एक दूसरे नाविक बास्कोडिगामा ने भारत वर्ष की खोज की तथा वह मालाबार तट पर कालीकट के सन्निकट ठहरा। इस समय कालीकट में हिन्दू नरेश था, जिसे सामुरी कहते थे। इस युग में भारतवर्ष अनेक छोटी बड़ी रियासतों में विभाजित था, जो एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नही रखते थे। सर सुन्दरलाल के अनुसार- पुराना हिन्दू साम्राज्य बहुत समय पहले टुकडे-टुकडे हो चुका था और दिल्ली का मुगल साम्राज्य अभी तक कायम न हुआ था। मालूम होता है, इस बात का विचार, कि भारत एक देश है, उस समय किसी के दिल में मौजूद न था।'[154]

भारतवर्ष में ईसाईयों का आगमन 16वींशताब्दी में प्रारम्भ हुआ, पहले ये लोग केवल समुद्री लुटेरे थे, जो बाहर जाने वाले जहाजों को लूट लेते थे। सन् 1578 ई में इंगलिस्तान के मशहूर नाविक, सर फ्रैन्सिस डेकू को भारत से लिस्बन जाने वाले एक पुर्तगाली जहाज को लूटते समय कुछ नक्शे मिले, जिनसे अंग्रेजों को पहली बार भारत के उस समय के जलमार्ग का कुछ पता चला।[155] सन् 1600 में इग्लैण्ड की रानी एलिजाबेथ ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की। यह कम्पनी ईमानदार व्यक्तियों की कम्पनी नहीं थी, इस सन्दर्भ में रानी ऐलिजाबेथ का यह फरमान महत्वपूर्ण है, इस कम्पनी को साफ-साफ इस तरह के साहसी लोगों की मंडली कहा गया है, जो लूट सट्टे आदि के लिये निकलते है और जो अपने धन कमाने के उपायों में सच-झूठ, ईमानदारी-बेईमानी अथवा न्याय- अन्याय का अधिक ख्याल नही रखते। कम्पनी के डाइरेक्टरों ने शुरू ही में इस बात का फैसला कर लिया था कि हम अपनी कम्पनी में किसी जिम्मेदारी की जगह पर किसी शरीफ आदमी को नियुक्त न करेगें''। " Not to employ any gentleman in any place of charge"[156]

भारत वर्ष में आने वाले पहले अंग्रेज कप्तान का नाम हॉकिन्स था। वह इंगलिस्तान के बादशाह जेम्स प्रथम की ओर से मुगल सम्राट जहाँगीर के नाम पत्र लाया था। उसने यह पत्र आगरा पहुँचकर जहाँगीर के सम्मुख प्रस्तुत किया, जहाँगीर ने हाकिन्स का स्वागत किया। 6 फरवरी सन 1613 को मुगल सम्राट जहाँगीर ने सूरत में एक कोठी बनाने और तिजारत करने की अनुमति अंग्रेजों को

दें दी। सन् 1616 में अंग्रेजो को कालीकट, मछलीपटट्न में कोठियाँ बनाने की अनुमति मिली। सन् 1624 में उन्हें यह अधिकार मिला, कि यदि कोई व्यक्ति अंग्रेजों के विरुद्ध अपराध करे तो वे उसे स्वतः दंड दे सकते है। सन् 1634 में उन्हें यह अनुमति मुगल बादशाह की ओर से मिली, कि बंगाल से पुर्तगालियों को निकाल दिया जाये और अंग्रेज ही यहाँ व्यापार करे। सन् 1640 में जब शाहजहाँ की पुत्री आग से जल गयी, तो उसकी चिकित्सा अंग्रेज डाक्टर ने की, इसलिये उन्हें कलकत्ता में कोठी बनाने की अनुमति मिल गयी। इस समय शाह शुजा बंगाल का सुबेदार था। सन् 1664 में जब शिवाजी का प्रभाव महाराष्ट्र में बढने लगा, उस समय अंग्रेजों ने मुगल सम्राट को यह वचन दिया था, कि वह शिवाजी से उनकी राज्य की रक्षा करेगें। इससे खुश होकर औरंगजेब ने बम्बई टापू के सन्निकट उन्हें कुछ रियासतें दे दी थी। जो व्यक्ति इनके व्यापार में बाधा डालता था, वे उन्हें किसी प्रकार से खत्म कर देते थे, धीरे-धीरे वे भारतवासियों के साथ ज्यादती करने लगे थे।

"As the mumber of adventurer increased the repulation of the English was not improved . Too many committed deeds of biolence and dishonesty .... Hindus and Musalmans considerd the english a set of cow eaters and fire drinkers, vile brutes, fiercer than the mastiffs which they brought with them, who would fight like Eblis, cheat their own fathers, and exchage with the same readiness a broadside of shot andthrusts of boarding pikes, or a bale of goods and a bag of rupees."[157]

सन् 1757 में प्लासी का युद्ध हुआ, जिससे यह सुनिश्चित हो गया कि अंग्रेज यहाँ राज्य स्थापित करेगें। उसका मूल कारण यह भी था कि इस समय मराठों की शक्ति बढ़ रही थी और मुगलों कीशक्ति कमजोर हो रही थी। अंग्रेज गर्वनर लार्ड क्लाइव ने सन् 1759 ई० में एक महत्वपूर्ण योजना का निर्माण किया। लार्ड क्लाइव के अनुसार-

I observe in some measure engaged the public attention, but mare may yet in time be done if the company will exert themseleves in the manner of the importance of their present possessions and future prospects deserves. I have represented to them in the strongest terms the expediency of sending out and keeping up constantly such a force as will enable them to embrace the first apportunity of further aggrandising themselves and I dare pronounce from a through knowledge of the country. Goverment and of the genius of the peoples acquired from two years application and experiences that such an apportunity will soon occur.[158]

धीरे धीरे ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपनी शक्ति का विस्तार किया तथा सन् 1804 के लगभग उसने अनेक देशी राजाओं से सन्धियाँ कर ली, जिसका आर्थिक लाभ अंग्रेजों को हुआ तथा सन् 1860 के लगभग मुगलशासन का सदैव के लिये अन्त हो गया। रानी बिक्टोरिया के घोषणा पत्र के अनुसार

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त हो गया, उसके स्थान पर इग्लैड की सरकार शासन चलाने लगी ।

बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों का आगमन :- जिस समय अंग्रेजों का आगमन बुन्देलखण्ड में हुआ, उस समय उत्तर में बुन्देलों और मराठों का राज्य तथा दक्षिण में गौणों का राज्य था। इस समय बुन्देलखण्ड के बुन्देले राजा आपस में झगड़ रहे थे, यहाँ की कमजोरियों से अंग्रेजों ने लाभ उठाया और अपनी शक्ति में वृद्धि की। एक अंग्रेज लेखक के अनुसार -

From factories to forts, from forts to fortifications, from fortifications to garrisons, from garrisons to armies and from armies to conquest, the gradations were natural and the result inevitable, where we could not find a danger, we were determind to find a quarrel.[159]

पं० गोरेलाल तिवारी के अनुसार - अँगरेज लोग किसी प्रकार काल्पी पर अपना अधिकार कर लेना चाहते थे और इसलिये उन्होनें अपनी सेना मध्य भारत होते हुयी भेजी थी। काल्पी एक बड़ा प्रधान नगर समझा जाता था।[160]

अंग्रेजों ने सर्वप्रथम वि०स० 1835 में कर्नल बेलेस्ली के नेतृत्व में कालपी में आक्रमण कर दिया, मराठों ने उसका मुकाबला दृढ़ता से किया और 4 माह तक अंग्रेजों को आगे नही बड़ने दिया। इसी समय अंग्रेज गर्वनर वारेन हेस्टिंग्ज और नागपुर के भोसले से गुप्त संधि हुयी, जिससे अंग्रेजों के आगे बढ़ने का रास्ता खुला। अंग्रेजों के सहायक सेनापति गॉडर्ड ने कालिंजर के किलेदार कायम जी चौबे को अपनी और मिला लिया, उसने अंग्रेजी सेना को यहाँ से निकालने की अनुमति प्रदान कर दी। गॉडर्ड के नेतृत्व में यह सेना मालधौन, खिमलासा, भिलसा और हुसंगाबाद होती हुयी दक्षिण की ओर प्रस्थान कर गयी। इसने मार्ग में वि०स० 1839 में सिंधियाँ को भी परास्थ किया। अंग्रेजों ने कायम जी चौबे बेनी हजूरी के विरुद्ध सहयोग प्रदान करने का वचन दिया था, किन्तु उन्होनें सहायता नही दी, जिसके परिणाम स्वरूप एक भीषण युद्ध बुन्देलखण्ड में हुआ। प० गोरेलाल के अनुसार कायमजी चौबे ने सरमेदसिंह का पक्ष लिया। बाँदा के राजा गुमान सिंह ने अपने प्रसिद्ध सेनापति नोने अर्जुनसिंह को सरमेद सिंह की सहायता करने को भेजा। इस युद्ध के लिये दोनों ओर से बड़ी तैयारियाँ हुयी। यह युद्ध इतना घोर हुआ, कि इसे कई विद्वानों ने बुन्देलखण्ड का महाभारत कहा है। पन्ना राज्य की सेना का नायक बेनी हजूरी था। बेनी हजूरी और नोने अर्जुन सिंह का युद्ध गठवेरा के निकट संवत् 1840 में हुआ। इस युद्ध में कई वीर मारे गये। कहा जाता है कि इस युद्ध के कारण सारा बुन्देलखण्ड वीरों से खाली हो गया।[161] राधाकृष्ण बुन्देली के अनुसार - अंग्रेजी सेना को कालपी से गुजरते समय बुन्देलखण्ड की परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान हो गया था। उन्होंने यह समझ लिया कि आपसी फूट का फायदा उठाकर बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी शासन स्थापित किया जा सकता है।[162]

कुछ समय उपरान्त अंग्रेजों ने यह योजना बनाई कि बुन्देलखण्ड में राज्य स्थापित किया जाये। लार्ड मिंटों और हेस्टिंग्स के शासनकाल में होल्कर और सिंधियां की संधियां अंग्रेजों से हुयी, इससे पूर्व एक संधि सन् 1806 में भी बुन्देलखण्ड के प्रशासक गोविन्दराव से हुयी थी।

उपरोक्त संधियों के कारण बुन्देलखण्ड के अनेक भू-भाग अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। सन् 1818 में जो भाग बाजीराव पेशवा के पास था, वह सब अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। जालौन के नानासाहब से संधि होने के पश्चात् अंग्रेजों का प्रभाव बुन्देलखण्ड पर और भी बढ़ गया। इसी प्रकार की संधियां झांसी नरेश रामचन्द्र राव से सन् 1817 में भी हुयी थी।

इसी प्रकार हम देखते है कि अंग्रेजों का प्रभाव सन् 1821 सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में हो गया था।

विदेशियों से प्रभावित बुन्देलखण्ड के धर्म :- विदेशी आक्रमणकारी मुसलमान जब स्थाई रूप से भारतवर्ष में बस गये, उस समय वे यहाँ की धर्म संस्कृति से प्रभावित हुये और उन्होनें अपनी धर्म संस्कृति से यहाँ के धर्मावलम्बियों को प्रभावित किया।

अपने धार्मिक विचारों के सबब से कोई मनुष्य किसी देश में विदेशी नहीं कहा जा सकता। धार्मिक आजादी हर सभ्य देश का एक आवश्यक गुण है। उदार तथा सभ्य भारत ने अपने पिछले हजारों साल के इतिहास में इस गुण को अन्य देशों की अपेक्षा खासी सुन्दरता के साथ निबाहा है।[163]

इस समय निम्नलिखित धर्म, जो इस्लामी संस्कृति से प्रभावित थे, बुन्देलखण्ड में अपना अस्तित्व बनाये हुये थे -

1. कबीर पंथ :- इस धर्म के प्रर्वतक संत कबीरदास थे, जिनका जन्म 1398 ई० में हुआ और मृत्यू 1518 ई० में हुयी। जनश्रुतियों के अनुसार- ये विधवा ब्राह्मणी के पुत्र थे, इनका पालन-पोषण नूरउद्दीन जुलाहे की पत्नी ने किया। बड़े होकर ये इस्लाम धर्म से पूरी तरह परिचित हो गये। इनके सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध विद्धान मोहसिन फानी का विचार है कि, कबीर ने बचपन में ही अनेक हिन्दू और मुसलमान विद्वानों और संतों से भेट की। बहुत दिनों तक वह जौनपुर, झूसी इत्यादि में शेख तकी और अन्य मुसलमान सूफियों और पीरों के साथ रहे, जिनका जिक्र कबीर साहब ने अपनी रमैनी में किया है। कबीरदास ने हिन्दुओं के वर्णाश्रम और जाति भेद का घोर विरोध किया है। वे कुर्आन व वेदशास्त्र की भ्रांति फैलाने वाले ग्रंथ मानते थे। उनका धर्म सूफियों के समान प्रेम, इश्क और भक्ति भावना को प्रोत्साहित करने वाला धर्म था। पं० सर सुन्दर लाल के अनुसार- कबीर ने हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक मानव धर्म की शिक्षा दी। निर्भीकता के साथ दोनों मतों की रूढ़ियों का एक समान खण्डन किया और प्राणिमात्र के साथ प्रेम और एक निराकार ईश्वर की भक्ति का सबको समान उपदेश दिया।

कबीर ने हिन्दू मत और इस्लाम दोनों में से सामान्य सच्चाइयों को एक समान गृहण किया। संस्कृत, फारसी, उर्दू, और हिन्दी चारों भाषाओं के शब्दों का अपने पद्यों में एक समान उपयोग

किया। कबीर ने धर्म की आलोचना करते हुये एकेश्वरवाद पर जोर दिया। इसका एक उदाहरण यहां पर प्रस्तुत है -

भाई रे दुइ जगदीश कहाँ ते आया? कहु कौन बौराया?
अल्लाह राम करीमा केशव, हरि हजरत नाम धराया ।।
गहना एक कनक ते गहना यामै भाव न दूजा ।
गहन सुनन को दुइ कर थापे, एक निमाज एक पूजा।।

गुरूनानक पंथ :- गुरूनानक भी तद्‌युगीन इस्लाम धर्म से अधिक प्रभावित थे। उन्होनें गुरूनानक पंथ अथवा सिक्ख धर्म को जन्म दिया। उनका जन्म सन् 1469 ई0 में वैशाष शुक्ल तृतीया को हुआ था। उन्होनें फारसी और संस्कृत दोनों में शिक्षा पायी थी। कुछ समय तक उन्होंनें दौलत खाँ लोदी के यहाँ नौकरी की तथा 30 साल की आयु में वह फकीर हो गये।[164] सर सुन्दरलाल के अनुसार- उन्होंने अपने मुसलमान शिष्य, मरदाना के साथ भारत, लंका, ईरान, अरब आदि की यात्रा की। पानीपत के शेख शरफ मुलतान के पीरो, बाबा फरीद के उत्तराधिकारी शेख ब्रम्ह (इब्राहिम) आदि सूफियों के साथ, उन्होनें बहुत दिनों तक धर्म चर्चा की। कबीर के समान नानक के मरने पर भी हिन्दू और मुसलमान शिष्यों में झगड़ा हुआ। अन्त में वहाँ भी हिन्दुओं ने उनकी स्मृति में एक समाधि बनाई और मुसलमानों ने एक अलग मजार, किन्तु दोनों इमारतें रावी की बाढ़ में बह गई।[165] गुरूनानक पंथ के अनुसार एकता और प्रेम धर्म के मूल मंत्र है उनके अनुसार -

ला इलाह इल्लल्लाह गोविन्द नानक खलफल्लाह।[166]
यानी अल्लाह केवल एक है, वही गोविन्द है, नानक उसका खलीफा है।

उन्होनें अपने सिद्धान्त के अनुसार हिन्दू और मुसलमान दोनों के धार्मिक सिद्धान्तों को एक बतलाया है, यथा -

बन्दे इश्क खुदाय दे, हिन्दू मुसलमान, दावा राम रसूल कर, लडदे बेईमान ।
ना हम हिन्दू न मुसलमान, दोनों बिच्च बसे शैतान।

सतनामी सम्प्रदाय :- बुन्देलखण्ड में सतनामी सम्प्रदाय का भी व्यापक अस्तित्व था। इस सम्प्रदाय के संस्थापक वीरमान थे। सर सुन्दरलाल के अनुसार- वीरमान ने एक ईश्वर का उपदेश दिया, जिसका नाम उन्होनें सत्तनाम रखा। सत्तनामी जात-पात और छुआ-छूत के खिलाफ थे। वे एक दूसरे के साथ खाते-पीते थे और आपस में विवाह करते थे। सत्तनामियों में तलाक की इजाजत थी। वे मूर्ति-पूजा के विरुद्ध थे। ध्यान, सदाचार और मनुष्य मात्र की समता पर जोर देते थे। माँस मदिरा का निषेध करते थे। औरंगजेब के समय में ईश्वरदास नागर ने सम्राट से शिकायत की थी कि सतनामी हिन्दू और मुसलमानों में किसी तरह का भेद नही करते सतनामियों के आदि उपदेश बारह हुकुम दिये

हुये है जिनका सार इस तरह है -

1. केवल एक ही ईश्वर को मानों, मिट्टी पत्थर लकड़ी या किसी और वस्तु से बनी हुयी चीज की पूजा न करो ।
2. दीनता से रहो।
3. कभी झूठ मत बोलों कभी किसी की निन्दा न करो कभी चोरी न करो, दूसरों की चीज को कभी लालच की निगाह से न देखों।
4. कभी बुरी बात न सुनो, सिवाय मालिक के भजनों के और कुछ न गाओं।
5. ईश्वर पर विश्वास करो।
6. जात पात को मत मानो किसी से बहस मत करो।
7. साफ कपडे पहनों, किसी तरह का तिलक न लगाओ औन न माला पहनों।
8. तम्बाकू और मादक दृब्यों से बचों। किसी मूर्ति के सामने सिर मत झुकाओं।
9. किसी की जान मत लो, किसी को कष्ट मत पहुँचाओं।
10. एक पुरूष के लिये केवल एक स्त्री और एक स्त्री के लिये केवल एक पुरूष ही।
11. साधुओं की संगत ही तीर्थ है।
12. किसी तरह अन्धविश्वासों, नजूमशकुन इत्यादि को न मानों। [167]

प्रणामी सम्प्रदाय :- इस सम्प्रदाय का उदय औरंगजेब के शासनकाल में हुआ इस सम्प्रदाय के संस्थापक गुरू प्राणनाथ थे, इनका एक नाम धरनीदास था ये गुजरात के रहने वाले थे, इन्होनें अपनी पुस्तक 'कुलजुम सरूप' गुजराती में लिखी है। इस ग्रंथ में वेद और पुराणों दोनों की समानता दर्शायी गयी है, गुरू प्राणनाथ जाति भेद मूर्ति पूजा और ब्राह्मणों के प्रभुत्व के विरोधी थे, उनके अनुयायी हिन्दू और मुसलमान दोनों थे, ये लोग साथ बैठकर भोजन करते थे, इनकी पुस्तक का नाम 'कयामतनामा' है। इस पुस्तक का हवाला देते हुये सर सुन्दरलाल का विचार है कि प्राणनाथ की खास पुस्तक कयामतनामा है। जिसमें उन्होनें साफ लिखा है कि ''तुम सबका, चाहे हिन्दू हो या मुसलमान,एक ईमान होना चाहिये।'' इस पुस्तक में उन्होनें यहूदी, ईसाई, मुसलमान और हिन्दू सबके पीर पैगम्बरों और महात्माओं की जीवनियां दी है और सबमें मौलिक समानता दर्शायी है । ईश्वर के लिये उन्होनें अल्लाह और खुदा दोनों नामों का उपयोग किया है।[168] प्राणनाथ सम्प्रदाय के अन्तर्गत तद्युगीन धर्म सामंजस्य की झलक मिलती है।

इस्लाम धर्म से प्रभावित अन्य सम्प्रदाय :- तद्युगीन संतों ने, जिन्होनें अलग-अलग सम्प्रदायों को जन्म दिया, उनका यही उददे्श्य था कि साम्प्रदायिक वैमनस्य की वृद्धि न हो तथा लोगों में प्रेम बना रहे। इस युग के प्रमुख संतों में जगजीवनदास, बुल्ला साहब, केशव, चरणदास, सहजोबाई, दयाबाई, शिवनारायण तथा रामसनेही आदि प्रमुख थे। इनके शिष्यों में ब्राह्मण, ठाकुर, चमार, मुसलमान सब जातियों के लोग शामिल थे। बुल्ला साहब के उपदेश में फारसी के शब्द और सूफी

परिभाषायें अत्यधिक थी। इन लोगों ने ऐसे नियम बनाये, जो इस्लाम और हिन्दू धर्म दोनों को स्वीकार थे। रामसनेही सम्प्रदाय के संस्थापक रामचरन भी मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी थे। ये लोग भी दिन मे पाँच बार प्रार्थना करते थे। स्वामी नारायण सिंह के अनुसार- कायम किए हुये, शिवनारायनी सम्प्रदाय में भी जाति और सब मजहबों के लोग लिये जाते थे । जब कोई शिवनारायनी मरता था, तब उसकी अन्तिम इच्छा के अनुसार उसको दफन कर दिया जाता था, या फूंक दिया जाता था, या दरिया में बहा दिया जाता था। मुगल सम्राट मोहम्मदशाह स्वामी नारायण सिंह का शिष्य था।[169]

दो-तीन सौ वर्ष तक उपरोक्त सम्प्रदायों ने बुन्देलखण्ड की जनता का प्रभावित किया। उसके पश्चात् इन सम्प्रदायों के सिद्धान्त और व्यवहार दोनों में व्यापक अन्तर आ गया, जिसने पृथकतावादी दृष्टिकोण को प्रोत्साहित किया, फिर भी पलटूदास जैसे शिष्य दोनों धर्मो के मध्य एकता स्थापित करने में लगे रहे। संत पलटूदास ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये -

पूरब में राम है, पश्चिम में खुदाय है, उत्तर और दक्खिन कहो कौन रहता।

साहिब वह कहाँ है, कहाँ फिर नही है, हिन्दू औ तुरूक तोफान करता......।।[170]

इस प्रकार हम देखते है कि धर्म सामंजस्य स्थापित करने के प्रयत्न सदा होते रहे है।

ईसाई धर्म :- दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- बड़े-बड़े नगरों में कुछ ईसाई मिशन भी है। उनमें प्रायः देशी लड़के और लडकियाँ इस धर्म के अनुयायी होकर रहते है। किसी-किसी रियासत तथा छावनियों में यूरोपियन अफसर ईसाई है।[171]

जब अंग्रेजों ने सम्पूर्ण भारत में अपनी सत्ता स्थापित करने के लिये कदम बढ़ाये, उस समय ईसाई धर्म के प्रचार को भी उन्होनें अपना लक्ष्य बनाया। लार्ड वेल्सली ने ईसाई धर्म के प्रचार के लिये बहुत अधिक प्रयत्न किये। सर सुन्दरलाल के अनुसार- वेल्सली ने भारत आते ही सबसे पहले ईसाई धर्म के अनुसार अंग्रेजी इलाके के अन्दर रविवार की छुट्टी मनाया जाना जारी किया। उस दिन समाचार पत्रों का छपना तक, कानूनन बन्द कर दिया गया। कलकत्ते के फोर्ट विलियम मे उसने एक कॉलिज की स्थापना की । इस कॉलिज का उददे्श्य विदेशी सरकार के लिये सरकारी नौकर तैयार करना था। वेल्सली के जीवन चरित्र का रचयिता आर०आर० पियर्स साफ लिखता है कि यह कॉलिज भारतवासियों में ईसाई धर्म को फैलाने का भी एक मुख्य साधन था। इस कॉलिज के जरिए भारत की सात अलग अलग भाषाओं में इंजील का अनुवाद कराकर भारतवासियों में प्रचार कराया गया। मार्क्विस वेल्सली न अपने व्यक्तिगत जीवन में चरित्रवान था और न सार्वजनिक जीवन में अपने से पहले के किसी गर्वनर जनरल से अधिक ईमानदार था, फिर भी उसकी इस ईसाई धर्मनिष्ठा के लिये अंग्रेज इतिहासकार प्रायः उसकी प्रशंसा करते है। सच यह है कि उसका ईसाई धर्म प्रचार भी राजनैतिक इष्ट सिद्धि का एक मात्र साधन था।[172] According to A.N. Vasu " The beginnings of the presnt system of education in india can be traced to the efforts of the christion missionaries."[173]

आधुनिक शिक्षा प्रणाली को जन्म देना, मिशनरियों का एक बहाना मात्र था। सुप्रसिद्ध विद्धान पी० डी० पाठक के अनुसार- मिशनरियों का मुख्य उददेश्य भारतवासियों को अपने धर्म का अनुयायी बनाना था, न कि यूरोपीय ढंग की शिक्षा संस्थाओं का शिलान्यास करना।[174] तद्युगीन प्रसिद्ध मिशनरी डा० डी०ओ० ऐलेन ने इस बात की खुद पुष्टि की है कि शिक्षा संस्थाओं ने मिशनरियों को भारतीयों से सम्पर्क स्थापित करने और उन्हें अपने धार्मिक सिद्धान्तों से अवगत करने का अवसर प्रदान किया।[175]

ईसाईयों ने अपने धर्म प्रचार के लिये कुछ मूल सिद्धान्तों का स्वीकार किया, क्योंकि सुप्रसिद्ध विद्वान ग्रांट ने सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन किया था और उसका यह मानना था कि यदि तद्युगीन सरकार अज्ञानता का निवारण करने के लिये पाँच बिन्दुओं पर आधारित कार्य योजना लागू करे, तो उससे लाभ होगा। ये कार्य योजना इस प्रकार है-

1. भारत में विद्यालयों की स्थापना।
2. विद्यालयों मे अंग्रेजी के माध्यम द्वारा शिक्षा।
3. विद्यालयों मे अंग्रेजी भाषा और साहित्य की निःशुल्क व्यवस्था।
4. पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान का प्रसार और
5. ईसाई धर्म का व्यापक प्रचार ।

इस योजना को प्रस्तुत करने के पश्चात ग्रांट ने लिखा-

" There is nothing wanting to the success of this plan, but the hearty patronage of Goverment. it they wish it to succeed it can and must succeed."[176]

सन् 1835 के दौरान लार्ड मैकाले ने गर्वनर जनरल की कौसिल के कानून सदस्य के रूप में भारत में पदार्पण किया। इस समय एक लोक शिक्षा समिति का निर्माण हुआ, जिसके अन्तर्गत 1813 के आज्ञा पत्र में मूलभूत परिवर्तन किये गये। उसके अनुसार -

1. अरबी और संस्कृत की तुलनामें अंग्रेजी अधिक उपयोगी है, क्योंकि यह नवीन ज्ञान की कुंजी है।
2. अंग्रेजी इस देश के शासकों की भाषा है, भारत के उच्च्व वर्गो द्वारा बोली जाती है और पूर्वी समुद्रों में व्यापार की भाषा बन सकती है।
3. जिस प्रकार लेटिन एवं यूनानी भाषाओं से इग्लैण्ड में और पश्चिमी यूरोप की भाषाओं से रूस में पुनरूत्थान हुआ, उसी प्रकार अंग्रेजी से भारत में होगा।
4. भारतवासी अरबी और संस्कृत की शिक्षा की अपेक्षा अंग्रेजी की शिक्षा के लिये अधिक उत्कंठित है।
5. भारतवासियों को अंग्रेजी का अच्छा विद्वान बनाया जा सकता है और हमारे प्रयास इसी दिशा में होने चाहिये।

6. अंग्रेजी की शिक्षा द्वारा यहाँ एक ऐसे वर्ग का निर्माण हो सकता है, जो रक्त और रंग में भले ही भारतीय हो, पर रुचियों, विचारों, नैतिकता और विद्वता में अंग्रेज होगा।[177]

अंग्रेजो ने दो सौ वर्षो तक भारतवर्ष में शासन किया, वहीं अंग्रेजी भाषा ने कुछ विशेष उपलब्धियां भारतवर्ष को करायी। ये निम्नलिखित थी-

1. अंग्रेजो ने पूरे देश को एकता के सूत्र में बाँध दिया।
2. अंग्रेजो के कारण ही राष्ट्रवाद का उदय हुआ और राष्ट्रीय भावना फैली।
3. लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था का उदय भी इग्लैण्ड की शासन व्यवस्था से हुआ।
4. भारतवर्ष में जमींदारी प्रथा का सूत्रपात अंग्रेजों ने किया।
5. भारतवर्ष का शासन चलाने के लिये कानूनी व्यवस्था की गयी। राधाकृष्ण बुन्देली के अनुसार- यहाँ पर कानूनों का निर्माण किया गया और दण्ड व्यवस्था कानूनों के अनुसार की जाने लगी। दीवानी संहिता, फौजदारी तथा गवाही संहिता, भारतीय दण्ड संहिता, भारतीय करार अधिनियम, साझा अधिनियम सबके लिये समान थे। अंग्रेजों ने इन कानूनों को निष्पक्षता से लागू किया। अदालतों की स्थापना हुयी ।[178]
6. अंग्रेजों की छठवीं देन कानूनी शासन प्रणाली है। यहाँ का सर्वोच्च न्यायालय ब्रिटिश प्रीवी कौन्सिल का स्वरूप है। यहाँ पर पूरी शासन व्यवस्था को कानूनी शिंकजें में जकड़ दिया गया है तथा कई स्तर की अदालतों का गठन किया गया है।
7. वर्तमान शासन प्रणाली, जिसके अन्तर्गत ग्रामीण शासन व्यवस्था से लेकर केन्द्रीय शासन व्यवस्था है, अंग्रेजों की ही देन है।
8. उद्योगों का वैज्ञानीकरण और यातायात विकास अंग्रेजों की देन है।
9. भारतवर्ष में पहले बहुत बड़े शहर नही थे, किन्तु अंग्रेजों ने उद्योगीकरण करके शहरों का विकास किया।
10. वर्तमान शिक्षा प्रणाली अंग्रेजों की देन है, उन्होनें उच्चस्तर की शिक्षा से लेकर निम्न स्तर की शिक्षा का प्रचार-प्रसार एक संगठित ढंग से किया है।
11. अंग्रेजों ने भारतवर्ष में पढ़ाये जाने वाले अनेक विषयों को वैज्ञानिक स्वरूप दिया, जिससे इन विषयों की प्रतिष्ठा बढ़ी। उन्होनें अनेक ग्रंथों का अनुवाद कराया, जिससे वे विश्व में सुलभ हुयी। राधाकृष्ण बुन्देली के अनुसार- उन्होनें सिंघली पुस्तकों, दीपवंश और महावंश का भी अनुवाद कराया। मैक्समूलर, बैबर, मैक्डोनल, मोनियर, विलियन्स, बारमेट, के0बी0कीट, रोज डेविड, एच0एच0 विल्सन, एलन, पुफ्रीड, सरमोर, टयूमर, व्हीलर, सरजान, मार्शल आदि के हम ऋणी है। डा0 बी0ए0स्मिथ ने प्राचीन भारत के इतिहास में सर्वाधिक कार्य किया। पुरातत्व के क्षेत्र में कनिंधम का महत्वपूर्ण स्थान है। पारजीटर ने पुराणों पर उल्लेखनीय काम किया।

कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया की पाँच जिल्दे भारत को अंग्रेजी की सच्ची देन हुयी अंग्रेजी ने भारतीय वेदों के बारे में भी काफी काम किये मकरिम्डल ने भारत में आने वाले यात्रियों का अनुवाद अंग्रेजी में किया। सैकड़ो पाण्डुलिपियां इस समय इकट्ठी की गई, उन पर महत्वपूर्ण कार्य हुये। अकबरनामा, आइने अकबरी, हमायूँनामा, तुजके जहाँगीरी, तुजके बाबरी आदि पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद किया गया।[179]

12. जिस भारतीय साहित्य की संरचना, किसी भी भारतीय भाषा में हुयी, वह अंग्रेजी साहित्य तथा तद्‌युगीन समीक्षा पद्धति से प्रभावित है।

13. ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में ईसाई धर्म का प्रचार नही करना चाहती थी, परन्तु अंग्रेजी सरकार का दबाव पडने के कारण सन् 1813 में मिशनरी भारत में आये। उनके साथ कलकत्ते में एक पादरी भी आया। मिशनरियों ने हिन्दुस्तान में ईसाई धर्म का प्रचार किया और लाखों भारतीयों को ईसाई बनाया।

14. बुन्देलखण्ड में सर्वप्रथम राजा-महाराजा, जागीरदार, जमीदार, और धनी व्यक्ति ईसाई धर्म से प्रभावित हुये। इन्होंने अपनी जीवनशैली में परिवर्तन किया। इन्होंनें अपनी सन्तानों को पाश्चात्य् शिक्षा प्रणाली से परिचित होने के लिये विदेश भेजा तथा अनेक सामंतों ने ईसाई औरतों से वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित किये। अंग्रेजों की तारीफ करते हुये राधाकृष्ण बुन्देली लिखते है- कि अंग्रेजी शासन की सबसे बड़ी देन यह है कि लाखों भारतीय अंग्रेजी सभ्यता से प्रभावित हुये, उन्होनें अंग्रेजों की तरह कपड़े पहनना सीखा। उनकी तरह बोलना, सोचना और काम करना सीखा।[180]

<u>इस्लाम धर्म और ईसाई धर्म में समानता</u> :- यद्यपि ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म से 550 वर्ष पुराना है, फिर भी भारतवर्ष की धरती पर ईसाई धर्म का आगमन, इस्लाम धर्म के आगमन के लगभग 500 वर्ष बाद हुआ। यदि दोनों धर्मो की समतुलना की जाये तो, दोनों धर्मो में बहुत कुछ समानतायें है -

1. दोनों धर्म ईश्वर के निराकार स्वरूप को स्वीकार करते है तथा दोनों एकेश्वरवाद को मानते है। दोनों धर्मो के अनुसार- ईश्वर सर्वशक्तिमान, संसार का सृजेता, पालक एवं विनाश करने वाला है।
2. दोनों धर्म अपनी पुस्तकों को अर्थात बाइबिल और कुर्आन को ईश्वरकृत पुस्तके मानते है तथा दोनों पुस्तकों के धार्मिक सिद्धान्त एक दूसरे से मिलते जुलते है।
3. दोनों धर्म-कर्म की गति, कर्मफल और भाग्यफल पर विश्वास करते है तथा दोनों का यह मानना है कि स्वर्ग और नरक का प्रदाता ईश्वर है। दोनों के अनेक संस्कार एक से है तथा कुछ देवी-देवता भी मिलते जुलते है। दोनों धर्म जातिवाद के कट्टर विरोधी तथा

मानवीय मूल्यों के संरक्षक है। इनमें छुआ-छूत तथा अन्धविश्वास का कोई स्थान नही है और दोनों धर्म मांसाहार को वैध मानते है।

इस्लाम धर्म और ईसाई धर्म में अन्तर :- इन दोनों धर्मो में पर्याप्त समानतायें होते हुये भी निम्न अन्तर स्पष्ट रूप से दिखाई देते है-

1. ईसाईयों और मुसलमानों की वेश-भूषा तथा रहन-सहन में व्यापक अन्तर स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है।
2. धर्माचरण की दृष्टि से मुसलमान अपने धर्म के प्रति बहुत अधिक कटट्र और नियमों का कठोरता से पालन करने वाले है। ये लोग पाँच वक्त की नवाज पढ़ना, कुआ़नि शरीफ का पाठ करना, धार्मिक अवसरों पर ज़कात देना, यतीमों पर दया करना, माल होने पर हज करना तथा धर्म के लिये ज़ेहाद करना अपना कर्तब्य समझते है। इसके विपरीत ईसाईयों में ऐसे कठोर नियम नही है। प्रत्येक रविवार को गिरजाघर जाकर व्यक्ति धार्मिक कार्य करते है। इनके यहाँ किसी प्रकार की धार्मिक कटट्रता नहीं है।
3. इस्लाम धर्म में इस्लामी कानून को कुआ़नशरीफ और हदीस ग्रंथों के अनुसार निर्मित किया गया है। ये कानून कठोरता से लागू किये जाते है, इनका उल्लंघन करने वालों को कठोर दंड दिया जाता है। ईसाईयों में कोई इस प्रकार के धार्मिक कानून नही है और न ही कोई धार्मिक कटट्रता है।
4. ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म की तुलना में सत्य, अहिंसा और प्रेम के ज्यादा सन्निकट है, जबकि इस्लाम धर्म केवल मुसलमानों से ही सहानुभूति रखता है। मुसलमानों के यहाँ जो इस्लाम धर्म का विरोध करता है, उसे काफ़िर कहा जाता है तथा उसके खिलाफ जेहाद करने के निर्देश दिये जाते है, जबकि ईसाई धर्म मे ज़ेहाद के लिये कोई स्थान नहीं है।
5. इस्लाम धर्म भारतवर्ष में शक्ति और भय के आधार पर फैला, जबकि ईसाई धर्म प्रलोभन, प्रेम और स्वाभाविक आर्कषण के कारण फैला।
6. दोनों के धर्माचरण और तीज त्योहारों में भी अन्तर है। ईसाईयों में हज़ करने की अनिवार्यता नहीं है और न ही कुर्बानी के लिये कोई त्योहार है।

बुन्देलखण्ड की संस्कृतिक विरासत

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड सांस्कृतिक विरासत की दृष्टि से एक धनी क्षेत्र है तथा उसी की वजह से इसकी गौरव गाथा आज तक इतिहासों में अमर है। यहाँ की संस्कृति और सभ्यता ने विश्व के इतिहास में इसे प्रेरणास्रोत बनाया। यहाँ के पुरावशेष और व्यक्ति महान है, जिनकी वजह से हमारा माथा गौरव से ऊँचा उठा है। महाकवि श्री लक्ष्मी प्रसाद मिश्र के शब्दों में -

तूने कितने बलिदान दिये कितने तरुणों के प्राण लिये।
सदियों से सुप्त उपेक्षित तू- अब तो करवट ले जाग भाग।
........................बुन्देलखण्ड उठ जाग जाग ।।1।।[181]

बुन्देलखण्ड में उपलब्ध विरासत को हम निम्न भागों में विभाजित करते है-

पुरावशेष :- सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पुरा एतिहासिक काल से लेकर मुगल शासनकाल और बाद के अवशेष सर्वत्र उपलब्ध है, जिन्हें देखकर प्राचीनकाल में रहने वाले मानव की गतिविधियों के सन्दर्भ में पूर्ण जानकारी उपलब्ध होती है। इनको निम्नलिखित भागों में विभाजित करते है -

(अ) प्रस्तर कालीन पुरावशेष :- बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों मे प्रस्तरकालीन अवशेष उपलब्ध हुये है। ये अवशेष अस्त्र-शस्त्रों और शालाश्रयों के रूप में उपलब्ध होते है। डा० कन्हैयालाल अग्रवाल के अनुसार - पूर्व पाषाणकाल के अस्त्र बाँदा जिला के बरियारी ग्राम से प्राप्त हुये है। यह स्थान यमुना की सहायक केन नदी के दक्षिणी तट पर स्थित है। इसी काल के शल्क निशान नरैनी से लगभग आधा किमी० उत्तर की ओर स्थित रामचन्द्र पहाड़ी से मिले है, इनमें हस्त कुठार, पिबल टूल्स और अवशिष्ट अनुपयुक्त प्रस्तरांश पर बनाये गये गडाँसे भी सम्मिलत है।[182] इसी प्रकार ललितपुर, देवगढ, सधुआ, छतरपुर आदि में भी कुछ पाषाणयुगीन अस्त्र-शस्त्र उपलब्ध होते है।[183]

इसी प्रकार बाँदा जनपद में सरहट गाँव में गुफा चित्र उपलब्ध हुये है। इस गुफा में अश्वारोहियों का समूह, हाथी का चित्र, सांभर का आखेट करता हुआ धुर्नधारी उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त मलवा, कुरियाकुण्ड, अमवा, उल्दन तथा बरगढ़ आदि स्थानों में शैल चित्र उपलब्ध है।[184] दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार - करवी तहसील के कल्यानपुर गाँव में चटट्ानों पर पूर्व ऐतिहासिक काल के सुर्ख चित्र बने हुये है। यहाँ के बुन्देलों का कल्याणगढ़ किला तथा परगना था। यहाँ बुन्देलों और बंगरा के कई युद्ध हुये थे।

'पाठा' पहले अनार्यो की वास भूमि था। मानिकपुर के निकट सारहट में चौरी के जंगल में और कठौता (ममनिया) में चटट्ानों पर पूर्व ऐतिहासिक काल की सुर्ख रंग की चित्रकारी है। ये मनुष्यों और घोडों के भद्दे चित्र है।[185]

(ब) दुर्ग अवशेष :- बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण दुर्ग उपलब्ध होते हे। इनमें प्राचीनतम् दुर्ग कालिंजर है उसके पश्चात् महोबा, देवगढ़, मड़फा, बारीगढ़, मनियागढ़ आदि चन्देल कालीन दुर्ग है। ये समस्त दुर्ग सामरिक और प्रशासनिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रहे है। गौडों के राज्य में अनेक दुर्ग थे। जिनका उल्लेख पं० गोरे लाल तिवारी ने इस प्रकार किया - गढा, मारूगढ़, पटेल, सिंगोरगढ़, अमौदा, बगमार, टीपागढ़, रामगढ़, प्रतापगढ़, अमरगढ़, देवहार, पाटनगढ़, निभुवागढ़, भवरगढ़, बरगी, धुनसौर, चौराई, डोंगरताल, करवागढ़, झंझनगढ़, लाकागढ़, पवई, करही, शाहनगर, धमौनी, हटा, मढियादों, गढ़ाकोटा, शाहगढ़, गढ़पहरा, दमोह, रेहली, हटवा, खिमलासा, गनौर, बाडी, चौकीगढ़, राहतगढ़, मकरही, कारोबाग, कुखाई, रायसेन, भँवरसों, उपदगढ़, पनागढ, देवरी, गौरझामर आदि दुर्ग गौडों के राज्य में थे।[186] इसके अतिरिक्त दतिया, ओरछा, झांसी, जैतपुर आदि में भी महत्वपूर्ण दुर्ग थे। शाहगढ़ का दुर्ग भी सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था। सुप्रसिद्ध इतिहासकार लक्ष्मी प्रसाद मिश्र के अनुसार - दुर्ग के निर्माता बख्तबली प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के एक अमर सेनानी थे। उनकी गौरव गाथा आज भी दुर्ग की गगनचुंबी उन्नत प्राचीरें अपनी मूक भाषा में

जुना रही है। प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध के अवसर पर सन् 1857 में सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड एक भंयकर ज्वालामुखी के समान धधक रहा था। सैकडों बुन्देलों वीर अपनी आहुतियाँ उस भयंकर समर यज्ञ में दे चुके थे।[187] बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होने वाले दुर्ग गुप्त युग से लेकर बुन्देला युग तक के है। इनका प्रशासनिक एवं सामरिक महत्व है तथा दुर्गीय विश्लेषण के साथ इन्हें हम पर्वतीय दुर्ग तथा जलीय दुर्ग में विभाजित कर सकते है।

(स) प्राचीन बस्ती एवं नगरों के अवशेष :- बुन्देलखण्ड में अनेक ऐसी बस्तियों के अवशेष उपलब्ध होते है, जिनका सम्बन्ध पौराणिक युग से है। मुख्य रूप से कालिंजर, सुक्तिमती नगरी तथा दशार्ण क्षेत्र के अनेक नगर अति प्राचीन है। इसके अतिरिक्त अनेक नगर गुप्त, गुर्जर प्रतिहार, चन्देल, तुर्क और मुगलों के बसाये हुये है। इनमें महत्वपूर्ण नगर निम्नलिखित है -

1. **कालिंजर** :- यह बाँदा जनपद से 55 कि0मी0 दूर है। मत्स्य पुराण तथा वायु पुराण में कालिंजर का महात्म्य सर्वाधिक है। वामन पुराण तथा स्कन्द पुराण में भी इसका उल्लेख मिलता है।[188]

2. **चित्रकूट** :- यह भी बुन्देलखण्ड का अति प्राचीन स्थान है। यहाँ भगवान राम बारह वर्ष तक रहे और जब वनवास से वापिस आये, उस समय भी यहाँ कुछ समय के लिये रुके।[189]

3. **कालपी** :- कालपी भी बुन्देलखण्ड का प्राचीनतम् नगर है। इसका उल्लेख गोविन्द चतुर्थ के काम्बे ताम्रपत्र से लगता है।[190] यह नगर व्यास की कर्मस्थली भी रहा है। चन्देल काल में इस नगर की व्यापक ख्याति थी।

4. **सुक्तिमति नगरी** :- महाभारत में वर्णित सुक्तिमति नदी चेदि राज्य की राजधानी थी। बौद्ध ग्रंथ चेतिय जातक में भी इसका उल्लेख मिलता है। डा0 कन्हैयालाल अग्रवाल के अनुसार -

1. शुक्तिमतीपुरी से यमुना इतनी दूरी पर थी कि वहाँ आखेट हेतु सुविधापूर्वक पहुँचा जा सकता था।
2. उक्त नगरी शुक्तिमती नदी (आधुनिक केन) के तट पर स्थित थी।

शुक्तिमती पुरी का ज्ञान सेवढ़ा ग्राम से किया जा सकता है। यह ग्राम बाँदा जिला की नरैनी तहसील में जिला मुख्यालय से लगभग पच्चीस कि0मी0 की दूरी पर स्थित है। यहाँ से केन की दूरी मात्र तीन कि0मी0 है।[191] इसके अतिरिक्त सहजाति अग्गलपुर, विदिशा, वैश्य नगर, ऐरकच्छ, ऐरिंकिण, मानपुर आदि प्रसिद्ध नगरों के अवशेष उपलब्ध होते है। इन नगरों का अस्तित्व आज भले ही न हो किन्तु तद्युगीन बुन्देलखण्ड में महत्वपूर्ण थे।

(द) आवासों के अवशेष :- बुन्देलखण्ड के अनेक स्थलों में आवासीय अवशेष उपलब्ध होते है। ये अवशेष गुप्त युग से लेकर मुगल काल तक के है। सामान्य व्यक्तियों के आवास स्थलों को भवन और विशेष व्यक्तियों के निवास स्थल को प्रासाद अथवा राजप्रसाद कहते थे। हर वर्ण के लिये भूमि का क्षेत्रफल निर्धारित था। केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार- वृहत् संहिता में विश्व की सभी वास्तुओं को पाँच भागों में विभाजित किया गया है। ये पाँचों उत्तमता के क्रम से स्थापित किये गये है। सर्वप्रथम स्थान राज प्रासाद का है। क्षेत्रफल के अनुसार यह भी पांच प्रकार का होता है, जिस प्रासाद की लम्बाई 135 हाथ, चौडाई 108 हाथ हो, वही उत्तम माना जाता है। शेष चार प्रकार के प्रासादों

ा मान क्रमशः 8 हाथ कम होता जायेगा। सेनापति के गृह की भी ऐसी ही पाँच कोटियाँ है। उत्तम नापति निवास का भाग 64 हाथ और 74 हाथ 16 अंगुलि निर्धारित किया गया है। आमात्य वास थानों के भी पाँच भेद रखे गये है। वैसे ही मानदण्ड के अनुसार- राजमहिषियों और युवराजों के भी ाल गृहों के प्रभेद है। सामन्त और उच्च राजपुरुषों के गृहों के भी परिमाप निर्धारित है, यहाँ तक के देवता, पुरोहित, चिकित्सक, कंचुकी, वेश्या और नृत्य गीत के गृह भी निर्धारित परिमाप के बनाये जाते थे।

सामाजिक संगठन में विभिन्न वर्णो के वासस्थानों का भी वर्णन वराहमिहिर ने किया है। श्रेष्ठता की दृष्टि इनमें से प्रत्येक की कोटियाँ है। ब्राह्मणादि वर्णो और अन्त्यजो के वासगृहों का पृथुत्व व्यास अलग-अलग निम्न रूप से माना गया है -

वर्ण	उत्तम मध्योत्तम	मध्यम	अधम	अधमाधम
ब्राह्मण	32	28	24	16
क्षत्रिय	28	24	20	0
वैश्य	24	20	16	0
शुद्र	20	16	0	0
अन्त्यज	16	0	0	0

ब्राह्मण इस प्रकार के पृथुत्व व्यास वाले पाँच गृहों के, क्षत्रिय चार के, वैश्य तीन के, शूद्र दो के और अन्त्यज एक प्रकार के गृहों के अधिकारी माने गये थे। इसी प्रकार न जाने कितने ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेद-प्रभेद वास्तु स्थानों के किये गये थे।[192] बुन्देलखण्ड में मुख्य रूप से ग्वालियर, दतिया, ओरछा, चन्देरी, पन्ना, विजावर, पाथर कछार, कालिंजर आदि स्थलों में उच्च कोटि के आवासीय स्थलों के भग्नावेश उपलब्ध होते हैं। सुप्रसिद्ध आवास स्थल के रूप में महोबा का राजप्रासाद सुप्रसिद्ध महल है, जिसका निर्माण परमार्दिदेव के लिये हुआ था।[193] इसी प्रकार जबलपुर का मदन महल, गढाकोटा का महल, हटा का बाराखम्भा महल, मदनपुर का बारादरी, चिल्ला का महल अति प्रसिद्ध महल है।

(य) धार्मिक स्थलों के अवशेष :- बुन्देलखण्ड के अनेक स्थलों पर धार्मिक स्थलों के प्राचीन अवशेष उपलब्ध होते है। ये अवशेष वास्तुशिल्प की दृष्टि से सर्वोत्तम है। मुख्य रूप में खजुराहों, देवगढ़, कालिंजर, मड़फा, रसिन के धार्मिक स्थल प्रसिद्ध है।

खजुराहों का प्रसिद्ध मंदिर कन्दरीय मंदिर है। यह मंदिर एक सौ नौ फुट लम्बा, साठ फुट चौड़ा तथा इसकी ऊँचाई अट्ठासी फुट है। यहाँ भगवान शिव की मूर्ति स्थापित है। वास्तुशिल्प की दृष्टि से यह सर्वोत्तम है।[194] इसके अतिरिक्त इसी स्थल का महादेव मंदिर, विश्वनाथ मंदिर, मृतंगेश्वर मंदिर, कुँवरमठ जतकारी शिव मंदिर, चतुर्भुज मंदिर, ब्रह्मा मंदिर, पार्वती मंदिर, सूर्य मन्दिर अति प्रसिद्ध है।

अन्य धार्मिक स्थलों में कालिंजर का नीलकंठ मंदिर, महोबा का ककरामठ, दौनी का शिव मंदिर, देवी जगदम्बा मंदिर, वराह मंदिर, वामन मंदिर, जबरा मंदिर, गदाधर मंदिर, जतकारी मंदिर, मदारी मंदिर, गोडा का विष्णु मंदिर, बिलहरिया का विष्णु मंदिर, दुधई का ब्रह्मा मंदिर, लक्ष्मी मंदिर, दुर्गा मंदिर, जगदम्बा मंदिर, चौसठ योगिनी मंदिर, मनिया देवी का मंदिर, मैहर की शारदा देवी का मंदिर, रसिन की चंद्रा महेश्वरी मंदिर आदि प्रसिद्ध ऐतिहासिक मंदिर हैं।

समस्त बुन्देलखड में जैनियों के प्रसिद्ध मंदिर उपलब्ध होते है। इन मंदिरों में खजुराहों का घंटई मंदिर, पार्श्वनाथ मंदिर, विश्वनाथ मंदिर, सेतनाथ मंदिर, आदि नाथ मंदिर, दौनी का जैन मंदिर, दुधई का जैन मंदिर, कुंडलपुर का नेमिनाथ मंदिर, मदनपुर का जैन मंदिर आदि प्रसिद्ध मदिर हैं।

यहाँ के कुछ धार्मिक स्थल इस्लाम धर्म से भी सम्बन्धित है। ये स्थल ग्वालियर, दतिया, चंदेरी, बानपुर, ओरछा, महोबा, छतरपुर, शेरपुर, सिहोड़ा, पाथर कछार तथा फतेहगंज आदि में उपलब्ध होते है। ये धार्मिक स्थल मस्जिद, दरगाह, मजार और मृत्यु स्मारक के रूप में उपलब्ध होते है।

स्तम्भ एवं अभिलेख :-

बुन्देलखण्ड के अनेक ऐतिहासिक स्थलों में अनेक महत्वपूर्ण अभिलेख उपलब्ध होते है। ये अभिलेख संस्कृत, पाली, देवनागरी, अरबी और फारसी भाषा में है। सबसे प्राचीन मौर्ययुगीन अभिलेख जबलपुर के सन्निकट रूपनाथ में प्राप्त हुआ है। साँची का स्तम्भलेख भी मौर्ययुगीन है। भरहुत का वेदिका स्तम्भ लेख और बेसनगर का गरुण स्तम्भलेख शुंग कालीन है। समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भलेख में भी बुन्देलखण्ड का उल्लेख है, इसके अतिरिक्त उसी का एरण अभिलेख भी महत्वपूर्ण है। चन्द्रगुप्त का उदयगुहा लेख तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय का सांची अभिलेख अति प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त कुमार गुप्त प्रथम का भिसला अभिलेख, बुद्धगुप्त का एरण अभिलेख, भानुगुप्त का एरण अभिलेख, हूण राजा तोरमाण का एरण लेख आदि बुन्देलखण्ड के प्राचीन अभिलेख है, जिनसे यहाँ के इतिहास के बारे में पर्याप्त ज्ञान होता है।

बुन्देलखण्ड में कुछ जय स्तम्भ भी उपलब्ध हुये है तथा इन स्तम्भों मे अभिलेख भी है। ये गुप्त युग से लेकर चन्देल युग और उसके बाद के है। उरई के सन्निकट अकोरी ग्राम में एक जय स्तम्भ उपलब्ध हुआ, यह पृथ्वीराज और परमार्दिदेव के समय का है। इस स्तम्भ की वर्तमान समय में पूजा होती है।[195] दुधई के सन्निकट चाँदपुर में भी एक गज स्तम्भ उपलब्ध हुआ है इस स्तम्भ में एक अभिलेख भी है यह अभिलेख 11वीं 12वीं शताब्दी का है ।[196] इसके अतिरिक्त आल्हा की गिल्ली एवं महोबा का चण्डमतावर स्तम्भ भी उपलब्ध होता है, इस स्तम्भ में एक अश्वारोही की मूर्ति भी है, जिसकी पूजा होती है।

बुन्देलखण्ड की मूर्ति सम्पदा :-

बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में जहाँ धार्मिक स्थल उपलब्ध होते है, वहाँ अनेक प्रकार की मूर्तियाँ उपलब्ध होती है। ये मूर्तियाँ गुप्त युग से लेकर चन्देल युग और उसके बाद तक की है। अधिकांश मूर्तियाँ पत्थरों की है तथा पूर्व मध्ययुग, मध्ययुग तथा बुन्देलों के शासनकाल की मूर्तियाँ धातुओं की है। ये मूर्तियाँ जैन धर्म, बौद्ध धर्म तथा हिन्दू धर्म से सम्बन्धित है। विभिन्न देवी देवताओं के अतिरिक्त कुछ मूर्तियाँ पशु-पक्षियों तथा यक्ष-यक्षणियों की भी है। एक ही मंदिर में अनेकों मूर्तियां उपलब्ध होती है। उदाहरण के लिये कन्दरियाँ मंदिर में 226 मूर्तियाँ है और मन्दिर के बाहर 646 मूर्तियां है।[197] ये मूर्तियां शिव, विष्णु, शक्ति, गणेश, सूर्य, वराह, काल भैरवी, काल भैरव, काली देवी आदि की है। कालिंजर की मूर्तियों की प्रशंसा करते हुये सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री अयोध्या प्रसाद पाण्डेय अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करते है - कालिंजर में दुर्गा की एक अन्य मूर्ति है, जो अष्ट भुजी है और त्रिशूल तथा खप्पर धारण किये हुये है। अजयगढ़ के तिरोहिणी द्वार में देवियों की मूर्तियों की आठ पंक्तियाँ है, जिनमें सात बैठी हुयी मुद्रा में और एक खड़ी हुयी मुद्रा में है। उसमें से प्रत्येक तीन फीट ऊँची तथा तीन फीट दस इंच चौड़ी है और उनकी पाठिका भी अलग अलग है।[198]

कटनी के सन्निकट बिलहरी में बौद्ध कालीन, गुप्तकालीन, कल्चुरी कालीन तथा चन्देल कालीन मूर्तियां उपलब्ध होती है। इन प्रतिमाओं में शेषशायी विष्णु तथा ब्रह्मा की प्रतिमायें उच्च कोटि की है तथा यहीं स्थित एक शिव मन्दिर में शिव और पार्वती की प्रणय प्रतिमा उपलब्ध होती है। इसी स्थल में गणेश प्रतिमा, अष्टभुजी देवी व स्वामी कार्तिकेय की प्रतिमायें भी उपलब्ध होती हैं।

बुन्देलखण्ड में मूर्तिशिल्प का भव्य स्वरूप देखने को मिलता है। मध्यकालीन प्रतिमाओं का तो यहाँ अपरिमित भण्डार है।[199] मुख्य रूप से यहाँ ब्राह्मण देव, विष्णु, शिव, गणपति, सूर्य, शक्ति तथा अन्य देवी-देवताओं की प्रतिमायें उपलब्ध होती हैं। इसके अतिरिक्त जैन, बौद्ध तथा अन्य ऐसी प्रतिमायें उपलब्ध होती हैं, जिनका सम्बन्ध किसी धर्म से नहीं है। इनमें पशु पक्षियों की मूर्तियाँ है। यहाँ के मन्दिरों में शार्दुल का विविध रूपों में अंकन मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह तत्कालीन कलाकारों को बहुत प्रिय था। नृत्य, संगीत तथा लोक जीवन के दृश्य भी अंकित मिलते है। इसके अतिरिक्त यहाँ कामुक दृश्यों को प्रदर्शित करने वाली मूर्तियाँ भी प्राप्त हुयी हैं। इस प्रकार बुन्देलखण्ड क्षेत्र का भाग मूर्ति सम्पदा के मामले में अत्यन्त संपन्न है। मूर्ति स्वरूपों में जितना वैविध्य यहाँ देखने को मिलता है उतना कदाचित अन्यत्र प्राप्त नही हैं।[200] बुन्देलखण्ड के कई स्थलों में अष्ट धातु के अतिरिक्त अन्य धातुओं की भी मूर्तियाँ उपलब्ध हुई है। सुप्रसिद्ध विद्वान गिरिजा शंकर तिवारी के अनुसार बाँदा जिले के थनेश्वर खेड़ा नामक स्थान में एक चन्देल ताम्रपत्र के साथ तीन बौद्ध धातु मूर्तियां सन 1895 में उपलब्ध हुयी, जिनमें से दो अभिलिखित भी है। इन मूर्तियों से प्राप्त अभिलेख में गुप्तवंशीय किसी हरिदास का उल्लेख है। इन मूर्तियों में से दो के बारे में प्रो० इरविन का मत उल्लेखनीय है। उनके अनुसार मूर्तियों के वस्त्र विधान प्रारम्भिक गुप्त काल की कला के नमूने है और परवर्ती कला विकास के अध्ययन के प्रारम्भिक बिन्दु है।[201]

पर्व मध्ययुग और मध्ययुग में मुसलमानों के आगमन के कारण यहाँ के धार्मिक स्थलों का विनाश हुआ और इनका विकास अवरूद्ध हो गया। प्रस्तर मूर्ति कला का विकास पूरी तरह नष्ट हो गया तथा धातु मूर्ति कला भी अति मन्द गति से विकसित हुयी। जहाँ बुन्देलों का शासन था, वहाँ नवनिर्मित मंदिरों में धातुओं की मूतियाँ स्थापित हुयी, ये स्थल बुन्देलखण्ड की विविध रियासतों में है।

जलाशय :-

बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होने वाले जलाशय भी यहाँ की ऐतिहासिक विरासत है। जहाँ ये एक ओर जल पूर्ति के संसाधन थे, वहीं दूसरी ओर इनका ऐतिहासिक महत्व भी था। तद्‌युगीन प्रसिद्ध तडागों में राम सागर, शिव सागर, खजूर सागर जो खजुराहों का सुप्रसिद्ध जलाशय है, वास्तुशिल्प की दृष्टि से उत्कृष्ट थे। इसके अतिरिक्त महोबा के मदन सागर, कीरत सागर और कल्याण सागर तथा विजय सागर भी उच्च कोटि के जलाशय है।[202] इसी प्रकार के तालाब रसिन, अजयगढ़, तथा कालिजंर में भी उपलब्ध होते है। कालिंजर में कुछ प्राकृतिक जल कुण्ड भी है, जो स्वर्गारोहण ताल[203] पाताल गंगा, पाण्डुकुण्ड, बुडढ़ा-बुढ़िया ताल, मृगधारा, कोट तीर्थ और मझार ताल के नाम से प्रसिद्ध है।[204] इन तालाबों के अतिरिक्त कुछ बीहड़ भी उपलब्ध होते है, जिनमें जल स्तर तक पहुँचने के लिये सीढ़िया बनी होती थी। ये वृताकार और चौकोर होते थे। ऐसे जलाशय शेरपुर सिहोड़ा, पाथर कछार, कालिंजर, भूरागढ़, बिजावर, चरखारी, दतिया, ओरछा, झांसी आदि में उपलब्ध होते है। कुछ जलाशयों का निर्माण सल्तनतकाल और मुगल काल में हुआ है और कुछ जलाशय उसके बाद के हैं। प्राचीन काल में जब जल प्राप्ति की वैज्ञानिक विधि नही थी, उस समय उन जलाशयों का विशेष महत्व व्यक्तिगत कार्यो और कृषि के लिए होता था।

मुद्रा एवं अस्त्रशस्त्र :-

आदान-प्रदान एवं व्यवसाय को गति देने के लिये मुद्रा एक आवश्यक अंग है। बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में मौर्य, शुंग, सातवाहन,शक, हुण, गुप्त, बर्धन, गुर्जर, प्रतिहार, चन्देल, तुर्क, मुगल और बुन्देलेंशासको का वर्चस्व रहा, इसलिये यहाँ इन नरेशों की मुद्रायें उत्खनन के दौरान अनेक स्थानों में उपलब्ध हुयीं। इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्ध होने वाले सिक्के कल्चुरियों और चन्देलों के है। केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार - चन्देलों के स्वर्ण सिक्के पश्चिमी चेदि राजा गांगेयदेव तथा कलचुरी के हैहयवंशीय राजा दाहल के सिक्कों से मिलते जुलते है। ऐसा ज्ञात होता है कि चन्देलों के स्वर्ण सिक्के गांगेयदेव सिक्के की प्रतिकृति है, जो महमूद गजनवी का समकालीन था।[205]

तुर्क और मुगलकाल में यहाँ अनेक प्रकार के सिक्के प्रचलित थे। इनमें सुप्रसिद्ध स्वर्ण मुद्रायें अकबरी, शहजहानी, दीनारशाही, औरंगशाही, फरूखाबादी, अहमदशाही, नजीमशाही, नादिरशाही, कुंदादार, नादिरसाई, हिरन, लखनऊ, मछलीदार, गोपालसाई, जैपुरी, गोहद ग्वालियर, सूरती, कल्दार, नारोशंकरसाई या झांसीसाई, राजासाई कुन्दा लगी। स्वर्ण मुद्राओं के अतिरिक्त यहाँ रजत मुद्राओं का भी प्रचलन था। जो निम्न नामों से विख्यात थी- गजासाई (टीकमगढ़, ओरछा), टीकमगढ़ी, राजशाही (दतिया), नालदार (पन्ना), किसोरसाई (पन्ना), चरखारी का रुपया, रतनसाई (बिजावर), राजासाई

(छतरपुर), अलीपुरा का रुपया, गजासाई (करेरा), श्रीनगरी रुपया, जालौन का रुपया, बालाशाही, सागर का रुपया, कालपी का कलदार, नानासाई झांसी, तरौहा (कर्बी) का रुपया, गोपालसाई (पन्ना), इमलिया का रुपया, मौदहा का रुपया, नरवर का रुपया, प्रागी मोहम्मदशाही का रुपया, ग्वालियर का पुराना सिक्का, चंदोड़ी रुपया, बजरंगगढ़ी, नागपुरी, सिंरौज का रुपया, रकमी रुपया, और कलदार। इन मुद्राओं के अतिरिक्त कुछ मुद्राये ताबें की चलती थीं। इन मुद्राओं का मूल्य अलग था।[206]

अस्त्र-शस्त्र :-

अपने वर्चस्व के लिये संघर्ष करना मानव का सदैव से स्वभाव रहा है। जब औजारों का अविष्कार नही हुआ था, उस समय वह अस्थियों के टुकडों और पत्थरों का प्रयोग संघर्ष के लिये करता था। उसके पश्चात् उसने तीर-कमान व धातुओं के अस्त्रशस्त्रों का निर्माण किया। तुर्को और मुगलों के युग में वह आग्नेय अस्त्रों का प्रयोग करने लगा। बुन्देलखण्ड के नरेश अपने वर्चस्व के लिये निम्नलिखित अस्त्रशस्त्रों का प्रयोग करते थे -

1. तोड़ादार बंदूक 2. पिस्तौल 3. रफल 4.शेरदहां 5. तमंचा 6. गुराब 7. खुदकुला 8. जिरहकुला 9. जिरहचिलता 10. चार आइना 11. जिरह पायजाम 12. दस्ताना 13. पेटी 14. तख्तर 15. सैंफ 16. तलवार 17. तेंगा 18. पेशकब्ज 19. कटार 20. बिछुआ 21. कत्ता 22. खाड़ा 23. कारबैन 24. घोडें की पाखरी 25. बरछी 26. तोप 27. सांग 28. बान 29. सूजा 30. पट्टा 31. वधा या वधनख 32. कुलंग 33. भारू 34. धन्नाल 35. हाथी की पारखी 36. चक्कर 37. गुप्ती 38. गुलेल 39. तीर कमान 40. गुजे 41. तलब 42. सिप्पा।[207]

ये अस्त्र-शस्त्र मानव के जीवन और सम्पत्ति की रक्षा करते थे तथा इनसे हमारे राज्य की सीमायें सुरक्षित रहती थी।

(क) परम्परायें, लोक-रीति एवं तीज-त्योहार :-

बुन्देलखण्ड की संस्कृति आर्यो और अनार्यो की मिली-जुली संस्कृति है तथा यहाँ आने वाले विदेशी व्यक्तियों ने भी यहाँ की संस्कृति को प्रभावित किया। चन्देल युग में विविध प्रकार की सामाजिक रीतियाँ यहाँ प्रचलित थी, जिसका विस्तृत वर्णन तद्युगीन इतिहासकार अलबरूनी ने किया है। उसके अनुसार प्रत्येक घर में अतिथि का सत्कार होता था, ब्राह्मण के घर मे बिना पैर धोये कोई प्रवेश नही कर सकता था, ब्राह्मणों का सर्वत्र समादर होता था तथा विदेशियों के प्रति भी यहाँ के निवासी कोई घृणा का भाव नही रखते थे।

बुन्देलखण्ड में विविध धर्मो के अनुयायी रहते थे, जो अपने अपने धर्म के अनुसार अपने रीति-रिवाजों का पालन करते थे। यहाँ के कृषक वैशाख सुदी तीज को कृषि कार्य प्रारम्भ करते थे। केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार- उस दिन खेत और मिट्टी की पूजा की जाती थी और बीज बोना भी आरम्भ कर दिया जाता था। वर्तमान 'अरवती' और 'हरैता' त्योंहारों का जन्म इसी रीति से हुआ। देवशयन का भी सम्बन्ध खेती से जोड़ा गया था। आषाढ़ सुदी एकादशी को देवशयन, फिर कार्तिक

सुदी एकादशी जागरण, इन दोनों अवसरों पर कृषि सम्बन्ध की पूजा अनेक रीतियों से होती थी। ऐसे ही बालिकाओं और पशुओं के पूजने की रीतियाँ प्रचलित थी।[208]

कुछ अंधविश्वास भी यहाँ प्रचलित थे। यहाँ के लोग अशिक्षित होने के कारण कर्म पर विश्वास न करके भाग्य पर विश्वास करते थे, वे सुख और दुःख परमात्मा का दिया हुआ मानते थे। इस क्षेत्र में रहने वाले आदिवासी अनेक प्रकार के काल्पनिक देवी देवताओं की पूजा करते थे। परम्पराओं के अनुसार यहाँ अमावस्या को खेत पर हल चलाना वर्जित था। इसी प्रकार कृषि के प्रारम्भ और अन्त में कृषि यन्त्रों की पूजा की जाती थी। जब कोई बीमारी फैलती थी, तो उसे दैवी प्रकोय समझा जाता था। समाज में तांत्रिकों और अघोरपंथियों का प्रभाव पढ़ गया था।

बुन्देलखण्ड में बाल विवाह की प्रथा प्रचलित थी। पहले लड़कों के विवाह पन्द्रह वर्ष और लडकियों के विवाह बारह वर्ष में हो जाते थे। विवाह पण्डित और नाऊ मिलकर तय करते थे। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- ब्याहों की रीतियाँ साधारण है। व्याहों के अवसरों पर स्त्रियाँ अश्लील गीत गाती है और बरातियों तथा मेहमानों पर रंग डाला जा सकता है। ब्याहने के लिये बारात चली जाने पर लडके के घर की स्त्रियाँ मनोरंजन के लिये बाबा का स्वाँग बनाती है।[209]

तुर्कों के आगमन के पूर्व बुन्देलखण्ड में पर्दा प्रथा नही थी। क्षत्रिय कुलों में कन्या वध की प्रथा भी प्रारम्भ हुयी। क्षत्रियों का यहा मानना था कि मुसलमानों के हाथों में जाने की अपेक्षा कन्याओं का वध स्वतः कर देना ज्यादा अच्छा है। इसके अतिरिक्त भी कई कुप्रथायें, जो पशुबलि, नरबलि से सम्बन्धित थी, बराबर जारी रही।

बुन्देलखण्ड की पावन भूमि में व्यक्तियों के आनन्द मनाने के उत्सव सदैव उपलब्ध रहे हैं। यहाँ प्रत्येक माह की एकादशी, प्रदोष, अमावस्या और पूर्णमासी का विशेष महत्व है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मास में कोई न कोई त्यौहार होता रहता है, ये त्यौहार निम्नलिखित है -

1. कजलिया एवं श्रावणतीज :- श्रावण मास के प्रारम्भ में छियूल के पत्ते से निर्मित दोनों में मिट्टी भरकर गेहूँ के दाने बो दिये जाते है। जब ये अंकुरित हो जाते हैं, उस समय श्रावणमास की पूर्णमासी के दिन इन्हें तालाब और नदियों में विसर्जित कर दिया जाता है। यह त्यौहार कृषि से सम्बन्धित है। इसी प्रकार श्रावण तीज का महत्व भी बहुत अधिक है। इस दिन लोग देवालयों के अतिरिक्त किसी पेड़ की डाल में झूला डालते है, उसमें स्त्री-पुरुष श्रावण मास के अन्त में झूला झूलते है। इस अवसर पर चिलगोजा और बांसुरी बजाने की प्रथा है। स्त्रियाँ श्रावण मास में मेंहदी लगाती है तथा भक्त जन शिव मन्दिर में नित्य दर्शनार्थ जाते है।

2. मामुलिया :- यह त्यौहार कुंवार माह की पितृ पक्ष में सम्पन्न होता है। इसमें एक काँटें में फूल लगाकर लड़कियाँ पूर्वजों को श्रद्धान्जलि देने के लिये किसी जलाशय में जाती है और वहाँ पुष्प विसर्जित करती हैं। पन्द्रह दिनों बाद मामुलिया का विर्सजन किया जाता है।

3. हरछठ :- यह त्यौहार भाद्र मास की सुदी छठ को होता है। इस दिन औरते उपवास रखकर

छियूल के वृक्ष के साथ हल की पूजा करती है और पूजा के उपरान्त भैंस के दूध-दही और उनके घी से बनी वस्तुओं का सेवन करती हैं। पसई के चावल भी खाने का रिवाज है।

4. **सन्तान सप्तमी** :- यह पर्व भाद्र मास की सप्तमी को होता है। यह वृत स्त्रियाँ सन्तान की मंगल कामना के लिये रखती है और पुआ खाकर व्रत तोड़ती है। हाथों में चाँदी के कड़े पहनती है।

5. **महालक्ष्मी** :- यह व्रत कुँवार बदि अष्टमी को होता है। इस दिन औरते व्रत रखकर लक्ष्मी जी का पूजन करती है।

6. **दशहरा** :- यह त्यौहार कुँवार सुदी दशमी को सम्पन्न होता है। इस समय भगवान श्री रामचन्द्र जी ने रावण का वध किया था। देवी ने भैसांसुर पर विजय प्राप्त की थी। इस दिन मछली दर्शन और नीलकंठ का दर्शन शुभ माना जाता था।

7. **नौरता और झिझिया** :- कुँवार की नवरात्रि में लडकियाँ यह व्रत रखती है। एक छोटा सा चबूतरा बनाकर उसमें पार्वती देवी की मूर्ति स्थापित करती है तथा व्रत के अन्तिम दिन एक कुम्भ में छेद करके और उसके अन्दर दीप जलाकर पूरे गाँव में नृत्य करती है। इस नृत्य को झिझियां नृत्य कहते है। पूरे बुन्देलखण्ड में इसकी प्रथा है।

8. **अखती** :- यह त्यौहार वैषाख सुदी तीज को सम्पन्न होता है। इस दिन से कृषक अपने कृषि औजारों की पूजा करके कृषि कार्य प्रारम्भ करता है। इस दिन गाँव का जमीदार भूमि पूजन करता है, उसके पश्चात् सभी कृषकों का स्वागत करता है और स्त्रियों को कोहरी बाँटता है।

9. **तीजा** :- यह त्यौहार भाद्र मास की शुक्ल पक्ष की तृतीया को होता है। इस दिन विवाहित स्त्रियाँ चौबीस घंटे का निर्जला व्रत रखती है। शिव और पार्वती की पूजा करती है, भगवान शिव की स्मृति में गीत गाती है और पवित्र जलाशयों में स्नान करती है।

10. **नवरात्रि और जवारा** :- यह त्यौहार वर्ष में दो बार कुँवार और चैत माह में होता है। इस त्यौहार में नव दिन तक देवी की उपासना की जाती है तथा अष्टमी और नवमी को जवारा निकलते है। कुछ लोग सांग से मुख भी छिदवाते है। इस अवसरों में देवस्थलों में उगाये गये जवारा नवमी के दिन जलाशयों में विसर्जित किये जाते है।

11. **इच्छानवमी** :- यह त्यौहार कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष की नवमी को होता है। इस दिन ऑवले के वृक्ष के नीचे भोजन करने की प्रथा हैं।

12. **दीवाली** :- यह त्यौहार कार्तिक मास की अमावस्या को सम्पन्न होता है। इस दिन लोग रात्रि के समय गणेश लक्ष्मी की प्रतिमा की पूजा करते है और घरों में दीपक जलाते है। इसके पूर्व धनतेरस के दिन भगवान धन्वन्तरि की पूजा करते है और नये बर्तन खरीदते है। चर्तुदशी के दिन घरों की सफाई की जाती है तथा परीवा के दिन गोर्वधन पूजा होती है। यादव जाति के लोग यह त्यौहार विशेष प्रकार के नृत्य करते हुए मनाते हैं। इस नृत्य को दिवारी कहते हैं।

13. **होली** :- यह त्यौहार फागुन मास की पूर्णिमा का सम्पन्न होता है। इस दिन प्रहलाद और

होलिका की स्मृति में आग लगाकर यह त्यौहार मनाया जाता है तथा उस अग्निकुण्ड की आग ले जाकर प्रत्येक घरों में होलिका दहन किया जाता है। होली के दूसरे और तीसरे दिन रंग खेलने की प्रथा है। इस अवसर कही कही पर बेड़िने शराब पीकर राई नृत्य भी करती है।

14. मकर संक्रान्ति या खिचड़ी :- यह त्यौहार प्रतिवर्ष जनवरी मास की 13-14 जनवरी को होता है। इस दिन लोग पवित्र जलाशयों में स्नान करते है। भगवान शिव की पूजा करते है और खिचड़ी का दान गरीबों को देते है। पवित्र जलस्थलों में मेलों का आयोजन भी इस दिन होता है।

15.सकट-गणेश :- मकर संक्रान्ति के कुछ दिन बाद सकट-गणेश का त्यौहार होता है। इस दिन सिंघाडें के आटे और तिल के लड्डू बनाकर गणेश जी की उपासना की जाती है। शकलकन्द और सिघांडें की लपसी खाकर इस त्यौहार को स्त्रियाँ धूमधाम मे मनाती है ।

16. महाशिवरात्रि :- यह त्यौहार फागुन मास की कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी और चर्तुदशी को मनाया जाता है। ऐसी मान्यता है कि इस दिन भगवान शिव का विवाह सम्पन्न हुआ था। शिव भक्त इस दिन वृत रखते है, शिव मन्दिर के दर्शन करते है और रात्रि जागरण करते है। इस अवसर पर कई स्थलों में मेले भी आयोजित होते है।[210]

बुन्देलखण्ड में रहने वाले मुसलमान भी अपने तीज-त्योहारों को बड़े धूमधाम से मनाते हैं। जब मुसलमान विदेश से भारतवर्ष आये और उनका प्रभाव बुन्देलखण्ड में पड़ा। उस समय से वे अपने तीज-त्योहार यहाँ भी मनवाने लगे।

1. मुर्हरम :- इस्लामी पंचाग के अनुसार इनका वर्ष मुर्हरम से प्रारम्भ होता है। हजरत मोहम्मद साहब की मृत्यु के पश्चात् इनके परिवार में उत्तराधिकार के लिये जो संघर्ष हुआ, उसी की स्मृति में यह त्यौहार मनाया जाता है। सुप्रसिद्ध विद्वान राधेश्याम के अनुसार- सभी मुसलमान कर्बला युद्ध में शहीद हुये लोगों की याद में शोक मनाते है। शिया हुसैन के उस युद्ध में मारे जाने को निन्दनीय कार्य समझते हुये उसकी याद में मुर्हरम के दिनों में खुल्लम-खुल्ला शोक मनाते है।[211] यह त्यौहार बुन्देलखण्ड में दस दिनों तक मनाया जाता है। त्यौहार के अन्तिम दिन ताजिया निकाले जाते है।

2. हजरत मोहम्मद साहब का जन्म दिन :- यह त्यौहार उनके जन्म समय 12वीं रबी उल अव्वल को मनाया जाता है। यह बाराबफात अथवा ईद-उल-मिलाद के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन लोग दरिद्र व्यक्तियों और दीन-दुखियों को भोजन कराते है।

3.शव-ए-रात :- यह त्यौहार शवान के मास में चौदह तारीख को मनाया जाता है। मुसलमानों का विश्वास है कि खुदा इस दिन मुसलमानों का भविष्य और भाग्य का निर्धारण करता है। इस दिन मुसलमान रात भर जगते है और पूजा पाठ करते है। इस त्यौहार का वर्णन अमीर खुसरों ने इस प्रकार किया था- दिल्ली में बच्चे आतिशबाजी करते थे और सम्पूर्ण रात्रि में चारों ओर जगमगाहट दिखाई पड़ती थी। प्रत्येक मुसलमान मस्जिद में जाकर एक दिया जलाता था, जिससे सम्पूर्ण रात्रि प्रकाशमय हो जाती थी और कही भी अंधकार नही दिखाई देता था। सुल्तान फिरोजशाह तुगसक शब-ए-रात

का त्यौहार बड़े धूम धाम से मनाया करता था।[212]

4. ईद-उल-फितर :- यह त्यौहार रमजान के महीने की समाप्ति पर मनाया जाता है। इसके पहले प्रत्येक मुसलमान एक माह तक रमजान के रोजे रखता है और उसके बाद चाँद दिखने के बाद यह त्यौहार मनाया जाता है। मिनहाज के अनुसार- रमजान के महीने के अन्त में मुसलमानो का सबसे बड़ा त्यौहार ईद-उल-फितर होता था। यह त्योहार बहुत ही लोकप्रिय व महत्वपूर्ण था। रमजान के महीने में प्रतिदिन तजकीरें हुआ करती थी। व्रत और उपवास का महीना समाप्त होते ही हर्ष एवं उल्लास के भरा हुआ ईद का त्यौहार आता था। इब्नबतुता ने सुल्तान मुहम्मद तुगलक द्वारा ईद का त्यौहार मनाये जाने का रोचक विवरण दिया है।[213]

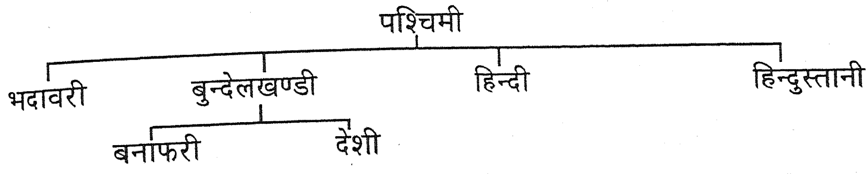
5. ईद-उल-जुहा :- इस्लामी पंचाग के अनुसार वर्ष के अन्तिम माह में दसवें दिन बकरीद का त्यौहार मनाया जाता है। मुसलमानों के अनुसार ईश्वर ने इब्राहिम की इस्लाम के प्रति निष्ठा की परीक्षा लेने के लिये उससे कहा, कि तुम मक्का के समीप मीना नामक स्थान में ईश्वर के लिये अपने पुत्र की बलि दो। इब्राहिम ने, जिसे ईश्वर पर पूर्ण विश्वास था, निःसंकोच अपने पुत्र की बलि देना स्वीकार किया। उसने अपनी आँखों में पट्टी बाँधी और पुत्र की बलि दे दी, किन्तु जैसे ही उसने अपनी आँखों से पट्टी खोली, उसने अपने पुत्र को सामने खड़ा देखा और एक दुम्बे को उसके स्थान पर कटा हुआ पाया। इस त्यौहार पर ऊँट, भेड़ या बकरे की बलि दी जाती थी और उसके बाद जश्न मनाया जाता था।[214]

6. उर्स :- जब कोई मुसलमान किसी मजार, दरगाह और धार्मिक स्थलों में कोई मन्नत मानते है अथवा किसी सूफी-संत की वर्षी मनाते है, उस समय यह आयोजन मकबरों और दरगाहों में आयोजित होता है। बुन्देलखण्ड में अनेक स्थलों में सूफी-संतों की मजारें उपलब्ध है। उन मजारों पर ऐसे उर्स आयोजित होते रहते हैं। बाँदा शहर में जामा मस्जिद के सन्निकट गोल कोठी का मजार पर यह आयोजन प्रतिवर्ष होता है। इसी प्रकार मौदहा, झांसी, ललितपुर, ग्वालियर, आदि स्थलों में ऐसे आयोजन प्रतिवर्ष होते है।

(ख) बुन्देलखण्ड के निवासियों की भाषा :-

बुन्देलखण्ड में बोली जाने वाली भाषा बुन्देलखण्डी के नाम से विख्यात है। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- संयुक्त देश के बाँदा, हमीरपुर, झांसी, ललितपुर, ग्वालियर राज्य का सब पूर्वी भाग, मध्य प्रदेश के सागर, दमोह, जबलपुर जिले, बघेलखण्ड के पश्चिमी भाग, इलाहाबाद जिले के गंगा से दक्षिण का भाग तथा मध्यवर्ती बुन्देलखण्ड और भोपाल के उत्तरी तथा पूर्वी भागों की मुख्य भाषा बुन्देलखण्डी ही है।[215] सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में बुन्देलखण्डी भाषा बोलने वालों की संख्या सन् 1929 से 48 लाख थी । इसकी उपभाषायें कुछ इस प्रकार थी- वे तिरहरी, पठा, अन्तर्पठा, जुरार, कडरी, बगरावण, अधर, बनाफरी, लुधयाट आदि है।[216] कुछ बाहरी व्यक्तियों के आ जाने के कारण यहाँ की भाषा में व्यापक परिवर्तन हुआ। यह भाषा इण्डों यूरोपियन शाखा के संस्कृत कुल

में रखी गयी, जो इस प्रकार है-



सुप्रसिद्ध विदुषी और सहडोल रेडियों स्टेशन की निर्देशिका श्रीमती अरूणेन्द्र चौरसिया ने अपने शोध प्रबन्ध में बुन्देलखण्डी भाषा का वर्गीकरण क्षेत्र के हिसाब से किया है, वह इस प्रकार है-

भाषा का विस्तार सहित प्रारूप -

सम्भाग	जिला	भाषा
झांसी	जालौन	लुधटी, स्तरीय बुन्देलखण्ड, गठौरी,
	हमीरपुर	लुधाटी, दक्षिणी पूर्वी भाग, कुरडी, राठौरी
	बाँदा	बनाफरी, कुडरी
	ललितपुर	स्तरीय बुन्देली
	झांसी	स्तरीय बुन्देली
ग्वालियर	ग्वालियर	पूर्वी भाग में प्रमाणित बुन्देलखण्डी उत्तरी भाग में पवाँरी बुन्देलखण्डी
	मुरैना	भदावरी, तोमरगढ़ी
	शिवपुरी	,,
	भिण्ड	,,
सागर	दतिया	पवाँरी
	सागर	प्रमाणिक बुन्देलखण्डी
	दमोह	खटोला
	टीकमगढ़	प्रमाणिक बुन्देलखण्डी
जबलपुर	मंडला	गोडवानी
	नरसिंहपुर	लुधाटी
	गहरवाडा	लुधाटी
	जबलपुर	खटोला, प्रमाणिक बुन्देली
रीवा	पन्ना	खटोला, प्रमाणिक कुडरी, प्रमाणिक बुन्देलखण्डी, बनाफरी, कुडरी
	हुसंगाबाद	छिन्दवाड़ा बुन्देली (मराठी भाषा का मिश्रण) नागपुरी हिन्दी
	सिहोर	खटोला

बुन्देली और बृज भाषा में कोई खास अन्तर नहीं है। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है-

बाजत नागरे अनयारे ये बुन्देला के, आरती उतारती त्यौ रम्भा गीत गावती।

शिव छांड आसन गरूड़ गोविन्द आसन, धाये धाये फिरत आज बंका की अबावती।।[218]

भाषा की दृष्टि से भी बुन्देलखण्ड अपनी पृथक पहचान रखता है।

(ग) बुन्देलखण्ड के निवासियों की वेश भूषा एवं अलंकार :-

बुन्देलखण्ड के निवासी सदैव से ऐसे वस्त्र धारण करते थे, जो अन्य क्षेत्रों से अलग पहचान बनाते थे। सुप्रसिद्ध विद्वान केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार- लोग शरीर के अधोभाग में नीचे तक की लम्बी धोती, कुची ताला या परदनी पहनते थे। घुटन्ना पहनने की परिपाटी भी पुरानी है। भारतवासी अपेक्षाकृत कम वस्त्र पहनते थे। धोती और पगडी सामान्य पोशाक थी। अधों वस्त्रों में पैजामे का प्रयोग प्रचलित होने लगा था। ऊर्ध्व वस्त्रों मे पुरुष मिरजई और बगलबन्दी ढ़ग का वस्त्र पहनते थे। स्त्रियाँ फुतुही और अँगरखा पहनती थी।[219]

वस्त्रों के अतिरिक्त यहाँ आभूषण पहनने की प्रथा भी पुरानी है। प्राचीन काल में स्त्री, पुरुष, सम्राट और गरीब सभी आभूषण धारण करते थे। ये आभूषण सोने, चाँदी, कांसा, काँच, सीप, और शंख से निर्मित होते थे। केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार- बुन्देलखण्ड के भाग में आभूषणो का प्रचलन उस समय अपेक्षाकृत अधिक था। स्त्रियाँ और बालक पैर में पैजना, साँकर, बिछियाँ और अनोटा पहनते थे। गले में मूल्यवान कंठहार, खंगैरिया और हमेल की भांति का आभूषण पहनते थे। हाथों की विविध आभूषणों से सजाया जाता था। हाथ के लोकप्रिय आभूषणों में खग्गा और बरा था। कान और सिर को वे मनोहर आभूषणों से अंलकृत करते थे। इन आभूषणों में कर्णफूल, साँकर, शीशफूल और बीज आदि थे। हाथ की अँगूठी, माला आदि स्त्री पुरुष दोनो प्रेम से पहनते थे।[220]

इस परिक्षेत्र में सिर पर पगड़ी बांधने का रिवाज था तथा यहाँ पर रहने वाले मुसलमान दो पलिया टोपी लगाते थे। इसके अतिरिक्त यहाँ के निवासी धोती और कुर्ता पहनते थे। धोती को परदनी या पंचा कहते थे और गले में जो साफी डालते थे, उसे अंगोछा कहते थे। मुसलमान लोग कुर्ता, पैजामा, शेरवानी आदि धारण करते थे। उनकी औरतें बुर्का ओढ़ती थी। इस परिक्षेत्र में आभूषण पहनने का भी रिवाज था, जो अन्य क्षेत्रों से अलग था। यहाँ के कुछ गहने निराले ढ़ंग के होते है। वे सोना, चाँदी, कांसा, पीतल, काँच, सीप, शंख आदि के बनते है। पैरों के जेवर पैजना, साँकर, अनोटा और बिछिया, हाथों के बरा और खग्गा, गले की खंगौरिया और हमेल, कानों के कर्णफूल और साँकर तथा माथे के बीज और शीस फूल आदि है।

इस प्रकार हम देखते है, कि बुन्देलखण्ड निवासियों की वेश-भूषा और रहन-सहन की स्थित अन्य क्षेत्रों से प्रथक पहचान रखती है।

(घ) बुन्देलखण्ड के निवासियो की लोक-संस्कृति एवं कला :-

बुन्देलखण्ड के निवासी अपनी लोक-संस्कृति के प्रति बहुत अधिक जागरूक थे।

इसका प्रथम स्वरूप यहाँ की संस्कार व्यवस्था है। बुन्देलखण्ड का समाज सोलह संस्कारो का अनुपालन करता था। ये संस्कार जन्म से लेकर मृत्यु तक के है। मुख्य रूप से गर्भाधान, पुंसवन, जन्मोत्सव, नामकरण, अन्नप्राशन, चुडाकर्ण, कर्णछेदन, मुंडन, विद्यारम्भ, विद्यासमाप्ति, विवाह और मृत्यु आदि होते है। यहाँ के मुख्य संस्कारों में जन्म, मुण्डन, तथा विवाह आदि के संस्कार है। ये संस्कार जहाँ सामाजिक संबंधों को जन्म देते है, वहीं ये विभिन्न प्रकार की लोकरंजक की भावना से भरे हुये है।[221]

सामाजिक संस्कारों के अलावा बुन्देलखण्ड के समाज में अनेक धार्मिक संस्कार भी होते थे। इन संस्कारों में भूमि-पूजन, मंदिर में मूर्ति स्थापना, यज्ञ, हवन, भजन, कीर्तन, तथा सद्ग्रन्थ पाठ आदि शामिल है। इन धार्मिक संस्कारों के माध्यम से यहाँ का व्यक्ति प्रतिदिन धार्मिक स्थलों की सैर करने जाता था और धार्मिक तीज त्योहारों में बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ भाग लेता था। परमात्मा का भजन करता था। इसका उदाहरण यहाँ प्रचलित इस लोक भजन से लगाया जा सकता है-

राम भज लैयो रे- कपट मन छोड़ के!
आये यमराज जबहि फांसी डारी डोर से!
कोटन करे उपाय-ले गये वे मरोर के! राम....![222]

चित्रकला-

इस परिक्षेत्र में चित्रकला के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते है। यद्यपि चन्देल युग में चित्रकला का कोई विशेष उदाहरण उपलब्ध नहीं होता, फिर भी मूर्तियाँ नीले, हरे, लाल, और पीले रंगों से रंगी गयी है। खजुराहों के जैन मन्दिरों में इस प्रकार के रंग लेपों के उदाहरण उपलब्ध होते है। प्राचीन चित्रकला के उत्कृष्ट उदाहरण हमें शैल-चित्रों और गुफा चित्रों के माध्यम से उपलब्ध होते है। बांदा जनपद के अनेक स्थलों में अति प्राचीन चित्रकारी के उदाहरण उपलब्ध होते है। मुख्य रूप से सरहट, कुरिया, कुंड, अमवा, उल्दन, बरगढ़, आदि में तद्‌युगीन चित्रकारी मिलती है।

पूर्व मध्य युग में चित्रकला का विकास हुआ और यह विकास मुगलकाल के अंत तक बना रहा। मुख्य रूप अनेक राजाओं ने अपने महलों, दरबार स्थलों और धार्मिक स्थलों में ऐसी चित्रकारी करवायी। दतिया, ओरछा, ओरछा, झांसी, पाथर कछार तथा पन्ना आदि में विभिन्न प्रकार के चित्रों का चित्रांकन मिलता है तथा कुछ चित्रों का निर्माण कुछ नरेशों ने पूर्वजों की स्मृतियां बनाये रखने के लिए भी किया।

बुन्देलखण्ड के प्रत्येक घर में विवाह एवं धार्मिक अवसरो पर रंगोली एवं चित्र बनाने की परम्परा थी। ये चित्र करवा चौथ, दीवाली तथा अन्य अवसरों पर बनाये जाते थे। चित्रों के अतिरिक्त हाथ में गुदना गुदवाने की भी प्रथा थी।

लिपि-

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में भाषा का लेखन कार्य भी एक प्रथा थी। लेखनशैली का पता यहाँ उपलब्ध अभिलेखों से चलता है। केशव चन्द्र मिश्र के अनुसार- चन्देलों के अभिलेखों में सब ओर

और सब समय एक ही लिपि का प्रयोग पाया जाता है। वह लिपि है, मध्यकालीन नागरी लिपि। लेकिन अभिलेखकों ने उत्कीर्ण लेखों के अंत में अथवा शिल्पियों ने मन्दिर के फलकों पर अपने नाम कुटिल अक्षरों में अंकित किये गये हैं, परन्तु यह लिपि प्रचलित नहीं थी।[223] जब कागज का अविष्कार हुआ और लिखने के लिए स्याही बनी, उस समय लेखनशैली में व्यापक परिवर्तन हुए। पूर्व मध्यकाल और मध्ययुग की अनेक पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध होती है, जिससे उस युग की लेखनशैली का पता लगता है। तद्‌युगीन मुसलमान जागीरदार और शासक जिस भाषा और लिपि का प्रयोग करते थे, वह लिपि अरबी और फारसी थी। मुसलमानो के अभिलेख और दस्तावेज इसी भाषा में उपलब्ध होते है।

अभिनय कला-

बुन्देलखण्ड में अभिनय कला अति प्राचीन काल से है। सुप्रसिद्ध नाट्यशास्त्र के लेखक भरतमुनि ने जिन दस जातियों का उल्लेख अपने नाट्यशास्त्र में किया है, उनमें से अधिकांश जातियाँ बुन्देलखण्ड की है। चन्देलयुग में नाट्यकला का विकास हुआ। सुप्रसिद्ध विद्वान केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार- प्रवोधचन्द्रोदय नाट्य यशस्वी सम्राट कीर्तिवर्मन के राजभवन में अभिनीत हुआ। इसकी योजना सामंत गोपाल ने की, जो इस कला का मर्मज्ञ एवं रसिक था। इस समय तक संस्कृत नाटकों का उपयोग अभिनय के क्षेत्र में आध्यात्मिक और लौकिक पक्षों के लिए हो गया था। रंग-मंचों का विकास बहुत ही उत्कृष्ट था। अभिनय, वस्त्राभरण, रंग-व्यवस्था, प्रकाश व्यवस्था, संगीत व्यवस्था का वैज्ञानिक विकास हो चुका था। दस प्रकार के प्रकाश की व्यवस्था के उदाहरण मिलते है।[224]

यह नाट्य विधि केवल राजाओं तक ही सीमित नहीं थी, अपितु गाँव-गाँव तक इसका प्रचार-प्रसार था। ग्रामों में कृष्ण-लीला, राम-लीला तथा विविध प्रकार के स्वांग प्रस्तुत किये जाते थे। अभिनय करने वाले कलाकार देशकाल परिस्थिति की अभिव्यक्ति संकेतों द्वारा प्रकट करते थे। अभिनव नाट्यशास्त्र के अनुसार-जंगल, उपवन, निर्झर, उद्यान, नदी-तट, पहाड़ी, वन,, मरुभूमि, खेत, भवनों के भीतर और बाहर के प्रकोष्ठ, युद्ध क्षेत्र आदि भारतीय रंगमंच पर पात्रों द्वारा ही व्यक्त हो जाते थे। 'पात्र स्वयं अपने अभिनय और बातचीत से उसका संकेत कर देते थे।[225] पूर्वमध्ययुग और मध्ययुग में नाटकों का विकास उन स्थलों में हुआ, जहाँ हिन्दू सामंतों का बाहुल्य था। डा० आशीर्वादी लाल के अनुसार-भारत में नाट्य कला अनन्य रूप से हिन्दू धारणा थी। यह हमें अत्यन्त प्राचीन समय से प्राप्त हुयी थी और इसका धार्मिक महत्व था। प्राचीन युग में यह निरन्तर फलती-फूलती रही और राजाओं तथा अमीरों द्वारा इसे संरक्षण मिलता रहा। किन्तु मध्ययुग में सिद्धान्त और व्यवहार दोनों की दृष्टि से इस कला में गिरावट की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हुयी।[226] मध्ययुग में फारसी शैली को अपनाकर कुछ धार्मिक, ऐतिहासिक और अर्ध ऐतिहासिक नाटकों का लेखन और मंचन हुआ। इस युग में रूप गोस्वामी ने विधमाधव, ललितमाधव एवं दानकेलि नाटक की रचना की तथा जगन्नाथ वल्लभ ने रामचन्द नाट्य की रचना की। ये नाटक श्रंगार-प्रधान और

शास्त्रीय विधि पर आधारित है। इन नाटकों में श्रृंगात्मक एवं प्रहसन वाले नाटक राजदरबारों में भी खेले गये। इनमें सूत्रधार जिसे नट के नाम से पुकारा जाता था और उसकी पत्नी को नटी के नाम से पुकारा जाता था। वे प्रारम्भ में नाटक का कथानक प्रस्तुत करते थे। उसके बाद नाटक का मंचन होता था। चरखारी नरेश ने आगाशाह के निर्देशन पर नाट्यशाला का निर्माण करवाया जहाँ गोवर्धन मेले के अवसर पर विविध नाटकों का मंचन होता था।

बुन्देले शासकों के युग में एक नवीन नाट्यशैली का उदय हुआ, जो गीत नाट्यशैली थी। इनमें पात्र गीत नाट्य के माध्यम से रंगमंच पर कथानक प्रस्तुत करते थे। यह नाट्य परम्परा नौटंकी के नाम से विख्यात् हुयी, इसमें पुरुषों के अतिरिक्त वेश्यायें नारी पात्र का अभिनय किया करती थी। बुन्देलखण्डी भाषा में ढोलामाक तथा हरदौल चरित्र आदि नाटक लोकप्रिय हुये। यह नाट्य परम्परा व्यक्ति मनोंरंजन का उत्तम साधन थे।

संगीत एंव नृत्य कला-

बुन्देलखण्ड में संगीत एंव नृत्य कला का इतिहास भी अत्यन्त प्राचीन है। अनेक प्राचीन देवस्थलों में अनेक मूर्तियाँ नृत्य और संगीत की मुद्रा में उपलब्ध होती है। इस समय संगीत और नृत्य राजदरबारों के अतिरिक्त अन्य स्थानों में भी प्रस्तुत किये जाते थे। सुप्रसिद्ध इतिहासकार केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार-सार्वजनिक स्थान और गोष्ठी-ग्रहों में ऐसी कलाओं में प्रदर्शन होता था। सर्वाजनिक विनोद के रूप में संगीत और नृत्य सबसे शिष्ट और उत्तम कला मानी जाती थी। संगीत सर्वाधिक लोकप्रिय कला थी, कला की दृष्टि से संगीत के अनेक वर्गीकरण हुये थे। नाटको में नृत्य के लिये प्रचुर अवकाश दिया जाता था।।[227]

संगीत एंव नृत्य कला पूर्व मध्ययुग में भी जारी रही। इस युग में अनेक महत्वपूर्ण संगीत ग्रंथो की रचना हुयी। इनमें सुप्रसिद्ध ग्रंथ संगीत रत्नाकर है, जिसका रचनाकाल 1010 से लेकर 1247 ई० माना जाता है। यह ग्रंथ भरत मुनि के नाट्यशास्त्र पर आधारित है। इसके पश्चात् सन् 1850 ई० में पारसदेव ने संगीत समय-सार और सुधा कलश की रचना की। इसी समय जयदेव ने गीत-गोविन्द की रचना की, इन ग्रंथों ने बुन्देलखण्ड को प्रभावित किया। मध्य युग में जब भक्ति आन्दोलन का शुभारम्भ हुआ, उस समय नामदेव, मीराबाई, सूरदास और तुलसीदास ने उच्चकोटि के पदों की रचना की थी। इनका गायन शास्त्रीय राग के आधार पर किया गया। इस समय शास्त्रीय संगीत में छः मुख्य राग तथा तीस रागनियाँ थीं। मुख्य रागों में भैरव, हिन्डोल, मेघ, श्रीराग, दीपक तथा मालकोष प्रमुख थे। ये राग पाँच-पाँच रागनियों से बँधे हुये थे। आइने अकबरी के अनुसार- प्रमुख संगीत वाद्यों को चार वर्गो में विभाजित किया जा सकता है- (1) तार वाले वाद्य, (2) गज से बजाने वाले बाद्य (3) ढोल के प्रकार के वाद्य (4) फूंक से बजाने वाले वाद्य। तार वाले वाद्य अथवा साजों की लोहे अथवा पीतल के तारों या सिल्क की डोरी से कसा जाता है। उन्हें लकड़ी या हाथी-दांत के टुकड़े या अंगुली के नाखूनों से बजाया जाता है। इस प्रकार के वाद्यों अथवा साजों में वीणा, सरोद, सितार,

तम्बूरा, रब्बाब आदि आते है। गज से बजाने वाले साज सारंगी, दिलरुवा, मयूरी आदि है। ढोल विभिन्न प्रकार के होते है और उन्हें हाथों से अथवा लकड़ी की छड़ियों से बजाया जाता है। इनमें पखावज, तबला, नक्कारा, ढोलक इत्यादि आते है। फूंक से बजाने वाले वाद्यों अथवा साजों में बीन, बाँसुरी, सुरना आदि है। इनमें से कुछ साजों को मुसलमानों द्वारा फारसी नाम दिया गया था। अक्सर कुछ साज कई वाद्य-वादकों द्वारा एक साथ मिलकर बजाये जाते थे। जिस साज को नौ वाद्य-वादक एक साथ मिलकर बजाते थे, उसे नौबत कहा जाता था।[228]

बुन्देलखण्ड में ग्वालियर नरेश मानसिंह तोमर, दतिया नरेंश भवानी सिंह, झाँसी नरेश गंगाघर राव, बाँदा नवाब जुल्फिकार बहादुर तथा कालिंजर नरेश रामचन्द्र बघेल ने संगीत और नृत्य कला को प्रोत्साहित किया।

शिल्पकला-

बुन्देलखण्ड में शिल्पकला के अनेक स्वरूप अति प्राचीन कला से उपलब्ध होते है। यह शिल्पकला, स्वर्णकारी, लौहकर्म, तथा रत्नकारी के रूप में देखने को मिलती है। यहाँ के धार्मिक स्थानों में स्त्रियों की जो मूर्तिया उपलब्ध हुयी है, उनसे आभूषण कला और वस्त्र कला के सन्दर्भ में जानकारी उपलब्ध होती है। यहाँ के शिल्पकार बेलबूटे, छापा और नक्काशी से अपनी कला को सजाते थे। बुन्देलखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में यह कला मुख्य रूप से विकसित हुयी। श्री केशव चद्र मिश्र के अनुसार- वहाँ पत्थरों से अन्य गृहोपयोगी सामग्रियाँ भी तैयार की जाती थी। कुरंडम पत्थर से बहुमूल्य वस्तुए बनायी जाती थी। कालीन बनाने और रंगाई का काम करने की कला भी कम महत्व का स्थान नही रखती थी। तत्कालीन साहित्य में स्थल-स्थल पर उसका मनोहर वर्णन मिलता है। चमड़े की कला यहॉ की अत्यन्त प्राचीन देन है। चमड़े से सामग्री तैयार करने की यहाँ की एक विशेष शैली थी। उसके नमूने जहाँ तहाँ आज भी दिखते है।[229]

पूर्वमध्यकाल और मध्य काल में मिट्टी के बर्तन बनाने की कला और धातु कला का व्यापक विकास हुआ। डा० आर्शीवादी लाल के अनुसार- उस युग में पीतल, सोने, चाँदी और अन्य धातुओ के सुन्दर और जडाऊ काम (कोफ्तगारी) के बर्तन बड़े पैमाने पर बनाये जाने लगे। सुन्दर, खुदे हुये बर्तन, पीतल के खिलौने, उभरी नक्कशी के नायक नायिकाओं के चित्रों से सुसज्जित ढ़ाले, रकबिया पर राशि चिन्ह, खुदे हुए फूलदान, उभरे काम की धातु की थालियाँ, जालीदार, उभरे काम के दीपाघार, कई प्रकार के पानी भरने के बर्तन, प्याले-प्यालियाँ, कॉफी सेट, विभिन्न प्रकार की पानी की सुराहियाँ, आघार सहित धूपदानियाँ आदि 17वीं और 18वीं सदी में अधिकता से बनायी जाने वाली विशेष प्रसिद्ध वस्तुएं थीं। इनका सारा काम हाथ से ही किया जाता था।[230] मुगल काल में ही रत्नों और रत्नजड़ित आभूषणों के प्रति भी मोह बढ़ा और इस कला का विकास हुआ। डा० आशीर्वादी लाल के अनुसार- मुगल सम्राट हीरे-जवाहरातों के बड़े शौकीन थे। हुमायूँ ने ग्वालियर के राजा विक्रमजीत के वंश से सुप्रसिद्ध कोहिनूर हीरा प्राप्त किया था। अकबर के पास भी दुर्लभ रत्नों का अच्छा संग्रह

ा। उसके पास बहुत से कीमती लाल थे, जिनकी दो मालाये बना दी गयी थी। जहाँगीर के जवाहरातों के कोष में अकबर के जवाहरात मिलाकर 1½ मन हीरे, 12 मन मोती, एक मन लाल, 5 मन पन्ने और एक मन जिनेवा के सिक्के थे।[231]

बुन्देखण्ड के अनेक क्षेत्रों में वस्त्र उद्योग भी विकसित हुआ। यहाँ चन्देरी, शेरपुर, सिहोड़ा, आदि क्षेत्रों में उत्तम किस्म का वस्त्र निर्मित होता था। यहाँ के बादशाह और सांमत कई रंगों के रेशमी और सोने चाँदी के धातुओं से जड़े वस्त्र निर्मित कराते थे।

इस प्रकार हम देखते है कि विविध प्रकार की शिल्पकला का विकास बुन्देलखण्ड में व्यापक रूप से हुआ और प्रत्येक क्षेत्र में यह कुटीर उद्योग व्यक्तियों की आजीविका का साधन बना।

(ङ) बुन्देलखण्ड में उपलब्ध महत्वपूर्ण साहित्य-

बुन्देलखण्ड की भाषा बुन्देली है, किन्तु यह बोल-चाल की भाषा है। आल्हखण्ड को छोड़कर कोई भी महत्वपूर्ण साहित्य बुन्देली भाषा में नहीं लिखा गया। सौभाग्य की बात है कि बुन्देलखण्ड में आदि कवि बाल्मीकि का जन्म हुआ। अट्ठारह पुराणों के रचयिता वेदव्यास का जन्म हुआ। इसके अतिरिक्त प्राचीन मनीषी सुतीक्ष्ण, सरभंग, मार्कण्डेय, अत्रि, दधिचि, शुक्राचार्य, बृहस्पति, नारद, चरक, पवन आदि ऋषियों के आश्रम यहाँ रहे, जिन्हानें अनेक स्मृति ग्रंथों और संहिताओं की रचना की।

बुन्देलखण्ड भाषा का विकास नवीं शाताब्दी के पश्चात् प्रारम्भ हो गया था। इस भाषा के विकास के लिए गुर्जर-प्रतिहारों, चन्देलों और उसके बाद के नरेशों ने बहुत सहयोग प्रदान किया। किन्तु इस भाषा का मुख्य विकास पूर्व-मध्यकाल और मध्यकाल में हुआ। इस भाषा में अनेक सीमावर्ती भाषा का भी प्रभाव पड़ा। पश्चिम में ग्वालियर से लेकर झाँसी तक बोली जाने वाली भाषा बृज से प्रभावित है। उत्तर में इसकी सीमायें पांचाल और वैश्वारा क्षेत्र से मिलती है, इसलिए इस भाषा में पांचाली और वैश्वरी का प्रभाव दिखाई देता है। पूर्व में इसकी सीमाये इलाहाबाद तथा रीवाँ क्षेत्र से मिलती है, इसलिए इस भाषा में बघेलखंडी और पूर्वी हिन्दी का प्रभाव देखा जाता है। बुन्देलखण्ड की दक्षिण की सीमायें महाराष्ट्र से मिलती है, इसलिए इस भाषा में मराठी शब्दों का प्रभाव दिखाई देता है। बुन्देलखण्ड में अनेक आदिवासी अनुसूचित जनजातियाँ निवास करती हैं, इनकी पृथक लोक संस्कृति है। उसका प्रभाव उनकी वाणी में स्पष्ट छाया है।

साहित्यिक गरिमा का वर्णन करते हुए सुप्रसिद्ध कवि गौरीशंकर द्विवेदी ने इस क्षेत्र की प्रशंसा इस प्रकार की-

बाल्मीक तुलसी है, केशव कवीन्द्र आदि
जिनके है प्रकटाई, कीर्ति चापधर.......।[232]

बुन्देलखण्ड की पावन भूमि में जनकवि जगनिक, गोस्वामी तुलसीदास जी, केशव, बलभद्र मिश्र, कल्याण जी मिश्र, बिहारदास जी मिश्र, बालकृष्ण और शिवलाल जी मिश्र उत्पन्न हुए।

बुन्देलखण्ड में ही बीरबल, जो अकबर के दरबार की शोभा थे, भी उत्पन्न हुये। कविवर रहीमदास जी चित्रकूट की पावन भूमि पर वर्षो रहें। इसी पावन भूमि में ओरछा के हरिराम शुक्ल, साहजू पण्डित लालकरन तथा पजनेस उत्पन्न हुए। दतिया राज्य में गदाधर कवि तथा ग्वालियर राज्य में तानसेन उत्पन्न हुए। चरखारी राज्य में खुमान, जवाहर, मोहन लाल तथा मानकवि अति प्रसिद्ध रहे। छतरपुर राज्य के ठाकुर कवि और गंगाघर व्यास ने उच्च कोटि की रचना की। अजयगढ़ राज्य के कवि परमानन्द, मऊ के कुंजीलाल और जनकेश तथा गिरधारी अच्छे कवि थे। सिहोड़ा राज्य के हरिकेश, जैतपुर के मंडन कवि, बाँदा के पदमाकर भट्ट, झाँसी के लाला नवल सिंह तथा हृदेश अच्छे कवि थें। बुन्देलखण्ड के अनेक रियासतों के नरेश भी कविता करते थें और कविता से प्रेम करते थे। श्री गौरीशंकर द्विवेदी के अनुसार - ओरछा नरेश महाराजा मधुकरशाह, इन्द्रजीत सिंह (धीरजनरिन्द्र), महाराजा भारतीचन्द्र और महाराजा विक्रमजीत सिंह, पन्ना नरेश बुन्देलखण्ड-केशरी महाराजा छत्रसाल, चरखारी-नरेश महाराजा विक्रमादित्य, महाराजा रतन सिंह, मलखान सिंह, दतिया नरेश महाराजा शिवदास शत्रुजीत सिंह, विजावर नरेश महाराज भानुप्रताप, समथर नरेश राजा हिन्दूपति, चँदेरी-नरेश देवीसिंह, विजना के जागीरदार भारतशाह तथा बुँधौरा के जागीदार राजा दुर्जन सिंह अच्छें- अच्छें सुकवियों और कवियों के आश्रयदाता हुए हैं।[233] पन्ना, छतरपुर, बिजावर, अजयगढ, चरखारी और दतिया नरेशों ने भी कवियों को राजाश्रय प्रदान किया।

बुन्देलखण्ड में ही 16 वीं और 17वीं शताब्दी में महाराजा इन्द्रजीत सिंह, धीरज (धीरजनरिन्द), पुरुषोत्तम, मोहन लाल, कपूर मिश्र, मोहन दास मिश्र और मंडन कवि हुए। इसी प्रकार छत्रसाल महाराज ने भी स्वतः रचना की और कवियों को राजाश्रय प्रदान किया। इनके दरबार में प्राणनाथ, मेघराज, लालकवि, अनन्य कवि महाराज विक्रमजीत सिंह, विष्णुदास, सुदर्शन, कृष्णदास, श्रीपति भट्ट, कोविद मिश्र, वैकुण्ठमणि, हरिश्चन्द्र, देवीदास, रसिनिधि, मोहनभट्ट, कुदंन, दिग्गज, धनराम, गुलाल सिंह, केशवराम, , राजा दलपतिराय, कुँवर त्रिलोक सिंह, भवान रसलाल, खड्गराम, रतन, हरिसेवक मिश्र, हरिकेश, बक्शी, हंसराज, हिम्मत सिंह, कृष्ण गुणदेव, दलसिंह, खंडन, पंच्चम सिंह, गोपाल भट्ट, विजयाभिनन्दन, शिवनाथ और पुण्डरीक जैसे कवि उत्पन्न हुये।

18वीं शताब्दी में भी बुन्देलखण्ड में कवियों का बाहुल्य था। इस युग में पद्यमाकर, ठाकुर, प्रताप नवखान, करन, नवल सिंह, नरोत्तम, गंगाधर, गजनेस गदाधर, अवधेश, शंकर हृदयेश, परमानन्द, काली कवि, जनकेश, भगवानदीन, बलदेव वर्मा, राधालाल गोस्वामी आदि कवि हुए है, जिन्होंने बुन्देलखण्ड की गरिमा को महिमामंडित किया है। यहाँ के साहित्यकारों ने अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय देते हुए अति सुन्दर काव्य रचनाएं प्रस्तुत की। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में तुलसी का रामचरित मानस और जनकवि जगनिक द्वारा रचित आल्हखण्ड सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ हुए है।

बुन्देलखण्ड में उत्पन्न पुरुषोत्तम दुबे, जो बीरबल के नाम से विख्यात् थे तथा जिन्होंने कालिजर नरेश रामचन्द्र बघेल के अतिरिक्त अकबर के दरबार की शोभा बढ़ाई, वे ब्रह्म कवि के नाम

से कविता करते थे। उनका यह उदाहरण दृष्टव्य है -

उछरि उछरि भेकी झपटै उरग पर, उरग पै कोकिन के लपटै लहकि है,

केकिन के सुरति हिए की ना काहू है भए, एकी करी केहरि न बोलत बहकि है।[234]

ओरछा दरबार की नर्तकी और सुकवि केशवदास की प्रेयसी राय प्रवीण भी अच्छी कवियित्री थी। उसने भी उच्च कोटि के काव्य की रचना की। उसका भी उदाहरण दृष्टव्य है-

सीतल समीर ढ़ार, मंजन कै घनसार,

अमल अंगौछे आछे मन से सुधारिहौं,

दैहों ना पलक एक, लागन पलक पर,

मिलि अभिराम आछी, तपनि उतरिहौं।[235]

अकबर के दरबार के राजा टोडरमल भी एक अच्छे कवि थे। इनका जन्म भी कालपी में वि०स० 1580 में हुआ था। ये शेरशाह सूरी के दरबार में भी रहे है। इनकी मृत्यु वि०स० 1646 में हुयी। इन्होंने अपनी कविता वि०स० 1631 से लिखना प्रारम्भ की। इनकी एक रचना दृष्टव्य है-

जार को विचार कहा, गनिका को लाज कहा,

गदहा को पान कहा, आँधरे को आरसी,

निगुनी को गुन कहा, दान कहा दारिदी को,

सेवा कहा सूम को अरख्डन की डार सी।[236]

सुप्रसिद्ध इतिहासकार दीवान प्रतिपाल सिंह तथा कृष्ण कवि ने बुन्देलखण्ड के कवियों पर स्वरचित ग्रन्थों में पर्याप्त प्रकाश डाला है तथा साहित्यकार गौरशंकर द्विवेदी ने भी अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक बुन्देल वैभव में उनके अस्तित्व को स्वीकार किया है। साहित्य रचना कला की दृष्टि से यहाँ उपलब्ध साहित्य उच्च कोटि का है।

उर्दू साहित्य-

बुन्देलखण्ड में तुर्कों और मुगलों का आगमन 11 वीं सदी के पूर्वाद्ध में हो गया था। मुगलों ने यहां पर अपना प्रभाव 16वीं शताब्दी में डाला। हिन्दू और मुसलमानों के आपसी ताल-मेल के कारण उर्दू-फारसी और अरबी भाषा का प्रभाव यहाँ की जनता पर व्यापक रूप से पड़ा। अनेक हिन्दू कवियों ने अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग अपनी कविता में किया और तद्‌युगीन उर्दु शायरो ने बुन्देलखण्डी भाषा के अनेक शब्दों का प्रयोग अपने साहित्य में किया। तवारीख बुन्देलखण्ड के लेखक मुंशी श्यामलाल के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध शायर और लेखक एहसान कुरैशी ''आवारा बानवी'', सुप्रसिद्ध लेखक इलियास मगरबी, मोतीलाल त्रिपाठी ''अशान्त'' आदि व्यक्तियों ने यहां के उर्दू साहित्य पर विशेष प्रकाश डाला है। बुन्देलखण्ड में उर्दू साहित्य मुख्य रूप से झांसी, कदौरा, अलीपुरा, बांदा तथा जबलपुर के आस-पास विकसित हुआ।

18वीं शताब्दी के मध्य में सुप्रसिद्ध शायर गालिब का बांदा आगमन हुआ और वे छः माह

तक नवाब जुल्फिकार बहादुर के यहाँ रहे। इसी समय मुनीर शिकोहाबादी भी कारी बदरुद्दीन के साथ बांदा में निवास किया करते थे। चरखारी नरेश ने एक नाटक कम्पनी की स्थापना की थी, उसमें जो नाटक प्रस्तुत किये जाते थे, उसमें उर्दू, फारसी, अरबी का बाहुल्य रहता था।

बाँदा नवाब अली बहादुर सानी के दरबार में अनेक शायर रहा करते थे और वे स्वयं भी एक अच्छे शायर थे। जब वे बांदा से इन्दौर जाने लगे, तो उन्होंने बांदा के सन्दर्भ में इस काव्य की रचना की-

रंज होगा न करे कोई बयाने बांदा, याद आएगी हमें शौकत शाने बाँदा।
गम दिए रंज दिये अपनी गिरह से जालिम चर्ख क्या तूने लिया करके।
धर खुदा जयाने बांदा।[237] (रचनाकाल सन् 1857 ई०)

बांदा में निवास करने वाले मुनीर शिकोहाबादी भी एक अच्छे शायर थे, उन्होंने अपनी शायरी में तद्‌युगीन परिस्थितियों का वर्णन किया है। इस समय गजल आदि की रचनाएं प्रारम्भ हो गयी थी। श्री मुनीर के काव्य का नमूना इस प्रकार है-

उम्र भी बाकी है दिल भी शेर है।
पैमाना भर चुका है छलकने की देर है।।

18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में उर्दू के कवियों ने अनेक परिवर्तन किया। डॉ० आशीर्वादी लाल के अनुसार- इन कवियों ने फारसी के शब्दों और मुहावरों का अधिकता से प्रयोग किया और फारसी की रचनाओं के आदर्श पर अपनी रचनायें की। उन्होंने दक्खिन के अप्रचलित शब्दों एवं वाक्यों कों निकालकर भाषा को शुद्ध बनाने का प्रयास किया था। इस प्रकार 18वीं सदी के मध्य से उर्दू ने फारसी काव्य का कलेवर और परम्पराये अपना ली।[238]

बुन्देलखण्ड में अनेक उर्दू शायरों ने महत्वपूर्ण साहित्य की रचना की, जिनमें से कुछ अखिल भारतीय स्तर के साहित्यकार थे।

(च) बुन्देलखण्ड में खनिज सम्पदा, कृषि -

खनिज सम्पदा की दृष्टि से बुन्देलखण्ड एक धनी प्रदेश है। यहाँ अनेक प्रकार के प्रस्तर, धातुयें व बहुमूल्य रत्न प्राप्त होते है। खनिज सम्पदा में वे पदार्थ भी शामिल है, जिनका उपयोग दैनिक जीवन में होता है। जैसे- चूना, खड़िया, गेरू, पेयोरिया, बालू, कांच बनाने की बालू, इमारती पत्थर आदि। इसके अतिरिक्त वन में उपलब्ध होने वाले अनेक बहुमूल्य पदार्थ, जिनमें खाद्य, पेय वस्तुएं, फल-फूल, औषधियाँ, चर्म और अस्थियाँ मानव जीवन के लिए उपयोगी होती है। निम्न लिखित वस्तुए यहाँ उत्पन्न होती है।

1- वृक्ष एंव झाड़ियाँ-

बुन्देलखण्ड में अनेक प्रकार के वृक्ष उत्पन्न होते है, जिनकी लकड़ी और फल मानव जीवन के लिए उपयोगी है। मुख्य रूप से यहाँ साल, सागौन, महुआ, खैर, बांस, चंदन, लाल चंदन इमली, आम, शरीफा, अचार, ताड़, खजूर, बबूल, बेर, सेमर, सलइयाँ, अमलताश, हड़ुवा, हल्दू,

सिंहाक, स्यासा, जामुन, चिल्ला, दूधी, करधई, बेल, मुनगा, कुसुम, पीपल, बरगद, नीम, जमरासी, धवा, कैथा, सिरसा, कन्जी, बीजसाल, आँवला, शीशम, छेवला के वृक्ष बुन्देलखण्ड में पाये जाते है।[239]

यहाँ वृक्षों के अतिरिक्त अनेक कांटेदार झांड़ियां उपलब्ध होती है। इन झाड़ियों से भी अनेक पदार्थ प्राप्त होते है। मुख्य रूप से करौंदा, करेल, रियां, चमरेल, माहुल, इंगौटा, सहजना, जरिया या झरबेरी, मकुइया, रक्त-बिडार, गटान, थूहड, नागफनी और मेंहदी की झाड़ियाँ यहाँ उपलब्ध होती है।

1. जंगल उपज -

बुन्देलखण्ड के वन व्यवसायिक और उद्योग की दृष्टि से बहुत लाभकारी है। इनसे हमें निम्न वस्तुए उपलब्ध होती है- लाख, गोंद, मोम, शहद, चाँदी, सफेद मूसली, वंसलोचन, कत्था, बिलाईकंद, लक्ष्मनकंद, कुसेरा, सांभर, सींग, चमड़ा, खखूदन, नॉती, धवई, हड्डी, महुआ, अचार, आंवला, हर्र, बहेरा आदि पदार्थ हमें जंगलों से प्राप्त होते है।

3. हीरा-

बुन्देलखण्ड में कुछ कीमती रत्न उपलब्ध होते है, जिनमें हीरा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, यह हीरा पन्ना के अतिरिक्त पहाड़ी खेरा में उपलब्ध होता है। यहाँ मुख्य रूप से हीरा, भौंरा खदान और मौंढ़ा खदान में निकलते है। पुराणों के अनुसार हीरा दधिचि की अस्थियों का चूर्ण था। हीरे के सन्दर्भ में ऐतिहासिक साक्ष्य भी उपलब्ध होते है। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार-अबुल फज़ल ने लिखा है कि कालिंजर से 20 कोस पर हीरे की खान थी और कालिंजर के राजा कीर्ति सिंह के पास-6 बड़े-बड़े हीरे थे।[240]

4. बुन्देलखण्ड में उत्पन्न होने वाले अन्य खनिज-

बुन्देलखण्ड में लोहा, तांबा, कोयला तथा अन्य पदार्थ उपलब्ध होते है। इनमें मुख्य रूप से कलई या चूने का पत्थर, ग्रेनाइट पत्थर, इमारती पत्थर, गौरी पत्थर, संगे जवाहरात पत्थर, कच्चा हीरा, सजर, लोहे का पत्थर जिसे घाऊ बोलते है, मैग्नीज, कई रंग की मिट्टी, भवन निर्माण में काम आने वाली बालू, अभ्रक, ताँबा, एल्युमिनियम, फिटकरी, सोना, चांदी और सीसा कई स्थानों में पाया जाता है। इन खनिज पदार्थो के माध्यम से नाना प्रकार के कुटीर उद्योग बुन्देलखण्ड के निवासियों के जीविकोपार्जन के साधन थे।

कृषि-

बुन्देलखण्ड में भूमि की बनावट एक जैसी नहीं है तथा वर्षा की स्थिति भी निश्चित नहीं है। फिर भी यहाँ के कृषक तीन प्रकार के फसलें रबी, खरीफ और जायद उत्पन्न करते है। यहाँ खरीफ की फसल में कीदों, रॉली, कुटकी, बसारा, समा, काकुन, मटा, जुआर, बाजरा, उरद, मूंग, मोंठ, लौंसा धान आदि उत्पन्न होते है। इसके अतिरिक्त तेल वाले पदार्थ भी यहाँ उत्पन्न होते है,

मुख्य रूप से तिली, सरसों, अलसी, अंडी, महुआ की गुली तेल निकालने के काम आती है। इसके अतिरिक्त नील, कुसुम, नौती, हर सिगांर, सिहारू, आल, टेसू, धवई आदि बीजों से अनेक प्रकार के रंग बनाये जाते है।

कुछ विशेष प्रकार की कृषि उपज भी यहाँ होती है। इनमें ईख या गन्ना कपास, सिंघाड़ा, सन, आदि यहाँ उत्पन्न होते है, जिनसे विभिन्न पदार्थ निर्मित होते है।

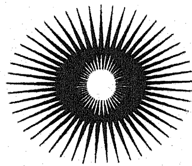
बुन्देलखण्ड में अनेक बगीचे उपलब्ध है, जिनमें अनेक प्रकार के फल जैसे पाकर, भौर सिली, खिरनी, जामुन, केला, नीबू, नारंगी, अनार, चकोतरा, कमरख, अमकद, लुकाट, फालसा, आड़ू, अंगूर, नारियल आदि यहां पैदा होते है। व्यक्ति इनका सेवन खाद्य पदार्थ के रूप में करते है।

कुछ ऐसे पदार्थ उपलब्ध होते है, जिनका उपयोग सब्जी के रूप में किया जाता है। जैसे- खरबूज, तरबूज, घिया, तरोई, लौकी, कुंमढा, खीरा, ककड़ी, सेम, तरोई, भिंडी, मदकूल, वाकलह आदि। इसके अतिरिक्त जमीकंद, घुइयां, आलू, रतालू, शलजम, भतुआ, पंवार, चौका, सोया, पालक, कुल्फा, चौराई, नौरूपा और नौनिया सब्जी के रूप में प्रयुक्त होती है।

यहाँ उत्पन्न होने वाले फूल भी आर्थिक दृष्टि से उपयोगी है। मुख्य रूप से केवड़ा, केतकी, गुलाब, चम्पा, चमेली, मोंतीया, मोंगरा, सेवती, सब्बू, रायबेल, जुई, निवारी, बेला आदि के फूल बगीचों और जंगलों में उत्पन्न होते है।

यहाँ पर कुछ ऐसे पदार्थ भी उत्पन्न होते है, जिनका उपयोग मसाले के रूप में किया जाता है। ये मिर्च, अदरक, धनियाँ, सौंफ, मेंथी, राई, जीरा, अजवाइन, कलौंजी आदि है।

बुन्देलखण्ड में पान का भी बहुत महत्व है। पान की पैदावार महोबा और उसके आस-पास होती है। यहाँ बिलहरी, काकेर, कपूरी, बंगला और जैसवार किस्म के पान उत्पन्न होते है। यहाँ से पान का निर्यात कई स्थानों में होता है।



सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Shah K.K.- Ancient Bundelkhand edi. 1987 Gain Publishing House Delhi. P.P. 1.
2. कन्हैयालाल अग्रवाल - विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल, सं0 1987, प्रका0- सुषमा प्रेस, सतना (म0प्र0), पृ0 181.
3. स्कन्द पुराण, खण्ड-1, अध्याय-2, श्लोक सं0 3, पृ0 142.
4. इब्नुल अतहर-तारीख-ए-कामिल, पृत्र 216.
5. गार्दिजी, किताब जैनुल अखबार, पृ0 76.
6. फरिश्ता, तारीख-ए-फरिश्ता (ब्रिग्स) खण्ड-1, पृ0 64.
7. ऋग्वेद, मंडल-8, अध्याय-3, श्लोक सं0 37 से 39 तक
8. बाल्मीकि रामायण, आरण्यकाण्ड, अध्याय-5, श्लोक सं0 19.
9. एपिग्राफिका, इण्डिका, जिल्द-8, पृ0 170-76.
10. वही, जिल्द-1, पृ0 334.
11. दीवान प्रतिपाल सिंह - बुन्देलखण्ड का इतिहास, सं0 वि0स0 1985, प्रका0- नागरी प्रचारिणी सभा बनारस, पृ0 भूमिका।
12. वही, पृ0 336.
13. वही, पृ0 338.
14. वही, पृ0 340.
15. बांदा गजेटियर, सं0 1977, सम्पादक डी0पी0 वरुण पृ0सं0 29 से 31 तक।
16. हमीरपुर गजेटियर सं0 1980, सम्पादक बलवन्त सिंह, पृ0 20-21.
17. जालौन गजेटियर सं0 1989, सम्पादक बलवन्त सिंह, पृ0 15-16.
18. झांसी गजेटियर सं0 1965, सम्पादक ईशा बसन्ती जोशी, पृ0 17.
19. (सागर गजेटियर) सिंह, दीवान प्रतिपाल- बुन्देलखण्ड का इतिहास वि0सं0 1985, प्रका0- बनारस, पृ0 351-52.
20. (छतरपुर गजेटियर) वही, पृ0 352-53.
21. इण्डियन एण्टिक्वेरी, जिल्द 25, पृ0 207.
22. जनरल ऑफ यू0पी0, हिस्ट्रारिकल सोसायटी खण्ड- 23, पृ0 228-35 तक
23. आर्कुलॉजिकल सर्वे रिर्पोट ऑफ इण्डिया, खण्ड-21, पृ0 49.
24. कार्पस, खण्ड-4, पृ0 271.
25. बोस, एन0एस0- हिस्ट्री ऑफ द चन्देलास, पृ0 154.
26. आर्कुलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, खण्ड-21, पृ0 75.
27. एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द-20, पृ0 136.

28. फाह्यान, ए रिकार्ड, जिल्द-20, पृ0 136.

29. एपिग्राफिका इण्डिका, खण्ड-1, श्लोक सं0 20-22, 41-42.

30. वही, जिल्द-1, श्लोक सं0 19, 20, 22, 24, 28.

31. चित्रगुप्त मन्दिर, बाहृभित्ति में बांयी ओर विश्वनाथ मन्दिर, बाहृभित्ति में बांयी ओर दूलादेव मन्दिर और जोर्डन संग्रहालाय।

32. एपिग्राफिका इण्डिका, खण्ड-1, पं0 30, पृ0 177.

33. वही, खण्ड-31, पं0 5, पृ0 177.

34. सैक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट, खण्ड-33, पृ0 340.

35. थेरीगाथा, 435 दि बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ0 60.

36. (अ) एपिग्राफिका इण्डिका खण्ड-3, पं0 4, पृ0 177.

 (ब) एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ0 401.

37. वही, खण्ड-4, पं0 121, पृ0 170.

38. कन्हैयालाल अग्रवाल- खजुराहो स्कल्पचर्स, दिल्ली प्रकाशन, पृ0 184.

39. वही, पृ0 185.

40. (अ) शतपथ ब्राह्मण 5, 1, 2, 14

 (ब) ऋग्वेद 1, 25, 3, 6, 27, 6, 77, 5, 9, 9, 12,

 (स) वाजसनेयी संहिता 17, 2, 1, अथर्ववेद 3, 5, 6, 9, 5, 4.

41. एपिग्राफिका इण्डिया, खण्ड-31, पं0 , पृ0 177.

42. ऋग्वेद, 10, 26, 6 बाजसनेही संहिता 13, 50, शतपथ, ब्राह्मण 1, 2, 5, 1, 13.

43. मंदसौर अभिलेख कार्पस खण्ड-3, पृ0 81 से 87 तक

44. कन्हैयालाल अग्रवाल - खजुराहो स्कल्पचर्स दिल्ली प्रकाशन, प0ृ 185.

45. वही, पृ0 185.

46. शतपथ, ब्राह्मण 9, 8 1

47. वायु पुराण, 14, 18.

48. (अ)दीक्षित एम0जी0 मध्य प्रदेश के पुरातत्व की रूपरेखा सं0 1954, पूना पृ0 20 से 231 तक।

 (ब)बाजपेई, के0डी0 सागर- थ्रू द एजेज सं0 1964, पृ0 26-31.

49. कन्हैयालाल अग्रवाल - खजुराहो स्कल्पचर्स दिल्ली प्रकाशन, पृ0 186.

50. व्यास, स्मृति 1, 11.

51. तैत्तिरीय संहिता- 4, 5, 4, 2.

52. एपिग्राफिका इण्डिका खण्ड 31, पं0 4, पृ0 177.

53. कन्हैयालाल अग्रवाल - विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल सं० 1985, पृ० 36 सतना पृ०193.

54. (अ) एपिग्राफिका इण्डिका खण्ड-1, 153 ''रूपकार वामदेव''.

(ब) कन्हैयालाल अग्रवाल - खजुराहो स्कल्पचर्स दिल्ली प्रकाशन, पृ० 187.

55. कन्हैयालाल अग्रवाल - विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल सं० 1987, पं० 31 सतना, पृ० 193.

56. एपिग्राफिका इण्डिका, खण्ड-1, पृ० 146.

57. वही, खण्ड-4, पृ० 115.

58. आर्कुलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट खण्ड- 21, पृ० 34.

59. डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्थ इण्डिया भाग-2, पृ० 705.

60. एपिग्राफिका इण्डिका, खण्ड-20, पं० 10, पृ० 136.

61. शब्दानुशासन- 7, 2, 144. नैषध चरित पं० 10, पृ० 136.

62. एपिग्राफिका इण्डिका, खण्ड-20, पं० 16, पृ० 136.

63. कार्पस, खण्ड-4, पं० 31.

64. कन्हैयालाल अग्रवाल - विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल सं० 1987, प्रका० सतना, पृ० 194.

65. एपिग्राफिका इण्डिका, खण्ड-20, पं० 10, पृ० 136.

66. मनुस्मृति, अध्याय-10, श्लोक सं० 12-36.

67. कन्हैयालाल अग्रवाल - विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल सं० 1987. प्रका० सतना, पृ० 195.

68. बाणभट्ट - कादम्बरी चौखम्मा संस्करण बनारस पृ० 29.

69. पाणिनी - महाभाष्य 24-10.

70. कार्पस, कं० 50 पं० 39.

71. एपिग्राफिका इण्डिया खण्ड-1, पृ० 175, पृ० 15.

72. अथर्ववेद मण्डल 6, अध्याय-7, श्लोक सं० 1.

73. चरक - चरक संहिता, श्लोक सं० 78-181 अध्याय- 27.

74. कन्हैयालाल अग्रवाल - विन्ध्य क्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल सं० 1987, प्रका० सतना (म०प्र०), पृ० 196.

75. एपिग्राफिका इण्डिका, खण्ड-1, पं० 10, पृ० 174.

76. वही, पृ० 165.

77. केशव चन्द्र मिश्र - चन्देल और उनका राजत्वकाल, भाग-2, प्रका० बनारस, पृ० 178.

78. डॉ० हेमचन्द्र राय - डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्थ इण्डिया, भाग-2, पृ० 1218.

79. केशवचन्द्र मिश्र - चन्देल और उनका राजत्वकाल, भाग-2, प्रका०- बनारस, पृ० 180.

80. तारीख-ए-फरिश्ता, भाग-1, ब्रिग्स, पृ० 46.

81. केशवचन्द्र मिश्र - चन्देल और उनका राजत्वकाल, भाग-2, प्रका० बनारस, पृ० 21.

82. वही,

83. दीवान प्रतिपाल सिंह - बुन्देलखण्ड का इतिहास, वि०सं० 1985, प्रका० बनारस, पृ० 213.

84. अरुणेन्द्र चौरसिया - (शोध प्रबन्ध) 1993 पृ० 76.

85. केशवचन्द्र मिश्र- चन्देल और उनका राजत्वकाल भाग-2, प्रका० बनारस, पृ० 194-195.

86. वेदव्यास- व्यास स्मृति संलग्नकर्ता ओरिएन्टल संस्कृत एण्ड कल्चर सोसायटी पूना।

87. प्रबोध चन्द्रोदय, पृ० 51.

88. वही, पृ० 3, 21.

89. केशवचन्द्र मिश्र - चन्देल और उनका राजत्वकाल, प्रका० बनारस, पृ० 196.

90. वही,

91. अलबरूनी, अनु० संतराम, भाग-2, पृ० 102.

92. प्रबोध चन्द्रोदय, पृ० 24.

93. केशवचन्द्र मिश्र - चन्देल और उनका राजत्वकाल, नागरी प्रचारिणी सभा बनारस, पृ० 198.

94. अलबरूनी, अनु० संतराम, पृ० 105.

95. दीवान प्रतिपाल सिंह - बुन्देलखण्ड का इतिहास, वि०सं० 1985, प्रका० बनारस, पृ० 187 से 190.

96. वही, पृ० 205.

97. वही, पृ० 206.

98. वही,

99. वही, पृ० 211.

100. राधाकृष्ण बुन्देली - बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन सं० 1989, बु०प्र०, बांदा पृ० 117.

101. दीवान प्रतिपाल सिंह - बुन्देलखण्ड का इतिहास- वि०सं० 1985, प्रका० बनारस पृ० 212.

102. वही,

103. वही, पृ० 21.

104. Shah, K.K. Ancient Bundelkhand Edi- 1988. Publishing House Delhi P. 87.

105. दीवान प्रतिपाल सिंह - बुन्देलखण्ड का इतिहास, वि०सं० 1985, नागरी सभा बनारस, पृ० 216.

106. वही, पृ० 186.

107. के०सी० मिश्र - चन्देल और उनका राजत्वकाल, सं० 1974, प्रका० बनारस, पृ० 183.
108. वही, पृ० 184
109. डॉ० अयोध्या प्रसाद पाण्डेय - चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, पृ० 240.
110. Mohan Lal Nigam - Culttural History Bundelkhand 1983, Sundeep Publication P. 59.
111. K.K. Shah, Ancient Bundelkhand- Edi- 1988- Gain Publishing house P. 67.
112. दीवान प्रतिपाल सिंह - बुन्देलखण्ड का इतिहास, वि०सं० 1985, प्रका० बनारस, पृ० 197.
113. वही, पृ० 198.
114. वही, पृ० 199.
115. वही, पृ० 200
116. वही,
117. वही, पृ० 18 से 188.
118. डॉ० अयोध्या प्रसाद पाण्डेय, चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, प्रका० हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पृ० 178.
119. अलबरूनी, किताब उल हिन्द अनु० इ० सी० सचान लन्दन (अलबरूनी इण्डिया) पृ० 162.
120. इण्डिया एण्टिक्वेरी, भाग-18, पृ० 237.
121. एपिग्राफिका इण्डिका, भाग-12, पृ० 59.
122. Mohan Lal Nigam, Cutural History of Bundelkhand Edi- 1938 Sundeep Pub. P. 59.
123. के०के० शाह- प्राचीन बुन्देलखण्ड (अंग्रेजी सं०) सं० 1988, गेन पब्लिशिंग, दिल्ली, पृ० 43
124. अयोध्या प्रसाद पाण्डेय- चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, प्रका० प्रयाग पृ० 179.
125. के०सी० मिश्र- चन्देल और उनका राजत्वकाल, प्रका० बनारस, पृ० 189.
126. (अ) एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द-10, अभिलेख सं० 21.
    (ब) Shah, K.K.- Ancient Bundelkhand, ed. 1988. Pub. Gain Pub. H. Delhi. P. 43.
127. के०सी० मिश्र- चन्देल और उनका राजत्वकाल, प्रका० बनारस, पृ० 205.
128. वही, पृ० 206.
129. Mohan Lal Nigam- Gultural History of Bundelkhand ed. 1983, Pub.- Gain Prak. P. 106.
130. वही, पृ० 110
131. K.K. Shan- Ancient Bundelkhand, ed. 1988- Gain Publishing House Delhi. P. 110.

132. के0सी0 मिश्र- चन्देल और उनका राजत्वकाल, प्रका0 बनारस, पृ0 206.

133. वही, पृ0 207.

134. (अ) आर्क्युलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट इण्डिया सं0 1909, जिल्द-10, पृ0 146.

(ब) Mohan Lal Nigam, Cultural History of Bundelkhand edi, 1983. Pub. Sundeep Prakashan P. 101.

135. (अ) K.K. Shah - Ancient Bundelkhand edi. 1988 Gain Pub. house Delhi- P. 118.

ब) J.F. Fleet- Inscription of the Early Kings Inelolical B.H., Varansi, 1963, P. 110.

136. के0सी0 मिश्र- चन्देल और उनका राजत्वकाल, प्रका0 बनारस, पृ0 208.

137. Mohan Lal Nigam, Cultural History of Bundelkhand edi- 1983 Pub. S. Pub. P. 104.

138. K.K. Shah, Ancient Bundelkhand, edi. 1988, Gain Publishing house Delhi- P. 116.

139. M.L. Nigam, Cultural History of Bundelkhand. Edi. 1983 Pub. Sundeep Prak. P. 104.

140. K.K. Shah- Ancient Bundelkhand edi. 1988, Gain Publishing house P. 120.

141. दीवान प्रतिपाल सिंह , बुन्देलखण्ड का इतिहास, वि0स0 1985 प्रका0 बनारस पृ0 311.

142. वही, पृ0 312.

143. गोरेलाल तिवारी- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास वि0स0 1990 प्रका0 बनारस पृ0 2.

144. दीवान प्रतिपाल सिंह - बुन्देलखण्ड का इतिहास, वि0स0 1985 प्रका0 बनारस पृ0 313.

145. गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का इतिहास, वि0स0 1990 प्रका0 बनारस पृ0 2.

146. सर सुन्दर लाल, भारत में अंग्रेजी राज (प्रथम खण्ड) सं0 1960 प्रका0 सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार.

147. कन्हैयालाल अग्रवाल- विन्ध्यक्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल सं0 1987 प्रका0 सतना, पृ0 182.

148. जनरल आफ यूनाइटेड, प्राविन्स हिस्ट्रारिकल सोसायटी सं0 1965 पृ0 183 से 89.

149. सतीशचन्द्र, मध्यकालीन भारत सं0 1998 प्रका0 जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स पू0 4.

150. सर सुन्दरलाल, भारत में अंग्रेजी राज सं0 1960 प्रका0 सू0एवं प्र0मंत्रालय सरकार पृ0 51.

151. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव- मध्यकालीन भारत सं0 1981 प्रका0 आगरा पृ0. 21.

152. वर्मा हरिश्चन्द्र मध्यकालीन भारत सं01993 प्रका0हिन्दी मा0कार्यान्वय नि0 दिल्ली पृ0 1.

153. सुन्दरलाल-भारत में अंग्रेजी राज सं0 1960 प्रका0 सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार पृ0 76.

154. सर सुन्दरलाल,भारत में अंग्रेजी राज सं0 1960 प्रका0 सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार पृ0 112.

155. वही पृ0 115.

156. Bruces. Annal of the Hon'ble east India Comapany Vol.I.P. 128.

157. Philip Anderson- the English in Western India P.22

158. Malcolm's life of the cilive, Vol. II PP . 119.

159. Philip Francis. Speech on Indian affairs, 1687.A.P.

160. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन सं0 1989, पृ0 139

161. वही पृ0 264.

162. राधाकृष्ण बुन्देली- बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन सं0 1989, बु0 प्रका0 बांदा पृ0 139.

163. सर सुन्दरलाल-भारत में अंग्रेजी राज सं0 1960 सू0 और प्रसारण मं0 भारत सरकार पृ0.53.

164. वही पृ0.55

165. वही पृ0 60.

166. गुरूनानक की जन्मसाखी नं0 36 पाकनामा.

167. सर सुन्दरलाल - भारत में अंग्रेजी राज सं0 1960 प्रका0 सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार पृ0 66

168. वही पृ0 67

169. वही पृ0 68

170. वही

171. दीवान प्रतिपाल सिंह, बुन्देलखण्ड का इतिहास वि0स0 1985 प्रका0 बनारस पृ0 214

172. सर सुन्दरलाल, भारत में अंग्रेजी राज सं0 1960 प्रका0 सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार पृ0 322

173. पी0डी0 पाठक - भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें सं0 1994 प्रका0 आगरा पृ0 68.

174. वही, पृ0 69

175. वही, पृ0 70

176. वही, पृ0 72

177. Macavlary, H. Shary, ed. Macaulay's Minute, Selection from educational Records Part-I P. 117.

178. राधाकृष्ण बुन्देली- बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन सं0 1989 प्र0का0 बांदा पृ0 189.

179. वही पृ0 190.

180. वही पृ0 191.

181. लक्ष्मी प्रसाद मिश्र , बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक इतिहास सं0 1990 प्रका0 विश्वभारती पृ0 1.

182. कन्हैयालाल अग्रवाल, विन्ध्यक्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल सं0 1987 प्रका0 सतना म0प्र0 पृ0 1.

183. इण्डियन आर्कुलाजिकल ए रिव्यू सं0 1955, पृ0 8, 9, 32, 84.

184. कन्हैयालाल अग्रवाल -विन्ध्यक्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल सं0 1987 प्रका0 सुषमा प्रेम सतना म0प्र0 129-129.

185. दीवान प्रतिपाल सिंह- बुन्देलखण्ड का इतिहास सं0 1985, नागरी प्र0स0 बनारस पृ0 377.

186. (अ) गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास सं0 1990 प्रका0 बनारस पृ0 100-101.

(ब) एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल सं0 1837 पृ0 644.

187. लक्ष्मी प्रसाद मिश्र, बुन्देलखण्ड का इतिहास भाग-1 सं0 1990 प्रका0 नागपुर पृ0 106.

188. मत्स्य पुराण, अध्याय 121, श्लोक सं0 54.

189. महर्षि बाल्मीकि- बाल्मीकि रामायण- अयोध्या कांड अध्याय 105 श्लोक सं0 3.

190. एपिग्राफिका इण्डिका खण्ड-7 पृ0 38-43 तक.

191. कन्हैयालाल अग्रवाल - विन्ध्यक्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल सं0 1987 प्रका0 सतना म0प्र0 123.

192. के0सी0 मिश्र -चन्देल और उनका राजत्व काल-प्रका0 बनारस पृ0 223-224.

193. आर्कुलाजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग-2 पृ0 419-20

194. वही-भाग 7 भाग पृ0 54.

195. आर्कुलाजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग -7 पृ0 39.

196. वही. भाग 10पृ0 97.

197. वही-भाग-2पृ0 419-20.

198. अयोध्या प्रसाद पाण्डेय - चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास प्रका0 प्रयाग पृ0222.

199. संपादक ठाकुर प्रसाद सिंह, डा0 कौशल कुमार राय - उ0प्र0 वि0पुरा सम्पदा सं0 1981 प्रका0 सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग- उ0प्र0 लखनऊ पृ0106.

200. वही. पृ0 111.

201. (संपादन) ठाकुर प्रसाद सिंह, डा0 कौशल कुमार राय- उ0प्र0 सम्पदा सं0 1981 प्रका0 सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग उ0प्र0 लखनऊ आलेख- गिरिजा शंकर तिवारी- लेख प्राचीन धतु की मूर्तियां पृ0 94-95.

202. आर्कुलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग-2 पृ0 415,439-40.

203. आइने अकबरी भाग-2 पृ0 29.

204. आर्कुलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग- 27 पृ0 सं0 20.

205 के0सी0 मिश्र-चन्देल और उनका राजत्व काल-प्रका0 बनारस पृ0 242.

206. दीवान प्रतिपाल सिंह -बुन्देलखण्ड का इतिहास वि0स0 1985 प्रका0 बनारस पृ0118.

207. वही- पृ0 236-37.

208. के0सी0 मिश्र- चन्देल और उनका राजत्व काल- प्रका0 बनारस पृ0 197.

209. दीवान प्रतिपाल सिंह-बुन्देलखण्ड का इतिहास वि0स0 1985 प्रका0 बनारस पृ0 229.

210. वही. पृ0 222-228.

211. राधेश्याम, सल्तनतकालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास सं0 1987 प्रका0 वोहरा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स पृ0 232.

212. अफीफ- अध्याय-188, पृ0365-66.

213. इब्नबतूता अध्याय- 59पृ0 60-42.

214. राधेश्याम, सल्तनतकालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास सं0 1987 प्रका0 वोहरा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स पृ0 232.

215. दीवान प्रतिपाल सिंह-बुन्देलखण्ड का इतिहास वि0स0 1985 प्रका0 बनारस पृ0 174.

216. वही, पृ0 175.

217. डा0 अरुणेन्द्र चौरसिया - बुन्देलखण्डीय लोक संगीत में साहित्यिक, सामाजिक और सांस्कृतिक तत्व (अप्रकाशित), संस्करण- 1993, पृ0 130-131.

218. पं0 कविमणि कृष्णदास- बुन्देलखण्ड के कवि, सं0 2017, पृ0 156

219 के0 सी0 मिश्र -चन्देल और उनका राजत्व काल भाग-2 प्रका0 बनारस पृ0 196.

220. वही,

221. दीवान प्रतिपाल सिंह -बुन्देलखण्ड का इतिहास वि0स0 1985 प्रका0 बनारस पृ0 222.

222. लक्ष्मी प्रसाद मिश्र - बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक इतिहास भाग-1 प्रका0 विश्वभारती पृ011-12.

223. के0 सी0 मिश्र -चन्देल और उनका राजत्व काल भाग-2 प्रका0 बनारस पृ0 254.

224. वही, पृ0 254.

225. अभिनवानाट्यशास्त्र- पृ0 173-74.

226. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति सं0 1973 प्रका0 आगरा पृ0 230.

227. के0 सी0 मिश्र -चन्देल और उनका राजत्व काल भाग-2 प्रका0 बनारस पृ0 196.

228. अबुल फजल-आइने अकबरी

229. के० सी० मिश्र -चन्देल और उनका राजत्व काल भाग-2 प्रका० बनारस पृ० 196.

230. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति सं० 1973 प्रका० आगरा पृ० 337.

231. वही, पृ० 238.

232. गौरी शंकर द्विवेदी, बुन्देलखण्ड वैभव पृ० 48.

233. वही- प्रथम भाग पृ० 60.

234. वही. पृ० 188.

235. वही, पृ० 251.

236. वही, पृ० 194.

237. राधाकृष्ण बुन्देली, मस्तानी का वंश और बांदा के नवाब (अप्रकाशित) पृष्ठ- 129

238. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति सं० 1973 प्रका० आगरा पृ० 127.

239. दीवान प्रतिपाल सिंह- बुन्देलखण्ड का इतिहास सं० 1985 प्रका० बनारस पृ० 44 से 49

240. वही, पृ० 66.

पंचम अध्याय

- बुन्देलखण्ड में इस्लामिक संस्कृति का आगमन एवं उसका परिचय।
- इस्लामिक संस्कृति का बुन्देलखण्ड के धर्म पर प्रभाव।
- इस्लामिक संस्कृति का यहाँ की सामाजिक व्यवस्था पर प्रभाव।
    - रहन-सहन के स्तर पर परिवर्तन।
    - भाषा एवं साहित्य में परिवर्तन।
    - लोक संस्कृति पर प्रभाव।
- इस्लामिक संस्कृति के कारण उत्पन्न सांस्कृतिक परिवर्तनों का मूल्यांकन।
- बुन्देलखण्ड में इस्लामिक संस्कृति के स्मृति चिन्ह तथा उन पर यहाँ के मूल निवासियों का दृष्टिकोण।

इस्लामिक संस्कृति का बुन्देलखण्ड में प्रभाव

बुन्देलखण्ड में इस्लामिक संस्कृति का आगमन एवं उसका परिचय

ईसा की छठवीं शताब्दी के पूर्व अरब देश में इस्लाम नाम का कोई धर्म नहीं था। अरब के निवासी भारतीयों की भाँति मूर्ति-पूजक थे। वे अपने पूर्वजों और कुल देवताओं की पूजा करते थे। पूरे अरब क्षेत्र में अलग-अलग व्यक्तियों के समूह थे, जो कुटुम्ब और कबीलों के नाम से जाने जाते थे। हजरत मोहम्मद साहब के पहले भी मक्का-मदीना एक पवित्र स्थल था और व्यक्ति वहॉ जाकर अनेक मूर्तियों की पूजा करते थे तथा उनके सामने कुर्बानी दिया करते थे।

हजरत मोहम्द साहब ने तद्‌युगीन परिस्थितियों का अध्ययन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि अरब के निवासियों के लिए पूर्वजों की पूजा तथा विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियों की पूजा व्यर्थ है। उन्होंने एक महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की, जो तौरात और एन्जिल के कुछ सिद्धांतों का समर्थन करती थी। उस पुस्तक का नाम उन्होंने कुआ़र्न शरीफ रखा। इस कुआ़र्न शरीफ के माध्यम से उन्होंने एकेश्वरवाद के सिद्धांत को अपनाया तथा विश्व मानवतावाद और भाई-चारे की भावना को प्रचारित - प्रसारित करने का प्रयत्न किया। उनके अनुसार, खुदा हल्क का मालिक है और उसी ने सारी दुनियां व उसमें रहने वाले जीव-जंतु उत्पन्न किये। वही सबका पालन हार तथा विनाशक भी है, इस संसार में उससे बड़ा कोई नहीं है और न कोई उससे बराबरी कर सकता है। वह निराकार निर्विकार है, उसे केवल उसकी निशानियों से पहचाना जा सकता है। कुआ़र्न शरीफ एक खुदाई किताब है और हजरत मोहम्मद साहब खुदा के पैगम्बर है। इस संसार में जिंद और शैतान इन्सानों को खुदा के रास्ते से अलग करते है और फरिश्ते इन्सानों को खुदा के रास्ते पर ले जाते हैं। उनके अनुसार पांच वक्त की नवाज अदा करना, यतीमों पर रहम करना, रमजान के महीने में रोजे रखना, माल हाने पर हज करना भी धर्म है। किसी भी व्यक्ति को किसी की अमानत पर नियत खराब न करना चाहिए, माता-पिता और परिवार के व्यक्तियों का पालन-पोषण जिम्मेदारी समझकर करना चाहिए। किसी भी प्रकार का गुनाह नहीं करना चाहिए, गुनाह करने वाले को खुदा द्वोज़क की सजा देता है और नेकी करने वाले को जन्नत देता है।

इस्लाम धर्म के इन सिद्धांतों को तद्‌युगीन शासकों ने अपनाया और उसका प्रचार-प्रसार अरब देशों के बाहर किया। भारतवर्ष में इस्लाम धर्म का परिचय सातवीं शताब्दी के आस-पास सर्वप्रथम सिन्ध में हुआ। उसके पश्चात् अफगानिस्तान और पंजाब के लोग इससे परिचित हुये। कालान्तर में यह महमूद गजनवी के साथ बुन्देलखण्ड में भी आया और उसके पश्चात् बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में मुसलमान जाति के लोग रहने लगे। यहाँ रहने वाले अधिकतर मुसलमान ऐसे थे, जो हिन्दू से मुसलमान बने। सुप्रसिद्ध विद्वान राधेश्याम के अनुसार- पूर्व मध्य काल में मुस्लिम संसार में मुसलमान सूफी-सन्तों, व्यापारियों, सैनिकों व साधारण मुसलमानों के निरन्तर आने के कारण हिन्दू

समाज में एक नवीन जाति ने प्रवेश किया। इससे पूर्व भी यहाँ अनेक विदेशी जातियाँ आकर बस चुकी थी, किन्तु उनके पर्दापण से हिन्दू समाज के वाह्य ढाँचे में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया था। इसके विपरीत मुसलमानों के आगमन से इस देश की सामाजिक व्यवस्था में उथल-पुथल होने लगी। सामाजिक जटिलताएँ धीरे-धीरे शिथिल होने लगीं। आन्तरिक तथा वाह्य दवाब में आकर यहाँ के विधिवेत्ता, टीकाकार, धर्मशास्त्री व पुराणों के विश्लेषण कर्ता एवं रचयिता परिवर्तित परिस्थितियों के साथ समझौता करते रहे। हिन्दू समाज की विभिन्न जातियों में उपजातियों की संख्या में वृद्धि होना, जातीय चेतना का प्रमाण ही नहीं कहा जा सकता है, वरन् जातीय संकीर्णता के विरुद्ध उपजातियों का आंदोलन कहा जा सकता है।[1]

बुन्देलखण्ड में मुसलमानों के आगमन के कारण यहाँ की सामाजिक व्यवस्था चरमराने लगी तथा वर्ण व्यवस्था का वह स्वरूप नहीं रह गया, जो इसके पूर्व था। मुसलमानों के जातीय स्वरूप और वंश के संदर्भ में कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते। यहाँ मुसलमानों के कई वर्ग थे। सुप्रसिद्ध विद्वान राधेश्याम के अनुसार- मुसलमानों का दूसरा वर्ग उन लोगों का था, जो कि मुहम्मद बिन कासिम, सुल्तान महमूद गजनबी तथा मुहम्मद गौरी के साथ सैनिक योद्धा के रूप में यहाँ आए और स्वदेश न जाकर यहीं बस गये। इस वर्ग के लोगों ने स्थानीय शासकों से संघर्ष जारी रक्खा और अधिकाधिक क्षेत्र अपने अधिकार में करने का प्रयास किया।[2]

इस समय समस्त मुसलमान समाज तीन वर्गो में विभाजित था। सुप्रसिद्ध इतिहासकार सतीशचन्द्र के अनुसार - 13वीं शताब्दी के दौरान उत्तर-भारत में उदित होने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण वर्ग अमीर शासक वर्ग था। आमतौर पर अमीरों को तीन श्रेणियों में बांटा गया है- सर्वोच्च श्रेणी में खान होते थे, जिनके बाद मलिक और अमीर होते थे।[3] सल्तनतकाल और मुगलकाल में जो अध्यापन कार्य करते थे, उन्हें अशरफ शब्द से सम्बोधित किया जाता था तथा जो व्यक्ति कलम का धनी था, उन्हें अहल-ए-कलम कहा जाता था। जो व्यक्ति युद्ध करता था, उसे अहल-ए-सैफ शब्द से सम्बोधित किया जाता था। सल्तनत काल और मुगल काल में उच्च वर्ग के मुसलमानों का भी सम्मान था।

मुसलमानों का दूसरा वर्ग, राजा, सरदार और जमींदारों का था। इन्होंने जहाँ-जहाँ अपने राज्य का विस्तार किया, वहाँ-वहाँ जमीदारियों और जागीरें स्थापित की। बुन्देलखण्ड में मुख्य रूप से ग्वालियर, कालपी, ललितपुर, सागर के सन्निकट तथा कालिंजर में ऐसी जागीरों के साक्ष्य मिलते हैं।

मुसलमानों का तीसरा वर्ग व्यापारी वर्ग था, जो या तो किसी शिल्प से जुड़ा था अथवा किसी व्यवसाय से जुड़ा था। बुन्देलखण्ड में मुसलमानों ने कपड़ा बुनना, कपड़े की रंगाई करना, रूई धुनकना, छपाई का कार्य करना, चमड़े का काम करना आदि व्यवसाय चुने। केशवचन्द्र मिश्र का यह मानना है कि यदि चन्देल नरेशों ने गुर्जर-प्रतिहारों को मुसलमानी आक्रमणो के विरुद्ध सहयोग न किया होता, तो संभवतः मुसलमान प्रतिशोध की भावना से बुन्देलखण्ड क्षेत्र में न आये होते। गंडदेव महमूद का आक्रमण रोकने के लिए आनन्दपाल के राज्य की सीमा में गया, जहाँ उसका युद्ध महमूद गजनवी

की सेना से हुआ। लेखक केशव चन्द्र मिश्र ने फरिश्ता को ऐतिहासिक साक्ष्य मानते हुए अपने यह विचार प्रकट किये है- फरिश्ता ने स्पष्ट रूप से भारतीय सैनिकों की एकता को स्वीकार किया है, यद्यपि वे विभिन्न राज्यों के थे। देखते-देखते तीन-चार हजार मुसलमान तलवार के घाट उतार दिये गये।[4] इसके पश्चात् महमूद गजनवी ने गंड से बदला लेने के लिये चन्देल साम्राज्य पर आक्रमण किया। यह आक्रमण कालिंजर में हुआ। फरिश्ता के अनुसार- सुल्तान ने अब कालिंजर पर आक्रमण किया। कालिंजर कठोर पत्थरों से निर्मित अतट चट्टान के उत्तुंग महाशिला पर स्थित था। वह अनाकृम्य और अजेय माना जाता था। बतलाया जाता है कि ''इस दुर्ग में 500000 आदमियों, 20000 पशुओं और 500 हाथियों के लिए स्थान था। इसमें पर्याप्त सामग्री, शस्त्रास्त्र और अन्य आवश्यकीय वस्तुयें विद्यमान रहती थी। भारत में अपनी दुर्धर्ष स्थिति तथा अजेय स्वरूप के लिए वह अद्वितीय था'' महमूद ने इस पर घेरा डाल दिया और बाहर के समस्त मार्ग बन्द कर दिये, जिनसे दुर्ग में सामग्री पहुँचाई जाती थी ताकि भूखों मार कर आत्म समर्पण करा ले। यह घेरा बहुत दिनों तक चलता रहा। महमूद के लिये दुर्ग में प्रवेश ही दुर्गम था। उधर चन्देल सेना आयात के मार्ग के अवरोध के कारण विचलित हो रही थी। तब गंड ने सम्मानजनक संधि का प्रस्ताव महमूद के पास भेजा। गंड ने 300 हाथी दिये और वार्षिक कर देने का वचन दिया।[5]

महमूद गजनवी ने कालिंजर पर आक्रमण सन् 1022 में किया और वह सन् 1025 में गजनी लौट गया। यदि तद्युगीन हिन्दू नरेशों की तुलना मुसलमान आक्रमणकारियों से की जाये तो यह देखने को मिलता है कि हिन्दू शासकों में नेतृत्व की कमी थी। जबकि दूसरी ओर मुसलमानों की सफलता की कुंजी नेतृत्व में थी। महमूद गजनबी में सैन्य नेतृत्व की योग्यता, युद्ध-कौशल भारतीय योद्धाओं से अधिक था, इसलिए वह एशिया का सुप्रसिद्ध व्यक्ति बना, जबकि भारतीय नरेश आन्तरिक मतभेदों के कारण दुर्बल हो गये थे और उनमें एक दूसरे के प्रति सहयोग की भावना नहीं थी। रूढ़ियों का अनुपालन करने के कारण यहाँ का हिन्दू समाज जर्जर हो गया था। तब केशव चन्द्र मिश्र के अनुसार- यही नहीं, हिन्दुओं का एक बहुत बड़ा भाग राजनीतिक चेतना से दूर था। राज्य रक्षा, देश के लिए बलिदान और सैनिक भावना कुछ ही लोगों में आकर टिक गई थी - वे भी जैसा कि ऊपर कहा गया है, परस्पर दुर्नीति के कारण संघर्ष का शिकार बन चुके थे। इस समय सारा राज्य ही व्यक्तियों के कुछ परिवारों में बंट गया था। संघटित राष्ट्रीयता की उन्मेषशालिनी भावना तिरोहित हो गयी थी। फलतः जब कभी राजपूत हथियार डालते थे, तब सारा देश ही आक्रमणकारियों के हाथ लग जाता था।[6]

हिन्दुस्तान के लोग धर्म का अनुपालन तो दृढ़ता से करते थे, परन्तु अपनी राज्य की सीमाओं का उल्लंघन और समुद्री यात्रा इसलिए नहीं करते थे, कि कहीं उनका धर्म न नष्ट हो जाये। इसका परिणाम यह हुआ कि यहाँ के लोग कूप मंडूक रह गये और शत्रुओं पर चढ़ाई करने की भावना का लोप हो गया। कई असफलताओं के कारण हिन्दुओं का आत्मविश्वास नष्ट हो गया और वे पुरुषार्थ छोड़कर देवी-देवताओं के भरोसे बैठना सीख गये थे। केशव चन्द्र मिश्र के अनुसार - समझ नहीं पड़ता

कि अंधविश्वासों और अस्वस्थ धर्म की कुमान्यताओं ने देशवासियों को कौन सा मद पिलाया था कि सत्रह बार महमूद द्वारा इस देश की छाती निर्भीकता से चीरे जाने और पदाक्रांत होने पर भी उनकी निद्रित ऑखें न खुल सकीं।[7]

कुछ इतिहासकारों का यह मानना है कि गंडदेव की भयंकर भूल के कारण ही महमूद गजनवी ने कालिंजर पर आक्रमण किया। श्री मिश्र के अनुसार ही – कालिंजर पर आक्रमण करने से पूर्व महमूद ने ग्वालियर पर आक्रमण किया था। ग्वालियर चन्देलों का सामन्त था। गंडदेव को चाहिए था कि अपने साम्राज्य की पश्चिमी सीमा पर वहीं ग्वालियर में दृढ़ता के साथ महमूद का सामना करता। यह महान भूल थी और महाराज गंडदेव द्वारा ऐसी राजनीतिक अदूरदर्शितापूर्ण भूल बड़ी खटकती है।[8] यद्यपि महमूद गजनबी ने कोई बर्बरतापूर्ण कार्य बुन्देलखण्ड के हिन्दुओं के साथ नहीं किया, फिर भी उसके आक्रमण का प्रभाव व्यापक रूप से पड़ा।

जब परमार नरेश पृथ्वीराज से परास्त हो गये थे, उस समय उनका आधा साम्राज्य पृथ्वीराज के साम्राज्य में चला गया। जब भारतवर्ष में मोहम्मद गोरी की शासक सत्ता स्थापित हुई, उस समय उसकी ओर से कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली का सत्ताधिकारी बना। इसी समय सन् 1165 में परमार्दिदेव चन्देल सत्ता का अधिकारी बना, इसके साम्राज्य में हिजरी संवत् 599 तद्नुसार 1202 में कुतुबुद्दीन ने कालिंजर पर आक्रमण किया। उसके आक्रमण का प्रभाव यह हुआ- कालिंजर दुर्ग, जो विश्व भर में सिंकदर की दीवार की भांति मजबूती के लिए प्रसिद्ध था, ले लिया गया। मंदिर मस्जिद बना दिये गये। सौजन्य के स्थान, अक्षमाला के जाप करने वालों के स्वर और प्रार्थना के लिए आमंत्रित करने वालों की वाणी सबका अंत हो गया। मूर्ति पूजा का नाम ही मिटा दिया गया, पचास हजार आदमी गुलाम बनाये गये। वह भाग हिन्दू विहीन हो गया। हाथी, पशु और अगणित शस्त्रास्त्र भी विजेता के हाथ लगे। विजय की बागडोर इसके बाद महोबा की ओर फेरी गयी और कालिंजर का शासन हाजाब्बारूद्दीन हसन के जिम्मे किया गया।[9]

बुन्देलखण्डवासियों का मुसलमानों से परिचय-

महमूद गजनबी के आक्रमण के पश्चात् बुन्देलखण्ड निवासियों का परिचय मुसलमानों से निम्न रूप में हुआ-

1. इस्लाम धर्म से परिचय-

चूंकि इस्लाम धर्म का अभ्युदय भारतवर्ष में नहीं हुआ था, इसलिए बुन्देलखण्ड की जनता इस्लाम धर्म के धार्मिक सिद्धान्तों से परिचित नहीं थी। इस्लाम के आगमन के बाद उनका परिचय निराकार, एकेश्वरवाद, विश्व-मानवतावाद आदि से हुआ। वे मुसलमानों को संदेह की नजर से देखने लगे तथा उन्हें अपनी संस्कृति में समाहित नहीं कर सके। इस्लाम धर्मावलम्बी भारतीय संस्कृति के विपरीत आचरण करते थे और ये लाग धर्म के नाम पर पशुबलि पर विश्वास करते थे तथा इनके यहाँ किसी भी प्रकार की वर्ण व्यवस्था, संस्कार व्यवस्था और नवाज के अतिरिक्त दूसरी उपासना

विधि नहीं थी। यहाँ के लोग गाय का सम्मान मातृभाव से करते थे, जबकि इस्लाम धर्म गाय का सम्मान नहीं करता और गोमांस खाने की अनुमति प्रदान करता है।[10]

2. हजरत मोहम्मद साहब के जीवन चरित्र से परिचय-

महमूद गजनबी और कुतुबुद्दीन ऐबक के आक्रमण के पश्चात् जब इस्लाम धर्म के विकास के नाम पर हिन्दू धर्म के धार्मिक स्थानों को अपवित्र किया गया, उस समय यहाँ के कतिपय विद्वानों को इस्लाम धर्म के अभ्युदयकर्ता हज़रत मोहम्मद साहब के पवित्र जीवन के सन्दर्भ में जानकारी उपलब्ध हुयी। ये एक आदर्श पुरूष थे, उन्होंने बहुदेववाद के स्थान पर एकेश्वरवाद के सिद्धांत की स्थापना की थी। उनका उद्देश्य बाह्य आडम्बरों से भ्रमित जनता को वास्तविक धर्म पंथ पर चलाना था, किंतु जिस इस्लामधर्म का आगमन बुन्देलखण्ड में हुआ, वह मोहम्मद साहब के आदर्शो के अनुरूप नहीं था। उन आदर्शो की स्थापना बाद में यहाँ के सूफी सन्तों ने की और हजरत मोहम्मद साहब के जीवन से यहाँ के लोगों को परिचित कराया।

3. इस्लामी संस्कृति से परिचय-

यदि बुन्देलखण्ड की संस्कृति की समतुलना इस्लामी संस्कृति से की जाये, तो दोनों में व्यापक अन्तर समझ में आता है। बुन्देलखण्ड की संस्कृति एक मिश्रित संस्कृति है, इसका निर्माण यहाँ की रहने वाली जनजातियों तथा आर्यो ने मिलकर किया था। कालान्तर में यहाँ हूण, शक , कुषाण तथा अन्य विदेशी संस्कृतियों का प्रभाव पड़ा, किन्तु यहाँ आने वाले विदेशियों ने यहाँ की संस्कृति को अपना लिया और वे ऐसे घुल-मिल गये, कि उनकी पृथक पहचान नहीं रह गयी। जब मुसलमानों का आगमन इस क्षेत्र में हुआ, तो उनकी संस्कृति यहाँ के लोगों पर अपना सकारात्मक प्रभाव न डाल सकी, बल्कि उनसे एक नफरत की भावना उत्पन्न हुई तथा मुसलमानों ने भी यह नहीं चाहा कि वे यहाँ की संस्कृति में घुल-मिल जाये। उनके पहनावे, भाषा, लोकाचरण, धर्माचरण में व्यापक अन्तर था। उनकी सामाजिक व्यवस्था यहाँ की सामाजिक व्यवस्था से जरा भी मेल नहीं खाती थी। इस क्षेत्र के जिन लोगों को मुसलमान बनाया गया, उन्हें भी अपनी संस्कृति छोड़ने का निर्देश दिया गया और उन पर यह दवाब डाला गया, कि वे मुसलमान बनने के बाद तुर्की, अरबी और मुगल संस्कृति का अनुसरण करे, ताकि उनकी अलग सांस्कृतिक पहचान बनी रहे।

4. मुसलमानों की शक्ति से परिचय-

बुन्देलखण्ड निवासियों का परिचय मुसलमानों की शक्ति और संगठन से भी हुआ। ये लोग बुन्देलखण्ड निवासियों तथा भारत के अन्य निवासियों की भाँति असंगठित और उदासीन नहीं थे। वे इस्लाम धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए हर तरह की कुर्बानी देने को तैयार थे। इस्लाम धर्म के अतिरिक्त वे भारत की समृद्धि से भी लाभ उठाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने अपने जोरदार आक्रमणों से यहाँ के नरेशों को परास्त किया और उनकी असीमित सम्पत्ति को लूटा। स्वतः कालिंजर को इन आक्रमणकारियों ने अपनी लूट का शिकार बनाया।[11] वे जानते थे कि भारत की केन्द्रीय शक्ति कमजोर

है, जो सामन्त और राजा यहाँ राज्य कर रहे है, उनमें एकता का आभाव है। उनमें किसी प्रकार की कोई राष्ट्रीय भावना नहीं है, इसलिए उन्हें आसानी से परास्त किया जा सकता है। दूसरी बात ये थी कि इस्लाम प्रचार के लिए धर्म युद्ध करने वाला गाजी की पदवी से सम्मानित किया जाता था। तद्‌युगीन खलीफाओं ने कई आक्रमणकारियों को यह पदवी प्रदान की थी। उनका यह मानना था कि धर्म युद्ध करने वाला व्यक्ति खुदा की ओर से जन्नत का हकदार होता है, इसलिए मुसलमान लोग धर्म के नाम पर कुर्बान हो जाना अपना फर्ज समझते थे।

5. नवीन युद्ध-पद्धति से परिचय-

मुसलमानों के आगमन के पूर्व बुन्देलखण्ड के निवासी और यहाँ के सामन्त तद्‌युगीन नवीन युद्ध से परिचित नहीं थे। जब मुसलमानों का आक्रमण गुर्जर- प्रतिहार साम्राज्य में सीमावर्ती क्षेत्रों मे हुआ, उस समय यहाँ के नरेश धंगदेव, विद्याधरदेव आदि नई युद्ध प्रणाली से परिचित नही थे। तुर्क, अरबी और मुगल युद्ध में आग्नेय अस्त्रों का प्रयोग करते थे और उनकी व्यूह रचना शैली भारतीयों से बहुत उत्तम थी, जबकि भारतीय तीर- कमान, तलवार और भालों से युद्ध करते थे। ये हाथियों की सेना को सबसे आगे रखते थे, जिससे कभी-कभी अपने ही हाथी अपनी ही सेना को रौंद डाला करते थे। राजपूतों ने तथा बुन्देलखण्ड के सांमतों ने भविष्य के लिये अपनी प्राचीन युद्ध प्रणाली में परिवर्तन किया और वे भी नवीन आग्नेय अस्त्रों का प्रयोग अपने युद्ध में करने में लगे।

6. इस्लामी कला संस्कृति से परिचय -

मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् यहाँ के निवासी उनकी विविध कला शैलियों से परिचित हुये। मुख्य रूप से इनके वास्तु- शिल्प से यहाँ के लोग परिचित हुये तथा उन्होंने वास्तु निर्माण में गांधार शैली, तुर्क और फारसी शैली तथा मुगल शैली को अपनाया। 12वीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी तक अनेक वास्तुशिल्प शैलियों का प्रयोग यहाँ के भवनों, दुर्गो में किया गया। वास्तुशिल्प के अतिरिक्त उनके संगीत साहित्य से भी यहाँ के व्यक्तियों का परिचय हुआ। मुख्य रूप से अरबी, फारसी और उर्दू भाषा का प्रचार-प्रसार हुआ और अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना विधि का परिचय यहाँ के लोगों को हुआ। वेश- भूषा को सुसज्जित करने के लिये यहाँ के लोग उनके वस्त्र शिल्प से भी परिचित हुये। तुर्की, पैजामा, कुर्ता, साफा, टोपी, आदि वस्त्र पुरूषों के लिए बने और स्त्रियों के लिये अनेक वस्त्र तुर्क और मुगल- शैली के निर्मित होने लगे। मुसलमानों की आभूषण शैली, केश-विन्यास शैली और श्रृंगार शैली से भी यहाँ के लोग परिचित हुये।

7. खुद की कमजोरियों से परिचय-

यहाँ के व्यक्तियों का यह भी नैतिक कर्तव्य था कि वे इस बात का आत्म मंथन करे कि मुसलमानों का प्रवेश बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में क्यों हुआ। यदि मुगलो की शक्ति और भारतीय शासको की शक्ति का मूल्यांकन किया जाये और उसकी समतुलना की जाये, तो हमें स्पष्ट रूप से यह पता लग जायेगा कि भारतीय शासको को अपनी वास्तविक शक्ति का बोध नहीं था। वे राजसत्ता के मद

में इतने मदहोश थे कि अपने को भी सुविजेता समझ बैठे थे और वापस में ही एक दूसरे को नीचा दिखाने में गर्व का अनुभव करते थे। यहाँ के सामन्तों में राष्ट्रीय भावनाओं का पूरी तरह से आभाव था और उन्हें यह भी अनुमान नहीं था कि कोई भी विदेशी शक्ति बुन्देलखण्ड की पावन भूमि को रौंद सकती है। इसके अतिरिक्त एक कमजोरी यह भी थी कि यहाँ की जनता सम्पूर्ण राजनीतिक दायित्व राजा को सौंपने के बाद निश्चित और उदासीन हो गयी थी। यथा-

जाहे बसे सोई आपन देशू, जो प्रतिपालै सोई नरेशू।

तथा एक अन्य उदाहरण में यह भी झलकता है, कि यहाँ की जनता आने आप को सामन्त के आधीन समझती थी। यथा-

कोई नृप होय हमें का हानी, चेरी छोड़ न होवै रानी।

यदि यहाँ के सामन्त एकता के सूत्र में बंधे होते, उनमें राष्ट्रीय भावना का अभाव न होता और जनता अपने कर्तव्यों के प्रति उदासीन न होती तो यहाँ के मौलिक धर्म को नष्ट करने वाली संस्कृति यहाँ न होती।

इस्लामिक संस्कृति का बुन्देलखण्ड के धर्म पर प्रभाव

बुन्देलखण्ड में इस्लाम धर्म और उससे जुड़ी हुयी संस्कृति एक अविस्मरणीय घटना है। सन् 1022 के पहले कोई ऐसा धर्म हिन्दुस्तान की सीमाओं के बाहर से बुन्देलखण्ड में नहीं आया था, जिसने यहाँ की पुरातन धर्म संस्कृति को आघात पहुँचाने की कोशिश की हो। इस्लाम के पूर्व जो विदेशी आक्रमणकारी भारतवर्ष और बुन्देलखण्ड की सीमाओं में आये, उन्होंने कभी भी यहाँ की धर्म और संस्कृति को नष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया, अपितु वे यहाँ की धर्म और संस्कृति से इतना अधिक प्रभावित हुए कि वे स्वतः यहाँ के धर्म के अनुनायी बन गये। मथुरा और उसके आस-पास अनेक क्षेत्रों में गंधार शैली की दुर्लभ मूर्तियाँ उपलब्ध होती है। यह शैली अफगानिस्तान से भारतवर्ष आयी थी। इसके अतिरिक्त चीनी यात्री ह्वेनसांग और फाह्यान भी भारतवर्ष की यात्रा पर आये थे। इन्होंने बुन्देलखण्ड के कुछ स्थलों का भ्रमण भी किया था तथा वे यहाँ की धर्म और संस्कृति से बहुत अधिक प्रभावित हुए थे, किन्तु इस्लाम धर्म का आचरण और व्यवहार यहाँ की संस्कृति के प्रतिकूल था। उन्होंने उसे संवर्धित करने के बजाय, नष्ट करने का प्रयत्न किया। ईसा की 10वीं शताब्दी और 11वीं शताब्दी में यहाँ की धार्मिक स्थिति इस प्रकार थी।

प्रकृति उपासना-

यहाँ के जो लोग अनार्य कुल अथवा आदिवासी थे, वे अपनी कुल परम्परा के अनुसार प्रकृति की उपसना करते थे। ये लोग पर्वत, सरिता, सरोवर, वृक्ष, नाना प्राकर के गृह नक्षत्र तथा पशुओं की उपासना करते थे। यहाँ के मुख्य निवासी गौड, बैगा, कोल-भील आदि थे, जो प्रकृति की गोद में रहना और उसकी उपासना करना अपना धर्म मानते थे। आज भी यह धर्म बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों

में आदिवासियों के मध्य प्रचलित है। इस उपासना को आर्यकुल की कुछ जातियों ने भी अपना लिया था। उदाहरण के लिये वट-वृक्ष, पीपल, तुलसी, आँवला, चमेली आदि यहाँ पर पूज्य है तथा विशिष्ट धार्मिक कार्यो में आम की लकड़ी और उसके पत्रों का प्रयोग होता है। निश्चित ही प्रकृति उपासना इस्लाम के आगमन के पूर्व चरम सीमा पर थी।

बहुदेववाद :-सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में धर्म तीन भागों में विभक्त था। मुख्य रूप से यहाँ शिव, शक्ति, और विष्णु धर्म के उपासक निवास करते थे। ये लोग ब्रम्हा, विष्णु, महेश, शक्ति के विविध रूप, सूर्य, गणेश, स्वामी, कार्तिकेय, आदि की उपासना करते थे। इसके अतिरिक्त हिन्दू धर्मावलम्बी विविध प्रकार के ग्रामीण देवताओं का पूजन भी करते थे। मुख्य रूप से यहाँ एकेश्वरवाद के सिद्धान्त को न मानकर बहुदेववाद के सिद्धान्त को अपनाया गया। विविध देवी-देवताओं की परिकल्पित मूर्तियाँ निर्मित की गयी, उनके लिये विविध धार्मिक स्थलों का निर्माण किया गया और पूजा उपासना के लिये वहाँ पुजारियों और पुरोहितों की नियुक्ति की गयी। बहुदेवाद के धार्मिक सिद्धान्तों को बढ़ावा देने के लिये अनेक प्रकार के ग्रंथो की संरचना भी की गयी और कर्मकाण्ड से संबंधित अनेक वृत, तीज-त्योहार बने। यहाँ हर उद्देश्य की पूर्ति के लिये अलग-अलग देवी-देवता निर्मित थे, जैसे-विद्या की देवी सरस्वती, धन की देवी लक्ष्मी, युद्धों की देवी दुर्गा अथवा काली, बीमारियों को दूर करने वाली देवी शीतला, विपत्तियों को दूर करने वाले देवता काल भैरव, जल के देवता वरूण, मेघो के देवता इन्द्र, प्रकाश के देवता सूर्य, वायु के देवता मारूत, सृष्टि-सृजेता बृह्मा तथा सब प्रकार का मंगल करने वाले गणेश और हनुमान विशिष्ट उपास्य देव थे, जिनकी मूर्तियाँ मन्दिरों में स्थापित की गयी।[12] और उनकी उपासना होने लगी। इन देवताओं से संबंधित मन्दिर देवगढ़, खजुराहों, कालिंजर, अजयगढ़ आदि क्षेत्रों में उपलब्ध हो जाते है।

हिन्दू धर्म के अतिरिक्त इस परिक्षेत्र में बौद्ध धर्म और जैन धर्म का भी व्यापक प्रभाव था। ये लोग भी हिन्दू धर्मावलम्बियों की भाँति अपने देवताओं की मूर्तियाँ बनाकर उनके मन्दिर बनवाते थे और अपने धर्मानुसार उनकी पूजा किया करते थे। बुन्देलखण्ड में जैन और बौद्ध प्रतिमायें तथा उनसे संबंधित धार्मिक स्थल, देवगढ़, बानपुर, ललितपुर, खजुराहों, महोबा, कालिंजर, मडफा, आदि क्षेत्रों में उपलब्ध होते है।

भाग्यवाद और कर्मकाण्ड -

बुन्देलखण्ड के निवासी जिस परम्परागत धर्म का अनुसरण करते है, उसमें वे अवतारवाद, पुर्नजन्म तथा कर्मानुसार पाप-पुण्य को मानते हैं। इस पाप पुण्य के अनुसार उन्हें अधोगति (नरक), मध्यम गति (पुर्नजन्म) और उत्तम गति (मोक्ष अथवा बैकुण्ठ प्राप्ति) होती है।[13] इसलिए व्यक्ति दुष्कर्म और पाप से डरता है, ताकि उसे अधोगति या नरकगामी न होना पड़े। इसी से प्रेरित होकर वह धर्माचरण और देवोपासना करता है तथा विविध तीज- त्यौहारों को बड़ी श्रृद्धा के साथ मनाता है। यहाँ का व्यक्ति भाग्यवादी भी है, वह जब घोर कष्ट में होता है, तो उसे ऐसा लगता कि उसने

पूर्वजन्म में जरूर कोई पाप किये है। यथा-''यदि विधाता ही वाम है, तो क्या नहीं घट सकता। ''[14]

यहाँ का व्यक्ति विविध प्रकार के धार्मिक कर्म काण्ड अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सम्पन्न करता था। केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार - संध्योपासना, पूजा, मंत्र, जप, होम, निवृत्ति एवं परमानन्द की प्राप्ति के लिए समय- समय पर उत्सव, प्राणायाम, ध्यान, मनन, बुद्धि स्थर्य, समाधि, तप आदि विशेष धार्मिक कृत्य आत्मशुद्धि के लिये किये जाते थे।[15] इन कर्मकाण्डों का प्रतिफल चाहे कुछ भी न हो, फिर भी एक आत्म विश्वास व्यक्ति के हृदय में जागता था।

धर्म से जुड़े अन्धविश्वास -

बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्ति परम्परागत धर्म का अनुसरण करते हुए, धार्मिक अन्धविश्वास के शिकार हो गये थे। जिसका लाभ तद्‌युगीन धर्म के ठेकेदारों और तांत्रिकों ने भरपूर उठाया। केशव चन्द्र मिश्र के अनुसार-बुन्देलखण्ड में जो अनेक देवी- देवताओं, प्रेतों की पूजा, आज जगह-जगह चल पड़ी है, यह उसी भावना का परिणाम है। ऐसे में 'खेर माता' मिड़ोहिया, 'घटाइया', 'गौड़बाबा', 'मसानबाबा', 'नटबाबा', 'छीद', आदि वहाँ के बड़े लोकप्रिय ग्राम देवता है। महामारियों के देवता भी यहाँ के लोगों ने पूजने आरम्भ कर दिये थे।[16]

इस प्रकार हम देखते है कि बुन्देलखण्ड में इस्लाम के आगमन के पूर्व अनेक प्रकार के धार्मिक अन्धविश्वास फैल चुके थे तथा इनकी जड़े गहराई से गड़ गई थी, जिनका हटा पाना संभव नहीं था।

वर्ण व्यवस्था एवं संस्कार व्यवस्था का अनुसरण -

यहाँ के व्यक्ति धार्मिक क्षेत्र में भी वर्ण व्यवस्था और संस्कार व्यवस्था का अनुसरण करते थे। इस परिक्षेत्र में होने वाले धार्मिक संस्कारो को सम्पन्न कराने का अधिकार वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मणों के कार्यक्षेत्र में था और ब्राह्मण उसे अपना एकाधिकार समझते थे। वे बड़े-बड़े मंदिरों के मठाधीश, पुजारी और महन्त थे। बुन्देलखण्ड के धार्मिक स्थलों के संबंध में अनेक अभिलेख और ताम्रपत्र उपलब्ध होते है, जिनमें ब्राह्मणों को दिये गये दान का स्पष्ट वर्णन है। चन्देल कालीन अभिलेख में इसके उदाहरण उपलब्ध होते हैं।[17] इसी प्रकार शक्ति उपासना से संबंधित स्थलों में माली जाति के पुजारी का एकाधिकार था। अनेक प्रकार के धार्मिक कर्मकाण्ड कराने, सद्‌ग्रन्थों का पाठ कराने और वृत आदि को सम्पन्न कराने का अधिकार ब्राह्मणों के हाथ में था। इसी प्रकार समाज से जुड़े हुए सोलह संस्कार धर्म से जोड़ दिए गये थे तथा हर संस्कार ब्राह्मण और उसके सहायक नाऊ के द्वारा ही सम्पन्न होते थे। उस युग में इस भावना को परिवर्तित कर पाना अत्यन्त कठिन था।

छुआ- छूत एवं तिरस्कार का धर्म से संबंध -

पूर्व मध्यकाल में और मध्यकाल में बुन्देलखण्ड का समाज चार भागों में विभक्त था तथा इसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कहा जाता था। अनेक विदेशी यात्री, जो इस समय भारतवर्ष और बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में आये, उन्होंने प्रमुख रूप से यहाँ की सम्पूर्ण जातियों का विभाजन सात भागों में

किया। वे निम्नलिखित है -

1. सब - कुक्रिया 2. ब्रह्म, 3. कत्रिय, 4. सूद्रिय, 5. बैसूरा, 6. सन्दालिय, 7. लहूड़।[18]

समाज में निवास करने वाली शूद्र जाति का सामाजिक स्तर बहुत अधिक गिरा हुआ था तथा ये लोग सेवा कार्य से ही अपना जीवकोपार्जन करते थे। इन्हें वेदाध्यायन करने का अधिकार नहीं था। ये लोग श्राद्ध आदि संस्कार ब्राह्मणों के माध्यम से करा सकते थे।[19] उच्च जाति के लोग इन्हें हेय और अछूत समझते थे। इस समय भेद और चाण्डाल जाति के लोग सर्वाधिक निकृष्ट समझे जाते थे और ये लोग निकृष्ट कार्य भी करते थे।[20]

सी० वी० वैद्य के अनुसार- इब्द खुर्दहा द्वारा उल्लिखित-'सन्दालिया' चाण्डाल ही थे और लेनवेडज के वर्णन से प्रतीत होता है, कि वे अनेक खानाबदोश जातियों के पूर्वज थे।[21]

बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में शूद्रों के साथ न्यायोचित व्यवहार नहीं किया जाता था। संसाधनों की कमी, बुद्धि की न्यूनता और आपसी संगठन न होने के कारण वे सवर्णों को प्रत्युत्तर न दे पाते थे।

बुन्देलखण्ड के धर्म को प्रभावित करने के लिए मुसलमानों द्वारा किए गये कृत्य

जब बुन्देलखण्ड में मुसलमानों का आक्रमण हुआ, उस समय यहाँ चन्देलों का शासन था। महमूद गजनबी ने इस्लाम धर्म के प्रचार-प्रसार और शक्ति-विस्तार के लिए बुन्देलखण्ड में आक्रमण किया। उसके आक्रमण करने का मूल कारण यह था, कि चन्देल नरेश ने महमूद गजनबी के विरूद्ध कन्नौज के शासकों का साथ दिया था। सुप्रसिद्ध ग्रंथ फरिश्ता के अनुसार- कांलिजर का वह शासक जिसने शाही राजा जयपाल को सम्पत्ति और सेना दी थी, चन्देल शासक धंगदेव ही था - इसमें रंचमात्र संदेह नहीं है। सुबुक्तगीन और जयपाल के बीच इस दूसरे संघर्ष का कारण यह था, कि जयपाल ने उस निर्धारित रकम को अदा करने से अस्वीकार कर दिया था, जिसे पहली बार उसने माना था।[22] सन् 1019 ई० में उसने कन्नौज के राजा जयपाल को दण्डित करने के लिए कन्नौज पर आक्रमण किया और उसके पश्चात उसने कालिंजर नरेश को दंडित करने के लिए कालिंजर पर आक्रमण किया। महमूद गजनबी ने दुर्ग के सभी प्रवेश मार्ग बन्द कर दिये थे, जिसके कारण कालिंजर के चन्देल नरेश को उससे संधि करनी पड़ी। वह सन् 1023 में वापिस चला गया, किन्तु इस प्रकार के कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते, जिससे यह सिद्ध हो सके कि कालिंजर आक्रमण के दौरान उसने यहाँ के परम्परागत धर्मो को कोई नुकसान पहुँचाया हो। केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार - ऐतिहासिक प्रक्रिया बतलाती है कि उनमें एकमात्र कमी थी, जो थी राजनीतिक दूरदर्शिता की, जिसके प्रभाव से संकुचित राजनीतिक सीमायें चूर-चूर हो जाती थी और विरल शासक लघु इकाइयों से ऊपर उठकर जाति- गौरव के लिए प्रतिच्युत हो पाते थे।[23]

मुसलमानों का दूसरा आक्रमण परमार्दिदेव के समय में कुतुबुद्दीन ऐबक का हुआ। यह आक्रमण भी बहुत बर्बर था तथा उसके कारण हिन्दू धर्म का पर्याप्त नुकसान हुआ। यह आक्रमण हिजरी

संवत् 599 तद्नुसार 1202 में हुआ। इस आक्रमण में कुतुबुद्दीन ऐबक का सहयोगी शम्सुद्दीन अल्तमश था। परमार्दिदेव कुतुबुद्दीन के आक्रमण का सामना नहीं कर सका और युद्ध से भाग गया। राजा परमार्दिदेव का मंत्री अजयदेव कुतुबुद्दीन ऐबक से संधि नहीं करना चाहता था। उसने सुल्तान की सेना को परेशान किया, किन्तु कुछ दिन बाद जब सब जलाशय सुखा दिये गये और प्रवेश मार्ग काट दिये गये, उस समय 20वां रजब सोमवार को कालिंजर दुर्ग की सेना बाहर आ गयी और दुर्ग सुल्तान के कब्जे में आ गया। इस समय धर्म पर जो आघात किया गया, उसका वर्णन इस प्रकार उपलब्ध हुआ है - कालिंजर दुर्ग, जो विश्व भर में सिंकदर की दीवार की भांति मजबूती के लिए प्रसिद्ध था, ले लिया गया। मन्दिर मस्जिद बना दिये गये। सौजन्य के स्थान, अक्षयमाल के जाप करने वालों के स्वर और प्रार्थना के लिए आमंत्रित करने वालों की वाणी सबका अंत हो गया। मूर्ति पूजा का नाम ही मिटा दिया गया। पचास हजार आदमी गुलाम बनाये गये। वह भाग हिन्दू- विहीन हो गया। हाथी-पशु और अगणित शस्त्रास्त्र भी विजेता के हाथ लगे। विजय की बागडोर इसके बाद महोबा की ओर फेरी गयी और कालिंजर शासन हजाब्बारुद्दीन हसन के जिम्में किया गया।[24]

यहाँ के हिन्दू निवासियों का यह मानना है कि मुसलमानों के आक्रमण बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में औरंगजेब के शासनकाल तक किसी न किसी रूप में होते रहे, जिनसे यहाँ का धर्म और संस्कृति प्रभावित होती रही। मुसलमानों के द्वारा किये गये इन कार्यो का विभाजन हम निम्न रूप से करते है, जिनके कारण यहाँ का धर्म प्रभावित हुआ -

1. हिन्दू धार्मिक स्थलों का विनाश -

मुसलमानों ने हिन्दुओं का धर्म नष्ट करने के लिए सर्वप्रथम उनके धार्मिक स्थलों को नष्ट किया। यहाँ के लोग पंचवेदों की उपासना के लिए जिन धार्मिक स्थलों का निर्माण करते थे, उन्हें मुसलमान आक्रमणकारियों ने रोका। कुछ स्थल क्षतिग्रस्त किये गये और कुछ स्थल पूरी तरह नष्ट कर दिये गये। कुतुबुद्दीन ऐबक ने जहाँ-जहाँ बुन्देलखण्ड मे आक्रमण किया, वहाँ उसने मंदिरों को तोड़कर मस्जिदों का निर्माण कराया। यह क्रम औरंगजेब के जमाने तक कहीं न कहीं किसी रूप में चलता रहा। मुसलमानों के इस कृत्य से हिन्दू जनता काफी रुष्ट हुयी, जबकि मुसलमान लोग इसे जेहाद का परिणाम बतलाते थे।

2. मूर्ति-पूजन को क्षति-

बुन्देलखण्ड के हिन्दू लोग अपने देवालयों में शिव, विष्णु, शक्ति, गणेश, सूर्य तथा अन्य विविध देवी-देवताओं की मूर्तियां स्थापित करते थे और उनकी पूजा बड़ी ही श्रृद्धा-भाव से करते थे। मुसलमान आक्रमणकारियों ने उन मूर्तियों का विनाश किया, जो हिन्दू धर्म की प्रतीक थी तथा मूर्ति-शिल्प की दृष्टि से वे उच्च कोटि की थी। इस्लाम धर्म के मानने वाले लोग एकेश्वरवाद के अनुयायी और मूर्ति-पूजा के विरोधी थे तथा वे हिन्दुओं को काफिर समझते थे, इसलिए काफिरों को दण्ड देने के लिए उन्होंने उनकी मूर्तियों का विनाश किया। बुन्देलखण्ड के अनेक स्थलों में अनेक ऐसे धार्मिक स्थल उपलब्ध होते हैं, जहाँ की मूर्तियां मुसलमानों द्वारा तोड़ी गयी।

3. बलात् धर्म परिवर्तन -

बुन्देलखण्ड में इस्लाम धर्म का प्रारम्भिक आगमन उनकी कटुता का परिचायक था। केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार-सुबुक्तगीन और महमूद दोनो ने जीते हुए देशों के हिन्दुओं को बलात् धर्म-परिवर्तन के लिए बाध्य करने की नीति अपनाई।[25] कुतुबुद्दीन ऐबक का जब आक्रमण कालिंजर में हुआ, उस समय बलात् मुसलमान बनाने की क्रिया अपनायी गयी, जिसका उल्लेख केशव चन्द्र मिश्र द्वारा विस्तृत रूप से किया गया है।[26]

4. हिन्दुओं को दबाने की नीति -

बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में पूर्वमध्यकाल और मध्यकाल में मुसलमान शासकों ने हिन्दुओं को उत्पीड़ित करने की नीति अपनाई। उन्होंने मुसलमानों को अधिक धार्मिक स्वतंत्रता व सुविधायें प्रदान की और हिन्दुओं को अत्यधिक उत्पीड़ित किया गया। उनके ऊपर जजिया कर लगाया गया और बुन्देलखण्ड के अनेक सूबेदारों को हिदायत दी गयी, कि वे हिन्दुओं को किसी प्रकार की सुविधाएं प्रदान न करें। उन्हें इस बात के लिए प्रोत्साहित करे, कि वे अपना धर्म परित्याग करके मुसलमान बन जायें, कुछ लोग अनके द्वारा दिये गये प्रलोभन के कारण मुसलमान भी बने। अनेक मुसलमान कट्टरपंथियों का यह मानना है, कि यदि व्यक्ति काफिर बन जाये अथवा मूर्ति-पूजा करने लगे अथवा ऐसे धर्माचरण करे, जो इस्लाम धर्म के विपरीत हो, उनके विरुद्ध शक्ति का प्रयोग किया जाना कोई अधार्मिक कार्य नहीं है। ऐसा कार्य उन्हें यथार्थ धर्म और खुदा के रास्ते में चलाने के लिए किया गया है, यह उनकी निगाह में जेहाद का एक अंग है। उनका यह मानना है कि यदि द्वोजक के रास्ते में चलने वाले इन्सानों को हम जन्नत का रास्ता दिखलाते है, तो यह काम गैर धार्मिक नही है।

5. मुसलमानों द्वारा किये गये धार्मिक कृत्यों का प्रभाव -

बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में मुसलमानों ने हिन्दू धर्म के विरुध्द, जिस व्यवहार का परिचय बुन्देलखण्ड में दिया, उसका व्यापक प्रभाव यहाँ की जनता पर पड़ा। इस प्रभाव को हम निम्न रूप में देख सकते हैं-

1. मुसलमानों के प्रति प्रतिशोध और नफरत की भावना का उदय -

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में मुसलमानों की धार्मिक कट्टरता का घोर विरोध किया गया। यहाँ के लोगों ने सुनिश्चित किया, कि वे हर हाल में अपने धर्म की रक्षा करेगें। डा० आशीर्वादी लाल के अनुसार- मुसलमानों के द्वारा हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के जोशीले प्रयत्नों से हिन्दुओं में रूढ़िवादिता और दृढ़ हो गयी। हिन्दू नेताओं ने सोचा कि इस्लाम आक्रमणों से अपने धर्म तथा संस्कृति को बचाने का एकमात्र उपाय यही है, कि अपने आचार-विचारों में और कट्टर बन जाये, इसलिए जाति बन्धन और कस दिये गये। दैनिक आचार-व्यवहार के नियमों को इतना कठोर बना दिया गया, कि जितने वे पहले कभी नहीं थे। हिन्दुओं ने अपनी स्मृतियों में से नये-नये नियमों की व्यवस्था की।[27]

हिन्दुओं में नवीन संगठन की भावना का उदय -

बुन्देलखण्ड में हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये जन सामान्य तथा अनेक नरेश आगे आये। सर्वप्रथम ओरछा नरेश मधुकर शाह जू ने अकबर की धर्म विरोधी नीति का विरोध किया तथा उन्होंने हिन्दू धर्म का परित्याग किसी भी स्थिति में नहीं किया। यथा-

हुकुम दियो है बादशाह ने नरेशन को,
जेते रावराना को प्रमाण लेखिअत दै।
चन्दन लगाओ कहुं देव पद बन्दन कौ,
दैहों सिर दाग यह रेखा रेखिअत है।।[28]

मुसलमानी शासनकाल में हिन्दुओं को अपने धर्म की रक्षा करना अत्यन्त कठिन हो गया था। तद्‌युगीन परिस्थितियों से उस युग का साहित्यकार अत्यधिक प्रभावित था और वह यहाँ के निवासियों को प्रभावित कर रहा था। यथा -

जन्त्र मन्त्र पूजा पाठ झूठों सौ दिखात आज, विष हुए जात खात इमरत अहार है।
वैद्य ओह की मनकी हिम्मत हिराय जात, भूल जात सिद्धन की सिद्धता अपार है।।[29]

छत्रसाल का मुसलमानों से कोई विद्वेष नहीं था, किन्तु मुसलमानों की उस नीति से विरोध अवश्य था, जिसके कारण मुसलमान लोग यहाँ के हिन्दू धर्मावलम्बियों को बलात् मुसलमान बनाते थे। उपलब्ध ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार, छत्रसाल अपने पिता चम्पतराय के साथ विन्ध्यवासिनी देवी के दर्शनार्थ गये, यह घटना सन् 1660 की है। इसी समय मुगल सरदार से पूजन को लेकर, जो विवाद हुआ, उसमें उन्होंने उस मुगल सरदार का वध धर्म विरोधी होने के कारण किया। इन्होंने सन् 1680 में अब्दुल हमीद, जो हिन्दू धर्म विरोधी था, उसे चित्रकूट में पराजित किया। स्वयं छत्रसाल महाराज हिन्दू धर्म के रक्षक होने के साथ - साथ उसके अनुकरणकर्ता भी थे -

ज्ञानिन में ज्ञानी और ध्यानिन में ध्यानी अहों,
पण्डित पुरानी अरथाने वेद लाने का।
साहिबा सों सच्चा क्रूर कर्मन में कच्चा छता,
चम्पति का बच्चा शेर सूरवीर बाने का।।[30]

इस प्रकार हम देखते है कि बुन्देलखण्ड की अस्मिता की रक्षा करना तथा यहाँ के धार्मिक स्वरूप को बनाये रखना, तद्‌युगीन सामन्तों का नैतिक दायित्व था, जिसका निर्वाह उन्होंने कुशलता के साथ किया।

मुसलमानों के प्रति नफरत की भावना का उदय -

मुसलमानों द्वारा किये गये कृत्यों के कारण बुन्देलखण्ड में जिस भावना का उदय हुआ, वह नफरत की भावना थी। लोग उन्हें धर्म विरोधी, भ्रष्ट आचरण वाला व्यक्ति तथा कर्मकाण्ड से विमुख व्यक्ति मानते थे। उनके धार्मिक चिन्ह हिन्दुओं से अलग थे। इनकी पूजा पद्धति हिन्दुओं से पृथक थी। वे गंगा, यमुना और सरस्वती को पवित्र सरिताओं के रूप में मान्यता नहीं प्रदान करते थे। यहाँ के लोग

गऊ, ब्राह्मण और कन्या का सम्मान करते थे। मुसलमानों के हृदय में इनके प्रति सम्मान की भावना नहीं थी। ये लोग गंदगी से रहते और मांसाहार करते थे, इसलिए यहाँ रहने वाले सवर्णो के हृदय में इनके प्रति नफरत की भावना उत्पन्न हुई। इन्होनें देशी नरेशों को भी मुसलमानों के विरुद्ध भरा और उन्हें उनसे युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। लाल कवि का यह छन्द प्रेरणा देने लायक है उनकी भावना से प्रेरित होकर छत्रसाल ने मुसलमान सरदार शेर अफगन से 25 अप्रैल सन् 1700 में युद्ध किया।

यथा - *खेत परना को रिवझयौ छत्रसाल छितपाल,*
आये दल उमड़ यवन तेज वन से।
धूंधा नगाड़े बजे धूंधा निशान सजे,
धूं धां सुमट्ट सजे अकड़ दलन से।।[31]

यदि यथार्थ का अवलोकन किया जायें, तो इस्लाम धर्म की धार्मिक कट्टरता के कारण और उलेमा और मौलवियों का हरकतों के कारण इस्लाम धर्म के प्रति घृणा और नफरत की भावना उत्पन्न हुयी। सन् 1671 में औरंगजेब से मुकाबला करने के लिए छत्रसाल ने अपना सैन्य संगठन तैयार किया, क्योंकि उसे यह मालूम हो गया कि औरंगजेब ने ग्वालियर के सूबेदार खिदाई खां को बुन्देलों को दबाने का हुक्म दिया। इस समय खिदाई खां ओरछा रियासत का नियन्त्रक भी था। राधाकृष्ण बुन्देली के अनुसार-औरंगजेब के हुक्म में यह भी था कि हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाया जाये या फिर उन्हें मार दिया जाये। मन्दिरों को तोड़कर मूर्तियों को नष्ट कर दिया जाये।[32]

बुन्देलखण्ड में रहने वाली छोटी जातियों के लिए इस्लाम एक वरदान-

बुन्देलखण्ड में हिन्दू धर्म से संबंधित समाज वर्ण- व्यवस्था में विभाजित था। इसमें चतुर्थ वर्ण के लोग शूद्र कहलाते थे और समाज द्वारा इनकी व्यापक उपेक्षा की जाती थी। जब उन्हें मुसलमानों द्वारा प्रलोभित किया गया, तो उन्होंने इस धर्म को आसानी से अपना लिया। मुसलमान बनने के बाद इन्हें जो सम्मान प्राप्त हुआ, वह उन्हें हिन्दू बने रहने में कभी प्राप्त नहीं हो सकता था। मुसलमानों ने उन्हें सद्भावना और स्नेहपूर्ण व्यवहार दिया, उनसे छुआ-छूत नहीं की और उनसे बराबरी का भाई चारा स्थापित किया। हरिजनों से मुसलमान बने अनेक व्यक्त्यिों को सम्मानजनक शासकीय नौकरियां प्रदान की गयी और उनके बालक बालिकाओं के विवाह अच्छी जगह हुए तथा हिन्दू भी इन लोगों को सम्मान की दृष्टि से देखने लगे। कालान्तर में ये जातियाँ बुन्देलखण्ड में भिश्ती, बेहना, मनिहार, छीपा, चिकवा आदि नामों से विख्यात हुई।

धर्म आन्दोलनों का उदय -

जब यहाँ के बुद्धिजीवियों और शासकों ने यह देखा, कि मुसलमानों और उनके धर्म का प्रभाव यहाँ के नागरिकों पर बढ़ता जा रहा है, तो उस पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए सम्पूर्ण भारत में एक धार्मिक आन्दोलन का शुभारम्भ हुआ। इसका उदय 11वीं शताब्दी में हुआ तथा 17वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक यह बराबर चलता रहा। इसका प्रभाव सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में पड़ा। इस आन्दोलन के

अन्तर्गत हिन्दू धर्म की प्रबल शाखा के रूप में निराकार ब्रह्म के उपासक, साकार भक्ति में राम उपासक, कृष्ण उपासक और शक्ति उपासक आन्दोलित हुए। इस आन्दोलन का नेतृत्व अलग-2 क्षेत्रों में अलग-2 व्यक्तियों ने किया। बनारस के आसपास इस आन्दोलन का नेतृत्व संत कबीरदास ने किया। इनका जन्म सन् 1398 और मृत्यु सन् 1518 में हुयी। पंजाब में जो धार्मिक आन्दोलन उठा, उसका नेतृत्व गुरूनानक ने किया। गुरू नानक का जन्म 1469 में हुआ था तथा उन्होंने अपने सद्उपदेश पंजाब के आस-पास दिये। उसके अतिरिक्त सन्त दादू .दयाल अकबर के युग में हुये। इसके पश्चात् सन्त मलूकदास जिन्होने अपना धर्मिक आन्दोलन इलाबाद के आस -पास प्रारम्म किया। इनका जन्म 1574 में और मृत्यु 1682 में हुयी। गुरू प्राणनाथ ने अपना आन्दोलन बुन्देलखण्ड में प्रारम्भ किया। इनके अतिरिक्त करतार बाबा, नामदेव, बहीराम,तुकाराम, मीरबाई, तुलसीदास, सूरदास, तथा अनेक सन्तों ने धार्मिक आन्दोलनों में भाग लिया। इन धार्मिक आन्दोलनों का मुख्य उद्देश्य जनता को धर्म की राह पर चलाना, उनको भ्रमित होने से बचाना तथा हिन्दू धर्म संस्कृति की रक्षा करना था। इस धार्मिक आन्दोलन का यह परिणाम हुआ कि नष्ट होता हुआ हिन्दू धर्म पुनर्जीवित हुआ और उसकी रक्षा हुई।

सर्वधर्म सम्भाव वाले पंथों का उदय -

केन्द्रीय सत्ता में मुसलमानों के होने के कारण यहाँ के बुद्धिजीवियों ने धर्म के नाम पर संघर्ष करना, किसी भी प्रकार से उचित नहीं समझा तथा यह अनुभव किया कि समस्त धर्मो के मूल सिद्धान्त करीब -2 एक थे। कबीर हिन्दुओं की वर्णाश्रम या जाति भेद के कट्टर विरोधी थे, इन्होनें हिन्दू मुसलमान दोनों को मानव धर्म की शिक्षा दी। इस मानव धर्म का प्रभाव पड़ा। इसी प्रकार दादू का भी प्रभाव इस क्षेत्र में व्यापक रूप से पड़ा। दादू का यह पद उल्लेखनीय एवं महत्वपूर्ण है-

हौद हजूरी दिल ही भीतर, गुस्ल हमारा सारं।
उजू साजि अलह के आगे, जाहॅ नियाज गुजारं।।
काया मसीत करि पंच जमाती, मन की मुला हमामं।
आप आलेख इलाही आगे, तहे सिजदा करै सलामं।[33]

इन्होनें हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता पर बल दिया था। यथा -

हिन्दू लागे देहुरे, मुसलमान मसीत।
हम लागे इक आलख सौ, सदा निरन्तर प्रीत।।
न तहं हिन्दू देहुरा, न तहं तुरक मसीत।
दादू आपे आप है, नहीं तहां रह रीत।।[34]

सन्त मलूकदास ने भी हिन्दू मुसलमान एकता पर बल दिया है, वे धर्म के नाम पर किसी भी प्रकार का संघर्ष नहीं चाहते थे। यथा -

माला कहीं औ कहां तसबीह,
अब चेत इनहिं कर टेक न टेकै।

काफिर कौन म्लेच्छ कहावत,

सन्ध्या निवाज समै करि देखै। [35]

वीरभान छत्रसाल के परम सहयोगी थे, उन्होंने सतनाम धर्म का प्रचार-प्रसार पूरे बुन्देलखण्ड में किया। ये लोग किसी भी व्यक्ति से छुआ-छूत नहीं मानते थे। सबके साथ खाते पीते थे और सबके साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करते थे। ये लोग मूर्ति-पूजा के विरोधी थे। इनके धर्म के अन्तर्गत परमात्मा का ध्यान, सदाचार, समानता तथा मांस मदिरा का निषेद प्रमुख था।

औरंगजेब के शासनकाल के समय गुरू प्राणनाथ का प्रभाव बुन्देलखण्ड में व्यापक रूप से पड़ा था। उन्होंने अपने धर्म ग्रन्थ का सृजन 'कुलजुम सरूप' गुजराती में किया, जिनमें मानवता और समानता के सिद्धान्तों की पुष्टि की गयी। इन्होंने वेद, कुरान को एक स्तर प्रदान किया है तथा मूर्ति-पूजा का प्रबल विरोध किया है। ये समाज में ब्राह्मणों के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते थे। इनके शिष्य हिन्दू और मुसलमान दोनों थे, जो एक साथ बैठकर भोजन करते थे। उन्होंने एक अपनी पुस्तक 'कयामतनामा' नाम से लिखी है गुरू प्राणनाथ द्वारा संचालित पंथ प्रणामी सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा इस धर्म के अनुकरणकर्ता सर्वधर्म समन्वय की भावना से प्रेरित थे तथा वे लड़ाई को किसी प्रकार पसन्द नहीं करते थे। यथा -

मायना ऊपर का सबो लिया और लिया अहंकार।

फिरके फिरे हक से, बॉधे जाये कतार.......।।[36]

मुसलमानों को सम्बोधित करते हुए प्रणामी सम्प्रदाय में यह निर्देश दिया गया है, कि वे पहले अपनी आत्मा को पहचाने, बाद में रोजा और कुअ़ान पर यकीन करे। प्रणामी सम्प्रदाय के कुछ सिद्धान्त सूफी मत से मिलते-जुलते है। डा० राममूर्ति त्रिपाठी के अनुसार- दिल से कलमा (मंत्र जाप), नमाज (नमन), रोजा के आदि धर्म के नियमों को इस यथार्थ रूप से करने से ही आत्मा की पहचान होती है। अपने आप को सेवक समझ कर अपना सर्वस्व प्रभु को अर्पित कर दे, तब कहीं दिल में उस परम सौंदर्य एवं ऐश्वर्य के स्वामी कृपालु परमात्मा का साक्षात्कार होता है। इल्म-ए-सकीना वाले पारम्परिक इस्लामी खुदा और खलक में सर्वथा भेद मानते हैं और परस्पर शासक शासित भाव सम्बन्ध मानते हैं।[37] गुरू प्राणनाथ ने सभी धर्मो का सारतत्व लेकर एक नवीन धर्म की परिभाषा सृजित की है। उन्होंने वेदान्त गीता तथा भागवत के गूढ़ात्मक शब्दों को व्यवहारिक स्वरूप प्रदान किया है तथा ईसाइयों की बाइबिल, मूसा और दाऊद के ज्ञान ग्रंथ जबूर और तौरात तथा मोहम्मद साहब कृत कुअ़ान शरीफ में वर्णित सिद्धान्तों को नया स्वरूप प्रदान किया गया है यथा -

वेदान्त गीता भागवत, दैयां इसारतॉ सब खोल।

मगज माएने जाहेर किये, मांहे गुझ हते जो बोल।।

अंजीर जंबूर तौरेत, चौथी जो फुरमान।

ए माएने मगज गुझ थे, सो जाहरे किये बयान।।[38]

सुप्रसिद्ध विद्वान डा० राजकुमार अरोरा कुलज के सिद्धान्त को वर्णित करते हुए उसे अन्य धर्म ग्रन्थों के उदाहरण देकर प्रस्तुत करते है -

God grace is defined as the recognition and the reality of ultimacy in comprehesive. It is also means the presence and activity of the divine among men. According to St. Paul , "Grace means the free love of God visiting men when unsought , more particularly as opposed to all demands of law or claim of merit." In the Gita grace is an attribute of the Lord like other attributes. It is perennial , spontaneous and impartial. It is compared to the shower of compassion which comes down from heaven, It dropth as the gentle rain upon the place beneath.[39]

सम्पूर्ण धर्मो का सार यह निकलता है, कि परमात्मा का नाम चाहे कुछ भी हो, किन्तु वह सम्पूर्ण संसार का निर्माता है और उसी के शान से यह संसार चल रहा है। महामति प्राणनाथ ने परमात्मा को खोजने का यत्न किया और यह स्वीकार किया कि कुलजम जैसे ग्रंथ में उन्होंने परमात्मा के सर्वमान्य स्वरूप को प्रस्तुत किया है तथा स्वतः प्राणनाथ ने चेता, सुखदेव और कबीर को अपना प्रेरणास्रोत माना है। इसके अलावा उन्होंने नरसिंह मेहता को भी अपना प्रेरणास्रोत माना है। उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण को भी अपना आदर्श माना तथा उन्हें अपने सम्प्रदाय से जोड़ा, उनके धर्म में प्रकृति, माया, आत्मा, सगुण, निर्गुण, निरंजन, जीव-ब्रह्म, भक्ति, गोविन्द, अद्वैत, द्वैत, ईश्वर, परमात्मा, भवसागर, निर्वाण, जमपुरी तथा अवतार आदि शब्दों को आध्यात्मिक दृष्टि से परिभाषित किया है।

उन्होंने इस्लाम धर्म से संबंधित शब्दावली को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। मुख्य रूप से आल्हा, नूर, दीन, अमत, सेजदा, आदम, कौल, म्याराज, रब्ब, मलकुली, लाइूती, सूर, सदरतुल, मुतहा आदि शब्दों को प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त कुलजम स्वरूप में इस्लाम धर्म से संबंधित अनेक पैगम्बरों के नाम भी गिनाये गये है-

महमूद, इमाम, इमाम मेहदी, नूह, माफिस, युसूफ, सुलेमान, सफी, अल्लाह, जिकारिया, अजालील, असरफील, जबराईल, इसहाक, दाऊद, मैकाईल।

कुलजम ग्रंथ प्रणाली सम्पद्राय का ऐसा ग्रंथ है, जिसमें सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान धर्मावलम्बियों के मध्य एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। उनके अनुसार -

महामत कहें ईमान की, सुकर गरीबी सबर।
इन विध रहे दोस्ती धनी की, प्यार कर सके त्योकर।। किरंतन/ 102-12
बका चाहे सो फना होए, बिना फना बका न पावे कोए।
छोड़ो नाचीज जो कमतर, ताथे फना होउ बका पर।। कियामतनामा/ 3-26
दिल पाक जो लो होय नहीं, कहा वजूद ऊपर से धोए।
धोए वजूद पाक दिल, कबहूँ हुआ न कोए।। सनंध / 21-40

प्राणनाथ के अनुसार परमात्मा पर विश्वास रखना, उससे प्रेम करना, अच्छे कार्य के लिए भगवान का शुक्रगुजार होना, गरीबी में सब्र करना, प्रियतम को प्राप्त करने का प्रयास करना, अहंकार का परित्याग करना, धर्म का साम्राज्य स्थापित करना, अपनी प्रशंसा खुद न करना, मन वचन कर्म से पवित्र होना ही वास्तविक धर्म है। इस धर्म के अनुसार- कायिक-वाचिक-मानसिक शुद्धि और सर्वधर्म-समर्थित, औदार्य, सहनशीलता आदि के अभाव में अस्तित्वात्मक संचेतना की बात उठायी भी नहीं जा सकती है। महामति की वारतम वाणी के गायन और अनुपालन से समस्त मानव जाति पर छाये आधुनिक विनाशकारी पर्जन्यों को सरलतया छिन्न-भिन्न किया जा सकता है और मानव-अस्तित्व को बचाया जा सकता है।[40]

इस्लाम धर्म का हिन्दू धर्म पर प्रभाव -

बुन्देलखण्ड में इस्लाम धर्म अपने आध्यात्मिक दृष्टिकोण से 11वीं और 12वीं शताब्दी में यहाँ आया तथा इसका व्यापक प्रभाव यहाँ के परम्परागत धर्म, जो हिन्दू धर्म अथवा सनातन धर्म के नाम से विख्यात था, पर पड़ा। इस्लाम धर्म का प्रमुख सिद्धान्त वैदिक धर्म के एकेश्वरवाद के सिद्धान्त से किसी भी प्रकार अलग नहीं था। वैदिक सिद्धान्त के अनुसार-एकोब्रह्मअस्ति द्वितीयोनास्ति और एकेश्वरवाद में समानता प्रतीत होती है, किन्तु बहुदेववाद की उपासना के कारण इस सिद्धान्त का प्रायः लोप हो गया था। इस्लाम के आगमन के पश्चात यह सिद्धान्त पुर्नजीवित हुआ। जगतगुरू शंकराचार्य ने एकेश्वरवाद के सिद्धान्त को स्वीकार किया। इस्लाम धर्म ईश्वर के अस्तित्व के अतिरिक्त रूद्र (आत्मा) के अस्तित्व को भी स्वीकार करता है। हिन्दू धर्म में प्रचलित द्वैतवाद के अन्तर्गत आत्मा और परमात्मा दोनों के अस्तित्व को स्वीकार किया जाता है। इस्लाम के आगमन के बाद गीत का सांख्य योगदर्शन पुर्नजीवित हुआ, इसके पहले यह सुप्त सा हो गया था। इस्लाम धर्म के अन्तर्गत परमात्मा सृष्टि का सृजेता अवश्य है, किन्तु उसकी पहचान पंच महाभूतों और प्राकृतिक पदार्थो से होती है। गीता के सिद्धान्त के अनुसार- परमपिता परमात्मा और आत्मा प्रकृति और प्रकृति पुरूष से सम्पूर्ण चराचर संचालित है। कुर्आन शरीफ में इस सिद्धान्त को माना गया है। इस परिक्षेत्र में इस्लाम के आगमन के पूर्व सगुण अथवा साकार भक्ति की उपासना प्रकृति, पशु और मूर्ति पूजा के रूप में होती थी। ईश्वर के निराकार स्वरूप को लोग भूल सा गये थे। इस्लाम के आगमन के बाद ईश्वर के निराकार स्वरूप करीब-करीब सभी साधु-सन्तों ने स्वीकार किया -

बिन पग चले सुनै बिन काना। बिन कर कर्म करै विधि नाना।।

आनन रहित सकल रस भोगी। बिन वाणी वक्ता बड़ योगी।। तुलसीदास ।।

किन्तु निराकार ब्रह्म के साथ-साथ इसे विशिष्ट परिस्थितियों में अवतार लेने वाला भी बतलाया गया है। इस्लाम धर्म ने हिन्दू धर्म में विश्व मानवता और भाईचारे की भावना का व्यापक प्रभाव डाला, जिसके परिणामस्वरूप शूद्रों के प्रति जो कठोर रवैया अपनाया गया था, उसमें व्यापक परिवर्तन हुआ और उनके साथ विनम्रता का व्यवहार होने लगा। सद्ग्रन्थों का पाठ हिन्दू धर्म में भी

कुर्आन शरीफ की भॉति होने लगा तथा पांच वक्त की नवाज की भाँति पांच वक्त की पूजा भी हिन्दू मन्दिरों में होने लगी। इस्लाम धर्म का प्रभाव हिन्दू धर्म में उस समय पड़ा, जब सूफी संतों ने हिन्दू जनता के साथ प्रेम और उदारता का व्यवहार किया।

हिन्दू धर्म का इस्लाम धर्म पर प्रभाव -

यहाँ पर जो भी मुसलमान मूल रूप से निवास करते थे, उनका संबंध किसी भी प्रकार से अरब, मंगोलिया और तुर्कीस्तान से नही था, बल्कि वे यही के मूल निवासी थे। जो इस्लाम धर्म अपनाने से पूर्व यहॉ के परम्परागत धर्म का अनुसरण करते थे। मुसलमान आक्रमणकारियों ने उन्हें शक्ति का प्रदर्शन करके, प्रलोभन देकर या उनसे वैवाहिक संबंध स्थापित करके मुसलमान बनाया। इस समय सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में छुआ-छूत की भावना बहुत अधिक थी। वे हिन्दू, जो मुसलमानों का भोजन और पानी स्वीकार कर लेते थे या उन्हें छू लेते थे, उन्हें जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था इसलिए वे मजबूरी में इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेते थे। पन्ना महाराज छत्रसाल ने एक मुसलमान कन्या से विवाह किया था। उस कन्या से दो पुत्र शमसेर खॉ और खाँनजहाँन तथा एक पुत्री मस्तानी उत्पन्न हुयी थी, जिन्हें हिन्दू धर्म की कट्टरता क कारण नहीं अपनाया गया था और वे मुसलमान बने रहे। इसी प्रकार छत्रसाल की पुत्री मस्तानी को बाजीराव पेशवा ने अपनाया, किन्तु उसके पुत्र शमशेर बहादुर को हिन्दू धर्म में दक्षित नहीं किया जा सका।[41] इसी कोटि के मुसलमान सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में है, उन्होंने वंशगत और धर्मगत परम्पराओं का परित्याग नहीं किया। जो सूफी संत इस्लाम के प्रचार-प्रसार के लिए बुन्देलखण्ड में अपने स्थान बनाकर रहने लगे, उन्होंने हिन्दू धर्म की उपासना पद्धति, भक्ति भावना और प्रेम प्रदर्शन पद्धति को अपना लिया। सूफी सन्तों ने हिन्दू सन्तों की भाँति शरीर को शुद्ध और आत्मा को पवित्र बनाने के लिए जप-तप-ध्यान-योग को अपनाया तथा ईश्वर को प्रेमी और प्रेमिका के रूप में स्वीकार किया। इसके लिए अनेक साहित्यकारों ने भारतीय कथा परम्परा को अपनाकर प्रेम गाथा से परिपूर्ण ग्रंथों का सृजन किया। मुख्य रूप से मलिक मोहम्मद जायसी ने पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम नामक तीन ग्रंथों का सृजन किया और राजा रत्नसिंह और पद्मावती की प्रेम गाथा को आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान किया। यथा -

चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल बुधि पद्मिनी चीन्हा।
गुरू सुआ जिन पंथ दिखावा। बिन गुरू जग यह निर्गुण पावा।।

संत कबीर जैसे ने इस प्रेम गाथा को अपने शब्दों में इस प्रकार कहा -

ये अखियां अलसानी, पिया हो सेज चलो,
फूलन की जो सेज बिछाई, पिया बिना कुमलानी।
धीरे पांव धरो पनगा पर, जागत ननद जिठानी,
कहे कबीर सुनो हो सन्तों यह सब अकथ कहानी।।[42]

मध्यकाल के कवि रसखान स्वतः कृष्ण की प्रेम भावना से प्रेरित हुए और उन्होंने

कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा में जन-जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया -

मानुष हो तो वहै रसखान, बसै नित गोकुल गॉव के ग्वालन।

जो पशु होऊ तो कहॉ बस मेरो, चरौ नित नंद की धेनु मझारन।।

रहीमदास जी भी मुसलमान थे और उनका काफी समय बुन्देलखण्ड की पावन भूमि चित्रकूट में व्यतीत हुआ। वे भी हिन्दू धर्म से प्रभावित थे तथा हिन्दू धर्म के मूल सिद्धान्त ज्ञान, बुद्धि, धर्म, जप, तप, दान के सिद्धान्त से प्रभावित थे। यथा -

रहिमन विद्या बुद्धि नहिं नहीं धरम जप दान।

जनम वृथा भूपर धरेउ, वसु बिन पूँछ विषान।।

रहीम के अतिरिक्त मुगलों की अनेक रानियाँ, जो मुगल सम्राट के हरम के अन्दर रहती थी, वे भी हिन्दू धर्म से प्रभावित थी बुन्देलखण्ड के एक सुप्रसिद्ध कवि जब मुगल सम्राट से मिलने के लिए गये, तो उनकी रानी हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों से इतनी अधिक प्रभावित हुयी, कि उसने स्पष्ट शब्दों में कहा था- *हौं तो मुगलानी, हिन्दवानी बनके रहूँगी मैं।*

हिन्दू धर्म का स्पष्ट प्रभाव मुसलमानों के धर्माचरण में स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है। मुर्हरम, ईद, शबेरात मनाने का तरीका इस परिक्षेत्र में हिन्दू तीज-त्योहारों जैसा है तथा इनके तीज-त्योहारों में हिन्दुओं का बराबर का सहयोग रहता है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि बुन्देलखण्ड की पावन भूमि में पनपने वाला इस्लाम हिन्दू धर्म से प्रभावित नहीं है। मुसलमान हरि भक्तों से हिन्दू जनता खुश थी और उनके लिए यह कहती थी-

इन मुसलमान हरि जनन पर कोटक हिन्दू बारिये।

मजहबी संघर्षो का उदय -

बुन्देलखण्ड में हिन्दू और मुसलमानों के मध्य धर्म के नाम पर व्यापक संघर्ष हुए है। ये संघर्ष मस्जिद, दरगाहों को लेकर मुख्य रूप से हुए है। जब कभी हिन्दू धर्म के स्थलों को अपवित्र करने के लिए कट्टरपंथी मुसलमानों द्वारा प्रयास किया गया अथवा किसी कारणवश गोवध हुआ, उससे संघर्ष की स्थिति कई बार उत्पन्न हुयी। इसी प्रकार जब हिन्दुओं ने क़िसी मस्जिद या दरगाह में सुअर के माध्यम से उनके धार्मिक स्थल को अपवित्र करने का प्रयास किया, उस समय साम्प्रदायिक दंगे हुए। किन्तु बुन्देलखण्ड में आपसी तालमेल और सूझ-बूझ के कारण साम्प्रदायिक दंगे अन्य स्थानों की अपेक्षा कम हुए।

इस्लामी संस्कृति का यहॉ की सामाजिक व्यवस्था पर प्रभाव

मुसलमानों का आगमन, जब बुन्देलखण्ड में हुआ, उस समय निश्चित ही यहाँ की सांस्कृतिक और सामाजिक व्यवस्था में अनेक परिवर्तन हुये। इसके पूर्व बुन्देलखण्ड में तीन प्रकार के लोग निवास करते थे।

1. अनार्य कुल जातियाँ -

विविध गजेटियर तथा ऐतिहासिक ग्रंथों को साक्ष्य मानते हुए तथा यहाँ की भौगोलिक संरचना का अध्ययन करते हुए यह अनुभव होता है, कि इस परिक्षेत्र में अनेक जंगली जातियाँ निवासी करती थी, जो अपना जीविकोपार्जन वन सम्पदा तथा खनिज सम्पदा से करते थे। इन जातियों में गौड़, बेगा, कोल, भील, शहरिया आदि जाति के लोग थे। इन लोगों का अस्तित्व बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में आज भी है। इन्होंने अपनी सांस्कृतिक परम्परा का परित्याग पूरी तरह से नहीं किया है, किन्तु ऐसा नहीं है कि वे यहाँ आने वाली दूसरी संस्कृतियों से प्रभावित नहीं हुये। इनकी संस्कृति पर आर्यो, शकों, हूणों, और कुषाणों की संस्कृति का प्रभाव पड़ा। कालान्तर में जब तुर्क यहाँ पर आये, उस समय तुर्को ने भी इन्हें प्रभावित किया। उस प्रभाव का परिणाम यह हुआ, कि वंश का शुद्धिकरण रक्त के आधार पर समाप्त हो गया तथा अनेक वर्ण शंकरीय उपजातियों का उदय हुआ, यद्यपि ये उपजातियॉ अलग-2 व्यवसाय से जुड़ी हुयी थी, फिर भी अनके शारीरिक स्वरूप से वर्ण शंकरता स्पष्ट रूप से झलकती था।

आर्यकुल जातियाँ -

कतिपय इतिहासकारों का मत है कि आर्यो का आगमन बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में उत्तर भारत तथा अन्य उत्तरी पश्चिमी देशों से हुआ, जबकि कुछ इतिहासकार आर्यो को भारत का मूल निवासी मानते है। योग वशिष्ठ के अनुसार आर्य का शाब्दिक अर्थ श्रेष्ठ अथवा उच्च वंश होता है।

कर्तव्यामाचरन् कामकर्त्तत्यमनाचरन्।
तिष्ठति प्राकृताचारो यः स आर्य इति स्मृतः।।
यथाचारं यथाशास्त्रं यथचित्तं यथास्थितम्।
व्यवहारमुपादते यः स आर्य इति स्मृतः।।[43]

सुप्रसिद्ध इतिहासकार इस विवाद में नहीं उलझे, कि आर्य भारत के मूल निवासी थे या बाहर से कहीं आये थे, वे इतिहास को विवाद का विषय नहीं बनाना चाहते थे। उनके अनुसार -

"Discussion concerning the original seat or home of Aryans is omitted purposely because no hypothesis on the subject seems to be established."[44]

मुख्य रूप से आर्यो को तिब्बत, मध्य एशिया, बैक्ट्रिया, किरगीज स्टेप्स के मैदान, पामीर का पठार और रूसी तुर्किस्तान का निवासी माना जाता है। सुप्रसिद्ध विद्वान राजबली पाण्डेय इन्हें मध्य देश का निवासी मानते हैं। गंगानाथ झा इन्हें ब्रह्मर्षि देश का निवासी मानते है। एल० डी० काला इन्हें कश्मीर का निवासी मानते है। डी० एस० त्रिवेदी इन्हें देविकानन्द प्रदेश का निवासी मानते है। ए० सी० दास एवं सम्पूर्णानन्द इन्हें सप्रसिन्धु प्रदेश का निवासी मानते है। कतिपय विद्वानों के अनुसार आर्य लोग पश्चिमी बाल्टिक समुद्र तट, हंगरी, जर्मन प्रदेश और दक्षिणी रूस का निवासी मानते है। आर्य चाहे जहॉ के भी हो, उन्होंने बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र को प्रभावित किया। सर्वप्रथम दशरथ नन्दन

श्री रामचन्द्र 12 वर्ष तक इस प्रदेश में रहे, उसके पश्चात् पाण्डुओं के वनवास का समय भी यहाँ व्यतीत हुआ। अनेक आर्य कुल महिषियों ने इस क्षेत्र में अपने आश्रम बनाये। मुख्य रूप से अगस्त, मार्कण्डेय, अत्रि, सुतीक्ष्ण, आदि महीषियों के आश्रम बुन्देलखण्ड की पावन भूमि में थे। आर्य लोगों ने यहाँ रहने वाली जंगली जातियों से अपने सम्बन्ध स्थापित किये थे और अपनी संस्कृति का प्रभाव अनार्यो पर डाला था। इन्होंने अनेक अनार्य कुल की महिलाओं के साथ वैवाहिक संबंध भी स्थापित किए।

सम्पूर्ण आर्य जाति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार जातियों में विभाजित थी तथा आयु के हिसाब से इनके यहाँ ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास चार आश्रमों का अनुपालन भी होता था। इसके अतिरिक्त यह लोग 16 संस्कारों पर भी विश्वास करते थे, ये संस्कार विभिन्न आयु वर्ग में विभाजित थे।

जब विदेशी जातियों का आगमन बुन्देलखण्ड की धरती पर हुआ, उस समय आर्य कुल की जातियाँ भी इनसे प्रभावित हुयी। वर्ण व्यवस्था चरमरा गयी और जातीय नियम अत्यन्त कठोर हो गये। जब तुर्को का आगमन बुन्देलखण्ड की भूमि में हुआ, उस समय तुर्को से ब्राह्मण और क्षत्रिय कुल के लोग प्रभावित हुये थे, क्योंकि तुर्को के आगमन से इनके सामाजिक अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो गया। चतुर्थ वर्ण के लोग भी इस्लाम धर्म को वरदान समझकर उससे बहुत अधिक प्रभावित हुए तथा उन्होंने सवर्णो द्वारा की जाने वाली उपेक्षा की बजाय, मुसलमान बनना अधिक अच्छा समझा, इसलिए तुर्को की सामाजिक व्यवस्था का प्रभाव चर्तुथ वर्ण पर सर्वाधिक पड़ा। इसके परिणाम स्वरूप अनेक उपजातियाँ, जो पहले हिन्दू थी, वे मुसलमान हो गयी और उस संस्कृति को मानने लगी।

तुर्को से पूर्व की अन्य विदेशी जातियाँ -

आर्यो के बाद भी विदेशी जातियों का आगमन बुन्देलखण्ड की भूमि पर होता रहा। मौर्यो के शासनकाल में सिकन्दर का आक्रमण भारतवर्ष में हुआ। मौर्यो का शासन बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में भी था, इसलिए वह भी सिकन्दर के आक्रमण से प्रभावित हुआ। सिकन्दर के साथ आये सुप्रसिद्ध विद्वान मैगस्थनीज ने इण्डिका नामक ग्रंथ की रचना की थी। उस ग्रंथ में तद्‌युगीन सामाजिक व्यवस्था का वर्णन उपलब्ध होता है।[45] सिंकन्दर के साथ यूनानी लोग तद्‌युगीन सामाजिक व्यवस्था से प्रभावित हुए। उस समय यहाँ कृषक, पशुपालक, मजदूर, क्षत्रिय, सामन्त और उनके अनुचर निवास करते थे। यूनानियों के पश्चात शक, पल्लव और कुषाण वंश में बुन्देलखण्ड को प्रभावित किया। बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में उनके ऐतिहासिक स्मृति चिन्ह उपलब्ध होते हैं। उस समय इस परिक्षेत्र में वाकाटक, मौखरि, नाग वंश के नरेशों का अस्तित्व था तथा जातीय बन्धन अत्यन्त कठोर हो गए थे। इनका अनुपालन करना सभी वर्ग के लिए अनिवार्य था। पूर्व मध्य युग के पहले राजपूतों का अस्तित्व बुन्देलखण्ड में बढ़ गया था। मुख्य रूप से गुर्जर प्रतिहार, चन्देल, चालुक्य और कल्चुरि बुन्देलखण्ड के प्रमुख शासकों में थे। इनमें से कुछ राजपूत वंश हूण, शकों, और कुषाणों से भी सम्बन्धित थे। शकों, कुषाणों, हूणों, ने भी बुन्देलखण्ड की संस्कृति को प्रभावित किया तथा इनकी वजह से अनेक परिवर्तन

समाज में हुये तथा अनेक उपजातियाँ भी उत्पन्न हुयी।

बुन्देलखण्ड में तुर्कों का आगमन -

भारतवर्ष में अरबों का आक्रमण 7वीं शताब्दी के प्रारम्भ में शुरू हो गया था। इन आक्रमणों का उद्देश्य बन्दरगाहों में अधिकार करना था।

" The sudden rise of Arabs in the seventh century A.D. as the greatest military power is one of the most remarkable events in the history of the world."[46]

बुन्देलखण्ड में सर्वप्रथम महमूद गजनबी का आक्रमण हुआ। यह आक्रमण सन् 1019 से लेकर 1022 के मध्य हुआ, बाद में चन्देल नरेश से उसकी सन्धि हुयी। इसके पश्चात यहाँ के लोग इस्लाम धर्म के रीति- रिवाजों तथा उनकी सामाजिक व्यवस्था से परिचित हुए। तद्‌युगीन अनेक बुन्देलखण्ड के नरेशों ने उन्हें अपने धार्मिक स्थल बनाने की इजाजत प्रदान कर दी। उसके पश्चात् तुर्क शासन काल से लेकर मुगल शासन काल और उसके बाद तक इस्लामी संस्कृति और उसकी सामाजिक व्यवस्था यहाँ की सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करती रही, जिसके कारण एक नयी संस्कृति का उदय हुआ।

मिश्रित संस्कृति का उदय -

बुन्देलखण्ड में जिस संस्कृति के दर्शन हमें मध्यकाल के उपरान्त होते है, उस संस्कृति को मिश्रित संस्कृति के नाम से सम्बोधित किया जा सकता है। इस संस्कृति के निर्माण में अनार्यो (आदिवासी जनजाति, अनुसूचित जाति, और पिछड़ी जाति), आर्यो, विदेशी जातियों (हूण, कुषाण, शक, यूनानी आदि) तथा तुर्को ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया, किन्तु तुर्को की यह विशेषता रही है कि उन्होंने अपनी पृथक सांस्कृतिक पहचान बनाये रखी, जबकि अन्य विदेशी जातियों ने अपनी पृथक सांस्कृतिक पहचान नहीं बनाई। इस मिश्रित संस्कृति की सर्वमान्य विशेषताएं इस प्रकार है -

1. जाति व्यवस्था पर विश्वास।
2. जातिय व्यवस्था वंशानुकूल अथवा व्यवसाय पर आधारित।
3. पृथक-पृथक संस्कारिक व्यवस्था होते हुए भी उसमें एकरूपता के दर्शन।
4. प्रेम व्यवहार, समन्वय की भावना और सामाजिक सामजस्य के दर्शन।
5. आन्तरिक विरोध होते हुंए सहयोग की भावना।

(अ) रहन-सहन के स्तर पर परिवर्तन -

जब महमूद गजनबी ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किया था, उस समय यहाँ मुसलमानों की संख्या न के बराबर थी, किन्तु उसके बाद बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में मुसलमानो का प्रभाव बढ़ता गया और 17वीं शताब्दी के अन्त तक मुसलमानो की जनसंख्या 7% से भी अधिक हो गयी। सुप्रसिद्ध विद्वान राधेश्याम के अनुसार -''बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में रहने वाले व्यक्ति आर्थिक प्रलोभनों में आकर या अपन सामाजिक स्तर को ऊँचा करने या नये व्यवसाय सुरू करने के लिये भी हिन्दू समाज के निःसहाय,

दलित, गरीब, अछूत लोगों ने इस्लाम धर्म स्वीकार किया। मुसलमान धुनियाँ व जुलाहों के सम्पर्क में रहने के कारण दर्जियों को मुसलमान बनना पड़ा। मुसलमानों से पका हुआ भोजन ग्रहण करने के लिये भिखारियों को मुसलमान बनना पड़ा। कसाइयों का व्यवसाय भी ऐसा था, कि वे मुसलमानों के सम्पर्क में रहे और धीरे-धीरे मुसलमान हो गये। इसी प्रकार व्यवसायों में कुशलता की वृद्धि एवं उनके विकास के कारण निम्नवर्ग के हिन्दुओं ने जब उनमें प्रवेश किया तो उनकी नयी जाति हो गयी और उनमें से अनेक मुसलमान हो गये।[47] बुन्देलखण्ड में जो नया मुस्लिम वर्ग पैदा हुआ, उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति धर्म परिवर्तित नानबाइयों, कसाइयों, रंगरेजों, जुलाहों, बावर्चियों, हलवाइयों, धोबियों और हज्जामों ने की। श्रमिक और शिल्पकार वर्ग में भी मुसलमानों का प्रभाव पड़ा और इन्होंने स्वेच्छा से इस धर्म को अपनाया तथा अपनी अलग जाति निर्मित की।[48] मुसलमानों की बढ़ती जनसंख्या के कारण यहाँ के लोगों के रहन-सहन के स्तर में व्यापक परिवर्तन हुआ।

किसी भी स्थान का रहन-सहन, वेष-भूषा और खान-पान वहाँ की जलवायु पर निर्भर करता है। बुन्देलखण्ड की जलवायु सम-शीतोष्ण जलवायु है तथा यहाँ की भूमि पर्वतीय स्थल की पथरीली भूमि है, इसलिए यहाँ का व्यक्ति प्रकृति द्वारा उत्पन्न वस्तुओं से अपना जीवन निर्वाह करता है।

भोजन-

यहाँ के स्थानीय हाट और बजारों में वही सामान उपलब्ध होता था, जो यहाँ उत्पन्न होता था। इस क्षेत्र में मांस, मछली, दूध, दही, तेल अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध रहता था तथा यहाँ के लोग भोजन में चावल और गेहूँ के आटे का प्रयोग करते थे तथा गरीब व्यक्ति ज्वार, बाजरा, चना, मटर का प्रयोग करते थे। ब्राह्मण लोग मदिरापान नहीं करते थे और मांस भी नहीं खाते थे। विभिन्न प्रकार की दाले भोजन में प्रयुक्त होती थी, इसके अतिरिक्त अदरक, सरसो, प्याज, बैगन, इत्यादि सब्जी के रूप में प्रयुक्त होती थी। मुसलमान लोग अपनी चपातियाँ तंदूर में और हिन्दू लोग अपनी चपातियाँ चूल्हे में पकाते थे।[49]

सामान्य रूप से दो प्रकार का भोजन यहाँ के लोग करते थे, ये भोजन शाकाहारी और मांसाहारी होता था। यहाँ के हिन्दू शाकाहारी थे। ये विविध प्रकार की सब्जियाँ, कद्दू, लौकी, अरबी, घुइयां, तरोई, भाटा, लाल और सफेद रंग का चावल कई प्रकार से पकाकर खाते थे। सुप्रसिद्ध इतिहासकार राधेश्याम के अनुसार- वे दालों का भी प्रयोग विविध भाँति से किया करते थे। कभी-2 वे दाल में इमली या मूली मिलाकर उसे स्वादिष्ट बना लिया करते थे। वे दाल के पानी से पेय भी तैयार करते थे। इसी प्रकार वे गेहूँ व चने के आटे में मसाले डालकर उसकी रोटियाँ बनाकर खाना भी पसंद करते थे। कभी-2 वे इन रोटियों में चीनी भर कर और घी में तल कर मीठी पूड़ी के रूप में भी खाते थे। वे बेसन की पूड़ी में पिसी हुयी दाल व मसाले भर कर खाते थे। दाल भरी हुयी पूड़ी को वे कचंवली कहते थे। इस काल में जौ तथा चूने का सत्तू भी खाया जाता था।[50]इसके अतिरिक्त बाटी, पकौड़ी, चिल्ला तथा अनेक प्रकार के व्यंजन भोजन में प्रयुक्त होते थे। अमीर खुसरो के अनुसार खाने में जुकरत

(दही), फलूदा, जीना, जलेबी, का उल्लेख मिलता है। अल्कशन्दी ने अपने ग्रंथ में 65 प्रकार की मिठाइयों का उल्लेख किया।[51]मांसाहार में मछली, गाय, बकरा, तथा मुर्गे का मांस मुख्य रूप से खाया जाता था। इसके अतिरिक्त काली, बतख, हिरण, सांभर, उरंग, हरे कबूतर का मांस खाया जाता था।[52]

अनेक राजपूत भी मांसाहार करते थे। इस समय भोजन के उपरांत तांबूल खाने का रिवाज था। अतिथियों का स्वागत सत्कार पान से किया जाता था। पान के पत्ते में चूना लगाया जाता था और उसमें सुपाड़ी डाली जाती थी। पेय पदार्थों में शुद्ध जल का प्रयोग होता था और पानी हिन्दुओं के लिये घड़ो में और मुसलमानो के यहाँ हौज में एकत्र किया जाता था। विविध अवसरों में शर्बत पिलाने का रिवाज था, ये शरबत गुलाब जल और कस्तूरी से बनते थे। गरीब के घरों में पानी के साथ गुड़ और मिसरी देने का रिवाज था। सामान्य लोग मदिरा पान नहीं करते थे, किन्तु जागीरदार और सामंत मदिरापान करते थे। सुप्रसिद्ध विद्वान राधेश्याम के अनुसार- मुसलमानो में मदिरा पान एक आम बात थी। हिन्दू समाज में कुछ ही वर्गो में मदिरापान का प्रचलन था। ब्राह्मणों तथा वैश्यों और वैष्णवों में मदिरापान निषेध था। राजपूतों में इसका प्रचलन था। निम्नवर्ग के लोग भी मदिरा पान करते थे। हिन्दू धर्म में मदिरापान न करने का ऐसा कोई प्रतिबंध भी न था। दोनों ही समाजों में मादक वस्तुओं, भांग तथा अफीम खाने वाले तथा ताड़ी पीने वाले लोग थे।[53] सुल्तान और अमीर व्यक्तियों का भोजन सामान्य व्यक्तियों से अलग था। इब्न बतूता के अनुसार- भोजन में पतली-पतली चपातियाँ, भेड़ का भुना हुआ मांस, घी में तली हुयी पूड़ियाँ, पूड़ियों में भरा हुआ हलवा, साबुनी, मीठी रोटी, समोसे, पुलाव, भुने हुए मुर्ग, कहरिया नामक हलवा, मिश्री व गुलाब का शरबत, फुक्का, पान-सुपाड़ी, इत्यादि वस्तुयें थी। अमीरों का भोजन उतना ही श्रेष्ठ होता था जितना कि सुल्तान का होता था।[54] मुसलमानों के भोजन में नान-ए-मैदा, बकरे का मांस (गोश-ए-गोस्पन्द) मुर्गा, बिरयानी, फुलका, शरबत, तांबूल या पान होते थे, इसके अतिरिक्त समोसा, चिड़ियों का मांस, हलुआ, साबुनी व शक्कर इत्यादि वस्तुएं होती थी।

वेश भूषा -

बुन्देलखण्ड के निवासियों की वेश-भूषा हिन्दुस्तान के अन्य क्षेत्र के निवासियों से भिन्न थी, किन्तु मुसलमानों के मध्य प्रचलित पहनावा करीब-करीब एक सा था। यहाँ की जनता ग्रामों में निवास करती थी, इसलिए ये लोग परम्परागत वस्त्र धारण करते थे, जो जलवायु और मौसम के अनुकूल होते थे। जाड़े के दिनों में ऊनी वस्त्रों का प्रयोग होता था। किसान लोग साफा बांधते थे तथा मुसलमान लोग सिर में टोपी पहनते थे। शरीर के निचले हिस्से में पैजामा पहनते थे तथा ऊपरी हिस्से में कुर्ता अथवा शेरवानी धारण करते थे। यहाँ की हिन्दू स्त्रियाँ लहँगा और धोती धारण करती थी तथा शरीर के ऊपर एक चादर ओढ़ती थी।

अमीर व्यक्तियों के वस्त्र सामान्य व्यक्तियों से भिन्न होते थे। ये लोग ए-एकत रंग (सतरंगी जरी के वस्त्र), बिसात-ए जुमर्दी (लाल रंग के वस्त्र), जामा-ए-उन्नावी (उन्नावी रंग के वस्त्र),

लिबास-ए पिरिनियात (चीनी रेशम का छपा हुआ वस्त्र), जाम-ए-जरफत (जरी के काम के वस्त्र), जामा-ए-सन्जाव (घर का लिबास), लिबास-ए-वहमान (अत्यन्त उत्तम किस्म का कढ़ा हुआ या उस पर फूल बने हुए लिबास), सफतान-ए-कबा (कुर्ता), कदाए - ए - फिस्तूकी (कुर्ता), तेलासन इत्यादि वस्त्रों का उल्लेख किया है।[55] मध्ययुग में हिन्दू और मुसलमानों की वेश-भूषा अलग-अलग थी। धनी लोग ढीला-ढाला वस्त्र, जरदोजी का कुर्ता पहनते थे और विशेष अवसरों पर हीरे-माणिक जड़ी हुयी टोपियाँ तथा कढ़ाईदार टोपियाँ पहनते थे तथा रूई से भरी हुयी बंडी पहनने का रिवाज था। ये लोग अपने वस्त्रों में इत्र लगाया करते थे।

हिन्दू लोग प्रारम्भ में मुसलमानों की वेश-भूषा से नफरत करते थे। धार्मिक पहचान बनाये रखने के लिए वे माथे पर तिलक लगाते थे और कानों में कुंडल धारण करते थे। कमर में धोती पहनते थे और चादर पहनते थे। धीरे-धीरे मुसलमानों के प्रभाव से यहाँ के हिन्दुओं ने भी उनके वस्त्र धारण किये।

स्त्रियों के वस्त्र पुरूषों से भिन्न थे। अमीर घराने की स्त्रियाँ कीमती वस्त्र पहनती थी जबकि गरीब घराने की स्त्रियाँ सामान्य वस्त्र पहनती थी। हिन्दू स्त्रियाँ कमर के ऊपर के भाग को ढ़कने के लिए अंगिया पहनती थी, जिसे कंचुकी, कंचुली, चोली इत्यादि कहते थे। जिस प्रकार साड़ी की अनेक किस्में महीन, रंगीन, छपी हुयी होती थी, उसी भांति ॲगिया या ब्लाउज, जो कि उनके वक्षस्थल को ढकती थी, अनेक प्रकार की होती थी।[56] ये वस्त्र भी मौसम के अनुसार होते थे। पुरूष और स्त्रियॉ दोनों ही सौन्दर्य प्रसाधनों का प्रयोग करते थे। हिन्दू लोग मुख्य रूप से स्नान करने के पश्चात सफेद चन्दन, केसर, इत्र, कस्तूरी, अलगजा, गोरोचन, अगर, चंदन, कपूर, और केसर का प्रयोग शरीर सजाने के लिए करते थे। बहुत से लोग अमलोकी, तिल, सुगन्धित तेल, गीली हल्दी, चावल, पानी में मिलाकर स्नान करते थे तथा शरीर में उपटन लगाते थे। मुसलमान अपने शरीर को इत्र से सजाते थे और सुगन्धित पान खाते थे। इसके अतिरिक्त विविध प्रकार के आभूषण पहनने का रिवाज था। उच्च वर्ग के हिन्दू बाजू बन्द, मेखला, नुपूर, ॲगूठी, गले के हार और कानों के कुंडल धारण करते थे। कुछ सामन्त सिर में मुकुट धारण करते थे और कमर में तलवारें और कटारें धारण करते थे। मुसलमानों के यहाँ अधिक आभूषण धारण करने का रिवाज नहीं था। केवल अमीर लोग उँगलियों में माणिक व रत्न जड़ित अंगूठी और बांह में रत्न जड़ित बाजूबन्द पहनते थे।

स्त्रियां अपने शरीर को पुरूषों से अधिक सजाती थी तथा वह शारीरिक सौन्दर्य पर अधिक रूचि लेती थी। प्रत्येक स्त्री स्नान और वस्त्र पर विशेष बल देती थी- पत्रावली रचना, सिन्दूर, तिलक, कुण्डल, मंजन, होठों पर लाली लगाना, फूलों का इत्र लगाना, गाल पर काला तिल बनाना, गले में हार पहनना, कन्चुकी पहनना, कमर में करधनी धारण करना, पैरों में पायल पहनना। जायसी से पूर्व भी स्त्रियों में सोलह श्रृंगार करने की परम्परा प्रचलित थी। विवाहित स्त्रियां मांग में सिंदूर लगाती थी। ऑखों में अंजन और काजल लगाती थी। कभी-2 भौहों को रंगती थी, मुख को लाल रखने के लिए

पान का सेवन करती थी तथा पैरों में महावर लगाती थी। अमीर खुसरों के अनुसार-मुख में गजा या सफेदा लगाने का रिवाज भी था।[57] मुसलमान स्त्रियां सुरमें का प्रयोग भी करती थी। हसन निजामी के अनुसार- सुरमा ए चश्म, बहरमन तथा गुलगुला का प्रयोग सौन्दर्य वृद्धि के लिए किया जाता था। स्त्रियां केसर और चन्दन का मिश्रण मुख में लगाती थी और कभी-2 उसका प्रयोग वक्ष स्थल पर भी करती थी। उच्च वर्ग की स्त्रियाँ अपने शरीर में उपटन और सुगन्धित तेल लगाती थी। बाल्यावस्था में ही स्त्रियों के कान और नाक छेद दिये जाते थे। ये स्त्रियां निम्न आभूषणों का प्रयोग करती थी। इन आभूषणों में शीश फूल, मांग, टीका, बिन्दी, कुण्डल, करनफूल, बाली, बाला, तगड़ी, झुमका, झुमकी, नथ, नथफूल, नथनी, हार, हँसुली, कण्ठी, कण्ठमाला, बाजूबन्द, कंगन, चूड़ियॉ, अँगूठियॉ, सुन्दरिया, मेखला या करधनी, किंकनी, पाजेब, पायल, नुपूर, घुंघुरू, बिछियां, इत्यादि थे। लगभग यह सभी आभूषण मुसलमान स्त्रियां भी धारण किया करती थी। स्त्रियों के श्रृंगार के लिए स्वर्णकार अपनी कुशल कारीगरी से विविध प्रकार के आभूषण निर्मित करते थे। अहमद यादगार के अनुसार एक स्वर्णकार ने हामिद खान के सम्मुख पांच, तीन और दो लाख टके के फूल के मांग के टीके बिक्री के लिए प्रस्तुत किये थे।[58]

निवास व्यवस्था-

बुन्देलखण्ड में उपलब्ध आवास स्थल आर्थिक दृष्टिकोणों से तीन प्रकार के होते थे। प्रथम आवास स्थल जन सामान्य के होते थे, जिनका निर्माण उपलब्ध भवन सामग्री से ग्रामों, कस्बों, और नगरों में होता था। इन मकानों का निर्माण कारीगर, बढ़ई और शिल्पकार किया करते थे। कभी-2 स्वतः मकान मालिक अपने हाथ से अपने मकान बना लेते थे। इन मकानों की दीवारें मिट्‌टी, पत्थर अथवा ईंटे की होती थी तथा मकान का ऊपरी भाग घास-फूस और खपरैल से ढका होता था।

द्वितीय वर्ग के मकान सामान्य व्यक्तियों से अच्छे होते थे। इन मकानों में बरामदे, कमरे, आंगन, रसोई तथा प्रसाधन के लिए कमरे होते थे। मकान के बाहर ड्योढ़ी होती थी, इसके अतिरिक्त नौकर नौकरानियों के लिए अलग प्रकार के कमरे होते थे।

सामंत और राजा-महाराजाओं के लिए सुखदायी महलों का निर्माण किया जाता था। इन महलों में अनेक कमरे, बड़े-2 हाल, दल्लान, छोटे-छोटे कमरे तथा विविध कार्यो के लिए हरम, बैठक, स्नानगृह, श्रृंगार कक्ष आदि होते थे। हिन्दू और मुसलमानों के महल अलग-2 तरीके के होते थे। बाहर की ओर जहां लम्बी-2 दल्लाने होती थी, वहाँ नौबत बजाने वाले बैठे रहते थे। नरेशों के बैठने के लिए एक ऊँचा चबूतरा होता था, जिसके दोनों ओर मोरपंख होते थे तथा नरेश के दोनों ओर दो सेवक होते थे, जो अपने हाथ में गदे के आकार की चमर लिये रहते थे।

हिन्दू सामन्तों के भी निवास स्थल बड़े-2 महल और हवेलियां होती थी। ये महल कई मंजिल के होते थे। इसके उदाहरण दतिया, ग्वालियर, ओरछा, कोंच, आजमगढ़, पन्ना आदि में उपलब्ध होते है। हिन्दू नरेश भी अपने महलों में रनिवास बनाते थे। बाबर ने अपनी आत्मकथा में

ग्वालियर के शासक राजा मानसिंह तथा विक्रमजीत के विशाल भवनों का उल्लेख करते हुए लिखा है, कि समस्त राजाओं के भवनों की तुलना में मानसिंह के भवन बड़े ही उत्तम एवं भव्य है। हल के उत्तर में अन्य दिशाओं की अपेक्षा अत्यधिक कारीगरी की गयी है। यह भाग लगभग 4-5 गज ऊँचा है और तराशे हुए पत्थर का बना है। उसके ऊपर सफेद पलस्तर है। कहीं-2 पर इसमें चार-2 मंजिले हैं, नीचे की दो मंजिलों में अँधेरा रहता है। उसने यह भी लिखा है, कि मानसिंह के पुत्र विक्रमादित्य के भवन, दुर्ग अधिकतर केन्द्रीय स्थान पर है। पुत्र के भवन पिता के भवन का मुकाबला नहीं कर सकते। उसने एक बहुत बड़े महल का निमार्ण करवाया।[69] उच्च वर्ग के लोग अपने मकानों को बहुत अधिक सजाते थे। उनमें कालीन गलीचे बिछे रहते थे, उन गलीचों पर नरम तकिये और चटाइयाँ लगी होती थी तथा इन मकानों में विलासिता की सभी वस्तुयें उपलब्ध होती थी। सामान्यतः मकान एक मंजिल के होते थे, रहीसों के मकान एक मंजिल से अधिक के हाते थे तथा राजा महाराजाओं के महल उससे भी अच्छे होते थे।

राजा महाराजा तथा धनी वर्ग के लोग उत्तम कोटि का फर्नीचर तथा नक्काशी किये हुए पीतल, चॉदी और सोने के बर्तनों का प्रयोग किया करते थे। बहुत से धनी व्यक्ति सादगी से रहते थे और मुसलमान वर्ग के लोग मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे। खाना पकाने और खाना खाने के बर्तन अलग-अलग होते थे। शयन कक्ष में सोने के लिए चारपाइयाँ और पलंग होते थे, जिनमें गद्दे बिछे रहते थे तथा गद्दों के ऊपर एक लिहाफ चढ़ा रहता था, जिनसे बिस्तर सुरक्षित रहते थे तथा ओढ़ने के लिए चादर और कम्बलों का प्रयोग होता था।[60]

संस्कार और सामान्य रीति-रिवाज -

बुन्देलखण्ड के सामान्य निवासियों के संस्कार और रीति रिवाज परम्परागत तरीके से होते थे। नैतिक आचरण के सामान्य नियम पूरे समाज में थे। जब कोई स्त्री गर्भ धारण करती थी, उसी समय से संस्कार का अनुपालन होने लगता था। सातवें माह में लड़की के माता-पिता उसके लिए सुन्दर वस्त्र आभूषण फल मेवा मिष्ठान आदि उसकी ससुराल भेजते थे, जिससे लड़की की गोद भरी जाती थी। इसके पश्चात् नाउन को नेग दिया जाता था। शिशु के उत्पन्न होनेपर खुशियां मनायी जाती थी तथा हिन्दू परिवार पण्डित से शिशु की कुंडली बनवाते थे। बुन्देलखण्ड के मुसलमानों ने भी हिन्दू ज्योतिषियों का अनुकरण किया और वे भी नवजात शिशु के कान में अजान पढ़वाने लगे। जब बच्चा छः दिन का हो जाता था तो छठी के कार्यक्रम होते थे। राधेश्याम के अनुसार - हिन्दू परिवारों में नवजात शिशु की बुआ या परिवार के अन्य सदस्य उसके लिए कपड़े, खिलौने, धागे से बनी हुयी काली करधनी और काले धागों के बने हुए कंगन लाती थी और उसे पहनाती थी। उसके बाद छठी की पूजा होती थी। घर में स्त्रियों में गाना- बजाना हुआ करता था।[61] इसके अतिरिक्त नाम संस्कार घर के बुजुर्ग द्वारा किया जाता था। यह संस्कार मुसलमानों में भी होता था। नवजात शिशु, यदि उसका जन्म मुसलमान परिवार में हुआ, तो 4 वर्ष 4 माह 4 दिन की आयु होने पर उसे प्रथम अक्षर का बोध कराया

जाता था। इस अवसर पर कोई मुल्ला या मौलवी उसका हाथ पकड़कर तख्ती पर उसे अल्लाह या बिसमिल्लाह लिखवा दिया करता था। इस संस्कार को तख्ती या बिसमिल्लाह ख्वानी कहते हैं।[62] इसके पश्चात मुसलमानों के परिवारों में बिसमिल्लाह ख्वानी के पश्चात लड़के का खतना कराया जाता था तथा इस अवसर पर मिठाईयां बांटी जाती थी। बुन्देलखण्ड मे यज्ञोपवीत संस्कार केवल हिन्दू ब्राह्मणों में ही होता था। मुसलमानों में इसकी कोई व्यवस्था नहीं थी। विवाह संस्कार में ब्राह्मण और नाई की भूमिका महत्वपूर्ण थी। बरीक्षा के दिन लड़की के परिवार वाले वर पक्ष के यहाँ मिठाई, फल, मेवा भेजते थे, उसके पश्चात लड़के वाला बारात लेकर लड़की वाले के यहाँ जाता था। मुसलमानों के यहाँ लड़का अपने माथे पर सेहरा बँधवाकर अपने परिवार के सदस्यों, मित्रों आदि के साथ बारात लेकर बधू के घर जाता था, जहाँ कि बारातियों का बधू पक्ष की ओर से भव्य स्वागत होता था। उसके बाद काजी वर की ओर से 'निकाह' पढ़कर वधू की स्वीकृति के लिए उसके पास जाता था और स्वीकृति मिलने पर विवाह सम्पूर्ण होने की घोषणा करता था। तदुपरान्त उपस्थित लोगों में छुहारे, खजूर, चीनी व मिशरी बांटी जाती थी और बरातियों को प्रीतिभोज दिया जाता था। मुसलमानों में विवाह की रस्म बहुत ही सादी हुआ करती थी, किन्तु उनमें भी हिन्दुओं की देखा-देखी दहेज प्रथा प्रारम्भ हो गयी। दहेज प्रथा के कारण साधारण मुसलमानों के लिए अपनी पुत्रियों का विवाह करना कठिन हो गया।[63] जीवन का अंतिम संस्कार मृत्यु संस्कार होता है। हिन्दू परिवारों में मृतक को चिता में जलाया जाता है और उसके लिए 13 दिन तक शोक मनाया जाता है, जबकि मुसलमानों के यहॉ शव को दफनाया जाता है और 40 दिनों तक शोक मनाया जाता है। इब्नबतूता के अनुसार - किसी भी व्यक्ति की मृत्यु के तीन दिन पश्चात उसके परिवार के सदस्य उसकी कब्र पर जाते थे। कब्र के चारों ओर कालीन पर रेशम के कपड़े बिछाये जाते थे। कब्र पर फूल बिछाये जाते थे और उस पर नारंगी व नीबू की डालियाँ लगाई जाती थी और उन डालियों में फूल लगा दिये जाते थे। कब्र पर मेवा भी चढ़ाई जाती थी। तत्पश्चात् वहाँ कुर्आन का पाठ होता था। उसके बाद उपस्थित व्यक्तियों को पान दिया जाता था और उन पर गुलाब जल छिड़का जाता था।[64] हिन्दू मुसलमान दोनों में अंतिम संस्कार मनाने की विधियों में अन्तर था, किन्तु दोनों का लक्ष्य एक था। हिन्दू परिवारों की भॉति मुसलमानों के यहॉ भी दिवंगत व्यक्ति के परिवार के लोग यतीमों को भोजन कराते थे। मकबरा बनवाते थे और कुर्आन शरीफ का पाठ करते थे।

इस युग में किसी भी परिवार में अतिथि सम्मान सर्वोपरि था। हिन्दू मुसलमान दोनों ही अतिथियों का सम्मान अपने-2 रीति-रिवाजों के अनुसार करते थे। जब कोई गणमान्य व्यक्ति आता था तो उससे हाथ मिलाना और गले मिलने का रिवाज था। अतिथियों को दावत में भी आमंत्रित किया जाता था और भोजन के बाद उसे पान दिया जाता था। अतिथियों को सम्मान के साथ विदा किया जाता था। राधेश्याम के अनुसार - भोजन करते समय मुँह से खाने की आवाज निकलना, उँगलियों का चाटना, जोर-जोर से बातचीत करना, जल्दी-2 खाना बुरा समझा जाता था। सूफी संन्तों के खानकाहों में यह परम्परा थी कि किसी भी आगन्तुक को बिना कुछ खिलाये, शरबत या पानी पिलाये न जाने दिया जाता

था। उस समय यह विचारधारा थी, कि यदि कोई आगन्तुक बिना खाए-पिए जाता था, तो यह समझा जाता था कि वह किसी मृत व्यक्ति के घर से लौटा है। [65]बुन्देलखण्ड के लोग चूंकि बहुत अधिक शिक्षित नहीं थे इसलिए वे शिष्टाचार के नियम का अनुपालन नहीं कर पाते थे। इस समय सलाम करना, पाँव को चूमना, सिंहासन के सामने नतमस्तक होना और बड़े आदमियों का सम्मान करना आवश्यक था। हाथी, घोड़े, ऊँट, अस्त्र-शस्त्र, आभूषण, दास और दासियॉ उपहार में देते थे। इस समय माफी मांगने का एक अजीब रिवाज था, जब कोई अभियुक्त माफी मांगना चाहता था, तो वह गर्दन में साफी लपेटकर झुककर दरबार में जाता था और माफी मांगता था। सिर से पगड़ी उतरवा लेना अपमान समझा जाता था।

इस समय अनेक प्रकार के अन्धविश्वास प्रचलित थे। हिन्दू मुसलमान दोनों ज्योतिष, झाड़-फूंक आदि पर विश्वास करते थे। शकुन और अपशकुन विचार कर हर काम किया जाता था। हिन्दुओं में मछली देखना, स्त्री के सिर पर पानी भरा हुआ घट देखना, ग्वालिन द्वारा दही बेचने की पुकार को सुनना, माली द्वारा फूल लाना, सांप के सिर पर कौवे का बैठना, दाहिनी ओर से जंगल से एक हिरन का भागना, बांयी ओर से एक तीतर या चकोर का बोलना या गधे का चिल्लाना शुभ शकुन समझा जाता था। छींक को अपशकुन समझा जाता था। यात्रा पर जाने से पहले दिशाशूल आदि का ध्यान रखा जाता था। मुसलमान लोग यह विश्वास करते थे, कि जब किसी को सांप काट खाये तो कुर्आन की एक खास पंक्ति पढ़कर उसे ठीक किया जा सकता है। छींक इनके यहाँ अपशकुन मानी जाती थी। प्याज, लहसुन को भूनना अपशकुन माना जाता था। इसी प्रकार घर की देहरी पर बैठना भी अपसकुन का प्रतीक था। यदि किसी के घर में कंघी टूटकर दो टुकड़े हो जाये तो समझा जाता था कि इस परिवार में गरीबी आने वाली है और बंटवारा होने वाला है। रात्रि में दही खाना अपशकुन माना जाता था। हिन्दुओं में सोमवार और शनिवार को पूर्व की ओर यात्रा करना, परीवा के दिन घर से यात्रा के लिए निकलना और दिशा शूल में यात्रा करना बुरा समझा जाता था। मंगल, बुधवार, बृहस्पतिवार और शुक्रवार अच्छे दिन माने जाते थे। मंगल और शनिवार को नया कपड़ा नहीं पहना जाता था। यदि किसी का जन्म नेष्ट ग्रहों में होता था, तो उसे शांति करानी पड़ती थी।

बुन्देलखण्ड के लोग भूत-प्रेत चुड़ैल आदि पर विश्वास करते थे। वे जादू-टोना और झाड़ फूंक पर विश्वास करते थे। यहाँ के हिन्दू संतों को और औघड़ संतों को चमत्कारिक शक्ति वाला व्यक्ति मानते थे। अनेक सूफी सम्प्रदाय के संत भी इस विधि में निपुण थे। लोगों का विश्वास था कि इनके चमत्कार से रोग ठीक हो जाते हैं, विविधायें दूर हो जाती है, मनोंकामनायें पूर्ण हो जाती है। कुछ सूफी सन्त भूत-प्रेत से रक्षा करने के लिए ताबीज भी बनाकर देते थे। कभी -2 गर्भवती स्त्रियाँ भी ऐसी ताबीजें धारण करती थी। अपने पीर के आग्रह पर शेख निजामुद्दीन औलिया ने ताबीज देना प्रारम्भ किया और जब उनसे पूछा गया, कि वे ताबीज क्यों देते थे, तो उन्होंने उत्तर दिया, कि इसमें बड़ी शक्ति होती है। शेख निजामुद्दीन औलिया अपने पीर के गिरे हुये बाल सुरक्षित रखते थे और उन्हीं की आज्ञा

से कुछ लोगों के रोग ठीक किया करते थे। सूफी सन्तों के अतिरिक्त कुछ ऐसे व्यवसायिक लोग थे, जो कि ताबीज बनाकर दिया करते थे।[66] लोगों का विश्वास था, कि प्रेत आत्मायें जीवित व्यक्तियों को परेशान करती है, जिससे व्यक्ति दुख झेलता है और बीमार पड़ता है। पेट की बाधा को दूर करने के लिए मन्दिरों और दरगाहों पर मनौती मानी जाती थी, मनोकामना पूरी हो जाने के पश्चात् वहाँ पर फूल और चादर चढ़ाये जाते थे। बीमार पड़ने पर फातिया पढ़ाया जाता था। अन्धविश्वास और रूढ़िवादिता के कारण व्यक्ति पलायनवादी, निराश और असहाय हो गया था।

इस समय का समाज नाना प्रकार के दुर्गणों से युक्त था। मदिरापान, जुआं, व्यभिचार और बिलासमय जीवन सर्वत्र दिखलाई देता था। समाज के मध्यम वर्ग में और उच्च वर्ग में वेश्यागमन, और दुराचार के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते है। अनेक प्रकार के आर्थिक अपराध भी इस समय होते थे। महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं थी तथा हिजड़े भी समाज में अपनी भूमिका अदा करते थे। मध्य युग में मधुर गायन करने वालों का सम्मान बढ़ा। मादक पदार्थ बेचने वाले धनी हो गये। स्त्रियों को अनेक प्रकार की कलाये सिखाई गयी। दासी पुत्रियों का भी श्रृंगार किया जाता था, जिससे व्यक्ति उनकी ओर आकर्षित हो। हिन्दुओं ने भी अपने धार्मिक रीति रिवाजों का परित्याग कर दिया था। इस युग के व्यापारी भी बेईमान थे। हिन्दु और मुसलमान दोनों ही कुप्रथाओं के गुलाम थे। दोनों धर्मो में पर्दा प्रथा थी, किन्तु मुसलमानों में हिन्दुओं की भाँति सती प्रथा नहीं थी। मुसलमान समाज में विधवा स्त्रियां पुर्नविवाह कर सकती थी।

स्त्रियों की दशा -

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में स्त्रियों की दशा ठीक नहीं थी। इन्हें परम्परागत धर्म का पालन करना पड़ता था। ये बचपन में पिता के आधीन, युवावस्था में पति के अधीन और वृद्ध अवस्था में पुत्र के आधीन रहती थी। हिन्दुओं में विधवा स्त्री के दर्शन अशुभ समझे जाते थे और उन्हें दूसरा विवाह करने का अधिकार नहीं था। हिन्दू और मुसलमान दोनों में पर्दा प्रथा थी तथा दोनों समाजों में स्त्रियां आर्थिक और नैतिक दृष्टि से पिछड़ी हुयी थी। यदि कोई स्त्री किसी पर पुरूष से बिना पति की इजाजत के बातचीत करती थी, तो उसे कुलटा समझा जाता था। इस युग के साहित्यकार नारी को विलासिता की वस्तु समझते थे। नारी सौन्दर्य को लेकर अश्लील साहित्य की रचना की जाती थी। इस युग में बहु-विवाह प्रथा और सती प्रथा भी प्रचलित थी, जो तद्‌युगीन नारी के लिए एक कलंक थी। बुन्देलखण्ड में नारी की दशा सोचनीय और गिरी हुयी थी।

(ब) भाषा एवं साहित्य में परिवर्तन-

मुसलमानों के बुन्देलखण्ड में आगमन के पश्चात यहाँ के साहित्य में भी व्यापक परिवर्तन हुआ। यह परिवर्तन भाषा विधि, रचना विधि, बोलचाल और उसकी लेखन शैली में व्यापक रूप से हुआ। पूर्व मध्ययुग और मध्ययुग में बुन्देलखण्ड में अनेक सुप्रसिद्ध साहित्यकार हुये हैं, इनकी संख्या लगभग 385 थी। सुप्रसिद्ध साहित्यकारों में केशवदास, बलभद्र मिश्र, प्रवीण राय, लालमणि

कायस्थ, परिचने, सुनार, बिहारी, नीलसखी, परमानन्द, वृषभानं कुँवरि, कुन्दन रसलाल, देवीदास, जोगराम सन्यासी, नरोत्तम गंगा कवि (स्त्री), गंगाधर वजन कुँवरि क्षत्राणी, लोनेबन्दी जन, अमीर (मुसलमान), विद्या पंडित, तानसेन, कालका राव (मराठा), मन्ड कवि शिवप्रसाद, गोस्वामी तुलसीदास, जुल्फकार खाँ, हिम्मत बहादुर गोसाई, हरिदास, पद्माकर भट्ट, हेमराय कायस्थ, मानसिंह अवस्थी, स्कन्दगिरि गोसाई, लालमणि (बांदा), राजाराम मिश्र (पदारथ पुर) मलूकदास खत्री, बीरबल, भारतशाह, नोने व्यास, अकबर खॉ, परमानन्द तीर्थराज, भोजराज, रतनसिंह, मदन गोपाल, खुमान सिंह, प्राणनाथ, महाराजा छत्रसाल, भूषण, लालकवि, पंचम सिंह, करन भट्ट, रसिक बिहारी, सीताराम, कृष्णदास, गदाधर भट्ट, प्रताप कवि, गिरिधारी भाट, फाजिल शाह बनियां, नरसिंहदास, सुखदेव बिहारी, बुन्देला बाला, गंगाधर व्यास, कुँवर कन्हैया जू मोहम्मद तकी खॉ, सालार बख्श, फाजिल, मनभावन कन्हैया, दरयाव सिंह, बख्तावर सिंह, शिव प्रसाद दुबे, अनन्य कवि, बुध सिंह रसीले, वीरलाल खेड़ी, अमीर अली सैयद, अमीर राय मीर, आसकरणदास, कवीन्द्र नटवर मंडन मिश्र तथा नील सखी आदि प्रसिद्ध कवि और शायर उस युग में थे।[67]

बुन्देलखण्ड में बोली जाने वाली भाषा बुन्देलखण्डी के नाम से विख्यात थी। यह भाषा बाँदा, हमीरपुर, जालौन, झाँसी, ललितपुर, ग्वालियर, सागर, दमोह, जबलपुर, तथा भोपाल के आस-पास बोली जाती थी। यह भाषा पूर्व में बघेली, पश्चिम में भदावरी और बृज, मालवी तथा दक्षिण में गौड़ी तथा उत्तर में बैसवारी भाषा से प्रभावित थी। 11वीं शताब्दी में मुसलमानों के आगमन के पश्चात यहाँ की भाषा में व्यापक परिवर्तन हुआ। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- मनुष्य गणना की रिपोर्टो को देखने से पाया जाता है कि बुन्देलखण्डी बोलने वालों की संख्या उत्तरोत्तर कम होती आयी है। यह बात शासन परिवर्तन होने अथवा देशी विदेशियों का सम्पर्क संयोग बढ़ जाने और शिक्षा की उन्नति के आधार पर भाषा का रूप बुन्देली से शुद्ध हिन्दी की ओर को ढुल जाने से हुयी है। ऐसा परिवर्तन इधर लगभग 200 वर्षो से जारी है। उसने कम से कम 25% रूप बदल डाला है।[68] भाषा का यह परिवर्तन निम्न प्रकार से प्रतीत होता है -

1. खड़ी बोली का प्रचलन शहरी क्षेत्र में प्रारम्भ हुआ।
2. मुसलमानों के मध्य में अरबी, फारसी, तुर्की और उर्दू भाषा का प्रचलन बढ़ा।
3. बुन्देलखण्ड में बोली जाने वाली तिरहरी, गहोरापठा, अंर्तपठा, जुरार, कुठरी, बघरावल, आधर, बनाफरी, लुधियाट आदि उपभाषाओं में उर्दू, फारसी और अरबी शब्दों का प्रचार होने लगा तथा बुन्देलखण्ड की सीमा के बाहर बोली जाने वाली भाषा का प्रभाव भी यहाँ की भाषा पर पड़ा।
4. जो विदेशी जातियाँ बुन्देलखण्ड में आकर बसी, उन्होंने भी यहाँ की मूल-भाषा अपना कर इसमें मूल परिवर्तन किये। धार्मिक संस्कारों की भाषा संस्कृत बनी रही तथा जहाँ मुसलमानों की रियासतें थी, वहाँ शासकीय कार्य अरबी, फारसी और उर्दू में होते थे।

बुन्देलखण्ड का साहित्य -

तद्‌युगीन इतिहासकारों का यह मानना है, कि शुद्ध बुन्देलखण्डी भाषा में केवल लोक साहित्य की रचना हुयी, जो लोक कथाओं, लोक नाट्‌यों, और लोक काव्य के रूप में उपलब्ध होती है। शुद्ध साहित्य रचना, बृज भाषा में हुयी है, जिसमें बुन्देलखण्डी भाषा के शब्द मिश्रित है। बुन्देलखण्डी भाषा में जिन शब्दों का प्रयोग होता है, वे मूल रूप से संस्कृत तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं से बुन्देलखण्डी में आ रहे तथा दो प्रकार की भाषा का प्रयोग यहाँ किया जाता रहा। प्रथम भाषा सामान्य भाषा थी, जिसका प्रयोग सामान्य लेखन कार्यों में किया जाता था। इस क्षेत्र में काव्य की भाषा ज्यादा सशक्त थी, जबकि अन्य विधाओं की भाषा उतनी सशक्त नहीं थी। साहित्य का विश्लेषण भी निम्न आधार पर किया जा सकता है।

काव्य या कविता -

बुन्देलखण्ड में कविता को कामिनी का स्वरूप प्रदान किया गया है तथा यहाँ के कवि विविध प्रकार के अलंकार कविता में प्रयुक्त करते थे। इसके अतिरिक्त काव्य में वर्णित नौ रसों का उपयोग भी होता था। यहाँ का काव्य भाव प्रधान और घटना प्रधान होता था। काव्य में अनेक स्थायी भाव होते थे। उसके बाद व्यभिचारी भाव होते थे तथा इसके पश्चात् 33 प्रकार के संचारी भावों का प्रयोग भी होता था। कविता में जिस भाषा का प्रयोग होता था, वह तीन प्रकार की थी। उसे अभिधा, लक्षणा और व्यजंना के नाम से पुकारा जाता था। काव्य लिखने में मात्रिक और वार्णिक छन्दों का प्रयोग होता था। इस क्षेत्र में जिस काव्य की रचना की गयी वह चार भागों में विभक्त था-

1. वीर काव्य -

बुन्देलखण्ड में 12वीं शताब्दी के पश्चात् सामन्तों और राजाओं की वीरता के सन्दर्भ में जो काव्य लिखा गया, उसे वीर काव्य के नाम से पुकारा गया। इस काव्य में राजाओं की जीवनियां, उनके वंश और उनके द्वारा किये हुये युद्धों का वर्णन है। इन ग्रंथों में बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, आल्हखण्ड, हम्मीर रासो लिखे गये। 1240 से लेकर 1355 वि० स० तक ऐसे ग्रंथों की रचना बराबर होती रही।

2. धार्मिक काव्य -

14वीं शताब्दी के पश्चात् धार्मिक भावनाओं को बल देने के लिये धार्मिक काव्य की रचना हुयी। यह काव्य बृज, अवधि आदि भाषाओं में लिखा गया, बुन्देलखण्ड के कतिपय कवि गोस्वामी तुलसीदास तथा केशवदास ने इस परम्परा का निर्वाह किया। इसी के अन्तर्गत रहस्यवादी काव्य की रचनायें हुयी। यह काव्य संत कबीर, मलिक मोहम्मद जायसी तथा अन्य कवियों ने रचा, इसमें परमात्मा को रहस्य के आवरण से ढका हुआ दिखलाया गया।

3. श्रृंगारी काव्य -

गौरी शंकर द्विवेदी के अनुसार - मुसलमान बादशाहों के संसर्ग से उनकी विलासिता तथा श्रृंगार रस प्रियता के कारण सं० 1650 वि० के समीप से कवियों की धारा श्रृंगार रस की ओर बह गयी। कवियों ने नायिका भेद के नख-शिख वर्णन ही में अपनी कवित्व शक्ति को लगा दिया। उन दिनों कविता का विशेष चमत्कार अलंकारों, सूक्तियों, युक्तियों और शब्दाडम्बरों ही में सीमित हो गया और एक प्रकार से कविता अपनी स्वाभाविकता खो बैठी। चरित्र-चित्रण प्राकृतिक सौन्दर्य और आन्तरिक भावों के प्रदर्शन आदि की उन दिनों उपेक्षा सी की जाने लगी। फलस्वरूप कविता उन दिनों का एक सीमित ही केन्द्र हो गया था।[69]

श्रृंगार प्रधान काव्य के अन्तर्गत छन्द, अलंकार और रस को प्रदर्शित करने के लिए काव्य कला का प्रदर्शन केशवदास जैसे महाकवि ने किया, जिसका अनुकरण 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक बराबर होता रहा। हिन्दी काव्य में तद्‌युगीन मुसलमान शायरों ने भी अपना व्यापक प्रभाव डाला।

यहाँ के रहने वाले व्यक्ति एक ऐसे लोक साहित्य की संरचना स्वतः कर लेते है, जो सुनने वालों को अपनी ओर आकर्षित करती है। इनके रचयिता ग्रामीण व्यक्ति न तो पढ़े लिखे होते है और न छन्द अलंकारों का ज्ञान रखते है। उनके मुख से जो स्वाभाविक भावनायें निकलती है। वही काव्य का रूप धारण कर लेते हैं, जिन्हें परम्परागत रागों से गाया जा सकता है। उदाहरण दृश्टव्य है-

एक बेर तुम हो जइयो मुरारी।
दरशन खों तरसें वृज नारी।।[70]

यहाँ का लोक साहित्य साहित्यिक रचनाओं से अधिक लोकप्रिय था, जिसका गायन सामाजिक संस्कारों, तीज त्योहारों और धार्मिक उत्सवों में बराबर होता रहता था। इस युग में अनेक रचनाकार हुये है, जिनकी रचना शैली तथा विषय सामग्री में व्यापक परिवर्तन मुसलमानों के सम्पर्क के कारण हुआ। इसमें से कुछ कवि इस्लाम संस्कृति के आलोचक है और कुछ उसके समर्थक है तथा कुछ दोनों के मध्य समान भाव रखते है। उनके काव्य के कुछ उदाहरण दृष्टव्य है।

तरूवरशाह -

ये अकबर के युग के सुप्रसिद्ध कवि थे तथा जाति के ब्राह्मण थे। इन्होंने अकबर के समय की धार्मिक भावनाओं की समालोचना करते हुए अपने विचार कविता में इस प्रकार प्रकट किये हैं-

अकबर के दरबार, खड़ी ताजीम सुहाई।
नीति रीति कालकाव्य, शाह सुन कीन बड़ाई।।
महादान इन पाय, दरद चढ़ि भवनहिं आये।
पुनि पगअनत न दीन, बैठ हरि के गुण गाये।।[71]

बखतबली -

बरबतअली दैलवारा के निवासी थे तथा शाहजहाँ के समकालीन थे। मुगल सल्तनत

पाने के लिए शाहजहाँ के पुत्रों में, जो युद्ध 29 मई सन् 1648 में हुआ, उसका वर्णन कवि बखतबअली ने निम्न प्रकार से किया -

तरवत के हेतु जुरे शाहजादे जोर,
बोलत न कीब सोर चारो ओर भर गयो।
छूटत कृपा पान न बान गोल वोकुडूकवान।
लाग्यो अररान आसमान फेर डर गयो।।[172]

लालकवि -

लालकवि बुन्देलखण्ड के एक ऐसे कवि है, जो वीर काव्य के प्रणेता है और भूषण की भांति लोकप्रिय है। इनका जन्म वि० स० 1707 में जैतपुर के सन्निकट तालौर ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम बालभट्ट और माता का नाम सुशीला देवी था। सन् 1768 में इन्होंने हर्भ बाला चरित्र का निर्माण किया। इन्होनें छत्रप्रकाश की भी रचना की। इस काव्य ग्रंथ के माध्यम से उन्होंने छत्रसाल की वीरता का वर्णन किया है।

लीन्हें देश दक्षिण के दुरग उतंग चढ़ि,
जीते आवरशाह जंग रंग जाल कौ।।
विरच्यो महेवा वार रेवालो दवास देस,
चहूँ चकचौंध धाक चंडयौ कृपाल कौ।।[7]

कविभूषण - कवि भूषण भी तद्युगीन महत्वपूर्ण कवि थे। छत्रसाल द्वारा अखण्ड बुन्देलखण्ड राज्य की कल्पना साकार करने में भूषण का महत्वपूर्ण योगदान था। छत्रसाल ने 82 राजकवियों को राजाश्रय दिया था। इन्होंने भी तद्युगीन परिस्थितियों से प्रेरित होकर भोजपूर्ण रचना की। यथा-

उठ गये आलम से रूजुक सिपाहिन को,
उठि गये बँधयौ सबै वीरता के बाने को।
भूषण मनत धर्म धारा से उठि गये,
उटि गये सिंगार सवै राजा रावराने को।।[74]

इस प्रकार हम देखते है कि बुन्देलखण्ड में अनेक कवि हुए हैं, जो विषय सामग्री, रचना शैली और काव्य प्रस्तुति में मुसलमानों से सर्वाधिक प्रभावित थे। यहाँ तक की बुन्देलखण्ड में कुछ कहावतें भी मुसलमानों से संबंधित लोकप्रिय हो गयी -

1. जहां जाये बाले मियां तहाँ जाये पूंछ, ठाणे रहे बाले मियां ठाड़ी रहे पूंछ।
2. छोटे मियां तो छोटे मियां बड़े मियां सुभानअल्लाह।
3. मियां के मुँह में मसूर की दाल।
4. अल्लाह के नाम बिसमिल्लाह कीजिये।

कथा साहित्य -

बुन्देलखण्ड में पूर्वमध्यकाल और मध्यकाल में कोई लिखित कथा साहित्य के दर्शन नहीं होते, किन्तु तद्युगीन ग्रामवासी अपने मनोरंजन के लिये रात्रि का समय कहानी कहकर और सुनकर व्यतीत किया करते थे और हर कथा का प्रारम्भ इन शब्दों से किया जाता था-" ये तो किस्सा आए कहबे की झूठी, बातन की मीठी, न कहबे वाले को दोष, न सुनने वाले को दोष"। इस समय सिंहासन बत्तीसी, त्रिया चरित्र, किस्सा हातिमताई, अकबर बीरबल के चुटकुले तथा पूत बुलाखी नाई के किस्से लोकप्रिय थे। उमर ख्याम की भावना से प्रेरित लैला-मजनूं तथा दूसरी प्रेम कथाये लोकप्रिय थीं। सारंगा सदावृज की कहानियॉ भी लोगों की जबानों पर थी, इसके अतिरिक्त जादू-टोना और तिलस्मी कहानियॉ भी कही सुनी जाती थी।

नाट्य साहित्य -

बुन्देलखण्ड में नाट्य साहित्य के दर्शन पूर्व मध्य युग और मध्य युग में होते है। ये नाटक धर्म विशेष और धर्म नायकों से संबंधित थे। यहाँ के प्रारम्भिक नाटक संस्कृत नाट्य परम्परा का अनुसरण करते थे। नाटक के प्रारम्भ में सूत्रधार नट नटी के रूप में प्रस्तुत होते है, जो हास्य व्यंग के साथ नाटक की प्रारम्भिक कथा का वर्णन दर्शको के सामने करते है। प्रत्येक नाटक के प्रारम्भ में ईश्वर की वन्दना सभी पात्र मिलकर करते है। नाटक में उस युग में जिन दृश्यों को नहीं दिखाया जात सकता था, उन्हें संकेत के माध्यम से व्यक्त किया जाता था। ये नाटक सुखान्त, दुखान्त तथा प्रसादान्त तीन प्रकार के होते थे। इनकी भाषा ओज माधुर्य और प्रसाद गुणों से युक्त होती थी। दर्शकों के मनोरंजन के लिए अनेक स्थलों पर काव्य और गीतों के माध्यम से मनोरंजन किया जाता था। ये नाटक एकांकी तथा बहुअंकीय होते थे। कुछ नाटक रामचरित तथा कृष्णचरित पर आधारित थे, इन्हें रामलीला, कृष्णलीला और रहसलीला के नाम से पुकारा जाता था। मध्ययुग में जब मुसलमानों का आगमन इस परिक्षेत्र में हुआ, उस समय नाट्य शैली में परिवर्तन हुआ। चरखारी, झॉसी, ग्वालियर तथा अन्य रियासतों में नाट्य शालायें खोली गयी। यहाँ फारसी शैली में भारतीय और मुसलमानों के प्रेम प्रसंगों को लेकर अनेक महत्वपूर्ण नाटकों की रचना हुयी। जैसे हीर-रांझा, लैला-मजनूं, सिरी-फरहाद आदि प्रेम गाथाओं पर उच्च कोटि के नाटक लिखे गये और खेले गये। धार्मिक नाटकों की परम्परा भी बनी रही, नाटकों के प्रारम्भ का एक नमूना दृष्टव्य है -

नटी- आज एक परब्रह्म परमेश्वर को कई नामों से सम्बोधित करते हुये स्मरण कर रहे है । क्या एक नाम से संतोष नहीं।

सूत्रधार - अभिनय के आचार्य अभिनेताओं के शिरोमणि भक्तवत्सल भगवान के आगम नाम, अगम, काम, अगम चरित्र और अगम अवतार है।

मत्स्य वन, मारते है, अधम निशाचर को।
कच्छप के रूप में जो भक्त हित आये है।।

बनकर वाराह जो करते दया है बढ़ी।

मोद गयी बसुधा के मार को हटाते है.........।।

नटी- आर्य पुत्र! वह निराकार भी साकार भी?

सूत्र - हां हां! वह सर्वव्यापी सब भावनाओं में एकसा दृष्टिगोचर होता है।

यशोदा ने बगल में नन्द जी ने सूप में देखा।

उदय में देवकी ने कौरवों ने भूप में देखा.......।।[75]

फारसी भाषा से प्रभावित नाटकों के मध्य में उर्दू शैली के गीत हुआ करते थे, जिससे नाटकों में जान आ जाती थी। जयदेव ने 14वीं सदी में गीत गोविन्द की रचना की। उसका अनुसरण हिन्दी कवियों और नाटककारों ने किया। नाटकों में संगीत की प्रधानता होने के कारण अनेक प्रकार के वाद्यय यन्त्र प्रयोग में लाये जाते थे। इसी युग में नाटिया कलाम और कव्वाली का प्रयोग भी हुआ, जिसे नाटककारों ने अपनाया। बुन्देलखण्ड में नाट्य परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से थी, यह हमें अत्यन्त प्राचीन समय से प्राप्त हुयी थी और इसका धार्मिक महत्व था। प्राचीन युग में यह निरन्तर फलती-फूलती रही और राजाओं तथा अमीरों द्वारा इसे संरक्षण मिलता रहा। किन्तु मध्ययुग में सिद्धान्त और व्यवहार दोनों में ही इसक कला में गिरावट की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हुयी।[76]

इस्लाम के आक्रमण के कारण हिन्दुओं की सौन्दर्य बोधक रूचि और उसके प्रयोग को ठेस पहुँचाने के बावजूद नाट्य कला हिन्दू धार्मिक और सांस्कृतिक केन्द्रों में निरन्तर व्यवहार में लायी जाती रही। न केवल मथुरा तथा वृन्दावन में, अपितु उत्तर और दक्षिण दोनों के अन्य बहुत से केन्द्रों में रासलीला के प्रदर्शन किये जाते थे, जिनमें कृष्ण के जीवन के दृश्य और ग्वालों तथा गोपियों के श्रृंगारिक दृश्यों का अभिनय किया जाता था। सम्पूर्ण देश में हर वर्ष रामलीला का प्रदर्शन होता था, जिसमें राम के जीवन से दृश्य, विशेषकर रावण के विरूद्ध उनके सैनिक कारनामें, प्रदर्शित किये जाते थे। मुस्लिम भावना धार्मिक प्रकृति के नाट्य-प्रदर्शनों की विरोधी थी, अतः यह स्वीकार किया जा सकता है कि मध्ययुग में नाट्यकला के विकास में प्रगति नहीं हुयी।[77]

इस युग में नाट्य की दो विधाये प्रचलित थी -

1. गद्य नाट्य - इस प्रकार के नाटकों में पात्र गद्य में वार्तालाप करते थे, किन्तु जहां भावनात्मक कथन होते थे, वहाँ शेरो शायरी का प्रयोग होता था तथा कहीं-2 पर भड़कीले हास्य व्यंग्य भी होते थे। इन नाटकों में चम्पू गद्य शैली का प्रयोग किया जाता था।

2. गीत नाट्य - मुख्य रूप से दो प्रकार के प्रचलित थे। प्रथम विधि स्वांगों की होती थी, जिनमें विशेष अवसरों पर स्वांग किये जाते थे। इनमें एक महिला पात्र और एक पुरूष पात्र होता था, जिनमें आपसी मन-मुटाव, विरह-वेदना प्रदर्शित की जाती थी। उदाहरण दृश्टव्य है -

दिन उग आये रे राजा, मरी मई मन में।।

दिन उग आये।। टेक।।

खन पान नहिं सेज सुहावे, मन नहिं लगे रे दौलत धन में। छन्द।

दिन उग आये।। उड़ान।। 1।।[78]

प्रस्तुत किये जाने वाले ये स्वांग व्यक्तिगत भावनाओं से प्रेरित थे और एकांकी नाटकों जैसे थे।

सम्पूर्ण गीत नाट्य -

इस प्रकार के गीत नाट्यों में पात्र विविध प्रकार के कथन कविता एवं गीत के माध्यम से कहता था तथा आंगिक चेष्टाओं के माध्यम से हाव-भाव प्रदर्शित करता था। यह नाट्य शैली दो प्रकार की थी। विशुद्ध बुन्देलखण्डी शैली, जिसके अन्तर्गत पॅवारा (दतिया में गाया जाने वाला वीर काव्य), डोला माफ (बुन्देलखण्ड के अन्य क्षेत्रों में गाया जाने वाला वीर (काव्य) तथा हरदौल चरित आदि काव्य थे। इसके अतिरिक्त फारसी शैली के गीत नाट्य भी थे, जो नौटंकी के नाम से प्रचलित थे। इसका उदाहरण इस प्रकार है -

(पत्र बनिया) हुजूर सकल से देख लीजिये दिखता मैं बिल्कुल कंगाल हूँ,

नाम रघुवा मेरा जात बक्काल हूँ।

सुल्ताना डाकू - अबे। झूठ बकता है तू क्या मैं तेरी हैसियत से वाकिब नहीं,

लाख बहाना बनाये कंगाली का तू अब तुझे छोड़ना मुझे मुनासिब नहीं,

उपरोक्त कथनों के साथ नगाड़े की ध्वनि दर्शकों को आकर्षित करती है, इसके अतिरिक्त नौटंकी में स्त्री पात्र बीच-2 में गीत गाकर दर्शकों का मनोरंजन करते है।

प्रहसन एवं चुटकुले -

कभी-2 पूर्वमध्ययुग में तमाशा करने वाले नट प्रहसन और चुटकुलों के माध्यम से जनता का मनोरंजन करते थे। मुख्य रूप से अकबर, बीरबल के चुटकुले अत्यन्त लोकप्रिय थे । इसके अतिरिक्त दूसरे की नकल उतारकर मनोरंजन किया जाता था। ये चुटकुले और नकल भले ही गरिमायी साहित्य के अंग न हो, किन्तु लोक साहित्य के भण्डार अवश्य थे।

अकबर बादशाह - बीरबल भैया हमें खुदा की खुदाई देखने है

बीरबल - हाँ महाराज! चलो दिखाइये

इतनो कहके बीरबल अकबर बादशाह को जमुना नदी के कछारन पै लै गये और नदी किनारे ऊँची नीची टिकारियन में चढ़ावे उतारे इसे अकबर बादशाह नाराज भये और बोले- कहॉ है खुदा की खुदाई। बीरबल-वाह बादशाह तुम अब लौ नहीं समझे, तुम जिन ऊँची-नीची टोरियन में चढ़ रहे वे तुम्हारे बाप की खुदाई नहीं था जे सबरी खुदा की खुदाइयाँ है।

पहेलिया - कभी-कभी यहाँ के लोग पहेलिया बुझाकर भी लोगों का मनोरंजन किया करते थे। इससे व्यक्ति की स्मरण शक्ति बढ़ती थी, नवीन ज्ञान प्राप्त होता था और समय भी कटता था -

1. छोटा सा लड़का बहम्मन का तिलक लगाये चंदन का (उर्दा)

2. लाल दुहरिया दिउलन भरी (मिर्चा)

3. द्विय भाई भट्ट - भट्ट (दरवाजा)

गप्प - कभी-कभी अतिरंजनापूर्ण अनहोनी कथाओं के माध्यम से व्यक्ति अपना मनोरंजन किया करते थे, ऐसे कथन सत्य नहीं होते थे, किन्तु मनोरंजन बहुत होते थे -

चीटी चढ़ी पहाड़ पर, ढूड़न चले चमार।

चीटी गिरी पहाड़ से चीरन लगे चमार।

जूता बने पॉच सौ चप्पल बनी हजार।

इस प्रकार हम देखते है, कि तद्युगीन साहित्य, जो लिखित और मौखिक रूप से हमें उपलब्ध हुआ, उसमें इस्लामिक संस्कृति के कारण अनेक परिवर्तन हुए थे। ये परिवर्तन भाषा विषय सामग्री, छन्द विधान, रचना शैली और प्रस्तुतीकरण में स्पष्ट रूप से दिखलाई देती है।

(स) लोक संस्कृति पर प्रभाव -

बुन्देलखण्ड के लोग सदैव परम्परागत संस्कृति का अनुसरण करते रहे है। इस संस्कृति के दर्शन लोकचरण और लोक व्यवहार में सर्वत्र दिखलाई देते है। यहाँ की लोक संस्कृति जहाँ परम्पराओं का अनुसरण करती है, वही वह युग की परिवर्तित धारा को अपने में समाहित करती चली आयी है, इसलिए युग द्वारा परिवर्तित धारा को मौन रूप से ग्रहण कर लेना ही बुन्देलखण्ड की विशेषता रही है।

मुसलमानों का आगमन इस परिक्षेत्र में 11वीं शताब्दी के अन्त में और 12वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ। ये मुसलमान बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में बहुत कम संख्या में आये थे, किन्तु उन्होंने शक्ति, प्रलोभन, सामाजिक संबंध और धार्मिक सिद्धान्तों के आधार पर यहॉ की जनता को प्रभावित किया और उन्हें मुसलमान बनाया। यहाँ के अनेक लोग, जो मुसलमानों के सम्पर्क में आये, उन्होंने अपना परम्परागत धर्म छोड़ दिया और इस्लाम धर्म अपना लिया। उन्होंने अपनी परम्परागत संस्कृति का परित्याग पूरी तरह से नहीं किया, किन्तु उसमें अनेक परिवर्तन तुर्क, अरबी, फारसी, और मुगल संस्कृति के अनुसार कर लिये। लोक संस्कृति में निम्न प्रकार के परिवर्तन हुए -

1. भाषा एवं वेशभूषा में परिवर्तन -

पहले बुन्देलखण्ड के लोग अपने-अपने क्षेत्र की उपभाषायें, जो विभिन्न नामों से विख्यात थी, बोलते थे। मुसलमानों के आगमन के पश्चात् इनकी बोलचाल की भाषा में व्यापक परिवर्तन हुये। यहाँ आने वाले मुसलमानों ने अरबी, फारसी शब्दों का मिश्रण बुन्देलखण्ड की उपभाषाओं में किया। गुस्सा, गुस्सैल, खल्क, आदाब, आदाबर्ज, सलाम, खुदा, रब, जन्नत, दोजक, फिक्र, परेशानी, मदरसा, हुजूर, हजरत, मस्जिद, दरगाह, मकबरा, नवाज, आदि शब्द सामान्य बोलचाल में प्रयुक्त होने लगे। तद्युगीन बुन्देलखण्डी का मिश्रित स्वरूप उपलब्ध पत्र के माध्यम से देखा जा सकता है -

''जब बहादुर शाह ने बुलाओ, तब छत्रसाल ने भानुभट्ट और बलदाऊ से पूछी। भानू बोले औरंगजेब बादशाह ने अपनी बादशाहत में जो हुक्म दै दओ हतो कै कबहुँ भूल कै हिन्दू मात्र की

जीत न लिखी, जावै कारण ऊ बखत पै मुसलमान लोग रोज-रोज कौ हाल लिख देते हते मय दिन धरी के ईसे हिदायतें हती कै हिन्दुवन ही हार लिखी जावै और मुसलमान सेनापतिन की कितनऊँ कहूँ हार होवै रही जीत लिखी जावै और अपनी कचाई हिन्दू बिल्कुल न समझ पावै ईतरा बादशाही में रूकावट हती ऐसी वे अदब की बातें जो कोऊ लिखके लाबै वह बड़ी इनाम पावे और मान पावै ऐसो आलमगीर ने करौ कै इन बातन में हिन्दू लोग जेठन को गौरव मूल जावै रही जौन हिन्दू जनइया हते उने इन बातन से का मतलब कोऊ जासे कहे अपने काम से मतलब।''[79]

तद्‌युगीन बुन्देली काव्य में भी उर्दू शब्दों का प्रयोग पर्याप्त भाग में होने लगा था। यह परम्परा आज तक अनवरत चली आ रही है। बुन्देली काव्य का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें उर्दू शब्दों का प्रयोग काफी मात्रा में किया गया है-

तुमै का दै हमाये पास का है

तुमाये रस्मैं निभाबै की प्रथा है।

तुमाये चाबे वारे ढेर से है,

इतै भी चलकै आओ काफला है।[80]

अन्य उदाहरण- *बानी बोलो बनाबली की, होय न तनातनी की।*

तिल कौ ताड़ बना, बेमतलब करौ न ठनाठनी की।।[81]

इस प्रकार हम देखते है कि मुसलमानों की भाषा का व्यापक प्रभाव यहाँ के बोलचाल में पड़ा है।

इस्लाम के आगमन के पश्चात सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन -

पुरातन काल में सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अनार्यो के मध्य आदिवासी संस्कृति का अनुसरण परम्परागत रूप से होता था। उसके पश्चात् आर्य संस्कृति का अनुसरण यहाँ के लोगों के द्वारा किया गया। इस समय वर्ण और आश्रम व्यवस्था का अनुपालन होता था। सोलह संस्कारों का अनुपालन वेद शास्त्र के अनुसार होता था। विदेशी जातियों के आगमन के कारण अनेक उपजातियों का उदय हुआ। पहले ये जातियाँ पृथक-पृथक उद्योगों के कारण अपनी पहचान रखती थी, किन्तु बाद में ये जातियाँ वंश परम्परा का अनुसरण करने लगी। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में 372 उपजातियाँ है, जो विभिन्न वर्णो से संबंधित है। इस्लाम के आगमन के पश्चात यह अनुमान लगाया गया था कि मुसलमान जाति और इससे उत्पन्न किसी भी वंश परम्परा को नहीं मानते थे, किन्तु वे भी यहाँ की लोक संस्कृति से प्रभावित हुए और उन्होंने भी उद्योग और वंश के अनुसार अपनी अनेक उपजातियाँ बना ली। इनकी उपजातियाँ चिकवा, मनिहार, रंगरेज, भिस्ती, बेहना, कसाई आदि है। वैसे ये लोग अपने को खान, कुरैशी, पठान, सैयद आदि नामों से सम्बोधित करते थे। ये लोग वाह्य प्रदर्शन में छुआ-छूत और ऊँच-नींच नहीं मानते थे, किन्तु यथार्थ में यह समाज भी उच्च वर्ग अथवा शासक वर्ग, मध्यम वर्ग और सामान्य वर्ग में विभाजित था। पहले हिन्दू धर्म से संबंधित जातियों में पर्दा-प्रथा नहीं थी, किन्तु

मुसलमानों के आगमन के पश्चात उच्च्य वर्ग के हिन्दुओं में पर्दा प्रथा प्रारम्भ हुयी तथा स्त्रियों के बाहर आने-जाने पर प्रतिबन्ध लगा। भोजन व्यवस्था, वेश-भूषा, आवास व्यवस्था तथा रहन-सहन की शैली में व्यापक परिवर्तन हुये। दोनों समाज अन्ध-विश्वास, लोक रीति तथा देश रीति का अनुपालन करते थे। बहुविवाह, अनमेल विवाह, बाल विवाह हिन्दू समाज के लिये कलंक थे, किन्तु पुरातनपंथी इनकी तारीफ करते थे। हिन्दू धर्म के लोग विधवा विवाह को अनुमति प्रदान नहीं करते थे। मुसलमानों के यहॉ भी अनेक प्रकार के सामाजिक अन्ध-विश्वास प्रचलित हो गये थे तथा दोनों की दिशा भ्रमित थी।

संतो राह दोऊ हम दीटा,
हिन्दू तुरक एक राह है, स्वाद सबन को मीठा।
X X X
हिन्दु तुरक एक राय है सद्‌गुण यहै बताई।
कहै कबीर सुनो हो सन्तों, राम न कहौ खुदाई।। कबीरदास।।

हिन्दुओं की भॉति मुसलमान भी झाड़ फूंक तथा दरगाहों में जाकर मनौती मानते थे, यह भावना मुसलमानों के अन्दर हिन्दू धर्म से प्रभावित होकर उत्पन्न हुयी। हिन्दू धर्म छोड़कर, जो व्यक्ति मुसलमान बने थे, उन्होंने अपनी पारिवारिक परम्पराओं का त्याग नहीं किया था, उनके यहाँ जन्म, विवाह और मृत्यु संस्कार प्राचीन और नवीन दोनों परम्पराओं का निर्वाह करते हुए सम्पन्न होते थे। इस समय का समाज और उसकी व्यवस्था अधोपतित थी।

धर्माचरण में परिवर्तन -

लोक संस्कृति का आधार धर्माचरण भी होता है, उससे व्यक्ति की आस्था तथा ईश्वर के प्रति प्रेम दृष्टिगोचर होता है। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मुसलमानों के आगमन के पूर्व परम्परागत धर्म का अनुपालन होता था। इस धर्म के अन्तर्गत प्रकृति, पशु, परमात्मा, शक्ति, विभिन्न देवी-देवता, मूर्तिरूप और निराकृति रूप से पूजे जाते थे। इसके अतिरिक्त अनेक ग्रामीण देवता भी मूर्ति रूप में पूजे जाते थे। अनेक तीज त्योहार धर्म से जुड़े हुए थे, जो वर्ष भर किसी न किसी रूप में सम्पन्न होते थे। जप, तप, ज्ञान, यज्ञ और दान धर्म के अंग थे। तीर्थ यात्रा और पवित्र नदियों में स्नान करने को धार्मिक कर्म माना जाता था। इसके अतिरिक्त मन्दिर निर्माण, मूर्ति स्थापना, प्राण प्रतिष्ठा, धर्मोत्सव, सद्‌ग्रन्थों का पाठ तथा धर्मानुकूल आचरण करना धार्मिक कार्य थे। यहॉ के लोग गऊ, ब्राह्मण और कन्या पर विशेष सुविधा रखते थे। ये लोग पाप और पुण्य की भावना को ध्यान में रखकर धार्मिक कृत्य करते थे। वास्तविक रूप में पाप और पुण्य किसी भी व्यक्ति के द्वारा किये गये कर्मो का धार्मिक दृष्टि से मूल्यांकन था। क्षमा, दया, सदाचार, सद्व्यवहार और अहिंसा परम्परागत धर्म के अंग थे। स्वर्ग और नरक धार्मिक कृत्यों के प्रतिफल थे, जो मृत्यु के उपरान्त व्यक्ति की आत्मा को उपलब्ध होते थे। सुख - दुख और लाभ परमात्मा के आधीन थे। यथा -

जाको प्रभु दारुण दुख देही, ताके मति पहले हर लेही।
x x x

हानि लाभ जीवन मरण, यश अपयश विधि हाथ।

x x x

अम्ब ईश आधीन जग काकौ दीजौ दोष।

यह विचारधारा बुन्देलखण्ड के निवासियों के हृदय में थी। वे भाग्य पर विश्वास करते थे, इसलिए सहन-शीलता की भावना उनके हृदय में भी थी, किन्तु ज्ञान की न्यूनता होने के कारण वे व्यर्थ के अंधविश्वासों के जाल में फंस जाते थे और ठगों द्वारा ठगे जाते थे। कभी-2 गरीबी से प्रेरित होकर अपराधिक कार्य भी करते थे। यथा -

आरत काह न करे कुकर्मू, माँगे भीख त्याग निज धर्मू

x x x

नाथ हमार यहे सेवकाई, भूषण बसन न लेही चुराई।

बुन्देलखण्ड में धर्म के नाम पर ठगी, झाड़-फूंक करने वाले पुरोहितों और पुजारियों ने की। मुसलमानों के आगमन के पश्चात यहाँ की धार्मिक लोक संस्कृति में व्यापक परिवर्तन आया। डा0 नर्मदा प्रसाद गुप्त के अनुसार - जब लोक बदलता है, तब लोक संस्कृतियॉ बदलती है और फिर संस्कृति। इस लम्बी और सहज, लेकिन विशिष्ट प्रक्रिया में लोक ही प्रधान है, अन्य कोई संस्था नहीं। लोक के बदलने पर धीरे-2 लोक संस्कृति में बदलाव आता है और जब लोक संस्कृतियॉ अपने परिवर्तित रूप में पूरा अस्तित्व बना लेती है, तब संस्कृति का पुर्ननिर्माण संभव होता है।[82] इस प्रकार मुसलमानों के आगमन के पश्चात लोक भावनाओं में परिवर्तन आया है, जिसके कारण धार्मिक लोक संस्कृति बदली। इस्लाम धर्म की एकेश्वरवाद की भावना प्रबल हुयी। ईश्वर के निराकार स्वरूप पर बल दिया गया। उसकी उपासना के लिए स्थान-2 पर मस्जिदों का निर्माण हुआ, पांच वक्त की नवाज, यतीमों को ज़कात देना, रमजान में रोजे रखना और माल होने पर हज करना धर्म का अंग माना गया। मुसलमानों की इस भावना से हिन्दू दो रूप से प्रभावित हुए। पहला प्रभाव यह था, कि उन्होंने इस्लाम धर्म को हिन्दू धर्म विरोधी माना, इसलिए उन्होंने हिन्दुओं को सचेत किया और धार्मिक नियम कठोर किये गये, अन्य जातियों की भांति लोग मुसलमानों से परहेज करने लगे। दूसरा परिणाम यह निकला कि उपेक्षित जातियाँ, जिन्हें हिन्दुओं ने ठुकरा रखा था, वे मुसलमान बने तथा उन्हें मुसलमानों द्वारा उचित सम्मान दिया गया।

यहाँ ऐसे भी बुद्धिमान व्यक्ति हुए, जिन्होंने धर्म के नाम पर संघर्ष को जन्म देना उचित नहीं माना तथा उन्होंने ऐसे धार्मिक सिद्धान्तों का निर्माण किया, जो दोनों धर्मों को स्वीकार थे। ये सिद्धान्त कबीरपंथ, प्रणामी सम्प्रदाय, सतनामी सम्प्रदाय के रूप में यहाँ चर्चित हुये। मुसलमान लोग भी हिन्दू धर्म के तप, जप आदि सिद्धान्तों से अत्यधिक प्रेरित हुये। मुख्य रूप से सूफी सन्तों ने हिन्दू धर्म से जुड़े प्रेम मार्ग को अपनाया और उसे विविध रूपों में प्रस्तुत किया। इसके अलावा कबीर, रसखान, रहीम जैसे महान कवि हिन्दू धर्म से प्रेरित हुए और उन्होंने अपनी आस्था हिन्दू धर्म के प्रति प्रगट की।

रहीम के नीति के दोहे उच्च कोटि की धार्मिक आस्था के प्रतीक है -

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।

चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग।।

रहीम के ही दो दुर्लभ छन्द उपलब्ध हुए है, जो कृष्ण भक्ति से प्रभावित है-

देन कहे करतात जिन्हें सुख, सो तो रहीम टैर नहिं टारे।

उद्यम पौरूष कीन्है बिना धन आवत आपहिं हाथ पसारे।।

इस युग में भजन और कीर्तन पद्धति में परिवर्तन हुआ। भजन और कीर्तनों का दौर हिन्दू और मुसलमान दोनों में ही प्रचलित हुआ। मुसलमानों में इसे कव्वाली और नाटिया कलाम कहा जाता था तथा सूफी सन्तों की मजारों पर इनके आयोजन होते थे। तद्युगीन भजन का एक उदाहरण इस प्रकार है, यह भजन स्वर्गीय गंगाधर व्यास का है -

समझाय वचन कइयो जो तुमकों भावें।

टर बिना भई जो गत सो कियै सुनावे।

दै जायें दरस जासें जे नैन जुड़ावे।

ऊधौं जू एक बेर श्याम ब्रज में आवे।।[83]

इसी प्रकार के धार्मिक गीत मुसलमान भी दरगाहों में गाया करते थे, यथा-

बलायें जुल्फ जानां की अगर लेते तो हम लेते

बला यह कौन लेता जान पर लेते तो हम लेते

न लेता कोई सौदा मोल बाजारे मुहब्बत का

मगर जां नकद अपनी बेंचकर लेते तो हम लेते.....[84]

इस युग में धार्मिक मान्यतायें परिवर्तित हुयी और धर्म का एक ऐसा स्वरूप बना, जिनमें हिन्दू और मुसलमानों के मिले जुले स्वरूप के दर्शन किये जा सकते है। इस प्रकार धर्म प्राचीन परम्परा का परित्याग कर लोक धर्म के रूप में उभरा।

लोक-रंजन के संसाधनों में परिवर्तन -

जीवन के अन्य कार्यो की भाँति बुन्देलखण्ड के निवासी मनोरंजन को भी अपने जीवन का अंग मानते थे। ये मनोरंजन खेल-तमाशा, नाटक, नौटंकी, जादूगरी, प्रहसन और लोक संगीत के माध्यम से अति प्राचीन काल से होते आये है। लोक संगीत बुन्देलखण्ड में इतना अधिक लोकप्रिय थे, कि प्रातःकाल से लेकर रात्रि तक और जन्म से लेकर मृत्यु तक तथा व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक जीवन और हमारे धर्म से जुड़ा। बुन्देलखण्ड में यह लोक संगीत तीन रूपों में हमें दिखलाई देता है -

1. लोक गीत -

लोक गीतों का संबंध हमारे व्यक्तिगत जीवन, हास-परिहास, धर्म, संस्कार और सुख-दुःख से जुड़ा हुआ है। लोक-गीत के रचनाकार के सन्दर्भ में यहाँ का कोई भी व्यक्ति जानकारी

नहीं रखता। ये लोकगीत उच्च वर्ग, सामान्य वर्ग और मध्यम वर्ग के अलग-2 प्रतीत होते है। इनकी गायन शैली में अंतर है। इसके अतिरिक्त कुछ लोकगीत अलग-अलग जातियों के थे। ये लोकगीत एकल, युगुल और सामूहिक रूप से बिना वाद्य यन्त्रों के और वाद्य यन्त्रों सहित गाये जाते थे। इनका प्रदर्शन घरों, सामाजिक उत्सव के स्थलों तथा धार्मिक स्थलों में बैठकर और चल फिर कर गाये जाते थे। इसके उदाहरण कुछ इस प्रकार है -

1. व्यक्तिगत लोकगीत - यह लोकगीत दैनिक जीवन से जुड़े होते थे तथा जीवन के सुख-दुख और सामाजिक व्यवस्था पर करारी चोट करते थे।

2. संस्कारिक लोकगीत - ये लोक गीत जन्म से लेकर मृत्यु तक विविध संस्कारों में गाये जाते थे। इसका उदाहरण दृष्टव्य है -

वीरन को दीनौं बाबुल महल अटारी,
बेटी को दियौ परदेस मोरे लाल।

3. धार्मिक गीत - *एक बहमन के सुरहन गइया, चले नंदन वन जाये हो या*
एक वन नाकी, दूसर बन नाकी तीसरे मा सिंहा गराजे हो मा।

4. सम-सामयिक गीत - ऐसे लोकगीत भी गाने की प्रथा बुन्देलखण्ड में थी। ये गीत व्यक्तिगत भावनाओं से प्रतीक थे तथा समाज की व्यवस्था पर करारी चोट करते थे। यथा -

काहूं के लाने दुहै कारी, हमे तो लगे प्राणन से प्यारी,
कारे हते राम यदुनंदन कारे, कारी नयन पुतरिया बारी।
हमे तो लगे . . . .।।

5. जातीय संगीत -

बुन्देलखण्ड में जातीय संगीत भी बहुत अधिक लोकप्रिय थे। यहाँ के आदिवासी अपने अलग लोकगीत गाते थे, जिन्हें ददरिया, कर्मा आदि नामों से सम्बोधित किया जाता था। इसके अतिरिक्त कहार, कहरवा लोकगीत, ठीमर, ठिमराई, धोबी और कुम्हार अपने गीत अलग ढंग से प्रस्तुत करते थे। यहाँ की बेड़िने राई गीत गाती थी।

6. मौसमी गीत -

यहॉ का लोक संगीत मौसम पर भी आधारित था। यहाँ पर वर्षा ऋतु में विरहा, बारहमासा और श्रावण गीत गाये जाते थे। कार्तिक माह में कार्तिक स्नान के गीत गाये जाते थे, मकर संक्राति के अवसर पर लेद और लमटेरा गाये जाते थे, फागुन के महीने में फागे गायीं जाती थी, चैत के महीने में चैतुआ गीत और बिलवाई गाने का रिवाज था। लोकप्रिय कवि ईसुरी फाग दृष्टव्य है -

अपनी कृस्न जीभ से चाटी, वृन्दावन की मांटी।
दुर्लभ भई मिली न उनरवां देई देवतन डाटी....।। 1 ।।

मुसलमानों के आगमन के पश्चात लोकगीतों की प्रस्तुति में व्यापक अन्तर आया। यह

अन्तर भाषा शैली और प्रस्तुतीकरण में आया। जिसे उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है -

काफिरे इश्कम् मुसलमानी मरा दरकारनेस्त

हररगे मन तारगश्ता हाजते जुन्नार नेस्त

अज सेर बालीन मन् बरखेज ऐ नादां तबीब

दर्द मंदे इश्करा दारू बजुज दीदार नेस्त

थियेट्रिकल अंगरेजी वजन (स्टार ऑफ इंडिया से)-

मैं आफत का परकाला हूँ- बेद व करतब वाला हूँ

नाच नचाई दमभर में - आग लगाई घर भर में

ऐसा नटखट- ऐसा बेढ़व- ऐसी रंगवाला हूँ

मैं आफत . . . .।[86]

इस समय बेड़नियों द्वारा गाये जाने वाले संगीत में भी परिवर्तन आया। उन्होनें राई नृत्य और राई गीत की जगह मुजरा संगीत को प्राथमिकता दी तथा यह अमीर घरानों में अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। यथा -

हाय मुझे दर्दे जिगर ने सताया

मेरा प्यारा नहीं दिल आरा नहीं कोई चारा नहीं है खुदाया

हाय मुझे दर्दे जिगर . . . . . . ।।

शैर–1 - *फुंगा में आह में फरियाद में शेवन में नाले में*

सुनाऊ दर्द दिल ताकत अगर हो सुनने वाले में

शैर–2 - *कबाबे सीख है हम करवटें हरसू बदलते है,*

जो जल उठता है यह पहलू तो वह पहलू बदलते है।[87]

इस प्रकार हम देखते है कि इस्लाम धर्म में नृत्य कला और गायन कला वर्जित थी, फिर भी यहाँ के कलाकारों में मुसलमान गायक और नृतक शामिल थे, जिन्होंने इसे अपनाया, किन्तु अपनाने के साथ-साथ इसमें व्यापक परिवर्तन नवीन परिस्थितियों के अनुसार किये गये।

<u>लोक वाद्य</u> -

बुन्देलखण्ड में जो लोकगीत गाये जाते है, यदि उनकी गायन शैली में लोक वाद्य का उपयोग किया जाता है, तो निश्चित ही लोकगीत गायन का सौन्दर्य बढ़ जाता है। मुख्य रूप से यहाँ तीन प्रकार के वाद्य यन्त्र, लोक संगीत में प्रस्तुत किये जाते थे। सुप्रसिद्ध शास्त्रीय संगीत अध्यापिका तृप्ति दुबे के अनुसार- बुन्देलखण्ड का लोक संगीत बिना वादन के अधूरा सा प्रतीत होता है। इस क्षेत्र में तीन प्रकार के वाद्य यन्त्र प्रयोग में लाये जाते है, फूंककर बजाये जाने वाले वाद्य यन्त्र जैसे- बांसुरी, तुरही, शहनाई, रमतुल्ला, तिलगोजा आदि। दूसरे प्रकार के वाद्य यन्त्र तन्त्रीय वाद्य कहलाते हैं, जिनका निर्माण विभिन्न प्रकार के तारों से होता है। जैसे- एकतारा, सितार, धीचा, सारंगी, केकंडा आदि। तीसरे

प्रकार के वाद्य ठोककर बजाये जाने वाले वाद्य है- ढोलक, मृदंग, पखावज, नगाड़ा, नगड़िया, खजली, ढप्प, हुड़क, मजीरा, झांझ, चमीटा, खटपटिया आदि।

मुसलमानों के आगमन के पश्चात संगीत में प्रयुक्त होने वाले वाद्य यन्त्र नवीन स्वरूप धारण करके आये। तबले का प्रयोग मुगल काल में हुआ। इस सन्दर्भ में कहा जाता है, कि मृदंग के दो भाग करके तबले का निर्माण हुआ। इसी प्रकार सारंगी भी मुगल काल में वाद्य यन्त्रों में शामिल हुयी, यह सितार और धींचा की अनुप्रति है। मुगल दरबार में और शाही घरानों में जब बेड़नियों द्वारा संगीत की प्रस्तुति की जाती थी, तब इन यन्त्रों का प्रयोग होता था।

लोक नृत्य -

बुन्देलखण्ड में लोक नृत्यों की प्रथा अत्यन्त प्राचीन है। यहाँ वनांचलों में अनेक शैल चित्र ऐसे उपलब्ध हुये है, जिनमें स्त्री और पुरुष नृत्य की मुद्रा में है। नृत्य की प्रस्तुती यहाँ एकल, युगल और सामूहिक रूप से की जाती थी। इनकी प्रस्तुति का स्थान घर, सामाजिक उत्सव स्थल, धर्म स्थल, और रंगमंच हुआ करते थे। ये लोकनृत्य हमारी संस्कार व्यवस्था, तीज-त्योहारों और ऋतुओं से जुड़े हुए थे तथा कुछ जातियों के लोक नृत्य अपनी अलग विशेषतायें रखते थें इस क्षेत्र में बेड़नियों की राई, कहारों का हुड़क, ढीमरों की ढिमराई, कुम्हारों का स्वांग, धोबियों का कुंठारा नृत्य अत्यधिक प्रसिद्ध थे। इसके अतिरिक्त आदिवासी लोग परम्परागत ददरिया तथा कर्मा नृत्य प्रस्तुत करते थे।

मुसलमानों के इस क्षेत्र में आगमन के पश्चात् नृत्य कला में व्यापक परिवर्तन हुआ। राधेश्याम के अनुसार- यद्यपि इस्लाम में स्वर संगीत और नृत्य दोनों ही निषेध थे, किन्तु रूढ़िवादी, परम्परागत, दकियानूसी और कट्टर मुसलमानों के विरोध के बावजूद भी मुस्लिम समाज का तीन चौथाई भाग इन कलाओं में रुचि लेता रहा, उन्हें प्रोत्साहन देता रहा और उनसे मनोरंजन प्राप्त करता रहा। संगीत व नृत्य दोनों ही मानव की प्रमुख आवश्यकतायें थी। कोई भी त्यौहार, जश्न व उत्सव, संस्कार बिना संगीत व नृत्य के सम्भव न था। सुल्तान से लेकर सूफी तक समाज के विभिन्न वर्गो, समुदायों में उसका अत्यधिक प्रचलन था। स्त्री के गर्भाधान से लेकर वृद्ध तथा परलोक सिधारने तक कोई भी ऐसा अवसर नहीं होता था, जब कि संगीत व नृत्य का आयोजन न होता हो।[88]

सुप्रसिद्ध संगीतकार लाल शिरोमणि के रचयिता पं० रामशरण तिवारी का मन्तव्य है कि हमारे पूर्वज सुप्रसिद्ध मृदंग वादक कुदऊ महाराज ने अपनी मृदंग का प्रयोग बाँदा नवाब जुल्फिकार बहादुर और दतिया नरेश भवानी सिंह जू देव के यहाँ विविध नृत्यों के साथ किया था। स्पष्ट है कि उस युग में नृत्य परम्परा काफी उच्च स्तर पर थी तथा तथा उसमें मुसलमानों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

की नवाज अदा करते है, ज़कात देते है, इनमें से कुछ हज़ भी कर आये है तथा कुछ हिन्दू लोगों से भी सम्पर्क स्थापित किया, जिन्होंने धर्मशास्त्र का अध्ययन बड़ी गम्भीरता से किया, जो बुन्देलखण्डी संस्कृति के पक्षधर है और उसके मूल स्वरूप को बनाये रखने के पक्षधर है। इन लोगों से सम्पर्क के बाद व्यापक सर्वेक्षण के निम्न तथ्य इस प्रकार उजागर हुये है -

परिवर्तन अवश्यम्भावी था - सुप्रसिद्ध इस्लामी विद्वान डा० साबिर नियाजी के अनुसार- जमाने का बदलना आवश्यक था। जब आदमी, आदमी के नजदीक जाता है और वह एक दूसरे को समझने की कोशिश करता है, तो उसमें परिवर्तन स्वाभाविक रूप से होता है। दुनियाँ में जितने भी मजहब है, खुदा के वजूद को मानते है। इस्लाम में भी ऐसा है, किन्तु इस्लाम हिन्दू धर्म की तरह मूर्ति पूजा और बहुदेववाद को नहीं मानता, क्योंकि मुसलमानों का यकीन है, कि खुदा से बड़ा कोई नहीं है और न कोई खुदा की बराबरी का है और जो कुछ दुनियाँ में हो रहा है, वह खुदा की मर्जी से हो रहा है। यह परिवर्तन, जो बुन्देलखण्ड की धरती पर इस्लाम की वजह से हुआ, वह भी खुदा की मर्जी से हुआ और आगे जो भी होगा, खुदा की मर्जी से होगा।[89]

डा० साबिर नियाजी निश्चित ही पक्के सुन्नी मुसलमान है और कुर्आन शरीफ की हर बात को सच मानते है। वे खुदा की मर्जी पर भरोसा करते है और पूर्ण रूपेण भाग्यवादी है। उनका यह मानना है कि यहाँ पर इस्लाम के आगमन के पश्चात् संस्कृति में परिवर्तन किसी व्यक्ति की मर्जी से नहीं हुआ, अपितु खुदा की मर्जी से हुआ।

परिवर्तन अवश्य होना चाहिए -

कु० आएशा बेगम (अध्यापिका) इस्लाम धर्म की मानने वाली एक पढ़ी-लिखी महिला है। उनका परिवार आज से कई सौ वर्ष पहले इस्लाम धर्म में दीक्षित हुआ था और आज भी उनके परिवार के लोग इस धर्म का अनुपालन करते है। उनका यह मानना है, कि यहाँ पर जिस इस्लामी संस्कृति का विकास हुआ है, वह मूल रूप से अरबी और तुर्की संस्कृति नहीं है। यहाँ के ज्यादातर मुसलमान अपना परम्परागत धर्म परित्याग करके मुसलमान बने, इसलिए स्वाभाविक है कि वे अपने परम्परागत धर्म का पूरी तरह से परित्याग नहीं कर पाये, इसलिए हिन्दू धर्म से प्रभावित होकर यहाँ की इस्लामी संस्कृति व्यापक रूप से परिवर्तित हुयी। मुख्य रूप से सूफी-सन्तों, प्रणामी-सम्प्रदाय सतनामियों और कबीर पंथियों ने मेल जोल का जो रास्ता निकाला, इससे दोनों संस्कृति का अनुसरण करने वाले व्यक्तियों से सामंजस्य स्थापित हुआ और नवीन प्रेम संबंध स्थापित हुये। बुन्देलखण्ड में ऐसा होना ही चाहिए।[90]

परिवर्तन नहीं होना चाहिए था - हिन्दू धर्म के समर्थक, वेदाध्ययन में निपुण तथा बहुदेववाद पर आस्था रखने वाले विद्वान शिरोमणि पं० गणेश प्रसाद पाण्डेय का यह मानना है, कि 11वीं शताब्दी के पश्चात् इस्लाम धर्म के आगमन के कारण यहाँ की मूल संस्कृति में, जो परिवर्तन हुआ, वह नहीं होना चाहिए था। इस परिवर्तन से हमारी वर्ण व्यवस्था, संस्कार व्यवस्था और धर्म पर आस्था नष्ट हुयी

तथा यहाँ के कायर हिन्दुओं ने एकता के अभाव में घुटने टेक दिये और मृत्यु के भय से विधर्मियों के संस्कार अपना लिये। अब हम मूल रूप से अपनी संस्कृति का अनुकरण करने वाले नहीं रह गये। अब वेदपाठी ब्राह्मण और संस्कृति को संरक्षण देने वाले शूर-वीरों के दर्शन नहीं होते। 11वीं शताब्दी के बाद मुसलमानों ने यहाँ के धार्मिक स्थलों को तोड़ा, मूर्तियाँ खण्डित की, व्यक्तियों को जबरन मुसलमान बनाया गया, धर्मग्रन्थ नष्ट किये गये और हिन्दुओं को दबाने के लिये उन पर जजिया कर लगाया गया। उन्हें इस परिवर्तन से गहरा दुःख हुआ और वे समाज की वर्तमान व्यवस्था से खुश नहीं है।

निज धर्म के प्रति अनुराग होना कोई बुरी बात नहीं है, ऐसा होना भी चाहिए और इस बात से दुःखी होना भी स्वाभाविक है कि हम और हमारी संस्कृति उन्नति के शिखर पर थी और हमारा धर्म ऐसे सूर्य के समान था, जिसका आलोक चतुर्दिक फैला था। यहाँ वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, शैव शक्ति, वैष्णव धर्म का अभ्युदय हुआ और उसका विकास हुआ। मुसलमानों के पूर्व, जो भी विदेशी यहाँ आये, उन्होंने यहाँ की संस्कृति को अपनाया। किन्तु खेद का विषय है कि 11वीं शताब्दी के बाद आने वाले मुसलमानों ने जिस प्रकार से यहाँ की मौलिक संस्कृति को नष्ट करने का प्रयास किया, वह सर्वथा निन्दनीय था। श्री गणेश प्रसाद पाण्डेय के कथन को तद्‌युगीन परिस्थितियों में सही माना जा सकता है, किन्तु यदि यथार्थ को स्वीकारा जाये, तो एक हजार वर्ष पूर्व से रह रहे मुसलमानों और उनके धर्म की निन्दा वर्तमान परिवेश में नहीं की जानी चाहिए, क्योंकि तद्‌युगीन परिस्थितियों के लिए और धार्मिक परिवर्तन के लिए वर्तमान पीढ़ी के मुसलमानों को दोष नहीं देना चाहिए। यहाँ उन लोगों की सराहना भी की जाना चाहिए, जिन्होंने सामंजस्य का मार्ग अपनाया। मुख्य रूप से कबीरदास, प्राणनाथ, छत्रसाल आदि महापुरुषों ने धर्म सामजस्य और मेल-जोल की भावना का विकास किया तथा धार्मिक कटुता को प्रेम में परिवर्तित किया -

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारे भूमि धरे फिरे पैठे घर मांहि।।[91]

सांस्कृतिक परिवर्तन से बुन्देलखण्ड की मौलिक संस्कृति को हॉनि :-

श्रीमती सुशीला दुबे प्रवक्ता (हिन्दी विभाग) का विचार है कि 11वीं शताब्दी के पश्चात् जो भी बुन्देलखण्ड में घटा और उसके बाद उसकी संस्कृति में जो भी परिवर्तन हुये, उन्हें हमें पूर्वजों द्वारा की गयी त्रुटि के परिणाम के रूप में ग्रहण करना पड़ेगा। जब हम ऐतिहासिक साक्ष्य से जुड़े स्थलों के दर्शनार्थ खजुराहो, कालिंजर, देवगढ़, ग्वालियर, महोबा आदि नगरों में जाते है और यहाँ प्रतिस्थापित देव प्रतिमाओं को देखते हैं, तो उनसे झलकने वाली तद्‌युगीन संस्कृति, वेश-भूषा, वस्त्रावरण, अलंकार आदि से वर्तमान युग की तुलना करने पर पूर्णतः पृथक प्रभाव देखने को मिलता है। यहाँ पर स्थित सांस्कृतिक महत्व के स्थल हमारी गौरवमयी परम्परा और समृद्धि के प्रतीक थे। चन्देल युग के पश्चात जो सांस्कृतिक परिवर्तन आया, उससे एक मिश्रित संस्कृति का उदय हुआ, जिसनें यहाँ की संस्कृति के मूल स्वरूप को पूरी तरह नष्ट कर दिया। हमारी वेश-भूषा, चरित्र, कुलीनता और उत्कृष्ट साहित्य सब

कुछ नष्ट हो गया। नारी, जो कभी सम्मान की पात्र थी, विलासिता की वस्तु बन गयी। उसे पर्दे में रहने के लिए वाध्य किया गया तथा उसे उन परिस्थितियों में डाला गया, जिसके कारण उसे जौहर वृत करना पड़ा। सतीत्व के नाम पर अनगिनत स्त्रियाँ मार डाली गयीं। संगीत और कला के माध्यम से नारी का जो शोषण बुन्देलखण्ड में हुआ, उससे तो लगता है, कि इस्लाम के आगमन के बाद जो सांस्कृतिक परिवर्तन हुआ, उसने बुन्देलखण्ड को अधोगति में पहुँचा दिया।

श्रीमती सुशीला दुबे के हृदय में बुन्देलखण्ड की संस्कृति के प्रति एक अनुराग झलकता है और उनके हृदय में छिपी हुई पीड़ा, उस समय जागृत हो जाती है, जब वे बुन्देलखण्ड की पूर्व संस्कृति का चिन्तन करती है। उनका मानना है कि हमारी संस्कृति उच्च्व कोटि की नैतिकता पर आधारित थी। यहाँ के लोग दूसरों के लिए आदर्श प्रस्तुत करने वाले थे। वे वर्तमान सांस्कृतिक परिवर्तन को, जो इस्लाम के प्रभाव से यहाँ हुआ, ठीक नहीं मानती तथा उसे वे नैतिक पतन और अधोगति का प्रतीक मानती है।[92]

<u>सांस्कृतिक परिवर्तन धर्म सामंजस्य का प्रतीक</u> -

सुप्रसिद्ध उर्दू शायर तथा उर्दू के विद्वान लेखक जनाब एहसान कुरैशी ''आवारा बानबी'' बॉदा जनपद के उन महान साहित्यकारों में से एक है, जिन्होंने उर्दू अदब के साथ- साथ यहॉ के इतिहास को भी उजागर किया। इनका मानना है कि बुन्देलखण्ड में जो सांस्कृतिक परिवर्तन इस्लाम के कारण हुआ। उससे यहाँ की संस्कृति को कोई आघात नहीं पहुँचा, बल्कि उससे अनेक नवीन उपलब्धियॉ हासिल हुयी। हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे को पहले अपना शत्रु समझते थे और अपने धर्म का विरोधी समझते थे, जब दोनों नजदीक आये, तो उन्हें वास्तविकता का बोध हुआ और उन्होंने माना कि परमात्मा और खुदा में कोई अन्तर नहीं है। इबादत की पद्धति में चाहे जो भी अन्तर हो, पर हर मजहब इन्सानियत का पाठ पढ़ाता है। वे कहते है बुन्देलखण्ड में धर्म सम्बन्धी सबसे बड़ी घटना महामती प्राणनाथ जी के आने की है। जो राजा छत्रसाल के 1600- 1717 के काल में बुन्देलखण्ड आये और उन्होंने अपने पंथ ''प्रणामी अथवा धामी'' में छत्रसाल को शामिल कर लिया था। इस्लाम के माध्यम से हुये सांस्कृतिक परिवर्तन को धर्म सामंजस्य का एक प्रतीक समझा जाता है। कालान्तर में इसमें कुछ परिवर्तन हुआ।[93]

इस्लाम के आगमन के पश्चात दो प्रकार के धार्मिक आन्दोलन सम्पूर्ण भारतवर्ष के साथ-साथ बुन्देलखण्ड में भी चले। इसमें पहला आन्दोलन हिन्दू धर्म बचाओ आन्दोलन था, जिसका मूल उद्देश्य यहाँ की संस्कृति के मूल स्वरूप को बचाये रखना था और दूसरे आन्दोलन का उद्देश्य सम्प्रदायिकता और धर्म के नाम पर उत्पन्न होने वाले संघर्ष और वैमनस्य को रोकना था। यहाँ का हिन्दू मुसलमानों से इसलिए नाराज था, क्योंकि सुल्तानों और मुस्लिम सामंतों ने हिन्दू धर्म के धार्मिक स्थलों को नष्ट किया था। इसके साथ-साथ ये लोग यहाँ के लोगों को जबरन मुसलमान बना रहे थे, इसलिए खून खराबा रोकने के लिए धर्म सांमजस्य को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता पड़ी, इसके परिणाम

स्वरूप कबीर पंथ सतनामी सम्प्रदाय और प्रणामी सम्प्रदाय ने धर्म सामंजस्य स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जिससे हिन्दुओं का मुसलमानों के प्रति आक्रोश थम सा गया। ऐहसान कुरैशी की यह धारणा तद्‌युगीन परिस्थितियों में सही प्रतीत होती है, कि इस सांस्कृतिक परिवर्तन में जो सामंजस्य स्थापित किया, वह बेमिसाल है, अनेकता में एकता का प्रतीक है। उसी समय हजरत मोहम्मद साहब और कृष्ण की एकता तथा राम रहीम को एक नजर से देखने की भावना का विकास हुआ।

इस प्रकार हम देखते है कि 'आवारा बानबी' का कथन उन व्यक्तियों के लिए सही प्रतीत होता है, जो धर्म सामंजस्य पर विश्वास करते है।

सांस्कृतिक परिवर्तन से नवीन सांस्कृतिक प्रतीकों का उदय -

तवारीख-ए-बुन्देलखण्ड के लेखक एवं सुप्रसिद्ध इतिहासकार इलियास मगरबी के पुत्र खानकाह इण्टर कालेज बाँदा में अध्यापक है। उनका कथन है कि मुसलमानों के बुन्देलखण्ड में आगमन के पश्चात नवीन संस्कृति के स्मृति चिन्ह सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में मस्जिद, दरगाह, इमामबाड़ो तथा मृत्युस्मारक के रूप में निर्मित हुये। महमूद गजनबी से लेकर अनेक सुल्तानों और मुगल बादशाहों ने कालिंजर, महोबा, दूधिया, चॉदपुर, चॅदेरी, बानपुर, ग्वालियर, बॉदा, कालपी, शेरपुर, सिहोड़ा तथा अन्य स्थलों में अपने धार्मिक स्थल निर्मित कराये, जो इस बात का प्रतीक है कि इस्लामिक संस्कृति यहाँ फली-फूली तथा इस धर्म को लोगों ने किसी भी रूप में अपनाया। यहाँ के लोगों ने इस्लाम धर्म के साथ-साथ इसकी संस्कृति, वेश-भूषा तथा भाषा को भी अपनाया। कुछ हिन्दू सामंतों ने इस्लामिक संस्कृति को बहुत पंसद किया। बाजीराव पेशवा और मस्तानी के वैवाहिक संबंध से उत्पन्न अलीबहादुर और उनकी सन्तति ने इस्लाम धर्म अपनाकर उसके तौर तरीके सीखे। ओरछा और दतिया में निर्मित जहाँगीर महल और ग्वालियर में स्थित तानसेन का मकबरा हिन्दू-मुस्लिम एकता की प्रतीक है तथा इन दोनों धर्म संस्कृतियों ने मिलकर जिस वास्तु शिल्प, संगीत कला, चित्रकला और काव्य कला को जन्म दिया, वह बेमिसाल है।[94]

शोध छात्रा का दृष्टिकोण -

पूर्व मध्यकाल और मध्यकाल में हुये परिवर्तनों का मूल्यांकन करने से पूर्व उन ऐतिहासिक साक्ष्यों को ध्यान में रखना होगा, जो सल्तनत काल और मुगलकाल के है और जिनका संबंध बुन्देलखण्ड से है। मोहम्मद गोरी ने दिल्ली में जिस सल्तनत की स्थापना की थी, उसका विकास कुतुबुद्दीन ऐबक के समय में हुआ। भारतवर्ष के अनेक स्थलों को जीतने के पश्चात वह बुन्देलखण्ड की ओर बढ़ा और उसने 1202 ई० में चन्देलों के कांलिजर के राज्य पर आक्रमण कर दिया। उसने कालिंजर का दुर्ग अधिकृत करने के पश्चात अजयगढ़, महोबा व खजुराहो को लेकर इन दुर्गो को हसन अरनाल के अर्न्तगत रख दिया।[95] कुतुबुद्दीन का बुन्देलखण्ड में आक्रमण केवल साम्राज्य विस्तार के लिए नहीं था, अपितु उसका उद्देश्य इस्लाम का प्रचार प्रसार करना भी था। उसने शक्ति और प्रलोभन दोनों का सहारा लेकर यहाँ की संस्कृति को परिवर्तित करने का प्रयत्न किया।

डा0 आशीर्वादी लाल ने इस परिवर्तन के सन्दर्भ में यह स्वीकार किया है कि बुन्देलखण्ड के ग्रामीण अंचल में इस सांस्कृतिक परिवर्तन का कोई विशेष असर दिखलाई नहीं देता। उच्च वर्गीय हिन्दुओं ने अवश्य ही दोनों जातियों के बीच समझौता कराने की तीव्र इच्छा प्रकट की। उत्तरी और दक्षिणी भारत में इन नवागतों के प्रति बहुत ही उदार बर्ताव किया गया।[96] मुख्य रूप से बुन्देलखण्ड में महाराजा छत्रसाल और उनके गुरू प्राणनाथ ने मुसलमानों के साथ उदारता का व्यवहार किया। इसके अतिरिक्त कबीर पंथियों और सूफी-सन्तों का विरोध भी बुन्देलखण्ड में कहीं नहीं किया गया। इससे डा0 आर्शीवादी लाल के कथन की पुष्टि होती है। सुप्रसिद्ध विद्वान और इतिहासकार सतीश चन्द्र यह स्वीकार करते हैं कि इस्लाम एवं हिन्दू धर्म की असमानता, परस्पर विरोधी प्रकृति - इस्लाम कठोर एकेश्वरवाद पर जोर देता था, अल्ला के अलावा अन्य सभी ईश्वरों को अस्वीकार करता था, जिसके अंतिम दूत पैगम्बर मुहम्मद थे, जबकि हिन्दू धर्म विभिन्न प्रकार के ईश्वर में विश्वास करते हुए विविधता में एकता के सिद्धान्त को स्वीकार करता था एवं मूर्ति पूजा करता था, जिसे मुसलमान नकारते थे- के बावजूद पारस्परिक सामंजस्य और मेल-मिलाप की धीमी प्रक्रिया आरंभ हुयी। यह प्रक्रिया वास्तुकला, साहित्य, संगीत आदि क्षेत्रों में अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ रही थी। यह प्रक्रिया धर्म के क्षेत्र में भी दिखाई पड़ने लगी। जब देश में सूफीवाद का पर्दापण हुआ और उत्तर भारत में लोकप्रिय भक्ति आन्दोलन का धीरे-2 विकास हुआ। यह प्रक्रिया 17वीं सदी में तेजी से चलती रही और मुगलों के आधीन 16वीं और 17वीं सदियों में काफी प्रबल हो गयी। लेकिन यह मान लेना गलत होगा कि टकराव के तत्व लुप्त हो गये थे।[97]

भूषण के इस पद से मुसलमानों के प्रति नफरत की भावना स्पष्ट दिखलाई देती है जिससे उपरोक्त कथन की पुष्टि होती है।

किवले के ठौर बाप बादशाह साहिजहाँ

ताको कैद कियो मानो मक्के आग लगाई है।

बड़ो भाई दारा बाको पकरि कै कैद कियो

मेहरहु नाहि बाको जागो सगो भाई है।।[98]

उपरोक्त कथन की पुष्टि इस पद से हो जाती है कि बुन्देलखण्ड में जो लोग, हिन्दू संस्कृति के पक्षधर थे, वे मुसलमानों की बुरे कर्मो के कारण निन्दा करते थे और उनके द्वारा किये गये सांस्कृतिक परिवर्तनों की निन्दा भी करते थे।

औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति के कारण उस युग में जो सांस्कृतिक परिवर्तन बुन्देलखण्ड में हुए, उनका भी विरोध किया गया। जबकि इस परिक्षेत्र में सतनामी और प्रणामी सम्प्रदाय के लोग हिन्दू और मुसलमानों के बीच सामंजस्य स्थापित कर रहे थे, किन्तु मुगल सम्राट औरंगजेब के राजनीतिक स्वार्थ के कारण, जो व्यवहार मुगल शासक ने किया, उससे यहाँ कटुता पैदा हुयी। सुप्रसिद्ध इतिहासकार तथा शोध प्रबन्ध लेखक अशोक कुमार पोतदार के अनुसार - चम्पतराय के प्रसिद्ध पुत्र

छत्रसाल बुंदेला ने वीरता पूर्वक कारनामों से अगला अध्याय प्रारम्भ किया और सदा मुगलों के लिए एक कांटा बनकर जिंदा रहा।[99]

लेखक के उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि बुन्देलखण्ड केसरी छत्रसाल इस्लाम धर्म के विरोधी नहीं थे, वे हिन्दू और मुसलमानों के बीच सांमजस्य चाहते थे, इसलिए वे प्रणामी सम्प्रदाय के सदस्य बने और उसे आगे बढ़ाने का प्रयत्न भी किया, किन्तु किसी भी प्रकार का कोई सांस्कृतिक परिवर्तन, जो शक्ति के आधार पर किया जाये, अर्थात मन्दिर तोड़ना या दूसरे धर्म के लोगों को जबरन मुसलमान बनाना, यह उन्हें स्वीकार नही था। वे इस्लाम धर्म के एकेश्वरवाद के सिद्धान्त से बहुत अधिक प्रभावित थे तथा छुआ-छूत और जातीय भावना से नफरत करते थे। ऐसे व्यक्ति का मुगल शासक औरंगजेब से कोई विरोध था, तो केवल अनीति के कारण था। उनका यह मानना था कि किसी दूसरे धर्म का अनुकरण करने वाले व्यक्ति को जबरन अपने सिद्धान्त का अनुकरणकर्ता नहीं बनाया जा सकता।

मूल्यांकन का दृष्टिकोण -

शोध छात्रा के अनुसार परिवर्तन का यह मूल्यांकन निम्न सिद्धान्तों पर और उसकी व्यवहारिक प्रक्रिया पर आधारित है -

इस्लाम के आगमन के पूर्व की सांस्कृतिक स्थिति -

इस्लाम के आगमन के पूर्व बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक स्थिति शुद्ध भारतीय थी, जिसमें किसी प्रकार से विदेशी प्रभाव नहीं देखा जा सकता था। इस परिक्षेत्र में रहने वाले आर्यो और अनार्यो ने एक मिली-जुली संस्कृति को जन्म दिया था, जो विदेशी प्रभाव से मुक्त थी। उस संस्कृति से युनानी कुषाण, शक, हूण इतने अधिक प्रभावित हुये कि उन्होंने यहाँ की संस्कृति के महासागर में अपने आप को विलीन कर दिया। यहाँ की संस्कृति की प्रशंसा करते हुए सुप्रसिद्ध इतिहासकार सतीश चन्द्र का यह मानना है कि 8वीं सदी से 12वीं सदी के बीच का काल किसी भी दृष्टि से सांस्कृतिक पतन काल नहीं था, अपितु एक ऐसा काल था, जिसमें बहुत अधिक भवन निर्माण कार्य, विशेषकर मंदिर निर्माण कार्य हुये। इस प्रकार बुन्देलखण्ड के खजुराहो में, उड़ीसा में एवं अन्य विभिन्न स्थानों जैसे मथुरा, काशी, दिलवारा आदि में भव्य मंदिर बनाये गये। ये मंदिर वास्तु शैलियों और मूर्तिकला में उच्च्य स्तर का कौशल दर्शाते है।[100] बुन्देलखण्ड की इस संस्कृति ने सम्पूर्ण भारतवर्ष में उसे नवीन गौरव प्रदान किया था यद्यपि शिक्षा की न्यूनता, अंधविश्वास और पाखण्ड से जुड़े व्यक्तियों ने इस पावन मूल संस्कृति को अपवित्र करने का प्रयास किया। यह वही क्षेत्र है, जहाँ उच्च्य कोटि के ग्रंथों की रचना हुयी। इन ग्रंथों के माध्यम से नवीन सांस्कृतिक आदर्श स्थापित हुए। वाल्मीकि, व्यास, तुलसी, केशव, पद्यमाकर, तानसेन, बैजूबावरा इसी भूमि के रत्न थे, जिन्होंने ज्ञान के आकाश में उज्वल नक्षत्रों की तरह अपनी पृथक पहचान बनाई।

2. इस्लाम के पश्चात परिवर्तित संस्कृति का स्वरुप -

जब इस्लाम इस परिक्षेत्र में आया तो उसने यहाँ के निवासियों को प्रभावित किया। सर्वप्रथम यहाँ के निवासी उनके एकेश्वरवाद के सिद्धान्त से सहमत हुए। इस्लाम धर्मावलम्बी मूर्ति-पूजा पर विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने यहाँ के हिन्दू जैन और बौद्ध स्थलों को तोड़कर वहाँ मस्जिदें बनवायी। इसी प्रकार जब तलवार और शक्ति के बलबूते पर जबरन यहाँ के लोगों को मुसलमान बनाया गया तो यह बात बुन्देलखण्ड के निवासियों को पसन्द नहीं आयी, किन्तु जब सूफी सन्तों ने प्रेम और सद्भाव के साथ इस्लाम धर्म का प्रचार-प्रसार इस परिक्षेत्र में किया, उस समय मुसलमानों के प्रति यहाँ के लोगों के हृदय में घृणा की भावना में कमी आयी। इसी समय एक मध्यमार्गीय धार्मिक आन्दोलन उठा। डा० आशीर्वादी लाल के अनुसार- नानक और कबीर ने इस बात पर जोर दिया कि हिन्दू धर्म और इस्लाम एक ही लक्ष्य की ओर ले जाने वाले दो अलग-अलग मांर्ग है। राम-रहीम, कृष्ण-करीम और अल्लाह और ईश्वर एक ही परमात्मा के विभिन्न नाम है। उन्होंने दोनों धर्मो के मौलवियों तथा पुरोहितों के कर्मकाण्डों की निन्दा की और भक्ति एवं सत्य, धर्म और निष्ठा पर बल दिया। लेकिन एक जाति के रूप में मुसलमानों ने स्वयं को अलग ही रखा और वे हिन्दुओं के समझौते के प्रयत्नों की कद्र न कर सके।[101] इस्लाम के आगमन के पश्चात इस परिक्षेत्र के निवासियों की वेश-भूषा में परिवर्तन हुआ, भाषा में परिवर्तन हुआ, रहन-सहन के स्तर में परिवर्तन हुआ, धर्माचरण में परिवर्तन हुआ और सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन हुआ। कहीं कुछ सामाजिक बंधन मूल संस्कृति को बचाने के उद्देश्य से कठोर किये गये और कहीं इस्लाम को समझने के लिए उसमें ढील दी गयी। इससे दो प्रकार की विचार धारायें उभरकर सामने आयी, पहली विचार धारा इस्लाम की निन्दा करती है और मुसलमानों से सावधान रहने को कहती है, दूसरी विचार धारा मुसलमानों के समर्थन की बात कहती है। मुसलमान उनके लिए नयी और आकर्षक संस्कृति लेकर आये, जो यहाँ की संस्कृति से पृथक थी, जिसमें एकेश्वरवाद को छोड़कर और एक धर्मग्रन्थ को छोड़कर कुछ और नहीं था। उसमें जॉत-पॉत, छुआ-छूत, और ऊँच-नीच की भावना भी नहीं थी। यह मजहब इन्सानियत के उसूलों पर आधारित था, इसका उदय भारत में नहीं हुआ था और उसके ग्रंथ भारतीय भाषा में नहीं थे, इसलिए उसे लोग आसानी से समझ नहीं सके।

3. सांस्कृतिक परिवर्तन का औचित्य तथा उसकी अन्य क्षेत्रों से समतुलना-

9वीं शताब्दी का अरब शासक, जो अब्बासी साम्राज्य का संस्थापक था, उसने इस्लाम धर्म को प्रचारित प्रसारित करने के लिए विस्तारवादी कदम उठाये। उसी के प्रभाव से इस्लाम धर्म का विस्तार भारतवर्ष तक हुआ। मुसलमानों की युद्ध पद्धति भारतीयों से कहीं श्रेष्ठ थी, इसलिए मुसलमान इस क्षेत्र में विजयी हुये।

महमूद गजनवीं गाजी भावना से प्रेरित था, इसीलिए उसने इस्लाम विरोधियों से युद्ध किया और उनके धार्मिक स्थलों को नष्ट किया। उत्तर पश्चिम के प्रान्तों में इस्लाम और उसकी संस्कृति

बुन्देलखण्ड की अपेक्षा पहले आयी और वहाँ मुसलमानों ने जनता के साथ अत्यधिक कूरता का व्यवहार किया। धर्म स्थलों को तोड़ने के अतिरिक्त जबरन धर्म परिवर्तन करवाया गया।

बुन्देलखण्ड में 1022 ई० में इस्लाम धर्म महमूद गजनबी के साथ आया और उसके प्रभाव से यहाँ सांस्कृतिक परिवर्तन भी हुए। चन्देल नरेश से सन्धि हो जाने के पश्चात कटुता मित्रता में परिणित हो गयी और यह क्षेत्र धर्म परिवर्तन से बच गया। कुतुबुद्दीन ऐबक के आक्रमण का कुप्रभाव बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में पड़ा, जिसे यहाँ की जनता ने दुख और धैर्य के साथ ग्रहण किया। इसके पश्चात् 17वीं शताब्दी तक और उसके बाद भी यह सांस्कृतिक परिवर्तन और प्रभाव जारी रहा। यहाँ सूफी सन्तों के आगमन के पश्चात मुसलमानों और हिन्दुओं के मध्य, जो कटुता की भावना थी, वह धीरे-2 समाप्त हुयी तथा सतनामी, प्रणामी, और कबीर पंथियों के सहयोग से यह कटुता प्रेम भावना में बदल गयी। उस समय से लेकर आज तक सांस्कृतिक परिवर्तन का विरोध नहीं किया गया और न किसी प्रकार का साम्प्रदायिक तनाव बुन्देलखण्ड में देखने को मिला। यहाँ हिन्दू और मुसलमान दोनों ही एक दूसरे के सहयोगी रहे है बीरबल और तानसेन बुन्देलखण्ड के ही थे, जिनकी मित्रता अकबर बादशाह से थी। इसके अतिरिक्त वीरसिंह जू देव की मित्रता जहाँगीर से थी, इन्होंने जहाँगीर के नाम से दतिया और ओरछा में महलों का निर्माण कराया और तानसेन का मकबरा ग्वालियर में बना। इतना ही नहीं बल्कि पन्ना में निर्मित गुरू प्राणनाथ का मन्दिर हिन्दू मुस्लिम एकता की जीती जागती मिसाल है। यहाँ के हिन्दुओं ने मुसलमानों और मुसलमानों ने हिन्दुओं से बहुत कुछ सीखा है। भाषा, वेश-भूषा धर्म संस्कार और लोक संस्कृति एक दूसरे से प्रभावित जान पड़ती है, जो अन्य प्रांतों की तुलना में श्रेष्ठ है तथा इसका ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व सर्वाधिक है।

<u>मूल्यांकन</u> -

जो भी सांस्कृतिक परिवर्तन इस्लाम के प्रभाव से बुन्देलखण्ड में हुए उनका मूल्यांकन निर्धारित मूल्यांकन विधि से किया गया। सर्वप्रथम यहाँ उपलब्ध ऐसे ऐतिहासिक साक्ष्यों को देखा गया, जो वास्तुशिल्प, संस्कृति और कला की दृष्टि से इस्लामी संस्कृति से प्रभावित थे। इसके पश्चात कुछ नवीन विषय सामग्री की खोज के दृष्टिकोण सामने रखते हुए ऐसे लोगों से पूछ ताँछ की गयी और उनका सर्वेक्षण किया गया, जो इस्लामी संस्कृति के पक्षधर और विरोधी थे। इस सर्वेक्षण से नवीन तथ्यों की जानकारी मिली। इसके अतिरिक्त ऐसे साहित्यिक ग्रंथ, ऐतिहासिक ग्रंथ, पाण्डुलिपियाँ और मुद्रित पुस्तकें अध्ययन करने को मिली, जिनकी रचना 11वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी के मध्य तक हुयी। इन ग्रंथों में तद्युगीन ग्रंथों का प्रभाव देखने को मिला तथा समस्त विषय सामग्री के अध्ययन और व्यक्तिगत साक्षात्कार के पश्चात मैं निम्न निर्णय बिन्दुओं पर पहुँची हूँ -

1. सांस्कृतिक परिवर्तन नवीन जानकारियों का स्रोत है।
2. सांस्कृतिक परिवर्तन से इस्लाम धर्म, हजरत मोहम्मद साहब, कुर्आन शरीफ और हदीस की जानकारी हुयी।

व्यक्त किये है *है अगर नाम की ख्वाहिश तो ये असबाब बना*

पुल बना, चाह बना, मस्जिदों तालाब बना।"[102]

कालिंजर दुर्ग में अनेक स्थल पूर्व मध्ययुग और मध्ययुग के है, इनमें चौबे महल, व्यंकटेश्वर मंदिर के समीप की मस्जिद, मझार लाल, दुर्ग के नीचे राठौर महल, गोपाल ताल, वेला ताल तथा अनेक मस्जिद और मकबरे जो कालिंजर, कटरा बहादुर पुर, गोले पुरवा, तथा सड़हा नरदहा में स्थित है। दुधई चाँदपुर में भी पूर्वमध्ययुग और मध्ययुग की इमारते हैं। इसके अतिरिक्त महोबा में भी सन् 1182 से लेकर 16वीं शताब्दी तक के अनेक ऐतिहासिक स्थल उपलब्ध होते हैं। उरई के सन्निकट एरच में भी अनेक ऐतिहासिक स्थल इस्लाम धर्म से संबंधित उपलब्ध होते है, इनमें शेख सैयद युसूफ की दरगाह, सैय्यद एहसन की दरगाह आदि है। इसी स्थल में एक अति प्राचीन मस्जिद भी उपलब्ध होती है। यहाँ एक दुर्ग के अवशेष है, जो अकबर के शासन काल का है। इस क्षेत्र की सर्वप्रसिद्ध इमारत जामा मस्जिद है, जो वास्तुशिल्प की दृष्टि से उच्च कोटि की प्रतीत होती है।[103]

सागर नगर के छह मील उत्तर में सागर ग्वालियर मार्ग पर गढ़ पहरा दुर्ग स्थित है। यहाँ सन् 1200 ई० से लेकर 1500 ई० तक के अनेक स्थल उपलब्ध होते है। यहाँ का दुर्ग जमीन से छः फुट ऊपर एक पहाड़ी पर निर्मित है, इस दुर्ग के अन्दर शीश महल वास्तुशिल्प का उत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ यहाँ के नरेशों का न्यायालय था। इसके पश्चात यहाँ महलों के सात भग्नावशेष उपलब्ध होते है तथा इसी के समीप पिसनारी की बावरी, नटनी का स्मारक, तथा महावीर का मन्दिर है। अब इन ऐतिहासिक दुर्गों की दुर्दशा है। इसके सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध विद्वान लक्ष्मी प्रसाद मिश्र अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करते है -

यह कचहरी, शीश-महली-रानियों के भवन प्यारे।

बोलते कुछ खंडहर थे- पंछियों के है सहारे।।[104]

ग्वालियर दुर्ग के ऊपर और नीचे भी इस्लामी संस्कृति से प्रभावित अनेक स्थल है। दुर्ग के ऊपर का सबसे प्रसिद्ध स्थल मान मंदिर है, इसका निर्माण राजा मानसिंह ने कराया तथा यह सन् 1485 से लेकर 1516 ई० के मध्य निर्मित हुआ। इसके अतिरिक्त दूसरा महत्वपूर्ण स्थल गूजरी महल है। तीसरा स्थल जहाँगीरी महल है, कुछ लोग इसे शाहजहाँनी भी कहते है। इसी जगह मोहम्मद गौंस का मकबरा भी है, जिसके बगल से भगवान शिव की रूद्र अवतार प्रतिमा है तथा इसके समीप विष्णु, सूर्य, महिषासुर मर्दनी की मूर्तियां है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह मकबरा मंदिर तोड़कर बनाया गया था। मोहम्मद गौंस के मकबरे के सन्निकट तानसेन की समाधि भी है तथा इसी की कुछ दूरी पर जामा मस्जिद भी है, जिसका निर्माण औरंगजेब के शासनकाल में सूबेदार मोहम्मद खाँ ने सन् 1663 में कराया था। सम्राट औरंगजेब की निन्दा करते हुये, लक्ष्मी प्रसाद मिश्र का कथन है कि यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि मुगल सम्राट औरंगजेब द्वारा अनेक मूर्तियों को तुड़वाया गया है, जो कि राष्ट्र के लिए शर्मनाक की बात है। आखिर इन सांस्कृतिक कला-कृतियों ने औरंगजेब का क्या बिगाड़ा था? जो उसने इनके

साथ अन्याय कर अपनी संकीर्ण मनोवृत्ति का परिचय दिया है।[105]

विदिशा में भी अनेक ऐतिहासिक स्थल उपलब्ध होते है, जिनका संबंध पूर्व मध्यकाल और मध्यकाल से है। इस स्थल में कालिया दह नामक एक पुराना ब्रह्मकुण्ड है, जहाँ एक पुराना सूर्य मन्दिर भी था, जिसका जीर्णोद्धार आज से 400 वर्ष पूर्व सुल्तान नसीरूद्दीन ने कराया था। अजयगढ़ और पन्ना में भी अनेक ऐतिहासिक स्थल मध्यकाल के है, इनमें सबसे प्रसिद्ध मन्दिर पन्ना का प्राणनाथ मंदिर है, जो प्रणामी सम्प्रदाय का तीर्थ स्थल और हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रतीक है।

बुन्देलखण्ड में अनेक सती स्मारक उपलब्ध होते है, इसमें से कुछ पूर्व मध्यकाल और मध्य काल के है। मुख्य रूप से सन् 1285 का एक सती स्मारक उपलब्ध होता है, जो वीरवर्मा चन्देल की पत्नी का है। इसी प्रकार एक सती स्मारक 1289 का अजयगढ़ में उपलब्ध हुआ। एक स्मारक दमोह में वि0स0 1365 का उपलब्ध हुआ है, यह स्मारक कल्हण की पत्नी का है। एक सती स्मारक गुना के पास चन्देरी में उपलब्ध हुआ है, जो नागदेव के पुत्र की पत्नी का है तथा यह वि0 स0 1350 का है। सतना जनपद में बाह्मन गॉव के सन्निकट वि0 स0 1404 का एक सती स्मारक उपलब्ध हुआ है, यह स्मारक सुराग चन्द्र की पुत्री रेखा का है।

चन्देरी में भी कुछ ऐतिहासिक स्थल पूर्वमध्यकाल और मध्यकाल के उपलब्ध होते है। यह स्थल ललितपुर से 24 मील दूर है। यहाँ के सुप्रसिद्ध स्थलों में चन्देरी का दुर्ग, फतेह दारून, खूनी दरवाजा, मेदनी राय का महल है, इसी के सन्निकट कुछ ऐतिहासिक स्थल चाचौड़ा में भी उपलब्ध होते है। इस क्षेत्र में 13वीं शताब्दी का एक दुर्ग है। कहते है इस दुर्ग में करोड़ों की सम्पत्ति छुपी है –

चाचौड़े का ताल – जिसमें चीरा गड़ा है लाल।

जिसमें अरब खरब का माल- जाने इस पार या उस पार।।[106]

इस स्थल में काला महल, जो काले पत्थरों से निर्मित है, दर्शनीय स्थल है। इस महल के नीचे एक मूदड़ा भी है। महल के समीप कचेहरी महल भी है, जहाँ राजा बैठकर न्याय करता था। इसी के समीप मोती महल भी है, जो रानियों के रहने का स्थल था। इसके प्रांगण में एक कुंड भी है, जिसमें प्राचीन काल में घी भरा जाता था तथा यहीं पर थोड़ी दूर पर गोसाई महन्त भीमगिरि का चबूतरा भी है। इस चबूतरे के सन्दर्भ में यह कहावत प्रसिद्ध है-

चाचौड़ा – चम्पावती किला बना है भारी।

भीमगिरि जी की बड़ी सवारी मोरहली की छाया न्यारी।।[107]

इसी के बगल में एक अन्धा कुआँ भी है, जिसकी गहराई का अंदाज नहीं लगाया जा सकता। भोपाल के सन्निकट रायसेन में एक विशाल दुर्ग था, जिसके ऊपर 84 तालाब और अनेक आवासीय बस्तियाँ थी। अबुल फजल के अनुसार-रायसेन दुर्ग भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध दुर्गों में से एक है। लगभग 16वीं शताब्दी तक यह राजपूतों के अधिकार में था। उसके बाद यह शेरशाह के आधिपत्य में आया। उसकी मृत्यु के पश्चात यह मुगलों के अधिकार में आया।[108] बुन्देलखण्ड में सैकड़ों ऐसे स्थल

है, जहाँ ऐसे स्मृति चिन्ह ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में उपलब्ध होते है, जिनका संबंध पूर्व मध्यकाल और मध्यकाल से है तथा जो पूरी तरह से इस्लामी संस्कृति से प्रभावित है। इनमे पाथर कछार, फतेहगंज, शेरपुर, सिहोड़ा, जैतपुर, ओरछा, दतिया आदि के ऐतिहासिक स्थल है। ये सारे स्थल इस बात के प्रतीक है, कि इस्लामी संस्कृति जो अरब और मंगोलिया से इस परिक्षेत्र में आयी थी। उसने यहाँ के मूल निवासियों को प्रभावित किया, जिनसे अनेक प्रकार के परिवर्तन यहाँ की सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था में हुये, जो आज भी दृष्टिगोचर होते हैं तथा उपरोक्त स्थल उसके ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में यहाँ मौजूद है।

इस्लामी संस्कृति की धार्मिक पहचान -

बुन्देलखण्ड में रहने वाले मुसलमानों की पृथक पहचान धर्म चिन्ह और धर्माचरण के आधार पर आसानी से की जा सकती है। इनका रहन-सहन और धर्माचरण हिन्दुओं से पृथक दिखाई देता है। ये पहचान निम्न प्रकार से होती है -

1. धर्म चिन्ह -

यहाँ के मुसलमान लोग हरे रंग के ध्वज को धर्मचिन्ह के रूप में प्रयुक्त करते है। इस ध्वज में चाँद और तारे का निशान बना होता है, ये चाँद द्वितीया का चाँद होता है। इसके अतिरिक्त चाँद और तारा इनका पृथक धार्मिक चिन्ह है, जो प्रत्येक मस्जिद के ऊपर गुम्बद में दिखलाई देता है तथा यही चिन्ह दरगाहों और मकबरों में भी अंकित रहता है। सुप्रसिद्ध इस्लामी विद्वान हाजी साबिर नियाजी का मत है चाँद तारा, हमारा धार्मिक निशान है और हम इसे बहुत पवित्र मानते हैं तथा रमजान के महीने में द्वितीया के चाँद को देखकर ही ईद मनाते है। यदि यह चाँद दिखलाई नहीं देता तो ईद उस दिन मनाते है जिस दिन चाँद दिखलाई देता है। इसी प्रकार उन्होंने हरे रंग को इस्लाम धर्म का प्रतीक रंग माना है।[109] इतिहासकार राधाकृष्ण बुन्देली के अनुसार - इनके ध्वज का हरा रंग प्रकृति उपासना का प्रतीक है, क्योंकि कुर्आन शरीफ के अनुसार खुदा की कोई आकृति नहीं है और उसे केवल उसकी निशानियों से पहचाना जा सकता है, क्योंकि प्रकृति का रंग हरा है, इसलिए उनका ध्वज प्रकृति उपासना का प्रतीक है। जिस चन्द्रमा को यह इस्लाम का प्रतीक चिन्ह मानते है, वह हिन्दू धर्म के शैव उपासकों का भी प्रतीक चिन्ह है, जो भगवान शिव के माथे में विराजता है। जिस प्रकार इस्लाम धर्म के लोग खुदा को अपने आप उत्पन्न मानते है, उसी प्रकार स्वयंभू शिव को भी अपने आप उत्पन्न माना जाता है तथा उसकी उपासना सृष्टि के आदि देव सृजक और संहारक के रूप में की जाती है। शैव धर्म और इस्लाम के सिद्धान्तों में काफी कुछ समानता प्रतीत होती है, किन्तु दोनों धर्म अलग-2 स्थलों में विकसित हुए, इसलिए उनकी धार्मिक पहचान अलग-2 हो गयी।[110]

वेश-भूषा एवं भाषा - बुन्देलखण्ड में मुसलमानों की पहचान वेश-भूषा और भाषा के आधार पर भी की जाती है। यहाँ निवास करने वाले मुसलमान पुरूष कुर्ता-पैजामा, शेरवानी और तहमत पहनते है तथा सिर पे एक विशेष प्रकार की टोपी या साफा बाँधते हैं तथा मुख में एक दाढ़ी रखते

है। यह दाढ़ी एक विशेष प्रकार की होती है, जो हिन्दू साधू सन्तों से अलग दिखाई देती है। इसी प्रकार मुसलमान औरते गरारा कुर्ता, सलवार शूट, धारण करती है और जब घर से बाहर निकलती है, तो बुर्का पहनकर निकलती है। मुसलमानों की भाषा भी हिन्दुओं की भाषा से अलग पहचान रखती है, चूँकि इनके समस्त धर्मग्रन्थ अरबी भाषा में है, इसलिये अरबी इनके धर्म की भाषा है। प्रत्येक मुसलमान पवित्र धर्म ग्रंथ कुर्आन शरीफ का अध्ययन करने के लिए अरबी भाषा का अध्ययन करते है। यहाँ के लोगों की भाषा समझने के लिए उन्होंने एक नयी भाषा विकसित की है, जिसमें वर्णमाला अरबी की प्रयुक्त होती है और शब्द हिन्दी के होते है, इसे लश्करी भाषा और उर्दू भाषा के नाम से पुकारा जाता है। इनका लेखन कार्य और पत्र व्यवहार उर्दू भाषा में ही होता है। यहाँ के जो मुसलमान ग्रामीण अंचल में निवास करते है, वे अपने सम्पर्कियों से आंचलिक भाषा बुन्देलखण्डी बोलते है, किन्तु उसमें भी उर्दू, फारसी के शब्दों का बाहुल्य रहता है। ये बुजुर्ग व्यक्तियों के नाम के पहले हजरत, जनाब, मोहर्तमा, शब्द का प्रयोग करते है और बाद में परिवारिक जनों के लिए जान शब्द जोड़ते है। इसके अतिरिक्त इनके घर, रहन-सहन के तरीके, खाना-पीना और उपयोग में लाये जाने वाले बर्तन हिन्दुओं से अलग होते है। बैठक की साज सज्जा भी हिन्दुओं से अलग होती है। रहीस मुसलमानों के यहाँ हरम और जनानखाने विशेष पर्दे पड़े होते हैं और बैठक में हुक्का, पानदान और पीकदान जरूर होता है। इन लोगों का बातचीत करने का तरीका हिन्दुओं से बहुत अच्छा होता है। ये लोग खुशामद पसन्द तथा मेहमानों की इज्जत बहुत अधिक करते है तथा घर की अन्दरूनी हालात को जाहिर नहीं होने देते। इनमें मिल बांट के खाने की आदत और भाई चारे की भावना बहुत अधिक होती है। ये लोग छुआ-छूत और जात-पात पर विश्वास नहीं करते। ये केवल खुदा, पैगम्बर हजरत मोहम्मद साहब और पवित्र कुर्आन शरीफ पर विश्वास करते है। मक्का मदीने पर अपार श्रद्धा रखते है। जब एक दूसरे से मिलते है, तो वे अदाब- आदावर्ज, सलामवालेकुम और सलाम आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। जब कोई नया काम करते हैं, तो उसमें विसमिल्लाह शब्द का प्रयोग करते है। इनकी संस्कार व्यवस्था हिन्दुओं से पृथक है।

आर्य कन्या इण्टर कालेज की प्रधानाचार्या श्रीमती शमीम बानो ने वेश-भूषा, भाषा और रहन-सहन के स्तर में विशेष प्रकाश डालते हुए कहा, कि इस्लाम धर्म अरबी संस्कृति का अनुसरण करता है। मुसलमान लोग वेश भूषा और भाषा के माध्यम से अपनी पृथक पहचान बनाये रखना चाहते है, इससे उनकी संस्कृति सदैव सुरक्षित बनी रहेगी। स्त्रियों की वेश भूषा के संबंध में उनका विचार था कि जवान औरतों को बदनजरी से न देखा जाये, इसलिए उनके लिए पर्दे का इन्तजाम किया गया। भोजन और रहन-सहन के स्तर के बारे में उनका मत था, कि इस सन्दर्भ में हम लोग अपनी पारिवारिक परम्पराओं का अनुपालन करते है तथा पृथक पहचान बनाये रखकर इस्लाम धर्म का अनुसरण करते हैं।[111]

श्री दीपक दुबे, प्रबन्धक, सहयोग संस्थान, बाँदा, एक समाजसेवी एवं सर्वधर्म सम्भाव के अनुसरण कर्ता हैं। इनके मतानुसार वेश-भूषा, भाषा और रहन सहन के पृथक तरीके के कारण जहाँ

इनकी अलग पहचान बनती है, वही इससे एक बड़ा नुकसान भी होता है। जो लोग मुसलमानों के प्रति अच्छा दृष्टिकोण नहीं रखते, इनकी पृथक पहचान करके इनसे नफरत करते है। कभी-कभी छोटी सी बात को लेकर हिन्दू मुस्लिम धर्म के लोगो में साम्प्रदायिक तनाव पैदा हो जाता है, जिससे सर्वत्र हिंसा और अराजकता फैल जाती है, जो कि मानवता की दृष्टि से अत्यन्त निन्दनीय है। धर्म, परमात्मा के प्रति आस्था और मानवता के प्रति किये गये कर्तव्यों का लेखा-जोखा है। इसकी वेश-भूषा और भाषा से कोई पहचान नहीं होना चाहिए। समस्त मानवों को मानवता के धर्म का ही अनुयायी होना चाहिए और सभी धर्मो का समादर करना चाहिए।[112]

शोध छात्रा का मानना है, कि पृथक संस्कृति के प्रतीक के रूप में पृथक धर्मावलम्बियों को अपनी पहचान, भाषा, वेश-भूषा और रहन-सहन के स्तर को बनाये रखना चाहिए, ताकि सामान्य व्यक्ति को उनकी संस्कृति की विशेषताओं को आसानी से जानने का अवसर मिले। यदि बुन्देलखण्ड में मुसलमानों की पृथक पहचान वेश-भूषा, भाषा के आधार पर न होती, तो उनकी सांस्कृतिक विशेषताओं और उसके प्रभाव का मूल्यांकन आसानी से नहीं किया जा सकता।

धर्माचरण से पहचान – मुसलमान मस्जिद अथवा किसी खुले स्थान में पांच वक्त की नवाज़ अदा करते हैं तथा मस्जिदों में प्रातः काल अजान देते है। इन्हें अपने घरों में पवित्र कुर्आन शरीफ का पाठ करते भी देखा जा सकता है तथा ये लोग अपने तीज-त्योहारों, ईद, बकरीद, बारावफात, शबेरात तथा मोहर्रम आदि में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेते है। धर्म के नाम पर ज़कात देते है और मक्का मदीने की हज करने जाते है। ये लोग दरगाहों में चादर चढ़ाते है, फकीरों और सूफी सन्तों पर आस्था रखते है तथा धार्मिक आयोजनों, कव्वाली तथा मीलाद में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेते है। इनके विवाह संस्कार हिन्दुओं की भॉति नहीं होते, बल्कि काजी मैहर की रकम के आधार पर लड़के लड़की की स्वीकृत के बाद निकाह पढ़वाता है। इनके यहाँ मृत्यु संस्कार हिन्दुओं से पूरी तरह पृथक हैं। इनके यहाँ मृत शरीर को जमीन में दफनाया जाता है, जहाँ बाद में उसकी मजार बनाई जाती है। इनके यहाँ औरतों को तलाक देने का रिवाज है। इनके यहाँ विधवाओं को विवाह करने की इजाजत है। कहीं-2 पर इनकी औरतें हिन्दू औरतों की भांति सुहाग के प्रतीक चिन्ह धारण करती हैं। इनके यहाँ भी हिन्दुओं की भाँति नवजात शिशु की पसुनी की जाती है, जिसे ख्वानी-बिसमिल्लाह कहते है।

इस्लाम धर्ममर्मज्ञ तथा इस्लाम धर्म पर विशेष ज्ञान रखने वाले श्री आसिफ अली ने बतलाया कि बदलते हुये परिवेश में यह आवश्यक नहीं, कि इस्लाम धर्म पर आस्था रखने वाला व्यक्ति वेश भूषा और भाषा के आधार पर अपनी पहचान बनाये रखे। उसको धर्माचरण के अनुसार पहचानने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। अनेक लोगों ने अपना धर्मान्तरण किया, किन्तु धर्म के निर्धारित मानदण्डों के आधार पर वेश-भूषा और भाषा के आधार पर परिवर्तन नहीं किया, ऐसे लोगों की पहचान करना अत्यन्त कठिन है। उनके मतानुसार सच्चा मुसलमान वही है, जो इस्लाम धर्म के अनुसार आचरण करता है। और यही उसकी पहचान है।[113] बुन्देलखण्ड के सुप्रसिद्ध कवि श्री मइयादीन साहू बुन्देला ने

कहा कि धर्माचरण के माध्यम से मुसलमानों की पहचान करना वर्तमान समय में अत्यन्त कठिन कार्य हो गया है, क्योंकि अधिकांश हिन्दू, बुन्देलखण्ड में हुये सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण, मुसलमानों के साथ सद्भावना रखता है और उनके तीज त्योहारों में पूर्ण सहयोग देता है।

शोध छात्रा का यह दृष्टिकोण है कि लगभग सभी धर्मों के मूल सिद्धान्त एक जैसे प्रतीत होते है, केवल इबादत के तरीकों में फर्क दिखलाई देता है, इसलिए धर्माचरण के माध्यम से इस्लाम धर्म पर आस्था रखने वालों की पहचान तो की जा सकती है, किन्तु यह जरूरी नहीं कि वे मुसलमान ही हो। निकट भविष्य में ऐसा समय आता हुआ दिखाई दे रहा है, जिसमें सभी व्यक्तियों की धार्मिक पहचान एक हो जायेगी और विश्व में सभी धर्मों के धार्मिक नियम एक जैसे हो जायेंगे।

बुन्देलखण्ड के इस्लाम धर्म स्मारक -

बुन्देलखण्ड के प्रत्येक जनपद और तहसील में ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ मुसलमान न रहते हो और उनके धार्मिक स्मारक वहाँ न हो। 11वीं शताब्दी के बाद इस परिक्षेत्र में जहॉ भी मुसलमान रहे, उन्होंने अपने धार्मिक कृत्यों को पूरा करने के लिए अपने धार्मिक स्मारक बनवायें। मुख्य रूप से मस्जिद, दरगाह और मकबरे इनके धार्मिक स्थल है। जहाँ सामूहिक नवाज अदा की जाती है, उन स्थलों को ईदगाह कहते है और जहाँ जुमे की नवाज अदा की जाती है, उन्हें जामा मस्जिद कहते है। इसके अतिरिक्त मोहर्रम के पर्व में जहाँ ताजिये रखे जाते है, उन्हें इमामबाड़ा कहते है। बुन्देलखण्ड में अनेक क्षेत्रों में इमामबाड़े उपलब्ध होते है। इनके धार्मिक स्थलों का विवरण इस प्रकार है -

1. मस्जिद - कुर्आन शरीफ के अध्ययन से यह पता लगता है, कि मोहम्मद साहब के पहले भी मक्का मदीने के पवित्र तीर्थ-स्थलों में मस्जिदें थी, किन्तु उन मस्जिदों में तद्युगीन निवासियों के आराध्य देवों की मूर्तियाँ थी, जिनकी पूजा व्यवस्था तद्युगीन पुजारियों के हाथ में थी। हजरत मोहम्मद साहब ने मूर्तियों का विरोध किया और एकेश्वरवाद पर बल दिया। उसके बाद से इन स्थलों से मूर्तियां हटा दी गयी। इन्होंने अपनी मस्जिदें बिना मूर्तियों के बनवाई तथा उनका पिछवाड़ा मक्का मदीने की दिशा की ओर रखा गया। इन मस्जिदों में प्रातःकाल की अजान से लेकर पॉच वक्त की नवाजे अदा की जाती है तथा जुमें, ईद, बकरीद की नवाज बड़ी श्रृद्धा भक्ति के साथ इन मस्जिदों में अदा की जाती है। इनकी निर्माण शैली पर विचार किया जाये, तो ये मूर्ति विहीन मन्दिरों जैसी प्रतीत होती है और उनके ऊपरी गुम्बद भी मन्दिरों जैसे होते है, सिर्फ ऊपरी भाग में कलश- त्रिशूल तथा श्री चिन्ह के स्थान पर अर्ध चन्द्र लगा होता है। मस्जिद के चारों ओर ऊँची मीनारें होती है। मुसलमान लोग मस्जिद को सबसे पवित्र स्थान मानते है, यहाँ वजू अथवा स्नान करने के बाद ही नवाज पढ़ने आते है। मस्जिद के प्रबन्धक को इमाम कहते है, जिनका खर्च जकात के द्वारा चलाया जाता है।

श्री एम० एस० किदवई जिला प्रबन्धक भारतीय खाद्य निगम चमनगंज कानपुर के निवासी एवं इस्लाम धर्म पर पूर्ण आस्था रखते है। इनका लगाव बुन्देलखण्ड से बहुत अधिक है तथा इन्होनें ऐतिहासिक महत्व की अनेक मस्जिदों को देखा है। इनका कथन है कि इन्हें साफ - सुथरा रखना

चाहिए तथा नापाक जानवरों को इसमें घुसने नहीं देना चाहिए। इन स्थलों में पढ़ी गयी नवाज को खुदा कबूल करता है और मांगी गयी दुआओं को खुदा और उसके फरिश्ते पूरा करते है। शैतान मस्जिदों से बहुत डरता है। यह वह स्थान है, जहाँ हर मुसलमान को नसीहत मिलती है, कि वह खुदा पर यकीन करे, यतीमों पर रहम करे और आम आदमी पर भाई चारे की भावना रखे। इस्लाम किसी को नफरत से देखना कबूल नहीं करता। मस्जिदों की निर्माण शैली के सम्बन्ध में उनका यह मानना है, कि मस्जिदें अरब शैली पर निर्मित की जाती है किन्तु उनके बनाने वाले स्थानीय कारीगर और मजदूर होते है, इसलिए उन्हें मिश्रित वास्तुशिल्प का नमूना मानना चाहिए और पुरानी मस्जिदों की हिफाजत करनी चाहिए।[114]

श्रीमती शिववती पाण्डेय एक हिन्दू धर्मावलम्बी महिला है। उनका मस्जिदों के सन्दर्भ में यह मानना है, कि बुन्देलखण्ड की अधिकांश प्राचीन मस्जिदें प्राचीन हिन्दू मंदिरों को तोड़कर शक्ति का सहारा लेकर बनवाई गई थी, इसलिए हिन्दुओं के लिए मस्जिद वेदना का प्रतीक है, किन्तु पूजा स्थल के रूप में इसका विरोध इसलिए नहीं करती, क्योकि मुसलमान भी मस्जिदों में जाकर वहीं काम करता है, जो काम हिन्दू मन्दिरों में जाकर करता है। सत्य यह है कि मुसलमानों के खुदा और हिन्दुओं के भगवान में कोई अन्तर नहीं है, केवल इबादत के तरीके अलग है। उन्होंने धार्मिक सद्‌भाव से जुड़ी एक कविता के कुछ अंश सुनाये –

मुस्लिम कहते है नवाज जिसे हिन्दू के पूजा है वही,
मस्जिद है वही, मन्दिर है वही,
काबा है वही, काशी है वही,
अल्ला है, वही राम भी है वही।[115]

शोध छात्रा का मानना है कि बुन्देलखण्ड में उपलब्ध मस्जिदें, जिनका निर्माण अति प्राचीन काल में हुआ था, वे हमारी ऐतिहासिक धरोहरें है। उनका हमें सम्मान करना चाहिए तथा उन्हें क्षति ग्रस्त होने से बचाना चाहिए। इन प्राचीन स्थलों को लेकर साम्प्रदायिक तनाव उत्पन्न करना ठीक नहीं है। पूर्वजों द्वारा की गयी गलतियों का प्रतिशोध वर्तमान युग में लेने का कोई औचित्य नहीं है।

ईदगाह– ईदगाह मस्जिद की ही अनुकृति होती है, किन्तु ईदगाह का मैदान मस्जिद से कई गुना बड़ा होता है। इस स्थल में दैनिक नवाज नहीं पढ़ी जाती, किन्तु ईद और बकरीईद के अवसर पर उपस्थित भीड़ को इसी स्थान पर नवाज पढ़ाई जाती है। इस अवसर पर नवाज पढ़ाने का काम इस्लाम धर्म के मर्मज्ञ विद्वान करते है तथा नवाज पढ़ने के बाद इसी स्थान पर लोग गले मिलकर ईद और बकरीद की मुबारकबाद देते है तथा इसी स्थल में उपस्थित गरीब असहायों को लोग जकात अथवा दान देते है।

डा० सैय्यद कमरूल हसन, पं० जवाहर लाल नेहरू डिग्री कालेज कालेज में रसायन शास्त्र के विभागाध्यक्ष है, इसके अतिरिक्त वे एक सच्चे मुसलमान भी है। ईदगाह के सन्दर्भ में उनका

यह मानना है, कि वह स्थल मस्जिद से कई गुना बड़ा होता है। यह जगह इन्सानी मोहब्बत की निशानी है और हम यहाँ इकट्ठे होकर कुर्आन शरीफ के निर्देशानुसार इन्सानियत और भाईचारे की भावना को आगे बढ़ाते रहे। क्योंकि खुदा की निगाह में सभी इन्सान एक है।[116]

डा० महेन्द्र प्रसाद अवस्थी प्रधानाचार्य राजकुमार इन्टर कालेज नरैनी, हिन्दू धर्म के एक सुप्रसिद्ध आचार्य है। उनका मानना है कि ईदगाह ठीक उसी प्रकार का धार्मिक स्थल है, जिस प्रकार हम लोग दशहरे के अवसर पर एक स्थान में एकत्र होकर बुराइयों के प्रतीक रावण का वध भगवान राम के द्वारा कराते है और उसके पश्चात खुशियाँ मनाते है। हमारा दशहरा भी ईद की भांति प्रेम और सद्भाव बढ़ाने वाला त्योहार है और उनके स्थल भी ईदगाह की भांति ही हर शहर में एक स्थान में निश्चित है। उन्होंने मुसलमानों की आलोचना करते हुये कहा कि यदि मुसलमान गायों पर श्रृद्धा करने लगे और मांसाहार छोड़ दे, तो हिन्दुओं और मुसलमानों में कोई फर्क नहीं रह जायेगा।[117]

बुन्देलखण्ड के अनेक स्थलों में निर्मित प्राचीन ईदगाहों को शोध छात्रा ने मौके पर जाकर देखा है। उसे सर्वाधिक प्राचीन ईदगाह 700 वर्ष पुरानी उपलब्ध हुयी है। वास्तु शिल्प की दृष्टि से यह स्थल हमारी ऐतिहासिक धरोहर है और इस्लाम में वर्णित अध्यात्म की दृष्टि से ये उसके प्रतीक और संवर्धक भी है। जहाँ इस्लाम शक्ति के बलबूते पर प्रचारित प्रसारित हुआ, वही उसकी सुदृढ़ता प्रेम और सद्भाव से हुयी, ईदगाह इसी के प्रतीक है।

दरगाह – ये एक प्रकार की मजार होती है, जहाँ सूफी सन्त मृत्यु के उपरान्त दफनाये जाते है। भारतवर्ष और बुन्देलखण्ड में जिस स्थल को सूफी सन्तों ने अपना कर्म स्थल बनाया है तथा जहाँ उनका इन्तकाल हुआ, वहाँ उनकी मजारें और मकबरे बना दिये गये। मुसलमान इन्हें दरगाहों के नाम से सम्बोधित करते है। लोग यहाँ आकर मनौती मानते है। मनौती पूरी होने पर उस स्थल पर फूलों या कपड़े की चादर चढ़ाते हैं तथा दरगाह में अगरबत्ती और लुहान सुलगाते है। इन स्थलों में समय-समय पर उर्स, नाटिया कलाम और कव्वाली के आयोजन होते रहते है। बुन्देलखण्ड में ऐसी मजारें अनेक स्थलों में उपलब्ध होती है।

श्रीमती अनीसा बेगम बाँदा की एक प्रतिष्ठित महिला है, उनकी श्रृद्धा दरगाहों और मजारों पर बहुत अधिक है। वे हमेशा विशिष्ट तीज-त्योहारों में इन दरगाहों में चादर और रेवड़ी चढ़ाने जाती है। उनका मानना है कि उनके वालिद दीवान शफीकुर रहमान एक बार भयंकर बीमारी से पीड़ित हुये थे। उन्होंने जामा मस्जिद के समीप गोल कोठी के बाबा से उनके ठीक होने की दुआयें मांगी थी। बाबा की कृपा से उनके वालिद ठीक हो गये, उसके बाद उन्होंने वहाँ चादर चढ़ाई और अब वे प्रत्येक गुरूवार और शुक्रवार को वहाँ जाती है तथा प्रसाद आदि चढ़ाती है।[118]

श्रीमती गिरजा अवस्थी का कथन है कि मुसलमानो और हिन्दूओं के धार्मिक कृत्य एक जैसे प्रतीत होते है। जिस प्रकार हिन्दू मन्दिरों में जाकर प्रसाद चढ़ाते है, उसी प्रकार मुसलमान दरगाहों और मजारों में जाकर चादर व रेवड़ी चढ़ाते है। अनेक हिन्दू भी सूफी सन्तों से प्रेरित होकर उनकी मजारों पर जाते है।[119]

महान सूफी सन्तों और शहीदों पर उनके व्यक्तित्व के आधार पर श्रृद्धा करना कोई बुरी बात नहीं। इस उद्देश्य से यदि चादर चढ़ाई गयी है और उनका सम्मान किया गया है, तो यह उत्तम बात है, किन्तु अन्धविश्वास से प्रेरित होकर और किसी प्रलोभन के वशीभूत होकर मनोकामना की पूर्ति के लिए ऐसा करना उचित नहीं प्रतीत होता।

इमामबाड़ा – हजरत मोहम्मद साहब की मृत्यु की पश्चात यासीन के शासन काल में हजरत मोहम्मद साहब के नवासे इमाम हुसैन के साथ, जो जुल्म ढाये गये थे, उन्हीं की याद में इमामबाड़ों का निर्माण बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में हुआ। मोर्हरम के अवसर पर इन स्थानों में उन्हें श्रृद्धान्जलि देने के लिए धर्म के प्रतीक चिन्ह ताजियों को रखा जाता है। सिया और सुन्नी मुसलमान अलग-2 तरीके से इस त्योहार को मनाते है तथा उनके इमामबाड़े भी अलग-अलग होते हैं। सुन्नी मुसलमान हसन हुसैन को मानते हैं, जबकि सिया लोग या अली अकबर को मानते है। मोर्हरम की दसवीं से इनका हिजरी संवत भी प्रारम्भ होता है। इस्लाम धर्म के लिये की गयी कुर्बानी के रूप में इमामबाड़ों को स्थापित किया जाता है। अरबी में ताजियत का अर्थ होता है, मरहूमों के लिये श्रद्धान्जलि अर्पित करना। इस अवसर पर जो ताजिये कागज के मस्जिद की आकृति के बनते है, वे इसी के प्रतीक है।

श्री वजाहत अली अलीगंज बाँदा के निवासी है तथा इनके निवास स्थान के नजदीक रामा का इमामबाड़ा है, जहाँ ताजिये और ढाले रखी जाती है। यहीं पर मोर्हरम की नावीं को अलाव भी कूदा जाता है। उनका यह मानना है कि जैसे महाभारत का धर्म युद्ध था अथवा राम रावण का युद्ध एक धर्म युद्ध था, इसमें अनेक बहादुरों ने अपनी शहादत और कुर्बानी दी थी। उसी प्रकार मुर्हरम भी एक महाभारत की तरह धर्मयुद्ध था, जिसमें हजरत मोहम्मद साहब के नवासों ने अपनी कुर्बानी दी थी। जो इमामबाड़े बनाये जाते हैं, उनमें इस धर्म युद्ध की याद को ताजा बनाये रखने के लिये प्रतिवर्ष ताजिये रखे जाते है और दस दिन तक मातम मनाया जाता है।

श्री सत्यनारायण द्विवेदी बॉदा के प्रतिष्ठित वकील है और मानव धर्म पर पूरा विश्वास रखते है। उनका मानना है कि मानवता की रक्षा करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। यदि हजरत मोहम्मद साहब के नवासों ने मजहब के नाम पर कुर्बानी दी है, तो वह एक अच्छी बात है। हमारे यहाँ भगवान का अवतार उस समय होता है, जब पृथ्वी पर अनहित करने वाले व्यक्तियों की वृद्धि हो जाती है। उनका विनाश करने के लिये परमात्मा अवतार धारण करते है, उस समय परमात्मा को युद्ध करना पड़ता है, जिसमें अनेक लोग धर्म की रक्षा के लिए कुर्बान हो जाते है। यथा –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। 7।। अध्याय – 4 श्रीमदभागवत गीता।

ऐसे व्यक्तियों की स्मृति बनाये रखना बहुत जरूरी है। यदि इमामबाड़ों में ताजियों की स्थापना इस उद्देश्य से की जाती है, तो कोई गलत बात नहीं है। हिन्दुओं को भी मुसलमान भाइयों के दुख में शरीक होना चाहिए और उनके प्रति हमदर्दी दिखाना चाहिए।[120]

<u>मजार अथवा मकबरे</u> – इस विश्व में करोड़ों व्यक्ति रोज मरते हैं और पैदा होते हैं, किन्तु सामान्य जनों को कोई याद नहीं रखता। संसार में कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते है, जो मानवता के लिये विशेष कार्य करते है और संसार के लोग उनके कृतित्व और व्यक्तित्व को सदैव अपनी स्मृति में बनाये रखना चाहते है। यदि ऐसे व्यक्तियों का सम्बन्ध इस्लाम धर्म से है, तो उनके मरने के पश्चात बतौर शहादत जहाँ वे दफनाये जाते है, वहाँ मकबरे बनाये जाते है। कुछ लोग इन्हें मजार भी कहते है। समय-समय पर इन मजारों पर व्यक्ति एकत्र होते है और उनके प्रति चादर चढ़ाकर, फूल चढ़ाकर या शबेरात के दिन दीपक जलाकर अपनी श्रृद्धान्जलि अर्पित करते है। बुन्देलखण्ड के अनेक स्थलों पर ऐसे शहीदों की मजारे है। इन मजारों के संबंध में किसी शायर ने कहा है –

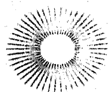
शहीदों की मजारों पर लगेगें हर वर्ष मेले,
वतन पे मरने वालों का यही बांकी निशा होगा।

इस प्रकार हम देखते है कि मजार उन व्यक्तियों की याददाश्त है, जिन्होंने कौम और वतन के लिये किसी भी रूप में कुछ किया। ये लोग बादशाह, सामंत, जमींदार, जागीरदार, कलाकार, नृतक और समाजसेवी भी थे।

मुस्तान हुसैन बनारसी बेगम के हाता परिसर में रहते है। इन्होंने कुर्आन शरीफ का अध यन अति विस्तार से किया जाता है। उनका यह मानना है, जो व्यक्ति नेकी करने के बाद दफन किया जाता है, तो उसके परिवार वाले तथा उसके चाहने वाले उसकी याद में मजार अथवा मकबरे बनाते है। खुदा कयामत के दिन उन्हें नेकी और बदी के हिसाब से दोजक और जन्नत देता है। खुदा अपने फरिश्तों से ऐसे लोगों का हिसाब पूछता है और उन्हें जन्नत बख्सता है। बुन्देलखण्ड में तानसेन का मकबरा, गुलाम अली गौंस का मकबरा, पाथर कछार में वेश्या की मजार और कालिंजर दुर्ग के ऊपर बनी मजारे इस बात की प्रतीक है, कि इन लोगों ने नेक काम किये थे। मुझे पूरा यकीन है कि इन मजारों और मकबरों में दफनाये गये सभी लोग कयामत के बाद जन्नत के हकदार होगे।[121]

मृत्यु उपरान्त स्मृतियॉ तो हिन्दू धर्म में भी निर्मित होती है, किन्तु फर्क केवल इतना है कि मुसलमानों के मकबरों और मजारों की तरह उस स्थान पर कोई भी व्यक्ति दफनाया या गाड़ा नहीं जाता। हिन्दू स्मारक केवल प्रतीक के रूप में होते है। केवल प्रणामी सम्प्रदाय, सतनामी और कबीरपंथ में यह छूट थी कि वह अपना अंतिम संस्कार शव को दफनाकर अथवा दाह कर्म करके कर सकते है इसलिए कहीं-2 पर कबीरपंथियों और प्रणामियों की मजारे भी बुन्देलखण्ड के क्षेत्रों में उपलब्ध होती है।

इस प्रकार हम देखते है कि मस्जिद, ईदगाह, दरगाह, इमामबाड़े, मजार अथवा मकबरे इस्लाम धर्म से सबंधित है।



सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. राधेश्याम - सल्तनत कालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास सं0 1987 प्रका0 इलाहाबाद पृ0 46-47
2. वही, पृ0 47.
3. सतीश चन्द्र, मध्यकालीन भारत सं0 1998 प्रका0 दिल्ली पृ0 157.
4. केशव चन्द्र मिश्र - चन्देल और उनका राजत्व काल, सं0 1974 प्रका0 बनारस पृ0 88.
5. वही- पृ0 93.
6. वही- पृ0 95.
7. वही- पृ0 96.
8. वही- पृ0 97.
9. वही- पृ0 125.
10. हदीस, पृ0 32.
11. केशवचन्द्र मिश्र, चन्देल और उनका राजत्व काल सं0 1974 प्रका0 बनारस पृ0 88
12. वही- पृ0 204.
13. प्रबोध चन्द्रोदय पृ0 71.
14. वही- पृ0 71.
15. के0 सी0 मिश्र - चन्देल और उनका राजत्व काल सं0 1974 प्रका0 बनारस पृ0 206.
16. वही- पृ0 198.
17. वासुदेव उपाध्याय - चन्देलवंशीय राजा धंग का खजुराहो लेख- प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन सं0 1961 प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास पृ0 183.
18. वही- 1 पृ0 16-17.
19. अल्तेकर, अ0स0 राष्ट्रकूट एण्ड देयर टाइम्स-पृ0 334.
20. एपिग्राफिका इण्डिका- भाग-1 पृ0 121.
21. वैद्य वी.सी. - हिन्दी ऑफ मिड्वल इण्डिया भाग-2 पृ0 178.
22. ब्रिग्स द्वारा अनुवादित-तारीख-ए-फारिश्ता भाग- 1 पृ0 17-18.
23. के0सी0 मिश्र - चन्देल और उनका राजत्व काल सं0 1974 प्रका0 बनारस पृ0 94.
24. इलियट डाउसन भाग-2 पृ0 231.
25. के0सी0 मिश्र -चन्देल और उनका राजत्व काल सं0 1974 प्रका0 बनारस पृ0 210.
26. वही पृ0-125.
27. आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति सं0 1973 प्रका0आगरा पृ0 246.
28. कविमणि पं0 कृष्णदास- बुन्देलखण्ड के कवि, सं02017 प्रका0सहित्य सम्मेलन पन्ना पृ0-45

29. वही पृ0-52.

30. वही पृ0-75.

31. वही पृ0-92-93.

32. राधाकृष्ण बुन्देली - बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन सं0 1989 प्रका0 बांदा, पृ0 100.

33. सर सुन्दर लाल- भारत में अंग्रेजी राज सं0 1960 सं0 सू0प्र0मन्त्रालय भारत सरकार पृ0-63-63.

34. वही पृ0-64.

35. वही पृ0-66.

36. खुलासा-श्लोक सं0 10,11,12,13, पृ0 100.

37. राममूर्ति त्रिपाठी सूफी परम्परा. और महामति (लेख) जगनी (पत्रिका)

38. खुलासा-श्लोक सं0 13 पृ0 96-97

39. Dr. Raj Kumar Arora -The Doctrtne of Grace In the Kulsam swaroop (JAGNI-MGZINE) Edi. 1990 P. 46

40. डा0 रामदास पाण्डेय - मल्लांव तारतम वाणी में अस्तित्वात्मक संचेतना (लेख) जागनी (पत्रिका)1990 पृ0 65.

41. राधाकृष्ण बुन्देली - मस्तानी का वंश और बांदा के नवाब (अप्रकाशित) पृ0-100.

42. कबीरदास-बीजक (सबद).

43. ए.के. मित्तल - भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास सं0 1974प्रका0आगरा पृ0 52.

44. V.A. Smith- The oxford history of India p.p. 32-33.

45. नन्द मॉर्य युगीन भारत पृ0 92

46. The Classical Age- P. 166.

47. राधेश्याम - सल्तकालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास सं0 1987 प्रका0 बोहरा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स पृ0 183.

48. के0 एस0 लाल- ग्रोथ ऑफ द मुस्लिम पापुलेशन इन मिड्वल इण्डिया सं0 1993 पृ0 118-19

49. अहमद यादगार- तारीख-ए-शाही सं 1939 प्रका0 कलकत्ता पृ0 58

50. राधेश्याम- सल्तनत कालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास सं0 1987 बोहरा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स पृ0 247.

51. अमीर खुसरो-एजाज खुसखी पृ0 225.

52. मलिक मोहम्मद जायसी- पद्यमावत्-प्रका0साहित्य सदन चिरगांव झांसी पृ0-1

53. राधेश्याम-सल्तनत कालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास सं0 1987 बोहरा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स पृ0 252.

54. इब्नबतूता- दे रेहला आफ इब्नबतूता (अनु० मेहदी हसन) 1935 बडौदा पृ० 14-15.
55. राधेश्याम-सल्तनत कालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास सं० 1987 बोहरा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स पृ० 255.
56. वही पृ०. 267.
57. अमीर खुसरो, एजाज-ए-खुसुखी, भाग-3 पृ० 33.
58. अहमद यादगार, तारीख-ए-शाही, सं० 1939 प्रका० कलकत्ता पृ० 60-61.
59. जहीरुद्दीन मोहम्मद बाबर-बाबरनामा (अनु० श्रीमती ब्रेवरिज, जिल्द-2 लूजाक एण्ड कम्पनी लन्दन सं० 1922. प्रका० दिल्ली पृ० 608-9,
60. अब्दुल्लाह- तारीख-ए- दाउदी-प्रका० अलीगढ़ पृ० 105.
61. राधेश्याम-सल्तनत कालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास, सं० 1987, बोहरा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स पृ० 26-27.
62. वही पृ० 267.
63. वही पृ० 268.
64. इब्नबतूता, द रेहला आफ इब्नबतूता (अनु० मेहदी हसन) सं० 1953 प्रका० बड़ौदा पृ० 270.
65. राधेश्याम-सल्तनत कालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास, सं० 1987, बोहरा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स पृ० 27.
66. रशीद-सोसायटी एण्ड कल्चर इन मेड्विल इण्डिया, पृ० 85.
67. दीवान प्रतिपाल सिंह-बुन्देलखण्ड का इतिहास, भाग-1 संवत् 1985-नागरी प्रचारिणी सभा बनारस पृ० 256-310
68. वही, पृ० 174-175.
69. गौरी शंकर द्विवेदी -बुन्देलखण्ड वैभव भाग- 1 पृ० 35.
70. वही. पृ० 75.
71. कवि मणि पं० कृष्णदास-बुन्देलखण्ड के कवि, संवत् 2017, साहित्य सम्मेलन पन्ना, पृ०-37.
72. वही पृ० 49.
73. वही, पृ० 106-107.
74. वही, पृ० 114.
75. वेणीराम त्रिपाठी-भक्त मोरध्वज, सं० 1979, प्रका० बनारस, पृ० 6.
76. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव -मध्यकालीन भारतीय संस्कृति सं० 1973 प्रका० आगरा पृ० 230.
77. वही पृ० 231.
78. नर्मदा प्रसाद गुप्ता (सम्पादक)- मामुलिया-बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी प्रकाशन ख्याल और स्वांग (लेख), लेखक-गिरिजा प्रसाद कुम्हार, पृ० 61.

79. कविमणि पं० कृष्णदास-बुन्देलखण्ड के कवि, सं० 2025, प्रका० साहित्य सम्मेलन पन्ना (म०प्र०) पृ० 213-14

80. नर्मदा प्रसाद गुप्त (संपादक) - मामुलिया, अंक 21 सं० 2045 स्वागत (कविता) देवकी नन्दन शान्त (ले०) पृ० 55.

81. वही, गोपाल दास रूसिया- हरपालपुर (ले०) भइया की कीसे कहिये पृ० 54.

82. नर्मदा प्रसाद गुप्त - मामुलिया (पत्रिका) बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी प्रकाशन पृ07.

83. वही, एक बेर ब्रज में आये-स्व० गंगाधर व्यास (ले०) वही पृ० 9.

84. हारमोनियम मास्टर-नवल किशोर प्रेस 1885-पृ० 374

85. नर्मदा प्रसाद गुप्त - मामुलिया (पत्रिका) ईसुरी की फागे स्व० कुंवर दुर्ग सिंह, बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी छतरपुर म०प्र० पृ० 175.

86. हारमोनियम मास्टर- नवल किशोर, प्रेस पृ० 528-531 सौजन्य से तृप्ति दुबे संगीत अध्यापिका भगवती प्रसाद ओमर बालिका विद्यालय बांदा.

87. वही, पृ० 535.

88. राधेश्याम-सल्तनत कालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास सं० 1987 बोहरा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स पृ० 241.

89. प्रश्न बैंक सं० 1- डा० साबिर नियाजी हैनीमैन मेडिकल स्टोर छावनी बांदा

90. प्रश्न बैंक सं० 2- कु० आयशा बेगम- बलखण्डीनाका बांदा

91. प्रश्न बैंक सं० 3- श्री गणेश प्रसाद पाण्डेय पुत्र श्री मौलिचन्द्र पाण्डेय, कटरा, बांदा

92. प्रश्न बैंक सं० 4- श्रीमती सुशीला दुबे रिटायर्ड अध्यापिका राजकीय बालिका इण्टर कालेज बांदा

93. प्रश्न बैंक सं० 5- एहसान कुरैशी ''आवारा बांदवी'' छावनी-बांदा

94. प्रश्न बैंक सं० 6- सैयद मगरबी, छावनी-बांदा

95. मिनहाज- उस सिराज जुरयानी, तबकात-ए-नासीरी (बिबिलिथिका इण्डिका कलकत्ता 1864) अनु० मेजर एच.आर रेवर्ती-लन्दन 1881 भाग-1 पृ० 518-20.

96. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, सं० 1973, प्रका० आगरा, पृ० 245.

97. सतीश चन्द्र- मध्यकालीन भारत, सं० 1998, प्रका० जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृ० 239-235.

98. राधाकृष्ण बुन्देली-बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन, सं० 1989, प्रका० बुन्देलखण्ड प्रकाशन बांदा, पृ० 94

99. अशोक कुमार पोद्दार - जाट बुंदेला, सतनामी और सिक्ख विद्रोह-मध्यकालीन भारत, सं०

1993 दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ० 672.

100. सतीश चन्द्र- मध्यकालीन भारत सं० 1998 प्रका० जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स पृ० 234.

101. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव-मध्यकालीन भारतीय संस्कृति सं० 1976 प्रका० आगरा पृ० 245-246.

102. मोती लाल त्रिपाठी ''अशान्त''- झाँसी दर्शन, सं 1973, प्रका०शारदा सा०कुटीर, झांसी पृ० 254.

103. ए० कनिंघम- आर्कुलाजिकल सर्व रिपोर्ट ऑफ इण्डिया, भाग 7, पृ० 33-34.

104. लक्ष्मी प्रसाद मिश्र- बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक इतिहास, भाग-1, सं० 1990, प्रका० विश्व भारतीय प्रकाशन, पृ० 139

105. वही, पृ० 146.

106. वही, पृ० 168.

107. वही, पृ० 171.

108. वही, पृ० 171.

109. प्रश्न बैंक, सं० 1, डा० साबिर नियाजी, हैनीमैन मेडिकल स्टोर छावनी बांदा

110. प्रश्न बैंक, सं० 7, राधाकृष्ण बुन्देली इतिहासकार

111. प्रश्न बैंक सं० 8 श्रीमती शमीम बानों, प्रधानाचार्य आर्य कन्या इन्टर कालेज बांदा

112. प्रश्न बैंक सं० 9, श्री दीपक दुबे, प्रबन्धक-सहयोग संस्थान, बलखण्डी नाका बांदा

113. प्रश्न बैंक सं० 10, श्री आशिफ अली-मर्दननाका, बांदा

114. प्रश्न बैंक सं० 11, श्री एम० एस० किदवई, भारतीय खाद्य निगम, चमनगंज, कानपुर

115. प्रश्न बैंक सं० 12, श्रीमती शिववती पाडेण्य, कटरा, बांदा

116. प्रश्न बैंक सं० 13, कमरुल हसन (प्रवक्ता), पं० जे० एन० डिग्री कालेज, बांदा

117. प्रश्न बैंक सं० 14, डा० महेन्द्र प्रसाद अवस्थी प्रधानाचार्य, राजकुमार इन्टर कालेज, नरैनी

118. प्रश्न बैंक सं० 15,. श्रीमती अनीसा बेगम पिता ठाकुर रहमान, गूलरनाका, बांदा

119. प्रश्न बैंक सं० 16, श्रीमती गिरजा अवस्थी (अध्यापिका), कटरा बांदा

120. प्रश्न बैंक सं० 17, श्रीसत्यनारायण द्विवेदी (वकील), कटरा बांदा

121. प्रश्न बैंक सं० 18, मुस्ताक हुसैन, बनारसी बेगम का हाता, बाँदा

122. प्रश्न बैंक सं० 19, डा० वीरेन्द्र शर्मा प्रवक्ता, पं० जे० एन० कालेज, बांदा

षष्ठम् अध्याय

- इस्लाम धर्म के प्रभाव के कारण उत्पन्न नयी धार्मिक मान्यतायें।
- इस्लाम धर्म से प्रभावित नवीन धार्मिक पन्थ।
    - कबीर पंथ का प्रभाव।
    - गुरुनानक पंथ का प्रभाव।
    - प्रणामी सम्प्रदाय का प्रभाव।
- बुन्देलखण्ड के मौलिक धर्म पर इस्लाम का प्रभाव।
- इस्लाम का बुन्देलखण्ड की वास्तुशिल्प पर प्रभाव।
- इस्लाम का बुन्देलखण्ड की लोक कला पर प्रभाव।
- इस्लाम का संगीत पर प्रभाव।
- इस्लाम का अंधविश्वासों और लोक परम्पराओं पर प्रभाव।

नयी मान्यताओं एवं परम्पराओं का उदय

इस्लाम धर्म के प्रभाव के कारण उत्पन्न नयी धार्मिक मान्यताएं-

भारतवर्ष में मुसलमानों के आक्रमण के कारण इस्लाम धर्म सर्वप्रथम पश्चिम और उत्तर भारत में आया, इसके आगमन से भारतवर्ष की सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और आर्थिक दशा में अनेक परिवर्तन हुये, जो इस बात का सूचक है कि यहाँ इस धर्म का व्यापक प्रभाव पड़ा। इस्लाम धर्म के प्रवर्तक हजरत मोहम्मद साहब का जन्म 569 ई० में हुआ था, तथा सन् 609 ई० में उन्होंने अपने धर्म का प्रचार-प्रसार किया। इस समय अरब के हजारों कबीले अनेक देवी-देवताओं की उपासना करते थे, उन्होंने अरबवासियों को यह उपदेश दिया कि वे निराकार अल्लाह को माने तथा विभिन्न हानिकारक कुरीतियों की जगह नई मान्यताएं स्थापित करें। सर सुन्दरलाल के अनुसार- वास्तव में मोहम्मद साहब के उपदेश धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक तीनों क्षेत्रों में प्रभाव रखते थे। इन उपदेशों ने अरबों के अन्दर एक नई रूह फूंक दी। वे धार्मिक और राजनैतिक दिग्विजय के लिये अपने देश से निकल पड़े और मोहम्मद साहब की मृत्यु के करीब सौ साल के अन्दर ही उन्होंने सभ्य संसार के एक बहुत बड़े हिस्से पर अपना प्रभुत्व कायम कर लिया।[1]

सन् 629 से लेकर 631 ई० तक हज़रत मोहम्मद साहब का प्रभाव व्यापक हो गया था। सन् 632 में हज़रत मोहम्मद साहब की मृत्यु हो गयी थी, इसके पश्चात् इस्लाम की हुकूमत कायम हुई तथा इस हुकूमत का प्रभाव सन् 636 से लेकर सन् 715 ई० तक बराबर बढ़ा तथा इनके राज्य का विस्तार अब तातार और तुर्किस्तान तक हो गया। सन् 636 के लगभग यह भारत की सीमाओं में आ गया था, किन्तु सन् 712 ई० में इस्लाम का पहला आक्रमण मोहम्मद बिन कासिम के नेतृत्व में हुआ। यह भारत में मुसलमानों का पहला हमला था।[2] इसके बाद सिन्ध में मुस्लिम हुकूमत शुरू हो गयी। यहाँ के लोग खलीफा को टैक्स देने लगे।

इस्लाम यहाँ मुस्लिम आक्रमणकारियों के अतिरिक्त अरबी सौदागरों के माध्यम से भी आया था, किन्तु भारतवर्ष के लोग उसे पृथक सम्प्रदाय के अतिरिक्त और कुछ न समझते थे। इसके बाद इस्लाम का प्रभाव धीरे-धीरे दक्षिणी भारत में भी बढ़ा। इसी समय अन्य हिन्दू सम्प्रदायों से सैद्धान्तिक संघर्ष भी होने लगा। इस्लाम धर्म के सिद्धान्त सीधे-साधे थे, क्योंकि यह धर्म मनुष्य मात्र की क्षमता पर जोर देता था, जो अन्य धर्मों में नहीं था। इस धर्म का प्रचार-प्रसार करने के लिये अनेक सूफी-सन्त और विद्वान समुद्री मार्ग और अफगानिस्तान के रास्ते से भारतवर्ष में आये। 11वीं सदी में मुसलमान फकीर नजदबली का भारत आगमन हुआ। ये पहले टर्की के राजकुमार थे, बाद में मुसलमान हो गये। 12वीं सदी में सैय्यद इब्राहीम शहीद का आगमन हुआ, इसके बाद फखरुद्दीन तथा अन्य सूफी-सन्त आये,

इन्होंने इस्लाम का प्रचार-प्रसार अपने स्तर से किया।

मुसलमानों की राजसत्ता जब भारतवर्ष में 12वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुई, उस समय इस्लाम धर्म का प्रचार-प्रसार जोरों से हुआ। जहाँ यह धर्म, शक्ति और प्रलोभन के आधार पर फैलाया गया, वहीं प्रेम और सद्भावना से भी इस्लाम धर्म यहाँ आया। अनेक लोगों ने स्वेच्छा से इस्लाम धर्म अपनाया।

"By for the majority of them entered the pale of Islam of their own free will."[3]

एक अन्य विद्वान का यह मानना है- "Ninety percent of the whole body of the Muslims are Indians by blood, as much children of the soil as the Hindoos, retaining many of the old pagan superstitions, and only Mussalmans because their ancestors embraced the faith of the Great Arabian."[4]

13वीं सदी से लेकर 16वीं सदी तक यहाँ के मुसलमान शासकों ने साम्राज्य विस्तार की दृष्टि से अनेक युद्ध किये, जिनमें वे सफल भी हुये, किन्तु इस समय उन्होंने धर्म प्रचार को पीछे छोड़ दिया और खिराज़ वसूल करने के लिये ज्यादा जोर दिया, क्योंकि उन्हें धर्म से अधिक धन प्यारा दिखाई देता था। सर सुन्दरलाल के अनुसार- ''इतिहास से यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि वर्तमान भारतीय मुसलमानों में से ९० नहीं, ९९ फीसदी के इस्लाम मत स्वीकार करने का सबब केवल उस समय के असंख्य मुसलमान फकीरों, वीरों और दरवेशों की सच्चरित्रता और इस्लाम की आन्तरिक सामाजिक और अन्य विशेषताएं थीं।[5]

इस्लाम की कुछ विशेषताएं-

इस्लाम धर्म में कुछ ऐसी विशेषताएं थीं, जिसके कारण वह लोकप्रिय हुआ। मूल रूप से यह धर्म अवतारवाद को नहीं मानता, किन्तु इसके तशवीह और तनासुखी सिद्धान्त परोक्ष रूप से इसका समर्थन भी करते हैं। इस्लाम के अनुसार- यहाँ निकाह और तलाक जायज है, वहीं अली इलाही सम्प्रदाय के लोग स्त्रियों के साथ विवाह के तरीके और तलाक दोनों को नाजायज मानते हैं। कुर्आन का मकसद है, कि व्यक्ति एक ईश्वर को माने तथा भाईचारे की भावना को बढ़ाये, वहीं इसके कुछ सम्प्रदाओं ने इसके अर्थ को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किये है। सर सुन्दरलाल के अनुसार- ''अव्यक्त-निर्गुन ईश्वर में भेद किया जाने लगा। इस तरह के अनेक सम्प्रदाय कायम हुये, जिनमें लोगों को विशेष दीक्षा देकर भर्ती किया जाता था। इसमें से कोई-कोई सम्प्रदाय यह मानता था कि दीक्षित मनुष्य अभ्यास करते-करते नबी और स्वयं खुदा के रुतबे तक पहुंच सकता है। गुरू (पीर) को ईश्वर और कहीं-कहीं ईश्वर से भी बढ़कर रुतबा दिया जाने लगा। मोतज़ली सम्प्रदाय के लोगों ने इस बात का खुलेआम प्रतिपादन किया कि कुर्आन सदा के लिये निभ्रान्त ईश्वर वाक्य नहीं है, बल्कि मनुष्य जाति

की उन्नति के साथ-साथ हर मनुष्य की आत्मा के अन्दर बराबर समय-समय पर इस्लाम होता रहता है।[6] अनेक सूफी सन्तों ने इस्लाम के कुछ नियमों से असंतुष्ट होकर इनमें कुछ नये नियम जोड़े। सन् 1057 में अलगिजाली ने मुस्लिम कर्मकाण्डों से असंतुष्ट होकर रियाज़त (तपस्या), शगल (अभ्यास), जिक्र (ध्यान) पर बल दिया और खुदा का निवास अन्तर्रात्मा में माना तथा दो प्रकार के इश्क पर बल दिया। यह इश्क हक़ीक़ी और इश्क मिजाजी दो नाम से विख्यात हुये। अनेक लोग कुर्आन शरीफ के वास्तविक अर्थो से हटकर आध्यात्मिक अर्थ लगाने लगे। सन् 744 में उत्पन्न खलीफ़ा मज़ीद कुर्आन-शरीफ को नहीं मानते थे। जो दोजक, जन्नत, रोजे का मज़ाक उड़ाते थे, लोग उन्हें नास्तिक कहने लगे। इसी प्रकार सन् 1057 में उत्पन्न अबुल-अला-अलमारी बौद्ध धर्म के विचारों से प्रभावित था। वह आवागमन में विश्वास करता था, कड़ा निरामिषभोजी था, यहाँ तक कि दूध और शहद या चमड़े के उपयोग को भी पाप मानता था, प्राणिमात्र के साथ दया का उपदेश देता था, खाने और कपड़े में अत्यन्त परहेजगार था और ब्रह्मचर्य को आत्मा की उन्नति के लिये आवश्यक बताता था। मस्जिद, नमाज, रोजे और दिखावटी मज़हब का वह बड़ा विरोधी था।[7]

"ला इलाह इल्लल्लाह! सच है, किन्तु जो मनुष्य अंधरे में भी उस स्वर्ग को खोजता है, जो स्वर्ग मेरे अन्दर और तुम्हारे अन्दर मौजूद है, उसकी अपनी आत्मा के सिवाय कोई दूसरा रसूल भी नहीं है।"[8]

उमर ख्याम एक स्वतंत्र विचारधारा वाले व्यक्ति थे। वे अन्य सूफी सन्तों की भांति ईसाई मत, प्राचीन ईरानी मत, हिन्दू और बौद्ध मत से प्रभावित थे, किन्तु उमर ख्याम का यह विश्वास था, कि संसार से भागने की बजाय उसे समझने की जरूरत है। इसी समय महात्मा मंसूर का भी प्रभाव बढ़ा। उनका मुख्य सिद्धान्त अनल-हक था, अर्थात 'अहं ब्रह्मास्मि' इसलिये उनके आजाद ख्यालों के कारण उन्हें गिरफ्तार किया गया और सन् 922 ई० में उन्हें यातनायें देकर ईसामसीह की भांति सूली पर लटका दिया गया।

भारतवर्ष में इस्लाम का प्रभाव मुख्य रूप से आठवीं शताब्दी में पड़ा और 17वीं शताब्दी तक बराबर पड़ता रहा। इस धर्म के कारण अनेक नवीन मान्यताओं का उदय हुआ, जो निम्नलिखित है-

अद्वैतवाद का उदय -

इस्लाम धर्म के भारत आगमन के पश्चात इस भावना ने जोर पकड़ा, कि ईश्वर एक है, दूसरा नहीं और न कोई अन्य देवी-देवता उसके मुकाबले का है। जगत गुरू शंकराचार्य ने अद्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने कहा "एकोब्रह्मा अस्ति द्वितीयोनास्ति" इसके साथ-साथ ईश्वर की सर्वव्यापकता पर विश्वास किया गया इसी सिद्धान्त से मिलता-जुलता एक नवीन सिद्धान्त का उदय हुआ। वह सिद्धान्त यह था, कि आत्मा ही

ब्रह्म है अथवा आत्मा ईश्वर का अंश है। जिसके कारण 'अहम् ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं ब्रह्म हूं अथवा 'सो अहम्' अर्थात् जो परमात्मा है, वही मैं हूँ, के सिद्धान्त का उदय हुआ, किन्तु परमात्मा के स्वरूप को लेकर और उसकी उपासना पद्धति को लेकर यह संघर्ष बराबर बना रहा। जिसके कारण नाना प्रकार के सम्प्रदाओं का उदय हुआ।

निर्गुण ब्रह्म की उपासना का उदय -

इस्लाम के प्रभाव के कारण अब यह स्वीकार किया जाने लगा, कि परमात्मा निराकार, निर्विकार, अजन्मा, सर्वव्यापी तथा समस्त प्राणियों के हृदय में रहता है। यह किसी को दिखलायी नहीं देता, अपितु इसका अनुभव होता है। ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप के संदर्भ में कतिपय सन्तों का यह मत है -

बाबा अगम अगोचर कैसा,
ताते मैं समझाऊ ऐसा,
जो दीखै तो, तो है नाहिं,
जो है सो कछु कहा न जाई ।।कबीरदास।।

कहने का तात्पर्य यह है, कि ब्रह्म का मनन, ज्ञान, बुद्धि और दृष्टि के परे निराकार ब्रह्म के उपासक इसे ध्यान, योग, जप, तप के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं और उसे प्राप्त करने के लिये सुरति और निरति का सहारा लेकर ध्यान कर सकते हैं। ऐसे लोगों को ध्यान योग में अनहदनाद सुनाई देता है, जो परमात्मा के मिलन का द्योतक है।

रस गगन गुफा ते अजर झरे।
बिन वाणी झनकार सुने तहाँ चढ़ हंसा केलि करे ।।कबीरदास।।

निराकार ब्रह्म की उपासना का एक दूसरा मार्ग प्रेम उपासना मार्ग था। जिसके माध्यम से खुदा को हुस्न-ए-बुता के पर्दे पर देखा जाता था। इस मार्ग का अनुसरण इश्क हक़ीक़ी और इश्क मिजाजी पर विश्वास करने वाले सूफी-सन्तों ने किया तथा जायसी जैसे महाकवियों ने भारतीय कथा प्रसंगों को लेकर अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की। यहाँ तक कि कबीर जैसे सन्त भी इस प्रेम भावना से प्रभावित हुये। उन्होंने स्वतः को स्त्री रूप और परमात्मा को पुरुष रूप में स्वीकारा है-

राम मेरे पिउ, मैं राम की बहुरिया।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि निराकार ब्रह्म की उपासना के प्रति, जो रुझान भक्ति आन्दोलन के सन्तों में हुआ, वह पूरी तरह से इस्लाम से प्रभावित हुआ।

इस्लाम धर्म के विरोध में सगुण भक्ति का उदय -

जब यहाँ के निवासियों को यह मालूम हुआ, कि इस्लाम धर्म मूर्ति-पूजा का विरोधी है और अपने धर्म प्रचार के लिये हिन्दू धर्मस्थलों को विध्वंस करा रहा है, उस समय

मूर्ति-पूजा पर आस्था रखने वाले व्यक्ति पूरी तरह संगठित हो गये तथा उन्होंने निराकार ब्रह्म उपासना के विरुद्ध सगुण उपासना के पक्ष में एक जन आन्दोलन खड़ा किया। यह सगुण उपासना ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश, सूर्य, शक्ति तथा अन्य ग्रामीण देवताओं से सम्बन्धित थी। इस सगुण भक्ति में राम और कृष्ण को मुख्य देवता माना गया है तथा इनकी उपासना के लिये नवविधा भक्ति का सहारा लिया गया। बल्लभाचार्य महन्त हरिदास के शिष्यों ने इस भक्ति भावना के आगे बढ़ाने के लिये एक नवीन भक्ति आन्दोलन को जन्म दिया। इस भक्ति आन्दोलन में मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास जैसे बड़े-बड़े सन्त कूदे और उन्होंने निर्गुण भक्ति का विरोध किया। उनका यह मानना था, कि यह ईश्वर निराकार निर्गुण जरूर है, किन्तु जब प्राणियों पर कोई विपत्ति आती है, तब वह अवतार धारण करता है। राम और कृष्ण परमात्मा के ही अवतार थे, उन्होंने भक्तों के उद्धार के लिये जन्म लिया।

यथा- *हम भक्तन के भक्त हमारे,*
सुन अर्जुन प्रतिज्ञा मोरी, यह वृत टरत न टारे।
भक्तन हाथ लाज रखबे हित हाकत हौ रथ तेरो ।।सूरदास।।

निराकार ब्रह्म का खण्डन करती हुई गोपिकायें उधव से निराकार ब्रह्म के बारे में पूछती हैं -

निरगुन कौन देस को बासी ?
मधुकर कहि समुझाइ सौ दै, बूझति सांच न हांसी।।

उपरोक्त पद से यह स्पष्ट है, कि परमात्मा उसी को स्वीकार किया जा सकता है, जो आचरण से श्रेष्ठ है और बुरे वक्त पर मनुष्य की सेवा करता है। जो मनुष्य के किसी काम नहीं आ सकता, वह परमात्मा भी नहीं हो सकता। इस सगुण भावना की उपासना ने न केवल हिन्दुओं को अपितु मुसलमानों को भी अपनी ओर आकर्षित किया। इस क्षेत्र में रहीमदास और रसखान की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

दैन कहे करतार जिन्हें सुख, सो तो रहीम टरै न टारे,
उद्यम पौरुष कीन्ह बिना धन आवत आपहिं हाथ पसारे।। रहीम।।

सुकवि रसखान ने भी निराकार ब्रह्म की आलोचना की और सगुण भक्ति को सर्वोपरि माना है-

कहा रसखानि सुख, सम्पत्ति सुमार कहा,
कहा तन जोगी है, लगाए अंग हार को।
कहा साधे पंचानल, कहा सोये बीच नल,
कहा जीति लाये, राज सिंधु-झरपार को। ।रसखान।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस्लाम धर्म के कट्टर अनुकरणकर्ता और अनेक सूफी

सन्त सगुण भक्ति उपासना पद्धति से प्रभावित हुये, जिससे इस क्षेत्र में नवीन धार्मिक मान्यताओं का उदय हुआ।

इस्लाम धर्म में नवीन भारतीय सिद्धान्तों का समावेश -

भारतवर्ष में इस्लाम के आगमन के पश्चात, इसके केवल एक सिद्धान्त में परिवर्तन नहीं हुआ, जबकि सभी सिद्धान्तों में व्यापक परिवर्तन हुआ। इस्लाम धर्मावलम्बी केवल इस अपरिवर्तित सिद्धान्त को मानते रहे, कि खुदा एक है, वह सर्वोपरि है, वह सृष्टि का सृजेता है, उससे बड़ा और उसकी बराबरी का कोई नहीं है, वह अदृश्य है। हज़रत मोहम्मद साहब इस्लाम धर्म के प्रवर्तक एवं पैगम्बर थे और पवित्र कुर्आन शरीफ उनका एक मात्र धार्मिक ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त इनकी उपासना पद्धति में, धार्मिक रीति-रिवाजों में तथा उससे जुड़ी परम्पराओं में भारतीय धर्म और अध्यात्म का व्यापक प्रभाव पड़ा।

अरब के निवासियों ने इस्लाम धर्म को ज्यादा उपयोगी बनाने के लिए धर्म ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद कराया। मुख्य रूप से भारतीय दर्शनशास्त्र का अनुवाद अरबी भाषा में किया गया, क्योंकि इस्लाम धर्म के पूर्व खुरासान, अफगानिस्तान, सीस्तान और बलूचिस्तान इस्लाम मत स्वीकार करने से पहले या तो बौद्ध थे या हिन्दू। बलख में एक बहुत बड़ा बौद्ध विहार था, जिसमें बौद्ध मठाधीश अब्बासी खलीफ़ाओं के वज़ीर हुआ करते थे।[9]

मोतजली सम्प्रदाय के लोग कुर्आन को ईश्वर वाक्य नहीं मानते थे, बल्कि वे कुर्आन को कल्याणकारी ग्रन्थ मानते थे, किन्तु वे हिन्दू दर्शन की भांति ईश्वर को सबकी आत्मा में निवास करने वाला मानते थे। इसी प्रकार अल गिजाली ने भारतीय दर्शन के तप, ध्यान, योग और आत्मा की शुद्धि को स्वीकार किया तथा ईश्वर की भक्ति पर बल दिया। खलीफ़ा मजीद को भी भारतीय दर्शन से प्रभावित माना गया और उन्हें चार्वाक दर्शन का हिमायती माना गया। अबुल-अला सन्त भी आत्मा के आवागमन पर विश्वास करते थे तथा उन्होंने अपने जीवन में मांसाहार नहीं किया और चमड़े का उपयोग भी नहीं किया। वे परहेज पर विश्वास करते थे, ब्रह्मचर्य को आत्म-उन्नति का साधन मानते थे। वे मस्जिद में नवाज पढ़ना, रमजान में रोजे रखने को दिखावटी मजहब मानते थे। इसी प्रकार उमर ख्याम भी भारतीय प्रेम दर्शन अर्थात् ''सः अस्मिन् परम प्रेम रूपा'' का हिमायती था। महात्मा मंसूब जिन्होंने भारत की यात्रा की थी। वे भी 'अहम ब्रह्मास्मि' के सिद्धान्त को स्वीकार करते थे तथा वे इसे अनल हक कहते थे। शेख बदरुद्दीन के विषय में, जो तेरहवीं सदी में भारत में आकर रहने लगे थे, लिखा है कि जब वह इतने बूढ़े हो गये थे, कि हिल-डुल न सकते थे, तब भी हरि-कीर्तन की आवाज पर तुरन्त अपने बिस्तरे से कूद कर जवान मनुष्य की तरह नाचने लगते थे। जब उनसे पूछा जाता था, कि इस निर्बल अवस्था में शेख कैसे नाच

सकता है। तब वह जवाब देते थे, "शेख कहां है? इश्क नाच रहा है।[10] इनकी समतुलना चैतन्य महाप्रभु से की जा सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि हिन्दू धर्म के प्रभाव से इस्लाम भी अछूता नहीं रहा और उसमें हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, द्वैतवाद, अद्वैतवाद, चार्वाक दर्शन, प्रेम मार्ग भक्ति मार्ग, जप, तप, योग का व्यापक प्रभाव पड़ा।

समन्वित एवं समभाव रखने वाले सम्प्रदायों का उदय -

भारतवर्ष और बुन्देलखण्ड में जब इस्लाम का आगमन हुआ, उस समय मूर्ति-भंजकों और मूर्ति-पूजकों के बीच अजीब सा संघर्ष उत्पन्न हुआ। उसे रोकने के लिये यहाँ के मनीषियों और साधु सन्तों ने यह आवश्यक समझा, कि इस साम्प्रदायिक संघर्ष को रोकने के लिये कोई ऐसा मार्ग निकाला जाये, जो हिन्दू मुसलमान दोनों को स्वीकार हो। उन्होंने इस्लाम धर्म से एकेश्वरवाद की भावना को ग्रहण किया तथा छुआछूत और जांत-पांत की भावना का परित्याग किया। हिन्दू तथा मुसलमानों के बीच समन्वय स्थापित करते हुये, एक ऐसा सामाजिक सद्भाव पैदा किया, जिससे यह साम्प्रदायिक संघर्ष समाप्त हुआ। इस मध्य मार्ग के आने के कारण राम-रहीम तथा कृष्ण-करीम में कोई फर्क नहीं रह गया। इसके परिणाम बहुत अच्छे निकले और दोनों संस्कृतियां एक-दूसरे के विकास के लिये कार्य करती रहीं। इससे एक नवीन मिली-जुली संस्कृति का भी उदय हुआ।

नवीन अन्ध-विश्वासों का उदय -

इस्लाम के आगमन के पश्चात् हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अन्धविश्वास के शिकार हुये। यदि किसी प्रकार का अन्धविश्वास हिन्दू धर्म में फैलता था, तो मुसलमान भी उस अन्धविश्वास को किसी न किसी प्रकार अपना लेते थे। झाड़-फूंक करना, भूत उतारना, नज़र उतारना, ताबीज देना, नवजात शिशु के कानों में अज़ान देना, फकीरों और पीर बाबा आदि पर विश्वास करना मुसलमानों के लिये आम बात हो गयी थी। इसके अतिरिक्त हिन्दू तीज-त्योहारों में, जो अन्ध-विश्वास और परम्परायें पहले से विद्यमान थीं, उनका प्रभाव मुसलमानों पर भी पड़ा। डॉ० आशीर्वादी लाल के अनुसार- मुसलमानी त्यौहार भी हिन्दुओं के त्यौहारों की तरह ठाठ-बाट से मनाये जाने लगे। शबे-रात का त्यौहार शिवरात्रि के हिन्दू त्यौहार की तरह रात्रि भर जागरण करके शोरगुल के साथ मनाया जाने लगा। मुसलमानों में अक़ीक़ा और बिसमिल्लाह के उत्सव, हिन्दुओं के मुण्डन और विद्यारम्भ के संस्कारों जैसे मनाये जाने लगे। इसी तरह हिन्दुओं के विवाहों के संस्कारों ने मुसलमानी निकाहों को प्रभावित किया और मुसलमानों ने वधू श्रृंगार करने की प्रथा विशेष रूप से अपना ली।[11]

इस प्रकार हम देखते हैं, कि अन्धविश्वास से जुड़ी हुई नवीन धार्मिक और सामाजिक मान्यतायें इस्लाम और हिन्दू धर्म के प्रभाव से बनी, जिनका अनुपालन यहां के निवासी करने लगे।

धार्मिक कट्टरता एवं कट्टुतावाद का उदय -

भारतवर्ष और बुन्देलखण्ड में एक ऐसा वर्ग भी था, जो अपने धर्म और संस्कृति की अलग पहचान बनाये रखना चाहता था। वह नहीं चाहता था, कि हिन्दू और मुसलमानों के मध्य मित्रता, सद्भाव और प्रेम की भावना बने, इसलिये धार्मिक कट्टरता का सहारा लेकर वे ऐसे विवाद उत्पन्न कर देते थे, जिससे हिन्दू और मुसलमान अपनी अलग-अलग पहचान बनाये रखने के लिये मजबूर थे। हिन्दू धर्म के पण्डित, आचार्य और धर्म के ठेकेदारों ने धार्मिक नियम अत्यन्त कठोर कर दिये, व्यक्तियों को धार्मिक पहचान के चिन्ह धारण कराये। डॉ० आशीर्वादीलाल के अनुसार- एक प्रकार से हिन्दुओं ने विदेशियों को समुचित सौहार्द्रता प्रदान की। ऐसा पारस्परिक खान-पान और अन्तर्विवाह के क्षेत्र में हुआ था और इसका कारण स्पष्ट था हिन्दुओं ने सदा से ही औपचारिक शुद्धता में विश्वास किया है। यथा शरीर, पोशाक, निवास-स्थान एवं मन और मस्तिष्क की शुद्धता, जबकि मुसलमानों में न केवल विदेशी तुर्क-अफगान जाति के बल्कि भारतीय मुसलमान भी रेगिस्तान में रहने वाले अरब लोगों का सा जीवन व्यतीत करने पर बल देते थे। इसके अतिरिक्त हिन्दू सामान्यतः शाकाहारी थे और ऐसे हिन्दू जो मांसाहारी थे, वे भी गौ-मांस से घृणा करते थे।[12]

इस प्रकार हम देखते हैं, कि धार्मिक कट्टरता के कारण हिन्दू मुसलमान एक दूसरे से अलग रहें। दोनों धर्म यह नहीं चाहते थे, कि वे किसी दूसरे धर्म को अपने मार्ग का बाधक बनाये। यहाँ के धर्म सुधारक और आचार्य नव मुसलमानों के साथ किसी भी प्रकार से एकता स्थापित नहीं कर सके, क्योंकि वे कुर्आन के इस आदेश का पालन करते थे- ''ए सच्चे विश्वासियों, ऐसे व्यक्तियों को अपने मित्र न मानो, जिनको तुमसे पूर्व ही धर्म ग्रन्थ प्राप्त हो चुके हैं अथवा जो ईश्वर के प्रति कृतघ्न या काफिर हैं, जो कि तुम्हारे धर्म की हँसी उड़ाते हैं, मज़ाक बनाते हैं।[13]

इस्लाम धर्म से प्रभावित नवीन धार्मिक पन्थ

धर्म का निर्माण, उन विद्वान व्यक्तियों ने किया, जिनके हृदय में मानव कल्याण की भावना उत्पन्न हुई। उन्होंने अपनी आत्म चेतना के आधार पर दूसरे की आत्म चेतना की समतुलना अपने से की और यह माना, कि वह और उसके जैसे अनेक प्राणी एक जैसे ही है। उसकी अनुभूतियां, सुख-दुःख तथा पंचमहाभूतों से उत्पन्न पीड़ायें एक जैसी हैं।

यथा- *यह तत वह तत एक है एक अंग द्वि गात।*
अपने जिय से जानिये परके जिये की बात ।।कबीरदास।।

हज़रत मोहम्मद साहब ने अपने युग को भली प्रकार देखा और यह अनुभव किया, कि व्यक्ति धर्म के नाम पर अंधविश्वास से ग्रसित है तथा विविध प्रकार के देवी-देवताओं

की पूजा करता है। उन्होंने माना कि जब खुदा एक है, तो दूसरे बुतों को पूजने का कोई मकसद नहीं। इसी प्रकार उन्होंने देखा कि जात-पात के नाम पर पूरा विश्व विभाजित हो रहा है और वे लोग ऊँच-नीच की भावना से ग्रस्त होकर अपने से कमज़ोर व्यक्ति का तिरस्कार करते रहते हैं इसलिये उन्होंने गम्भीर चिन्तन करके विश्व मानवता के सिद्धान्त को कुर्आन शरीफ के माध्यम से प्रचारित प्रसारित किया। सर्वप्रथम अरब की जनता ने इसे स्वीकार किया, उसके पश्चात् वह विश्व के अन्य देशों में अपनाया गया। इस धर्म के मूल सिद्धान्तों के रूप में यह स्वीकार किया गया, कि खुदा एक है, वह सर्वशक्तिमान है, उसकी बराबरी का कोई नहीं है, वह सृष्टि सृजेता है, उसकी इबादत करना हर व्यक्ति का फर्ज़ है, कम से कम पांच वक्त वह रोज नमाज पढ़े, यदि वह रोज नमाज न पढ़ सके तो जुमे के दिन नमाज जरूर पढ़े। रमजान में रोजे रखें, जैसा सम्भव हो यतीमों को जकात दे, माल होने पर इस्लाम धर्म से सम्बन्धित तीर्थ-स्थलों की हज़ करे तथा किसी व्यक्ति से जातीय आधार पर छुआछूत न करे। कालान्तर में यह धर्म सिया-शुन्नी और सूफी सम्प्रदाय में विभाजित हो गया।

यह धर्म 8वीं शताब्दी के बाद उत्तर और पश्चिम भारत में आया, उसके पश्चात् जब मुसलमानों की सत्ता भारतवर्ष में स्थापित हुई, उस समय इस धर्म ने करीब-करीब सम्पूर्ण भारत को प्रभावित किया। उसके प्रभाव में बुन्देलखण्ड का क्षेत्र भी आया। यहां के अनेक व्यक्ति इस्लाम धर्म के एकेश्वरवाद के सिद्धान्त से प्रभावित थे। हिन्दू और मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक वैमनस्य को रोकने के लिये कुछ सन्तों और महन्तों ने सार्थक प्रयास किये। उन्होंने मध्य मार्ग का अनुसरण किया तथा इस्लाम धर्म और हिन्दू धर्म की विशेषताओं को लेकर नये धार्मिक पन्थों का सृजन किया। उनमें कुछ महत्वपूर्ण सम्प्रदाय और पन्थ इस प्रकार है-

(अ) कबीरपन्थ का प्रभाव :-

सन्त कबीरदास इस पन्थ के प्रवर्तक माने जाते हैं, वे अपने युग के महान समाज सुधारक और स्वतंत्र विचारों वाले महापुरुष थे। सर सुन्दरलाल के अनुसार- वह मत-मतान्तरों के भेद और हर तरह के कर्मकाण्ड और रूढ़ियों के कट्टर विरोधी थे। इस देश के अन्दर हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता के वह सबसे पहले प्रचारक और सबसे महान समर्थक थे। उनका जन्म सन् 1398 ई० में हुआ और मृत्यु सन् 1518 ई० में।[14] जनश्रुति के अनुसार ये विधवा ब्राह्मणी के पुत्र थे। लोक-लज्जावश इन्हें एक तालाब के किनारे फेक दिया गया था। इनका पालन-पोषण नूरुद्दीन जुलाहे की पत्नी ने किया, किन्तु यह कथा सत्य प्रतीत नहीं होती। वे जुलाहे के ही पुत्र थे, बनारस परिक्षेत्र में उनका पोषण हुआ तथा उनके जीवन में हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों का प्रभाव पड़ा। वे अनेक सूफी सन्तों के प्रभाव में थे। कबीरदास जी ने दोहा, सबद, रमैनी के अन्तर्गत रमैनी में इस बात का उल्लेख किया

है। उनकी विचारधारा से कट्टर मुसलमान, मौलवी और हिन्दू पण्डित बहुत ज्यादा नाराज थे। इन लोगों ने कबीरदास को कष्ट देने के प्रयत्न किये। जब व्यक्तियों को उनके सिद्धान्तों का यथार्थ समझ में आया, तो हजारों हिन्दू मुसलमान उनके शिष्य हो गये। सर सुन्दरलाल के अनुसार- उस समय यह मान्यता थी, कि काशी में मरने वाले मनुष्य को मुक्ति प्राप्त होती है। इसके विपरीत कहा जाता है, कि गोरखपुर से 15 मील पश्चिम में मगहर में मरने वालो को गधे की योनि में जन्म लेना पडता है। कबीर ने अन्त समय निकट आने पर जानबूझकर इस प्राचीन अन्धविश्वास की अवहेलना करने के लिये काशी से बाहर के लिये प्रस्थान किया और मगहर ही में अपने हजारों हिन्दू और मुसलमान अनुयायियों की मौजूदगी में चोला छोड़ा।[15] इनकी मृत्यु के पश्चात इनके दाह-संस्कार को लेकर हिन्दू और मुसलमान दोनों में संघर्ष हुआ तथा उनका संस्कार दोनों मजहब के अनुसार हुआ। मगहर में कबीरदास की मजार और समाधि एक दूसरे के समीप बनी हैं, जिसमें हिन्दू-मुसलमान दोनो श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं। हिन्दू समाधि की पूजा करते हैं और मुसलमान उनकी मज़ार पर फ़ातिहा पढ़ते हैं।

कबीर की विचारधारा-

कबीर की आध्यात्मिक विचारधारा आध्यात्म के यथार्थ चिन्तन और दोनों धर्म के आदर्श सिद्धान्तों पर आधारित है। ये आदर्श सिद्धान्त अत्यन्त प्रभावशाली है तथा इनमें इस्लाम का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है। ये सिद्धान्त निम्न बिन्दुओं पर आधारित है-

1. एकेश्वरवाद और ईश्वर की सर्वव्यापकता-

सन्त कबीरदास खुदा अथवा परमात्मा को संसार का एकमात्र स्वामी मानते हैं। उनका यह मानना है, कि यह परमात्मा निराकार, निर्विकार और निर्गुण है तथा वह सर्वव्यापी है-

जो तिल माहि तेल है, त्यो चकमक मे आग,
तेरा साई तुझमें जाग सके तो जाग।

इस परमात्मा को खोजने के लिये भ्रमित होकर व्यक्ति तीर्थ यात्रा करता है और वह भूल जाता है, कि उसकी आत्मा में जो परमात्मा बसता है, उसे कहीं बाहर ढूंढ़ने की जरूरत नहीं है-

कस्तूरी मृग कुण्डलि बसै, मृग ढूढ़ै वन माहि।
दुनिया ऐसी बावरी, बाहर ढूढ़न जाहि।।

बाह्य आडम्बरों का विरोध-

इस्लाम धर्म के प्रभाव से कबीरदास मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी थे और वे चाहते थे कि जो ईश्वर अन्तरात्मा में निवास करता है, लोग उसी ईश्वर का

साक्षात्कार करे। उन्होंने पत्थर पूजने का विरोध करते हुये कहा-

पाथर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजों पहाड़।
या ते चाकी भली, पीस खाय संसार।।

इसी प्रकार कबीरदास व्यर्थ के आडम्बरों, माला जपने, तप, आदि का विरोध करते थे। उन्होंने कहा कि ईश्वर की उपासना माला फेरकर नहीं, अपितु हृदय से होनी चाहिये।

कबीरा माला मनहि की और संसारि मेष।
माला फेरे हरि मिले गले रहट के देख।।

उनका यह भी मानना है, कि जब तक परमात्मा का भजन मन, वचन, कर्म तीनों को एक करके नहीं किया जायेगा, उस समय तक परमसिद्धि की उपलब्धि नहीं हो सकती और न उसे भजन की कोटि में रखा जा सकता है।

माला तो कर में फिरे जीभ फिरे मुख माह।
मनुवा तो चहुदिश फिरे, यह तो सिमुरन नाह।।

कबीर ने प्रत्येक स्थल पर यथार्थ को स्वीकार करते हुये अन्धविश्वास को नकारा।

जांत-पांत का विरोध-

उनका मानना है कि संसार में मनुष्यों की केवल एक जाति है, उसे धर्म और कुल के हिसाब से विभाजित करना उचित प्रतीत नहीं होता। सर सुन्दरलाल के अनुसार- कबीर हिन्दुओं के वर्णाश्रम या जातिभेद के कट्टर विरोधी थे। वेदों, शास्त्रों या कुरान में से किसी को भी वह निभ्रान्त या हर बात में प्रमाण न मानते थे। सूफियों के समान प्रेम, इश्क या भक्ति उनका मुख्य धर्म था।[16] उन्होंने मानव मात्र की उत्पत्ति के संदर्भ में यह माना है कि सभी मानवों की उत्पत्ति एक तरीके से होती है। ब्राह्मण और शूद्र अलग-अलग ढंग से उत्पन्न नहीं होते-

गुप्त प्रगट भये, एकै मुद्रा,
काको कहिये वाहमन शूद्रा।

इसी प्रकार मौलवी और पण्डितों की आलोचना करते हुये उन्होंने कहा कि मौलवी और पण्डित दोनों का शरीर पंचतत्व के सम्मिश्रण से बना हुआ है। किन्तु धर्म और नामकरण अलग-अलग होने के कारण ये लोग अस्तित्व की लड़ाइयां लड़ते रहते हैं-

जुगुत जुगुत के नाम धरावै, द्वियमाटी के भाड़े।
एक कहावे मौलवी दूसर कहावे पांड़े।।

धर्म के समन्वित स्वरूप-

उन्होंने एक ऐसे पन्थ की परिकल्पना की, जिसमें हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म दोनों के उच्च कोटि के आदर्श सम्मिलित हों। सर्वधर्म समभाव की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने अपने उपदेशों में संस्कृत, फारसी, उर्दू और हिन्दू चारों भाषाओं का समावेश किया और यह समझाने का प्रयत्न किया, कि हिन्दू और मुसलमानों का परमात्मा अथवा खुदा एक है, उसमें कोई अन्तर नहीं है। इसी प्रकार हिन्दू और मुसलमानों के कर्मकाण्ड भी एक जैसे ही हैं इसलिये उन्होंने खुदा और परमात्मा में कोई भेद नहीं माना-

भारे रे दुई जगदीश कहां ते आया ? कहु कौने बौराया ?

अल्लाह राम करीमा केशव, हरि हज़रत नाम धराया।।[17]

व्यक्ति की पहचान उसके धर्म से नहीं, अपितु उसके कर्म से करनी चाहिये। कबीरदास के ऊपर फरीदुद्दीन अत्तार, जलालुददीन, रुमी, और शेख सादी शौराजी का प्रभाव पड़ा। उन्होने धार्मिक पहचान के लिये यह बात कही -

हिन्दू कहूं तो मैं नाहि, मुसलमान भी नाहिं।

पांच तत्व का पूतला, गैबी खेले माहिं।।[18]

उनके ऊपर शेख सादी के इस मशहूर पद का व्यापक प्रभाव था-

याद दारी के वक्ते जादने तो,

हमा खन्दा बदन्दो तू गिरियां।

आंचुनाजी के बाद मुर्दने तो,

हमा गिरियां शबन्दो तू खन्दा।।[19]

इस्लाम धर्म से असहमति-

जहां इस्लाम धर्म खुदा को सर्वोपरि मानता है, उससे बड़ा और उसकी बराबरी का किसी को नहीं मानता तथा सूफी मत वाले जिसे नूर के रूप में देखते हैं, वहीं कबीरदास गुरू को परमात्मा से बड़ा मानते हैं। उनका यह मानना है कि गुरु ज्ञान का दाता है। यदि गुरू नहीं होता, तो परमात्मा का बोध भी नहीं होता, इसीलिये उन्होंने परमात्मा को गुरू से छोटा माना है-

गुरू गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागो पांय।

बलिहारी गुरू आपकी गोविन्द दियो बताय।।

इसी प्रकार अनेक रीति-रिवाजों का विरोध कबीरदास ने किया, जो इस्लाम धर्म से सम्बन्धित है। कबीरदास जी परमात्मा के प्रेम में इतने मस्त हो जाते थे, कि वे शराब पीने की दावत भी दे देते थे, जबकि शराब पीना और विलासिता की जिन्दगी जीना इस्लाम धर्म के विरुद्ध है।

कबीर द्वारा हिन्दू धर्म का विरोध -

कबीरदास जी भगवान राम और कृष्ण को परमात्मा का अवतार नहीं मानते थे। वे कहते थे, कि मनुष्य, जल और पत्थर, ये परमात्मा नहीं हो सकते। न सीता का विवाह परमात्मा से हुआ है और न परमात्मा ने समुद्र पर पुल बाँधा है।

सिरजन हार न ब्याही सीता, जल पाषाण नहि बन्धा।

X X X X

दशरथ कुल अवतरि नहि आया, नहि लंका के राव सताया।

नहि देवकी गर्भहि आया, नही यशोदा गोद खिलाया।[20]

उन्होने अवतारवाद का भी खण्डन किया, जो उपरोक्त पद से स्पष्ट हो जाता है।

पाखण्ड रहित मानवतावाद का समर्थन :-

कबीरदास एक ऐसे धर्म और समाज की परिकल्पना करते है, जहाँ सबके साथ समानता का व्यवहार हो। सुन्दरलाल के अनुसार- कबीर ने किसी भी लिखी हुई किताब या आदमी में अन्ध विश्वास, दिखावटी हज़, रोजे और नमाज इत्यादि का मज़ाक उड़ाते हुए मुसलमानों को समस्त रूढ़ियों को छोड़ देने का उपदेश दिया। हिन्दुओं को उन्होंने उतने ही जोर के साथ जात-पात, मूंर्ति-पूजा, अवतार, छूआ-छूत, वेद और शास्त्रों के अन्ध-विश्वास छोड़ देने की सलाह दी है। दोनों को उन्होंने प्राणिमात्र पर दया रखने, सबको एक खुदा की औलाद और भाई-भाई समझने, अहंकार त्यागने और सबकी सेवा करने का उपदेश दिया।[21]

कबीरदास जी इस बात की निन्दा करते है, कि जो लोग परमात्मा का अस्तित्व केवल पूर्व में खोजते है, उनके अनुसार ये लोग शैव मत, वैष्णव मत, शक्ति मत, जैन ध र्म और बौद्ध धर्म को ही मोक्ष का साधन मानते है, ये गलत है। इसी प्रकार मुसलमान लोग अल्लाह के अस्तित्व को पश्चिम में मक्का और मदीना तक सीमित कर देते है, उनके अनुसार यह भी गलत है। परमात्मा सर्वव्यापक है, सबकी आत्मा में निवास करता है, उसकी कोई निश्चित जगह नहीं है। सन्त कबीर के अनुसार-

पूरब दिशा हरी को बासा, पश्चिम अलह मकाया।

दिल में खोजि दिलहिं मां खोजो, इंह करीमा रामा।। कबीरदास।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर का पंथ हिन्दू और मुसलमान धर्म से पूर्णरूपेण प्रभावित है। उन्होंने अपने पन्थ में दोनों धर्मो की अच्छाइयों को ग्रहण किया है, उनकी बुराइयों की निन्दा की है तथा समानता पर आधारित मानवता के सिद्धान्त का समर्थन किया है। कबीरदास ने बुन्देलखण्ड निवासियों को भी प्रभावित किया। इनके शिष्यों ने कबीरपन्थ की गद्दियां कालिंजर के सन्निकट नौगवां तथा अमर कंटक में स्थापित की।

इस पन्थ के अनुगामी कबीरपन्थी नाम से विख्यात हुये। ज्यादातर कपड़ा बुनने वाले बुनकर जिन्हें कोरी नाम से पुकारा जाता था, इनके शिष्य हुये।

(ब) गुरु नानक पन्थ का प्रभाव-

गुरु नानक पन्थ अथवा सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरुनानक का जन्म सन् 1469 ई० में वैशाख शुक्ल तृतीया को हुआ था। उन्होंने बाल्यवस्था में फारसी और संस्कृत दोनों भाषाओं पर ज्ञान प्राप्त किया था। इस समय नानक नाम हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्प्रदाओं के लोग रख सकते थे। कुछ दिनों तक गुरुनानक ने पंजाब के नवाब दौलत खाँ लोदी के यहां नौकरी की, उसके पश्चात् उनका मन सांसारिक कार्यो से ऊब गया और वे फकीर हो गये। उन्होंने अपने मुसलमान शिष्य मर्दाना के साथ भारत, लंका, ईरान, अरब आदि देशों की यात्रा की। उन्होंने धर्म का ज्ञान शेख शरफ निवासी पानीपत मुल्तान के पीर बाबा फरीद के उत्तराधिकारी शेख इब्राहिम से धर्म चर्चा के बाद ग्रहण किया। जब गुरुनानक की मृत्यु हुई, उस समय उनकी मृत्यु को लेकर हिन्दू और मुसलमान दोनों में झगड़ा हुआ। हिन्दुओं ने उनकी स्मृति में एक समाधि बनायी और मुसलमानों ने एक मज़ार का निर्माण किया। रावी नदी में बाढ़ आने के कारण दोनों इमारते बह गयी।

गुरुनानक हिन्दू और मुसलमानों के मध्य मेल-जोल और सद्भाव पैदा करना चाहते थे। जब वे मक्का की यात्रा में गये, उस समय उन्होंने वहां एकेश्वर के सिद्धान्त का समर्थन किया और गुरुनानक पन्थ अथवा सिक्ख धर्म का अपने आपको संस्थापक बतलाया और उसका खलीफा अपने आपको घोषित किया।

ला इलाह इल्लल्लाह, गोविन्द नानक खलफल्लाह।[22]

(यानि, अल्लाह केवल एक है, वही गोविन्द है, नानक उसका खलीफा है)

गुरु नानक पन्थ में इस्लाम धर्म का प्रभाव-

गुरुनानक ने अपनी धार्मिक शिक्षा मुसलमान सूफी सन्तों से ग्रहण की। मुख्य रूप से इनके समय में बाबा फरीद, अलाहुक हक, जलालुद्दीन मखइम जहानिया, शेख इसमाइल बुखारी, दातागंज बख्श, आदि सुप्रसिद्ध सूफी सन्त थे, जिनका प्रभाव गुरुनानक की विचारधारा पर पड़ा तथा उन्होंने अपने सम्पूर्ण आध्यात्म दर्शन में उसका प्रतिपादन किया। गुरु ग्रन्थ साहब में इन सिद्धान्तों का खुलासा गुरुनानक ने किया। उनका यह मानना था कि संसार में ईश्वर केवल एक है, वह निराकार, निर्विकार है, वही संसार का रचयिता है, उसे किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है। इन सिद्धान्तो से लगता है, कि वे इस्लाम धर्म से काफी प्रभावित थे तथा कुर्आन में वर्णित अनेक मज़हबी नियमों का पालन उन्होंने किया-

मेहर मसीत, सिद्क मुसल्ला, हक हलाल कुरआन,
शर्म सुन्नत, सील रोजा, होय मुसलमान।

करनी काबा, सच्च पीर कलमा करम नेवाज,

तसबीह सातिश भावसी नानक रक्खे लाज।[23]

यानि दया को अपनी मस्जिद बनाओ, सच्चाई को मुसल्ला बनाओ, इन्साफ को अपनी कुरान बनाओ। विनय को खतना समझो, सुजनता का रोजा रखो, तब तुम सच्चे मुसलमान होगे। नेंक कामों को अपना काबा बनाओ, सच्चाई को अपना पीर बनाओ, परोपकार को कलमा समझो और खुदा की मर्जी को अपनी तसबीह। तब, ऐ नानक खुदा तुम्हारी लाज रखेगा।

नानक पन्थ में हिन्दू धर्म का प्रभाव-

गुरुनानक चूंकि अविभाज्य भारत में उत्पन्न हुये थे, इसलिये यहां के व्यक्तियों के द्वारा अपनाये जाने वाले हिन्दू धर्म का प्रभाव भी उनमें होना स्वाभाविक था। वे वेदान्त दर्शन, उपनिषदों पर भी पूरी आस्था रखते थे। उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और राम को परमात्मा से पृथक माना है और कहा है कि ऐसे लाखों व्यक्ति जो अपने आपको परमात्मा कहते हैं, वे सभी किसी न किसी रूप में परमात्मा की सेवा में लगे रहते हैं। व्यक्ति अपने कर्तव्यों के माध्यम से जनकल्याण के ऐसे कार्य करता है, कि वह समाज के व्यक्तियों को परमात्मा जैसा लगने लगता है और कुछ लोग उसे परमात्मा समझ भी लेते हैं तथा उसकी पूजा साकार और निराकार रूप में करने लगते है, किन्तु गुरू नानक के मत में वह परमात्मा नहीं है। यथा-

जित दर लख्ख मोहम्मदां, लख ब्रह्मा बिश्न महेश।

लख लख राम बडीरिए, लख राहे लख वेश।[24]

(मालिक के दर पर लाखों मोहम्मद, ब्रह्मा, विष्णु महेश और राम खड़े लाखों तरीके से स्तुति करते रहते हैं।)

धार्मिक एकता पर बल-

गुरुनानक का यह मानना है, कि हिन्दू और मुसलमान दोनों एक खुदा के बन्दे हैं। उन्हें धर्म के नाम पर आपस में लड़ना नहीं चाहिये, किन्तु जब उनके हृदय में शैतान अथवा भ्रम उत्पन्न हो जाता है, तब वे लोग अपने को अलग-अलग समझने लगते हैं और आपस में लड़ते भी हैं। उनके मध्य एकता और भाईचारे की भावना होना चाहिये, मजहबी भेद उन्हें भुला देना चाहिये-

बन्दे इश्क खुदाय दे, हिन्दू मुसलमान,

दाता राम रसूल कर, लड़दे बेईमान.....।

हिन्दू जपते राम-राम, मुसलमान खुदाय,

इक्को राम रहीम है, मन में देखो लाय।[25]

उन्होने परमात्मा और खुदा का एकीकरण किया है, एक ही खुदा को विभिन्न पूजा पद्धतियो

के माध्यम से खुश करने के प्रयास किये जाते है, किन्तु खुदा अलग-2 मज़हबो में विभाजित नही होता।

अन्ध विश्वास और व्यर्थ की रीति रिवाजों का घोर विरोध-

गुरुनानक ने व्यक्तियों को यह बतलाया है कि अल्लातआला, परमात्मा उन नियमों का अनुपालन करने के लिये नही कहता, जो बेकार है। उन्होने कहा कि गंगा स्नान,तीर्थ-यात्रा, जप,पूजा-पाठ सब बेकार है। उन्होने 18 पुराण, चारवेद, को व्यर्थ बतलाया और मूर्ति -पूजा का घोर विरोध किया। उन्होने अवतारवाद का भी खण्डन किया, जाति -भेद को मिथ्या बतलाया और ऊँच-नीच की भावना को हानिकारक बतलाया-

जोर न कीजे किसी पर, उत्तम मधम न कोय,

हिन्दू मुसलमान नू,दोहा नसीहत होय।। गुरु गृन्थ साहब

गुरु नानक का यह मानना था, कि इस संसार में कोई न ऊँचा है और न कोई नीचा। जाति, क्षेत्र और धन के आधार पर किसी भी व्यक्ति के साथ पक्षपात नही करना चाहिये।

सदाचार और उत्तम चरित्र पर बल-

गुरु नानक सदैव संयम और सदाचार पर बल देते थे, उन्होने आत्मा की उन्नति के लिये ऐसा करना उचित बतलाया। ऐसा लगता है, कि वे इस सन्दर्भ में सूफी सन्तों के क्रियाकलापों से बहुत प्रभावित थे। वे शरियत,मारफत, उफवा और लाहूत के मुकाबले में धर्म खण्ड,ज्ञान खण्ड, सचखण्ड, कर्मखण्ड को अधिक महत्व देते थे। उन्होने पद्यों का सहारा लेकर मुसलमान और हिन्दू दोनो को धर्मोपदेश दिया, कि वे एक धर्म, एक मालिक, और वह एकमार्ग का अनुसरण करें। यह मार्ग सिक्ख धर्म अथवा गुरुनानक पंथ ही है। गुरुनानक का काल सत्तनत काल और मुगल काल था, इसलिये उनके अनुयायी पूरी तरह से उनके सिद्वान्तो का अनुसरण नही कर सके और उनके पंथ का विभाजन कालान्तर में उदासी सम्प्रदाय और निरंकारी सम्प्रदाय के रुप में हो गया। ये दोनो सम्प्रदाय गुरु नानक का अनुसरण करते है, किन्तु इन दोनो में पर्याप्त अन्तर दिखलाई देता है।

गुरु-शिष्य परम्परा का सूत्रपात-

गुरुनानक ने कबीर की भाँति गुरु को सर्वोपरि माना है। उन्होने विविध व्यक्तियों पर श्रद्धा करते हुये, उन्हे गुरु मानकर उनसे शिक्षा ग्रहण की, यह शिक्षा उन्होने अपने सुप्रसिद्व ग्रंथ गुरु ग्रंथ साहब में संकलित की तथा स्वतः सिक्खों के गुरु बनकर उन्हे सद उपदेश दिये। पंजाब के अनेक शहरो में गुरुद्वारों की स्थापना हुयी, जहां उनके द्वारा रचित गुरुग्रंथ साहब पवित्र ग्रंथ रखे गये, जिनका पाठ वहां होता रहता है। पंजाब के अतिरिक्त भारतवर्ष के अन्य भागों में भी गुरुद्वारे बने। बुन्देला शासको के समय में यह धर्म उदासी सम्प्रदाय

के रुप में बुन्देलखण्ड में आया। कालान्तर में इनके दस गुरु हुये। गुरुनानक, गुरु अंगददेव, अमर दास जी, राम दास जी, अर्जुन देव, हरिगोविन्द, हरराय जी, तेग बहादुर, गुरू गोविन्द सिंह। इसके पश्चात् गुरू शिष्य परम्परा समाप्त हो गयी।

गुरू नानक पंथ की धार्मिक पहचान

अन्य धर्मो की भांति गुरू नानक जी चाहते थे, कि उनके अनुकरणकर्ताओं की अलग पहचान हो, इसलिये उन्होने अपने शिष्यों को यह उपदेश दिया, कि उनके शिष्य एक हाथ में कड़ा धारण करे तथा दूसरे हाथ में धर्म और देश की रक्षा के लिये कटार धारण करें। जब कभी देश और धर्म पर मुसीबत आ जाये, तो वे धर्म-विरोधियों से मुसलमानों की भांति जेहाद करे और उनकों समाप्त करने के लिये कटार का प्रयोग करे। वे देश का सम्मान और धर्म का स्थान ऊंचा रखने के लिये सिर पर कच्छ अथवा पगड़ी बांधे, यह शौर्य की निशानी है। वे लम्बे केश धारण करे, जैसा कि साधु सन्त और महापुरूष रखते आये हे और उन केशों कों स्वच्छ रखने के लिये कंघा और कंघी धारण करे तथा मुख में दाढ़ी धारण करे, यह उनकी धार्मिक पहचान है। इसके अतिरिक्त वे अपने समस्त धार्मिक गुरूओं के प्रति श्रद्धा रखें, गुरू ग्रंथ साहब का पाठ नियमित रूप से करे, लंगर बांटे तथा संयम बनाये रखें।

(स) प्रणामी सम्प्रदाय का प्रभाव -

महामति प्राणनाथ बुन्देलखण्ड में पदार्पण करने वाले एक ऐसे व्यक्ति है, जिन्होने औरंगजेब के शासन के अंतिम काल में प्रणामी सम्प्रदाय को जन्म दिया। सुप्रसिद्व विद्वान सर सुन्दरलाल के अनुसार-प्राणनाथ की एक खास पुस्तक 'कयामतनामा' है, जिसमें उन्होने साफ लिखा है कि "तुम सबका चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, एक ईमान होना चाहिये"। इस पुस्तक में उन्होने यहूदी, ईसाई, मुसलमान और हिन्दू, सबके पीर-पैगम्बरों और महात्माओं की जीवनियां दी है और उनमें मौलिक समानता दर्शाई है। ईश्वर के लिये उन्होने उल्लाह और खुदा दोनों नामों का उपयोग किया है।[26]

ऐसे महापुरूष का जन्म गुजरात प्रदेश के जामनगर शहर में वि० स० 1675 में हुआ था। तद्नुसार सितम्बर 1618 में यह उत्पन्न हुये। इनके बचपन का नाम महराज ठाकुर था। ये लोहड़ा जाति के लव वंशीय क्षत्रिय थे। इनके पिता का नाम केशवराय ठाकुर था और माता का नाम धन बाई था। इनका परिवार धार्मिक प्रवृत्ति का था तथा इनके पिता केशवराय जाम नगर में दीवान के पद पर नियुक्त थे। 12 वर्ष की आयु में इन्होनें स्वामी देवचन्द जी से दीक्षा ग्रहण की और निज नाम मंत्र ग्रहण किया। इनकी पत्नी का नाम बाई जूराज था, जो पतिभक्त और पति मार्ग की अनुगामिनी थी।

ये गुरू की आज्ञा से सन् 1646 में अरब देशों की यात्रा पर गये, इसके पश्चात्

इनकी नियुक्ति भी जामनगर दीवान के पद पर हुयी। इनके गुरू जनजागरण का काम इन्हें सौंपकर सन् 1655 ई० में सतगुरू स्वामी धाम सिधार गये। इसी समय जामनगर के राजा ने इन पर झूठा आरोप लगाया और इन्हे नजर कैद कर लिया। इससे इनका मन दुःखी हुआ और इन्होने राजकाज छोड़ दिया।

जनजागरण का काम, जो इनके गुरू ने इन्हे सौपा था, उसे पूरा करने के लिये ये पोरबन्दर, पाटन, भांडवी, भोजनगर तथा ठट्ठानगर गये। बाद में ये स्वामी लालदास के नाम से विख्यात हुये। सूरत नगर में इन्हें प्राणनाथ की उपाधि से विभूषित किया गया। कु० कमला शर्मा के अनुसार- मेंड़ता की मस्जिद में मुल्ला द्वारा अजान में उच्चारित 'ला इलाह इल्लल्लाह मुहम्मदुर्रसूल्लिल्लाह' सुनकर इन्हे हिन्दू-मुस्लिम धर्म ग्रंथों में ऐक्य का आभास हुआ।[27] इस समय औरंगजेब धार्मिक कट्टरता अपनाकर हिन्दुओं का उत्पीडन कर रहा था। उन्होने औरंगजेब को समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु वह समझ नही सका। सन् 1735 में इन्होने हरिद्वार की यात्रा की, इस समय यहाँ कुम्भ का मेला लगा हुआ था, इनका शास्त्रार्थ यहाँ अन्य सम्प्रदायों के सन्तो के साथ हुआ तथा इन्हे इस स्थल पर 'विजयमिंनद निष्कलंक बुद्ध' की उपाधि से विभूषित किया गया।

धर्म का यथार्थ समझने के लिये वे हिन्दू राजाओं से मिले, ताकि औरंगजेब पर अंकुश लग सके। सर्वप्रथम इनकी मुलाकात उदयपुर के राजा राजसिंह से हुयी। उसके पश्चात् सन् 1680 में मंन्सौर आ गये। यहां हिन्दु और मुसलमान दोनो ही इनके शिष्य बने। इसके पश्चात् इन्होने सीतामऊ, नवलाई, अवन्तिकापुरी (उज्जैन), बुढानपुर तथा औरंगाबाद की यात्रा की। यहां के राजा भाव सिंह थे, जो इनसे प्रभावित हुये। मऊ के सन्निकट इनकी मुलाकात बुन्देला राजा छत्रसाल से हुयी, छत्रसाल इनके शिष्य हो गये। पन्ना, छत्रसाल की राजधानी थी, यहां विजय दशमी के दिन, इन्होने छत्रसाल को शत्रुओं से लड़ने के लिये प्रेरित किया और एक शक्तिशाली तलवार भी दी तथा उन्होने पन्ना की धरती में छिपे हुये हीरों का पता भी बतलाया। यथा-

सत्ता तेरे राज में धक-धक धरती होय,
जित-जित घोड़ा पग धरे तित तित-हीरा होय।

इन्होने अपने जीवन का अंतिम समय छत्रसाल के सन्निकट पन्ना में व्यतीत किया। इनकी मृत्यु सन् 1694 में हुयी, यहीं पर इनके धर्म की मुक्तिपीठ पद्यमावती पुरी के नाम से विख्यात हुयी। इन्हे धर्म की प्रेरणा सन् 1687 में चित्रकूट में प्राप्त हुयी थी। जब ये अपने शिष्यों सहित चित्रकूट गये थें।

महामति प्राणनाथ के धर्मोपदेश- इन्होने अपने धर्म के सन्दर्भ में, जो उपदेश दिया, उनका संकलन सन् 1695 ई० में इनके शिष्य केशवदास द्वारा किया गया। यह 14 लद्यु ग्रंथों का संकलन है तथा इसका नाम कुलजम स्वरूप रखा गया। इस ग्रंथ में 24 प्रकरण और

अठारह हजार सात सौ अट्ठावन चौपाइयां है। इसमें गुजराती भाषा में लिखित दो ग्रंथों 'प्रकाश' एवं 'कलश' का हिन्दी भाषान्तरण स्वयं महामति प्राणनाथ ने किया। दोनों भाषाओं के दो-दो ग्रंथ आ जाने से संकलन में ग्रंथ संख्या सोलह हो गयी। कुछ विद्वान इनकी अन्तिम रचना 'कयामतनामा', जो कि दो भागों में विभक्त है- कयामतनामा छोटा, कयामतनामा बड़ा, को दो भिन्न रचनाये मानते है। सोलह सौ बासठ पृष्ठों के विशाल ग्रंथ में संकलित वाणी ग्रंथों का विवरण इस प्रकार है.................... श्रीरास, अंजील, प्रकाश गुंजराती, षटरूती, कलस, गुजराती, प्रकाश हिन्दुस्तानी, (जबूर) कलस, हिन्दुस्तानी (तौरेत) सनंध किरंतन, खुलासा, खिलवत, परिक्रमा, सागर, सिनगार, सिंधि, मारफत सागर, कयामत नामा छोटा, कयामत नामा बड़ा।[28]

उपरोक्त ग्रंथों में वेद, शास्त्र, पुराण, तथा कुर्आन के उपदेशों का यथार्थ वर्णन है, इनको पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है, कि इनका मत-

1- विश्व धर्म समन्वय की भावना का समर्थन करता है।

2- राष्ट्रीय एकता का पक्षधर है।

3- भक्ति भावना, साघना, जागरूपता, सामाजिक उत्थान और नैतिकता का समाधान करता है।

4- आत्मा और परमात्मा के अलग-2 अस्तित्व को स्वीकार करता है और दोनो के मिलन से मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करता है।

5- सृष्टि सृजन और माया के स्वरूप को स्वीकार करता है।

6- पौराणिक अवतारवाद, देवी देवता के अस्तित्व, यक्ष गन्धर्व पर विश्वास करता है।

7- स्वर्ग-नरक, परमधाम तथा परम ब्रह्य स्वरूप राधाकृष्ण श्रीराज श्यामा की लीलाएं, रास, हास, परिहास, विलास, श्रृंगार,प्रेम लक्षण, कोप भक्ति की पराकाष्ठा के रूप में स्वीकार करता है।

8- इनका धर्म परमात्मा को साकार और निराकार न मानकर उसके शुद्व चिन्मय स्वरूप की सूक्ष्म अवधारणाओं पर विश्वास करता है

गुरू प्राणनाथ स्वतः बुद्व भगवान के निष्कलंक अवतार माने गये है, किन्तु इनका मत वेदो के अतिरिक्त कतेब के चारो ग्रंथों जबूर, तौरात, एंजिल और कुर्आन के सिद्वान्तों को भी स्वीकार करता है, क्योकि इन ग्रंथो के कुछ सिद्वान्त सीधे और सरल है, जो विश्व मानवतावाद का समर्थन करते है।

कृष्णलीला से जुड़ा हुआ आध्यात्मिक सिद्वान्त-

श्री प्राणनाथ का यह मानना है, कि संसार में कृष्ण जैसी महान विभूतियां

जनकल्याण के लिये अवतार लिया करती है, जो अपने-अपने युग में विशेष लीलाये किया करती है। जिस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने ब्रज भूमि में विशेष लीलाये की और वहां की जनता को अपने परमब्रह्म स्वरूप से परिचित कराया और कंस जैसे दुष्ट राक्षस का बध किया।

इनकी लीलाओं को तीन रूपों में देखा जाता है, पहला स्वरूप परमात्मा का माधुर्य स्वरूप है, जो व्यक्ति को अपनी ओर आर्कषित करता है। दूसरा स्वरूप ऐश्वर्य का स्वरूप है, जो द्वारका नगरी में दिखलाई देता है। भगवान श्री कृष्ण जब बृजवासियों को विरह में छोड़कर चले जाते है, उस समय ब्रज के ग्वालबाल यशोदानन्द और गोपियां अत्यन्त दुखः का अनुभव करते है, इसी प्रकार यह मन परमात्मा के वियोग में दुःखी होता है और उसे पाने के लिये अथक प्रयास करता है। यहाँ वियोगी जन भक्त है और प्रियतम परमात्मा है, जिसे लोग पाना चाहते है। यह जीवात्मा जब चेतन अवस्था में होती है, उस समय वह परमात्मा से मिलने के लिये बेचैन हो जाती है और वह उससे साधना के पश्चात् मिलाता भी है, यहां भगवान श्रीकृष्ण परमब्रह्म है, जिसे प्रणामी सम्प्रदाय के लोग मानते हैं।

प्रणामी सम्प्रदाय का दर्शन-

प्रणामी सम्प्रदाय के लोग श्रीकृष्ण और राधा की उपासना करने की सलाह देते है। वे राधा और कृष्ण कें संबंध को अलौकिक मानते है। उनका मानना है कि सत अक्षर ब्रह्म 12 हजार कलाओं वाला है, वही ब्रह्म को स्वलीला तथा द्वैत आकृति प्रदान करने वाला है, परम ब्रह्म परमेश्वर के बिना यह संसार निरर्थक है और इसका कोई अस्तित्व नही है, यही विश्व के स्वामी है। प्रणामी दर्शन के अन्तर्गत परमब्रह्म परमात्मा, जो सृष्टि, ईश्वर सृष्टि तथा ब्रह्म शक्ति का रचयिता है, यही सृष्टि का कारण है और यही सृष्टि की उपलब्धि है। यह सर्वशक्तिशाली है, यही योगमाया है, यही ज्ञान का स्वरूप है, यही मोक्ष प्रदान करने वाला है, यही सृष्टि का मूल तत्व है तथा यही जीव को चार प्रकार की मुक्ति - सामीप्य, सालोक्य, साऊप्य, तथा सामुज्य, दिलाता है।

प्रणामी सम्प्रदाय हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल देता है। और एकेश्वरवाद के सिद्धान्त को मानता है। इस सम्प्रदाय के लोग छुआ-छूत और जात-पात को नही मानते। इनका मानना है, कि कृष्ण, मोहम्मद, देवचन्द्र, प्राणनाथ और छत्रसाल हमारे सम्मानित और पूज्य महापुरूष है, इन पर श्रृद्धा करनी चाहिये।

बुन्देलखण्ड के मौलिक धर्म पर इस्लाम का प्रभाव

बुन्देलखण्ड में मानव बस्तियों का अस्तित्व अति प्राचीन काल से है। उस समय व्यक्ति यहां की कन्दराओं में निवास करता था और प्रकृति से उत्पन्न वस्तुओं का उपयोग जीवन यापन के लिये करता था। बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में पूर्ण पाषाण युग और उत्तर-पाषाण युग के अस्त्र-शस्त्र तथा शैल-चित्र उपलब्ध होते है, इनसे तद्‌युगीन प्राचीन बस्तियों और मानवों की क्रियाओं का विस्तृत अध्ययन होता है। ये स्थल बांदा, नरैनी, ललितपुर देवगढ़, पन्ना, रीवां, सीधी और सहडोल के आस-पास उपलब्ध होते है, जो उस युग के इतिहास के संबंध में प्रकाश डालते है।[29]

इस क्षेत्र में इतिहास का शुभारम्भ कृषि के प्रयोग के बाद प्रारम्भ हुआ। इस युग में भी व्यक्ति कन्दराओं में निवास करता था तथा आहार के लिये फल-फूल, कृषि उपज का प्रयोग करता था। अपने निवास -स्थलों को विविध चित्रों से सजाता था। डा० कन्हैयालाल अग्रवाल के अनुसार- अवकाश के क्षणो में मनोरंजन हेतु विचित्र प्राकृतिक दृश्यों और पशुपक्षियो का चित्रण किया, ऐसे बहुत से ग्रहचित्र इस क्षेत्र में विन्ध्य की अपत्यकाओं में बिखरे पड़े है। गैरिक तथा अन्य रंगों से अंकित ये चित्र मानव की प्राचीनतम अनुभूतियों के द्योतक है।[30] इस परिक्षेत्र में शैलचित्रों का अन्वेषण सर्वप्रथम सिल्वेराड ने किया, उसके पश्चात् काकबर्न ने चित्रकूट और हनुमानधारा के पास मारकुण्डी के सन्निकट सैकड़ों शैलचित्रों की खोज की।[31]

बुन्देलखण्ड में धर्म का उदय कब हुआ, यह सर्वथा अज्ञात है, किन्तु इस देश का प्रथम नरेश चेदि वंशीय बसु था, जिसका वर्णन श्रग्वेद में भी उपलब्ध होता है। इसके पश्चात् दशार्ण देश का वर्णन उपलब्ध होता है। यही से उनकी धार्मिक भावनाओं का पता भी लगता है। जब बौद्ध धर्म इस क्षेत्र में फैला, तभी से धर्म के सन्दर्भ में कुछ जानकारी यहां उपलब्ध होती है। बौद्ध कथाओं के अनुसार -इस वंश के शासक उपचर के पांच पुत्र थे, जिन्होने हत्थिपुर, अस्सपुर, सिंहपुर, उत्तर-पंचाल और दद्‌दपुर नगर बसाये। [32] मौर्य युग में बुन्देलखण्ड में मौर्यो के प्रभाव के संकेत मिलते है, अनेक अभिलेख उस युग के उपलब्ध होते है। इस परिक्षेत्र में सम्राट अशोक ने धर्म का प्रचार-प्रसार किया था। [33] मौर्य युग के पश्चात इस क्षेत्र में शुंगों का भी अस्तित्व रहा, उसके पश्चात मित्र शासक, जिनकी संख्या पच्चीस है, इस क्षेत्र में रहे। डा० कन्हैयालाल अग्रवाल के अनुसार - कौशाम्बी के मित्र शासकों के नाम बृह अथवा वृहस्पतिमित्र, ब्रह्ममित्र, वरुणमित्र, गोमित्र, शिवमित्र, जेठमित्र, देवमित्र, आदि है। कौशाम्बी से ज्ञात कुछ अन्य शासको के नाम शुंगवर्मा, बवघोष, अश्वघोष, ज्येष्ठगुप्त, पर्वत, इन्द्रदेव, विष्णुदेव, धनदेव आदि है।[34] मित्र शासको के अतिरिक्त महावंशीय शासकों का भी अस्तित्व इस क्षेत्र में था। इनके सन्दर्भ में जानकारी कौशाम्बी और भीटा दोनो में उपलब्ध होती है। इस वंश का प्रसिद्ध शासक कौत्सीपुत्र प्रौष्ठश्री था तथा तृतीय

शासक भद्रमघ था। इसके बाद बोधि वंश, नागवंश, शकवंश, वाकाटक वंश के सन्दर्भ में भी जानकारी उपलब्ध होती है। ये लोग विविध धर्मो के अनुयायी थे तथा सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में इस समय वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म फैले हुये थे।

सन् 319ई0 में गुप्तों का शासन प्रारम्भ हुआ। इस वंश का संस्थापक श्रीगुप्त था। उसके पश्चात् घटोत्कक्ष, चन्द्रगुप्त प्रथम, चन्द्रगुप्त द्वतीय, समुद्रगुप्त आदि प्रसिद्व शासक हुऐ, जिनका प्रभाव बुन्देलखण्ड में था। ये लोग शैव मत, वैष्णवमत तथा शक्तिमत के उपासक थे। देवगढ़ आदि स्थानों में इस युग के अनेक धार्मिक स्थल उपलब्ध होते है। ईसा की पाँचवी शताब्दी तक गुप्तों का प्रभाव और उनकी धार्मिक भावना बुन्देलखण्ड में बनी रही। इस युग के अनेक अभिलेख, सिक्के, मोहर आदि नर्मदा और यमुना के तट पर उपलब्ध होते है।

''कालिन्दी नर्मदयोर्मध्य पालयति''।[35]

गुप्तों के अतिरिक्त इस क्षेत्र में परिव्राजक महाराज के पाँच उत्तराधिकारियों ने शासन किया। इसका प्रथम शासक देवादय और चतुर्थ शासक हस्ति था। उसके पश्चात यहाँ उच्च्य कल्प में ओधदेव तथा कुमारदेव का शासन रहा। उसके पश्चात पाण्डुवंशीय नरेशों ने यहाँ काफी समय तक शासन किया। कौशाम्बी और उसके आस-पास पाँचवी शताब्दी के अन्त तक इनका शासन रहा। उसके पश्चात हुणो का आक्रमण हुआ। ऐरण से प्राप्त स्तम्भ लेख के द्वारा यह ज्ञात होता है, कि भानुगुप्त ने अपने मित्र गोपराज के साथ हूणों के साथ युद्व किया, जिसमें हूणों की विजय हुयी। इसका उल्लेख एक अभिलेख में है।[36]

6 वीं शताब्दी में जब वर्धन साम्राज्य का उदय हुआ, उस समय यह क्षेत्र उसके साम्राज्य का अंग बना। इसके शासनकाल में हवेनसांग नामक चीनी यात्री भारतवर्ष आया था, जिसने बुन्देलखण्ड की यात्रा भी की थी। खजुराहों में स्थित हनुमान जी विशाल मुर्ति की पाद-पीठिका में हर्षसंवत् 306 का उल्लेख है, इससे यह बोघ होता है, कि जेजाकभूक्ति का शासक उसके आधीन था तथा हर्षचरित में भी इसका उल्लेख है। उस समय इस क्षेत्र को विन्ध्यआटवी के नाम से पुकारा जाता था। सम्राट हर्ष पहले हिन्दू धर्म का अवलम्वी था, बाद में बौद्ध बना। सन् 838 ई0 के लगभग बुन्देलखण्ड में गुर्जर प्रतिहारों का अस्तित्व बढ़ गया। ये लोग हिन्दू धर्मावलम्बी थे। इस सन्दर्भ में एक वाराह ताम्रपत्र उपलब्ध हुआ है, जो 886 ई0 का है।[37]

गुर्जर-प्रतिहारों के समय में ही चन्देलों का अभ्युदय हुआ। इस वंश का शुभारम्भ नन्नुकदेव से होता है, जिसके उत्तराधिकारी वाकपति, जयशक्ति,विजयशक्ति हुये। इनके नाम पर इस प्रदेश का नाम जेजाकभुक्ति हुआ तथा यही चन्देल कहलाये। [38] बुन्देलखण्ड के एक भाग में कल्चुरियों का अस्तित्व रहा। ये लोग शैव धर्म के उपासक थे तथा इनके बनवाये कई धार्मिक स्थल उपलब्ध होते है।[39]इस वंश का अस्तित्व 1041 तक रहा तथा इसका यशस्वी

नरेश गांगेयदेव था, जिसका पुत्र लक्ष्मी कर्ण था।

सन् 1022 के लगभग बुन्देलखण्ड क्षेत्र में महमूद गजनवी का आक्रमण हुआ, जिससे यहाँ के लोग एक विदेशी धर्म से परिचित हुये, जिस धर्म का नाम इस्लाम धर्म था। यह मुर्ति-पूजा विरोधी और एकेश्वरवाद का समर्थक था। इस धर्म का सुप्रसिद्ध ग्रंथ कुआॅन शरीफ था, जिसकी रचना हजरत मोहम्मद साहब ने की थी। इस धर्म के लोग हिन्दुओं और मूर्ति - पूजकों को काफिर समझा करते थे और उनके धार्मिक स्थलों को नष्ट करते थे। मूर्तियों को तोड़ते थे तथा उनके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण करते थे। इस्लाम धर्म का विकास सल्तनत काल में प्रारम्भ हुआ, मुगल काल के अन्त तक बराबर होता रहा।

इसके विपरीत यहाँ के मौलिक धर्म शासकीय बन्धन और उनके ऊपर होने वाले धार्मिक उत्पीडन के कारण अधोपतित होते चले गये, जिसे इस्लाम का प्रभाव माना जा सकता है।

बुन्देलखण्ड के मौलिक धर्म-

बुन्देलखण्ड के निवासी आदिकाल से लेकर मध्ययुग तक जिस उपासना पद्वति का अनुसरण करते आये है, उन्हे निम्नालिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1- प्रकृति उपासना- बुन्देलखण्ड में रहने वाला प्रारम्भिक मानव प्रकृति के आधीन था, इसलिये वह प्रारम्भ से ही प्रकृति का उपासक रहा। बुन्देलखण्ड के निवासी सूर्य, चन्द्रमा, पर्वत, वृक्ष, की उपासना करते थे। मकर संक्रान्ति के अवसर पर सूर्य की उपासना की जाती थी तथा इस अवसर पर पवित्र सरिताओं की पूजा और उनमें स्नान करना धार्मिक कृत्य माना जाता था। यहाँ प्रवाहित होने वाली पैसुनी, यमुना, धसान, बेतवा,केन आदि सरिताओं में स्नान करना पवित्र माना जाता था। इसी प्रकार बटवृक्ष, पीपल, आंवला और तुलसी के पौधे पूज्य माने जाते थे तथा पर्वतो की पूजा भी होती थी। मुख्य रुप से सूर्य की उपासना इस क्षेत्र में अधिक लोकप्रिय थी। के०के०शाह के अनुसार-It signified the Sun-Go, In various ritual performence wheel was employed as Sun-symbol from very early tims as it represent the shape as well motion of the Sun.[40]

इस प्रकार हम देखते है कि प्रकृति उपासना का व्यापक क्षेत्र बुन्देलखण्ड में था, किन्तु समय-समय पर प्रकृति उपासना में अनेक परिवर्तन होते रहे तथा उन्हे कालान्तर में बौद्व, जैन, हिन्दू धर्म और उनके विविध तीज-त्योहारों के साथ जोंड़ दिया गया। अब प्रकृति उपासना का कोई पृथक अस्तित्व नही रह गया।

इस्लाम के आगमन के पश्चात प्रकृति उपासना में परिवर्तन-

बुन्देलखण्ड में जब इस्लाम का आगमन हुआ, उस समय यहां की धार्मिक स्थिति में व्यापक परिवर्तन हुये और ये परिवर्तन प्रकृति उपासना के क्षेत्र में भी हुआ। प्राचीन काल

में प्रकृति उपासना को वैदिक धर्म का अनुसरण करने वाले व्यक्तियों ने अपना लिया था। वे सूर्य, अग्नि, वरुण इन्द्र की उपासना करते थे। कालान्तर में जब सनातन धर्म का उदय हुआ, उस समय प्रकृति उपासना सनातन धर्म के साथ जुड़ गयी तथा उसे भगवान राम और कृष्ण के चरित्र के साथ जोड़ा गया। शिव उपासकों ने पीपल और वट वृक्ष को महत्व दिया। वैष्णव उपासकों ने तुलसी और आंवला को पूजा। तन्त्र साधकों ने इमली और चमेली के वृक्षों को साधना का केन्द्र बनाया। इसी प्रकार सूर्य, चन्द्रमा, पर्वत, तथा अन्य गृह नक्षत्र उपासना से जुड़े। इस्लाम के आगमन के पश्चात प्रकृति उपासना प्रतीक के रुप में रह गयी, किन्तु इस्लाम में प्रकृति उपासना के रुप में चन्द्रमा की प्रतीक मानकर उसकी उपासना की गयी, क्योकि ईद आदि के त्योहार चन्द्रमा को प्रतीक मानकर मनाये जाते है। इसी प्रकार हिन्दुओ में कार्तिक-पूर्णिमा, व्यास-पूर्णिमा, तथा करवा चौथ और यम द्वितीय चन्द्र उपासना से संबधित त्योहार है। कालिजर के सन्निकट ग्राम रसिन में कुछ ऐसी मूतियों उपलब्ध हुयी है, जिसमें सूर्य, चन्द्रमा, हाथ का पंजा तथा स्त्री पुरुष का जोड़ा बना हुआ है, इससे लगता है, कि जो प्रकृति पूजा कभी प्रमुख धर्म के रुप में यहां स्वीकार की जाती थी, वह अब केवल आदि वासियों के मध्य बहुत थोड़े क्षेत्र में सीमित थी। अब उसकी कोई पृथक पहचान धर्म के रुप में नही थी।

पशु उपासना-

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में पशु उपासना होती थी, यद्यपि इसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नही था। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत भगवान के दस अवतार माने जाते थे। इनमें वाराह अवतार स्वतन्त्र रुप से पशु-उपासना की और संकेत करता है, इसके अतिरिक्त सिंह का सिर और नर के धड़ के रूप में नरसिंह की उपासना भी यहाँ होती थी। श्री एस०डी० त्रिवेदी के अनुसार -वराह की मूर्ति-नृवराह तथा पशु वराह दोनों रूपों में प्राप्त होती है। नृवराह की मूर्तियाँ अधिक है। एरण से दोनों प्रकार की गुप्तकालीन प्रतिमाये प्राप्त हुयी है। पशु वराह की एक विशाल मूर्ति के पृष्ठ भाग पर अनेक देवी देवताओं को उकेरा गया है। पृथ्वी थूथन के पास लटकती हुयी दिखलाई गयी है।[41] इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड में गाय को सर्वाधिक माना गया है तथा इसकी पूजा अनेक अवसरों पर होती थी। गाय के अतिरिक्त वृषम की भी पूजा नंदीश्वर के रुप में होती थी। नंदीश्वर भगवान शिव का वाहन और धर्म अवतार के रुप में पूज्य था। वृषभ के अतिरिक्त हाथी भी यहाँ का पूज्य पशु माना जाता था तथा पितृ पक्ष की अष्टमी के दिन हाथी की पूजा प्रत्येक गृह में होती थी। इसके अतिरिक्त यहाँ नागों की पूजा का भी विधान था। श्रावण मास की पंचमी के दिन यहाँ नागों की पूजा विशेष रुप से होती थी। नाग भगवान शिव के कंठहार तथा भगवान विष्णु के शैय्या के रुप में विख्यात है। यहाँ के नागवंशीय शासक शिव-उपासना के साथ-साथ नागों की पूजा भी करते

थे। हिन्दू धर्म के अतिरिक्त जैन और बौद्ध धर्म में भी पशुओं का सम्मान किया जाता था। जैन धर्म के 24 तीर्थाकंर विभिन्न पशुओ के चिन्ह धारण करते थे। 1- ऋष्म-वृष 2- अजित-गज 3- सम्भवअश्व, 4-अभिनदंन-कपि 5-सुमति-कौचं 6-पदमप्रभा-रक्तब्ज 7-सुपार्श्व-स्वास्तिक 8- चन्द्र प्रभा-शशि 9- सुविध-मकर 10-शीतल-श्रीवत्स 11-श्रेयांश-मण्डक 12- वासुपूज्य-महिष 13-विमल-शूकर 14- अनन्त-श्येन 15-धर्म-बजृ 16-शांति-मृग 17-कुन्थ-छाग 18-अर-नन्द्यावर्त 19-मुल्ली-घट 20-मुनि-कूर्म 21-सुव्रत- नीलोत्पल 22-नेमि-शेख 23-पार्श्व-फणी 24-महावीर-सिंह। इसके अतिरिक्त भैसा, बकरा आदि देवी मन्दिरों में बलि पशु के रुप में मान्य थे।

अनेक योगिनी देवीयाँ बुन्देलखण्ड के विविध क्षेत्रों में उपलब्ध होती थी, जिनका धड़ नारी के समान तथा सिर पशु के समान था। ये योगनियां देवी के रुप में पूज्य थी, चित्रकूट मडंल के लुखरी ग्राम में योगनी की अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध होती है।

श्रीमती विद्या दहेजिया के अनुसार- Despite the lack of artistic elegence, the lokhri yoginis have a special fascination which lies in the fact that most of them have animal heads , with the human face being a rare accurrence . there are no inscription at lokhari and the names used in the folling pages to describe the yoginis are taken generally from one or other textual list of these goddesses.[42]

उपरोक्त साक्ष्यों के आधार पर इस धारणा की पुष्टि होती है, कि यहाँ पशु पक्षियों की उपासना होती थी और उसके दर्शन शुभ माने जाते थे। मुख्य रूप से प्रातः काल मछली का देखना और नीलकंड का दर्शन अत्यन्त शुभ था। यथा-

नीलकंठ के दर्शन पाये, घर बैठे गंगा नहाये।

यहाँ पर अनेक तंत्र विज्ञानी मूसक और उल्लू से अपने तंत्र की सिद्धी करते थे। मूसक गणेश का वाहन और उल्लू लक्ष्मी का वाहन है और गरुण विष्णु का वाहन तथा स्वामी कार्तिकेय की सवारी मोर है। इस प्रकार सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में पशु पक्षियों की उपासना होती थी और उनका धर्म में विशेष महत्व था।

इस्लाम के आगमन के पश्चात पशु उपासना में परिवर्तन-

युग परिवर्तन के साथ व्यक्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। जब बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मुसलमानों का प्रभाव बढ़ा और उससे प्रभावित होकर यहाँ के व्यक्ति इस्लाम धर्म में दीक्षित हुये, उस समय उनकी धार्मिक भावनाओं में व्यापक परिवर्तन हुआ। अब गाय उनके लिये उतनी श्रृद्धेय नही रह गयी, चूँकि मुसलमान लोग मांसाहार करते थे, इसलिये वे बकरे, भैसे, ऊँट, भेड़, गाय आदि को बकरी ईद के मौके पर कुर्बानी के पशु समझने लगे। कुछ हिन्दू भी इनसे प्रभावित हुये, इन्होने देवी मन्दिरों और शक्तिपीठों में बकर व भैसे की कुर्बानी देना शुरू कर दी और वे इसे देवी का प्रसाद समझकर खाने लगे। किन्तु

मुसलमानों के लिये सुअर अभी नापाक पशु बना रहा। यदि कोई सुअर मस्जिद में धुस जाता था अथवा कोई व्यक्ति शरारतन सुअर मारकर मस्जिद के पास डाल आता था तो इससे सम्प्रदायिक विवाद उठ खडा होता था। कट्टर हिन्दू सम्प्रदाय के लोग और वैष्ठाव धर्म के अनुगामी गाय तथा अन्य पशुओं को अभी भी पवित्र समझते थे और उनकी पूजा करते थे। उनके लिये गाय का गोबर, गोमूत्र और गाय का दूध तथा घृत अत्यन्त पवित्र थे तथा वे इसका इस्तेमाल धर्मोपासना में करते थे।

पंचदेव उपासना-

चन्देल युग में बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में पंचदेवो की उपासना के साक्ष्य उपल्ब्ध होते है। इन पंचदेवों में शक्ति, गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, और महेश गिने जाते है, यद्यपि इस क्षेत्र में ब्रह्मा की जगह सूर्य की उपासना होती थी। पंचदेव की उपासना के सन्दर्भ में जगनिक द्वारा रचित आल्हखण्ड में विवरण इस प्रकार उपलब्ध होता है-

सदा भवानी दाहिने गौरी पुत्र गणेश।
तीन देव रक्षा करें ब्रह्मा विष्णु महेश।।

ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार - चन्देलो की वंशावली का अवलोकन करने से ज्ञात होता है, कि अत्यन्त प्रिय इष्टदेव शिव भी बदलते है। चन्देल शासको की प्रथम अवली में सभी विष्णु के भक्त थे और यशोवर्मन ने विष्णु मन्दिर बनवाये थे।[43] इस समय अनेक सम्प्रदाय और छोटे -छोटे मत बुन्देलखण्ड की धरती में फल -फूल रहे थे। इतिहासकार इदीसी के अनुसार भारतवर्ष की प्रमुख जातियों में इस समय बयालीस मत -सम्प्रदाय हो गये है।

इनमें से कुछ ईश्वर की सत्ता तो मानते है, परन्तु पैगम्बर की नही। कुछ दोनो की स्थिति अस्वीकार करते है। कुछ पत्थर की प्रतिमा की अलौकिक सत्ता में विश्वास करते है और कुछ पावन पत्थर को पूजते है।[44]

इस युग में नारी की पूजा शक्ति के रुप में की जाती थी। बुन्देलखण्ड में माता की प्रभुता को सर्वश्रेष्ठ समझा गया, इसलिये शक्ति की उपासना यहाँ हुयी। केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार -ई०पू० प्रथम सदी तक शक्ति अर्चना का पर्याप्त विकास हो चला था। उस सम्प्रदाय का स्वरुप आगे बढने पर रहस्य चमत्कारों से आपूर्ण होता गया तथा उनकी मान्यता ऐहिक जीवन के अत्यधिक निकट आती गयी। चन्देल युग तक पहुँचने पर शाक्तों का नवरुप तांत्रिक हो गया। उन्होने अपनी परिचर्या को रहस्यमय तो बनाया ही, उसमें नारी, भोग और तंत्र को खूब स्थान दिया।[45]शक्ति के अतिरिक्त यहाँ बहुदेववाद का पूजन प्रारम्भ हुआ। मन्दिरों के अतिरिक्त अनेक घरों में अपने-अपने ईष्ट देवों की स्थापना की गयी। उनकी मूर्तियाँ स्थापित की गयी तथा कुछ लोगो ने उनके लिये मंदिरों का निर्माण भी कराया। इन देवताओं को विविध विधियों और तीज त्योहारो के माध्यम से पूजा जाता था, यह पूजा पद्धति इस्लाम के आगमन के पूर्व तक बनी रही।

इस्लाम के आगमन के बाद पंचदेव उपासना में परिवर्तन-

बुन्देलखण्ड में मुसलमानों का प्रवेश एकेश्वरवाद के नारे के साथ हुआ। उनका यह खुदा निराकार, सर्वव्यापी और सम्पूर्ण सृष्टि का सृजेता था। उनके एक मात्र पैगम्बर हज़रत मोहम्मद साहब थे और एक मात्र ग्रंथ कुआ़न शरीफ था। वे अपने धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म के व्यक्तियों को काफिर समझते थे और उन्हें धर्म के रास्ते पर लाने के लिये जेहाद किया करते थे। मुसलमानों ने जब भारतवर्ष और बुन्देलखण्ड में प्रवेश किया, तो उन्होने यहाँ के धार्मिक स्थलों को नष्ट करने के लिये जेहाद का रास्ता अपनाया। बुन्देलखण्ड के लोग तुर्कों की धर्मभावना को स्वीकार नही कर सके। उन्हे वे अपने धर्म का विनाशक समझते थे। अतः गुजरात और महाराष्ट्र के राजाओं की भांति उन्होने अपने नगरों में मस्जिद बनाने का मौका नही दिया। चन्देल शासक उनसे बराबर घृणा करते रहे और उनके विरुद्व संघर्ष करते रहे। मुसलमानो ने जो आधात यहां के मौलिक धर्म पर किया, वह कटटर पंथी हिन्दूओ के द्वारा सहन नही किया गया, किन्तु शक्ति, भय और प्रलोमन के कारण जिन लोगो ने मौलिक धर्म का परित्याग करके इस्लाम धर्म गृहण किया, वे लोग इस्लामी संस्कृति और धर्म का अनुसरण करने लगे।

हिन्दू धर्म और उसकी उपासना पद्धति का मुसलमानों पर भी प्रभाव पड़ा। जहां सूफी सन्त की दरगाहे होती थी, वहां हिन्दूओं के भक्ति संगीत की तरह ऊर्स और कव्वालियों के आयोजन होने लगे तथा उनके तीज-त्योहार हिन्दू धर्म संस्कृति से प्रभावित हुये। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार-कुछ ऐसे सम्प्रदाओं का उदय भी हुआ, जो इस्लाम धर्म से प्रभावित थे। लेखक के अनुसार-यहां के मुसलमानों में प्रायः परिवर्तित हिन्दू ही अधिक है। इनके सब प्रकार के रीति रिवाज, आचार आदि हिन्दूओं के ही है। बाहरी मुसलमानों के संसर्ग से अब कुछ-2 इस्लामी तर्ज पर जा रहे है।[47] इनके प्रभाव से इस क्षेत्र में में कबीरपंथ, नानकपंथ और धामी सम्प्रदाय, नाथ पंथ, पंचपीर के उपासक का उदय हुआ तथा यहाँ के मुसलमान भी हिन्दू धर्म से प्रभावित हुये। इस सन्दर्भ में दीवान प्रतिपाल सिंह का यह कथन उचित प्रतीत होता है- बुन्देलखण्ड में मुसलमानों में बहेना बहुत कम है, जिनके विश्वास और बर्ताव हिन्दू जैसे है। कहीं-कहीं हठी फकीर है। ये पैदायश और ब्याह पर इनाम मांगते है तथा बाजार में तबोली से चन्दा लेते है। ये गांववालो से रक्षाबंधन और होली के त्योहारों पर भीख मांगा करते है। [48] स्पष्ट है कि मुसलमानों के आगमन के पश्चात यहां के धर्म और उपासना पद्धति में अनेक परिवर्तन हुयें।

बुन्देलखण्ड की वास्तुशिल्प पर इस्लाम का प्रभाव

बुन्देलखण्ड के रहने वाले व्यक्ति सभ्यता के विकास के साथ-साथ अपनी सुख सुविधाओं के लिये विशेष ध्यान देते रहे और उन्होने अपने आवास के लिये विविध युगों में विविध प्रकार के भवनों का निर्माण किया तथा अनेक प्रकार की बस्तियाँ विभिन्न क्षेत्रों में बनाई। ये बस्तियाँ ग्राम, कस्बा और नगर में विभाजित थी। इनमें से कुछ बस्तियों को सामन्तों की राजधानी बनने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

जिन स्थानों में व्यक्ति रहता था, वहाँ उसके लिये सुरक्षा सर्वोपरि थी। यह अपना जीवन, सम्पत्ति, परिवार, व्यवसाय और सम्मान सुरक्षित रखना चाहता था, इसलिये उसने सुरक्षा की दृष्टि से दुर्गो का निर्माण किया। यहाँ की सम्पूर्ण बस्ती को परकोटे से घेर दिया तथा प्रवेश के लिये अनेक द्वार बनाये गये। बुन्देलखण्ड में सर्वत्र लगभग 270 दुर्ग निर्मित है, इनमें से कुछ दुर्ग अत्यधिक प्रसिद्व रहे। प्रसिद्व दुर्गो में देवगढ़, कांलिजर, महोबा, मनियागढ़, तथा मड़फा आदि के दुर्ग थे। इन दुर्गो से अनेक ऐतिहासिक घटनाये जुड़ी हुयी है।

मानव की सबसे बड़ी आवश्यकता जल आपूर्ति है, क्योकि किसी भी व्यक्ति का जीवन बिना जल के संभव नही है। यह जल का उपयोग भोजन पकाने के लिये, तन व घर की सफाई के लिये तथा कृषि कार्यो के लिये करता है। उसने जल आपूर्ति के लिये जहाँ प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग किया, वही उसने कृत्रिम जल संसाधनों का निर्माण भी किया। इन कृत्रिम जल संसाधनों में कुआं, बीहड़ और छोटे -बड़े सरोवर शामिल है। बुन्देलखण्ड में सर्वत्र अनेक प्रकार के सरोवर, बीहड़ और कुंए उपलब्ध होते है। इनमें से महोबा के कीरत सागर, विजय सागर, मदन सागर,जैतपुर का बेला-ताल, रसिन का अधिक ताल तथा कालिजंर के जल सरोवर, बीहड़ और कुयें इत्यादि ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रतीत होते है।

व्यक्ति की सबसे बड़ी आवश्यकता एक ऐसे स्थल की है, जहाँ वह अपने सामान को सुरक्षित रख सके और परिवार सहित रह सके। इसके लिये उसने नगर और ग्राम क्षेत्र में अनेक प्रकार के निवास स्थानों का निर्माण किया। ग्रामीण क्षेत्र में ये निवास स्थान कच्चे होते थे तथा नगर क्षेत्र में व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति के अनुसार होते थे। सुप्रसिद्व विद्वान अयोध्या प्रसाद पाण्डेय के अनुसार-चन्देल युग में प्रसादों का निर्माण आयोजन साधारणतः एक ही प्रकार का था। एक खुले आगंन के चारों ओर कमरे बने होते थे, उनमें खुले हुये स्तम्भ युक्त बरामदे भी होते थे। राज महिषियों के एकान्त के विचार से लकड़ी अथवा कपड़े के पर्दे का प्रबन्ध किया जाता था, जिसके चिन्ह अब परिलक्षित नही होते है। [49] इस युग में महोबा, जबलपुर, गढाकोटा, हटा का बारह खम्भा महल, मदनपुर की बारादरी, हटा महल, तथा चिल्ला महल अत्यन्त प्रसिद्व महल थे, इनको देखकर तद्‌युगीन आवासीय व्यवस्था का पता चलता है।

बुन्देलखण्ड का व्यक्ति सदैव से धार्मिक प्रवृत्ति का रहा है, इसलिये उसने परमात्मा पर श्रृद्धा रखते हुये अनेक धार्मिक स्थलों का निर्माण किया। यहां के अधिकांश निवासी शैव मत का अनुसरण करते थे, इसलिये यहां के नरेशों और धनी-मानी व्यक्तियों ने अनेक स्थानों पर शिव मन्दिरों का निर्माण कराया। इन मन्दिरों में खजुराहों का कन्दरिया महादेव मन्दिर, विश्वनाथ कालिंजर का नीलकंठ मन्दिर, कुंवर मठ अतिकाली का शिव मंन्दिर, महोबा का ककरामठ तथा दौनी का शिव मंन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध है।

शिव उपासना के अतिरिक्त यहां वैष्णव धर्म के अनुपालन कर्ता भी निवास करते थे, जो विष्णु और अर्धागंनी लक्ष्मी पर पूर्ण आस्था रखते थे। यहां विष्णु के अनेक मन्दिर उपलब्ध होते है। मुख्य मन्दिरों में देवी जगदम्बा मंन्दिर, खजुराहों का चर्तुभुज मन्दिर, वाराह मन्दिर, वापन मन्दिर, जबरा मन्दिर, गदाधर मन्दिर, लक्ष्मीनाथ मन्दिर, जतकरी का चर्तुभुज मन्दिर, गोड़ा का विष्णु मन्दिर, बिलहरिया का मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध है। बुन्देलखण्ड में कुछ मन्दिर ब्रह्मा के भी उपलब्ध होते है, ये मन्दिर खजुराहों और दुधई में है।

विष्णु कें अतिरिक्त इस क्षेत्र में शक्ति की उपासना सर्वाधिक होती थी, इसलिये सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में शक्ति उपासना से संबंधित स्थल उपलब्ध होते है। इन स्थलों में खजुराहों का पार्वती मन्दिर, लक्ष्मी देवी मन्दिर, दुर्गा मन्दिर, योगिनी मन्दिर, मनियादेवी का मन्दिर, मैहर की शारदा देवी का मन्दिर, रसिन का चन्द्रा महेश्वरी मन्दिर तथा पाथर कछार का रक्त दंतिका मंदिर अत्यन्त प्रसिद्ध है। शक्ति के साथ-साथ बुन्देलखण्ड सूर्योपासना का केन्द्र भी रहा है। मुख्य रूप से कालिंजर, खजुराहों, कालपी तथा दतिया के उन्नाव क्षेत्र में सूर्य मन्दिर उपलब्ध होते है।

हिन्दू धर्म के अतिरिक्त बुन्देलखण्ड में जैन मन्दिरो के अवशेष भी उपलब्ध होते है। इन मन्दिरो की निर्माण शैली ब्राह्मण मंन्दिरों से भिन्न होती है। अयोध्या प्रसाद पाण्डेय के अनुसार-जैन मन्दिर अपनी बनावट में ब्राह्मण मन्दिरों से भिन्न है। जैन मन्दिरो में गर्भग्रह के चारों ओर प्रदक्षिणापथ होता है। उनमें मंडप, अन्तराल तथा गर्भग्रह सब एक ही नाप के होते है। साधारण बनावट में जैन मन्दिर के प्रत्येक अष्टकोण स्तम्भों में तीन दीवारगीरे होती है। इस प्रकार सभी जैन तीर्थकरों की मूर्ति रखने के लिये 24 दीवारगीरों का विधान जैन मन्दिरों में होता है।

बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध जैन मन्दिरों में खजुराहों का धंटई मन्दिर, पार्श्वनाथ मन्दिर जिन्ननाथ मन्दिर, सेतनाथ मन्दिर, आदि नाथ मन्दिर, दौनी का जैन मन्दिर, दुधई का जैन मन्दिर, कुंडलपुर का नेमिनाथ मंदिर, मदनपुर का जैन मन्दिर, चांदपुर का जैन मन्दिर, देवगढ़ का जैन मन्दिर और मड़फा के जैन मन्दिर सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

बुन्देलखण्ड में वास्तुशिल्प का क्रियान्वयन व्यक्ति की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर

होता था। सुप्रसिद्ध विद्वान केशव चन्द्र मिश्र के अनुसार-इस देश की परम्परा में वास्तु का विकास एक बृहद विज्ञान के रूप में होता गया। यांत्रिक परिसीमाओं के अतिरिक्त रचना शैली, भेद, वास्तु, स्थापन विन्यास और वास्तु फलाफल की जितनी छानबीन और जितना सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन इस देश में हुआ, उतना अन्यत्र कही नही हुआ। वास्तु के निर्माण में वाराहमिहिर द्वारा रचित वृहतसंहिता, विश्वकर्मा द्वारा रचित विश्वप्रकाश तथा विश्वकर्मीय शिल्प शास्त्र, मय दानव द्वारा रचित मयाशिल्प, मयमत तथा कश्यप और भारद्वाज द्वारा रचित वास्तुत्व वैखानस और सनद कुमार द्वारा रचित वास्तुशास्त्र को ध्यान में रखकर यहां विभिन्न प्रकार के भवनों तथा अन्य प्रकार की इमारतों का निर्माण होता था।

देव स्थल, राजाओं के निवास-स्थल तथा उनके दुर्ग-स्थल आदि सभी स्थलों का निर्माण वास्तुशास्त्र को ध्यान में रखकर किया जाता था। वृहतसंहिता के अनुसार समस्त निर्माणों को पांच भागों में विभाजित किया जा सकता था, जिनमें सर्वश्रेष्ठ राजाओं के निवास स्थल होते थे, इनकी लम्बाई 135 हाथ और चौड़ाई 108 हाथ होती थी। शेष व्यक्तियों के निवास स्थल छोटे होते थे। गृह निर्माण में पगडण्डी छोड़ने की पद्धति थी, जो अलग-2 दिशाओं में अलग-अलग नाम से सम्बोधित की जाती थी। प्रत्येक गृह मे बरामदा और दलान का निर्माण करने के लिये अनेक प्रकार के स्तम्भों का प्रयोग होता था। इन स्तम्भों में चारकोना स्तम्भ को 'रूपक', अठकोना स्तम्भ को 'वज्र', सोलह कोना स्तम्भ को 'दिवज्र', बत्तीस कोना होने पर 'प्रलीनक' तथा वृत्ताकार स्तम्भ को 'वृत्त' कहते थे। ये स्तम्भ शुभ-फलदायक माने जाते थे। जिस वास्तु के चारों ओर द्वार होते थे, उसे 'सर्वतोभद्र' वास्तु कहते थे। ऐसे निवास राजाओं, राजाश्रितों और देवताओं के लिये कल्याणकारी माने गये है।

बुन्देलखण्ड के निवासी धार्मिक विचारधारा के होते थे, इसलिये उनका यह मानना था, कि उनके भवन में 45 प्रकार के देवता निवास करते है। भवन के मध्यभाग में परमात्मा का निवास रहता है। हर नागरिक का यह कर्तव्य था कि देव-स्थलों को पवित्र रखे तथा भवन के बाहर बाटिका और उपवन की भी व्यवस्था करे। यदि वह धार्मिक स्थल का निर्माण करता है, तो उसके लिये वह प्रदक्षिणा का स्थान छोड़े। भवन के सन्दर्भ में यह निर्देश है, कि भवन समतल भूमि में बनाये जाये। निर्माण के पहले भूमि परिक्षण किया जाये तथा निम्न बातों का ध्यान रखा जाये- वास्तु पूर्व की ओर बढ़ाने से मित्र वैर, दक्षिण की ओर बढ़ाने से मृत्यु-भय, पश्चिम अर्थनाश तथा अग्नि कोण में बढ़ाने से मनस्ताप होता है।[53] भवन निर्मित हो जाने के पश्चात शुभग्रहों में गृह प्रवेश करना उचित होता है। वृहतसंहिता के अनुसार-प्रवेश के समय "वास्तु को भली-भांति के पुष्पों से अंलकृत किया जाये, वन्दनवारे लगाई जाये, जलपूर्ण कलशों से शोभित किया जाये, धूप गंध और बलि द्वारा देवताओं की पूजा की जाये तथा ब्राह्मणों द्वारा मंगलोच्चार करते हुये प्रवेश किया जाये।[54]

गरूड़ पुराण में भी गृह-प्रवेश का विधान दिया हुआ है- "यदि वास्तु एकाशीतिपद है तो उस मण्डल के ईशान कोण में वासुदेव का मस्तक, नैश्रत्य में पादद्वय तथा वायु और अग्निकोण में हस्तद्वय की कल्पना कर वास्तु की पूजा करें। आवास-गृह, वासभवन, पुर, ग्राम, वाणिज्य-स्थान, उपवन, दुर्ग, देवालय तथा मठ के आरम्भ काल में वास्तु योग और वास्तु पूजा आवश्यक है।[55]

भारतीय कलाकार सदैव वास्तुनिर्माण में वास्तुशिल्पशास्त्र का अनुकरण करते है। केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार एक ही रूप में 'विशिष्ट' और 'सामान्य' दोनो शिल्पी और कलाकर के माध्यम बनते है। सामान्य की सत्ता भी यहां अक्षुण्य है। सामान्य का अधिकाधिक समादर भारतीय कला की उत्कृष्टता की कसौटी है। कला की अनुभूति जीवन की समग्रता और स्थिति की सर्वाङ्गीण विविधता से बल ग्रहण करती है, इसीलिये भारतीय स्थापत्य वास्तु, मूर्ति और अन्य शिल्पों में रचना की परिस्थिति का चित्रण भी उसी आस्था से किया जाता है। गहन अलंकार, दृश्य की विविधता और प्रचुर मात्रा में सामाजिक पृष्ठभूमि का आलेख इसी आदर्श का परिणाम है।[56]

स्थापत्य की निर्माण सामग्री-

वास्तुकार स्थापत्य कला के प्रदर्शन के लिये जिस सामाग्री का उपयोग करता था, वह सामग्री प्रकृति में सहज उपलब्ध होती थी। मुख्य रूप से ईंट, पत्थर, लकड़ी, चूना तथा अन्य वस्तुएं निर्माण की सामग्री के रूप में प्रयुक्त होती थी। सुप्रसिद्ध कला मर्मज्ञ पारसी ब्राउन का मत है, कि कला में भारतीयों के आदर्श विशिष्ट रूप से प्रतिस्फुटित होते है। चन्देल ललित कलाये इसकी अपवाद नही है। स्थापत्य कला के प्रत्येक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक विकास में कोई न कोई महत्वपूर्ण अनुभूत सिद्धान्त निहित है। ग्रीक के लोग सौष्ठव पूर्ण पूर्ति पर अधिक बल देते है। रोमन वैज्ञानिक केशिक तथा इटैलियन विद्वता पर अधिक जोर देते है। किन्तु भारतीय आध्यात्मिक तुष्टि पर विशेष बल देते है। धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत भारतीय स्थापत्य कला की विशेषता के कारण भारत से असंख्य मंदिरों का निर्माण हुआ और इसी कारण बुन्देलखण्ड में मन्दिरों का बाहुल्य है।[57]

बुन्देलखण्ड के वास्तुशिल्प को विश्व में सर्वत्र सराहा गया है। जो विदेशी यात्री बुन्देलखण्ड के क्षेत्र में आये, उन्होने यहां के वास्तु शिल्प को देखकर आश्चर्य प्रकट किया। सुप्रसिद्ध विद्वान केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार चन्द्र गुप्त मौर्य के समय से ही भारतवर्ष सर्वदा मनोहर पुलों से सुसज्जित बड़ी-बड़ी सड़कों तथा राजपथों के लिये विख्यात् रहा है। उनके दोनों ओर जगह-2 यात्रियों के लिये विश्राम स्थल बने थे। सिंचाई और स्नान के बृहत्काय जलाशय, जिनकी ईट पत्थर की बनी सुन्दरता ने अलबरूनी आदि प्रारम्भिक मुसलमान यात्रियों को आश्चर्य चकित कर दिया था।

इस प्रकार हम देखते है, कि बुन्देलखण्ड में उपलब्ध वास्तुशिल्प के नमूने वास्तुशिल्प कला के उत्कृष्ट उदाहरण है।

वास्तुशिल्प के विविध स्वरूप एवं शैलियाँ-

बुन्देलखण्ड के क्रमिक विकास के साथ-साथ विभिन्न वास्तुशिल्प शैलियों का विकास हुआ। इस क्षेत्र में ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार वास्तुशिल्प के उत्कृष्ट उदाहरण मौर्य काल से लेकर मुगल काल और उसके बाद के उपलब्ध होते है। वास्तुकार केवल कला को जन्म देता है तथा समृद्धशाली व्यक्ति उसकी कला प्रतिभा से आर्कषित होकर उसे संसाधन देता है, जिससे उसकी कला आकार धारण कर लेती है और सदियों तक व्यक्तियों को अपनी ओर आर्कषित करती है, किन्तु खेद का विषय है, कि वह वास्तुकार सदैव अज्ञात रहता है तथा व्यक्ति उसकी कला को देखकर केवल उन संभ्रात व्यक्तियों को याद करते है, जिन्होने संसाधन देकर उस कला को आकृति प्रदान की। यहां वास्तु की निम्नलिखित शैलियों प्रचलित थी।

मौर्यकालीन वास्तुशिल्प शैली-

मौर्यो का अस्तित्व बुन्देलखण्ड में 320 ई०पू० में था। इस वंश का शक्तिशाली सम्राट अशोक था। सम्राट अशोक ने इस परिक्षेत्र में अनेक स्तूपों का निर्माण करवाया। इन स्तूपों में सांची और भरहुत के स्तूप ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार सम्राट अशोक के अनेक अभिलेख यहां उपलब्ध होते है। इन अभिलेखों में रूपनाथ का अभिलेख और दतिया का स्तम्भलेख अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिन स्थानों में बौद्ध स्तूप स्थापित है, वहां और उसके आस-पास अनेक बुद्ध प्रतिमायें तथा यक्ष-यक्षणियों की प्रतिमायें उपलब्ध होती है। इस वास्तुशिल्प में निर्माण सामग्री के रूप में पत्थर और ईटों का प्रयोग हुआ है तथा वास्तुशिल्प तद्युगीन दृष्टि से उच्च्य कोटि का है।

गुप्तकालीन वास्तुशिल्प शैली-

बुन्देलखण्ड में गुप्तों का अस्तित्व समुद्रगुप्त मौर्य के समय से काफी बढ़ा गुप्तकालीन अनेक ऐतिहासिक साक्ष्य यहां उपलब्ध होते है। गुप्त युग में बौद्ध धर्म तिरोहित हुआ तथा वैदिक और ब्राह्मण संस्कृति का पुनरूत्थान हुआ, जिसके परिणामस्वरूप अनेक दुर्ग धार्मिक स्थल गुप्त युग में बने। के०के० शाह के अनुसार उत्तर-गुप्त युग में एरण के आस-पास अनेक धार्मिक स्थल बने। लेखक के अनुसार- The allience of vedic beliefs with puranic gods writ large in records samudra gupta performed Asvamedha - a vedic secrific and financed the building of a temple at earn dedicated to janardana a non vedic deity to augment his own glary. Kumaragupta I, his grandson, too, celebrated the same secrifice issuing special cons to make the occasion, yet his tittle paramabhagavat. speaks volumes for special coens to mark the occasion, yet his tittle paramabhagavat speaks volumes for his devation to vishnu.[58]

गुप्त युग के वास्तुशिल्प की निम्न लिखित विशेषतायें थी। श्री एस०डी० त्रिवेदी के अनुसार- गुप्तकाल में इस क्षेत्र के अन्तर्गत कई मन्दिर निर्मित किये गये थे, परन्तु कुछ ही अपनी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में सुरक्षित रह पाये है। इन्हे दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है, पूर्व गुप्तकालीन तथा उत्तर गुप्त कालीन।

पूर्व गुप्तकालीन मन्दिरों की वास्तुकला सम्बन्धी कुछ सामान्य विशेषतायें इस प्रकार है-

1- इन मन्दिरों की स्थापना ऊँची जगत पर हुयी है।

2- मन्दिर तक पहुंचने के लिये एक से अधिक दिशाओं में सोपान बने हुये है।

3- गर्भगृह की छत सपाट (चपटी) है।

4- मन्दिर की बाह्य दीवालें सादी है।

5- गंगा यमुना की मूर्तियाँ अपने वाहनों सहित गर्भगृह के प्रवेश द्वारा के ऊपरी भाग में अंकित की गयी है।

6- मन्दिर की चौखट अंलकृत है।

7- द्वार स्तम्भ मंगल कलश, पत्रवल्लरी आदि से अलंकृत मिलते है।

8- छत का भार वहन करने वाले वर्गाकार स्तम्भों के ऊपरी भाग में सिंह आकृतियां पीठ में पीठ लगाये बनायी गयी है।[59]

गुप्त युगीन मन्दिर पन्ना जनपद में नचना कुठारा, एरण में ध्वज-स्तम्भ, वारह मन्दिर, विष्णु मंदिर, झांसी का गुप्तकालीन मन्दिर, देवगढ़ का वारह मन्दिर, दशावतार मन्दिर, नचना का चर्तुमुख नाथ मन्दिर, तथा कालिंजर का नीलकंठेश्वर मन्दिर इस युग के वास्तु के उत्कृष्ट नमूने है, इनका निर्माण पांचवी सदी कें अंत तक हुआ।

गुर्जर प्रतिहार शैली-

गुप्त युग की समाप्ति के पश्चात् बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में गुर्जर-प्रतिहारों का शासन स्थापित हुआ। इस युग की वास्तुशिल्प शैली गुप्त युग शैली से मिलती-जुलती थी, किन्तु यह शैली, गुप्त युग से श्रेष्ठ थी। एस०डी० त्रिवेदी के अनुसार- प्रतिहार कालीन मन्दिरों को गुप्तकाल तथा उत्तरवर्ती मध्य युगीन मन्दिर स्थापत्य के बीच की कड़ी माना जा सकता है। इन मन्दिरों में कतिपय गुप्तकालीन विशेषतायें भी विद्यमान थी, परन्तु मन्दिर स्थापत्य का विकसित रूप, जो परवर्ती काल के मन्दिरों में देखने को मिलता है, प्रारम्भ हो चुका था। इन मन्दिरों का भी क्रमबद्ध विकास दृष्टिगोचार होता है।[60] इस युग के मन्दिरों में कुरैया बीर मन्दिर (ललितपुर), जरायमठ(बरूआ सागर), टीकमगढ़ का खड़खेरा मन्दिर, देवगढ़ के मन्दिर, चन्देरी के प्रतिहार कालीन मन्दिर, इस शैली के उत्कृष्ट मन्दिर थे।

पंचायतन नागरी शैली-

चंदेल युग में इस वास्तुशिल्प का विकास हुआ। चन्देल नरेशों ने खजुराहों,

रहालिया, बानपुर, मदनपुर, दूधिया, चांदपुर, देवगढ़, और कालिंजर में इस शैली का सहारा लेकर अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया। श्री० एस०डी० त्रिवेदी के अनुसार- यहां के कुछ मन्दिर पंचायतन शैली के है। मंदिरों की छतों को पर्वत शिखरों की भांति प्रदर्शित किया गया है, जो अर्द्ध मण्डप से अपने निचले स्वरूप से प्रारम्भ होकर गर्भगृह पर अपनी अधिकतम ऊंचाई प्राप्त कर लेती है। खजुराहों के मन्दिरों का सौन्दर्य इनके उरूश्रंगों में है, जो पूंजीभूत होकर अन्ततः एक बड़े शिखर के रूप में परिणत होते है। इसके ऊपर चंन्दिकायें आमलक, कलश, और बीजपूरक है।[61] खजुराहों का विश्वनाथ मंदिर, महोबा का ककरामठ, ओरछा का लक्ष्मी मन्दिर आदि इसी शैली से निर्मित है।

तुर्क एवं मुगल शैली-

मुख्य रूप से जब तुर्क और मुगुल इस परिक्षेत्र में आये, उस समय उन्होने अनेक प्रकार की इमारते अनेक स्थलों पर बनवाई। इनमे मस्जिदें, आवासीय महल, दुर्ग, धार्मिक स्थल, राज महल आदि निर्मित हुये। इस शैली के अन्तर्गत भवन निर्माण सामग्री में व्यापक परिवर्तन हुआ तथा पतली ककई ईट (कंकण से निर्मित), चूना, लकड़ी, पत्थर, गुड़, उर्द की दाल, सन् आदि भवन और धार्मिक स्थलों के निर्माण में प्रयुक्त होने लगे। भवन के प्रवेश द्वार में ड्योढ़ी और बरामदा सर्वप्रथम होते थे, उसके पश्चात् चौकोर आंगन और स्तम्भों में सधे हुये महराबदार दल्लाने और उनके पीछे उपयोगी कक्ष होते थे तथा दूसरे हिस्से में झरोखे होते थे। महल का बाहरी भाग उच्च कोटि की नक्काशी से सुसज्जित रहता था। ऐसे अनेक भवन ग्वालियर, दतियां, ओरछा, शेरपुर सिहोड़ा, कोंच, टीकमगढ़ तथा पन्ना में उपलब्ध होते है।

मिश्रित शैली-

बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में 15 वीं शताब्दी से लेकर 18 वीं शताब्दी तक एक नवीन वास्तुशिल्प का उदय हुआ। इस शैली को मिश्रित शैली के नाम से पुकारा गया। इसके अन्तर्गत मुगल और तुर्क शैली का सम्मिश्रण बुन्देलखण्ड की मौलिक शैली में हुआ, जिसके उदाहरण टीकमगढ़, समथर, बिजना, चन्देरी, दतिया में देखे जा सकते है। मुख्य रूप से चन्देरी का कुसक महल इस शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह 116 फीट लम्बी-चौड़ी वर्गाकार इमारत है तथा इसी से जुड़े हुये क्रास की भांति चार अन्य महल भी है। इसके ऊपर का भाग टूट गया है, इसमें गुम्बद नही थे तथा इसके प्रत्येक कोने में एक छतरी थी। प्रवेशद्वार महराबदार है, जिसके दोनों ओर आले बने है। यह महल तीन मंजिल का है तथा अन्य मंजिलों को साधने के लिये इसमें स्तम्भों का प्रयोग किया गया है। यह 15 वीं शताब्दी में निर्मित हुआ, ओरछा का रामराजा मन्दिर, जहांगीर महल, दतिया महल, इसके उत्कृष्ट नमूने है। इसी प्रकार कालपी में मुस्लिम स्थापत्य के कुछ और नमूने उपलब्ध होते है। कालपी का चौरासी गुम्बद,

विशेष उल्लेखनीय है। इसके ककरीले गुम्बजों को चूने से जोड़कर बनाया गया, इसी प्रकार एरच की जामा मस्जिद और चन्देरी की जामा मस्जिद , मदरसा और शहजादी का मकबरा, मिश्रित वास्तुशिल्प के उत्कृष्ट नमूने है।

इस्लाम के आगमन के बाद वास्तुशिल्प में हुये परिवर्तन-

इस्लाम के आगमन के पश्चात् वास्तुशिल्प में अनेक परिवर्तन देखने को मिलते है। सर्वप्रथम यह दृष्टव्य है, कि वास्तुशिल्प जिसका क्रियान्वयन वास्तुशिल्प विज्ञान के आधार पर होता था, वह बन्द हो गया। अधिकांश कारीगर और दस्तकार अशिक्षित होने के कारण इन ग्रंथों का पठन-पाठन नही कर पाते थे, इसके स्थान पर परम्परागत निर्माण प्रणाली को अपनाया गया। कारीगरों ने अपने पूर्वजों और अपने गुरूओं से जैसा उत्तराधिकार में प्राप्त किया, उसका अनुसरण वैसा ही किया। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति वास्तुशिल्प का निर्माण कराता था, उसकी इच्छा का ध्यान भी वास्तुशिल्पकार द्वारा रखा जाता था। मुसलमानों के आगमन के पश्चात् वास्तुशिल्प कला पर निम्न परिवर्तन देखने को मिलते है।

वास्तुशिल्प सामग्री और शैली में परिवर्तन-

मौर्यकालीन से लेकर चन्देल युग तक जो इमारते, दुर्ग और धर्म स्थल निर्मित हुये थे, उनमें इमारती पत्थर का प्रयोग सर्वाधिक हुआ तथा वास्तुकार ने अपनी कला-कौशल का प्रदर्शन करते हुये मनोभावनाओं का प्रकाशन अपनी मूर्ति-कला के माध्यम से किया है। यह मूर्ति कला खजुराहों, कालिंजर और देवगढ़ में देखने को मिलती है, जिसे देखकर सम्पूर्ण विश्व आश्चर्य चकित है। मुगल काल में भवन सामग्री के स्वरूप में परिवर्तन हुआ। पत्थर के साथ-साथ इमारती लकड़ी, चूना, ईट का प्रयोग होने लगा। भवन में पलस्तर करने के वास्ते चूने के साथ उर्द की दाल, गुड़ और सन का प्रयोग होने लगा तथा चूने से ही विविध प्रकार की पच्चीकारी, जालियां और झरोखे आदि बनाये जाने लगे। इसके पहले मीनारों का प्रयोग भारतीय वास्तुशिल्प में नही होता था। इस्लाम के आगमन के पश्चात् ऊंची मीनारों का प्रयोग इस्लाम से संबंधित धर्म स्थलों में होने लगा।

दुर्ग निर्माण शैली में परिर्वतन-

प्राचीन काल में दुर्ग भारतीय वास्तु विज्ञान के अनुसार निर्मित होते थे। मानसार ग्रंथ के अनुसार सम्पूर्ण दुर्ग सात श्रेणियों में विभाजित होते थें। गिरि दुर्ग, वन दुर्ग, सलिल दुर्ग, पंक दुर्ग, रथ दुर्ग और मिश्र दुर्ग।[62] मुगलों के आने के पश्चात् दुर्ग निर्माण शैली में अनेक परिवर्तन हुये। ये परिवर्तन देश काल परिस्थिति के अनुसार किये गये। बुन्देल राजाओं ने भी अनेक किले और गढ़िया बनवायी। प्रत्येक राज्य या जागीर का अपना किला था। इन में झांसी दुर्ग, यद्यपि वास्तुकला की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नही है, पर उसके साथ प्रथम स्वतंन्त्रता संग्राम के पिरोये हुये सूत्र ने उसे भावनात्मक दृष्टि से महान बना दिया है।

अतः इसका उल्लेख आवश्यक है। बांगरा नामक ऊंची पहाड़ी पर स्थित झांसी किला सन् 1613 ई० में ओरछा के राजा वीरसिंह देव के द्वारा बनवाया गया था। किले के परकोटे के बीच-बीच ऊंचे गुर्ज और कंगूरे बने हुये है। दीवारों के ऊपर छोटे तथा बड़े छिद्र दूर तथा अति निकट की मार करने के लिये बनाये गय। मौटे तौर पर किले किले के निर्माण और विस्तार कार्य को तीन चरणों में विभक्त किया जा सकता है।[63] ये दुर्ग बुन्देला राजाओं और मराठों द्वारा निर्मित किये गये है तथा इनमें कुछ का परिवर्तन अंग्रेजों ने भी किया। इनमें बड़े दुर्गो को दुर्ग और छोटे दुर्गो को गढ़ी कहते है। वर्तमान समय में टीकमगढ़, समथर और विजना के दुर्ग अच्छी स्थिति में है।

आवासीय व्यवस्था में परिवर्तन-

मुसलमानों के आगमन के पश्चात् वास्तुशिल्प का परिवर्तित स्वरूप आवासीय व्यवस्था में भी देखने को मिलता है, जो महल चन्देरी, ओरछा, और दतियां में निर्मित हुये है, उनमें मुगल वास्तुशिल्प के साथ बुन्देलखण्डी वास्तुशिल्प का सम्मिश्रण है। ओरछा का रामराजा मंदिर चन्देरी के कुशल महल से मिलता जुलता है, इसका निर्माण सन् 1575 ई० में मधुकर शाह ने कराया था। ओरछा में ही स्थित जहाँगीर महल वास्तुशिल्प का अच्छा उदारण है। यह 220 फिट लम्बा चौड़ा है तथा इसका निर्माण वीर सिंह जू देव ने कराया था। इसके ऊपर सुन्दर 8 गुम्बदें है। उन्होने एक सुन्दर महल का निर्माण सन् 1620 ई० में दतिया में भी कराया था, इसका निर्माण ग्रेनाइट की चट्टानें काट कर कराया था। इसके प्रत्येक कोने में गुम्बदें है , यह महल पाँच मन्जिल का है, इसके बाहरी भाग में टेकदार छज्जे, झरोकेदार खिड़कियाँ और सुन्दर पच्चीकारी है।

धार्मिक स्थल से सम्बन्धित वास्तु शिल्प में परिवर्तन-

मुसलमानों के आने के पश्चात् उनके धर्म से सम्बन्धित इमारतो का निर्माण पूरे बुन्देलखण्ड में हुआ। इस सन्दर्भ में इमारतों को देखने के पश्चात् यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है, कि इस शैली में व्यापक परिर्वतन हुआ। इस परिवर्तन का आभास कालपी में निर्मित 84 गुम्बद से होता है, जिसका निर्माण सिकन्दर लोदी ने कराया था। वास्तुशिल्प का परिवर्तित स्वरूप एरच की जामा मस्जिद में भी देखा जा सकता है। इसके बीच के बड़े गुम्बद के चारों ओर अनेक छोटे-छोटे गुम्बद है। गुम्बद का भार चार स्तम्भों में सधा हुआ है, जो किसी हिन्दू मंदिर के स्तम्भ थे। इसी प्रकार का परिवर्तित स्वरूप चन्देरी की जामा मस्जिद में भी देखा जा सकता है, इसके पश्चिम में खुला आँगन और किबला है तथा उत्तर-दक्षिण की ओर दल्लान है। दल्लाने मेहराबदार है। इसी स्थान में मदरसा और सहजादी का मकबरा भी है। मदरसा वर्गाकार है और इसके चारो ओर बरामदा भी है। शहजादी का रोज़ा इमारत भी वर्गाकार है। इनमें मेहराब, छज्जे, टेक और गुम्बद आदि है। यहीं पर एक

बादल महल भी है, यह दो मंजिला है, इसकी ऊँचाई 50 फिट है तथा इसका निर्माण पत्थरों से हुआ है।

जलाशय वास्तुशिल्प में परिवर्तन-

चन्देल युग में जलाशयों का निर्माण तद्‌युगीन परिस्थियो के अनुसार होते थे। इस युग के खजूर सागर, शिव सागर, मदन सागर, कीरत सागर आदि प्रसिद्ध सरोवर थे, किन्तु मुसलमानों के आने के बाद वास्तुशिल्प की इस विद्या में परिवर्तन हुआ तथा अनेक बीहड़, कुएँ, स्नानागार और सरोवर तद्‌युगीन शैली के अनुसार निर्मित हुये, ये पन्ना, ग्वालियर, बिजावर, टीकमगढ़, छतरपुर में विद्यमान है।

इस्लाम का बुन्देलखण्ड की लोक कला पर प्रभाव

लोक कला से तात्पर्य, व्यक्ति की उन विशेषताओ से है, जो उन्हे एक सुनिश्चत मार्ग की ओर बढ़ाती है तथा जिनकी दक्षता से वह स्वतः अपना और अपने परिवार का भरण पोषण भी करता है। ये कलाये व्यक्ति की अभिरूचि के अनुसार व्यक्ति के हृदय में जन्म लेती है और सतत अभ्यास से व्यक्ति इन कलाओ में पारंगत होता है। बुन्देलखण्ड में कलाओं की प्रचलित संख्या 64 है, किन्तु मुख्य रूप से 16 कलाये ही दिखलाई देती है। बुन्देलखण्ड में इस्लाम के आगमन के पूर्व यहाँ निम्न लिखित कलाये प्रचलित थी। इस्लाम के आगमन के पश्चात इन कलाओं में व्यापक परिवर्तन हुआ और वे विशुद्ध भारतीय कलायें न होकर मिश्रित कला के रूप में विख्यात् हुयी, इन कलाओं को निम्न रूप में देखा जा सकता हैं।

मूर्ति-कला- मौर्य काल से लेकर चन्देलयुग तक मूर्ति कला का विकास हुआ। इस मूर्ति-कला के सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध विद्वान् का कथन है कि चन्देलयुगीन स्थापत्य और मूर्ति कला अविभाज्य है। उत्तर और दक्षिण-भारत के स्थापत्य का विकास वस्तुतः पाचवीं सदी के गुप्तों और वाकाटको के राजप्रसादो के काष्ठ शिल्प से ही हुआ। क्रम से इसकी अपनी इकाई बनी। समय के साथ काष्ठ शिल्प का विलोप ही होता गया। केवल अजन्ता की भित्ती पर वह अवशिष्ट है, जहाँ भित्ती चित्रों ने उसकी विभुता को अब भी सुरक्षित रखा है।[64] चन्देलयुग की, जो मूर्तियां उपलब्ध होती है, उनमें सर्वाधिक आर्कषक मूर्तियाँ खजुराहो में बनी मान्मथ मूर्तियां है। इन मूर्तियो में वात्सायन द्वारा रचित कामसूत्र का सार्वजनिक प्रर्दशन किया गया है। इसके अतिरिक्त इस स्थान में पुराणों में वर्णित देव प्रतिमायें भी है। इन देव प्रतिमाओं में दशावतार, दिग्पाल, इन्द्र, अग्नि, यम, वरूण, वायु, कुबेर आदि की मूर्तियाँ है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव की मूर्तियां मघ्य भाग में प्रतिष्ठित है। इन देवताओं के समीप तप करते हुये साधु सन्तो की मूर्तियाँ भी है। जैन मंदिरो में भी अनेक मूर्तियां जैन तीर्थाकंरो और देवी देवताओं की है। कुछ मूर्तियां अर्ध मण्डप,मण्डप, महामंडप, परिपुष्ठ और अलंकृत स्तम्भों में भी बनी है।

इन स्तम्भो में बेल बूटे और लताये बनी हुयी है। बाहर और अन्दर की मूर्तियो में व्यापक अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। सुप्रसिद्ध विद्वान के अनुसार-उनका शिल्प और उनकी कला हिन्दूओ की दार्शनिक भावनाओं का अधिकारिक भाष्य होती थी।[66] बुन्देलखण्ड में कुछ स्थानो पर बौद्ध प्रतिमाये भी उपलब्ध होती है, जो हीनयान, महायान और बज्रयान सम्प्रदाय से सम्बन्धित है, किन्तु अधिकांश मूर्तियाँ ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित हैं।

अलंकरण और मूर्ति शिल्प की दृष्टि से बुन्देलखण्ड में उपलब्ध मूर्तियों का शिल्प गुप्त शैली, गुर्जर प्रतिहारशैली और पंचायतन नागरी शैली से संम्बन्धित है। अलंकरण की दृष्टि से पंचायतन नागरी शैली की मूर्तियां सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होती है। ये विविध प्रकार के पत्थरों से निर्मित है और चित्र कला से अधिक दुरूह है, इसमें हस्त कौशल, शरीर विच्छेदन विज्ञान के प्रयोग का आभास होता है। खजुराहो की वाराह मूर्ति और नन्दि की मूर्ति, मूर्तिकला की दृष्टि से बहुत अच्छी है। इन मूर्तियो में प्रयुक्त परिधान विधान, अलंकरण विधान, केश सज्जा, और मुख-सौन्दर्य अत्यन्त सजीव प्रतीत होता है। इन मूर्तियो को देखने से मूर्ति-रूपो का विन्यास और मुद्रा-सौष्ठव सामान्यता कल्पनाओं से भरा है। उदाहरण के लिये सुप्त विष्णु की रचना में अंगविन्यास सरल नही है, वह जितना ही ललित है, उसकी अभिव्यक्ति भी उतनी ही सुरूचिपूर्ण है। जिसने भी इन मूर्तियो और शिल्प खण्डों को एक बार भी देखा, उनकी विभुता ने उन्हें गहरें रूप से प्रभावित किया।[67] चन्देल युग के पश्चात् बुन्देलखण्ड की मूर्ति कला तिरोहित होने लगी थी।

मुसलमानों के पश्चात मूर्ति-कला में परिवर्तन -

पवित्र ग्रंथ कुआ़्न शरीफ के अनुसार मूर्ति-पूजा किसी भी मुसलमान के लिये वर्जित है। इसलिये 12वीं शताब्दी आने तक यह कला निष्प्राण हो गयी। डा० आशीर्वादी लाल के अनुसार-बारहवीं शताब्दी के मध्य के लगभग सम्भवतः संरक्षण तथा आत्माभिव्यक्ति की सुविधाओं के अभाव में यह कला निष्प्राण सी हो गयी थी। मुसलमानों में जीवित प्राणियों की मूर्तियाँ बनाना पाप माना गया है और सर्वशक्तिमान ईश्वर की प्रतिमायें बनाना तो और भी अधिक पाप पूर्ण है। वे इसे कुफ्र, अर्थात ईश्वर के प्रति कृतघ्नता कहते हैं, जिसका तात्पर्य ईश्वर को अन्य अथवा नकली देवताओं से सम्बद्ध करना, माना जाता है। मुसलमान आक्रमणकारियों ने देवी-देवताओं, मनुष्यों अथवा जानवरों की मूर्तियों एवं मूर्ति कला सम्बन्धी प्रदर्शनों को नष्ट कर दिया।[68] केवल मुगल सम्राट अकबर ने कुछ मूर्तियों के निर्माण की अनुमति दी थी तथा उसने हाथी पर सवार कुछ व्यक्तियों की मूर्तियों को बनवाया था, किन्तु बुन्देलखण्ड में इस मूर्ति-शिल्प का कोई उदाहरण नहीं मिलता। यहाँ प्रस्तर के स्थान पर धातु की मूर्तियों का निर्माण प्रारम्भ हो गया था। ये मूर्तियाँ स्वर्ण, रजत एवं अष्टधातु की बनाई गयीं, जो बुन्देलखण्ड के राजाओं के द्वारा निर्मित देवालयों में स्थापित की गयी।

चित्रकला-

बुन्देलखण्ड में चन्देल युग तक चित्रकला को पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं मिला, केवल कुछ मूर्तियों को उस युग में हरे, लाल और पीले रगों से रंगा गया था, जिसे एक प्रकार से मूर्ति लेप संज्ञा दी जा सकती है, किन्तु चित्रकला आदिकाल से इस परिक्षेत्र में प्रचलित थी। जिसके उदाहरण शैल चित्रों के रुप में हमें सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होते हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान एस०डी० त्रिवेदी के अनुसार बुन्देलखण्ड के विभिन्न स्थानों पर प्रागैतिहासिक चित्र उपलब्ध हुये हैं। इन चित्रों के विषय आखेट दृश्य, पशु-पक्षी तथा दैनिक दिनचर्या आदि से सम्बन्धित होते थे। बांदा, पन्ना तथा सागर जिले के कई स्थानों पर शिलाश्रय चित्र प्राप्त हुये है।[69]

बुन्देलखण्ड में चित्रकला का विकास मुसलमानों के बाद ही हुआ है। इस क्षेत्र में दो प्रकार के चित्र उपलब्ध होते हैं। पहली श्रेणी के वे चित्र हैं, जो दीवालों पर बनाये गये हैं। दूसरी श्रेणी के वे चित्र हैं, जो कागज, लकड़ी और हाथी दांत पर बनाये हैं। किन्तु इन चित्रों की संख्या बहुत कम है। बुन्देलखण्ड के निम्न स्थानों पर ये चित्र उपलब्ध होते हैं-

1- मदनपुर के मन्दिर के भित्ति चित्र

2- ओरछा में चर्तुभुज मन्दिर, राजमहल, जहाँगीर महल, रायप्रवीन महल, लक्ष्मी मन्दिर आदि के चित्र

3- दतिया की छतरी तथा अन्य इमारतें

4- नृसिंह मन्दिर (तालबेहट किला)

5- बानपुर का किला

6- पन्ना के मन्दिर

7- छतरपुर के मकोखा

8- टीकमगढ़ में वृन्दावन बाग स्थित इमारत, मडिया तथा किला।

9- झाँसी स्थित गोसाइयों की छतरियां, तेली मन्दिर तथा रानी महल

10- टोड़ी फतेहपुर जिला झांसी का राम जानकी मंदिर

11- विजना का शिव मंदिर

12- टहरौली का किला

13- अमरागढ़ का किला

14- गुरुसराय का किला

चित्रकला की दृष्टि से उपरोक्त स्थानों के चित्रों का विशेष महत्व है। जिन स्थानों पर ये चित्र बनाये गये हैं, उन स्थानों को समतल और चिकना किया गया है। उसके पश्चात काला और भूरा रंग तेल में मिलाकर उसका आधार बनाया गया, फिर चारों ओर किनारा बनाया और उसके अन्दर चित्र हैं। इन चित्रों में विविध प्रकार के पुष्प, देवी-देवता, पशु, पक्षी दिखलाई देते हैं। कुछ दृश्य, जो मदनपुर में उपलब्ध हुये हैं, वे घटनाओं से सम्बन्धित भी हैं। इनमें सर्पदंश से पीड़ित व्यक्ति, स्त्री

पुरुष का जोड़ा, एक पुरुष स्त्री को पीटता हुआ, मरकट मुखी आकृतियां विशेष हैं। ओरछा के मन्दिर में जो चित्र हैं, उनमें देवताओं के चित्रों की अधिकता है। यहां पर कमरा नं0 60 में नायिका राग हिंडोला का चित्रांकन है। कमरा नं0 47 में घुड़सवार है, जहांगीर महल के चित्र नष्ट हो गये हैं। यहां उपलब्ध चित्रों में काला, लाल, पीला और नीला रंग प्रयुक्त हुआ है। दतिया में उपलब्ध चित्र भी बड़े आकर्षक हैं। यहां पुष्पांकन और पशुओं के चित्र उपलब्ध होते हैं। तालबेहट और चंदेरी में भी अनेक चित्र उपलब्ध हुए हैं, जिनमें प्राकृतिक रंगो का प्रयोग हुआ है। झांसी में स्थित गोसाइयों के मन्दिर में भी चित्र उपलब्ध हुए हैं, किन्तु चित्रकला की दृष्टि से ये खास नहीं हैं। टहरोली के किले में दो स्थानों पर चित्र मिलते हैं, ये चित्र दरबार खास और दाऊ जी के डेरा में हैं। पन्ना में भी गुरु प्राणनाथ के मन्दिर में चित्रांकन हुआ है। बानपुर के किले में भी चित्र थे। बुन्देलखण्ड में उपलब्ध चित्रों की निम्न विशेषताएं थीं। कहीं-कहीं पर इन चित्रों में चटकीले रंगो का प्रयोग हुआ है और चित्रों के बाद दोहे और कविता भी लिखे गये हैं। इनमें आकाश चपटा है तथा कहीं-कहीं बादल भी दिखलाये गये हैं। भवनों के पीछे छोटे-छोटे वृक्ष भी हैं, दरवाजे, खिड़कियां विभिन्न रंगों के हैं। इन चित्रों में मुखाकृति बड़ी और शरीर छोटा है। वस्त्र परिधान का चित्रांकन सजीव है तथा अंग प्रत्यंगों का कामुकतापूर्ण आलेखन किया गया है। चित्रों के नीचे बुन्देली भाषा के शब्दों का प्रयोग है।

इस परिक्षेत्र में कुछ चित्र लकड़ी और कपड़े पर भी उपलब्ध होते हैं तथा कुछ चित्र कागज में भी उपलब्ध हुये हैं। इनमें कलात्मकता की भले ही कमी हो, किन्तु तद्‌युगीन परिस्थितियों के अनुसार वे चित्र बहुत अच्छे हैं। दतिया में एक चित्र काष्ठ पट्टिका पर बना हुआ है, इसमें राधाकृष्ण को गरुड़ के साथ दिखलाया गया है, चित्र में लाल रंग का प्रयोग है। इसी प्रकार चरखारी में कपड़े में बना हुआ चित्र उपलब्ध हुआ है। इस प्रकार के अनेक चित्र संग्रहालयों के अतिरिक्त विभिन्न ऐतिहासिक स्थलों और संग्रहित पांडुलिपियों में उपलब्ध होते हैं, जिनमें कलाकार की मनोभावनाओं का प्रकाशन हुआ है तथा इन सभी उपलब्ध चित्रों का निर्माण मुगलकाल में हुआ है। अकबर के दरबार में रहने वाला सुप्रसिद्ध विद्वान अबुल फजल का यह मत उपयुक्त प्रतीत होता है- चित्रकला ने इस काल में पूर्णता प्राप्त कर ली थी। निर्जीव वस्तुयें भी ऐसी लगती थी, कि जैसे वे सजीव हों। सौ से भी अधिक चित्रकार अपनी कला में दक्ष थे। इनमें तब्रेज के मीर सैयद, ख्वाजा अब्दुस्समद, दसवन्थ और बसावन सबसे अधिक प्रसिद्ध थे।[70] सुप्रसिद्ध विद्वान अशोक कुमार दास के अनुसार- मुगल काल में एक विशिष्ट कला-शैली को जन्म देने का श्रेय उसके पुत्र हुमायूँ को दिया जा सकता है। शेरशाह से पराजित होने के पहले हुमायूँ लगभग दस वर्षो तक भारत में रहा। स्थानीय कला के रूपों को समझने और चित्रकारों से परिचय प्राप्त करने के लिये यह अवधि पर्याप्त लम्बी मानी जा सकती है।[71] हुमायूँ के पश्चात सम्राट अकबर ने एक अलग चित्रकला शैली को जन्म दिया, इसका उल्लेख ''दास्ताने-अमीर हम्जा'' में मिलता है। इस काल के चित्रों में धार्मिक चित्रों का महत्त्व अधिक है। इसके पश्चात् जहाँगीर ने चित्रकला को उच्चस्तर प्रदान किया। इस काल की अनेक

पाण्डुलिपियां उपलब्ध होती हैं तथा मुख्य कलाकारों में फारुख बेग, दौलत, मनोहर, विसनदास, मंसूर, और अबुल हसन बहुत प्रसिद्ध चित्रकार थे। इनका नाम चित्रकला के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा गया। मुगल चित्रकला का प्रभाव केवल आगरा, फतेहपुर सीकरी और दिल्ली भर में नहीं दिखलाई देता, बल्कि उसका प्रभाव बुन्देलखण्ड में भी दिखलाई देता है। दतिया, ओरछा तथा अन्य नगरों में जो चित्र उपलब्ध हुये हैं, वे मिश्रित शैली के कहे जा सकते हैं। इनकी रंग योजना, विषयवस्तु का चित्रण तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रांकन बहुत ही सुन्दर ढंग से हुआ है तथा व्यापक रुप से ये चित्र मुगल शैली से प्रभावित हैं, किन्तु इसमें बुन्देलखण्ड की शैली भी समाहित है।

मिट्टी की कला-

बुन्देलखण्ड में पाषाणयुग के पश्चात् जब कृषि युग का शुभारम्भ हुआ, उस समय से मिट्टी का प्रयोग अनेक रुपों में बुन्देलखण्ड में होने लगा। मुख्य रूप से पानी रखने के बर्तन, अनाज रखने के पात्र और खाना बनाने के पात्र मिट्टी से ही बने तथा कुछ खिलौने भी मिट्टी के उपलब्ध हुये हैं। बुन्देलखण्ड में जहां प्राचीन बस्तियों के अवशेष हैं, वहां मिट्टी के बर्तन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। बुन्देलखण्ड की सीमा से लगे बृज प्रदेश में मिट्टी के अनेक पात्र उपलब्ध हुये हैं। ये विभिन्न कालों के हैं। इनका अस्तित्व ६०० ई०पू० से लेकर २०० ई०पू० तक का है। मिट्टी के पात्रों के अतिरिक्त इस युग में मिट्टी की बनी ईटों का प्रयोग गृह निर्माण के लिये होता था। पंवाया, ग्वालियर, पद्यमावती नगरी, कालिजंर तथा बागे नदी के किनारे जहां प्राचीन बस्तियां थी, वहां मिट्टी के अनेक भवन उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त उस युग में मिट्टी के बने पहियों का प्रयोग भी होता था।

11वीं शताब्दी के पश्चात मिट्टी से सम्बन्धित कला में व्यापक परिवर्तन दिखलाई देता है। मुसलमानों के प्रभाव से यह कला विशुद्ध बुन्देलखण्डी कला न रह गयी, इसमें तदयुगीन परिस्थितियों का भी व्यापक प्रभाव पड़ा।

इस्लाम के आगमन के पश्चात मिट्टी की कला में परिवर्तन-

11वीं शताब्दी के पहले मिट्टी के जो बर्तन यहां बनते थे, 11वीं शताब्दी के बाद उन बर्तनों के उपयोग और निर्माण में परिवर्तन आया। मुसलमान लोग मटकों और घड़ो के स्थान पर सुराहियों का प्रयोग किया करते थे, इसलिये इनके प्रयोग के लिये सुराहियों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। इसके अतिरिक्त टोटीदार मिट्टी के लोटे, मिट्टी के तवें, हुक्के की चिलम, गमले आदि का निर्माण मुसलमानों के प्रयोग के लिये किया गया। मुसलमान लोग मिट्टी की जगह चीनी के बर्तनों का भी प्रयोग करते थे। इस समय इनका निर्माण भारतवर्ष में नहीं होता था, ये लोग चीनी मिट्टी के बर्तन बाहर से मंगवाते थे। डा० आशीर्वादी लाल के अनुसार- मुगल मिट्टी के कीमती बर्तनों का उपयोग करते थे और चीनी मिट्टी के बर्तनों को बाहर से मंगाते थे। फलस्वरुप लाभदायक होने के कारण इन बर्तनों के उद्योग विकसित हो उठे और मुगल काल में तो वे बहुत ही उच्च्य स्तर पर पहुंच गये।[72]

बुन्देलखण्ड में रहने वाले मुसलमान भी कुम्हारों से अपनी आवश्यकता के अनुसार मिट्टी के बर्तन बनवाते थे और उनका उपयोग करते थे। इमारतें बनवाने के लिये ककई और बड़ी ईटों के भट्टे भी लगवाते थे। यदि उनके मकान कच्चे होते थे, तो उसके ऊपर छाने के लिये खप्पर और घरिया भी मिट्टी की बनवाते थे।

धातु कला-

बुन्देलखण्ड में सोना, चांदी, लोहा, तांबा, कांसा, फूल, तथा जस्ता धातु के रुप में प्रयुक्त होता रहा, जिनसे विविध वस्तुओं का निर्माण अति प्राचीन काल से होता रहा। बुन्देलखण्ड में जहां प्राचीन नगर थे, वहां किये जाने वाले उत्खनन से नाना प्रकार की धातुओं से निर्मित वस्तुये उपलब्ध हुयी। इनमें ताम्रपत्र, मुद्रायें, स्वर्ण-रजत आभूषण एवं उपयोग में लाये जाने वाले कीमती बर्तन शामिल हैं। इनको देखने से यह पता लगता है कि धातु शिल्प का विकास यहां चरम-सीमा पर था। सबसे पहले इस परिक्षेत्र में तांबे का उपयोग होता था। इसके पर्याप्त ऐतिहासिक साक्ष्य यहाँ उपलब्ध होते हैं। संकटा प्रसाद शुक्ल के अनुसार उत्तरी विन्ध्याचल में, वाराणसी, बांदा, मिर्जापुर और इलाहाबाद जिलों से, जो अवशेष महाश्म संस्कृति के खोजे गये हैं, वे ताम्रयुगीन हैं। यहां विशेष प्रकार की शव विसर्जन पद्धति का प्रचलन ऐतिहासिक काल तक इस क्षेत्र में रहा। उत्खनन से प्राप्त अवशेष परवर्ती सिंधु सभ्यता, विन्ध्य एवं संबद्ध गंगा की ताम्र संस्कृति से संबधित है।[73]

धातु कर्म के रुप में धातु मूर्तिकला का विकास बुन्देलखण्ड में हुआ। श्री गिरजा शंकर तिवारी के अनुसार बांदा जिले के थानेश्वर खेड़ा नामक स्थान में एक चन्देल ताम्रपत्र के साथ तीन बौद्ध धातु मूर्तियाँ सन् 1895 में उपलब्ध हुयीं, जिनमें से दो अभिलिखित भी हैं। पहली कृति में बुद्ध को चरण चौकी पर खड़ी हुयी मुद्रा में दिखाया गया है। इनका दांया हाथ अभय मुद्रा में है तथा इन्होंने बायें हाथ में उत्तरीय का छोर पकड़ रखा है। इनका मुख मण्डल मथुरा शैली के समकालीन बौद्ध प्रस्तर मूर्तियों से मिलता-जुलता है।[74] विभिन्न धातुओं की मूर्तियां श्री नगर, कालपी, झांसी, ग्वालियर आदि परिक्षेत्रों में पर्याप्त रुप में निर्मित होती रही।

मूर्तियों के पश्चात् धातुओं के बर्तन यहां प्रचुर मात्रा में निर्मित होते रहे हैं। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- तांबा, पीतल और फूल के बर्तन खास नगरों में बनते हैं, परन्तु बाहर का हल्का माल अब इस व्यापार को दबा रहा है। छतरपुर, खरगपुर, दमोह आदि में अब भी अच्छा काम होता है। श्रीनगर में पीतल की मूर्तियां और खिलौने ढाले जाते हैं। यह काम सुनार करते हैं। बुन्देलखण्ड में फूल अर्थात कांसा का काम कई जगह अच्छा होता है। धातु का काम प्रायः हर जिले और राज्य में होता है।[75] बर्तनों के अतिरिक्त इस क्षेत्र में धातुओं का उपयोग अस्त्र-शस्त्र निर्माण और भवन निर्माण में भी किया जाता है।

धातुओं का उपयोग आभूषण निर्माण में भी होता था। आभूषण निर्माण का कार्य यहां सुनार लोग करते थे। ग्रामीण क्षेत्र की औरते कांसे और गिलट के आभूषण पहनती हैं तथा इन आभूषणों

की ढलाई का काम हटा और मौदहा में होता था। यहां के स्वर्णकार बिछिया, पांव और हाथ में पहनने वाले विविध प्रकार के आभूषण धारण करते थे। ये आभूषण सामान्य और विशेष व्यक्तियों के अलग-अलग होते थे। इस क्षेत्र में कंठ में पहने जाने वाले आभूषणों में हार, सुतिया, ठुसी, जंजीर और तिदाना आदि प्रमुख थे। इसी प्रकार हाथों में बाजूबन्द और कड़ा पहनने का रिवाज था। कानों में कर्णफूल, बालियां तथा नाक में कील, नथुनी या मुदरी पहनी जाती थी तथा माथे में बेंदी, झूमर आदि पहनने का रिवाज था। कमर में स्त्रियां जंजीर धारण करती थीं तथा पैरों में झांझे कड़े, लच्छे, छैल-चूड़ी, इत्यादि पहनती थी। ये प्राचीन जेवर कहीं-कहीं आज भी उपलब्ध होते हैं।

मुसलमानों के आगमन के पश्चात् धातु कला में परिवर्तन -

11वीं शताब्दी के पश्चात् धातु कला में व्यापक परिवर्तन हुआ। डा० आशीर्वादी लाल के अनुसार पीतल, सोने, चांदी और अन्य धातुओं के सुन्दर और जड़ाऊ काम के बर्तन बड़े पैमाने पर बनाये जाने लगे। सुन्दर, खुदे हुये बर्तन, पीतल के खिलौने, उभरी नक्काशी के नायक नायिकाओं के चित्रों से सुसज्जित ढालें, रकाबियाँ, राशि चिन्ह खुदे हुये फूल-दान, उभरे काम की धातु की थालियां, जालीदार उभरे काम के दीपाधार, कई प्रकार के पानी भरने के बर्तन, प्याले-प्यालियाँ, काफी सेट, विभिन्न प्रकार की पानी की सुराहियां, आधार सहित धूपदानियां आदि 17 वीं और 18 वीं सदी में अधिकता से बनायी जाने वाली विशेष प्रसिद्ध वस्तुएं थीं। इनका सारा काम हाथ से ही किया जाता था।[76]

हिन्दू और मुसलमानों की आभूषण धारण करने की पद्धति और आभूषण की किस्म अलग-अलग किस्म की प्रतीत होती है। मुसलमान परिवार की औरतें भारतीय शैली की अपेक्षा तुर्क शैली को अधिक अपनाती हैं। मुसलमान सम्राट और उनकी बेगमें रत्न जड़ित आभूषणों को अधिक पसन्द करती थी। अंगूठियां स्त्री और पुरुष दोनों धारण करते थे। इनमें रत्न जड़े रहते थे तथा सिंहासन और फर्नीचर आदि, जो प्रयोग में लाते थे, उनमें भी रत्न जड़े रहते थे। इस युग में बुन्देलखण्ड के अनेक नरेश, जो नजराने मुगल सम्राटों को भेंट करते थे, उसे कुशल सुनारों और जौहरियों के द्वारा निर्मित कराते थे। डा० आशीर्वादी लाल के अनुसार मुगल सम्राट हीरे-जवाहरातों के बड़े शौकीन थे। हुमायूँ ने ग्वालियर के राजा विक्रमाजित के वंश से सुप्रसिद्ध हीरा प्राप्त किया था।[77] इस युग में शाही हरम में रहने वाली स्त्रियों के पास बहुत कीमती आभूषण थे, इनकी लागत का अनुमान नहीं लगाया जा सकता था। इस सम्राज्य के अमीर, उच्च्व पदाधिकारी और धनी व्यक्ति आभूषणों के शौकीन थे। उच्च्व और मध्य वर्ग के व्यक्ति भी आभूषण धारण करते थे। आभूषण पद्धति में सल्तनत और मुगलकाल में व्यक्ति की अभिरुचि के अनुसार व्यापक परिवर्तन हुये।

वस्त्र निर्माण कला-

बुन्देलखण्ड के मानवों ने सभ्यता के विकास के साथ-साथ अपने शरीर को सुरक्षित रखने के लिये वस्त्र धारण करने की कला सीखी। ऐसा अनुमान लगाया जाता है, कि प्रागैतिहासिक काल में

पेड़ो की पत्तियां, वृक्ष की छाल और पशु-चर्म वस्त्र के रुप में धारण किया करते थे। विशेषकर आदिदेव भगवान शिव अपने शरीर में व्याघ्रचर्म, मृगचर्म और गजचर्म वेशभूषा के रुप में धारण किया करते थे। साथ ही यहाँ रहने वाले ऋषि मुनि भी इसी प्रकार की वेशभूषा धारण करते थे। यहाँ उपलब्ध शैल चित्रों से आदि मानव के वस्त्रों के सन्दर्भ में पूर्ण जानकारी उपलब्ध हो जाती है। यहाँ स्त्री और पुरुषों के अलग-अलग वस्त्र उपलब्ध होते हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान अलबरुनी के अनुसार-भारतवासी अपेक्षाकृत कम वस्त्र पहनते थे। धोती, पगड़ी सामान्य पोशाक थी। अधोवस्त्र में पैजामे का प्रयोग प्रचलित होने लगा था। उर्ध्ववस्त्र में पुरुष मिरजई और बगलबन्दी के ढंग का वस्त्र पहनते थे।[78] स्त्रियाँ भी विशेष प्रकार के वस्त्र धारण किया करती थी। आर्कुलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट के अनुमार यहाँ की स्त्रियाँ-

1- कटि के अधोभाग में पेटीकोट धारण करती थीं, इसमें बेलबूटे भी बने होते थे। यह बड़े महीन कपड़े से बना होता था।

2- एक लम्बा कपड़ा, जो दुपट्टे अथवा साड़ी के रुप में प्रयुक्त होता था।

3- एक छोटा वस्त्र, जो जांघ के नीचे तक आता था, यह हिन्दुओं की वर्तमान धोती की भांति होता था, किन्तु उसकी गांठ पीछे की ओर लटकती थी। उसका कपड़ा बारीक होता था।

4- एक छोटा वस्त्र खण्ड, जो टखनों तक लटकता था। इसका भी कपड़ा बारीक होता था।[79]

उपरोक्त वस्त्र जो पुरुष और स्त्री धारण करते थे, उनका निर्माण भी बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में होता था। मुख्य रुप से सूती कपड़ा कपास से, रेशमी कपड़ा रेशम के कीड़ो से और ऊनी कपड़ा भेड़ की ऊन से बनते थे। कपड़ा बुनने का कार्य बुनकर ही करते थे, जिन्हे कोरी नाम से सम्बोधित किया था। रुई धुनकने का कार्य बेहने करते थे। भेड़ की पीठ से ऊन निकालने का कार्य गड़रियां करते थे तथा कपड़ा रंगने और छापने का कार्य रंगरेज और छीपा करते थे। कपड़ों की सिलाई दर्जी किया करते थे। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- कपड़ा ''गजी'' सभी नगरों और और गांवों में बनता है। ग्रामीण अब भी बहुत कुछ इसका उपयोग करते हैं। इसी के छापेदार लिहाफ, जाजम आदि भी बनाये जाते हैं। इसको बुनने वाले यहाँ के कबीरपंथी या कोरी हैं। मुसलमान जुलाहे केवल चंदेरी में है।[80] कपड़ा मुख्य रुप से मऊरानीपुर, रानीपुर, शेरपुर सिहोड़ा तथा चन्देरी में और कर्वी में बनता था। कर्वी, चन्देरी, चरखारी और दतिया में रेशम और जरी का काम अच्छा होता था। कर्वी में जीने के गांसिया और चन्देरी में जरी का कपड़ा निर्मित होता था।

मुसलमानों के आगमन के पश्चात वस्त्र कला में परिवर्तन-

भारतवर्ष में यद्यपि वस्त्र-उद्योग अत्यन्त प्राचीनकाल से है, किन्तु इस उद्योग को प्रोत्साहन मुसलमान सुल्तानों और सम्राटों ने दिया, जिसके परिणाम स्वरुप बुन्देलखण्ड के वस्त्र उद्योग में भी अनेक परिवर्तन हुये। मुसलमान सम्राट, सामंत और अमीर अच्छे वस्त्रों के बहुत शौकीन थे। इन वस्त्रों का निर्माण वे अपनी देख-रेख में स्वतः कराते थे। मुगल दरबार में कालीन, गलीचों और पर्दो की

बड़ी मांग रहती थी। कारीगर इनके निर्माण में अपनी कला का परिचय देते थे। इनकी डिजाइनें और रंग देखने के काबिल था। इनके वस्त्र हिन्दुओं के वस्त्रों से भिन्न होते थे। हिन्दू स्त्रियाँ जहाँ धोतियाँ, साडियाँ, लहंगा और चुनरी का प्रयोग करती थी, वहीं मुसलमान औरतें गरारा, पोलका, दुपट्टा, सलवार धारण करती थीं और शरीर को ढके रहने के लिये बुर्का ओढ़ती थीं तथा कभी-कभी चादर का प्रयोग भी करती थीं। कुलीन हिन्दू परिवारों में भी मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव पड़ा और कुछ लोगों ने उसी प्रकार के वस्त्र धारण करना प्रारम्भ कर दिये, जिसके परिणाम स्वरुप वस्त्र कला से जुड़े कारीगर जन-अभिरुचि के अनुसार वस्त्रों का निर्माण करने लगे।

काष्ठ कला-

बुन्देलखण्ड की भूमि खनिज सम्पदा से भरी हुयी है। यहाँ नाना प्रकार के वन पर्वतीय क्षेत्रों में उपलब्ध होते हैं। इन वनों में जलाऊ और इमारती लकड़ी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। इस लकड़ी का प्रयोग भवन निर्माण, भवनों के दरवाजे, खिड़की, झरोखे आदि में होता है। इसके अतिरिक्त घर में उपयोग की जाने वाली वस्तुएं और फर्नीचर भी लकड़ी का बनता है। मुख्य रुप से शयन कक्ष के पलंग, सामान रखने की अलमारी, बैठने के तखत, कुर्सियाँ, लकड़ी के सिंहासन, ओखली, मूसर, चौकी, पीढे, हुर्सा तथा कूढ़ी आदि लकड़ी से ही निर्मित होते हैं। इसी प्रकार अनेक वाहन जैसे रथ और बैलगाड़ी लकड़ी से ही निर्मित होते थे। विवाह आदि संस्कारों में प्रयुक्त होने वाली पालकी भी लकड़ी की बनती थी। विवाह के अवसर पर बनने वाला मंडप भी लकड़ी का होता था तथा तीज-त्योहारों में निकलने वाले विमान भी लकड़ी से ही निर्मित होते थे। स्वास्थ्य बनाने के लिये मुगदरों और मलखम्ब का निर्माण भी लकड़ी से होता था। मनोरंजन के लिये गुट्टे एवं चौपड़ खेलने के पांसे भी लकड़ी से ही निर्मित होते थे। बच्चों के खेलने के खूबसूरत खिलौने तथा घर को सजाने के अनेक उपकरण लकड़ी से बनते थे। सौन्दर्य प्रसाधन में बालों में प्रयोग होने वाला कंघा और ककई तथा घर को सजाने वाला अनेक प्रकार का सामान लकड़ी से ही निर्मित होता था। लकड़ी का यह काम कुशल कारीगरों द्वारा किया जाता था, जिन्हें सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में बढ़ई के नाम से पुकारा जाता था।

बुन्देलखण्ड में लकड़ी का काम बहुत अच्छा होता है। यहाँ की अनेक रियासतों में लकड़ी का जो सामान उपलब्ध हुआ है, वह बहुत कीमती है। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार यहाँ कुदरे लोग लकड़ी के खिलौनों, निगाली, पलंग, शतरंज के मोहरे, चकरी, मौरियां, कंधी आदि बनाते हैं। ये काम बहुत थोड़े आदमी करते हैं।[81] मुख्य रूप से चित्रकूट में लकड़ी के खिलौनों का काम अति प्राचीन काल से हो रहा है। पन्ना में लकड़ी की कंघियाँ बनती थी। छतरपुर के आस-पास हुक्का और उसकी निगाली और लकड़ी का फर्नीचर बनता था। पाथर कछार तथा कालिंजर में ऐसे दरवाजे उपलब्ध हुये हैं, जिन्हें काष्ठ कला का सर्वोत्तम उदाहरण माना जा सकता है। बुन्देलखण्ड में उपलब्ध दुर्गो में जो तोरण द्वार हैं, वे भी लकड़ी से निर्मित हैं तथा उसे आक्रमण से बचाने के लिये उसमें बड़े-बड़े लोहे के कीलों का प्रयोग किया गया।

मुसलमानों के आगमान के पश्चात काष्ठ कला में परिवर्तन-

मुसलमानों के आगमान के पश्चात इस कला में व्यापक परिवर्तन हुये। यहाँ रहने वाले सामन्तों ने बारीक कलाकारी वाले लकड़ी के तख्त और पलंगों का निर्माण कराया, कमरे में आड़ रखने के लिये लकड़ी के बड़े-बड़े बोर्ड बनाये गये तथा बर्तन आदि रखने के लिये विविध प्रकार की अलमारियों का निर्माण हुआ। अनेक प्रकार के लकड़ी के हुक्के, उसकी नलियां, विविध सौन्दर्य प्रसाधन, जेवरात रखने के बॉक्स, कपड़ा रखने की पेटियां तथा खूबसूरत बेतों का निर्माण लकड़ी से किया गया। कुछ देशी सामंतों ने लकड़ी के तख्तों के सुन्दर चित्रों का निर्माण कराया तथा कुछ धनी व्यक्तियों ने अपने बच्चों के लिये लकड़ी के कलात्मक खिलौने बनवाये। इस युग में शतरंज और पासा खेलने का खेल बड़ा लोकप्रिय था, इनकी गोटें भी लकड़ी की बनायी गयी।

प्रस्तर कला -

बुन्देलखण्ड क्षेत्र पर्वतीय क्षेत्र है। यहाँ अनेक प्रकार के पत्थर उपलब्ध होते हैं। प्रमुख रूप से ग्रेनाइट, बलुआ पत्थर, इमारती पत्थर यहां अनेकों क्षेत्रों में उपलब्ध होता है। यह पत्थर इमारत बनाने, महल, दुर्ग का निर्माण करने के काम आते हैं। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार पन्ना, शाहगढ़ आदि पहाड़ी स्थानों में जहां उपयुक्त पत्थर है, वहां आटा पीसने की चक्कियां तथा कूड़ियां और प्यालियां बनायी जाती हैं। बांदा के सजर पत्थर का काम प्रख्यात है।[82] मुख्य रूप से पत्थर से बनी हुयी सिलौटी, लोड़ा, हुरसा, कांडी, ओखली तथा कठौतियों का निर्माण यहाँ होता था। बांदा और महोबा के आस-पास गौरा पत्थर भी उपलब्ध होता है, उससे अनेक प्रकार की कूड़ियां और पत्थर के खिलौने और मूर्तियां बनायी जाती थी। जबलपुर के नर्मदा नदी के तट पर संजराहट पत्थर उपलब्ध होता है, इससे भी अनेक वस्तुएं निर्मित होती थी।

मुसलमानों के आगमन के पश्चात प्रस्तर कला में परिवर्तन -

बुन्देलखण्ड की प्रस्तर कला में मुसलमानों के आगमन के पश्चात व्यापक परिवर्तन हुआ। जब किसी भवन निर्माण में करीगर अपनी विलक्षण कला का परिचय देना चाहता था, उस समय वह कलात्मक जालियां, कलात्मक प्रस्तर के अस्त्र छत साधने के लिए उनमें लगाता था। बुन्देलखण्ड के एक भाग में कुरंडम पत्थर का कार्य होता था, इससे धार वाले मरसांग बनाये जाते थे, जिनसे तलवार, चाकू और उस्तरे में धार रखी जाती थी। गौरा पत्थर से भी नवीन कलाकृतियों का निर्माण किया गया, इनसे ऐसे बर्तन बनाये गये, जो मुसलमानों के उपयोग के थे।

चर्म कला-

बुन्देलखण्ड में चर्मकला अत्यंन्त प्राचीन काल से फल-फूल रही थी। यहाँ चर्म का उपयोग बैठक को सजाने के लिए किया जाता था। यहां के बड़े-बड़े सामंत अपनी बैठकों को मृगचर्म और सिंहचर्म से सजाते थे तथा इनका उपयोग कालीनों की तरह किया जाता था। जब लौह अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग युद्ध के लिए होने लगा, उस समय अस्त्र शस्त्रों का खोल चमड़े का बनाया जाता था तथा

शारीरिक सुरक्षा के लिए सुरक्षा कवच भी चमड़े से बनते थे। बहुत से लोग अपने सिर को चोट से बचाने के लिए चमड़े के टोप धारण करते थे। ढोल, नगाड़े तथा अन्य वाद्य यन्त्रों में बकरे के चर्म चढ़ाये जाते थे, जिनसे अच्छी धुन निकलती थी। चमड़े का उपयोग पैरों में पहने जाने वाले जूता निर्माण के लिए भी होता था। ये परिधान स्त्री-पुरुषों के लिए अलग तरीके के होते थे। ये जूते, चप्पल मरे हुये जानवरों के चमड़े से बनते थे। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- चमड़े का काम यहां प्राचीन ढंग का बहुत ही साधारण होता है। चमार मृत पशुओं का चमड़ा पुरानी विधि से पकाते हैं और उससे देशी जूता, चरसा आदि बनाते हैं।[83] हिन्दुओं के शासनकाल में यहां चर्म उद्योग का विशेष विकास नहीं हुआ।

<u>इस्लाम के आगमन के पश्चात चर्म-कला में परिवर्तन</u> -

मुसलमान बकरा, भेड़, ऊँट, भैंस का मांस खाते थे तथा उसके चर्म से विविध वस्तुओं का निर्माण करते थे। मुख्य रूप से इस काल में भैंस और बकरे की खाल से पानी भरने के मसक बनाये गये। ये लोग इनका उपयोग कुंए से पानी खींचने के लिए करते थे। इसके अतिरिक्त घोड़े की जीन्स और उसकी लगाम चमड़े से बनायी जाती थी। जरीदार जूते और चप्पल भी चर्म से ही बनते थे। अनेक लोग चमड़े की पेटियां कमर में बांधने के लिए बनवाते थे। जब आग्नेय अस्त्रो, बन्दूको और पिस्टलो का निर्माण हुआ, उस समय इनके कवर और इनकी गोलियाँ के खोल भी चमड़े के बनते थे। ऊँट की खाल के डिब्बे और शीशियां बनायी जाती थी, जिनका उपयोग तेल, इतर और चर्बी भरने के काम में होता था। कुछ सामन्त और जमींदार शीतकाल में चमड़े के वस्त्र बनवाकर पहना करते थे।

<u>कांच और लाख की कला</u> -

बुन्देलखण्ड के बाँदा जनपद मे बरगढ़ के समीप सिलिका सैंड अथवा कांच की बालू उपलब्ध होती है। प्रमुख रूप से यहां कांच और लाख की चूड़ियों का प्रयोग स्त्रियों द्वारा किया जाता था। चूड़ियाँ यहाँ सुहाग की निशानी और सौन्दर्य प्रसाधन मानी जाती थी। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार कांच और लाख की चूड़ियां कई जगह दमोह, हिडोरिया आदि में बनती हैं। परन्तु विदेशी माल के सामने अब उनकी खपत नहीं है। कांच की चूड़ी बनना प्रायः पूरे तौर पर बन्द हो चुका है। लाख की चूड़ियां श्रावण के त्यौहार अथवा ब्याह शादी आदि के सिलसिले में अब भी बनती और बिकती हैं।[84] इस क्षेत्र में कांच से दर्पण बनाने का कार्य भी होता था। इससे मुख के सौन्दर्य और केश-सज्जा को देखा जा सकता था। दर्पण का निर्माण कांच में पारा की पॉलिश करने के बाद उसमें सिंदूर की पॉलिश की जाती थी तथा उसका फ्रेम लकड़ी का बनाया जाता था।

<u>इस्लाम के आगमन के पश्चात कांच और लाख की कला में परिवर्तन</u> -

मुसलमान लोग धातु के कीमती बर्तनों के अतिरिक्त कांच के बर्तनों का उपयोग भोजन एवं पेय पदार्थो के लिए किया करते थे। उनके लिए नक्काशीदार प्याले-प्यालियां, गिलास-तश्तरियां,

सुराहियां आदि का निर्माण किया गया तथा उनको विविध प्रकार के रंगों से सजाया गया। मुस्लिमों और तुर्कों को देखकर हिन्दू नरेश भी कांच की विविध वस्तुओं का उपयोग करने लगे थे। कमरे को अति सुन्दर बनाने के लिए कांच के बने झाड़-फानूस तथा दीपदानों का प्रयोग होने लगा था। दीपक को बुझने से बचाने के लिए कांच की चिमनियां दीपक में ढ़की जाने लगी थीं। अनेक दीपदानों में मोमबत्तियाँ जलाने का रिवाज इस समय प्रारम्भ हुआ। अनेक मुसलमान स्त्रियाँ अपने वस्त्रों को सजाने के लिए विविध प्रकार के कांचों का प्रयोग करती थीं।

भोज्य पदार्थ तथा मिठाई कला -

बुन्देलखण्ड में जो अनाज और फल उत्पन्न होते थे, उन्हीं से यहाँ का निवासी अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थ निर्मित करता था। इस क्षेत्र में अनेक प्रकार के अनाज, दालें, खाण्डसारी, गुड़, तेल, खोवा, घृत, दूध, दही आदि पदार्थ उपलब्ध होते थे। इनके सम्मिश्रण से विविध प्रकार के व्यंजन तैयार किये जाते थे, इस सन्दर्भ में यहाँ प्रचलित लोकगीतों से पता लगता है।

अपने राम से करे लरिया, जनकपुर की सखिया,
उनने अतरी परसी सो पतरी परसी सो परस दई दुनियाँ।।
उनने आलू परसे, रतालू परसे, सो परस दई घुइयाँ,
उनने पूरी परसी, कचौड़ी, परसी तो परस दई गुझियाँ।।

उपरोक्त लोकगीत से यहाँ की भोजन व्यवस्था का बोध होता है। दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- यहाँ कई स्थानों की मिठाई साफ और शुद्ध दूध, खोवा के बाहुल्य से बहुत अच्छी बनती थी। हटा की बरफी प्रख्यात है, राठ का गुड़ अच्छा होता है और कालपी की मिर्शी बहुत मशहूर थी।[85] यहाँ की प्रसिद्ध मिठाई लड्डू, पेड़ा, बरफी, बालूशाही, मसूर, इमरती, लवंगलता, कपूर कंद, घेवर, सोहनहलुआ, बतास फेनी, बूंदी, गोंद के लड्डू, सिंघाड़पाक और विविध प्रकार के हलुआ आदि थे। इसके अतिरिक्त जेवनार के समय विविध प्रकार की सब्जियां, रायता, अचार, सलाद, सेव आदि परोसने का रिवाज था। कई स्थानों पर बिजौरे और कचरियां भी परोसी जाती थीं। सामान्य भोजन में दूध से निर्मित खीर, मट्ठा से निर्मित महेंरी एवं रायता, महुआ से निर्मित महुआ लाटा, गुड़धानी, सत्तू और बहुरी का प्रयोग होता था। सेव, खुरमा, खाजे इत्यादि को लोग जलपान के रूप में गृहण करते थे। यहाँ तीज त्यौहारों में भी विविध प्रकार के व्यंजन बनते थे। इनमें पंचामृत, पंजीरी, अठवाई, मोहनभोग, मालपुआ, मक्खन बरा, चिल्ला, पुंआ, मुगौड़े, गुलगुले आदि प्रमुख थे। विवाह के अवसर पर विविध प्रकार की समरौटी, जिसमें गुंदी हुयी आटा और बेसन की मोटी पूड़ियां तथा मेवे के लड्डू और गूंझे बनाये जाते थे। जब किसी के सन्तान होती थी, उस समय सोंठ, पीपर, खस-खस दाना डालकर मेवा और गुड़ के सम्मिश्रण से सिठौरा बनाया जाता था। कहीं-कहीं पर विशेष आयोजनों में दाल-बांटी, मिस्सी रोटी, कढ़ी तथा माड़े बना करते थे। जब कुल देवी की पूजा होती थी, उस समय घर के पिसे आटे की मायन बनती थी, जो आटे की लोई को मोड़कर बनायी जाती थी। उपवास आदि

इस्लाम के आगमन के पश्चात भोज्य पदार्थ तथा मिठाई कला में परिवर्तन-

इस्लाम के आगमन के पश्चात भोजन व्यवस्था में और उसकी निर्माण शैली में व्यापक परिवर्तन हुआ। ये लोग मांसाहार करते थे, इनके तीज-त्यौहारों में विविध प्रकार के पशुओं की बलि दी जाती थी, इसलिये मांसाहार इनका प्रमुख भोजन था। मांस को पकाने के लिए पाक कला में व्यापक परिवर्तन हुआ। इनके यहाँ भोजन पकाने वाले व्यक्ति को खानसामा कहा जाता था। ये अपने घर के सदस्यों के लिये और मेहमानों के लिए बिरयानी, बकरे का मांस, मुर्गे का मांस तथा अन्य पशुओं का मांस विविध प्रकार के मसाले डालकर बनाते थे। इसी प्रकार अंडे के विविध व्यंजन आमलेट आदि इनके यहाँ खाने का आम रिवाज था। यद्यपि इस्लाम में मदिरापान वर्जित था, फिर भी अमीरों और सामन्तों के यहां विविध प्रकार की मदिरा और फलों के रस पेय पदार्थ के रूप में प्रयुक्त होते थे। रोटियों में इन्हें रुमाली रोटी और तन्दूरी रोटी बहुत प्रिय थी। इसके अतिरिक्त हिन्दुओं के अनेक भोजन भी ये लोग पसन्द करते थे।

सौन्दर्य प्रसाधन कला -

बुन्देलखण्ड में रहने वाले स्त्री और पुरुषों की अभिरुचि सौन्दर्य प्रसाधन की ओर बहुत अधिक थी। विविध संस्कृत ग्रन्थों में उन सौन्दर्य प्रसाधनों का उल्लेख किया गया है, जिनका प्रयोग उस समय की स्त्रियां करती थीं। वे नेत्र, कपोल, केशविन्यास, दांत तथा शरीर के उस भाग को सजाने का प्रयत्न करती थीं, जिसे देखकर दूसरा व्यक्ति उनके रूप सौन्दर्य से प्रभावित हो। उनके रूप सौन्दर्य को देखकर तद्‌युगीन कवियों ने उसका वर्णन अपने काव्य में किया है। यथा-

आंखिन पै कजरा दै न सुहागन,
आंगुरी तेरी कटेगी कटाक्षन।

इस युग में विविध प्रकार के सौन्दर्य प्रसाधन घर में ही निर्मित होते थे। प्रबोध चन्द्रोदय, रूपक षट्‌कम आदि ग्रन्थों में सौन्दर्य बोध के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। इस युग में स्त्रियो के जो चित्र उपलब्ध होते है, उनसे यह बोध होता है कि रूप सज्जा पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

इस्लाम के आगमन के पश्चात् रूप सज्जा की कला में परिवर्तन -

मुसलमानों के आगमन के पश्चात सौन्दर्य कला में व्यापक परिवर्तन हुआ। डा० आशीर्वादीलाल के अनुसार- शरीर स्वच्छता के लिये दाल, मैदा और रीठे का बना हुआ साबुन काम में लाया जाता था। लोग खिजाब, गंज और बालों के बढ़ाने की दवा बनाना जानते थे। स्त्रियाँ अनेक प्रकार के लेप और विशेषकर चन्दन के लेप उपयोग में लाती थीं। स्त्रियाँ हांथ, पैर पर महावर और आंखों में सुरमा लगाती थीं। पान आजकल की लिपिस्टिक का काम करते थे। इत्र और खुशबूदार तेल सभी काम में लाते थे। स्त्रियाँ आजकल की तरह ही मुगलकाल में भी गहनों की शौकीन थीं। व्यक्तिगत स्वच्छता तथा स्वास्थ्य-रक्षा, सदाचार का नियमित अंग बन गया था और इसका पालन लोग प्रातःकाल से ही किया करते थे। दातुन करना, आंख और मुंह का धोना, मालिश करना, बदन मलना, कपड़े से

रगड़ना, सुगन्धित उबटन लगाना, स्नान करना, सुरमा लगाना, पाउडर लगाना तथा पान खाना इत्यादि स्वास्थ्य रक्षा के काम समझते थे।[86]

इस युग में हांथ, पांव और गालों में गुदना गुदवाने का रिवाज था तथा चलने, बात करने तथा बैठने-उठने को भी सौन्दर्य प्रसाधन की कला से जोड़ा जाता था। नारी सौन्दर्य को पद्मिनी, हंसनी और हस्थिनी आदि कोटियों में बांटा गया था। इसी प्रकार प्रेमाचरण तथा प्रेम व्यवहार के सन्दर्भ में उस स्वक्रिया, परक्रिया, सज्यस्नाता तथा स्वयंदूतिका आदि नायिकाओं के रूप में विभाजित किया जाता था तथा उसके वैवाहिक स्वरूप को संयोगिनी और विरहणी के रूप में चित्रित किया जाता था। मुख्य रूप से गणिकायें, नृत्य करने वाली स्त्रियाँ, राजघरानों की कन्यायें तथा द्वैत कार्य करने वाली विष कन्यायें अपने सौन्दर्य का विशेष रूप से ध्यान देती थीं।

इस्लाम का बुन्देलखण्ड के संगीत पर प्रभाव

व्यक्ति अपनी मनोभावनाओं को व्यक्त करने के लिए कोई न कोई तरीका ढूंढ निकालता है। यदि हिन्दू धर्म के प्रमुख देवताओं की आकृतियों को देखा जाये, तो ऐसा प्रतीत होता है, कि उन्होंने दो प्रकार की आवश्यकताओं को प्रमुखता दी है। पहली प्रमुखता उन्होने रक्षा को प्रदान की है। विष्णु के करकमलों में चक्र और गदा विराजता है, शिव और देवी के करकमलों में त्रिशूल विराजता है। इसी प्रकार उन्होने दूसरी प्रमुखता संगीत अथवा मनोरंजन को प्रदान की है। विष्णु के करकमलों में शंख है और शिव के कर कमलों में डमरू विराजता है। भगवान श्रीकृष्ण के करकमलों में बांसुरी शोभा देती है। स्पष्ट है कि मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ संगीत का विकास हुआ।

सुप्रसिद्ध विद्वान दामोदर पंडित के अनुसार- संगीत की उत्पत्ति ब्रह्मा से ही हुयी, उन्होने अपना मन्तव्य इस प्रकार दिया है-

द्रू हिणेत यदन्विष्टं प्रयुक्त भरतेन च।
महादेवस्य पुरतस्तन्मार्गाख्य विमुक्तदम्।

अर्थात ब्रह्मा (द्रुहिण) ने जिस संगीत को शोधकर निकाला, भरतमुनि ने महादेव के सामने जिसका प्रयोग किया तथा जो मुक्तिदायक है, वह मार्गी संगीत कहलाता है।[87]

फारसी विद्वानों के अनुसार- जब हजरत मूसा प्राकृति सौन्दर्य देख रहे थे। उस समय एक आकाशवाणी हुयी, उसने मूसा से कहा कि इस पत्थर पर तुम अपना डण्डा मारो। जैसे ही उसने डण्डा मारा, पत्थर के सात टुकड़े हो गये, जिससे पानी अलग-अलग धारा में बहने लगा और उसी से सरगम के सात स्वर निकले। एक दूसरे फारसी विद्वान के अनुसार- मुंसीकार नाम का एक पक्षी होता है, जिसकी नाक में सात सुराख होते हैं। उसी से संगीत के सात स्वर निकले हैं। पश्चात्य विद्वान फ्राइड के अनुसार- संगीत की उत्पत्ति मनोविज्ञान से हुयी है। यह स्वजनित है। जेम्स लॉग के अनुसार पहले मनुष्य ने बोलना सीखा, फिर चलना-फिरना सीखा, उसके पश्चात उसके हृदय से संगीत अपने आप उत्पन्न हुआ।

जहाँ तक भारतीय संगीत का प्रश्न है, उसकी उत्पत्ति ईसा से 2000 वर्ष पूर्व हुयी, क्योंकि उत्खनन में जो सामग्री उपलब्ध हुयी है, उनमें संगीत के अनेक उपकरण भी उपलब्ध हुए हैं। सन् 1924 में मोहन जोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई के समय शिव की एक खण्डित मूर्ति ताण्डव नृत्य की मुद्रा में मिली थी। खण्डहर की दीवारों में और शैल-चित्रों में ऐसे चित्र उपलब्ध हुए हैं, जिनमें नृत्य की मुद्रा दर्शायी गयी है। वैदिक युग में भी संगीत की लोकप्रियता थी। स्त्रियाँ वादन, नृत्य और गायन तीनों में भाग लेती थीं। अनेक गाथायें वैदिक ग्रन्थों में उपलब्ध होती हैं, जिनका सम्बन्ध संगीत से है। इस समय संगीतज्ञ अभिजात्यकुल के ब्राह्मण और उनकी स्त्रियाँ होती थीं। वाल्मीकि रामायण के अनुसार सुग्रीव के अन्तःपुर में संगीत हुआ करता था तथा रावण स्वतः बड़ा संगीतज्ञ था। इस समय भेरी, दुंदुभि, मृदंग, घट, डिंडिम, मुद्दुक, आदंबर तथा वीणा प्रमुख वाद्य थे। महाभारत में भी संगीत के सन्दर्भ में अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। कृष्ण और अर्जुन दोनों ही महान संगीतज्ञ थे। संगीत के अनेक उदाहरण जैन युग, बौद्ध युग, पौराणिक युग, स्मृति ग्रन्थों का युग, मौर्य युग, कनिष्क युग, गुप्त युग और यवन काल में भी उपलब्ध होते हैं।

बुन्देलखण्ड में भी संगीत की लोकप्रियता थी। चन्देलयुग में इस कला का विकास हुआ, चन्देल नरेश, संगीत कला को प्रोत्साहित किया करते थे। सुप्रसिद्ध विद्वान केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार- सार्वजनिक स्थान और गोष्ठी गृहों में ऐसी कलाओं का प्रदर्शन होता था। सार्वजनिक विनोद के रूप में संगीत और नृत्य सबसे शिष्ट और उत्तम कला मानी जाती थी। संगीत सर्वाधिक लोकप्रिय कला थी। कला की दृष्टि से संगीत के अनेक वर्गीकरण हुए थे। नाटकों में नृत्य के लिए प्रचुर अवकाश दिया जाता था।[88] किन्तु इस समय यह जानकारी उपलब्ध नहीं होती, कि चन्देल युग में संगीत का क्या स्वरूप था और प्रस्तुति की क्या शैली थी। केवल मूर्तियों और उपलब्ध नाट्य साहित्य के आधार पर किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा जा सकता। सल्तनत काल और मुगल काल के पहले बुन्देलखण्ड की संगीत परम्परागत संगीत था, जिसके प्रदर्शन और आयोजन सार्वजनिक स्थलों में होते रहते थे, इस सन्दर्भ में कोई अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती है।

<u>इस्लाम के आगमन के पश्चात बुन्देलखण्ड के संगीत में परिवर्तन-</u>

सन् 1290 से लेकर 1320 तक अलाउद्दीन खिलजी के समय एक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ उत्पन्न हुआ। उसका नाम अमीर खुसरो था, इसने अनेक रागों और तालों को जन्म दिया। इसका जन्म सन् 1254 में हुआ था। इसी समय एक दूसरा संगीतज्ञ भी था, जिसका नाम गोपाल नायक था। उसकी प्रसिद्धि बुन्देलखण्ड में भी थी। तुगलक युग में ग्यासुद्दीन तुगलक और मोहम्मद तुगलक के समय संगीत का विकास हुआ, किन्तु संगीत को राजाश्रय प्रदान नहीं किया गया। सन् 1414 से लेकर सन् 1525 तक लोदी वंश के शासनकाल में हिन्दू और मुसलमानों को खुश करने के लिए संगीत को आदर प्रदान किया गया। इस युग में कव्वाली, गज़ल, ख्याल, ठुमरी आदि संगीत में अपनायें गये। एक सुप्रसिद्ध लेखक के अनुसार- सिकन्दर लोदी को यद्यपि गीत का कुछ जानकारी नहीं थी, परन्तु फिर

भी वे संगीतज्ञों का आदर करते थे। इस काल में कव्वाली, गजल, ख्याल, ठुमरी आदि खूब प्रचार में आ गये। भारतीय संगीत की आत्मा को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिये ग्वालियर के मान सिंह तोमर (1486-1525) ने ध्रुपद शैली को जन्म दिया। फलस्वरूप मुगलकाल में ध्रुपद की प्रधानता रही।[89]

मुगल काल में संगीत को प्रोत्साहन प्रारम्भ से उपलब्ध हुआ। बाबर और हुमायूं दोनों ही संगीत का सम्मान करते थे और संगीतकारों को इनाम भी दिया करते थे। इसी युग में भक्ति आन्दोलन का शुभारम्भ हुआ, जिससे प्रभावित होकर अनेक सन्तों ने ऐसी काव्य रचनाएं रचीं, जिन्हें विभिन्न राग-रागनियों में गाया जा सकता था। जौनपुर का सुल्तान हुसैन शाह शर्की भी संगीत प्रेमी था। उसने कुछ नवीन रागों का सृजन किया और ख्याल को संगीत में प्रतिष्ठा दिलाई। अकबर बादशाह में सन् 1560 से लेकर 1605 तक संगीतकारों को प्रोत्साहित किया। आइने अकबरी के अनुसार- अकबर के दरबार में 36 संगीतज्ञ रहते थे। इनमें से कुछ बुन्देलखण्ड के थे। मुख्य रूप से तानसेन अकबर से पूर्व कालिंजर के शासक रामचन्द्र बघेल के दरबार में रहते थे। यहीं से वे अकबर के दरबार में गये। अकबर के दरबार में उन्होंने कुछ नये रागों का आविष्कार किया। ये एक विशेष प्रकार का रबाब बजाते थे, जो वीणा के आकार का था। जहांगीर और शाहजहाँ भी संगीत प्रेमी थे।

इस युग में ध्रुपद गाने की शैली का प्रचलन था। तानसेन ने अकबर बादशाह के सामने इस शैली में अनेक गीत प्रस्तुत किये। इस युग का प्रसिद्ध सूफी-सन्त शेख-सलीम-चिस्ती भी तानसेन का प्रशंसक था। अकबर बादशाह ने तानसेन को ''कण्ठाभरणवाणी विलास'' की उपाधि से विभूषित किया था। अकबर के दरबार में ही तानसेन के अतिरिक्त, तानसेन के बड़े पुत्र तानतरंग खाँ तथा अन्य शिष्य भी थे। अकबर के काल में ही ध्रुपद गायन की चार विशिष्ट गायन शैलियाँ प्रचार में थीं, जिनके नाम क्रमशः नोहार वाणी, खण्डार वाणी, गोवरहारी या गौरारी वाणी और डगुर वाणी थे।[90] ध्रुपद के पश्चात यहाँ धमार गायन शैली का प्रचार-प्रसार हुआ। इस राग में होली गीत अधिक गाये जाते थे। इसी काल में अनेक संगीत ग्रन्थों की रचना हुई, इनमें मुख्य रूप पुण्डरीक विट्ठल ने राग चन्द्रोदय, राग माला, राग मंजरी तथा नर्तन निर्णय नामक ग्रन्थों की रचना की। इसी समय पण्डित दामोदर ने संगीत दर्पण, व्यकंटमुखी ने चर्तुदण्ड प्रकाशिका, अहोबल ने संगीत परिजात, हृदयनरायणदेव ने हृदय कौतुक और हृदय प्रकाश आदि ग्रन्थों की रचना की। इसी युग में कबीर, तुलसी, मीरा और सूरदास के पद विभिन्न राग-रागनियों में गाये जाते थे। सुजात खां का पुत्र बाजबहादुर एक अच्छा संगीतज्ञ था।

बुन्देलखण्ड में भी संगीत को भी उचित प्रोत्साहन दिया गया है। डॉ० आशीर्वादी लाल के अनुसार- ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने गान विद्या का एक स्कूल खोला था। इसी में तानसेन ने शिक्षा पायी थी। (1486-1518 ई०) उसके विषय में कहा जाता है कि उसने अनेक रागों का आविष्कार किया था, परन्तु कुछ आलोचकों के कथनानुसार तानसेन ने ''रागों को बिगाड़ दिया और मेघ तथा हिण्डोल रागों का तो उसके समय में सदा के लिये अन्त हो गया था।'' इस कथन में चाहे

जो भी सत्य हो ''तानसेन अपने समय का सबसे अधिक विख्यात गायक था''। अकबर की सेवा में आने के कुछ समय पश्चात वह मुसलमान हो गया और उसे मिर्जा की उपाधि दी गयी।[91]

जहांगीर के शासनकाल में भी संगीतकारों को समुचित प्रोत्साहन दिया गया। इस युग में लिखी गयी सुप्रसिद्ध पुस्तक इकबालनामा-ए-जहांगीरी में तद्‌युगीन छः संगीतकारों के नाम उपलब्ध होते हैं। तद्‌नुसार विलियम खिच लिखता है- सैकड़ों गायक और नर्तकियां रात-दिन दरबार में उपस्थित रहते थे, क्योंकि अपनी बारी-बारी के अनुसार सप्ताह में कई बार नाचा-गाया करते थे। वे सम्राट या उनकी बेगमों को गाना सुनाने के लिये सदैव तैयार रहते थे, चाहे उन्हें किसी समय भी गाना गाने के लिये महल में बुला लिया जाय। वह उन्हें उनकी योग्यता के अनुसार छात्रवृत्ति देता था।''[92] शाहजहाँ को भी संगीत का शौक था। वह प्रतिदिन सोने से पूर्व अच्छे संगीतकारों का संगीत सुना करता था तथा स्वतः संगीत का ज्ञाता भी था। कभी-कभी वह भी गाने-बजाने में भाग लेता था। उसका स्वर ऐसा चित्ताकर्षक था, कि अनेक शुद्धात्मा, सूफी-फकीर तथा संसार में सन्यास लेने वाले साधु-सन्त भी उसका गाना सुनकर सुध-बुध बिसार देते थे और परमानन्द में लीन हो जाते थे। शाहजहाँ संगीतकारों का संरक्षक भी था। उसके दरबार में रामदास और महापात दो प्रधान गायक थे। उसने संस्कृत के राजकवि जगन्नाथ के गाने को सुनकर प्रसन्नता के साथ उसे उसी की बराबरी का सोना तोलकर दिया। औरंगजेब के शासनकाल में संगीत को उचित प्रोत्साहन नहीं मिला।[93]

बुन्देलखण्ड के ओरछा राज्य में अनेक संगीतज्ञ रहा करते थे। वीरसिंह जू देव के जमाने में अनेक संगीतज्ञों ने वहाँ शरण ली थी। इसके पूर्व वहां केशव की प्रेयसी रायप्रवीण नामक वेश्या अच्छी गायिका थी, जिसने अपनी कला का प्रदर्शन अकबर के दरबार में किया था। दतिया नरेश भवानी सिंह संगीतज्ञों के आश्रयदाता थे। इसके अलावा बांदा नवाब जुल्फिकार बहादुर ने संगीतज्ञों को आश्रय दिया। उन्होंने कलाकारों के नाम पर कलामत मोहल्ला भी बसाया। इनके दरबार में सुप्रसिद्ध मृदंग वादक कुदऊ महाराज रहा करते थे, जो बाद में दतिया नरेश भवानी सिंह के यहां चले गये। इनके दरबार में अच्छे सारंगी वादक हुये हैं तथा मुजरा संगीत का विकास भी इनके समय में हुआ। किसी समय चरखारी नरेश ने भी संगीतकारों को अपने यहाँ आश्रय देकर उन्हें प्रोत्साहित किया।

<u>बुन्देलखण्ड में संगीत का स्वरूप</u>-

बुन्देलखण्ड में दो प्रकार का संगीत उपलब्ध होता है। प्रथम शास्त्रीय संगीत तथा द्वितीय लोक संगीत है। शास्त्रीय संगीत को तीन भागों में विभाजित किया जाता है। ये भाग गायन, वादन और नृत्य हैं। यही विभाजन लोक संगीत का भी है, किन्तु यह लोक संगीत यहाँ जातीय व्यवस्था, तीज त्यौहार और धर्म से विशेष सम्बन्ध रखता है। इनका सम्बन्ध व्यक्तिगत जीवन और ऋतुओं से भी है। इस पूरे परिक्षेत्र में शास्त्रीय-संगीत और लोक-संगीत दोनों को लोकप्रियता प्राप्त है तथा समय-समय पर इनके प्रदर्शन होते रहते हैं।

ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर बांदा जनपद का शास्त्रीय संगीत बहुत अधिक प्रसिद्ध था।

सैय्यद अहमद मगरबी के अनुसार- बाँदा में संगीत व गाने-बजाने का बहुत जोर रहा है। नवाब बाँदा की दिलचस्पी व कदरदानी की वजह से शहर में इस कला के जानने वालों का एक पूरा मुहल्ला कलावंतपुरा के नाम से आबाद है। जहाँ का हर बालक, जवान, बूढ़ा ताल-सुर में डूबा हुआ था। नवाब के दरबार में अल्फखान तथा शबहाज खान नामी ऐसे संगीतज्ञ थे, जिन सा दूसरा मुश्किल नजर आता था। उनकी औलाद में फकीर मोहम्मद ऐसे कव्वाल थे, जो कि महफिलों में जब गाते थे, तो पूरी महफिल में समां सा छा जाता था।[94]

दतिया राज्य में भी संगीत कला को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया गया था। सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० रामस्वरूप ढेंगुला के अनुसार- दतिया के प्रधान शासक भगवानदास के पिता वीरसिंह द्वारा बनवाये सतखंडा महल में वीणा बजाती हुई स्त्रियाँ और मृदंग बजाते हुये पुरुषों के चित्र विद्यमान हैं। इन उदाहरणों से सहज ही यह ज्ञात होता है कि दतिया में संगीत विद्यमान था। इस काल में ध्रुपद शैली के गायन की परम्परा थी।[95] शास्त्रीय संगीत गायन की निम्न विधियाँ यहाँ लोकप्रिय थी। इस्लाम के आगमन के पश्चात यहां ठुमरी गायन शास्त्रीय संगीत में अधिक लोकप्रिय हुआ।

<u>गज़ल</u> -

बुन्देलखण्ड में गजल की लोकप्रियता भी मुसलमानों के आगमन के बाद बढ़ी तथा यह कई प्रकार से गायी जाती है-

बुताने मा हवश उजड़ी हुई मंजिल में रहते हैं,
कि जिसकी जान जाती है उसी के दिल में रहते हैं।
मुहब्बत में मजा है छोड़ का लेकिन मजे की हो,
हजारों लुत्फ हर इक शिकवये बातिल में रहते है।।

<u>दादरा</u> -

बुन्देलखण्ड में दादरा गाने का रिवाज भी बहुत प्राचीन था। अकबर के दरबार में और बुन्देलखण्डी नरेशों के यहाँ इस गायन शैली का विकास हुआ।

पिये देखे बहुत दिन बीते जियरा लुभाये बिरहा,
सताये पिया देखे बहुत दिन बीते।
आवन कहिगये अँजहु न आये सूनी सेज मोहिं डराये,
राम पिया से बेगि मिलाये पिया देखे बहुत दिन बीते।

<u>मुजरा संगीत</u> -

बुन्देलखण्ड के राजा महाराजा सामंत अपने दरबार में और तवायफों के घर जाकर मुजरा संगीत सुना करते थे। यह संगीत भी शास्त्रीय संगीत की कोटि में आता था तथा इसका प्रस्तुतीकरण

नृत्य के साथ होता था। उदाहरण-

घट छांड़ो सांवलिया मरु गगरी

मरु गगरी मरु गगरी-

घट......................

गई थी बजरिया मै हो आई हल्दी

मोरे बाला से जोबना पर छाई जरदी

घट......................

ध्रुपद -

बुन्देलखण्ड में ध्रुपद गाने का रिवाज बहुत पुराना है। इसका शुभारम्भ ग्वालियर नरेश मानसिंह तोमर ने किया। प्राचीन काल में इसमें श्लोक गाये जाते थे और देवाराधना की जाती थी। कालान्तर में इसकी चार शैलियों का विकास हुआ। ये शैलियां गोबरहार वाणी, खंडहार वाणी, डागुर वाणी, नौहार वाणी के नाम से विख्यात हुयीं।

ख्याल -

बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में ख्याल गायिकी दो रूपों में आयी। पहला रूप शास्त्रीय संगीत का है और दूसरा रूप लोक संगीत का था। शास्त्रीय संगीत में अलाप और तानों का विस्तार करते हुये एक ताल, त्रिताल, झूमरा, आड़ा, चौताल का सहारा लेकर ये गाये जाते थे। शास्त्रीय ख्याल दो प्रकार का होता था, पहला विलम्बित लय में गाया जाने वाला, दूसरा द्रुतलय में गाया जाने वाला। इन्हें बड़ा ख्याल और छोटा ख्याल से जाना जाता था। मुगल बादशाह मोहम्मद शाह रंगीला के दरबार के प्रसिद्ध गायक सदारंग (न्यामत खां) ने इसे दरबार में गाया था। बुन्देलखण्ड की अनेक रियासतों में ख्याल गायकी को प्रधानता दी जाती थी।

धमार -

धमार नामक ताल में गायी जाने वाली 'होली' को धमार कहकर पुकारते है। ध्रुपद गायक ही अधिकतर इस गीत को गाते थे, क्योकि जिस प्रकार ध्रुपद की गायकी थी, उसी प्रकार इस गीत शैली को भी गाया जाता था। राधा-कृष्ण और कृष्ण-गोपियो की फाल्गुन मास की लीलाओ का वर्णन इन गीतो में होता था। इस गायन में अधिकतर श्रृंगार रस की प्रधानता होती थी। धमार गायकी में धमार ताल का प्रयोग होता था।

बुन्देलखण्ड का वाद्य संगीत -

संगीत गायन के साथ बजाये जाने वाले उपकरणों को वाद्य यंत्र कहते हैं। इन वाद्य यंत्रों को तन्तु, वितत्, सुषिर, अवनद्ध तथा धन वाद्यों के रूप में विभाजित किया जाता है। सुप्रसिद्ध

संगीताचार्य शारंगदेव ने वाद्यों को चार भागों में विभाजित किया है-

'वाद्य तन्त्री ततं वाद्यं सुषिर मतम।

चर्मावबद्धवदनद्धं तु वाद्य

धनो मूर्तिः सा ऽ ष मधाताद्वधते यंत्र तद्वनम।। (संगीत रत्नाकर)

तन्तु वाद्यों के अन्तर्गत तांत, रेशम तथा तार से बने हुये वाद्य यन्त्र शामिल होते हैं। इनमें सारंगी, सितार, सरोद आदि वाद्ययंत्र आते हैं। सुषिर वाद्यों के अन्तर्गत फूंककर बजाये जाने वाले वाद्ययन्त्र शामिल होते हैं। शहनाई, बांसुरी आदि इसी कोटि के वाद्य यन्त्र है। धनवाद्यों के अन्तर्गत वे वाद्ययन्त्र आते हैं, जिन्हें किसी वस्तु से ठोंककर बजाया जाता है। इनमें कठताल, मजीरा, जलतरंग, काष्ठ तरंग और जल तरंग आदि वाद्य शामिल होते हैं। अवनद्य वाद्यों के अन्तर्गत वे वाद्य यन्त्र आते हैं, जिनसे संगीत में ताल दी जाती है। ये वाद्य चमड़े से मढ़े होते हैं तथा इन्हें लकड़ी से ठोककर बजाया जाता है। इन वाद्यों के अन्तर्गत तबला, पखावज, मृदंग, ढोल, नाल, नगाड़ा आदि आते हैं। प्राचीन काल में मृदंग और पखावज का प्रयोग ध्रुपद और धमार की गायिकी में प्रयोग होता था। ख्याल और ठुमरी की गायकी तबले का उपयोग होने लगा। इन वाद्यन्त्रों को गायन और नृत्य दोनों विधाओं में प्रयुक्त किया जाता था।

<u>बुन्देलखण्ड का नृत्य</u> -

बुन्देलखण्ड में नृत्य कला अत्यन्त प्राचीन है। उपलब्ध शैल-चित्रों और मूर्तियों में अनेक ऐसे परिदृश्य दिखलाये गये हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध नृत्य से है। शिव की अनेक प्रतिमायें ताण्डव नृत्य मुद्रा मे उपलब्ध हुईं। इसी प्रकार गणेश की नृत्य प्रतिमायें अनेक स्थलों में उपलब्ध होती हैं। ऐसे धार्मिक स्थलों जहाँ प्रचुर मूर्ति सम्पदा है, यहाँ किन्नर, गन्धर्व और अप्सराओं की प्रतिमा नृत्य मुद्रा में विविध वाद्ययन्त्रों सहित दर्शायी गयी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि नृत्य बुन्देलखण्ड का प्राचीनतम मनोरंजन का साधन है, किन्तु इसके ऐसे कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते हैं, जिससे यहाँ प्रचलित शास्त्रीय नृत्य विधियों के बारे में जानकारी उपलब्ध होती। सुप्रसिद्ध इतिहासकार केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार- संगीत और नृत्य कला को विकास के लिये चन्देल शासकों ने भरपूर आश्रय प्रदान किया। नृत्य स्वतंत्र कला के रूप में विकसित हुआ था। अभिनय के साथ उसका अंग स्वरूप तो था ही। सार्वजनिक स्थान और गोष्ठी गृहों में ऐसी कलाओं का प्रदर्शन होता था। सार्वजनिक विनोद के रूप में संगीत और नृत्य सबसे शिष्ट और उत्तम कल मानी जाती थी।[96]

परम्परा एवं जनश्रुतियों के अनुसार- बुन्देलखण्ड में प्रचलित नृत्य कई प्रकार के थे। ये एकल नृत्य, जुगुल नृत्य और वृन्द नृत्य के रूप में प्रचलित थे। नृत्य के समय पैरों में नूपुर बांधने का रिवाज था तथा अनेक प्रकार के वाद्ययन्त्र नृत्य के साथ बजाये जाते थे। नृत्य मूक नहीं था। नृत्यकार या तो स्वतः गीत गाता था या वाद्य यन्त्र बजाने वाले नृत्य भाव प्रदर्शित करने के लिये गीत गाते थे। कभी-कभी विचित्र प्रकार के नृत्य प्रदर्शित किये जाते थे। इन नृत्यों में तलवार की धार पर

नृत्य करना, कांच के टुकड़ों पर नृत्य करना, जलाशय में नृत्य करना तथा रस्सी पर नृत्य करना आदि प्रमुख नृत्य कलायें थी। अनेक नृत्यांगनायें दीपक लेकर, सिर पर अनेक घट रखकर नृत्य करना जानती थीं। इस प्रकार के नृत्यों का प्रदर्शन राजदरबारों, धार्मिक स्थलों और सार्वजनिक स्थानों में होता था। मुख्य रूप से तीज-त्यौहार तथा जातीय संस्कार के अवसरों पर ये नृत्य आयोजित होते रहते थे। किन्तु खेद का विषय है कि इस नृत्य विद्या के संदर्भ में ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते।

इस्लाम के आगमन के पश्चात नृत्य कला में परिवर्तन -

कुर्आन शरीफ के अनुसार- नृत्य और संगीत विलासितापूर्ण कलायें हैं। ये व्यक्ति को अय्याश बनाती हैं, इसलिये इन्हें प्रोत्साहन नहीं दिया जाना चाहिये। कट्टरपंथी मुसलमानों ने इस कला को प्रोत्साहित नहीं किया। नृत्य कला के संदर्भ में डॉ० आशीर्वादी लाल का यह मत तद्युगीन परिस्थितियों के अनुसार उचित प्रतीत होता है, कि यह बात नृत्य क़े बारे में कही जा सकती है, जिसे कट्टरपन्थी इस्लाम द्वारा प्रोत्साहन नहीं दिया गया। यहाँ उच्चकोटि के सूफी-सन्त ईश्वर से घनिष्टता स्थापित करते समय अवश्य भावावेश में आकर प्रदर्शन करने लगते थे। उन्होंने उसे भाव-समाधि की संज्ञा दी। जबकि स्वयं को और अपने लौकिक अस्तित्व को भूल जाते थे और इस प्रकार आचरण करने लग जाते थे। यह सब कुछ वे लगभग धार्मिक उन्माद में कर रहे थे।[97]

सल्तनत और मुगलकाल में नृत्य का विकास हुआ और उसके स्वरूप में व्यापक परिवर्तन हुआ। यहाँ के व्यक्ति नृत्य को मानव की सौन्दर्यमयी भावना का अभिव्यक्तिकरण मानते थे, इसलिये मुसलमान भी नृत्य को अपने से अलग नहीं कर सकते थे। डॉ० आशीर्वादी लाल के अनुसार- हिन्दुओं के साथ सम्पर्क के कारण सल्तनत काल के और मुगलकाल के भी शासक अपने दरबारों में पेशेवर नर्तकियों को रखते थे। मुगल शासकों को विशेषकर अकबर के शासनकाल में तथा उनके बाद दरबारों तथा व्यक्तिगत सभाओं में नाचती हुई स्त्रियों के अनेक तत्कालीन चित्र मिलते है, किन्तु इस बात को ध्यान में रखना चाहिये कि तत्कालीन चित्रों में पुरुषों द्वारा नृत्य का चित्रण मुश्किल से ही देखने को मिलता है।[98]

बुन्देलखण्ड के ऐसे राज दरबारों में, जहाँ हिन्दू शासक थे, वहाँ नृत्य कला को विशेष प्रोत्साहन मिला। ये नृत्य कला स्त्री और पुरुष दोनों ही प्रस्तुत करते थे। ओरछा की प्रसिद्ध नर्तकी राय प्रवीण ने अपनी नृत्य कला का प्रदर्शन अकबर के राज दरबार में किया था। दतिया नरेश भवानी सिंह के दरबार में भी अनेक नर्तकियाँ रहती थीं। बांदा नवाब तथा झांसी के मराठा नरेश गंगाधर राव के दरबार में भी नर्तकियां अपनी कला का प्रदर्शन करती थीं। तद्युगीन चरखारी नरेश ने भी अपनी नाट्यशाला को प्रोत्साहित किया था। सम्पन्न हिन्दू परिवारों में नृत्य कला का प्रशिक्षण बालिकाओं को बचपन से दिया जाता था तथा मुसलमान सम्प्रदाय में इसे तवायफों ने पेशे के रूप में अपनाया था। क्योंकि इसे मुसलमान लोग अपवित्र कला मानते थे। किन्तु कालान्तर में जो स्त्रियां मुस्लिम हरम में निवास करती थीं, उन्होंने संगीत को अपनाया। सुप्रसिद्ध विद्वान के अनुसार- मुस्लिम हरम की स्त्रियाँ

संगीत व नृत्य को पसन्द करती थीं तथा इसी प्रकार के प्रदर्शन उनके मनबहलाव तथा मनोरंजन के लिये महलों के अन्दर लगभग नियमित रूप से आयोजित किये जाते थे।[99] ऐसा लगता है कि इस युग में शास्त्रीय नृत्य कत्थक का विकास हुआ और इसे दरबारों में अपनाया गया।

बुन्देलखण्ड के लोक संगीत में इस्लाम के आगमन के बाद परिवर्तन -

जब से भाषा का निर्माण हुआ, उसी समय से लोक संगीत का भी उदय हुआ। यह लोक संगीत यहाँ की जनता का मनोरंजन तो करता था, साथ ही हृदय की भावनाओं का अभिव्यक्तिकरण भी करता था। पारिवारिक संस्कारों, तीज-त्यौहारों, धर्म उत्सवों आदि अवसरों पर गायन-वादन और नृत्य के रूप में इसकी प्रस्तुती सर्वत्र देखी जा सकती थी। मुसलमानों के आगमन के पश्चात् इस कला में व्यापक परिवर्तन हुये। इसकी गायन शैली में भी परिवर्तन आया।

लोक वाद्य -

बुन्देलखण्ड के लोक संगीत की प्रस्तुती में लोक वाद्यों का भी प्रमुख स्थान रहा है। प्रमुख वाद्यों में मृदंग, ढोलक, ढोल, तासा, नगाड़ा, नगड़िया, हुड़क, ढप, खजली, चमीटा, मजीरा, मटका, करताल, पपीहरी, शहनाई, बांसुरी, चिलगोजा, धींचा, एकतारा, तानपुर, सितार, तबला, सारंगी, झांझ, रमतुल्ला, तुरही आदि प्रसिद्ध वाद्य थे। इसके अतिरिक्त थाली, लोटा, घंटा, घड़ियाल, घंटी, करताल आदि को भी वाद्य यन्त्रों के रूप में काम में लाया जाता था। इन वाद्य यन्त्रों का प्रयोग गायन और नृत्य दोनों कलाओं में होता था।

लोक नृत्य -

बुन्देलखण्ड के लोक नृत्य अपनी अलग पहचान रखते हैं। इनकी प्रस्तुती जातीय आधार पर होती है। यहाँ पर कहरी नृत्य, डिमराई नृत्य, कोलहाई नृत्य, कुन्डारा नृत्य तथा दिवारी नृत्य जातीय आधार पर होते थे। इनका प्रस्तुतीकरण कहार, डीमर, धोबी, अहीर और आदिवासी लोग करते थे। कुछ नृत्य तीज त्यौहारों से सम्बन्धित थे तथा कुछ नृत्यों का सम्बन्ध पारिवारिक संस्कारों से भी होता था। बुन्देलखण्ड में निवास करने वाले हिजड़े नृत्य कला में अत्यन्त निपुण होते थे। विवाह तथा जन्म संस्कारों में इनकी प्रस्तुतियाँ अत्यन्त सुन्दर होती थीं। यह अपनी नृत्य और गायन कला से आर्थिक लाभ भी उठाते थे। इसी प्रकार यहाँ की बेड़िने राई नृत्य की प्रस्तुति व्यावसायिक आधार पर करती थी।

इस्लाम का लोक परम्पराओं पर प्रभाव

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में सभ्यता के विकास के साथ-साथ परम्पराओं का अनुपालन युगों से होता रहा। व्यक्ति अपने परिवार में जैसा अपने माता-पिता से सीखता था, उसका अनुकरण करता था। वह ऐसा साहस नहीं जुटा पाता था, जिससे परम्पराओं और लोक-रीतियों का परिवर्तन हो सके या उसका उल्लंघन कर सकें। चन्देल युग में परम्पराओं का अनुपालन बुन्देलखण्ड में होता था। अलबरुनी के अनुसार- बड़े, ऊँचे आतिथ्य भाव प्रकट करते थे। ब्राह्मण के घर पर यदि कोई बाहर से आता

तो द्वार के भीतर प्रवेश करने के पूर्व पाद प्रक्षालन करना पड़ता था। ब्राह्मणों का सबके द्वारा सादर पूजन होता था। आतिथ्य की हिन्दुओं की अपनी परम्परा न केवल उत्कृष्ट थी, बल्कि अन्य देशों के निवासियों से भी विशिष्ट थी। यथा -

रम्यं हर्म्यतलं नवाः सुनयनाः गुज्जद्विरेफा लतः।

प्रोन्मीत्वन्नवमल्लिका सुरमयो वाताः सचन्द्राक्षयाः।।[100]

चन्देल युग तक रूढ़ियाँ और परम्पराएं अत्यन्त कठोर नहीं थीं। उसके पश्चात् परम्पराओं और रूढ़ियों में परिवर्तन होने लगा। इस परिक्षेत्र में वैशाष सुदी तीज को कृषि का प्रारम्भ माना गया, इसी प्रकार आषाढ़ सुदी एकादशी और कार्तिक सुदी एकादशी को देवजागरण और देवशयन के रूप में माना गया। यहाँ की बालिकाएं पशुओं की विविध प्रकार से पूजा करती थीं।

यहाँ का व्यक्ति भाग्यवादी था। उसका यह मानना था कि सुख और दुख पूर्व जन्मों के कर्मो के अनुसार मिलते हैं, इसीलिये वे इसे भोगवान समझकर भोगते थे। यथा-

किन्नु प्रतिकूले विधातरि न सम्भाव्यते।

प्रायः सुकृतिनामर्थे देवा यान्ति सहायताम्।[101]

यहाँ के आदिवासी निवासियों की मान्यतायें आर्यों से कुछ भिन्न थीं। यहाँ रहने वाले गौड़, सौंर तथा अन्य अनार्य लोग भूत और प्रेतों पर विश्वास करते थे तथा इनसे छुटकारा पाने के लिये अनेक काल्पनिक देवताओं की पूजा करते थे। उनके धार्मिक स्थलों पर पशुओं की बलि देते थे। जवारा उगाते थे तथा झाड़ फूँक ओझाओं से कराते थे। वे दवाओं पर विश्वास नहीं करते थे।

यहाँ के लोग तांत्रिकों और अघोरपन्थियों पर विश्वास करते थे। ये लोग जंत्र-तंत्र, मंत्रों से जनता का कष्ट दूर करते थे। केशव चन्द्र मिश्र के अनुसार- बुन्देलखण्ड में जो अनेक देवी-देवताओं, प्रेतों की पूजा आज जगह-जगह चल पड़ी है, यह उसी भावना का परिणाम है। ऐसे में ''खेरमाता'', ''मिडोहिया'', ''घटाइया'', ''गौड़बाबा'', ''मसान बाबा'', ''नटबाबा'', ''छीद'' आदि वहाँ के बड़े लोकप्रिय ग्राम देवता है। महामारियों के देवता भी यहां के लोगों ने पूजने आरम्भ कर दिये थे।[102]

बुन्देलखण्ड के व्यक्तियों का मुख्य व्यवसाय कृषि है, इसलिये कृषि के क्षेत्र में भी अनेक प्रकार के अन्ध-विश्वास प्राचीनकाल में यहाँ प्रचलित थे। अन्धविश्वासों के अनुसार यहाँ के निवासी अमावस्या के दिन खेतों में हल नहीं चलाते थे। कृषि कार्य प्रारम्भ करने से पहले कृषि उपकरण की पूजा होती है, ताकि कृषि पर किसी प्रकार से बाधा न आये।

बुन्देलखण्ड के निवासी विदेशी जातियों से बहुत नफरत करते थे। जब मुसलमान इस परिक्षेत्र में आये, तो इन्होंने इनसे भी नफरत करना प्रारम्भ कर दिया। कभी-कभी ब्राह्मणों और बौद्धों के बीच विवाद उत्पन्न हो जाता था। यहाँ के लोग दक्षिण भारतीयों से भी नफरत करते थे। इनका मानना था कि वेदों का पतन दक्षिण भारतीय ब्राह्मणों के कारण हुआ।

चन्देल युग और पूर्व-मध्यकाल में यहाँ के निवासियों की उपासना पद्धति में परिवर्तन होने

लगा। वेदों और उनकी विधियों का पतन हुआ। तर्पण, सूर्य उपासना तथा हवन आदि क्रियाओं में कमी आयी, उसके स्थान पर शिव, विष्णु, शक्ति, गणेश और सूर्य की मूर्तियों की पूजा होने लगी। यहाँ के हिन्दू अपने घरों में मूर्ति स्थापित करने लगे। केशव चन्द्र मिश्र के अनुसार- राजे, रानियाँ, मंत्री, सम्पन्न वणिक और यहाँ तक कि वे ब्राह्मण श्रमण, जो अपने पावन जीवन के लिये दूसरों से दान प्राप्त किया करते थे, अपने इष्टदेवों के लिये विशेषतया शिव और विष्णु के लिये भव्य और अद्भुत देवालय बनवाने की सतत स्पर्धा रखते थे।[103] इसी युग में मठों की पुनः स्थापना हुई। इन मठों में साधू-सन्त रहा करते थे तथा धार्मिक कृत्य सम्पन्न होते थे। तीर्थो का विशेष महत्व हो गया और इन्हें मोक्ष का साधन समझा जाने लगा। गंगा को पवित्र सरिता की मान्यता मिली। अनेक नवीन तीज-त्यौहारों की संरचना हुई तथा व्यक्तियों की अभिरुचि धर्म-स्थल निर्माण की ओर बढ़ी। केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार- लोगों का विश्वास मन्दिर और घाटों के बनवाने में आ लगा था। तालाबों को खुदवाना और अन्य स्थलों का जीर्णोद्धार कराना भी बड़ा धार्मिक कृत्य समझा जाता था। चन्देल अभिलेख इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है।[104]

इस युग के लोग वेदान्त न्याय, सांख्य, मीमांसा, पातंजल, बौद्ध और जैन दर्शनों पर विश्वास करते थे, जिसके परिणामस्वरूप अनेक सम्प्रदाओं का उदय हो गया था। ये सम्प्रदाय आपस में अपने अस्तित्व के लिये लड़ते झगड़ते रहते थे तथा नाना प्रकार के मिथ्या आचरणों से ग्रसित थे। यहाँ प्रचलित अन्धविश्वासों की पुष्टि करते हुये, सुप्रसिद्ध विद्वान नर्मदा प्रसाद गुप्त का मत है- ''पथरीलौ पिया तोरो देस, मोयी अनी तौ मुरक गई बिछिया की'' गाती ग्राम वधू बुन्देलखण्ड की पथरीली कंकरीली धरती को इसलिये कोसती है, कि उसकी बिछिया की अनी मुड़ जाती है। शायद उसका विश्वास यहाँ आते ही बदलने लगता है, क्योंकि इस भूमि की संस्कृति किसी को बदलने की अपार क्षमता रखती है। अपने लोक विश्वासों की दृढ़ता के कारण यहां के लोक विश्वास बहुत प्राचीन है। आदि मानव की प्रारम्भिक अवस्थाओं से लेकर आटविक या वन्य संस्कृति के मूल्यों तक पुलिन्दों, शबरों, सौरों आदि अनार्य जातियों से हिलमिल कर ये विश्वास शिशु बड़े हुये हैं।[105]

इस प्रकार हम देखते हैं, कि समाज और धर्म से जुड़ी हुई परम्परायें आदिकाल से लेकर मुसलमानों के आने से पहले तक यहाँ विशेष रूप से विकसित हुई। इन परम्पराओं के विकास का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण है।[106] क्योंकि जब परम्परायें विकसित होती हैं और अन्धविश्वास पनपते हैं तो उनके कुछ कारण भी होते हैं। बुन्देलखण्ड के समाज और धर्म में परम्पराओं का विकास और अन्ध विश्वास का फैलाव निम्न कारणों से हुआ-

1- परम्पराओं को अनुसरण करने की बाध्यता -

यहाँ के परिवारिक सदस्यों की यह बाध्यता है, कि वे इच्छा और अनिच्छापूर्वक उन परम्पराओं का अनुसरण करे, जो उनके परिवार में पीढ़ी दर पीढ़ी प्रचलित है। इन परम्पराओं में सामाजिक और धार्मिक आचरण शामिल होते हैं। बहुओं का सासों के प्रति कर्तव्य, पति और परिवार के अन्य सदस्यों

के प्रति कर्तव्य, पुरुषों का स्त्रियों तथा परिवार के प्रति कर्तव्य, अतिथियों के प्रति कर्तव्य, संस्कार विधान, धर्म विधान तथा ऊँच-नीच की भावना का अनुपालन तथा छुआछूत आदि अनेक मान्य परम्पराओं को मानने के लिए व्यक्ति बाध्य था, जो व्यक्ति इनका उल्लंघन करता था, उसका बहिष्कार किया जा सकता था और समाज में सर्वत्र उसकी निन्दा होती थी।

2- अशिक्षा -

प्राचीनकाल में बुन्देलखण्ड में सर्वत्र अशिक्षा का साम्राज्य था। शिक्षा के कोई संगठित स्थल उपलब्ध नहीं थे। कुछ गुरुद्वारों और धार्मिक स्थलों में पुरोहित और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और अपने ही कुल के सदस्यों को विविध विषयों की शिक्षा दिया करते थे। इनमें संस्कृत, ज्योतिष, गणित, युद्ध कर्म प्रमुख विषय थे, जो अलग-अलग वर्गों के लोगों को पढ़ाये जाते थे। छोटी जातियों को वेद आदि धर्म ग्रन्थ पढ़ने का अधिकार नहीं था। ये परम्परागत उद्योग और सामाजिक नियमों का पालन करते थे। अज्ञानी होने के कारण ब्राह्मण, ज्योतिषी, तांत्रिक, अघोरी, झाड़-फूंक करने वाले जैसा उनसे कहते थे, उसी का अनुपालन वे करते थे, जिससे यह लगता है कि अन्धविश्वास का मूल कारण अशिक्षा थी।

3-पर्यावरण एवं परिवर्तित सामाजिक परिस्थितियों का दबाव-

जब कभी बुन्देलखण्ड में प्राकृतिक प्रकोप पर्यावरण के कारण उत्पन्न होते थे और उनसे व्यक्ति उत्पीड़ित होता था, उस समय उस पर यह दबाव डाला जाता था, कि वह उपर्युक्त बाधा से बचने के लिये अन्धविश्वासों और रुढ़ियों का सहारा ले। अनावृष्टि, बहुवृष्टि, अकाल, बाढ़, जंगल और गांव में आग लगने, संक्रामक रोग फैलने पर व्यक्तियों को विविध प्रकार के अनुष्ठान करने की सलाह दी जाती थी। इसी प्रकार जब किसी व्यक्ति का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता था, तो यह समझा जाता था कि उसे देवी अथवा बरमदेवता आ गये हैं। इसलिये उसे विशेष पूजा पाठ, ग्रह शान्ति, धार्मिक अनुष्ठान की सलाह दी जाती थी और वह सामाजिक दबाव से वैसा करने को मजबूर था।

4- धार्मिक ठगी -

चूंकि बुन्देलखण्ड की जनता अशिक्षित थी और पूरे समाज में पुरोहितों, आचार्यों, पण्डितों, तांत्रिकों, झाड़-फूंक करने वालों का व्यापक सम्मान था। ये लोग धर्म के नाम पर जनता को ठगने के अवसर तलाशते रहते थे। चूंकि यहाँ की जनता धर्म पर पूर्ण आस्था रखती थी और उसका विश्वास था कि दान-पुण्य, धार्मिक-अनुष्ठान करने से उसे पुण्य लाभ होगा और उसकी गति सुधरेगी, इसलिये वह तीज-त्यौहारों, धार्मिक स्थलों तथा पवित्र तीर्थस्थलों में बढ़-चढ़कर दान दिया करता था। इससे लगता है कि व्यक्ति इनके दबाव में था और धार्मिक ठगी का शिकार था। बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में प्रस्तर अभिलेख उपलब्ध होते हैं, जिनमें दानों का उल्लेख मिलता है। वि०सं० 1011 का एक अभिलेख खजुराहो के जैन मन्दिर में उपलब्ध हुआ है, जिसमें पहिल्य द्वारा दिये गये दानों का उल्लेख है।[107] इसी प्रकार वि०सं० 1107 का एक दान ताम्रपत्र उपलब्ध होता है, इस ताम्रपत्र में राजा

देववर्मन के द्वारा अपनी माता रानी ध्रुवन देवी के श्राद्ध के अवसर पर ग्राम दान का उल्लेख है।[108] इस धार्मिक ठगी के कारण भिक्षा वृत्ति की प्रवृत्ति बढ़ी। एक नवीन सामन्तवाद का उदय हुआ, जिसकी जीविका दान से चलने लगी।

5- प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य बनाये रखने के लिये -

यहाँ के सामन्तों, राजा, महाराजाओं को स्थायी यश और प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये अन्धविश्वासों का सहारा लेना पड़ा। वह घर की अपेक्षा तीर्थस्थल में मरना श्रेष्ठ समझता था और अपनी अस्थियों को गंगा जैसी पवित्र नदियों में विसर्जित करवाता था। स्त्रियाँ अपनी चरित्र की रक्षा के लिये सती होकर स्थायी यश प्राप्त करती थी। इसी प्रकार अनेक अनुष्ठान इसी भावना से प्रेरित होकर किये जाते थे।

बुन्देलखण्ड की परम्पराओं तथा अन्धविश्वास में इस्लाम का प्रभाव-

बुन्देलखण्ड में मुसलमानों के आगमन के पश्चात यहाँ के सामाजिक रीति-रिवाजों में व्यापक परिवर्तन हुआ। पहले यहाँ के समाज में स्त्रियों के मध्य कोई पर्दा प्रथा नहीं थी, किन्तु मुसलमानों के आने के पश्चात स्त्रियों के सम्मान को ध्यान में रखते हुये पर्दा प्रथा का शुभारम्भ हुआ। केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार- नारी जाति समाज के लिये अभिशाप बन गयी। दुर्बलताओं, बुराइयों और अन्धविश्वासों का आगार हुआ। यह ईश्वर की बड़ी देन थी कि उस दुःखावस्था में दुर्गावती जैसी वीरांगना का उदय हुआ, जिसने पुरुषत्व को चुनौती देकर स्त्री जाति की प्रच्छन्न क्षमता का ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित किया। स्त्रियों में पर्दा प्रचलन केवल उच्च्य परिवारों में था, वह भी शील रूप में ही। वे सामाजिक कार्यों में निर्बाध भाग लेती थी, यद्यपि इस अवस्था में शीघ्रता के साथ परिस्थितियां बाधक होती जा रही थी।[109]

मुसलमानों के सम्पर्क के कारण परिवार में उत्पन्न कन्याओं के प्रति व्यक्तियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। यहाँ के राजपूत अपनी कन्याओं का विवाह मुसलमानों तथा क्षत्रियों से करने में अपना अपमान समझते थे, इसलिये कन्या विवाह को लेकर क्षत्रियों में सदैव युद्ध होते रहते थे। इस समय मुसलमान शासक भी स्वाभिमानी लोगों की कन्याओं को जबरन छीन लेते थे। अनेक राज परिवार कन्याओं के कारण ही नष्ट हो गये, इसलिये कन्या जन्म को अभिशाप माना जाने लगा और इससे छुटकारा पाने के लिये कन्या वध की प्रथा चल पड़ी। बुन्देलखण्ड में भी यह प्रथा प्रचलित थी।

स्वतंत्र विचार वाली स्त्रियों को समाज में निन्दा का पात्र माना गया और उन्हें दुष्टनी तथा पिशाचनी कहा जाने लगा। स्त्रियों में ईर्ष्या की भावना स्वाभाविक रूप से घर कर गयी तथा पुरुष उनको संदेह से देखने लगे-

स्वभाव खल्वसौ स्त्रीपिशाचीनाम्।
प्रिये! सेर्ष्य प्रायेण योषितां भवति हृदयम्।।
एवमनया दुराचरणं विचिन्तितम्[110]

अनेक कुलटा स्त्रियों के उदाहरण भी इस युग में उपलब्ध होते हैं, जो अपने रूप सौन्दर्य से पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित करती थी और व्यक्ति उनसे आकर्षित होकर धर्म विमुख कार्य करने लगता था।

अन्यास्ताः स्त्रियों या सरसपृवृत्तस्य व धर्माथव्यापारप्रस्थितस्य
वा मतुर्त दयस्थितं विघटयन्ति-
त्यजति सहजं धर्म स्त्रीमिं प्रतारितमानसः
श्रद्धा व्याकृष्टु मिथ्यादृष्टिखे विलासिनी परं प्रगल्मेति।[111]

इस युग में स्त्रियों के मध्य प्रचलित सती प्रथा ने बहुत जोर पकड़ा तथा अनेक स्थानों में पति की मृत्यु के पश्चात या तो स्त्री स्वतः सती हुई या उसे सती होने के लिये बाध्य किया। बड़े-बड़े दुर्गो में जौहर वृत करने की प्रथा स्त्रियों में चल पड़ी। जब वे समझ लेती थीं कि युद्ध में हमारे दल की पराजय हुई है, उस समय सामूहिक रूप से स्त्रियाँ जलते अग्निकुण्ड में अपने शरीर को भस्म कर देती थीं। इस प्रकार के स्थल कालिंजर दुर्ग और चन्देरी में बने हुये है तथा दमोह पास बटियागढ़ में भी सल्तनत कालीन सती चबूतरे उपलब्ध हुये हैं। विधवाओं को अशुभ माना जाता था। स्त्रियों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था और उनकी कोई सलाह नहीं मानी जाती थी।

मुसलमानों के आगमन के पश्चात यहाँ की भोजन व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुये। अलमसूदी के अनुसार- ब्राह्मण किसी भी पशु का मांस नहीं खाते थे। स्मृतियों से भी प्रकट होता है कि ब्राह्मण साधारणतया मांस खाने वाले नहीं थे। गाय तथा महाकाय सिंह आदि पशुओं का मांस खाने में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी को रुकावट थी। किन्तु शेष तीन वर्णो द्वारा अन्य पशुओं का मांस खाया जाता था। इसके उदाहरण प्रबोध चन्द्रोदय में भी उपलब्ध होते है।[112] इस युग में मुसलमानों से सम्पर्क होने के पश्चात मांसाहार की प्रवृत्ति बढ़ी तथा उच्च वर्ग में भोजन के सन्दर्भ में छुआछूत की भावना बढ़ी। मदिरापान का सेवन भी किया जाने लगा।

दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- यहाँ लड़कों के ब्याह प्रायः 15 वर्ष और लड़कियों के 12 वर्ष से ऊपर की उम्र में होते हैं। उनके कराने में नाई, पंडित और पुरोहित मुख्य होते थे। इससे बहुत सम्बन्धों में धोखे और नुकसान भी होते थे।[113] दीवान प्रतिपाल सिंह के कथन से यह सिद्ध होता है कि मुसलमानों के आगमन के पश्चात बाल विवाह की कुरीति यहाँ फैली।

विधवा विवाह की प्रथा उच्च वर्ग में नहीं थी, किन्तु छोटी जातियों में विधवा विवाह हो जाया करते थे। इस युग में बहु विवाह प्रथा का प्रचलन बहुत अधिक हो गया। लेखक के अनुसार- रखैल स्त्रियों का रिवाज प्रायः सब जातियों में था। धनवान आदमियों का सम्बन्ध प्रायः नौकरानियों से हो जाता था। कहावत है कि ''राजा का पुत्र पानी भरता है और ढीमर का लड़का राज्य करता है।''[114]

दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार- लड़का होने पर भूत-प्रेत भगाने को थाली बजाते थे तथा राई, अजवाइन, नौन, गंधक, मुसी और बगल का बाल लेकर नज़र हटाने के लिये राई नौन उतारते थे।[115]

मुसलमानों के कारण बुन्देलखण्ड के व्यक्तियों में वेश-भूषा, वस्त्र-आभूषण की पद्धति में अनेक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। यहाँ के लोग उनके प्रभाव से मिरजई, फतुही, बगलबन्दी, बन्डी तथा मुसलमान कुर्ता पहनने लगे थे।

बुन्देलखण्ड में रहने वाले मुसलमान भी हिन्दू धर्म में प्रचलित अन्धविश्वासों से ग्रसित हुये। उनके यहाँ पर्दा प्रथा पहले से थी, वह और ज्यादा कठोर हो गयी। इसके अतिरिक्त हिन्दुओं के पूजा-पाठ का भी मुसलमानों में व्यापक प्रभाव पड़ा। इस धर्म के मर्द और औरतें मज़ारों और दरगाहों पर चादर चढ़ाने लगी और प्रसाद भी चढ़ाने लगी। इसी प्रकार ताज़िये के अवसर पर 10 दिन तक उत्सव मनाना, अलाव कूदना और ताज़िये के नीचे से निकलना, बड़े ताज़िये में छोटे-छोटे ताज़िये चढ़ाना एक आम बात हो गयी थी। जिस प्रकार हिन्दू लोग वृत कथाओं का पाठ किया करते थे, उसी प्रकार मुसलमान लोग मिलात गौहर, मिलात अकबर का पाठ करने लगे। हिन्दुओं की भांति ये लोग भी झाड़-फूंक और यंत्र का पाठ करके प्रेत बाधायें दूर करने लगे। नज़र उतारने लगे तथा गले में पहनने और बाजुओं में बांधने के लिये ताबीजे देने लगे। ये लोग भी मनोकामना की पूर्णता के लिये दरगाहों में मन्नत मानने लगे। मनोकामना पूर्ण होने के पश्चात उर्स आदि के आयोजन करने लगे। इनके यहाँ भी जन्म संस्कार, नामकरण, अन्नप्राशन, विद्यारम्भ तथा विवाह आदि संस्कार परिवर्तित स्वरूप के साथ सम्पन्न होने लगे। जो लोग हिन्दू से मुसलमान बने थे, उन लोगों ने अपने परम्परागत संस्कारों का परित्याग नहीं किया तथा बदले हुये स्वरूप में जाति-प्रथा भी इनमें बनी रही।

हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों और जातियों में अन्धविश्वास, धार्मिक और सामाजिक मान्यताएं बराबरी से पनपी। हिन्दू चाहता था, कि उसके अनुकरणकर्ताओं की संख्या में कमी न आवे और उनकी पवित्रता बनी रहे। मुसलमान लोग हिन्दुओं के धार्मिक स्थलों को नष्ट करके यह सिद्ध करते थे, कि मन्दिर और मूर्तियों में परमात्मा का निवास नहीं है। वे जिन लोगों को मुसलमान बनाते थे, उनके साथ वे बहुत अच्छा व्यवहार करते थे, ताकि वे दोबारा इस धर्म का परित्याग न कर सके। मुसलमानों में जातीय बन्धन अत्यन्त कठोर नहीं थे। वे किसी भी जाति और धर्म की लड़की से विवाह कर लेते थे, जबकि हिन्दुओं में ऐसी प्रथा न थी। यहाँ गैर जाति में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने वालों को समाज और जाति से निकाल दिया जाता था। इसी प्रकार जो व्यक्ति मुसलमानों का छुआ खाना और पानी पी लेता था, उसे भी बहिष्कृत कर दिया जाता था। मुसलमानों को इस जातीय बन्धन की कठोरता से बहुत बड़ा लाभ हुआ था। जो व्यक्ति हिन्दू धर्म और अपनी जाति से बहिष्कृत किये जाते थे, उन्हें इस्लाम धर्म अपनाकर आसानी से मुसलमान बना लेता था। पूरे भारतवर्ष में इस्लाम धर्म, जिस तरह से पल्लवित और विकसित हुआ, उसमें प्रलोभन और उदारता की भावना का महत्वपूर्ण स्थान रहा। अरब, मंगोल और तुर्किस्तान से आने वालों की संख्या बहुत कम थी। वर्तमान युग में जो भी मुसलमान यहाँ है, उनके पूर्वज यहाँ के मौलिक धर्म का परित्याग करके ही मुसलमान बने।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सर सुन्दर लाल- भारत में अंग्रेजी राज, सं० 1960, प्रका० सू०और प्र०मं०दिल्ली पृ० 26
2. Elliot - History of India, P 118
3. T.W Arnold - The Preaching of Islam 1913 P-225
4. M Townsend - Asia And Europe, London 1911. P-44
5. सर सुन्दरलाल - भारत में अंग्रेजी राज, सं० 1960, प्रका० सू०और प्र०मं०, दिल्ली पृ० 46
6. वही, पृ० 47.
7. Abul Ala- The Syrian- Baerlien P. 203
8. सर सुन्दरलाल- भारत में अंग्रेजी राज, सं० 1960, प्रका० सू० और प्र०मं०भारत, पृ० 48
9. Nicholson - A Literary of The The Arabes, P 259
10- Blochman And Jarreti - Ayeen-i-Akabari, P.368.
11. आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, सं० 1973 प्रका० आगरा
12. वही पृ० 253.
13. दि कुर्आन जार्ज सेल का अनुवाद, पाठ-5-पृ० 107.
14. सर सुन्दरलाल - भारत में अंग्रेजी राज, सं० 1960 सू० और प्र०मं०, नई दिल्ली पृ० 54.
15. वही, पृ० 55.
16. वही.
17. वही, पृ० 56.
18. वही.
19. वही, पृ० 57.
20. वही, पृ० 58.
21. वही, पृ० 59.
22. गुरू नानक की जनसाखी न० 36 पाकनामा।
23. सर सुन्दर लाल - भारत में अंग्रेजी राज, सं 1960 सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार पृ० 62 (गुरू ग्रंथ साहब)
24. वही, पृ० 61.
25. वही.
26. वही, पृ० 67.
27. जगनी (पत्रिका), 1990-1991 लेख महामति प्राणनाथ जीवन और दर्शन कु०कमला शर्मा, पृ० 97.
28. वही, पृ० 98.
29. इडिण्यन आर्कुलॉजिकल ए रिव्यू, 1955-56, पृ० 4, 80, 84.

30. कन्हैयालाल अग्रवाल- विन्ध्यक्षेत्र का ऐतिहासिक भूगोल, सं० 1987, प्रका० सतना, पृ० 2.

31. जनरल ऐशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल (न्यू सीरिज), जिल्द-8 सं 1907, पृ० 86.

32. मित्तल- हिस्ट्री ऑफ उड़ीसा, पृ० 256, उपाध्याय- बुद्धकालीन भारतीय भगोल, पृ० 427.

33. अशोक का दतिया अभिलेख एपिग्राफिका इण्डिया, जिल्द 31 पृ० 205-10.

34. जनरल ऑफ न्यू सोसाइटी इण्डिया-खण्ड 5-26, टिप्पणी 7-पृ० 5.131.

35. कार्पस खण्ड- 3 पृ० 83.

36. वही पृ० 88-90.

37. एपिग्राफिका इण्डिका-जिल्द 19 पृ० 18

38. वही, जिल्द-1 पृ० 221 श्लोक 10.

39. मिराशी - कल्चुरि नरेश और उनका काल, भोपाल वि०सं० 2022, पृ० 12.

40. K. K. Shah- Ancient Bundelkhand- Gain Publishing house Delhi P.99

41. एस.डी. त्रिवेदी - बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, सं० 1984, राजकीय संग्रहालय झांसी पृ० 47.

42. Vidya dehejia- Yogini Cult. and Temples- Atontric Tradition National museum Janpath. New Delhi. P. 156.

43. एपिग्राफिका इण्डिका- भाग 1 पृ० 131-32.

44. के०सी० मिश्र- चन्देल और उनका राजत्व काल, सं० 1974, प्रका० बनारस, पृ० 204.

45. वही, पृ० 208.

46. वही, पृ० 211.

47. दीवान प्रतिपाल सिंह -बुन्देलखण्ड का इतिहास, वि०स० 1985, प्रका० बनारस, पृ० 210-11.

48. वही, पृ० 213.

49. डा० अयोध्या प्रसाद पाण्डेय- चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, सं० 1968, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पृ० 207.

50. वही, पृ० 203.

51. के०सी० मिश्र - चन्देल और उनका राजत्व काल, सं० 1974, प्रका० बनारस, पृ० 223.

52. वही, पृ० 225.

53. वही, पृ० 227.

54. वृहत संहिता, अ० 531.

55. गरुड़ पुराण, अ० 461.

56. के०सी० मिश्र- चन्देल और उनका राजत्व काल, सं० 1974, प्रका० बनारस, पृ० 229.

57. पार्सी ब्राउन, इण्डियन आर्चिटेक्टर, पृ० 12.

58. K.K. Shah- Ancient Bundelkhand, edi-1988 Pub. Gain Publishing House. P. 105.

59. एस.डी. त्रिवेदी - बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, सं० 1984, प्रका० झांसी, पृ० 30-31.

60. वही, पृ० 33.
61. वही, पृ० 35.,
62. मानसार-10,90,103.
63. एस.डी. त्रिवेदी- बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, सं० 1984, प्रका० झांसी, पृ० 38.
64. आर्कुलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग-2 पृ० 429.
65. केशव चन्द्र मिश्र- चन्देल और उनका राजत्व काल, सं० 1974, प्रका० बनारस, पृ० 244.
66. ए स्ट्डी आफ इण्डो-आर्यन सिविलाइजेशन, पृ० 212.
67. केशव चन्द्र मिश्र- चन्देल और उनका राजत्व काल, सं० 1974, प्रका० बनारस, पृ० 251.
68. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव- मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, सं० 1973, प्रका० आगरा, पृ० 235-36.
69. एस.डी. त्रिवेदी- बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, सं० 1984, प्रका० झांसी, पृ० 61.
70. अबुल फजल- आइने अकबरी भाग-1 (द्वितीय संस्करण) पृ० 115.
71. हरिश्चन्द्र त्रिवेदी - मध्यकालीन भारत, भाग 2 सं० 1993 प्रका० हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय पृ० 510.
72. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मध्यकालीन संस्कृति, सं० 1973 प्रका० आगरा पृ० 237.
73. संकटा प्रसाद शुक्ला - उत्तर प्रदेश की पुरा सम्पदा, सं० 1981 सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग उ०प्र० लखनऊ पृ० 11.
74. गिरिजा शंकर तिवारी - उ०प्र० की पुरा सम्पदा, सं० 1981 सू० एवं ज० उ०प्र० पृ० 94.
75. दीवान प्रतिपाल सिंह- बुन्देलखण्ड का इतिहास, वि०स० 1985, नागरी प्रचारिणी सभा बनारस, पृ० 126-127
76. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव- मध्यकालीन संस्कृति, सं० 1973, प्रका० आगरा, पृ० 237.
77. वही, पृ० 238
78. के०सी० मिश्र- चन्देल और उनका राजत्व काल, सं० 1974, प्रका० काशी पृ० 196.
79. आर्कुलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया, भाग-7, पृ० 47-48.
80. दीवान प्रतिपाल सिंह - बुन्देलखण्ड का इतिहास, वि०स० 1985, प्रका० बनारस, पृ० 126.
81. वही, पृ० 129.
82. वही, पृ०127.
83. वही, पृ० 129.
84. वही, पृ० 129-30
85. वही, पृ० 129.
86. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव- मुगलकालीन भारत, सं०1981, प्रका०आगरा, पृ० 533-34
87. बसंत -संगीत विशारद, सं० 1989 प्रका० संगीत कार्यालय हाथरस, पृ० 15.

88. के०सी० मिश्र - चंदेल और उनका राजत्व काल, सं० 1974, प्रका० बनारस पृ० 255.

89. बसंत- संगीत विशारद, सं० 1989 संगीत कार्यालय-हाथरस, पृ० 25.

90. जी०के० अग्रवाल- (कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय) मुगल काल में भारतीय संगीत(लेख) मध्यकालीन भारत खण्ड-2 सं० 1993 प्रका० हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय पृ० 258.

91. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मुगलकालीन भारत-1981 प्रका० आगरा पृ० 554-555.

92. W. faster. Earls-Early Travels, p. 183

93- Sarkar Studies in Mughal india. PP. 12-13.

94. सैय्यद अहमद मगरबी- बांदा का सौहार्दपूर्ण सांस्कृतिक विरासत (लेख) स्वर्णमा(पत्रिका)

95. डा० रामस्वरूप ढेगुला- बुन्देलखण्ड का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन, सं० 1987 प्रका० कानपुर पृ० 166.

96. के०सी० मिश्र- चन्देल उनका राजत्व काल, सं० 1974 प्रका० बनारस पृ0255.

97. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव -मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, सं० 1973, प्रका० आगरा, पृ० 231.

98. वही, पृ० 232.

99. वही-

100. श्री कृष्ण मिश्र-प्रबोध चन्द्रोदय- निर्णय सागर प्रेस-अनु० टेलर पृ० 24.

101. वही, पृ० 97,141,

102. के०सी० मिश्र- चन्देल और उनका राजत्व काल, सं० 1974 प्रका० बनारस पृ० 198.

103. वही, पृ० 208-209.

104. वही, पृ० 209.

105. श्रीकृष्ण मिश्र - प्रबोध चन्द्रोदय निर्णय सागर प्रेस पृ० 55.

106. नर्मदा प्रसाद गुप्त- मध्यकालीन देशीय लोक संस्कृति, सं० 1986, बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी छतरपुर (म०प्र०), पृ० 47.

107. (ए) आर०के० दीक्षित - चन्देलाज आफ जेजाकभुक्ति, पृ० 184.

107. (ब) इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग- 16, पृ० 202-204.

108. कील हार्न, इण्डियन एन्टीक्वेरी, वाल्यूम 16, पृ० 202, 204, 207.

109. के०सी० मिश्र - चन्देल और उनका राजत्व काल, सं० 1974 प्रका० बनारस

110. श्रीकृष्ण मिश्र- प्रबोध चन्द्रोदय, निर्णय सागर प्रेम अनु० टेलर, पृ० 43,46.

111. श्रीकृष्ण मिश्र- प्रबोध चन्द्रोदय, प्रका० सागर प्रेम अनु० टेलर, पृ० 46. 40,85.

112. के०सी० मिश्र- चन्देल और उनका राजत्व काल, सं० 1974, प्रका० बनारस पृ० 199-195.

113. दीवान प्रतिपाल सिंह - बुन्देलखण्ड का इतिहास, वि०स० 1985, प्रका० बनारस, पृ० 229

114. वही, पृ० 230

115. वही,

सप्तम अध्याय

- उपसंहार।
  - इस्लाम के आगमन के पश्चात् यहाँ की मिश्रित संस्कृति का धार्मिक महत्व।
  - 11वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी तक निर्मित वास्तुशिल्प का विस्तृत विवरण।
- शोध प्रबन्ध का मूल्यांकन।
  - शोध प्रबन्ध की विषय-सामग्री।
  - शोध प्रबन्ध की समतुलना।
  - शोध के परिणाम।
  - शोध प्रबन्ध की उपयोगिता।
- आगामी शोध छात्रों के लिए शोध छात्रा की सलाह।

उपसंहार

बुन्देलखण्ड की पावन भूमि सदैव से यशस्वी रही, इसकी अपनी अलग सांस्कृतिक पहचान है, इसकी प्राकृतिक बनावट विषम है तथा इसका सम्पूर्ण क्षेत्र विन्ध्याचल पर्वत श्रेणियों के मध्य फैला हुआ है। इस क्षेत्र में अनेक दुर्ग, गुफायें और ऋषियों के निवास स्थल रहे हैं। इस क्षेत्र में अनेक आदिवासी जातियाँ तथा आर्य कुल के लोग निवास करते थे। भगवान श्रीरामचन्द्र जी ने यहां 12 वर्ष व्यतीत किये तथा कल्चुरियों, चन्देलों तथा बुन्देला नरेशों ने इस धरती का सम्मान बढ़ाया। यहाँ चित्रकूट ओरछा, कालिंजर, उन्नाव, पन्ना, खजुराहों जैसे पवित्र स्थल है। यमुना, पहुंज, सिन्ध, बेतवा, धसान, केन, नर्मदा, टोंस जैसी नदियां हैं। पंचम सिंह, वीर सिंह, चम्पत राय, छत्रसाल, हरदौल जैसे वीर उत्पन्न हुये। इसी परिक्षेत्र में वेदव्यास जैसे महर्षि उत्पन्न हुये, जिन्होंने अठारह पुराणों की रचना की। कालीदास जैसे महाकवि ने भी इस क्षेत्र की प्रशंसा की।

बुन्देलखण्ड भारतवर्ष के मानचित्र में 23^0-45' और 26^0-50' उत्तरीय तथा 77^0-52' और 82^0-0' पूर्वीय भू-रेखाओं के मध्य में है। इस क्षेत्र का सीमांकन उत्तर में यमुना नदी, दक्षिण में नर्मदा नदी, पूर्व में टोंस नदी और पश्चिम में चम्बल नदी करती है। इस क्षेत्र का निर्धारण चेदि देश, जेजाकभुक्ति तथा दशार्ण क्षेत्र को मिलाकर किया गया, तत्कालीन समय में बुन्देले नरेशों का अधिपत्य जहां तक था, उसे ही बुन्देलखण्ड माना गया।

इतिहासकार मुंशी श्यामलाल के अनुसार- बुन्देलखण्ड का क्षेत्रफल 30817 वर्गमील है और दीवान प्रतिपाल सिंह के अनुसार यह क्षेत्रफल 48310 वर्गमील है। बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र के अन्तर्गत, झाँसी, ललितपुर, जालौन, हमीरपुर, बाँदा, ग्वालियर, भिण्ड, मुरैना, शिवपुरी, गुना, दतिया, पन्ना, छतरपुर, टीकमगढ़, विदिशा, जबलपुर, शिवनी, सागर, दमोह, नरसिंहपुर, छिंदवाड़ा, मंडला, बालाघाट, रायसेन, हुसंगाबाद और पैतूल जनपद आते हैं। बुन्देलखण्ड के सीमांकन के संदर्भ में विद्वान एकमत नहीं हैं। इसका सीमांकन प्राकृतिक आधार, ऐतिहासिक आधार, राजनीतिक आधार, सांस्कृतिक तथा भाषायी आधार पर किया गया है।

बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र का नाम बुन्देलखण्ड केवल 12वीं शताब्दी के बाद ही मिलता है, इसके पहले यह क्षेत्र गौड़वाना, जेजाक भुक्ति, चेदि देश, युद्ध देश, दशार्ण देश, कालिंजर प्रदेश, विन्ध्यआटवी, वज्रदेश और डाभाल तथा डांगर देश के नाम से प्रसिद्ध रहा। अनेक ग्रन्थों में इस देश का नाम चित्रकूट देश के नाम से भी मिलता है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी इसे इसी नाम से सम्बोधित किया। कुछ ग्रन्थों में इसे मध्य देश के नाम से भी पुकारा गया। इसके कुछ भागों को क्षेत्रीय नामों से भी पुकारा गया है। मुंशी श्यामलाल के अनुसार- दशार्ण नदी के पश्चिम का भाग बुन्देलखण्ड कहलाया और पूर्व का भाग डांगही कहलाया तथा बुन्देलखण्ड अनेक भांगों में विभाजित था, जहां

अलग-अलग भाषायें बोली जाती थी। इन्हें हवेली, कुटरा, गुडाना, बनाफरी, धधरेखण्ड, पंवारी, गहोरा पठा, ऐलेपार और चन्देरी नाम से पुकारा जाता था तथा सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड, बुन्देलखण्ड के नाम से विख्यात था।

यहां पर प्राचीन मानव की पाषाण युगीन बस्तियां उपलब्ध होती है। बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में तद्युगीन शैल चित्र उपलब्ध हुये हैं, इनसे यहां के निवासियों की जानकारी उपलब्ध होती है। जो प्राचीन अभिलेख बुन्देलखण्ड में उपलब्ध होते हैं, उनसे यह जानकारी मिलती है, कि शबर, पुलिन्द, कोल, भील आदि यहां के मूल निवासी थे। महात्मा बुद्ध के समय यह चेदि राज्य का एक अंग था तथा शुक्तिमति, भद्रवती, सहर्जात, एरकच्छ प्रसिद्ध स्थल थे। गुप्त काल में कालिंजर, एरिकिण आदि प्रसिद्ध स्थल थे। पूर्वमध्यकाल में रेवा, चन्द्रेह, अजयगढ़, खजुराहो प्रसिद्ध नगरों में थे। स्कन्ध पुराण से उपलब्ध जानकारी के अनुसार- जेजाहुति देश में 42000 गाँव और डाहल देश में 9 लाख गाँव थे। इतिहास के हिसाब से यह सही नहीं है। इस क्षेत्र में अनेक नगर और गाँव थे तथा सम्पूर्ण जनसंख्या की तुलना में आर्यों की संख्या, अनार्यों से संख्या कम थी। इस क्षेत्र में आर्यों का आगमन त्रेतायुग में हुआ। आर्य चार वर्णों में विभाजित थे। ये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र थे। ब्राह्मणों का सर्वाधिक सम्मान था तथा शूद्र हेय दृष्टि से देखे जाते थे। शुंग काल तक चन्देल छोटी जाति के समझे जाते थे। व्यक्ति अपने नाम के साथ जाति और गोत्र भी लिखा करते थे। पूर्व मध्य काल में कुछ विदेशी जातियाँ इस क्षेत्र में आयी, ये जातियां हूण, कुषाण, शक तथा इण्डो बैक्ट्रियन थे। इस युग में वर्णशंकर जातियां भी बनी। पूर्व मध्यकाल तक स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी, पर्दा करने के लिये बाध्यता नहीं थी। भरहुत स्तूप निर्माण के लिये अनेक स्त्रियों ने दान दिया था। सती प्रथा का प्रचलन था, इससे संदर्भित एक स्तम्भ लेख ऐरण में उपलब्ध हुआ। स्त्रियां विभिन्न कलाओं से प्रेम से रखती थी, इन्हें नृत्य करने में रुचि थी तथा विविध वाद्ययंत्र भी ये बजाती थी।

जहाँ तक भोजन और पेय पदार्थों का प्रश्न है, इस परिक्षेत्र में अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ प्रयुक्त होते थे। गेहूं, चावल, दूध, दही, मक्खन, घी, मुख्य भोजन थे। इसके अतिरिक्त फलों का प्रयोग भी भोजन में होता था। आगन्तुकों के लिये सत्तू जलपान में दिया जाता था। यहाँ के लोग प्राचीन काल में अनेक प्रकार के वस्त्र और आभूषण धारण करते थे। वस्त्र और आभूषण गरीब और सामान्य व्यक्तियों के अलग-अलग थे। भरहुत स्तूप में अनेक मूर्तियां इस प्रकार की उपलब्ध हुई है, जिनमें स्त्रियों और पुरुषों के वस्त्र और आभूषणों को दर्शाया गया है। रूप सज्जा और श्रृंगार की दृष्टि से भी यहां अनेक ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध होते हैं। भरहुत की मूर्तियों से यह स्पष्ट झलकता है, कि स्त्रियां कर्ण आभूषण, कंठ हार, बाजू बन्द और कड़े धारण करती थी तथा विशेष प्रकार के आभूषण सिर के ऊपर धारण करती थी। ऊँगलियों में अँगूठी पहनने का भी रिवाज था। आज से 2000 वर्ष पहले स्त्रियां रूप और सौन्दर्य का विशेष ख्याल रखती थी। कर्ण आभूषण स्त्री-पुरुष दोनों पहनते थे। प्राचीन काल में जो भवन उपलब्ध हुये हैं, वे पत्थरों और पक्की ईंटों से निर्मित थे।

सामान्य मकानों में तीन या चार कमरे होते थे, जिनमें लकड़ी के लठ्ठों की छत होती थी। प्रकाश के लिये छोटे-छोटे झरोखे होते थे। आवागमन के लिये हाथी और घोड़े प्रयोग में लाये जाते थे। बोझ ढ़ोने के लिये बैलगाड़ियों का प्रयोग होता था। यहां के लोग तीज-त्योहार, नृत्य, गायन और वादन से अपना मनोरंजन करते थे। कभी-कभी ये पशुओं के शिकार से अपना मनोरंजन करते थे।

बुन्देलखण्ड की शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती। केवल बौद्ध, विहारों, धार्मिक स्थलों में शिक्षा की व्यवस्था थी, यह शिक्षा ब्राह्मणों को दी जाती थी। मुख्य रूप से वैदिक साहित्य, दर्शन शास्त्र, व्याकरण, काव्य सिद्धान्त, गणित, नक्षत्र विज्ञान, ज्योतिष, रसायन और औषधि विज्ञान का अध्ययन इस समय होता था। प्राचीनकाल में जो गुरुकुल प्रणाली थी, उसका धीरे- धीरे समापन हुआ। गुप्त युग में पुनः बौद्धों के पतन के पश्चात ब्राह्मण धर्म का अभ्युत्थान हुआ तथा शिक्षा व्यवस्था समयानुकूल हुई।

11वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बुन्देलखण्ड में इस्लाम का आगमन कुतुबुद्दीन ऐबक के समय में हुआ। संकुचित विचारधाराओं के कारण यहां मुसलमानों का प्रवेश हुआ, क्योंकि यहाँ के देशी नरेशों में एकता तथा राष्ट्रीयता की भावना का सर्वथा अभाव था। विभिन्न प्रकार की जातिगत विभिन्नता, छुआ-छूत और अन्धविश्वासों के कारण यहाँ का समाज कई टुकड़ो में विभाजित था, जिसका लाभ तत्कालीन मुस्लिम धर्म को मिला। इतिहासकार इब्न-खर्द्दब और इदरीस के अनुसार- अनेक जातियां सवर्णो और शूद्रों की थी। सवर्णो में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों में भी अनेक उपजातियां थीं। इस समय जातीय भावनायें कठोर हो गयी थी। लोग अपनी-अपनी जातियों में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करते थे। अन्तर्जातीय सहभोज भी बन्द हो गया था। मादक पदार्थों का सेवन ब्राह्मणों में नहीं होता था। स्त्रियों की स्थिति पूर्ववत थी। विभिन्न प्रकार की कुरीतियां और अन्ध विश्वास में जन्म ले रहे थे। मुसलमानों के आने के कारण पर्दा प्रथा अनिवार्य हो गयी थी। स्त्रियां उच्च वर्ण, मध्य वर्ग और निम्न वर्ग में विभाजित थी, उन्हें घर के काम-काज अधिक करना पड़ते थे एवं प्रचलित रीति-रिवाजों का अनुपालन करना पड़ता था।

इस्लाम के आगमन के पश्चात यहां की परम्पराओं और रीति-रिवाजों में व्यापक परिवर्तन हुआ। भारत और अरब में रहने वाले मुसलमानों की सामाजिक व्यवस्था में बहुत बड़ा अन्तर था। मुसलमान लोग हिन्दुओं को काफिर कहते थे और उन्हें द्वोजक निवासी मानते थे। हिन्दू लोग भी मुसलमानों से घृणा करते थे, किन्तु मुसलमानों के एकेश्वरवाद के सिद्धान्त का यहाँ व्यापक प्रभाव पड़ा। अकबर की उदार धार्मिक नीति के कारण हिन्दू और मुसलमानों में नजदीकियां बढ़ी। वीरबल जैसे बुद्धिमान ब्राह्मण अकबर के नौरत्नों में शामिल हुये, इसी समय इस्लामी वास्तुशिल्प का प्रभाव भी यहां के वास्तुशिल्प पर पड़ा। अनेक हिन्दू नरेशों ने इस शैली के भवन निर्मित करायें, जो व्यक्ति हिन्दू से मुसलमान बने, उन्होंने अपनी सामाजिक रीति-रिवाजों को नहीं छोड़ा। कुछ व्यक्तियों ने

इस्लाम से प्रभावित होकर अपने रहन-सहन के स्तर में परिवर्तन किया, फिर भी बहुत से हिन्दू मुसलमानों को पसन्द नहीं करते थे। मुसलमानों के प्रभाव के कारण ही विवाह पद्धति, पहनावा, रीति-रिवाज, धार्मिक अनुष्ठान, पूजा-पाठ तथा आस्था के विश्वास में भी परिवर्तन हुआ, बौद्ध धर्म सदैव के लिये यहां से चला गया और जैन धर्म दक्षिण की ओर पलायन कर गया। हिन्दू धर्म में भी अनेक परिवर्तन हुये। यहां शक्ति, शैव तथा वैष्णव सम्प्रदाओं का नवीनीकरण हुआ तथा कुछ ऐसे भी सम्प्रदाय बने, जो दोनो धर्मों के सिद्धान्तों को मानते थे, इनमें कबीरपंथ, प्रणामी सम्प्रदाय और सतनामियों की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

इस्लाम के आगमन के पश्चात् यहाँ की भाषा और साहित्य में परिवर्तन हुआ। पहले यहाँ अपभ्रंश भाषायें प्रयुक्त होती थी, उसके पश्चात् बुन्देलखण्डी भाषा का उदय हुआ। इसमें अनेक प्रकार के साहित्य की संरचना हुई तथा प्रसिद्ध रचनाकारों में जगनिक, चन्दबरदाई, तुलसीदास, केशवदास आदि प्रसिद्ध कवि हुये। इन्होंने भी अपने साहित्य में उस भाषा का प्रयोग किया है, जिसमें उर्दू और फारसी के शब्द प्रयोग में लाये गये। कालान्तर में खड़ी बोली भी लोकप्रिय होने लगी। प्राचीन वास्तुशिल्प का परित्याग करके यहां के लोग नवीन वास्तुशिल्प का प्रयोग करने लगे। इसे मिश्रित शैली का नाम दिया गया। अनेक दुर्ग, जलाशय और आवास इस शिल्प विद्या से निर्मित हुये। मूर्ति शिल्प का पतन हुआ। प्रस्तर मूर्तियों के स्थान पर धातु की मूर्तियां बनने लगी। इसके अतिरिक्त अनेक स्थानों पर मस्जिदे, दरगाह और मकबरे निर्मित हुये। लोग अपने घरों को विविध प्रकार के चित्रों से सजाने लगे। लेखनकला का विकास हुआ। नक्काशी और पच्चीकारी का विकास हुआ। यहाँ जो प्राचीन संगीत विधा प्रचलित थी, उसमें इस्लाम का प्रभाव पड़ा। शास्त्रीय संगीत विकसित हुआ तथा नई प्रकार की रागों का उदय हुआ, इनमें से कुछ रागे तानसेन ने भी बनाई। बुन्देलखण्ड के अनेक निवासी जो मुसलमानों से प्रभावित थे, उन्होंने वहां की संगीत पद्धति को लोकसंगीत में अपनाया तथा ये प्रभाव गायन, वादन और नृत्य तीनों कलाओं में देखा जा सकता है।

बुन्देलखण्ड के अनेक स्थानों में इस्लाम धर्म से सम्बन्धित साक्ष्य उपलब्ध होते हैं। ये साक्ष्य युद्ध स्मारक, धार्मिक स्थल, जिसमें मन्दिर और मस्जिद दोनों शामिल थे, निर्मित हुये। इसके अतिरिक्त सूफी सन्तों की दरगाहें, मकबरे तथा अन्य मृत्यु स्मारके बनी। कुछ ऐसे स्मारक भी बने, जो दोनों धर्मों से सम्बन्धित हैं। इस युग के अनेक दुर्ग, महल, जलाशय, मुद्रायें, अभिलेख, अस्त्र-शस्त्र एवं आभूषण उपलब्ध होते हैं, जिससे यह सिद्ध होता है, कि 1022 ई० में इस्लाम धर्म यहाँ फैला और 18वीं शताब्दी तक अपना प्रभाव डालता रहा।

इस्लाम धर्म के पहले अरब देशों में धर्म की स्थिति ठीक नहीं थी। लोग विभिन्न देवी-देवताओं को मानते थे। हजरत मोहम्मद साहब ने एकेश्वरवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उन्होंने मूर्ति-पूजा का विरोध किया। कुर्आन शरीफ की रचना की और खुद इस्लाम धर्म के पैगम्बर बने।

उनका मानना है, कि ईश्वर सर्वशक्तिमान है, उससे बड़ा और उसकी बराबरी का कोई नहीं है। उन्होंने कहा - इस्लाम का अर्थ है, खुदा की इबादत करो, नमाज पढ़ो, जक़ात अदा करो, रमजान में रोजे रखो और हज़ करो तथा बुराइयों से बचो और ऐसे कर्म करो, कि कयामत पर खुदा तुम्हें जन्नत दे। इसके अतिरिक्त हर मुसलमान को यह भी सलाह दी गयी है, कि वह धर्म का प्रचार करे, जरूरत पड़ने पर धर्म की स्थापना के लिये जेहाद करे तथा सदैव परिचितों और रिश्तेदारों के प्रति सद्व्यवहार और रहम की भावना रखे।

इस्लाम धर्म का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ हदीस है, जो अलग-अलग नामों से कई भागों में लिखा गया है। उसके अनुसार- दूसरे की अमानत की हिफाजत करे, सच्ची बात कहे, अपने शारीरिक सौन्दर्य की हिफाजत करे तथा भोजन में संयम से काम लें। बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक वह अपने सम्पूर्ण कर्मो को इस तरह करे, ताकि उसके ऊपर कोई कष्ट न आने पाये। औरतों की हिफाजत करे और उनकी उन्नति के बारे में सोचता रहे। इस्लाम के अनुकरणकर्ताओं को यह सलाह दी गयी है, कि वे ईश्वर पर विश्वास करे, कयामत के दिन का ख्याल रखे, फरिश्तों के अस्तित्व पर विश्वास करे और मृत्यु के बाद अपनी जिंदगी के प्रतिफल के बारे में सोचे।

मुसलमान धर्म के सन्दर्भ में अहदीस-ऐ-मुतबातर, अहदीस-ऐ-मशहूर, अखबारी-ऐ-वाहिद से पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। मुसलमान मुख्य रूप से सिया-शुन्नी दो भागों में विभाजित थे। शुन्नी चार भागो में विभाजित थे- हनाफी, मालिकी, शफी और इनबली। इसी प्रकार सिया दो भागों में विभाजित थे- इथना आशरी, इस्माईली जैदी। इस्लाम धर्म के धार्मिक चिन्ह चांद सितारा, हरे रंग का ध्वज पूरे विश्व में मान्य है। इस्लाम धर्म से सम्बन्धित धार्मिक स्थल मस्जिद और ईदगाह है, इसके अतिरिक्त इमामबाड़े और दरगाहें भी पूज्य है। मक्का और मदीना इनके पवित्र तीर्थ हैं।

इस्लाम धर्म में इस्लाम शब्द का अर्थ ईश्वर की इच्छा के प्रति अपने आपको समर्पित करना है। तौहीद से तात्पर्य अनेक देवी-देवताओं को छोड़कर एकेश्वर की सत्ता को स्वीकार करना और उसको मानना है। अख्वद शब्द का तात्पर्य यह है, कि मनुष्य, मनुष्य के प्रति भाईचारे की भावना बनाये रखे, किसी प्रकार का भेदभाव न करें। यह धर्म चार कालों में विभाजित है- प्रथम काल 622 ई० से लेकर 632 ई० का माना जाता है, इस काल में कुर्आन शरीफ की रचना हुई। दूसरा काल 632 ई० से प्रारम्भ होता है, इसमें खलीफा उस्मान जैत के समय का मूल्यांकन किया गया। तीसरा युग इस्लाम के विकास का युग है, इसमें शुन्नी पंथ का विकास हुआ। इस्लाम का तीसरा विकास सन् 922 से लेकर 924 तक चला, इसमें इस्लाम की परम्पराओं का विकास हुआ। चौथा काल उस युग में प्रारम्भ होता है, जब सुल्तान पद समाप्त हो गया।

इस्लाम धर्मावलम्बियों का मानना है, कि खुदा ने मोहम्मद साहब को पैगम्बर बनाकर अबरह की चढ़ाई के 55 दिन बाद 40 जुलूसे किसराये नोशीखां और 570 में हज़रत मोहम्मद साहब संसार

में आये। इनके पिता का नाम अब्दुल्ला था। बचपन में इसकी मां स्वर्गवासी हो गयी थी, इनका पालन-पोषण अनाथों की भांति हुआ। प्रारम्भ में इन्होंने व्यापार किया और 25 वर्ष की उम्र में उनका विवाह हुआ। 35 वर्ष की आयु में उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ और ईश्वर की प्रेरणा से उन्होंने कुआ़न शरीफ की रचना की, फिर इस्लाम धर्म का प्रचार किया। सबसे पहले इनकी बीबी खलीसा ने इस्लाम धर्म स्वीकार किया। मोहम्मद साहब का शेष जीवन धर्म प्रचार में बीता। सन् 642 ई० में उनकी मृत्यु हुई। हज़रत मोहम्मद साहब एक सच्चे मार्गदर्शक थे। उनके हृदय में प्राणियों के प्रति दयाभाव था। वे एक सच्चे उपदेशक थे और सुव्यवस्थित जिंदगी के पक्षधर थे। उन्होंने नित्य धार्मिक कृत्यों पर जोर दिया और सदैव अन्याय के प्रति संघर्ष करते रहे।

इस्लाम धर्म को मानने वाले व्यक्ति कुआ़र्न शरीफ को खुदाई किताब मानते हैं। उनका मानना है, कि फरिश्ते इस किताब को रमजान के महीने में लाते रहे, यह किताब मोहम्मद साहब के दिमाग में उस समय उतरी, जब वे 40 वर्ष के थे। हज़रत मोहम्मद साहब भी कुआ़र्न शरीफ का पाठ करते थे। इस पवित्र ग्रन्थ में 114 सूरः तथा 30 पारा है। इसका प्रथम पारा अलिफ लाम मीम है और अंतिम पारा आम-म है। इस सम्पूर्ण ग्रन्थ में खुदा की तारीफ, उसके द्वारा बनाई गयी सृष्टि तथा इन्सानी फरिश्तों और शैतानों की व्यापक चर्चा है। इस सम्पूर्ण ग्रन्थ में सामाजिक व्यवस्था, लोकाचरण, धर्माचरण और आपसी व्यवहार के बारे में बतलाया गया है।

पवित्र ग्रन्थ कुआ़र्न शरीफ के अध्ययन से तद्‌युगीन इतिहास का भी बोध होता है। इससे यह ज्ञात होता है, कि उस युग में धर्म की स्थिति और सामाजिक व्यवस्था क्या थी और इसके पूर्व के ग्रन्थ तौरात और बाईबिल में क्या कमी आ गयी थी। हज़रत मोहम्मद साहब नहीं चाहते थे, कि बूतों अथवा मूर्तियों की पूजा हो और एक ईश्वर की जगह अनेक देवताओं को महत्त्व दिया जाये। उन्होंने द्वोजक और जन्नत तथा शैतान और फरिश्तों के अस्तित्व को स्वीकारा है तथा धर्म के विरुद्ध व्यक्तियों को काफिर माना है। उनका विचार है, कि विश्व के अंतिम दिन कयामत आयेगी और हर व्यक्ति अपने-अपने कर्मों के अनुसार जन्नत और द्वोज़क में जगह पायेगा। कुआ़र्न शरीफ के अनुसार- संसार का स्वामी खुदा है, समस्त मानवों की एक कौम है, हर व्यक्ति को खुदा की इबादत करना चाहिये, कुआ़र्न शरीफ पर श्रद्धा रखनी चाहिये, इन्सानियत का रास्ता अपनाना चाहिये और धर्म विरोधियों से जेहाद करना चाहिये।

कुआ़र्न शरीफ के अतिरिक्त अनेक प्रकार की हदीसे भी इस्लाम धर्म में धार्मिक ग्रन्थ के रूप में मानी जाती है। इन ग्रन्थों की रचना हज़रत साहब की मृत्यु के बहुत बाद हुई। इन ग्रन्थों में खुदा की इबादत के नियम, खुदा की इबादत के तौर-तरीके, व्यक्तिगत जिंदगी से सम्बन्धित नियम, माता-पिता के प्रति हमारे कर्तव्य, बालकों के प्रति हमारे कर्तव्य, सामाजिक व्यवस्था के नियम, मुसलमानों की वेश-भूषा से सम्बन्धित नियम वर्णित हैं। इसमें स्त्री और पुरुषों की वेष-भूषा का

सविस्तार वर्णन किया गया है तथा औरतों के लिये यह हिदायत दी गयी है, कि वे बाहर निकलते समय पर्दे का अनुपालन करे। इसी ग्रन्थ में व्यवहार कुशलता और शिष्टाचार से सम्बन्धित अनेक नियम दिये गये हैं। स्त्रियों से सद्व्यवहार करना, क्रोध न करना, कर्तव्यों का निर्वाह करना भी हदीस की विषय सामग्री है। हदीस ग्रन्थों में जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों का वर्णन मिलता है. ये संस्कार जन्म, नामकरण, उपनयन, अक़ीक, मुसलमानी और मृत्यु से सम्बन्धित है।

इस्लाम धर्म का उदय 7वीं सदी के प्रारम्भ में हुआ। इसके सिद्धान्तों से अरब के तद्युगीन नागरिक प्रभावित हुये तथा उन्होंने इस्लाम धर्म को दूर तक फैलाने की योजना बनाई। हज़रत मोहम्मद साहब की मृत्यु के पश्चात् सर्वप्रथम इसका प्रचार ईरान और पश्चिमी एशिया में किया गया। धीरे-धीरे यह भारतवर्ष में भी फैला। सर्वप्रथम यह हिमालय के पहाड़ी राज्यों, गंगा और सिन्धु के मैदान में फैला, तत्पश्चात भारतवर्ष के अन्य क्षेत्रों में फैला। सर्वप्रथम मोहम्मद बिन कासिम के द्वारा इस्लाम धर्म का प्रचार प्रसार सिन्ध में किया गया, उसके पश्चात् अफगानिस्तान और कश्मीरी क्षेत्र में यह धर्म फैला। सुबुक्तगीन और महमूद गज़नवी ने इस धर्म को भारतवर्ष के अनेक क्षेत्रों में प्रचारित प्रसारित किया। यह धर्म भारतवर्ष में शक्ति प्रदर्शन, प्रलोभन, सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करके फैलाया गया। उसके पश्चात् यहाँ के सूफी सन्तों ने एकेश्वरवाद के सिद्धान्त को ध्यान में रखकर इस धर्म को भारतवर्ष में फैलाया। इसके अतिरिक्त कई स्थानों पर अरबी और फारसी पढ़ाने के लिये मदरसे खोले गये, इनसे भी इस्लाम धर्म प्रचारित हुआ। इस्लाम धर्म की विशेषताएं बतलाने के लिये सूफी सन्तों ने भारतवर्ष में बोली जाने वाली भाषाओं का सहारा लिया और उन भाषाओं में इस्लाम धर्म से सम्बन्धित उपदेश दिये गये।

बुन्देलखण्ड के चन्देल नरेशों ने सुबुक्तगीन के विरुद्ध कन्नौज नरेश जयपाल का साथ दिया था, इससे सुबुक्तगीन और उसका उत्तराधिकारी महमूद गज़नवी तदयुगीन चन्देल नरेश से बहुत चिढ़ गये। उसने चन्देल नरेश को दण्ड देने के लिये एक योजना के तहत सन् 1019 से लेकर 1022 के मध्य बुन्देलखण्ड में आक्रमण किया। सबसे पहले यह आक्रमण ग्वालियर में हुआ, इसके पश्चात् यह आक्रमण कालिंजर में हुआ। चन्देल नरेश की महमूद गज़नवी से सन्धि हुई, इसके पश्चात् वह यहाँ से लौट गया। कालान्तर में इस परिक्षेत्र में मोहम्मद गोरी का शासन स्थापित हुआ तथा बुन्देलखण्ड के वे क्षेत्र, जो पृथ्वीराज चौहान ने चन्देलों से छीन लिये थे, उन पर मोहम्मद गोरी के गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक का अधिकार हो गया। इसके बाद सन 1202 में कुतुबुद्दीन ऐबक ने कालिंजर पर विजय प्राप्त की। परमार्दिदेव पराजित हुआ और वह मारा भी गया। यहां उसने हिन्दू धर्म से सम्बन्धित धार्मिक स्थलों को नष्ट किया और उनके स्थान पर मस्जिदें बनवा दी। उसने इसे जेहाद का एक अंग माना। यह जेहाद सुल्तानों और मुगल शासकों के द्वारा बुन्देलखण्ड में औरंगज़ेब के शासनकाल तक बराबर होती रही। मुगल शासकों ने अनेक लोगों को प्रलोभन देकर भी मुसलमान

बनाया। कुछ मुसलमानों ने हिन्दू औरतों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। इसके अतिरिक्त अनेक सूफी सन्तों और समभाव रखने वाले सन्तों ने इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों को स्वीकार किया। सूफी सन्त अपने व्यवहार से लोगों को इस्लाम की ओर आकर्षित करते रहे। स्थान-स्थान पर मदरसे खोलकर भी इस्लाम धर्म का प्रचार बुन्देलखण्ड में किया गया।

बुन्देलखण्ड में बोली जाने वाली स्थानीय भाषा को आधार मानकर इस परिक्षेत्र में इस्लाम का प्रचार किया गया। इस समय यहाँ लुघाटी, स्तरीय बुन्देलखण्डी, कुडरी, राठौरी, प्रमाणित बुन्देलखण्डी, पंवारी, भदावरी, तोमरगढ़ी और खटोला आदि भाषायें बोली जाती थी। इसके अतिरिक्त आदिवासियों की भाषायें कोलहायी, गौड़वानी, महोरापठा, अर्न्तपठा, जाड़-जूड़र भाषायें भी यहाँ बोली जाती थी। मुसलमान धर्म प्रचारकों ने यहाँ की भाषा का सहारा लेकर सूफी मत से सम्बन्धित रहस्यमयी कलामों की रचना करके इस्लाम को आगे बढ़ाया। मुख्य रूप से बुन्देलखण्ड में, जो भी इस्लाम धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ, उसमें भाषा का महत्वपूर्ण योगदान था। यहाँ के लोग भी मुसलमानों के सम्पर्क में आने के पश्चात उर्दू और फारसी के शब्द बोलचाल में प्रयुक्त करते थे, जिससे दोनो सम्प्रदाओं के बीच मेल-जोल और सहयोग की भावना बढ़ी।

इस्लाम के आगमन के पूर्व यह क्षेत्र राज्य व्यवस्था की दृष्टि से कई शासकों के आधीन था। प्राचीनकाल में 620 ई०पू० के लगभग महात्मा बुद्ध के समय यह परिक्षेत्र चेदि देश के अन्तर्गत आता था। सुक्तमति से लेकर विदिशा और सांची तक चेदि देश फैला हुआ था। जब मौर्यो का अस्तित्व राजनीति में बढ़ा, उस समय यह क्षेत्र मौर्यो के आधीन हो गया था। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार सांची, भरहुत तथा दतियां के आसपास जो भग्नावशेष उपलब्ध हुये है, उनसे इस साक्ष्य की पुष्टि होती है। रूपनाथ में भी एक अभिलेख सम्राट अशोक का उपलब्ध हुआ। इसके पूर्व ऐतिहासिक विकास क्रम को ध्यान में रखते हुये, यदि विचार किया जाये, तो यह पता लगता है कि पाषाण यग में भी यहां मानव निवास करता था। इस परिक्षेत्र में तद्युगीन अस्त्र-शस्त्र और शैल चित्र उपलब्ध हुये है। वैदिक युग में भी यह क्षेत्र आर्यो से प्रभावित हुआ।

यह क्षेत्र मौर्यो के पश्चात शुंग बंश के प्रभाव में रहा। उसके पश्चात् मित्रवंशीय शासकों ने भी यहां अपना प्रभाव डाला। इसके एक क्षेत्र में बोधिवंश के शासक राज्य करते थे तथा दूसरे परिक्षेत्र में नागवंशीय शासक राज्य करते थे। कालान्तर में इस परिक्षेत्र को शकों ने प्रभावित किया। उसके पश्चात कुषाणों का प्रभाव भी यहाँ रहा। कुछ समय के लिये यह क्षेत्र वाकाटकों और गुप्तों के शासन के अन्तर्गत रहा। इस क्षेत्र में हूणों का प्रभाव भी पड़ा। इसके एक क्षेत्र में परिव्राजकों का शासन था तथा दूसरे क्षेत्र में उच्च कल्पवंशीय शासक राज्य करते थे। इसके कुछ भागों में पाडुंवंशीय नरेशों का भी अधिकार रहा। इसके पश्चात मालवा से लेकर विदिशा तक उत्तर गुप्तों का अस्तित्व पांचवी शताब्दी के अन्त तक रहा, इसके ऐतिहासिक साक्ष्य एरण में उपलब्ध होते हैं। गुप्तों के पतन के

पश्चात वर्धन साम्राज्य का अभ्युदय हुआ। इसके पश्चात 8वीं शताब्दी के मध्य तक गुर्ज़र प्रतिहारों का अस्तित्व बुन्देलखण्ड के अधिकांश क्षेत्रों में स्थापित हो गया था। इसी समय त्रिपुरी, जबलपुर के आसपास कल्युरियों का अस्तित्व भी बढ़ गया था।

कल्चुरियों के साथ-साथ 850 ई० के लगभग चन्देल नरेश का अस्तित्व बढ़ा। इस वंश का संस्थापक नन्नुक देव था, उसके पश्चात् परिमार्दिदेव तक अनेक नरेश इस वंश में हुये। धंगदेव के शासनकाल में महमूद गज़नवी का आक्रमण हुआ और परिमार्दिदेव के शासनकाल में पृथ्वीराज चौहान और कुतुबुद्दीन ऐबक का आक्रमण हुआ। इसके पश्चात चन्देलों की सत्ता अधोगति को प्राप्त हुई। चन्देलों के शासनकाल में यह क्षेत्र जेजाकभुक्ति के नाम से प्रसिद्ध था।

जब बुन्देलखण्ड की धरती में इस्लाम धर्मावलम्बी महमूद गज़नवी का आक्रमण हुआ, उस समय सम्पूर्ण देश की स्थिति अत्यन्त सोचनीय थी। समस्त देशी शासकों के हृदय में एकता नहीं थी, राष्ट्रीय भावनाओं का अभाव था, ये लोग आपस में ही लड़ते-झगड़ते थे और एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करते थे। महमूद गज़नवी सुबुक्तगीन का पुत्र था, उसका जन्म 1 नवम्बर 971 में हुआ था। वह महत्वाकांक्षी शासक था। उसने भारतवर्ष में और बुन्देलखण्ड में आक्रमण किया था। उसके आक्रमण के उद्देश्य में ज़ेहाद करना, साम्राज्य का विस्तार करना, धन के लिये लूटपाट करना और काफिरों को दण्ड देना शामिल था। उसने सन् 1022 ई० में बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किया। ग्वालियर में आक्रमण करने के पश्चात वह कालिंजर आया था। यहां के राजा से उसकी सन्धि हो गयी थी। अन्य क्षेत्रों की भांति महमूद गज़नवी का प्रभाव बुन्देलखण्ड में उतना विध्वंसकारी नहीं रहा, किन्तु उसके आक्रमण से हिन्दू राज्य शक्ति को झटका लगा। यहां के लोगों का बालात धर्म परिवर्तित किया गया, धर्म स्थलों का विनाश किया गया और व्यक्तियों को आर्थिक हानि उठानी पड़ी। हिंसा और क्रूरता के कारण हिन्दू और मुसलमानों के मध्य नफ़रत की भावना बढ़ी। मुसलमान, हिन्दुओं को मूर्ति पूजक होने के कारण काफ़िर समझते थे। सन् 1202 ई० के पश्चात बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों में दिल्ली सल्तनत का अधिकार हो गया। कुतुबुद्दीन ऐबक ने इस क्षेत्र में अपने बाहुबल से अधिकार स्थापित किया। इसके पश्चात इल्तुतमिश ने भी बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किया। इल्तुतमिश का प्रथम आक्रमण 1231 में ग्वालियर में हुआ, इस समय यहां का राजा मलयवर्मन था। इसके पश्चात् गयासुद्दीन बलवन ने सन् 1247 में कालिंजर दुर्ग पर चढ़ाई की थी। इस समय यहां बघेलों का राज्य था। दलकेश्वर और मलकेश्वर यहां का शासन देखते थे, इसकी सेना का संचालन नसीरुद्दीन कर रहा था। इसके पश्चात सन 1502 में सिकन्दर लोदी ने धौलवीर और ग्वालियर में आक्रमण किया, किन्तु वह ग्वालियर नहीं जीत सका। इब्राहिम लोदी ने भी ग्वालियर पर आक्रमण किया। वि०स० 1308 में बुन्देलखण्ड का बहुत बड़ा भाग सुल्तानों के अधिकार में आ गया था, उसके बावजूद यहाँ के देशी नरेश उनसे बगावत करके स्वतंत्र होते रहे। गयासुद्दीन तुगलक के समय का एक अभिलेख

बटियागढ़ में उपलब्ध हुआ है, यह वि0स0 1381 का है। इससे यह पता लगता है कि गयासुद्दीन का प्रभाव यहाँ रहा। सल्तनत काल के शासकों ने हिन्दुओं को जबरन मुसलमान बनाया, उनसे जजिया कर वसूला। इसी समय मुसलमानों से हिन्दुओं को बचाने के लिये एक धार्मिक आन्दोलन का उदय हुआ, जिसका नेतृत्व हिन्दू साधू सन्तों ने किया।

सल्तनत काल में मुसलमान समाज दो भागों में विभक्त था। प्रथम कोटि के वे मुसलमान थे, जो शासक वर्ग में शामिल थे तथा जो भारतवर्ष के निवासी न होकर तुर्कों के साथ ईरान, अरब और मिश्र से भारत आये थे। इनके साथ तुर्क शासक अच्छा व्यवहार करते थे और जो व्यक्ति अपना धर्म त्यागकर भारतवर्ष में मुसलमान बना था, उसके प्रति कोई सम्मान का भाव नहीं था। उन्हें शासक वर्ग नीची निगाहों से देखता था। इल्तुतमिश और बलवन भी भारतीय मुसलमानों से चिढ़ता था। भारतीय मुसलमानों में उलेमा की स्थिति अच्छी थी, जिन्हें धर्म गुरु माना जाता था।

सल्तनत काल में हिन्दुओं की स्थिति भी अच्छी नहीं थी, यद्यपि सम्पूर्ण भारतवर्ष में हिन्दुओं की आबादी 95 प्रतिशत थी। जहां हिन्दू सामन्त थे, वहां उनकी स्थिति अच्छी थी और कुछ स्थानों में इन्हें चौधरी, मुकद्दम के पदों पर नियुक्त किया गया था, किन्तु सामान्य हिन्दू पुरोहिती, व्यापार और कृषि करते थे। 350 वर्षो तक तुर्कों का शासन इस देश में रहा, इन्होंने अपने आक्रमण के दौरान लाखों हिन्दुओं को मार डाला। उनकी स्त्रियों और बच्चों को मुसलमान बना दिया गया।

तुर्कों के आगमन के पूर्व इस देश की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी, किन्तु उनके आक्रमण के पश्चात इस देश की आर्थिक स्थिति बिगड़ गयी। यहां के लोग कृषि और कुटीर उद्योग से अपना भरण-पोषण करते थे। इस क्षेत्र में धन का वितरण बड़ा विषम था। कुछ लोग अत्यधिक धनी थे तथा कुछ लोग बहुत गरीब थे। ये लोग छोटे-छोटे व्यवसाय और नौकरी करके अपना भरण-पोषण करते थे।

इब्राहिम लोदी के शासनकाल में बाबर ने उसके राज्य में आक्रमण किया और उसे परास्त किया। इस प्रकार दिल्ली में सल्तनत काल का पराभाव हुआ और मुगलकाल का शुभारम्भ हुआ। जहीरुद्दीन मोहम्मद बाबर का जन्म 14 फरवरी सन् 1483 में हुआ था। इसके पिता का नाम उमरशेख मिर्ज़ा था। यह बहुत साहसी और उच्च्व चरित्र का व्यक्ति था। उसने भारतवर्ष पर आक्रमण 21 अप्रैल सन् 1526 ई0 में किया था। उसके समय बुन्देलखण्ड के एक क्षेत्र में बघेलों का राज्य था तथा दूसरे क्षेत्र में गौड़वंशीय नरेशों का राज्य था। बुन्देलखण्ड के पश्चिमी भाग में बुन्देलों का शासन था। सन् 1527 में बाबर ने चंदेरी पर आक्रमण किया तथा चंदेरी बाबर के अधिकार में आ गया। इसके पश्चात सन् 1531 ई0 में हुमायूं ने कालिंजर दुर्ग पर आक्रमण किया तथा बुन्देलखण्ड का पश्चिमी भाग मुगलों के अधिकार में आ गया। कुछ समय के लिये मुगल सत्ता का पतन हुआ और शेरशाह सूरी दिल्ली का सुल्तान बना। इसने सन् 1545 की 20 मई को कालिंजर दुर्ग पर आक्रमण किया और यहीं पर

उसकी मृत्यु तोपखाने में आग लगने से हुई। उसके पश्चात उसका पुत्र इस्लाम शाह कालिंजर में ही दिल्ली का सुल्तान बना, किन्तु कुछ समय पश्चात मुगल सत्ता फिर हुमायूँ के हाथ में आ गयी।

जब मुगल सत्ता सम्राट अकबर के हाथ में आयी, उस समय बुन्देलखण्ड का अधिकांश भाग अकबर बादशाह के अधिकार में आ गया था, किन्तु गौड़वाना उसके राज्य में नहीं था, रानी दुर्गावती से युद्ध करके सम्राट अकबर के हाथ में यह क्षेत्र आ गया। सम्राट अकबर और रानी दुर्गावती का युद्ध सन् 1564 में हुआ। सन् 1569 ई० में कालिंजर पर अधिकार करने के लिये सम्राट अकबर ने मजनू खां काकशाह के नेतृत्व में एक सेना भेजी, इस समय यहां रामचन्द्र बघेल का राज्य था। उसने अकबर से युद्ध नहीं किया और दोनों में सन्धि हो गयी। अकबर का संघर्ष ओरछा नरेश वीर सिंह जू देव से भी हुआ, उसका मूल कारण यह था कि सहजादा सलीम के कहने पर उसने अबुल-फ़जल की हत्या कर दी थी। जहांगीर और ओरछा नरेश के सम्बन्ध अच्छे रहे। शाहजहां के शासनकाल में ओरछा रियासत को स्वतंत्र रखने के प्रयास किया गया। इनके राज्य में चम्पतराय ने ओरछा नरेश को यह सलाह दी, कि वह मुगलों को कर अदा न करे। इसके कारण मुगलों और ओरछा की सेना में युद्ध हुआ। मुगलों की सेना का नेतृत्व महावत खां ने किया। सन् 1629 ई० में फरवरी माह में ओरछा नरेश ने अपनी हार स्वीकार कर ली और मुगल सम्राट ने उन्हें माफ कर दिया।

औरंगज़ेब के शासनकाल में चम्पतराय और उनके पुत्र छत्रसाल का प्रभाव व्यापक रूप से बढ़ा। चम्पतराय ने औरंगज़ेब का विरोध किया, किन्तु वह औरंगज़ेब से टकराने की स्थिति में नहीं था, इसलिये सन् 1661 में उनकी औरंगज़ेब से सन्धि हुई। वि०सं० 1715 में चम्पतराय औरंगज़ेब के मनसबदार बने। उनके पश्चात् उनके पुत्र छत्रसाल शिवाजी के प्रभाव में आकर मुगलों का विद्रोह करने लगे। उनका युद्ध ग्वालियर के सूबेदार फिदाई खां से हुआ, उसके पश्चात खइला खां से हुआ। सन् 1675 में उन्होंने पन्ना को अपनी राजधानी बनाया, उसके पश्चात सन 1680 में इनका युद्ध हमीरपुर के सन्निकट 22 फरवरी को अब्दुल समद से हुआ, किन्तु जीवन के अन्त तक औरंगज़ेब छत्रसाल को जीत नहीं सका।

औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् जब फर्रुखसियर दिल्ली का बादशाह बना, तो मोहम्मद खां बंगश को छत्रसाल पर आक्रमण करने के लिये भेजा गया। इस समय यह इलाहाबाद और कड़े का सूबेदार था। इस युद्ध में मोहम्मद बंगश परास्त हुआ। उसके कई आक्रमण बुन्देलखण्ड में हुये। उसने 12 दिसम्बर सन् 1724 और सन् 1727 को बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किया। सन् 1729 में बुन्देलों की संयुक्त सेना ने मोहम्मद बंगश को परास्त किया। इस युद्ध में बाजीराव पेशवा ने छत्रसाल की मदद की थी।

मुगलकाल में हिन्दू और मुसलमानों के प्रति उत्पन्न कटुता समाप्त हो गयी। औरंगज़ेब को छोड़कर किसी अन्य शासक ने हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को छेड़ा नहीं। इस समय मुसलमान भी

दो भागों में विभक्त थे। हिन्दू मुसलमानों में एकता पैदा करने के लिये कबीर पन्थ, गुरुनानक पन्थ, सतनामियों और प्रणायी सम्प्रदाय के लोगों ने भी प्रयत्न किया था।

मुगलकाल में बुन्देलखण्ड की आर्थिक स्थिति बुन्देलखण्ड की विषम बनावट होने के कारण अच्छी नहीं थी। जंगल की उपज और कृषि पर यहां का व्यक्ति जीवन निर्वाह करता था। शिल्प और उद्योग की स्थिति भी अच्छी नही थी। सल्तनत काल की तुलना में मुगलकाल ज्यादा अच्छा था। मुगलकाल के पतन के पश्चात बुन्देलखण्ड कई रियासतों में विभाजित हो गया। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड प्रान्त अपनी कोई पृथक राजनीतिक पहचान नहीं रखता, बल्कि इसकी पहचान भौगोलिक और सांस्कृतिक आधार पर की जाती है। पहले इस क्षेत्र में सबर, पुलिन्द और भील आदि जातियां रहती थीं, कालान्तर में आर्य जाति के लोग यहां आये। यहाँ के मूल निवासी रंग के काले, कद के ठिगने और चौड़ी नाक वाले थे। आर्यो ने इन्हें हीनभावना से देखा। कालान्तर में यहां नागों का अस्तित्व बढ़ा और मथुरा के आसपास उनके राज्य स्थापित हुये। दैत्यों का अस्तित्व भी बुन्देलखण्ड में था, वे देवताओं के सौतेले भाई थे। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र पर्वतों और जंगलों से भरा हुआ था, जिससे यह सिद्ध होता है, कि यहां वनीय संस्कृति का उदय हुआ।

बुन्देलखण्ड में आर्यो का अस्तित्व ईसा से ३००० पूर्व का लगता है। इस क्षेत्र में अनेक ऋषियों ने अपने आश्रम स्थापित किये। मुख्य रूप से अगस्त, सुतीक्ष्ण, अत्री, माकर्ण्डेय, सारंग और वाल्मीकि ऋषियों के आश्रम यहां थे। मुख्य रूप से गुर्जर प्रतिहारों, कल्चुरियों, चन्देलों के राज्य में कायस्थों का महत्व बढ़ा। इस क्षेत्र में राजसेवक, श्रमिक, वणिक, स्वर्णकार, मनिहार, ताम्रकार, शस्त्रकार, तन्तुकर्मी, दर्जी, कुम्भकार, जान और रस्सी के निर्माता, चर्मकार, बढ़ई, मूर्तिकार, कारीगर, चिकित्सक, देवदासियां एवं नृत्यांगनायें, नापित, ढ़ीमर, महार, मेंद, चण्डाल या डुमार, मृत्यु घसियारे, ताम्बूलिक, कुब्लपाल, कन्दुक या हलवाई, तेली आदि अपने-अपने कर्म के अनुसार अपनी जाति बनाकर रहने लगे।

बुन्देलखण्ड को अपने प्रभाव में लेकर मुसलमानों ने यहां के मौलिक धर्म के मानने वाले व्यक्तियों को मुसलमान बनाया तथा उन्हें पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। मुख्य रूप से नीच जाति के लोग इस्लाम धर्म की ओर आकर्षित हुये। इस धर्म में काजी, मुल्ला, फकीर, हज्जाम, चिकवा, भिस्ती, रंगरेज, बेहना, बुनकर, छीपा, हकीम, नट, खानाबदोश, खानसामा, गुलाम और शासक वर्ग के लोग शामिल थे। इसके अतिरिक्त अनेक कलाकार, कारीगर, नक्काश, नख, तराश, चित्रकार, रहीसों की पालकी ढोने वाले, जूते बनाने वाले लोग इस्लाम धर्म में दीक्षित हो गये।

बुन्देलखण्ड की संस्कृति अपनी पृथक पहचान रखती थी। यह एक मिश्रित संस्कृति है, जिसका अन्य संस्कृतियों के साथ तालमेल और सामंजस्य हुआ। यहां की संस्कृति का निर्माण यहां की प्रकृति और उसके पर्यावरण ने किया है। वेश-भूषा और भाषा के आधार पर यहां के लोगों को आसानी से

पहचाना जा सकता है। इस परिक्षेत्र में आर्यकुल और अनार्य कुल की जातियाँ अपनी लोक-संस्कृति के आधार पर पहचानी जाती हैं। इस परिक्षेत्र में उच्चकोटि की वास्तुशिल्प विकसित हुई। उच्चकोटि के कवि और साहित्यकार उत्पन्न हुये। रामायण के श्रृजेता वाल्मीकि, पुराणों के श्रृजेता कृष्ण द्वैपायन व्यास, आल्हखण्ड के रचयिता जनकवि जगनिक, तुलसीदास और पद्‌माकर इसी धरती पर उत्पन्न हुये। यहां की संस्कृति की पृथक पहचान भोजन एवं पेय पदार्थ, वस्त्राभरण, रीति-रिवाज, परम्परा, लोक रीति और आमोद-प्रमोद के संसाधनों से आसानी से हो जाती है।

बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में अनेक पिछड़ी जातियां भी निवास करती हैं। इनकी पहचान शारीरिक लक्षण, कद में समानता, रक्त समूह में समानता, त्वचा के रंग में समानता आँखों की बनावट में समानता, सिर और चेहरे में समानता से होती है। इसके अतिरिक्त इन्हें भाषा, क्षेत्र, नैतिक स्तर, बौद्धिक स्तर, वंश, संस्कृति, छुआछूत और अलग-अलग जातियों के नाम से भी पहचाना जा सकता है। मुख्य रूप से लोदी, अहीर, खंगार, चंडाल, दहेत, गौड़, सार, बहरिया या भूमिया, कोदर-बांदर, गुरंदा, चमार, कोरी, कुर्मी, कांछी, केवट, बसोर, सेजवारी, माला आदि पिछड़ी जाति के लोग हैं। कुछ अपराधी जातियां भी बुन्देलखण्ड में निवास करती है, इनमें नट, कंजर, बेड़ीया, जाति के लोग है। ये लोग नाच, तमाशा तथा अपराधों से अपना जीवन-यापन करते हैं। इसके अतिरिक्त सनोढ़िया जाति के लोग ठगी और चोरी का व्यवसाय करते हैं।

यहाँ की छोटी और पिछड़ी जाति के लोग हिन्दू और इस्लाम धर्म के अतिरिक्त कबीरपन्थ, नानकशाही, धामी, अघोरपन्थ, नाग पन्थ, पंचपीर के उपासक, हरदौल उपासक तथा धाम पन्थ के अनुयायी थे। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में मुसलमान धर्म का अनुसरण अनेक पिछड़ी जाति और छोटी जाति के लोग करने लगे। कुछ सम्भ्रान्त लोग जैन धर्म का पालन भी करते थे। इसके अतिरिक्त यहां निवास करने वाले अनार्य अपने परम्परागत धर्म का पालन करते थे। इनके अनेक कल्पित देवी-देवता थे। ये लोग भूत-प्रेत तथा झाड़-फूंक पर विश्वास करते थे।

बुन्देलखण्ड में अनेक कुलीन जातियां भी निवास करती थी। ये लोग अपने को आर्य कुल का मानते थे, इनमें पुरोहित वर्ग, शासक वर्ग, उत्पादक एवं व्यवसायी वर्ग शामिल था। यहां के ब्राह्मणों में जुझौतियां ब्राह्मण सर्वाधिक प्राचीन थे। इसके अतिरिक्त कन्नौजियां, सरवरिया, सनाढ़य, बैलवार, अहिवासी, मराठा, खेड़ावाल, सुनौढ़िया आदि ब्राह्मणों का निवास यहाँ था।

ब्राह्मणों के अतिरिक्त दूसरी महत्वपूर्ण जाति क्षत्रिय थी। क्षत्रियों में दिखित, जनवार, मौहार, बांगड़ी, गौर, गौतम, पायक आदि प्रमुख जातियां थीं। ये लोग शासक, सामन्त, जागीरदार और सेना के प्रमुख पदों में थे। यहां के क्षत्रियों में पवांर, जनवार, रघुवंशी, गौर, गौतम, बुन्देला, चन्देल, चौहान, नन्दवंशीय, गहरवार, कछवाहा, सुरकी, लोडरे, तोमर, सेंगर, परिहार, भदौरिया, यदुवंशी, सिकरवार, राठौर, बघेल, कल्चुरि, परमार, राजपूत, पायक, गहलौत, सोलंकी, रावत, घघेरे, बनाफर,

बड़गूज़र, हूण, नाग, भगोड़िया, चन्द्रावत, छेड़िया, गोयल, जैवार, पुरबिया, उमर, खींची, भारी, चापड़ा, देवड़ा, हुजूरी, झाला, सोमवंशी, बिलकैत, चौरसिया, गौड़, कमरिया, सूरजवंशी, सिसौदिया, क्षत्री, जांगड़ा, सेंधो, ठाकुर आदि क्षत्रिय जातियां बुन्देलखण्ड में निवास करती थीं।

क्षत्रियों के अतिरिक्त यहां वैश्यों का अस्तित्व था। ये लोग जनसंख्या की दृष्टि से बहुत अधिक थे। इनका कार्य व्यवसाय और पशुपालन था। ये लोग जनसंख्या में आठ प्रतिशत और भूस्वामित्व की दृष्टि से दस प्रतिशत थे। मुख्य रूप से अग्रवाल, अग्रहरि, केसरवानी, कसौधन, मारवाड़ी, गहोई, ओमर, असाटी, पुरवार, स्वर्णकार, दृढ़ ओमर और भुरजी वैश्य के लोग यहां अधिक हैं।

इस क्षेत्र में उच्च वर्ग के मुसलमान भी निवास करते थे। मुस्लिम समाज में इनकी मान प्रतिष्ठा बहुत अधिक थी। ये लोग सल्तनत काल और मुगलकाल में शासन के उच्च पदों में आसीन थे। बुन्देलखण्ड में ये सूबेदार, मनसबदार, जागीरदार, जमींदार और तालुकेदार के पदों पर आसीन थे तथा ये लोग अपना जीवन विलासितापूर्वक ढंग से व्यतीत करते थे और अपने सम्बन्ध, तुर्कों, अरबों और मुगलों से जोड़ते थे।

यहां के हिन्दू कुलीन वर्ग के लोग विभिन्न प्रकार के सम्प्रदायों से सम्बन्ध रखते थे। ये सम्प्रदाय वैष्णव सम्प्रदाय, नव वैष्णव सम्प्रदाय, शैव सम्प्रदाय, नव शैव सम्प्रदाय एवं लिंगायत सम्प्रदाय, शाक्ति सम्प्रदाय आदि थे। इसके अतिरिक्त अनेक लोग, जो वेदों को धर्म का मूल मानते थे, वे लोग सूर्य की उपासना करते थे। धर्म को मानने वाले व्यक्ति विविध प्रकार की धार्मिक क्रियायें करते थे, इनमें जप, तप, ध्यान, योग, यज्ञ, दान तथा सद्ग्रन्थ पाठ और तीर्थ यात्रायें शामिल थी। इसके अतिरिक्त ये लोग तीज-त्योहारों को बड़ी श्रद्धा के साथ मनाते थे। प्रकृति-पूजा, देव-उपासना, मूर्ति-पूजा और पशु उपासना करते थे, इसके अतिरिक्त धार्मिक पहचान बनाये रखने के लिये धर्म चिन्ह धारण करते थे।

इस्लाम धर्म के लोग भी अपने धर्म का अनुपालन पवित्र कुर्आन शरीफ के निर्देशों के अनुसार किया करते थे। इनका प्रमुख धर्म पांच वक्त की नमाज़ पढ़ना, जक़ात देना, रमज़ान के महीने पर रोज़े रखना और माली हालत ठीक होने पर हज्ज़ करना था। ये लोग खुदा को सर्वोपरि और शक्तिशाली मानते थे। कुर्आन शरीफ को खुदाई किताब मानते थे और उसका पाठ करते थे। हज़रत मोहम्मद साहब को पैगम्बर मानते थे। जो हिन्दू अपना धर्म त्यागकर मुसलमान बने थे, उन्होंने परम्परागत रीति-रिवाजों का परित्याग नहीं किया था। यहां पर रहने वाले मुसलमान वेश-भूषा, धर्माचरण, भाषा एवं रहन-सहन के स्तर से पहचाने जाते थे। उनकी संस्कृति हिन्दुओं से पृथक थी।

बुन्देलखण्ड के मूल निवासी कौन थे ? इस संदर्भ में कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते, किन्तु इतिहासकारों का यह मानना है, कि यहां पहले अनार्य आये। ये लोग तिब्बती, बर्मी, कोल और

द्रविड़ थे। इसके पश्चात यहां आर्यो का आगमन हुआ। आर्यो के बाद बैक्ट्रियन, यूनानी, इण्डो, सासनियन, हूण, कुषाण, शक आदि आये। इनके ऐतिहासिक साक्ष्य यहां उपलब्ध होते है। इसके पश्चात यहां तुर्को का आगमन हुआ। तुर्को के पश्चात सन् 1526 ई० के लगभग मुगलों का आगमन यहां हुआ। यहां पर मुगल शासन सत्ता स्थापित करने और इस्लाम धर्म का प्रचार करने के लिये आये थे। उसके बाद 18वीं शताब्दी के मध्य में यहां अंग्रेजों का आगमन हुआ। विदेशी जातियों के आगमन के कारण इस क्षेत्र में एक मिश्रित संस्कृति का उदय हुआ, जिसने अनेक पन्थों को जन्म दिया।

जो पन्थ बुन्देलखण्ड की भूमि पर पनपे और विकसित हुये, उनमें कबीरपन्थ प्रमुख समन्वयवादी पन्थ था। इस पन्थ के सृजक महात्मा कबीरदास थे, जिनका जन्म 1398 में और मृत्यु 1518 में हुई। यह पन्थ एकेश्वरवादी पन्थ था, इसमें हिन्दू और इस्लाम धर्म के सभी अच्छे सिद्धान्तों को स्वीकार किया गया था। यहां पर पल्लवित दूसरा पन्थ गुरुनानक पन्थ था, जिसके सृजक गुरुनानक थे। इनका जन्म सन् 1469 में हुआ, इन्होंने भी हिन्दू और मुसलमान धर्म के अच्छे सिद्धान्तों का एकीकरण किया। यहां पर पनपने वाला तीसरा सम्प्रदाय सतनामी सम्प्रदाय था, ये लोग भी मूर्ति-पूजा के विरोधी और छुआ-छूत के खिलाफ थे। इसके संस्थापक वीरमान थे। यहां पर पनपने वाला चौथा सम्प्रदाय प्रणामी सम्प्रदाय था, जिसके संस्थापक गुरु प्राणनाथ थे। इन्होंने भी हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल दिया तथा कुलजय स्वरूप नामक ग्रन्थ का सृजन किया। जो सम्प्रदाय इस समय बुन्देलखण्ड में पनपे, उन्होंने समाज पर व्यापक प्रभाव डाला और यह बतलाया कि परमात्मा और ख़ुदा में कोई अन्तर नहीं है, अन्तर केवल संस्कृति और उपासना पद्धति में है।

सन् 1804 के बाद जब बुन्देलखण्ड में अंग्रेज लोग निवास करने लगे, उस समय ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ। इस धर्म के संस्थापक ईसा मसीह थे, जो मरियम के पुत्र थे। इन्होंने बाइबिल नामक ग्रन्थ की रचना की। यह धर्म इस्लाम धर्म से अधिक प्राचीन है। इस धर्म में सत्य, अहिंसा के सिद्धान्तों पर बल दिया गया है। यहां के लोगों का आकर्षण ईसाई धर्म के प्रति बढ़ा तथा इसके अनुरूप यहां के लोगों ने उनकी वेश-भूषा, भाषा तथा उनकी व्यवहारिक संस्कृति अपनायी। यदि इस्लाम धर्म और ईसाई धर्म की तुलना की जाये, तो दोनों धर्मो में कोई विशेष अन्तर नज़र नहीं आता। इस्लाम धर्म यहां शक्ति और प्रलोभन से फैला, जबकि ईसाई धर्म प्रेम और व्यवहार से फैला।

बुन्देलखण्ड में उपलब्ध सांस्कृतिक विरासत अद्वितीय है। यहां पर उपलब्ध पुरावशेष प्रस्तरयुग के है, जिनसे यहां की प्राचीनता का बोध होता है। यहां पर अति प्राचीन दुर्ग अवशेष उपलब्ध होते हैं। प्रमुख दुर्गो में कालिंजर, महोबा, देवगढ़ तथा मड़फा के दुर्ग अति प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त प्राचीन नगरों के अवशेष यहां कालिंजर चित्रकूट, कालपी, सुक्तिमती नगरी के उपलब्ध होते हैं। इन नगरीय अवशेषों में आवासीय स्थल उपलब्ध होते हैं, जो वास्तुशिल्प की दृष्टि से उच्चकोटि के है। यहां कुछ धार्मिक स्थलों के अवशेष उपलब्ध होते हैं, जिनमें खजुराहो, देवगढ़, कालिंजर, मड़फा तथा

रसिन का स्थान महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र में कुछ स्तम्भ एवं अभिलेख उपलब्ध होते हैं, जिनसे यह पता लगता है, कि कौन-कौन सी राजनीतिक घटनायें यहां घटी, किन शासकों ने यहां राज्य किया और उन्होंने किन कलाकृतियों को जन्म दिया। ये अभिलेख मौर्यकाल से लेकर तुर्क काल तक के उपलब्ध होते हैं, कुछ उसके बाद के भी हैं। इन अभिलेखों की भाषा ब्राह्मणी, खरोष्ठी, संस्कृत, पाली, देवनागरी, अरबी और फारसी है। ये अभिलेख रूपनाथ, सांची, मरहुत, ऐरण, कालिंजर और विदिशा में उपलब्ध हुये हैं।

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र मूर्ति सम्पदा की दृष्टि से धनी क्षेत्र है। यहां मौर्य युग से लेकर चन्देल युग तक की मूर्तियों की संख्या सर्वाधिक है। प्रारम्भ में ये मूर्तियां पत्थरों से निर्मित होती थी, बाद में इनका निर्माण धातुओं से होने लगा। इन मूर्तियों का सम्बन्ध जैन धर्म, बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म से है। ये मूर्तियां विभिन्न देवी-देवताओं की हैं। इसके अतिरिक्त कुछ मूर्तियां पशु-पक्षियों, यक्ष-यक्षणियों की हैं तथा कुछ मूर्तियां ऐसी हैं, जिनका धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है।

मनुष्य की प्यास बुझाने के लिये जलाशयों का महत्वपूर्ण स्थान रहा। बुन्देलखण्ड के अनेक स्थानों में जो जलाशय उपलब्ध हुये हैं, वे वास्तुशिल्प की दृष्टि से उच्चकोटि के हैं। इन जलाशयों में राम सागर, शिव सागर, खजूर सागर, रसिन और अजयगढ़ तथा कालिंजर के बुड्ढ़ा-बुढ़िया ताल, मृगधारा आदि प्राकृतिक जलाशय शामिल हैं। इसके अतिरिक्त यहां प्राचीन मुद्रायें, अस्त्र-शस्त्र भी उपलब्ध होते हैं।

यहां अनेक प्रकार की परम्पराओं, तीज-त्योहारों का अनुपालन होता था। मुख्य रूप से कजलिया, श्रावण तीज, सन्तान सप्तमी, महालक्ष्मी, दशहरा, अक्षय तृतीय नवरात्रि, इच्छानौमी, दीवाली, मकरसंक्रान्ति, संकट गणेश और होली यहां के प्रमुख त्योहार थे। इस्लाम धर्म से सम्बन्धित त्योहार- शब-ए-रात, ईदुल-फितर, ईदुल-जुहा, आदि थे।

बुन्देलखण्ड के लोग बुन्देलखण्डी भाषा बोलते थे, यह स्तरीय बुन्देलखण्डी, लुधाटी, राठौरी, बनाफरी, कुडरी, भदावरी, तोमरगढ़ी, पंवारी, खटोला, गौड़वानी, आदि में विभाजित थी। यहां के निवासियों की वेष-भूषा, अन्य प्रान्त के निवासियों से पृथक थी तथा यहां के निवासियों की लोक-संस्कृति अन्य क्षेत्र के लोक निवासियों से पृथक थी। चित्रकला, लेखक शैली, अभिनय कला, संगीत कला, शिल्पकला की दृष्टि से बुन्देलखण्ड की पृथक पहचान थी।

साहित्यिक दृष्टि से भी बुन्देलखण्ड का महत्वपूर्ण स्थान रहा। बुन्देलखण्डी भाषा का वास्तविक विकास 9वीं शताब्दी के मध्य में हुआ तथा इस भाषा के विकास में सीमावर्ती भाषाओं का प्रभाव पड़ा। मुख्य रूप से पंचाली, ब्रजभाषा, बंसवारी और पूर्वी हिन्दी का प्रभाव इसमें है। पूर्व मध्य युग और मध्य युग में लगभग 376 उच्चकोटि के रचनाकार इस तपोभूमि में पैदा हुये, जिन्होंने हजारों ग्रन्थों

की रचना की। इन महान रचनाकारों में वाल्मीकि, व्यास, जगनिक, तुलसी, केशवदास, पद्माकर, लाल आदि कवियों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी रचनाओं में ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है।

खनिज सम्पदा और वन सम्पदा की दृष्टि से भी बुन्देलखण्डी क्षेत्र बहुत धनी क्षेत्र था। यहां अनेक प्रकार के वृक्ष और झाड़ियां, नाना प्रकार की जंगली उपज, कीमती रत्नों में हीरा उपलब्ध होता था। खनिज सम्पदा में ग्रेनाइट पत्थर, इमारती पत्थर, संजरात, मैग्नीज, सज़र, लोहा और सोना आदि पाया जाता था।

कृषि की दृष्टि से भी यहां होने वाली तीन फसलों में विविध प्रकार के अनाज, खाद्य तेल के बीज और फल-फूल उत्पन्न होते थे। अनावृष्टि की स्थिति में यहां के लोग विविध जंगली फलों महुआ, बेर, करौंदा, तेंदू और मकुइयां से अपना भरण-पोषण कर लेते थे। इसके अतिरिक्त पान यहां की विशेष उपज थी, जिसका निर्यात सर्वत्र होता था।

महमूद गज़नवी के पश्चात ही बुन्देलखण्ड के लोग इस्लाम धर्म के सम्पर्क में आये। उन्हें यह मालूम हुआ कि ये लोग मांसाहारी और हिंसक प्रवृत्ति के है। इसके अतिरिक्त उन्हें हज़रत मोहम्मद साहब और उनके द्वारा उचित कुर्आन शरीफ के संदर्भ में भी जानकारी प्राप्त हुई। उन्हें यह मालूम हुआ कि इस्लाम धर्म मूर्ति-पूजा विरोधी, छुआ-छूत विरोधी, जाति विरोधी और विश्व मानवता का पक्षधर है। इसमें कोई भी व्यक्ति मुसलमान बन सकता था, जबकि हिन्दू धर्म में अन्य धर्मावलम्बियों को हिन्दू नहीं बनाया जा सकता था। तद्युगीन भारतीय संस्कृति तुर्की संस्कृति से मेल-जोल स्थापित नहीं कर सकी, जबकि हूण, शक, कुषाण और अन्य विदेशी जातियां यहां की संस्कृति में घुल मिल गयी थी। यहां के लोग मुसलमानों की शक्ति से परिचित हुये, उनकी युद्ध पद्धति से परिचित हुये, उनके रीति-रिवाजों, क्रियाकलापों और कला से परिचित हुये। इस युग में हिन्दुओं ने अपनी तुलना मुसलमानों से करते हुये अपनी कमज़ोरियों का पता लगाया।

बुन्देलखण्ड के धर्म को प्रभावित करने के लिये यहां के मुसलमानों ने राजाओं और सामन्तों पर आक्रमण किये। उनके राज्य को लूटा, उनके धार्मिक स्थलों को नष्ट किया और ज़बरन लोगों को मुसलमान बनाया। कुतुबद्दीन ऐबक ने सन् 1202 में परमार्दिदेव के साथ दुष्टता का व्यवहार किया। उन्होंने यहां धार्मिक स्थलों को तोड़ा, मूर्तियों को खण्डित किया, ज़बरन लोगों को मुसलमान बनाया और हिन्दुओं को दबाये रखने की नीति अपनायी।

जो व्यक्ति अपना धर्म परिवर्तित नहीं करना चाहते थे, उनके हृदय में मुसलमानों के प्रति नफ़रत की भावना का उदय हुआ। उन्होंने उनकी धार्मिक कट्टरता का विरोध किया तथा नये ढंग से हिन्दुओं को संगठित करने का प्रयत्न किया, किन्तु छोटी जाति के लोगों के लिये इस्लाम धर्म एक वरदान सिद्ध हुआ। हिन्दू लोग जिन छोटी जातियों से नफ़रत करते थे, वे धर्म परिवर्तित करके मुसलमान बन गये।

इस युग में हिन्दू धर्म को संगठित करने के लिये तथा दोनों धर्मों के बीच तालमेल स्थापित करने के लिये एक नवीन धार्मिक आन्दोलन का उदय हुआ इस आन्दोलन का नेतृत्व कबीर, गुरुनानक, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, रविदास, मलूकदास आदि सन्तों ने किया।

इस युग में जो मुसलमान बुन्देलखण्ड में रहते थे वे हिन्दू धर्म का परित्याग करके मुसलमान बने थे। उन्होंने परम्परागत रीति-रिवाजों का परित्याग नहीं किया और न ही उनसे इस्लाम धर्म प्रभावित हुआ। हिन्दुओं ने अपनी धार्मिक भावना का प्रभाव मुसलमानों पर भी डाला। अनेक सूफी सन्तों ने जप, तप, योग, ध्यान और प्रेम दर्शन के सिद्धान्त को हिन्दू धर्म से ग्रहण किया। अनेक मुसलमान कवि लेखक हिन्दू धर्म से प्रभावित हुये, इनमें रहीम और रसखान का नाम प्रसिद्ध है।

इस्लाम के कारण यहां मज़हबी संघर्षों का भी उदय हुआ। मंन्दिर मस्जिद, गोवध और मस्जिद में सुअर के प्रवेश को लेकर अनेक प्रकार के विवाद यहां होते रहे। तद्युगीन भाषा और साहित्य में भी व्यापक परिवर्तन हुआ। यह परिवर्तन कविता, नाटक के क्षेत्र में हुआ। इस समय के प्रसिद्ध कवि तरुवर शाह, बख्तबली, लाल कवि और भूषण थे। यह परिवर्तन कथा साहित्य, नाट्य साहित्य, लोक-साहित्य, प्रहसन, पहेलियां और गप्पों में भी मिलता है।

यहां का जन सामान्य बुन्देलखण्डी भाषा बोलता था। मुसलमानों के आगमन के पश्चात यह भाषा अपने मौलिक स्वरूप में न रह गयी तथा इसमें अरबी और फारसी के शब्द प्रयोग में लाये जाने लगे। इस समय की सामाजिक व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन दिखायी देने लगा। 16 संस्कारों के स्थान पर केवल जन्म संस्कार, विवाह संस्कार और मृत्यु संस्कार का ही अस्तित्व रह गया। धार्मिक स्थिति में भी व्यापक परिवर्तन हुआ। परम्परागत धर्म का अनुपालन करता हुआ यहां का व्यक्ति अन्ध-विश्वास जन्य धर्म का पालन करने लगा और अधोपतित हो गया। उसके मनोरंजन के साधनों में भी व्यापक परिवर्तन हुआ। यह परिवर्तन गायन, वादन, नृत्य समसामयिक गीत, जातीय संगीत, मौसमी गीत के क्षेत्र में हुआ। लोक वाद्यों में भी नये-नये वाद्य शामिल हुये और नवीन गायन शैलियों का भी उदय हुआ।

इस्लाम धर्म से प्रभावित होकर यहां की सामाजिक व्यवस्था व धार्मिक व्यवस्था में जो परिवर्तन हुये, उनका मूल्यांकन किया जाना परमावश्यक है। हमें अपनी पूर्व की स्थिति, वर्तमान स्थिति और भविष्य की स्थिति पर विचार करना होगा। उन कारणों पर भी ध्यान देना होगा, जिनकी वजह से व्यक्ति इस्लाम से आकर्षित हुआ। चाहे इसमें शक्ति, प्रलोभन, धार्मिक सिद्धान्त और सामाजिक सम्बन्धों का हाथ क्यों न रहा हो, यह परिवर्तन परिस्थितिजन्य था और यह अवश्यसम्भावी था। तथा जबकि कुछ लोग इस परिवर्तन को बुन्देलखण्ड की संस्कृति पर एक आघात मानते हैं। उनके मतानुसार इस परिवर्तन से यहां की मौलिक संस्कृति नष्ट हुई और उसका पतन हुआ, किन्तु इसी संस्कृति के कारण धर्म सामंजस्य की भावना का उदय हुआ, जिन्हें नवीन संस्कृति के प्रतीकों के रूप में अपनाया

गया। शोध छात्रा के अनुसार- इस्लाम धर्म और उसके सिद्धान्त बहुत अच्छे थे, किन्तु मुसलमान आक्रमणकारियों का व्यवहार यहां के मूल निवासियों के साथ कटुतापूर्ण था। मुगल सम्राट अकबर और शाहजहाँ के काल में हिन्दू और मुसलमानों के बीच मेलजोल बढ़ा। यदि मुसलमानों के पूर्व की संस्कृति और उसके बाद के सांस्कृतिक स्वरूप का विवेचन किया जाये, तो ऐसा लगता है कि इस्लाम से हमने कुछ उपलब्धियां भी हासिल की हैं। यह उपलब्धियां वास्तुशिल्प, चित्रकला, साहित्य और संगीत से जुड़ी हुई है तथा इससे एक नवीन मिली-जुली संस्कृति का उदय हुआ। इसके अतिरिक्त मुसलमानों के धर्म चिन्ह, हरे रंग का ध्वज और चांद तारे के विषय में जानकारी उपलब्ध हुई। यह भी जानकारी उपलब्ध हुई, कि मुसलमानों की वेश-भूषा तथा भाषा हिन्दुओं से बिल्कुल भिन्न है। उनके धर्म की भाषा अरबी और फारसी है, क्योंकि उनका धर्म ग्रन्थ इसी भाषा में उपलब्ध होता है। यद्यपि यहां के मुसलमान बुन्देलखण्डी बोलते हैं, फिर भी उसमें उर्दू और फारसी के शब्द होते हैं। मुसलमानों की पहचान उनके धर्म आचरणों से हो जाती है। ये लोग नवाज़ पढ़ते हैं, रोज़ा रखते हैं, क़ुर्आन शरीफ का पाठ करते हैं, जक़ात देते हैं और हज़ करते हैं। इनके धार्मिक स्मारक, मस्जिद, ईदगाह, दरगाह, इमामबाड़े होते हैं, जो बुन्देलखण्ड में सर्वत्र मौजूद हैं। अनेक मज़ारें और मकबरे, भी सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में हैं। इन इमारतों के संदर्भ में जानकारी श्री एम० एस० किदवई, कमरुल हसन, महेन्द्र अवस्थी, आयशा बेगम, गिरिजा अवस्थी, सत्यनारायण द्विवेदी, मुस्ताक हुसैन, डॉ० वीरेन्द्र शर्मा तथा डॉ० रमेशचन्द्र श्रीवास्तव से हुई। यह सभी इमारतें 11वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक की है।

इस्लाम धर्म के बुन्देलखण्ड में प्रादुर्भाव के पश्चात् कुछ नई मान्यताएं उभरकर सामने आयीं, ये मान्यताएं इस्लाम धर्म से प्रभावित होकर निर्मित हुई। सबसे पहले इस्लाम ने अपने धर्म प्रचार का जो मार्ग अपनाया था, उसे बुन्देलखण्ड निवासियों ने स्वीकार नहीं किया, क्योंकि वह शक्ति के माध्यम से विकसित हुआ तथा लोगों को बिना धार्मिक सिद्धान्त समझाये उसे मानने के लिये बाध्य किया गया। पूरी दुनिया में इस्लाम को माननें वाले जितने व्यक्ति हैं, उनमें ९० प्रतिशत भारतीय मूल के हैं। इस धर्म की सबसे बड़ी विशेषता अद्वैतवाद है, जो ईश्वर के निराकार स्वरूप को मान्यता प्रदान करता है। इस भावना को कबीर-पन्थियों, नानक पन्थियों, सतनामियों और प्रणामियों ने अपनाया तथा साकार भक्ति वालों ने भी इसे परोक्ष रूप में माना। इस प्रकार इस्लाम धर्म के अनेक सिद्धान्त तद्युगीन सनातन धर्म में शामिल हुये, सर्वधर्म समभाव का उदय हुआ तथा कुछ नवीन प्रकार के अन्धविश्वास भी उत्पन्न हुये। मुसलमानों के प्रति कटुता का भाव उत्पन्न हुआ, इसके विपरीत मुसलमान भी धार्मिक कट्टरता के शिकार हुये।

इस्लाम धर्म के प्रभाव के कारण दोनों धर्मों के बीच समन्वय स्थापित करने हेतु अनेक नवीन सम्प्रदायों का उदय हुआ। इन सम्प्रदायों ने एकेश्वरवाद, आपसी मेल-जोल तथा जातिवाद की भावना से ऊपर उठकर सामाजिक एकता और समरसता पर बल दिया। सन्त कबीरदास ने कबीर पन्थ नाम का पन्थ चलाया, इसके अनुकरणकर्ता हिन्दू और मुसलमान दोनो थे। इस सम्प्रदाय ने एकेश्वरवाद

तथा ईश्वर की सर्वव्यापकता को स्वीकार किया। बाह्य आडम्बर और जांत-पांत का विरोध किया तथा हिन्दू और मुसलमानों में एकता स्थापित करने के प्रयास किये। इन्होंने कहीं-कहीं इस्लाम धर्म के कुछ सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं किया और हिन्दू धर्म के अवतारवाद को भी ठुकरा दिया तथा पाखण्ड रहित मानवतावाद के सिद्धान्त को स्वीकारा।

इस्लाम धर्म से प्रभावित दूसरा पन्थ गुरुनानक पन्थ था। गुरूनानक ने उर्दू, फारसी, संस्कृत के ग्रन्थों का विस्तृत अध्ययन करने के पश्चात नानक पन्थ का शुभारम्भ किया और स्वयं को उसका पैगम्बर माना। इनके पन्थ में इस्लाम धर्म और हिन्दू धर्म दोनों का प्रभाव है। इन्होंने भी दोनों धर्मो के मध्य एकता स्थापित करने के प्रयत्न किये। यह पन्थ अन्ध-विश्वास और व्यर्थ के रीति-रिवाजों को नहीं मानता। सदाचार और उत्तम चरित्र पर बल देता है। इस पन्थ ने गुरु-शिष्य परम्परा को जन्म दिया। इसमें गुरुनानक के अतिरिक्त अंगददेव, अमरदास जी, रामदास जी, अर्जुन देव हरिगोविन्द, हरराय जी, तेगबहादुर और श्री गोविन्द सिंह जी गुरु हुये। गुरुनानक पन्थ के व्यक्ति पगड़ी बांधते हैं, केश रखते हैं, कड़ा पहनते हैं, कटार रखते हैं तथा गुरु ग्रन्थ साहब का पाठ करते हैं।

इस्लाम धर्म से प्रभावित तीसरा सम्प्रदाय प्रणामी सम्प्रदाय है। इसका शुभारम्भ गुरु प्राणनाथ ने किया था तथा इन्होंने कुलजम नाम के ग्रन्थ की रचना की। इनके अनुयायी इन्हें महात्मा बुद्ध का अवतार मानते हैं। प्रणामी सम्प्रदाय के लोग राधा और कृष्ण की उपासना करते हैं। ईश्वर को सर्वशक्तिमान मानते हैं। हिन्दू और मुसलमानों के बीच एकता की भावना रखते हैं और जांत-पांत पर विश्वास नहीं रखते।

इस्लाम के प्रभाव के कारण यहां के मौलिक धर्म में अनेक परिवर्तन दिखलायी देते हैं। पहले यहां के लोग प्रकृति, परमात्मा, देवता तथा विविध प्रकार के पशुओं की उपासना करते थे, किन्तु सन् 1022 के पश्चात यहां के मौलिक धर्म में परिवर्तन हुआ। प्रकृति उपासना अब अपने मौलिक स्वरूप में न रह गयी। पशु उपासना में भी कमी आयी। यहाँ के लोग जिन पंच देवों की उपासना करते थे, उनकी पूजा पद्धति में परिवर्तन हुआ तथा कुछ नवीन धार्मिक सिद्धान्त इसमें जोड़े गये।

इस्लाम धर्म के कारण यहां के वास्तुशिल्प पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा। इसके कारण यहाँ अनेक परिवर्तन देखने को मिले। पहले यहां का वास्तुशिल्प, प्रस्तर वास्तुशिल्प के रूप में प्रसिद्ध था। अनेक दुर्गों, धार्मिक स्थलों, आवासीय स्थलों और जलाशयों का निर्माण पत्थरों के सहयोग से हुआ जिसका दिशा निर्देशन वृहद संहिता, विश्वकर्मा विज्ञान और मय दानव कृत वास्तुशिल्प के अनुसार हुआ, किन्तु बाद में आवश्यकता के अनुसार वास्तुशिल्प में परिवर्तन हुआ, जिसके कारण भवन निर्माण सामग्री में भी बदलाव आया। पहले यह वास्तुशिल्प, मौर्यशैली, गुप्त शैली, गुर्जर प्रतिहार शैली, पंचायतन नागरी शैली के रूप में विख्यात हुआ। मुसलमानों के प्रभाव के कारण यहां मिश्रित वास्तुशिल्प का विकास हुआ।

इस्लाम के आगमन के पश्चात तुर्क काल और मुगल काल में जिन दुर्गों, धार्मिक स्थलों, आवासीय स्थलों का निर्माण हुआ, उनमें पत्थरों का प्रयोग बहुत कम हुआ। उसके स्थान पर चूना, ईंट, उर्द की दाल, गुड, सन, बालू का प्रयोग सर्वाधिक हुआ। इस युग में दुर्ग, आवासीय व्यवस्था, धार्मिक स्थल और जलाशय की निर्माण शैली में व्यापक परिवर्तन हुये, ये बुन्देलखण्ड में सर्वत्र दिखलायी देते हैं।

बुन्देलखण्ड की मूर्ति कला सर्वश्रेष्ठ मूर्तिकला थी। इसका विकास मौर्य युग से लेकर चन्देल युग तक सर्वाधिक हुआ। खजुराहो, देवगढ़, कालिंजर की मूर्ति सम्पदा तद्युगीन है और इस मूर्ति-सम्पदा को देखकर विश्व के लोग आश्चर्य करते हैं। मुसलमानों के प्रभाव के कारण यहां की मूर्तिकला अधोगति पर पहुंची। पत्थर की मूर्तियों का निर्माण सल्तनत काल और मुगलकाल में बहुत कम हुआ। केवल धातुओं की मूर्तियां इस युग में बनीं। मुगल काल में निर्मित मूर्तियां मूर्ति शिल्प की दृष्टि से उत्तम कोटि की नहीं थी।

प्राचीन युग में पाषाण युग के शैल चित्र उपलब्ध होते हैं, जिससे यह बोध होता है कि यहाँ चित्रकला विकसित थी, किन्तु मौर्यकाल से लेकर चन्देल युग तक चित्रकला का कोई विकास बुन्देलखण्ड में नहीं हुआ, किन्तु सल्तनत काल और मुगलकाल में चित्रकला का व्यापक विकास हुआ। चित्रकला के पर्याप्त उदाहरण मदनपुर, ओरछा, बानपुर, पन्ना, छतरपुर, टीकमगढ़, झाँसी, टोडी, फतेहपुर, टहरौली, अमरगढ़ और गुरसरांय में उपलब्ध होते हैं। इन चित्रों में तद्युगीन मुगल शैली का व्यापक प्रभाव है।

इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड में सल्तनत काल में और मुगलकाल में मिट्टी की कला में भी व्यापक परिवर्तन हुये, अनेक मिट्टी के पात्र मुसलमानों की आवश्यकता के अनुसार निर्मित हुये तथा इनके बाहरी आवरण में विशेष प्रकार की कलाकारी की गयी।

इस युग में धातु कला में भी अनेक परिवर्तन हुये। बुन्देलखण्ड में सोना, चांदी, लोहा, तांबा, कांसा, फूल, जस्ता धातु के रूप में प्रयुक्त होता था और इसकी विविध उपयोगी वस्तुएं बनती थी। स्वर्ण, रज़त, धातुओं का प्रयोग आभूषण बनाने में होता था, जबकि अन्य धातुओं से विविध प्रकार के पात्र बनते थे। मुसलमानों के प्रभाव के कारण धातु-कला में व्यापक परिवर्तन हुआ। रत्न जड़ित, आभूषणों का निर्माण अधिक होने लगा तथा अन्य धातुओं से नक्काशीदार पात्र बनने लगे।

मुसलमानों के कारण वस्त्र निर्माण कला का व्यापक विकास इस क्षेत्र में हुआ। प्राचीन परिधानों के स्थान पर नवीन परिधानों का प्रयोग होने लगा तथा रेशमी कपड़े के ऊपर ज़री का काम व्यापक रूप से हुआ। कालीन और गलीचे अधिक मात्रा में बने। बुन्देलखण्ड में चन्देरी, झाँसी, शेरपुर सिहोड़ा में कपड़े का काम विकसित हुआ।

काष्ठ कला बुन्देलखण्ड की प्राचीन कला है। काठ का प्रयोग यहां भवन निर्माण, पलंग, तख्त, सिंहासन तथा अन्य उपयोगी वस्तुओं के लिये होता था। बालकों के मनोरंजन के लिये अनेक प्रकार के खिलौने भी लकड़ी से बनते थे। सामान और व्यक्ति को ले जाने के लिये बैलगाड़ी और रथ भी लकड़ी से निर्मित होते थे। मुसलमानों के प्रभाव के कारण इस कला में व्यापक परिवर्तन हुआ और अनेक प्रकार की कलात्मक वस्तुएं लकड़ी से निर्मित हुई। इसके अतिरिक्त प्रस्तर कला, चर्मकला, कांच और लाख से वस्तु निर्माण की कला में भी व्यापक परिवर्तन हुआ। भोज्य पदार्थ निर्माण और मिठाई की कला में भी आवश्यकता के अनुसार व्यापक परिवर्तन यहां हुये। प्राचीन सौन्दर्य शास्त्र को ठुकराकर सौन्दर्य शास्त्र की नई मान्यताएं बनी, जिनसे प्रभावित होकर रूप सज्जा की विविध वस्तुएं यहां बनने लगी।

बुन्देलखण्ड में संगीत की लोकप्रियता अति प्राचीनकाल से है। मृदंग, वीणा, शंख, बांसुरी, झांझ, मजीरे आदि यहां के प्राचीन वाद्य है। इनका प्रयोग सामाजिक संस्कार तथा धार्मिक संस्कारों में समय-समय पर होता रहा है। यहां लोक-संगीत और शास्त्रीय संगीत दोनों उच्च्य स्तर के थे। यहाँ के व्यक्ति गायन, वादन और नृत्य के माध्यम से संगीत की प्रस्तुति किया करते थे, यद्यपि इस्लाम धर्म संगीत कला का विरोधी था, फिर भी सल्तनत और मुगलकाल में संगीत का विकास हुआ। मुख्य रूप से कव्वाली, गज़ल, ख्याल, ठुमरी आदि विधियां, संगीत की प्रस्तुति में अपनाई गयी। मुख्य रूप से मुगलकाल में संगीत का सर्वाधिक विकास हुआ। ध्रुपद, धमार, ठुमरी, दादरा और ख्याल, प्रमुख रूप से संगीत में अपनाये गये। संगीत सम्राट तानसेन ने अनेक नवीन राग-रागनियों को जन्म दिया, इनकी रागनियों में मियां की मल्हार प्रसिद्ध रागिनी थी। इस युग में तबले का आविष्कार हुआ। सारंगी और रबाब संगीत में प्रयुक्त होने लगे। शाहजहाँ के शासनकाल तक इसका पूर्ण विकास हुआ। यह संगीत गायन, वादन और नृत्य के रूप में यहां प्रस्तुत होता था। इस युग में धनियों के मध्य वेश्याओं द्वारा प्रस्तुत मुज़रा संगीत ज़्यादा लोकप्रिय हुआ तथा विविध प्रकार के नृत्य भी लोकप्रिय हुये।

शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त मुसलमानों के प्रभाव के कारण यहां का लोक-संगीत भी बहुत अधिक प्रभावित हुआ। इस क्षेत्र में लोक-संगीत की प्रस्तुति पारिवारिक समारोहों, सामाजिक समारोहों, धार्मिक समारोहों में गायन, वादन और नृत्य के रूप में होती थी। लोक-संगीत की प्रस्तुति में मृदंग, ढोलक, ढोल, तांसा, नगाड़ा, नगड़िया, हुड़क, डप, खजली, चमीटा, मज़ीरा, करताल, मटका, पपीहरी, शहनाई, बांसुरी, चिलगोजा, धींचा, एकतारा आदि प्रयोग में लाये जाते थे तथा नृत्य जातीय आधार पर प्रचलित थे।

मुसलमानों के प्रभाव से लोक परम्पराओं तथा समाज और धर्म से जुड़ी प्रथाओं में भी व्यापक परिवर्तन हुआ। अनेक प्रकार के नवीन अंध-विश्वास, व्यवसायों, कृषि क्षेत्रों और सामाजिक संस्कारों में जुड़े थे। अन्ध-विश्वास हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों में बराबरी से जुड़े। दोनों धर्मों के लोग

अपने तीज़-त्योहारों का अनुपालन अपने-अपने हिसाब से करते थे। एक ओर मिथ्या आडम्बरों का समर्थन था, तो दूसरी ओर इसका विरोध भी था। नाना प्रकार की झाड़-फूंक, काल्पनिक देवी-देवताओं की पूजा, दरगाहों में चादर चढ़ाना और मनोकामनाओं की पूर्ति के लिये मनौती मानना आदि सभी धर्मों में प्रचलित था। सामान्य रूप से इन अन्ध-विश्वासों का प्रभाव व्यापक रूप से था। यहां के व्यक्तियों को परम्पराओं के अनुपालन के लिये बाध्य किया जाता था। अशिक्षा के कारण परम्पराओं को धर्म का पर्याय माना जाता था। सामाजिक परिस्थितियों और पर्यावरण परिवर्तन के कारण ही इनका अनुपालन जरूरी हो गया था, परिणामस्वरूप दोनों धर्मों के बीच धार्मिक ठगी प्रारम्भ हो गयी थी। कुछ लोग प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य के प्रदर्शन के लिये ऐसा किया करते थे।

इस युग में अनेक प्रकार की कुप्रथाओं ने जन्म लिया। कन्याओं को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाने लगा, कन्या विवाह प्रतिष्ठा का कारण बना। जवान लड़की को जबरन छीने जाने के कारण कन्या वध की प्रथा प्रचलित हुई। स्वतंत्र विचार रखने वाली स्त्री निन्दा की पात्र बनी और उसे पिशाचिनी और दुष्टनी नाम से सम्बोधित किया गया। इस युग में सती प्रथा का प्रचार-प्रसार बढ़ा और स्त्रियां सामूहिक रूप से अग्निकुंड में आत्मदाह करने लगी। इस युग में भोजन व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुआ। पहले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मांसाहार नहीं करते थे, बाद में मांसाहार का प्रचलन बढ़ा। छुआछूत की भावना पूर्ववत रही, मदिरापान का प्रचलन बढ़ा, बाल-विवाह की प्रथा का सूत्रपात हुआ। विधवा विवाह उच्च जातियों में प्रचलित नहीं थे। स्वेच्छाचारिता के कारण वर्णशंकरता बढ़ी तथा व्यक्ति अन्य स्त्रियों से आकर्षित होने के कारण उपपत्नियां रखने लगे। सामाजिक संस्कारों में बसोरिन और नाइन की महत्वपूर्ण भूमिका थी। जन्म संस्कार में थाली बजाना, अजवाइन, नमक, गन्धक और भूसी से नज़र उतारना एक आम प्रथा थी। कुछ प्रथायें वस्त्र आभूषण के संदर्भ में भी नये रूप में विकसित हुई। ऐसा लगता है कि हिन्दू और मुसलमान दोनो ही अन्ध-विश्वास के अन्धकार में कहीं भटक गये थे। स्त्रियों के बीच की पर्दा प्रथा बन्द हो गयी थी। हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में जातीय बन्धन कम कठोर थे। यदि कोई हिन्दू मुसलमान बन जाता था, तो उसका बहुत सम्मान होता था, जबकि हिन्दुओं में किसी अन्य धर्म वाले को हिन्दू धर्म में अपनाने की कोई विधा नहीं थी, जिसके कारण हिन्दू धर्म मानने वाले की संख्या कम होती गयी और इस्लाम धर्मावलम्बियों की संख्या बढ़ती गयी।

(अ) इस्लाम के आगमन के पश्चात यहां की मिश्रित संस्कृति का धार्मिक महत्वः-

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में इस्लाम के आगमन के पश्चात, जिस संस्कृति का निर्माण हुआ, उसे मिश्रित संस्कृति की संज्ञा दी जा सकती है। यहाँ के लोगों ने मुसलमानों से प्रभावित होकर उनके धर्म से एकेश्वरवाद की प्रेरणा ली और निराकार स्वरूप को साकार स्वरूप के साथ स्वीकार किया। मुसलमानों से प्रभावित होकर धर्म के क्षेत्र में अनेक परिवर्तन हुये। मुख्य रूप से तद्युगीन हिन्दुओं

को दबाने का प्रयत्न किया गया तथा इनके धार्मिक स्थलों को नष्ट करने के प्रयत्न जारी रहे। हिन्दुओ के ऊपर जजिया कर तथा अन्य कर लगाये गये। जिनसे हिन्दुओं की धार्मिक व्यवस्था चरमरा गयी। गुप्त युग और चन्देल युग में जिन बहुमूल्य धार्मिक स्थलों का निर्माण बुन्देलखण्ड में हुआ, उस तरह के धार्मिक स्थल इस्लाम के आगमन के पश्चात् दोबारा नहीं बन सके। केवल मुगलकाल में सम्राट अकबर से लेकर शाहजहां के शासनकाल तक हिन्दुओं का धार्मिक शोषण नहीं हुआ। बुन्देलखण्ड के अनेक राज्यों में अनेक धार्मिक स्थलों का निर्माण हुआ। ओरछा और दतियां में निर्मित धार्मिक स्थल और पन्ना में निर्मित स्थल मुगलकाल के है।

सनातन धर्म और हिन्दू धर्म पर विश्वास करने वाले लोग मुसलमानों में नफ़रत करते थे। उन्होंने धर्म की रक्षा के लिये अपने धार्मिक नियम कठोर किये, ताकि धर्म परिवर्तन न हो। केशवचन्द्र मिश्र के अनुसार- उस युग के उपासकों ने चाहे जिस नाम से हो, उस महिमावान की उपासना की, उनमें से प्रत्येक ने ईश्वर को देखा, उसको सुना और अपनी सत्ता को उससे भिन्न माना तथा वे जीवन के प्रत्येक क्षण ईश्वर में रमते रहे। हिन्दू समाज के सामने इस युग में नव उन्मेष के साथ उदित होते हुये शैव और वैष्णव मत अभिमुख थे।[1] इसी युग में धार्मिक आन्दोलन का उदय हुआ। धार्मिक आन्दोलन से जुड़े साधू-सन्तों ने नष्ट होते धर्म के प्रति व्यक्तिों का ध्यान आकर्षित किया और दिशा भ्रमित व्यक्तियों ने मोक्ष का मार्ग दिखलाया। सन्त कबीरदास, गुरुनानक, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, झींत गोस्वामी, चतुर्भुजदास, रामानुज और बल्लभाचार्य ने विषम परिस्थितियों में धर्म की ज्योति प्रज्ज्वलित की, जिससे इस युग में धर्म का महत्त्व बढ़ा। बुन्देलखण्ड में महामति प्राणनाथ देवता के रूप में प्रतिष्ठित हुये। डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के अनुसार- "अकबर के समय में जो धार्मिक सहिष्णुता थी, उसका उच्च तथा निम्न श्रेणी के सभी मुसलमानों ने विरोध किया। यद्यपि हिन्दुओं का व्यवहार मुसलमानों के अनुकूल ही रहा, तो भी इन दोनों बहुसंख्यक जातियों में मुगल शासन के अन्त तक बैर-विरोध बना ही रहा। मुसलमान हिन्दुओं को अपने से बहुत अच्छा समझते थे, अतः ये उनके धार्मिक विश्वास तथा रहन-सहन का विरोध किया करते थे।[2]

इस्लाम धर्म बुन्देलखण्ड की धरती में नया-नया आया था, इसलिये इस धर्म के संदर्भ में काफी भ्रान्तियां फैली हुई थी। इस धर्म की प्रमुख विशेषता एकेश्वरवाद का सिद्धान्त था और धार्मिक सिद्धान्त पाँच वक्त की नवाज़ पढ़ना, ज़कात देना, रमज़ान के महीने में रोज़े रखना, माल होने पर हज़ करने तक सीमित थी। ये लोग किसी प्रकार छुआछूत भी नहीं मानते थे। हिन्दुओं के प्रभाव के कारण इस धर्म में भी कुछ व्यापक परिवर्तन दिखलायी देते हैं। डॉ० आशीर्वादी लाल के अनुसार- मुसलमान यद्यपि मूर्ति पूजा के विरोधी थे, किन्तु वे समाधियों का आदर करते थे, उनमें से कुछ ताज़िया निकालते थे और कुछ ग्रामीण मुसलमान तो स्थानीय देवी-देवताओं की पूजा करते थे।[3] मुसलमानों में भी कुछ धार्मिक कुरीतियां उत्पन्न हो गयी थीं। दास प्रथा के कारण इनका नैतिक चरित्र पतित हो गया था। हिज़ड़ों का क्रय-विक्रय, दासों की तरह होने लगा था। मुसलमान धर्म भी अन्ध-विश्वासों के घेरे में

आ गया था। कुछ फ़कीर जनता को आकर्षित करने के लिये साधारण वस्तुओं से सोना बनाकर दिखाते थे। यन्त्र, मन्त्र, गड़ा और ताबीज़ से लोगों की समस्याओं का समाधान करते थे।

हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अपने मौलिक धार्मिक सिद्धान्तों के बीच आक्रमण करते थे। मिथ्या आडम्बरों पर विश्वास करते थे। शकुन और अपशकुन मानते थे। फलित ज्योतिष पर भी विश्वास करते थे तथा विविध प्रकार के काल्पनिक देवों पर उनकी आस्था थी। इतना सब होते हुये भी व्यक्ति धर्म के प्रति आस्थावान था और धर्म के विरुद्ध आचरण करने से डरता था। अधिकांश निवासियों के अशिक्षित होने के कारण धर्म का विकृत स्वरूप धार्मिक ठगों ने यहां के निवासियों के सामने प्रस्तुत कर दिया था, ये लोग स्वर्ग, नर्क, पाप-पुण्य का भय दिखाकर जनता को ठगते थे।

(ब) 11वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी तक निर्मित वास्तुशिल्प का विस्तृत विवरण:-

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में स्थापत्य कला और वास्तुशिल्प के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं, जिनका ऐतिहासिक महत्व सर्वाधिक है। इनका निर्माण 11वीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी तक हुआ। इनमें से कुछ स्थल इस प्रकार हैं-

1.लक्ष्मीनारायण मन्दिर (ओरछा):- स्थापत्य कला की दृष्टि से लक्ष्मी नारायण मन्दिर अत्यन्त सुन्दर है इसका निर्माण 1618 ई० में वीर सिंह जू देव ने कराया था। यह मन्दिर बाहर से देखने में त्रिकोण लगता है, भीतर से चौकोर है। इसकी बाहरी दल्लानों में चित्रकारी है।

2.झाँसी का दुर्ग :- मध्यकालीन वास्तुशिल्प की दृष्टि से यह दुर्ग भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसका निर्माण बंगला पहाड़ी पर सन् 1613 ई० में ओरछा नरेश वीर सिंह जू देव ने कराया था। किले के परकोटे के बीच-बीच में ऊँचे गुर्ज और कंगूरे बने हुये हैं तथा दीवारों के बीच-बीच में छेद है। कालान्तर में इस दुर्ग की मरम्मत मराठों ने करायी और बाद में उसे अंग्रेजों ने अपने अनुकूल बनवाया। इस दुर्ग के प्रांगण में तोपची गुलाम गौंस खां, मोतीबाई और अश्वरोही खुदा बख्श की समाधियां हैं, इसके अतिरिक्त शिव मंन्दिर और गणेश मन्दिर भी है।

3.चन्देरी का कुराक महल :- यह मध्ययुगीन वास्तुशिल्प का बेजोड़ नमूना है। यह महल 116 फीट लम्बा व चौड़ा है। इसकी संयोजना क्रास जैसी है। कुशक महल बराबर दूरी पर चार महलों से जुड़ा हुआ है और सभी महल एक चौड़े रास्ते से जुड़े हुये हैं। इसके प्रत्येक कोने में एक छतरी थी, इसका प्रवेश द्वार मेहराबदार है, जिसके अगल-बगल आले है। ये सभी महल 3 मंजिल के है। पहली मंजिल की छत आड़ी-तिरछी है, दूसरी मंजिल की छत ढ़लवा है और तीसरी मंजिल की छत सपाट है। महल का भार स्तम्भों पर है। इसका निर्माण 15वीं शताब्दी में हुआ।[4]

4.ओरछा का रामराजा मन्दिर :- यह मन्दिर निर्माण शैली में चन्देरी के कुशक महल जैसा है, इसका निर्माण 1575 ई० में हुआ था। इसका आंगन आयताकार है, इसका दूसरा महल राज मन्दिर कहलाता है, जो रामराजा मन्दिर से ज़्यादा सुन्दर है।

5.ओरछा का जहांगीर महल :- इस सुन्दर महल का निर्माण वीर सिंह जू देव ने कराया था, इनके जहांगीर से मैत्री सम्बन्ध थे। यह 220 फीट लम्बा और 220 फीट चौड़ा है, इसमें 8 सुन्दर गुम्बदे है और भवन वर्गाकार है। इसके मध्य में 120 फिट लम्बा और 120 फिट चौड़ा आंगन है। इसके छज्जे हाथियों की टेकों से सजे हुये है, आंगन के मध्य में फब्बारा है, उसके चारो ओर कमरे है और कमरों में आगे लटकता हुआ छज्जा है। इनमें कोने दार रास्ते और जालियां बनी हुई हैं, जालियों का ऊपरी भाग सर्पाकार है। इसका मुख्य दरवाजा पूर्व की ओर है और इसके नीचे तलदार है। इसमें कहीं-कहीं रंगीन प्लास्टर तथा कुछ कमरों में चित्र बने हुये हैं।

6.दतिया महल :- इस महल का निर्माण वीर सिंह जू देव ने सन् 1620 में कराया था। यह महल जहांगीर महल जैसा है, किन्तु आकार में जहांगीर महल से कुछ छोटा है। यह महल ग्रेनाइड पत्थर की चट्टानों को काटकर बनाया गया है, इसके प्रत्येक कोने पर बड़े-बड़े गुम्बद और मध्य भाग में वर्गाकार रास्ता है। इसका मुख्य द्वार पूर्व की ओर है और सामने के भाग में बारीकि पच्चीकारी है। यह भवन पांच मंजिल का है, इसके बीच में आंगन है, इसमें टेकदार छज्जे हैं, झरोखेदार, खिड़कियां हैं, गुम्बदों में बेल-बूटे हैं।[5]

7. कालपी का चौरासी गुम्बद :- यह मुस्लिम स्थापत्य कला का बेजोड़ नमूना है तथा इसे लोदी शाह बादशाह का मकबरा भी कहा जाता है। इनका निर्माण कंकशो को चूने से जोड़कर किया गया है। इसकी पूरी सजावट गचकारी मिट्टी से की गयी है। यह 125 वर्ग फिट लम्बा चौड़ा है और इसकी ऊँचाई 80 फीट है। इसमें सात सकरे मेहराबदार दरवाजे हैं, जो स्तम्भों से सधे हैं। पूरी इमारत शतरंज की गोटों की तरह है, इसका वर्गाकार स्थल गुम्बद से घिरा हुआ है, जो छत के 60 फिट ऊँचा है। इसके चारो कोने में छोटे-छोटे गुम्बद है और बाहरी किनारों पर गुम्बद दार बुर्ज हैं तथा इसके मध्य भाग में एक बड़ा गुम्बद है। यह इमारत अत्यन्त सुन्दर है।

8.जामा मस्जिद एरच :- वास्तुशिल्प की दृष्टि से इस इमारत का भी महत्व है। इसके मध्य भाग में एक बड़ा गुम्बद और चारो ओर छोटे-छोटे गुम्बद हैं। बीच के गुम्बद का मार स्तम्भों पर है, इसकी आकृति ढलावदार है, इसके सभी गुम्बद अर्धगोलाकार हैं और उसके ऊपर पद्मकोष है। इसका निर्माण 711 हिज़री सन् में हुआ, यह इमारत मुगलकालीन है।[6]

9.चन्देरी की अन्य इमारतें :- चन्देरी में कुछ अन्य इमारतें भी उपलब्ध हुई हैं, इनमें से सुप्रसिद्ध इमारत जामा मस्जि़द है। इसके पश्चिम में एक खुला आंगन और किबला है और दक्षिण की ओर एक दल्लान है। पूर्व दिशा की दल्लान नष्ट हो गयी है। दलानों के ऊपर छज्जे हैं, जो स्तम्भों से सजे हुये हैं।[7] यहीं पर कुछ अन्य स्थल भी हैं, इनमें मदरसा और शहजादी का मकबरा है। मदरसा वर्गाकार इमारत है, इसके चारो ओर 20 फीट का बरामदा है, इसका भीतरी भाग बिल्कुल सादा है। इसी से सटी हुई शहजादी की रोजा इमारत भी है, यह ज़ामा मस्जि़द से मिलती-जुलती है। यहीं पर दो मंजिल का बादल महल भी है, जो 50 फीट ऊँचा है।

10.महोबा की ऐतिहासिक मस्ज़िदः- इस शहर के पश्चिमी भाग में एक मस्ज़िद उपलब्ध हुई है, जिसका निर्माण हिन्दू धर्मस्थल को तोड़कर किया गया था। इसका पता वहां प्रयोग में लाये गये स्तम्भों से लग जाता है। इसका निर्माण सन् 1321 से लेकर 1325 के मध्य हुआ। यहां उपलब्ध लेख के अनुसार इसे मोहम्मद तुगलक ने बनवाया था। ऐतिहासिक दृष्टि से इस मस्ज़िद का महत्व है। इसके द्वार पर तद्युगीन अभिलेख भी हैं।

11.एरच का दुर्गः- यह दुर्ग बेतवा नदी के किनारे पर निर्मित था, इसमें प्रवेश करने के लिये चार दरवाजे थे। ये दरवाजे हाव, मीरा, ग्वाल और रथ के नाम से विख्यात थे। रथ नामक द्वार पूर्व की ओर था तथा इसका पांचवां द्वार खिरकी दरवाजा कहलाता था। इसकी दीवाल पर हनुमान की आकृति है। यह दुर्ग हिन्दू राजाओं के द्वारा निर्मित था, जो बाद में मुगल सम्राट अकबर के कब्जे में आ गया।[8]

12.बन्दी चोरः- एरच शहर के बाहर एक परकोटा है, वास्तुशिल्प की दृष्टि से यह भी देखने योग्य है। इसका निर्माण सैय्यद ने करवाया था। इसके समीप एक सती स्तम्भ भी है, जिससे यह अंदाज लगता है, कि यहां कभी कोई स्त्री सती हुई थी, उसकी स्मृति में इसका निर्माण हुआ।[9]

यदि बुन्देलखण्ड में मध्ययुगीन ऐतिहासिक स्थलों की खोज की जाये तो कोई ऐसा जनपद नहीं होगा जहां ये स्मारक उपलब्ध न हों।

शोध प्रबन्ध का मूल्यांकन

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का शीर्षक 'बुन्देलखण्ड में इस्लाम का प्रादुर्भाव एवं प्रभाव' है। अभी तक अनेक शोध प्रबन्धों की संरचना भारतवर्ष के विविध विश्वविद्यालयों में पूर्वमध्ययुग और मध्ययुग के इतिहास में हुई, किन्तु क्षेत्रीय आधार पर इस प्रकार के शोध बहुत कम देखने को उपलब्ध होते हैं। बुन्देलखण्ड एक गरिमामयी परिक्षेत्र है, जिसका अस्तित्व राजनीतिक आधार पर चाहे कुछ भी न हो, किन्तु इसका अस्तित्व सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक आधार पर बहुत कछ है। बुन्देलखण्ड का भाषा के आधार पर भी पृथक अस्तित्व दिखलायी देता है, इसलिये महिमामयी बुन्देलखण्ड पर पुरातात्विक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि पर शोध करने की आवश्यकता शोध छात्रा को सदैव से अनुभव होती रही।

यदि बुन्देलखण्ड की भौगोलिक परिसीमाओं का अध्ययन किया जाये, तो यह परिसीमन उपरोक्त दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुये सही प्रतीत होता है। उत्तर में यमुना नदी, दक्षिण में नर्मदा नदी, पूर्व में टोंस नदी और पश्चिम में चम्बल नदी इसकी सीमाओं का निर्धारण करती हैं। यह सम्पूर्ण क्षेत्र विन्ध्याचल की पर्वत श्रेणियों से आवृत्त है तथा प्राकृतिक दृष्टि से यहां की भू-संरचना अत्यन्त विषम है। इस परिक्षेत्र में कृषक विविध वस्तुएं उत्पन्न करता है, किन्तु यहाँ की कृषि वर्षा पर आध ारित है। वन, उपज, खनिज सम्पदा तथा कुटीर उद्योगों से उसकी जीविका उपार्जित होती है। यहाँ

के व्यक्ति सहनशील, अल्पभाषी, अशिक्षित एवं परिश्रमी हैं। इन्हें वेश-भूषा, भाषा, धर्माचरण के माध्यम से आसानी से पहचाना जा सकता है। शोध के दौरान मुझे बुन्देलखण्ड के अनेक क्षेत्रों का भ्रमण करने का अवसर उपलब्ध हुआ और मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, कि सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड धर्म, वेश-भूषा, लोक-व्यवहार की दृष्टि से एकता के सूत्र में बंधा हुआ है। उसके पास धन और सम्पत्ति का आभाव भले ही हो, किन्तु उसके पास महत्वपूर्ण एवं गौरवमयी पुरा सम्पदा और गरिमामयी इतिहास है। इस परिक्षेत्र में कल्चुरियों, चन्देलों, बघेलों, गोड़वंशीय नरेशों, बुन्देलों, परिमारों, घघेरों आदि ने ऐसे वीरोचित कृत्य किये, जिससे यह धरती धन्य हो गयी और इसी से मुझे यह प्रेरणा मिली, कि इसके किसी अछूते विषय पर शोध कार्य करूं।

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय से श्रीमती इन्दु प्रभा सिंह ने बुन्देलखण्ड के समाज संस्कृति और धर्म पर शोध कार्य किया है, इन्हें बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय ने पी.एच.डी. की उपाधि से विभूषित किया है। यह शोध प्रबन्ध मुझे देखने का अवसर मिला। इनका प्रयास काफी सराहनीय है, किन्तु उसमें इस्लाम धर्म और उससे जुड़ी हुई संस्कृति के सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा नहीं की गयी। यह आभाव मुझे खटका। मुझे एक दूसरा शोध प्रबन्ध डॉ० अरुणेन्द्र चौरसिया का देखने को मिला, यह शोध प्रबन्ध बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति और लोक संगीत से सम्बन्धित है। यह शोध प्रबन्ध काफी कठिन परिश्रम के बाद लिखा गया है तथा इसकी प्रशंसा सर्वत्र हुई। इन्हें इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सन् 1993 में डी.फिल की उपाधि से विभूषित किया गया। इस शोध प्रबन्ध में भी इस्लाम के संदर्भ में कोई विशेष चर्चा नहीं हुई, इसलिये मुझे यह आभाव खटकता रहा कि शोध का विषय इस प्रकार का चुना जाये, जिसमें बुन्देलखण्ड में रहने वाले इस्लाम धर्म से जुड़े व्यक्तियों पर विशेष चर्चा हो। इसी उद्देश्य को लेकर मैंने उपरोक्त शीर्षक पर यह कार्य करने का निश्चय किया। मेरे शोध निर्देशक श्री बी० एन० राय ने भी शोध शीर्षक के प्रति अपनी सहमति प्रकट की तथा विश्वविद्यालय ने भी इसे शोध हेतु स्वीकार कर लिया, यह विषय मेरी अभिरुचि के अनुसार था।

<u>शोध प्रबन्ध का शीर्षक</u> :- शोध प्रबन्ध का शीर्षक तीन भागों में विभक्त है- इसका प्रथम भाग बुन्देलखण्ड है, द्वितीय भाग इस्लाम धर्म है तथा तृतीय भाग इस्लाम धर्म का वह प्रभाव है, जिसका प्रभाव बुन्देलखण्ड परिक्षेत्र में यहाँ के निवासियों पर पड़ा तथा जिसके कारण अनेक परिवर्तन यहाँ दिखलाई दिये।

शोध प्रबन्ध की संरचना करते समय मैंने यह पूर्ण ध्यान रखा है, कि शोध प्रबन्ध किसी भी प्रकार विषयान्तर न होने पाये, इसके लिये मैंने निम्न बिन्दुओं पर ध्यान रखा है-

1. बुन्देलखण्ड एवं उसकी सीमा।
2. इस्लाम धर्म और उसका स्वरूप।

3. बुन्देलखण्ड में इस्लाम का आगमन और उसका प्रभाव।

4. इस्लाम के कारण हुये सामाजिक सांस्कृतिक धार्मिक और कला के क्षेत्र में हुये परिर्वतन।

शोध प्रबन्ध की संरचना करते समय, सीमा का भी विशेष ध्यान रखा गया है। मुख्य रूप से 11वीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी के अन्त तक इतिहास का सहारा शोध प्रबन्ध में लिया गया है। यह इतिहास राजनीतिक, धर्म, संस्कृति समाज और कला से जुड़ा हुआ है, जिसका सीधा सम्बन्ध बुन्देलखण्ड से है। इसके पूर्व का इतिहास और बाद का इतिहास केवल परिस्थितियों की समतुलना के लिये लिया गया है। मैने, जहाँ तक प्रयास हो सका है, शीर्षक को विशेष ध्यान में रखते हुये शोध कार्य किया है और शोध प्रबन्ध में किसी भी प्रकार से विषयान्तर नहीं हो पाया है।

शोध प्रबन्ध का उद्देश्य :- मेरा यह शोध प्रबन्ध 'बुन्देलखण्ड में इस्लाम धर्म का प्रादुर्भाव' (आगमन एवं प्रभाव) अभी तक शोध के लिये एक अछूता विषय रहा, इसलिये मैंने इसे नवीन विषय समझकर शोध के लिये चयनित किया था, जो विश्वविद्यालय द्वारा शोध के लिये स्वीकृत हुआ। मैने इस शोध कार्य में पूर्ण अभिरुचि के साथ कार्य किया। मुझे पूरा विश्वास है, कि मेरा यह प्रयास श्रम को देखते हुये अवश्य सफल होगा। इस कार्य को पूरा करने में मेरे निम्न उद्देश्य थे-

1.नवीन ऐतिहासिक साक्ष्यों की खोजः- बुन्देलखण्ड में इस्लाम धर्मावलम्बी 11वीं शताब्दी के प्रारम्भ में आये थे। उनका उद्देश्य बुन्देलखण्ड में आक्रमण करके केवल अपना शासन स्थापित करना न था, अपितु वे अपने धर्म का प्रचार भी यहां करना चाहते थे। तुर्क और मुगलकाल में अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना हुई, जिनका अध्ययन शोध कार्य के दौरान मैंने किया। अनेक ऐसे ऐतिहासिक दस्तावेज भी मुझे उपलब्ध हुये, जिनका सम्बन्ध बुन्देलखण्ड के परिक्षेत्र से था तथा जो सुल्तानों और मुगल शासकों से सम्बन्ध रखते थे।

2.नवीन ऐतिहासिक स्थलों की खोजः- मेरे शोध कार्य के दौरान मुझे ऐसे अनेक ऐतिहासिक स्थलों के सम्बन्ध में जानकारी मिली, जिनका अभ्युत्थान सल्तनत काल और मुगल काल में हुआ। ये स्थल नगरीय संरचना और मिश्रित वास्तुशिल्प के उत्कृष्ट उदाहरण है, किन्तु ऐतिहासिक ग्रन्थों में उनका उल्लेख बहुत कम है। शेरपुर, सिहोड़ा, रनगढ़, पाथर कछार, फतेहगंज, रसिन, वीरगढ़ तथा अन्य जनपदों में बिखरे हुये स्थल महत्वपूर्ण होते हुये भी आज तक इतिहास से नहीं जोड़े जा सके। मैंने अपनी क्षमतानुसार इनका वर्णन अपने शोधकार्य में किया।

3.नवीन कलाकृतियों की खोजः- सल्तनत काल और मुगलकाल में मिश्रित वास्तुशिल्प का विकास हुआ। इन स्थलों को देखने के पश्चात मैने इनका मूल्यांकन किया तथा उनकी समतुलना गुप्त युगीन वास्तुशिल्प, गुर्जर प्रतिहार शैली और चन्देलकालीन शैली से की। इसके अतिरिक्त यहाँ उपलब्ध चित्रकला के अनेक उदाहरण ओरछा, दतिया तथा अन्य क्षेत्रों में देखने को मिले, जिनसे यह

अनुभव हुआ, कि चित्रकला का सर्वाधिक विकास सल्तनत काल और मुगलकाल में हुआ।

4. अन्य उपलब्ध वस्तुओं का अध्ययनः- बुन्देलखण्ड के जिन परिक्षेत्रों में शोध की दृष्टि से उत्खनन कार्य हुये हैं, वहां अभिलेख, ताम्रपात्र, स्वर्ण और रज़त मुद्रायें विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्र, आभूषण एवं वस्त्र उपलब्ध हुये हैं। ये वस्तुएं मुझे विभिन्न संग्रहालयों में देखने को मिली। इनमे से अधिकांश वस्तुएं 11वीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी तक की थी। मैंने इन्हें ऐतिहासिक साक्ष्यों के रूप में ग्रहण किया है और उनका विश्लेषण भी शोध प्रबन्ध में किया है।

5. धर्म और संस्कृति का अध्ययनः- इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से मुझे बुन्देलखण्ड में प्रचलित समस्त प्राचीन धर्मों का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। तथा उन परिस्थितियों का अध्ययन करने का अवसर मुझे मिला, जब यहाँ के निवासियों को बालात् मुसलमान बनाया गया अथवा धर्म परिवर्तन के लिये प्रेरित किया गया। यहां के अधिकांश मुसलमान अशिक्षित हैं, जो इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों और पैगम्बर हज़रत मोहम्मद साहब के सन्दर्भ में आंशिक जानकारी भी नहीं रखते। यह धर्म यहां शक्ति व प्रलोभन के आधार पर फैला। इसके पहले भी अनेक बाहरी लोग बुन्देलखण्ड में आते रहे और अपना प्रभाव छोड़ते रहे, किन्तु सर्वाधिक प्रभाव इस्लाम धर्म का ही पड़ा, जिसके ऐतिहासिक साक्ष्य यहाँ उपलब्ध होते हैं।

6.मध्ययुगीन इतिहास का अध्ययनः- इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से सल्तनतकाल और मुगलकाल के उस इतिहास का अध्ययन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ, जिसका सम्बन्ध बुन्देलखण्ड से है। इनमें वे किताबें भी शामिल हैं, जिनकी संरचना सल्तनत काल और मुगलकाल में हुई तथा अंग्रेजों द्वारा किये गये सर्वेक्षण कार्यों से सम्बन्धित पुस्तकों का अध्ययन भी मैंने किया। मुख्य रूप से आर्कुलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, इण्डियन एण्टीक्वेरी आदि ग्रन्थ मुझे विभिन्न पुस्तकालयों में देखने को मिले, जिनमें तद्‌युगीन अभिलेखों, ऐतिहासिक, स्थलों मुद्राओं आदि के सम्बन्ध में जानकारी उपलब्ध होती है। मुझे लगता है कि अब तक जो इतिहास लिखा गया, वह न्याय संगत नहीं था और पक्षपातपूर्ण था।

शोध प्रबन्ध की विषय सामग्री :-

कोई भी शोध प्रबन्ध शोध विषय सामग्री के अभाव में पूर्ण नहीं हो सकता। शोधकर्ता को शोध से जुड़े हुये विषय की जानकारी हेतु शोध सामग्री की खोज करना पड़ती है। यह शोध सामग्री विभिन्न प्रकार के मौलिक ग्रन्थ, जिनकी रचना शोध से सम्बन्धित काल में हुई थी, से प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त अनेक दस्तावेज शोध प्रबन्ध के लिये सहायक सिद्ध होते है। अंग्रेजों के शासनकाल में काकवर्ण से लेकर कनिंघम और बी०ए०स्मिथ ने इतिहास के क्षेत्र में अनेक शोधपूर्ण सर्वेक्षण किये, जो तद्‌युगीन शोध पत्रिकाओं में देखने को मिल जाते हैं। उन्हें भी शोध विषय सामग्री में शामिल किया गया है। इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड की गौरवगाथा पर लिखे गये, वीर काव्य रासव ग्रन्थ और

महाकाव्य भी शोध प्रबन्ध की विषय सामग्री में शामिल किये गये। मुख्य रूप से जनकवि जगनिक द्वारा रचित आल्हखण्ड, चन्दबरदाई द्वारा रचित पृथ्वीराज रासों और लालकवि द्वारा रचित छत्रप्रकाश बुन्देलखण्ड के इतिहास को उजागर करने वाले ग्रन्थ है। उन्हें शोध प्रबन्ध में शामिल किया गया। पूर्व मध्ययुग, मध्ययुग में रचे गये बाबरनामा, आइने अकबरी आदि को भी शोध की अध्ययन सामग्री में शामिल किया है। इसके अतिरिक्त वर्तमान युग में पूर्वमध्ययुग और मध्ययुग के जिन ऐतिहासिक ग्रन्थों का सम्बन्ध बुन्देलखण्ड से है, उन्हें भी अध्ययन सामग्री में शामिल किया गया है। मुख्य रूप से मुंशी श्यामलाल द्वारा रचित तवारीख बुन्देलखण्ड, पं० गोरेलाल तिवारी द्वारा रचित बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, दीवान प्रतिपाल सिंह द्वारा रचित बुन्देलखण्ड का इतिहास प्रथम भाग, केशवचन्द्र मिश्र द्वारा रचित चन्देल और उनका राजत्वकाल, अयोध्या प्रसाद पाण्डेय द्वारा रचित चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड, कविमणि शिरोमणि कृष्ण कवि द्वारा रचित बुन्देलखण्ड का इतिहास, शोध की अध्ययन सामग्री में शामिल किये गये हैं। इसके अतिरिक्त डॉ० अरुणेन्द्र चौरसिया, डॉ० इन्दू प्रभा सिंह के उपयोगी शोध प्रबन्धों से विषय सामग्री ग्रहण की गयी है। डॉ० नर्मदा प्रसाद गुप्त, डॉ० कन्हैयालाल अग्रवाल, मोतीलाल त्रिपाठी, अशान्त तथा राधाकृष्ण बुन्देली की पुस्तक 'बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक मूल्यांकन' से भी शोध के लिये उपयोगी विषय सामग्री उपलब्ध हुई, जिनकी वजह से यह शोध कार्य पूरा हो पाया है। इसके अतिरिक्त निम्न बिन्दुओं पर आधारित विषय सामग्री शोध प्रबन्ध में शामिल की गयी।

बुन्देलखण्ड के भूगोल से सम्बन्धित विषय सामग्री :-

बुन्देलखण्ड को समझने के लिये उसके भूगोल को समझना परम आवश्यक है, इसलिये परिसीमन, पर्यावरण, खनिज सम्पदा और भूमि संरचना के संदर्भ में ज्ञान प्राप्त करने के लिये हमें सर्वप्रथम उन पौराणिक ग्रन्थों का समावेश विषय सामग्री में करना पड़ा, जिनका सम्बन्ध युद्ध देश, बज्र देश, विन्ध्यआटवी, दशार्ण देश, मत्स्य देश, चेदि देश, डाभाल और बुन्देलखण्ड से है। पुराणों के अतिरिक्त ह्वेनसांग की यात्रा वर्णनों में भी इस क्षेत्र की भौगोलिक सीमाओं का अध्ययन किया जा सकता है। महमूद गज़नवी के साथ बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पदार्पण करने वाले अलबरुनी आदि विद्वानों ने अपने यात्रा वर्णनों में इस क्षेत्र का सीमांकन और यहां के लोगों का वर्णन किया है। सुप्रसिद्ध विद्वान एस० एस० अली ने अपने ग्रन्थ में यहां का सीमांकन प्रस्तुत किया है। दीवान प्रतिपाल सिंह द्वारा रचित पुस्तक में यहां के भूगोल का सविस्तार वर्णन है। डॉ० कन्हैयालाल अग्रवाल द्वारा रचित विन्ध यक्षेत्र के ऐतिहासिक भूगोल में बुन्देलखण्ड के भौगोलिक परिवेश का सविस्तार वर्णन है। इसे अध्ययन सामग्री में शामिल किया गया है।

इस्लाम धर्म से सम्बन्धित विषय सामग्री :-

बुन्देलखण्ड में इस्लाम धर्म लगभग 950 वर्ष व्यतीत कर चुका है। अब यह धर्म विदेशी धर्म न होकर यहां के इस्लाम धर्मावलम्बियों का मौलिक धर्म हो गया है। शोध प्रबन्ध लिखे जाने के

पूर्व इस धर्म के संदर्भ में मुझे कोई जानकारी नहीं थी, किन्तु शोध प्रबन्ध की विषय सामग्री को ध्यान में रखते हुये मैंने इस्लाम धर्म के पवित्र ग्रन्थ, जिसकी संरचना हज़रत मोहम्मद साहब ने की है, पूर्ण श्रद्धा के साथ अध्ययन किया। जिससे यह जानकारी उपलब्ध हुई कि इस्लाम धर्म एकेश्वरवाद का समर्थक, मूर्ति-पूजा का विरोधी और मानवतावाद का समर्थक है। इसके अतिरिक्त इस्लाम धर्म से सम्बन्धित अनेक हदीस ग्रन्थों का अध्ययन, विषय सामग्री को ध्यान में रखते हुये किया। इसके पश्चात व्यक्तिगत आधार पर इस्लाम धर्म से जुड़े हुये विद्वानों से भी मुझे जानकारी उपलब्ध हुई। ऐसे नवीन सम्प्रदाय, जो हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के मौलिक सिद्धान्तों को ग्रहण करते हैं, उनका भी अध्ययन विषय सामग्री में शामिल किया गया। जो ग्रन्थ इनकी सामाजिक व्यवस्था रीति-रिवाज से सम्बन्धित थे, उनका भी अध्ययन शोध प्रबन्ध की विषय सामग्री का अंग बना। सल्तनत काल और मुगलकाल का इतिहास भी विषय सामग्री के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त धर्म संस्कृति से जुड़े हुये अनेक ग्रन्थ विषय सामग्री में शामिल किये गये, जिनमें इस्लाम धर्म से प्रभावित वेश-भूषा, आभूषण, भाषा और रहन-सहन के स्तर को दर्शाया गया है।

कला एवं वास्तुकला से सम्बन्धित विषय की सामग्रीः-

इस्लाम धर्म के आगमन के पश्चात यहां की वास्तुशिल्प और कला में व्यापक परिवर्तन हुआ। तुर्कों और मुगलों की वजह से पश्चिमी एशिया और उत्तरी एशिया का वास्तुशिल्प यहां आया। उस कला से प्रभावित होकर नवीन वास्तुशिल्प को जन्म मिला, जिसे समन्वित शैली या मिश्रित शैली कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त मुसलमानों के प्रभाव के कारण साहित्य, संगीत और चित्रकला में व्यापक परिवर्तन देखने को मिले। इस संदर्भ में वास्तुशिल्प से सम्बन्धित अनेक पुस्तकें, जिनमें वृहद संहिता, विश्वकर्मा, विज्ञान, भयदानवकृत आदि है, उन्हें पढ़ने का अवसर मिला और विषय सामग्री में उन्हें शामिल किया गया। इसी प्रकार तद्‌युगीन साहित्य, जिनकी संरचना 11वीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी तक हुई थी, उनका अध्ययन भी किया गया। इन पुस्तकों की हस्तलिखित प्रतियां विविध पुस्तकालयों, राजा-महाराजा के संग्रहालयों में मुझे देखने को मिली, ये उर्दू फारसी और हिन्दी में थी, इन्हें भी विषय सामग्री में शामिल किया गया। मुगलकाल में चित्रकला का व्यापक विकास हुआ। ये चित्र दीवालों, कांच, लकड़ी के पटले और कागज में निर्मित हुये। भारतीय चित्रकला के इतिहास से जुड़ी अनेक पुस्तकों का अध्ययन मैंने किया और उन पुस्तकों को मैंने अपने शोध की विषय सामग्री में शामिल किया।

नवीन स्थलों से सम्बन्धित विषय सामग्री :-

शोध प्रबन्ध को अन्तिम रूप देने के लिये मैने यह संकल्प लिया कि कुछ ऐसा शोध किया जाये, जो इस शोध प्रबन्ध को चिर स्थायित्वता प्रदान करे। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अनेक ऐसे

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व के स्थल हैं, जिनका नाम आज तक किसी ऐतिहासिक ग्रन्थ में नहीं आया। मैंने व्यक्तिगत सम्पर्क करके उन नवीन स्थलों की खोज की, उन्हें देखा तथा परम्परागत स्रोतों से और प्रचलित जनश्रुतियों से उन स्थलों से जुड़ी हुई संस्कृति का पता लगाया। मैंने उन्हें अपने शोध ा प्रबन्ध में शामिल किया।

शोध के लिये अपनायी गयी विधिः-

मेरे शोध का विषय बुन्देलखण्ड के पूर्वमध्यकाल और मध्यकाल के इतिहास से सम्बन्धित हैं। इतिहास विषय कोई वैज्ञानिक विषय नहीं है, यदि कोई भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, गणित, जन्तु विज्ञान, वनस्पति विज्ञान में शोध कार्य करता है, तो उसे प्रयोग शाला का सहारा लेकर विविध निर्णयात्मक परिणाम निकालने पड़ते हैं। मेरा शोध विषय ऐसा नहीं है, इसके शोध कार्य में तद्‌युगीन समाज एवं वर्तमान समाज को प्रयोग शाला के रूप में प्रयुक्त किया जाता है तथा इसके सम्पूर्ण परीक्षण ऐतिहासिक साक्ष्यों, परम्पराओं, रीति-रिवाजों और जनश्रुतियों पर आधारित होते हैं। इसके अतिरिक्त जो साहित्य उपलब्ध होता है, उसी से यह कार्य पूरा किया जाता है। इस विशिष्ट विधि के अनुसार मैंने निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुये शोध पूरा किया-

1.बुन्देलखण्ड से सम्बन्धित ऐतिहासिक स्थलों का भ्रमण :

बुन्देलखण्ड के अनेक स्थल ऐतिहासिक महत्व के हैं। मुख्य रूप से कालिंजर, मड़फा, रसिन, फतेहगंज, बिलहरिया, मठ, पाथर, शेरपुर सिहोड़ा, रनगढ़, अजयगढ़, खजुराहों, पन्ना, धुबेला, महोबा, जैतपुर, चरखारी, ओरछा, झाँसी, टीकमगढ़, कुंडेश्वर, दतिया, एरच, कालपी, ललितपुर, चन्दोरी, बानपुर, गढ़कुंडार, ग्वालियर, भिण्ड, मुरैना, शिवपुरी, रायसेन, जबलपुर, सागर, दमोह, गढ़ा मंडला, आदि क्षेत्रों का मैंने इतिहास से सम्बन्धित जानकारी लेने के लिये भ्रमण किया। इनमें ऐतिहासिक महत्व के दुर्ग, आवासीय स्थल, धार्मिक स्थल, जलाशय, विभिन्न प्रकार की मूर्तियां दर्शनार्थ उपलब्ध हुई तथा अनेक धार्मिक उत्सव, तीज त्योहार और सांस्कृतिक परम्परायें देखने को भी मिली। उपलब्ध स्थलों में अधिकांश स्थल 11वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक के थे, जिनके निर्माण में मिश्रित वास्तुशिल्प का सहारा लिया गया।

2.ऐतिहासिक स्थलों के संदर्भ में साक्ष्यों की खोज :-

बुन्देलखण्ड का प्रत्येक ऐतिहासिक स्थल किसी न किसी ऐतिहासिक घटना से जुड़ा हुआ है तथा एक स्थल की सांस्कृतिक और सामाजिक परम्परायें दूसरे स्थल की परम्पराओं से मेल नहीं खाती। इसलिये उनके ऐतिहासिक साक्ष्य को खोजने के लिये मैंने विभिन्न पुस्तकालयों का सहारा लिया, जहाँ अनेक पुस्तकें अध्ययन करने के लिये उपलब्ध हुई। इसके अतिरिक्त राजकीय संग्रहालय झाँसी और खजुराहो में अनेक प्रकार की ऐतिहासिक सामग्री देखने को मिली। एक विशिष्ट प्रश्न तालिका बनाकर

कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न इस्लाम धर्म को लक्ष्य बनाकर यहां के हिन्दू और मुसलमान निवासियों से पूछे गये, जिनके महत्वपूर्ण उत्तर मुझे श्री एहसान कुरैशी "आवारा बानवी", श्री सैय्यद मगरबी, आयशा बेगम, श्री गणेश प्रसाद पाण्डेय, श्रीमती शिवपती पाण्डेय, श्रीमती सुशीला दुबे, एम0एस0किदवई, राधाकृष्ण बुन्देली, डॉ0 साबिर नियाज़ी, श्रीमती शमीम बानो, श्री दीपक दुबे, आशिफ अली, कमरुल हसन, डॉ0 महेन्द्र अवस्थी, श्रीमती अनीषा बेगम, गिरिजा अवस्थी, श्री सत्यनारायण द्विवेदी, मुस्ताक हुसैन, डॉ0 वीरेन्द्र शर्मा, आदि से सम्पर्क करने के पश्चात इस्लाम धर्म के संदर्भ में पूर्ण जानकारी उपलब्ध हुई।

प्रश्न तालिका शोध प्रबन्ध के साथ संलग्न है। इन व्यक्तियों से सम्पर्क करने के पश्चात मुझे इस्लाम धर्म और उससे जुड़ी हुई परम्पराओं का विस्तृत ज्ञान उपलब्ध हुआ तथा यह जानकारी मिली कि बुन्देलखण्ड में इस्लाम का प्रभाव यहां के मूल निवासियों पर व्यापक रूप से पड़ा, जिसे यहां उपलब्ध मस्जि़द, ईदगाह, दरगाह, इमामबाड़ों और मक़बरों के अतिरिक्त आवासीय स्थलों के रूप में देखा जा सकता है। यहां के हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के तीज-त्योहारों में भाग लेते है।

बुन्देलखण्ड में उपलब्ध ऐतिहासिक साक्ष्यों की अन्य स्थलों से तुलना :

मानव सभ्यता का इतिहास अति प्राचीन है। इसके ऐतिहासिक साक्ष्य सम्पूर्ण विश्व में उपलब्ध होते हैं। इसी प्रकार भारत जैसे महान देश में कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और पश्चिमी बंगाल से लेकर राजस्थान और महाराष्ट्र तक हजारों की संख्या में ऐतिहासिक स्थल उपलब्ध होते हैं। हर ऐतिहासिक स्थल का अपना महत्व होता है, उसका अपना इतिहास होता है, इसकी वास्तुशिल्प विधा में भी पृथकता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है, किन्तु इसमें कुछ समानता भी होती है।

बुन्देलखण्ड में उपलब्ध ऐतिहासिक स्थलों की तुलना, यदि अन्य क्षेत्रों से की जाये, तो इनमें स्पष्ट अन्तर दिखलायी देता है। यहां के दुर्ग, आवासीय महल, जलाशय, धर्म स्थल और मूर्ति शिल्प के उत्कृष्ट उदाहरण अन्य क्षेत्रों की तुलना में बहुत अधिक श्रेष्ठ है। इसमें कालिंजर, खजुराहो, देवगढ़, ग्वालियर और ओरछा विश्व की ऐतिहासिक धरोहरों में शामिल है और वे दुनिया भर के पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करती है। इसी प्रकार वेश-भूषा, धर्म आचरण, परम्पराओं, साहित्य और कला के क्षेत्र में भी बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक साक्ष्य अत्यन्त श्रेष्ठ और प्राचीन है।

बुन्देलखण्ड का वास्तविक मूल्यांकन :-

निश्चित ही बुन्देलखण्ड की तपोभूमि महान है। उत्तर में यमुना नदी से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक, पश्चिम में चम्बल नदी से पूर्व में टौंस नदी तक फैले इस विस्तृत क्षेत्र का एक महान इतिहास है। पाषाण युग से लेकर कृषि युग तक, कृषि युग से लेकर पौराणिक युग तक, पौराणिक युग से लेकर मौर्य युग तक, मौर्य युग से लेकर गुप्त युग तक, गुप्त युग से लेकर चन्देल युग तक, चन्देल युग से

लेकर सल्तनत युग और मुगल युग तक इसका एक विस्तृत इतिहास है। इस क्षेत्र में अनेक मनीषी, विद्वान और महापुरुष उत्पन्न किये है और अपनी पावन भूमि में अनेक महापुरुषों को शरण दी है। हिंसक प्रवृत्ति का शासक और आक्रमणकारी महमूद गज़नवी भी यहां से अपने हृदय को परिवर्तित करके गया। सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक ने यहां की धर्म और संस्कृति को आघात पहुंचाया, उसका बदला यहां के वीरों ने लिया। यहां के वीर रणबांकुरे किसी भी स्थिति में दासता के बन्धनों को स्वीकार करने वाले नहीं थे, इसलिये वीर सिंह जू देव, चम्पतराय और छत्रसाल बराबर दासता से अपने आपको मुक्त रखने के लिये संघर्ष करते रहे। जब इस्लाम ने सूफी सन्तों के माध्यम से मानवतावादी सिद्धान्तों के आधार पर यहां कदम रखा तो हमने उसका स्वागत किया और मुसलमानों के साथ प्रेम और सद्भावना के सम्बन्ध स्थापित किये, इसलिये मूल्यांकन की दृष्टि से बुन्देलखण्ड एक महान क्षेत्र है। इसी दृष्टि को ध्यान में रखते हुये यह शोध प्रबन्ध भी बुन्देलखण्ड की महिमा को उजागर करने वाला शोध प्रबन्ध है।

बुन्देलखण्ड की गरिमामयी महिमा के वर्णन का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है-

जा बुन्देलन की धरती, बुन्देलखण्ड कहावे।

जा के कीरत को झण्डा, सारे जग फहरावे।।

जा में जन्मे वीर बुन्देला, सूर वीर भट मानी।

नगर ओरछा धन्य हती जा, बुन्देली रजधानी।।

जमुना, चम्बल सिन्ध, नर्मदा जा पे नीर उलीचे।

पुष्पा, सोन केन बेतवा, जा भारी खों सींचे।।

माथे ऊँचों भयों देश को, ऐसो है जो पानी।

नगर ओरछा धन्य हती जा, बुन्देली रजधानी।।

x x x x x x

छत्रसाल से रन जोधा ने, मुगलन खों ललकारो।

छक्के छूट गये दुश्मन के, कर दओ पन्ना ढारों।।

भयो वीर सिंह सों न्यारी राजा, हरदौल लला बलिदानी।

नगर ओरछा धन्य हती जा, बुन्देली रजधानी।।

शोध के परिणाम :

यह शोध प्रबन्ध दूसरों के लिये कैसा होगा और इसको पढ़ने के पश्चात् उनके मस्तिष्क में

क्या प्रतिक्रिया होगी, यह तो भविष्य ही बतलायेगा, किन्तु मेरा आत्मविश्वास कहता है, कि यह शोध प्रबन्ध मेरे अथक परिश्रम का परिणाम है और इससे मुझे पूर्ण संतुष्टि है। जो व्यक्ति इतिहास के प्रति अभिरुचि रखता होगा और जिसके हृदय में यहां के इतिहास को जानने की जिज्ञासा होगी, वह इस शोध प्रबन्ध को पढ़कर इसका सही मूल्यांकन कर सकेगा। इस शोध प्रबन्ध से निम्न नवीन परिणाम उपलब्ध हुये हैं-

1. बुन्देलखण्ड का वह इतिहास, जिसका सम्बन्ध 11वीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी तक है, के संदर्भ में नवीन ऐतिहासिक साक्ष्यों की उपलब्धि, जिनका विस्तृत विवरण शोध प्रबन्ध में है।
2. प्राचीनकाल से लेकर अब तक अस्तित्व रखने वाले धर्म एवं सम्प्रदाओं के संदर्भ में नवीन उपलब्धि।
3. इस्लाम धर्म के यथार्थ, उससे जुड़ी हुई परम्पराओं का यथार्थ और उसकी उपयोगिता के संदर्भ में नवीन दृष्टिकोण।
4. इस्लाम धर्म के पश्चात यहां के धर्म, लोक-कला का परिवर्तित स्वरूप।
5. बुन्देलखण्ड में रहने वाले मुसलमानों की आर्थिक स्थिति और उनके उद्योगों के संदर्भ में नवीन उपलब्धि।
6. 11वीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी तक के ऐतिहासिक स्थलों का महत्वपूर्ण विवरण और उन्हें पर्यटन स्थल के रूप में विकसित करने के लिये महत्वपूर्ण सुझाव।
7. इतिहास से स्नेह करने वाले सभी व्यक्तियों एवं इतिहासकारों का ध्यान सांस्कृतिक विरासत की ओर आकर्षित करने के लिये किये गये विशेष प्रयास।
8. भविष्य में शोध करने वाले छात्रों के लिये शोध छात्रा के द्वारा दिये गये दिशा-निर्देश, ताकि मेधावी छात्र भविष्य में इतिहास के टूटे हुये शोध विषयों में शोध के लिये आगे आये।

शोध प्रबन्ध की उपयोगिता :-

किसी भी शोध कार्य को करने के लिये शोध छात्र अपना धन और समय व्यय करता है, क्योंकि वह समझता है कि उसके द्वारा किया जाने वाला कार्य किसी भी स्थिति में निरर्थक नहीं हो सकता। यदि शोध का विषय शोध के लिये अछूता न होता, तो शोध छात्रा को यह विषय बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय से शोध के लिये स्वीकृत न किया जाता। विषय की स्वीकृति 11 प्रमुख विद्वानों की समिति द्वारा की जाती है, जहां विषय के महत्व पर सम्मानित विद्वानगण सविस्तार चर्चा करते हैं। मुझे प्रसन्नता है कि निर्णायक समिति के विद्वानों ने इस विषय पर अपनी सहमति प्रदान की और मुझे शोध करने का अवसर प्रदान किया।

मेरे शोध निर्देशक प्रो० बी०एन०राय, पं० जवाहर लाल नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय के इतिहास विभाग के विभागाध्यक्ष रहे। 30 वर्ष तक उन्होंने विद्यालय की सेवा की तथा इतिहास को उजागर करने के लिये अनेक प्रयास किये। उन्होंने बांदा तथा ऐतिहासिक स्थल कालिंजर में भी अनेक ऐतिहासिक सेमिनारों का आयोजन किया, जिनमें इतिहास मूर्धन्य विद्वान आमंत्रित किये गये, जिनकी वजह से बुन्देलखण्ड के अनेक ऐतिहासिक क्षेत्र आज उजागर हुये और उनका विकास पर्यटन स्थल के रूप में हुआ। इसके अतिरिक्त उन्होंने सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल कालिंजर के ऊपर "कालिंजर ए प्रोफाइल" का भी प्रकाशन किया। उन्होंने मेरे विषय से प्रभावित होकर मुझे इस पर शोध करने की सलाह दी और स्वतः शोध प्रबन्ध का शोध निर्देशक बनना स्वीकार किया। इससे भी शोध प्रबन्ध की उपयोगिता झलकती है।

अथक परिश्रम के पश्चात, जो प्रतिफल मिलता है, उससे आत्मीय सुख की अनुभूति होती है। महिला होकर घर-गृहस्थी के कार्य को तिलांजलि देकर लगातार मैं तीन वर्षों तक शोध कार्य को पूरा करने के लिये बुन्देलखण्ड के कोने-कोने का भ्रमण करती रही। यहां के पुरावशेषों को मैंने देखा, उनसे जुडी वास्तुशिल्प का विस्तृत अध्ययन किया, अनेक पुस्तकालयों और संग्रहालयों में जाकर उपयोगी पुस्तकों का संकलन किया, उनका अध्ययन किया, विद्वान व्यक्तियों से सम्पर्क किया, उसके पश्चात इस महत्वपूर्ण शोध प्रबन्ध का लेखन कार्य प्रारम्भ किया और उसे पूर्ण किया। मैं अपने शोध प्रबन्ध को सर्वाधिक उपयोगी समझती हूँ। विषय सामग्री और ऐतिहासिक साक्ष्य, जिसका समावेश मैंने शोध प्रबन्ध में किया है, वे साक्ष्य अन्य ऐतिहासिक शोध प्रबन्धों में बहुत कठिनाई से उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त कुछ कठिनाई मुझे इसलिये हुयी क्योकि मै एक हिन्दू ब्राह्मण महिला होकर एक ऐसे धर्म पर शोध कार्य कर रही हूँ, जिसका अनुपालन मेरे और मेरे परिवार के सदस्य नहीं करते। इस्लाम धर्म विदेशी आक्रमणकारियों के माध्यम से यहां लाया गया था तथा इसकी संस्कृति यहां की मूल संस्कृति से भिन्न थी। मैंने पवित्र कुर्आन शरीफ का श्रद्धा के साथ अध्ययन किया और इस्लाम धर्म के सिद्धान्तो के प्रति व्यक्तिगत श्रृद्धा जुड़ी। विस्तृत जानकारी के लिये मैने हदीस ग्रन्थों का भी अध्ययन किया। मुसलमानों के सामाजिक परिवेश को भी सूक्ष्मता से देखा, उसके पश्चात यह शोध प्रबन्ध पूरा किया।

बुन्देलखण्ड में निवास करने वाली सामान्य जनता अशिक्षित एवं परम्परागत धर्म का अनुपालन करने वाली है। यहां व्यक्ति लम्बे समय से हिन्दू और इस्लाम धर्म का अनुपालन कर रहे हैं। मेरा यह शोध प्रबन्ध इस्लाम धर्म से जुड़े हुये व्यक्तियों के लिये बहुत ही उपयोगी है, क्योंकि पवित्र कुर्आन शरीफ और हदीस ग्रन्थों में इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों का सविस्तार वर्णन किया गया है, उनका समावेश इस शोध प्रबन्ध में है। धर्म के संदर्भ में जहां गलत भ्रांतियां उत्पन्न हुयी, उन्हें भी एक विश्लेषण के जरिये समझाने का प्रयत्न किया गया है।

यह शोध प्रबन्ध बुन्देलखण्ड में निवास करने वाले हिन्दू धर्मावलम्बियों के लिये भी बहुत उपयोगी है। अभी तक हिन्दू सम्प्रदाय के लोग इस्लाम धर्म और हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों को अलग-अलग नज़रिये से देखते थे, किन्तु सत्य यह है कि ईश्वर उपासना, प्रकृति उपासना और समग्र मानवता के सिद्धान्त दोनों धर्मो में एक है, अन्तर केवल उपासना पद्धति, मूर्ति-पूजा, जाति-व्यवस्था और मांसाहार तथा शाकाहार का है। इस यथार्थ को कबीरपन्थ, गुरुनानक पन्थ और प्रणामी सम्प्रदाय के लोगों ने समझा था, इसलिये दोनों सम्प्रदाओं ने हिन्दू और मुसलमानो के मध्य भाईचारा और एकता स्थापित करने के लिये समय-समय पर विशेष प्रयत्न किये। यहां कटुता धर्म चिन्ह, धर्म स्थल, और धार्मिक कट्टरता बनाये रखने की है, जो दोनों सम्प्रदाओं के बीच मेल-मिलाप स्थापित करने में सबसे बड़ी बाधा है।

यह शोध प्रबन्ध इतिहासकारों, पुरातत्वविदों, कलाविदों तथा बुन्देलखण्ड के बाहर रहने वाले व्यक्तियों के लिये बहुत ही उपयोगी है। यह शोध प्रबन्ध उन्हें बुन्देलखण्ड के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्रदान करता है। यह शोध प्रबन्ध बुन्देलखण्ड के भौगोलिक सीमांकन, उससे जुड़े हुये उद्योग, पर्यावरण, जनसंख्या तथा खनिज सम्पदा के संदर्भ में जानकारी देने वाला है। इसके अतिरिक्त इस शोध प्रबन्ध में पूर्व मध्ययुग और मध्ययुग से जुड़ी समस्त ऐतिहासिक घटनाओं का भी वर्णन है। यह शोध प्रबन्ध बुन्देलखण्ड के प्रति लोगों के हृदयों में आकर्षण पैदा करने वाला है।

यह शोध प्रबन्ध बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की एक अमूल्य निधि है। यदि यह विश्वविद्यालय के द्वारा अथवा मेरे प्रयासों से अथवा यू०जी०सी० के सहयोग से अथवा प्रशासन से प्रकाशित हो गया तो यह शोध प्रबन्ध बुन्देलखण्ड के गरिमामयी इतिहास को चतुर्दिक पुष्प की सुगन्ध की भांति बिखेरेगा तथा वे महान व्यक्ति, जिन्होंने अपने शौर्यपूर्ण कृत्यों से बुन्देलखण्ड के इतिहास को बनाया है, वे सदैव चिरजीवी बने रहेगें। कोई भी कृत्य जब तक प्रकाशित नहीं होता, उस समय तक उसकी उपयोगिता नगण्य होती है। जब वह प्रकाशित हो जाता है, तब उसकी उपयोगिता समझ में आने लगती है। यही स्थिति इस शोध प्रबन्ध की भी है।

आगामी शोध छात्रों के लिये शोध छात्रा की सलाह :-

बुन्देलखण्ड में और बुन्देलखण्ड के बाहर इतिहास के संदर्भ में, जो शोधकार्य हुये हैं, वे सबके सब परम्परागत प्रचलित शोध शैली में हुये हैं। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात जिस शोध शैली का विकास तद्युगीन विद्वान मैक्समूलर, काकबर्न, कनिंघम, बी०ए० स्मिथ आदि ने किया, उसी शैली को हमने अपने शोध का आधार बनाया। इस आधार के अन्तर्गत व्यक्ति पुरावशेषों, धर्मस्थल, मूर्ति सम्पदा, मुद्रा, अभिलेख, अस्त्र-शस्त्र और उपलब्ध ऐतिहासिक दस्तावेजों के आधार पर शोध कार्य करता है और इतिहास की संरचना करता है। सभी विश्वविद्यालयों ने शोध का यही मानक स्वीकार किया है।

शोध छात्रों को मेरी यह व्यक्तिगत सलाह है, कि इतिहास विषय में पुस्तकीय साक्ष्य को पूर्ण सत्य न मानकर उसे अर्द्धसत्य अथवा सत्य तक पहुंचने का केवल एक मार्ग माने तथा सत्य की खोज के लिये कोई ठोस वैज्ञानिक आधार ढूंढे, जिससे आप गंगा सागर से गंगोत्री जाने का मार्ग आसानी से ढूंढ लेगें। यहां के साहित्य में और प्राचीन पौराणिक ग्रन्थों में अतिशयोक्ति और कल्पना का सहारा लेकर तथ्यों को काफी तोड़ा-मरोड़ा गया है, जिनके कारण यथार्थ का बोध नहीं हो पाता और वास्तविकता का पता नहीं लग पाता। यह साहित्य आश्रयदाताओं के द्वारा कवियों और साहित्यकारों से लिखाया गया साहित्य है, जो कवियों ने अपने आश्रयदाताओं को खुश करने के लिये लिखा है। इसे ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता, बल्कि इसमें छिपे यथार्थ को खोजने की आवश्यकता है।

आगामी शोध छात्रों को मेरे द्वारा यह सलाह है, कि बुन्देलखण्ड के इतिहास से जुड़े अनेक ऐसे अछूते विषय हैं, जिन पर अभी तक कोई शोध कार्य सम्भव नहीं हुआ है। वे विषय निम्नलिखित हो सकते हैं-

1. बुन्देलखण्ड में ईसाई धर्म का प्रादुर्भाव एवं यहां की संस्कृति पर प्रभाव।
2. पुरा-पाषाण युग से लेकर 850 ई० तक की बुन्देलखण्ड की धर्म संस्कृति तथा समाज।
3. बुन्देलखण्ड के दुर्गों का प्रशासनिक एवं सैन्य महत्व।

बुन्देलखण्ड के दर्शनीय स्थल (11वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी तक)

बुन्देलखण्ड में निम्नलिखित दर्शनीय स्थल हैं-

क्रमांक	जनपद	स्थान	दर्शनीय स्थल का नाम
1.	झाँसी	एरच	जामा मस्ज़िद
	,,	झाँसी	रानी महल
	,,	,,	मेमोरियल सेमेटरी
	,,	,,	लक्ष्मी मन्दिर
	,,	बरुआ सागर	किला
2.	ललितपुर	कुचदों	कुरैयावीर मन्दिर
	,,	तालबेहट	किला
	,,	दुघई	बनबाबा की मज़ार
	,,	,,	बनिया की बारात

	,,	मदनपुर	पचमढ़िया
	,,	,,	बड़ी व छोटी कचेहरी
	,,	सिलोन खुर्द	धोबी का पीर
3.	जालौन	उरई	मस्ज़िद
	,,	कालपी	चौरासी खम्भा,
	,,	,,	दुर्ग के भग्नावशेष
	,,	,,	गुम्बदीय इमारत
	,,	कोंच	बाराखम्भा
	,,	जालौन	कब्रस्तान
4.	महोबा	कुलपहाड़	दुर्ग के भग्नावशेष
	,,	चरखारी	दुर्ग
	,,	महोबा	जामा मस्ज़िद
	,,	,,	परमार्दि महल
5.	बाँदा	अनसुइया	अभिलेख
	,,	कालिंजर	कालिंजर के दुर्ग और उसके अवशेष
	,,	गुलरामपुर	बिलहरिया मठ
	,,	बाँदा	जामा मस्ज़िद
	,,	भवानीपुर	बावली
6.	सागर	करौंदा	सतगढ़
	,,	खिमलासा	दुर्ग के अवशेष
	,,	गढ़पहरा	महल और किला के भग्नावशेष
	,,	गौड़झामर	किला
	,,	देवरी	किला

	,,	धमौनी	किला
	,,	,,	रानी महल
	,,	,,	गुम्बद और मस्ज़िद
	,,	राहतगढ़	किला व उसके अवशेष
7.	छतरपुर	धुबेला महल	छत्रसाल का मकबरा
	,,	मऊ सानियां	कमलापति का मकबरा
8.	टीकमगढ़	ओरछा	जहांगीर महल
	,,	,,	राजमहल
	,,	,,	लक्ष्मी मन्दिर
	,,	,,	छतरियां
	,,	,,	प्रवीणराय महल
	,,	,,	चर्तुभुज मन्दिर
	,,	गढ़कुड़ार	गढ़कुडार का लिका
9.	दमोह	जटाशंकर	किला
	,,	पटियागढ़	दुर्ग और अभिलेख
	,,	मढ़ियाडोह	किला
	,,	राजनगर	किला
	,,	सिंगोरगढ़	किला
	,,	हटा	रंगमहल
10.	पन्ना	पन्ना	प्राणनाथ मन्दिर
	,,	,,	जुगलकिशोर मन्दिर
	,,	,,	महलों के अवशेष
	,,	अजयगढ़	किला और उसके अवशेष
11.	दतिया	दतिया	वीर सिंह जू देव महल
12.	शिवपुरी	तेरही	तोरणद्वार

13.	गुना	चन्देरी	किला
	,,	,,	बड़ा मदरसा
	,,	,,	बादल महल द्वार
	,,	,,	जामा मस्जिद
	,,	,,	कोसक महल
	,,	,,	शहजादा का रोज़ा
	,,	,,	हिजामुद्दीन परिवार का मकबरा
14.	ग्वालियर	,,	ग्वालियर का दुर्ग
	,,	,,	राजा अमान सिंह का महल
	,,	,,	मृगनैनी महल
	,,	,,	गुलाम गैस खां का मकबरा
	,,	,,	तानसेन का मकबरा
	,,	,,	जय विलास पैलेस

उपरोक्त स्थल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं और पर्यटक इन्हें देखकर बुन्देलखण्ड के गौरवमयी इतिहास की परिकल्पना कर सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. के० सी० मिश्र- चन्देल और उनका राजत्वकाल, सं० 1974, प्रका० बनारस, पृ० 211.
2. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव - मुगलकालीन भारत सं० 1981 प्रका० आगरा पृ० 532.
3. वही, पृ० 533.
4. आर० नाथ- दि आर्ट ऑफ चन्देरी पृ० 28-32.
5. पार्सी ब्राउन- इण्डियन आर्किटेक्चर (इस्लामिक पीरियड), पृ० 120
6. कनिंघम- आर्कुलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट ऑफ इण्डिया भाग-21, पृ० 132-33.
7. आर० नार्थ, दि आर्ट ऑफ चन्देरी, पृ० 15, 19
8. (अ) कनिंघम- आर्कुलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट ऑफ इण्डिया, भाग-7, पृ० 35.
   (ब) ब्लाचामैनून, आइने अकबरी, पृ० 469.
9. डिस्ट्रिक गजेटियर झांसी 1965, पृ० 340.

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मौलिक ग्रन्थ :-

अमीर खुसरो	■	खजाइन-उल-फुतुह (रिजवी, खिलजी कालीन भारत)
	■	एजाज-ए-खुसरवी (हस्तलिपि)
	■	मिफता-उल-फुतुह (रिजवी, खिलजी कालीन भारत, भाग-1)
	■	तुगलक-नामा (रिजवी, तुगलक कालीन भारत)
	■	किरान-उस-सादेन (रिजवी, खिलजी कालीन भारत)
अमीर हसन	■	फवायद-उल-फौद (दिल्ली 1856)
अमीर खुर्द	■	सियार-उल-औलिया (दिल्ली 1032 हिजरी)
अल-कशकन्दी	■	सुब्ह-उल-अशा (अनु० आटो स्पाईस, भाग-1)
अल मसूदी	■	भुरजुल जुवाब (अनु० इलियट एण्ड डाउसन भागन-1)
अल बिलादूरी	■	फुतुह-उल-बुलदान (अनु०इलियट एण्ड डाउसन भाग-1)
आईन-उल-करीम	■	इन्शा-ए-महरू (इ०वि० हस्तलिपि)
अब्बास खाँ सरवानी	■	तारीख-ए-शेरशाह (अनु०बी०पी० अम्बष्ट, पटना 1974)
ए०एच० निजामी	■	मुहम्मदाबाद कालपी एण्ड इट्स हिस्टारिकल बैकग्राउण्ड, आई०सी० 1953
अहमद यादगार	■	तरीख-ए-शाही या तारीख-ए-सलातीन अफगना (कलकत्ता) 1939) निगम, सूरवंश का इतिहास (दिल्ली 1973)
अब्दुल्लाह	■	तारीख-ए-दाउदी (अलीगढ़)
चन्दबरदायी	■	पृथ्वीराज रासो
फखु-ए-मद्बिर	■	तारीख-एफखरुद्दीन मुबारकशाही (सम्पादन डेनिसन व रौस, लन्दन 1927)
फतेह मुहम्मद खाँ साहब जालन्धरी (तर्जुमाकार)	■	कुर्आन मजीद प्रका० महमूद एण्ड कम्पनी बम्बई-59
फिरोजशाह तुगलक	■	फुतुहात-ए-फिरोजशाही, सं० 1943, प्रकाशन-अलीगढ़
गुलाम हुसैन सलीम	■	रियाज उस सलातीन (अनु० अब्दुल सलाम, दिल्ली 1975)
एच०के० शेरवानी	■	महमूद गाँवा (इलाहाबाद 1942)
के०ए० निजामी	■	सरूर-उस-सुदूर, पी०आई०एच०सी 1950
ख्वाजा अब्दुल्ला मलिक इमामी	■	फुतुह-उस-सलातीन भाग-1, अनु० आगा मेंहदी हसन (दिल्ली 1936)
	■	फुतुह-उस-सलातीन भाग-2, अनु० आगा मेंहदी हसन (दिल्ली 1963)
	■	फतुह-उस-सलातीन भाग-3 अनु० आगरा मेंहदी हसन (दिल्ली)

मिनहाज-उल-सिराज जुरजानी	■	तबकात-ए-नासीरी (बिबिबिथिका इण्डिका, कलकत्ता 1964) अनु मेजर एच0आर0 रेवती (लन्दन 1881)
	■	तबकात-ए-नासीरी (बिबिबिथिका इण्डिका, कलकत्ता 1864) अनु0 मेजर एच0आर0 रेवर्ती (लन्दन 1982)
मुहम्मद हबीब	■	खजाईन-उल-फुतुह (अनु0कम्पेन्स आफ अलाउद्दीन खिलजी, (बम्बई 1933 एवं जे0आई0एच0 1929)
मलिक मुहम्मद जायसी	■	पद्यमावत (साहित्य सदन, चिरगाँव, झांसी)
मुल्ला दाऊद	■	चन्दायन (स0डा0 परमेश्वरी लाल गुप्त, प्रकाशक हिन्दी ग्रन्थ (रत्नाकर 1964)
मुहम्मद सलीम	■	जमाता-खाना आफ शेख निजामुद्दीन औलिया आफ दिल्ली, प्रो0 पाकिस्तान हिस्ट्री कान्फ्रेन्स 1953
मुहम्मद अजीज अहमद	■	सुल्तान ग्यासुद्दीन बलवन, जे0आई0एच0 1936
निजाम-उल-मुल्क- तूसी	■	सियासतनामा (अनु0 सेचेकर, पेरिस 1891)
निजामुद्दीन अहमद	■	तबकात-ए-अकबरी (बिबलोथिका इण्डिका) 3 कलकत्ता
नारायण दास	■	छिताई वार्ता (काशी वि0 सम्वत् 2015)
शम्स-ए-सिराज अफीक	■	तारीख-ए- फिरोजशाही (बिंब इण्डिका कलकत्ता 1890)
एस0वी0पी0 निगम	■	सूर्य वंश का इतिहास (दिल्ली 1973)
तुलसीदास (सन्त)	■	रामचरित मानस
त्रिमुल भट्ट	■	ब्रिहोराजतरंगणी
वेदव्यास	■	महाभारत
विद्यापति	■	कीर्तिलता
विजय गुप्त	■	मानस मंगल (सं0 बसन्त कुमार भट्टाचार्य, प्रकाशक बानी निकेतन, कलकत्ता)
याहिया सरहिन्दी	■	तारीख-ए-मुबारकशाही (बिब इण्डिका कलकत्ता) 1931
जैन खाँ	■	तबकात-ए-बाबरी (अनु मुहम्मद हबीब पालिटकल थ्योरी आफ दिल्ली सल्तनत
जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर	■	बाबरनामा (अनु0 श्रीमती ब्रेवरिज, दो जिल्द, लूजाक एण्ड कम्पनी (लन्दन 1922)
जियाउद्दीन बरनी	■	फतवा-ए- जहाँदारी (अनु0 मुहम्मद हबब पॉलिटिकल थ्योरी आफ दिल्ली सल्तनत)

सहायक ग्रन्थः-

अब्दुल हलीम ■ हिस्ट्री आफ लोदी सुल्तान्स आफ देहली एण्ड आगरा (दिल्ली 1974)

अब्दुल करीम ■ सोशल हिस्ट्री आफ मुस्लिम इन बंगाल (ढाका 1959)

ए0बी0एम0 हबीब उल्लाह ■ फाउन्डेशन आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया (लाहौर 1945)

ए0बी0 पाण्डेय ■ फर्स्ट अफगान इम्पायर (इलाहाबाद)

एडवर्ड थामस ■ क्रानिकल्स आफ द पठान किंग्स ऑफ देहली (लन्दन1871)

■ रीएडजस्टमेन्ट आफ द क्वाईनिंग इन द रेन आफ मु0 बिन तुगलक, जे0ए0एस0वी0, 1856, खण्ड-34 पृ0 26

आगा मेंहदी हसन ■ राईल एण्ड फाल मुहम्मद बिन तुगलक (दिल्ली 1972)

■ द तुगलक डाइनेस्टी (कलकत्ता 1963)

■ द सोशल लाइफ एण्ड इन्स्टीयूशन विद स्पेशल रिफरेन्स टू हिन्दूस इन द डेज आफ मु0 बिन तुगलक (प्रो0 आई0 एच0सी0 1947 पृ0 297-305)

अहमद यादगार ■ तारीख-ए-शाही, सं0 1939 प्रका0-कलकत्ता

आईन-उल-मुल्क ■ इन्शा-ए-महरू (इ0वि0वि0 हस्तलिपि)(रिजवी तुगलक कालीन भारत भाग-2

ए0जे0 कैसर ■ दि रोल आफ ब्रोकर्स इन इण्डिया, आई0एच0आर0 1974 पृ0 220-246

ए0के0 भट्टाचार्य ■ हिन्दू एलीमेन्टस इन अरली मुस्लिम क्वाईनेज इन इण्डिया, जे0एन0एस0आई0, 16, 1, 1953, पृ0 112-121

ए0के0 मित्तल ■ भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, सं0 1994 प्रकाशन- आगरा

अमीर खुसरो ■ देवलरानी (अलीगढ़ 1917)(रिजवी खिजली कालीन भारत)

ए0एम0 शास्त्री ■ इण्डिया एज सीन इन द कुठानी-मठ ऑफ दामोदर गुप्त सं0 1975

अनिल भट्टाचार्य ■ किंगशिप एण्ड नोविलिटी इन द 14 वीं सेन्चुरी (आई0एच0क्यू0 1936, भाग-12 पृ0 413)

अरविन्द सिन्हा ■ मध्यकालीन भारत भाग-2, सम्पादक- हरिश्चन्द्र वर्मा सं0 1998, प्रकाशन- दिल्ली

ए0एस0 अल्तेकर ■ पोजीशन आफ वूमैन इन हिन्दू सिवलाइजेशन, सं0-1938

आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ■ दिल्ली सल्तनत, सं0 1989, प्रकाशन आगरा

■ मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, सं0 1973, प्रकाशन- आगरा

■ मुगलकालीन भारत, संस्करण- 1985, प्रकाशन- आगरा

अशोक कुमार श्रीवास्तव	■	इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाई द अरब ट्रैवलर्स (गोरखपुर 1967)
असित कुमार सेन	■	आन स्लेवरी इन मेडिवल इण्डिया, प्रो0ई0एच0सी0 1956 पृ0 202- 205
आटो सपाईज	■	इन अरब एकाउन्ड आफ फोर्टीन्थ सेन्चुरी (अनु0 सुबह-उल-आशा, ले0 अलकदल कशन्दी, अलीगढ़)
अयोध्या प्रसाद पाण्डेय	■	चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, सं0 1968, प्रका0प्रयाग
अजीज अहमद	■	रेवेन्यू आर्गेनाईजेशन आफ देहली (1206-1290) जनरल आफ यू0पी0 हिस्टारिकल सोसायटी 1939 पृ0 15-21
	■	आगरा बिफोर द मुगल्स (जे0यू0पी0एच0एस0 1942 पृ0 80-87)
बख्शीश सिंह निज्जर	■	एजूकेशन अण्डर द सुलतान्स, प्रो0हि0कान0 1968 पृ0 137-144
बसंत	■	संगीत विशारद, सं0 1988, प्रकाशन-हाथरस
बी0एम0 बरुआ	■	अशोक एण्ड हिज इन्स्ट्रक्शन्स, कलकत्ता, सं0 1934 भाग-1
बी0एन0एस0यादव	■	सोसायटी एण्ड कल्चर ऑफ नार्दन इण्डिया इन 12 सेन्चुरी (इलाहाबाद 1973)
बी0पी0 मजूमदार	■	सोशयों इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया 11-12 सेन्चुरी (कलकत्ता 1907)
	■	न्यू फार्मस् आफ स्पेशलाईजेशन इन इण्डट्रीज ऑफ इस्टर्न इण्डिया इन द टर्की- अफगान पीरियड प्रो0एच0आई0सी0 1969, पृ0 226- 232
	■	बेसिक इन्डस्ट्रीट इन नार्दन इण्डिया आन द ईवका टर्की-अफगान कानक्वेस्ट, प्रो0 आई0एच0सी0 1947, पृ0 32-35
बिशप जान ए0 सुभान	■	सूफीज्य-इट्स सेन्ट्स एण्ड शाईन्स (लखनऊ 1907)
दामोदर पण्डित	■	संगीत दर्पण सं0 1625
दौरत-ए-बारबोसा	■	ए बुक आफ दौरत-ए-बारबोसा, दो खण्ड हकल्यूट सोसायटी (लन्दन 1918-1921)
दीवान प्रतिपाल सिंह	■	बुन्देलखण्ड का इतिहास, वि0सं0 1982
डी0डी0 कौसम्बी	■	एन इन्ट्रोड्क्शन टू द स्टडी ऑफ इण्डिया हिस्ट्री
धरम भानु	■	प्रमोशन आफ म्यूजिक बाई टर्की अफगान रूलर्स आफ इण्डिया, इ0क0 खण्ड-29, 1955, पृ0 9-31
धरमपाल	■	अलाउद्दीन प्राईस कन्ट्रोल सिस्टम, ई0क0 1944पृ0 409-418
डी0 पाण्डेय	■	मेडिवल इण्डियन सेलेक्शन, देयर स्टेट एण्ड पॉलटिकल

इम्पॉर्टेन्स 1206-1388 क्यू० आर०एच० खण्ड 16, 1976-77,पृ० 42-46

ई०सी० सचाऊ ■ बलबरूनोज इण्यिा, दो खण्ड (लन्दन 1910)

इलियट एडवर्ड थामस ■ हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्स हिस्टोरियन्स, भाग 8 (लन्दन 1866, 77)

गौरीशंकर द्विवेदी ■ बुन्देलखण्ड वैभव प्रथम भाग

जी०डी० गुलाटी ■ न्यू मुसलमान्स डयूरिंग 13 एण्ड 14 सेन्चुरी प्रो० ई०एच०सी० 1978, पृ० 402-406

गोरेलाल तिवारी ■ बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, वि०सं०- 1990 प्रकाशन- काशी नागरी प्रचारिणी सभा

हमीदा खातून नकवी ■ इण्डियन एण्ड यूरोपियन टाउन (सन् 1500) ए कम्परेटिव स्टडी, प्रो०ई०एस०एच०सी० 1970, सन् पृ० 362-370

■ एग्रीकल्चरल इन्डस्ट्रियल एण्ड अर्बन डायनिज्म अन्डर द सुल्तान्स ऑफ देहली (1206-1555) (दिल्ली 1987)

■ प्रोग्रेस आफ अर्बनाईजेशन इन यूनाइटेड प्राविन्सेस (1500-1800) जे० ई० एस०एच० ओ० भाग-10, लाख 1, लाख 1,पृ० 81-101

■ अर्बन सेन्टर्स एण्ड इन्डस्ट्रीज इन अपन इण्डिया (1556-1803) दिल्ली 1968)

■ आर्बनाइजेशन एण्ड एण्ड अर्बन सेन्टर्स अन्डर द ग्रेट मुगल्स (शिमला 1978)

हरिश्चन्द्र वर्मा ■ मध्यकालीन भारत, सं० 1993, प्रकाशन-दिल्ली।

एच०के०शेरवानी ■ बहमनीज आफ द डकंन (हैदराबाद)

आई०जी०खान ■ मोड्य आफ टेक्नालाजी ट्रान्सफर बिटवीन इण्डिया एण्ड सेन्ट्रल एशिया (1200-1650 आई०एच०सी० 1983

इब्नबतूता ■ द रेहला आफ इब्नबतूता (अनु० मेंहदी हसन) (बड़ौदा 1956)

ईश्वरी प्रसाद ■ ए हिस्टी आफ द करूनाह टर्कस इन इण्डिया (इलाहाबाद 1936)

ईश्वर टोपा ■ पालिटिक्स इन द मुगल टाईम (इलाहाबाद 1938)

आई०एच० कुरैशी ■ द एडमिनिस्ट्रेशन आफ द सल्तनत आफ देहली (लाहौर 1942)

■ द स्टेट डिमाण्ड फार एग्रीकल्चरल प्रोड्यूस अन्डर द सुल्तान्स ऑफ देहली, प्रो०आई०एच०सी० 1940, पृ० 244-50

- द सिस्टम ऑफ एसाईनमेन्ट अन्डर द सुल्तान ऑफ द देहली जे0आई0एच0 भाग-1, खण्ड-1, 1941, पृ0 63-74
- दि ओनरशिप आफ एग्रीकल्चरल लैण्ड डयूरिंग दि मुस्लिम रूल इन इण्डिया जे0आई0एच0भाग-21 1943,पृ0 225-226

इक्तदार हुसैन सिद्दीकी

- सम आस्पेक्टस आफ अफगान डिस्पारिस्म इन इण्डिया (अलीगढ़ 1969)
- ए फोरटीन सेन्चुरी अन्डर एकाउन्ट ऑफ इण्डिया अन्डर सुल्तान मु0 बिन तुगलक (अलीगढ़)
- इक्ता सिस्टम अन्डर दि लोदीज पी0आई0एच0सी01961,पृ0 145-149।
- राईज आफ द अफगान नोबिलिटी अन्डर लोदी सुल्तान्स (1451-1526)
- हिस्ट्री आफ शेरशाह सूरी (अलीगढ़ 1971)
- कम्पोजीशन आफ दि नोबिलिटी अन्डर द लोदी सुल्तान्स, एम0आई0एम0, भाग-4 1977।
- द नोबिलिटी अन्डर दि खिल्जी सुल्तान्स, आई0सी0 1965, पृ0 52-80।
- वाटर वर्क्स एण्ड इरीगेशन सिस्टम इन इण्डिया डयूरिंग दि प्रि-मुगल पीरियड़ हिस्ट्री कांग्रेस 1982।

इफिखार अहमद खाँ

- द इम्पोर्ट आफ परशियन हार्सेस इन इण्डिया (13-17 सेन्चुरी) आई0एच0सी0 1984।
- कामर्स इन हार्सस बिटवीन सेन्ट्रल इण्डिया एण्ड डयूरिंग मेडिवल टाइम्स, आई0एच0सी0 1982।
- ट्रेड इन मेडिवल प्री0 16 सेन्चुरी गुजरात आई0एच0सी0 1980, पृ0 270-281।

इरफान हबीब

- इकोनामिक हिस्ट्री आफ देहली सल्तनत एन एस इन इन्टर प्रेटेशन आई0एच0सी0 1979।
- चेन्जेस ऑन टेक्नाजाली इन मेडिवल इण्डिया आई0एच0सी0 1979।
- दि प्राइस रेग्यूलेशन ऑफ अलाउद्दीन खिजली इन डिफेन्स ऑफ जियाउद्दीन बरनी आई0एच0सी0 1989।
- दि फारमेशन आफ रूलिंग क्लास ड्यूरिंग द सल्तनत (13 सेन्चुरी) आई0एच0सी01977।

ईश्वर प्रकाश

- जनरल अपीयरेन्स एण्ड ले आउट ऑफ मेडिवल इण्डियन

टाउन्स, आई0एच0सी0 1961।

जे0एम0बनर्जी ■ हिस्ट्री ऑफ फिरोज तुगलक (देहली 1967)

जे0 ब्रिग्स ■ हिस्ट्री ऑफ दि राईज ऑफ मोहम्डन पावर इन इण्डिया भाग-4 (तारीख-ए-फरिश्ता का अनुवाद)

जे0एन0सरकार ■ हिस्ट्री ऑफ बंगाल भाग-2 (ढाका, 1948)

■ हिन्दू-मुस्लिम रिलेशनस इन बंगाल, देहली 1985

जोगेन्द्र नाथ चौधरी ■ कामर्स एण्ड इन्डस्ट्री इन प्री मुगल पीरियड, आई0एच0क्यू0 1948, पृ0 122-123।

के0ए0निजामी ■ सम आस्पेक्ट्स ऑफ रिलिजन एण्ड पलिटिक्स इन द 13 सेन्चुरी (देहली 1956)

■ सम आस्पेक्टस ऑफ रिलिजस ट्रेन्ड इन तुगलक पीरियड, जर्नल ऑफ पाकिस्तान हिस्टारिकल सोसायटी, 1953, पृ0 234-243।

■ सरूर उस सुदूर, पी0आई0एच0सी0 1950, पृ0 167-169

■ स्टेट एण्ड कल्चर इन मेडिवल इण्डिया (देहली 1985)

के0सी0केहरार ■ इकनामिक पालिसजा ऑफ अलाउददीन खिजली जर्नल ऑफ पाकिस्तान हिस्टारिकल सोसायटी, अगस्त 1963

के0डी0 बाजपेयी ■ ज्योग्राफिकल इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ऐन्श्यंट मेडिवल इण्डिया सं0 1967, प्रकाशन- बनारास

केशवचन्द्र मिश्रा ■ चन्देल और उनका राजत्वकाल, संस्करण- 1930

के0 के0 बसु ■ फिरोजशाह तुगलक (फ्राम-सिरत-ए-फिरोजशाही) जे0बी0ओ0 आर0 एस0 22, 1936, पृ0 96-107

■ एन एकाउन्ट आफ द फर्स्ट सैय्यद किंग आफ देहली ,जे0बी0ओ0 आर0एस0, 1928

के0पी0 साहू ■ सम आस्पेक्टस आफ नार्थ इण्डियन सोशल लाईफ (1000-1526) (कलकत्ता 1973)

■ ए शार्ट नोट आन नारायण दासछिताई वार्ता, एस0ए0सोर्स ऑफ इण्डियन सोशल हिस्ट्री जे0एच0आर0 (राँची जानवरी 1968) पृ0 44-47।

■ सम सालाइट आन द इन्करेजमेंट ऑफ नार्थ इण्डियन एजूकेशन एण्ड लरनिंग अन्डर द देहली।

■ सुल्तान्स (1000-1526) जे0एच0आर0 1966, पृ0 19-26

■ हिन्दू-मुस्लिम कान्टेक्ट ड्यूरिंग द टर्की अफगान परियड जे0एच0आर0 1970-1971।

- हन्टिग एस ए पास्ट टाइम ड्यूरिंग द टर्की अफगान परियड जे0एच0आर0 1970-71
- ग्लिम्पसेस आफ द प्रेक्टिस आफ सती-एस प्रीवलेन्ट इन द टर्की-अफगान पीरियड आफ, जे0एच0आर0 जनवरी 1970
- सम आस्पेक्टस आफ म्यूजिक एण्ड डान्सिंग एण्ड ड्रेमटिक परफार्मेन्सेस डियूरिग द टर्की-अफगान पीडियड, जे0एच0आर,अगस्त 1971।
- द ब्रीफ एकाउन्ट आफ द कस्टम ऑफ पर्दा इन इण्डिया इन द टर्की-अफगान पीरियड, जे0एच0आर0,अगस्त 1973

के0के0 शाह
- प्राचीन बुन्देलखण्ड, (अंग्रेजी संस्करण), सं0 1987, गेन पब्लिशिंग हाउस दिल्ली

के0एम0 निजामी
- लाईफ एण्ड इन्डीशन आफ पीपुल आफ हिन्दुस्तान (दिल्ली 1959)

कन्हैयालाल अग्रवाल
- विन्ध्यक्षेत्र का ऐतिहासिक मूल्यांकन, सं01987(प्रका0सतना)

कृष्णदास
- बुन्देलखण्ड के कवि, वि0सं0 2017 (प्रका0 पन्ना)

कृष्णा स्वामी आयंगर
- साउथ इण्डिया एण्ड हर मोहम्मडन इनवेडर्स (लन्दन 1921)

के0एस0लाल
- ग्रोथ ऑफ द मुस्लिम पापुलेशन इन मेडिवल (देहली 1993)
- हिस्ट्री ऑफ दि खिलजीस (इलाहाबाद 1950)
- ट्बालाइट आफ द सल्तनत (बम्बई 1963)
- स्टडीज इन मेडिवल इण्डियन हिस्ट्री (देहली 1963)
- पालिटिकल कन्डीशन ऑफ दि हिन्दूज अन्डर द खिलजीस, पी0आई0एच0सी0 1946,पृ0 32-237।
- दि सैलरी आफ ए सोल्जर इन द डेज ऑफ अलाउद्दीन खिलजी (1280-1316), पी0आई0सी0पृ0 176-178
- तैमूर्स विजिटेशन आफ देहली, पी0आई0एच0सी01961 7-8
- फिस्कल एण्ड रेवेन्यू रिफार्मस आफ अलाउद्दीन खिजली (1296-1316) प्रो0ए0आई0ओ0 कान्फेन्स 1940 भाग-2 पृ0 448-457।

लक्ष्मी प्रसाद मिश्रा
- बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक इतिहास भाग-1, सं0- 1990 प्रकाशन- नागपुर

लल्लन जी गोपाल
- दि इकोनामिक लाईफ आफ नार्दन इण्डिया (700-1200)

लावण्य स्वामी
- विमल प्रबन्धक (स0डा0 धीरजलाल धानजी भाई शाह, प्रकाशक- गुजरात साहित्य सभा अहमदाबाद, 1965)

एम0ए0अहमद ■ इम्पीरियल मजलिसेस इन अरली सल्तनत पीरियड, पी0एच0सी0 1941, पृ0 322

एम0 अफजाल आर0 खान ■ नोविलिटी अन्डर मुहम्मद बिन तुगलक, पो0आई0एच0सी0 1981 ।

एम0सी0जोशी ■ सम नागिरी इनक्रिप्सन्स आन द कुतबमीनार- मेडिवल इण्डिया मिसिलिनी भाग-2 अलीगढ़ 1972 ।

एम0एम0शरीफ ■ दि सुल्तान एण्ड द उल्मा इन द टर्किश सल्तनत आफ देहली (1206-1413), इकबाल 1965 पृ0 31-60

मुहम्मद अब्दुल हुई ■ उस्वए रसूले अकरम (सल्लल्लाहु-अलैहि-वसल्लम) अनु0 डा0 खालिद बिन युसूफ खाँ- डॉ0 अब्दुल्ला इकबाल सं0 1997 मिल्लत प्रेस, दोधपुर, अलीगढ़

मुहम्मद अतहर अली ■ कैपिटल ऑफ सुल्तान्स आफ देहली ड्यूरिंग द 13 एण्ड 14 सेन्चुरीज, आई0एच0सी0 1980

मुहम्मद अजीज अहमद ■ सुल्तान ग्यासद्दीन बलवन, जे0आई0एच0 1936, पृ0 330-336

मुहम्मद बिहम्मद खानी ■ तारीख-ए-मुहम्मदी, अनु0 मुहम्मद जकी (अलीगढ़, 1972)

■ इण्डिया इन दि फिफ्टीन्थ सेन्चुरी, हेकलूट सोसाइयटी (लन्दन 1851)

मुहम्मद हबीब ■ सम आस्पेक्टस ऑफ द दिल्ली सल्तनत के0एम0 अशरफ मेमोरियल वाल्यूम (दिल्ली 1966)

■ दि पालिटिक्स थ्योरी ऑफ द दिल्ली सल्तनत (इलाहाबाद)

■ पालिटिक्स एण्ड सोसायटी डयूरिंग द अर्ली मेडिवल पीरियड (सकंलन) के0ए0 निजामी भाग-1, (अलीगढ़), 1974

■ इन्ट्रोड्रक्शन टू द सेकेण्ड वाल्यूम ऑफ द इलियट एण्ड डाउसन (पुनः संस्करण 1951, अलीगढ़)

मुहम्मद हबीब एण्ड के0ए0निजामी ■ काम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग-5 (बम्बई 1970)

मुहम्मद यासीन मजहर ■ आफिस ऑफ कोतवाल अन्डर द सुल्तान्स आफ दिल्ली, पी0आई0एच0

■ स्लेव एक्यूजिशन इन दिल्ली सल्तनत,आई0एच0सी0 1981

■ हिन्दूज इन एडमिनिस्ट्रेटिव आप्रेंटस ऑफ दिल्ली सल्तनत, आई0एच0सी0 1977

■ दि मर्चेन्टस एण्ड द दिल्ली सल्तनत (13-14 सेन्चुरी) आई0एच0सी0 1975

	■	फन्कशन एण्ड पोजीशन आफ द काजींस ड्यूरिंग दि सल्तनत पीरियड इन एजाज-ए-खुसरवी आई०एच०सी० 1970।
मुहम्मद कबीर	■	अफसाना-ए-शाहान अनु०एस०बी०पी० निगम सूर्यवंश का इतिहास, दिल्ली 1973।
मुहम्मद जवी	■	अरब एकाउन्ट आफ इण्डिया ड्यूरिंग द 14 सेन्चुरी (दिल्ली 1981)
	■	एकयूजिशन ऑफ इस्लामिक लर्निंग अन्डर द सैय्यद एण्ड लोदीस मेडिवल इण्डिया मिसिलेनी भाग-4 (अलीगढ़ 1977)
एन०बी० राय	■	ट्रेड एग्रीकल्चर एण्ड इन्डस्ट्री इन वेस्ट बंगाल (1200-1608), ऐज फाउन्ड इन द परशियन एण्ड अरैबिक सोर्सेस, जे०ए०एस०बी०।
नेल्सन राईट	■	केटेलाग ऑफ क्वाईन्स इन इण्डियन, म्यूजियम
	■	उपरोक्त, भाग-2
निजाम खलील अहमद	■	सम आस्पेक्ट्स आफ रिलीजन ट्रेन्ड इन तुगलक पीरिएड जनरल ऑफ पाकिस्तान हिस्टारिकल सोसायटी सं० 1953
एन०पी० जोशी	■	कैटलाग ऑफ द ब्रह्मानिकल स्कल्पचर दी स्टेट म्यूजियम लखनऊ, सं० 1992
ओम प्रकाश	■	सम इकोनामिक डाटा फ्राम कुमुदसार कौमुदी आफ थक्कर फेरू, पी०आई०एच०सी० 1965 पृ० 205-206 ।
परशुराम चतुर्वेदी	■	उत्तरी भारत की सन्त परम्परा
पी०डी० पाठक	■	भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं, संस्करण - 1994 प्रकाशन- आगरा।
पी०एन०ओझा	■	सम लाईट आन द प्रमोशन ऑफ स्कालरशिप एण्ड लर्निंग अन्डर द तुगलक सुल्तान, जे०एच०आर० जनवरी 1968,पृ० 64-67 ।
पी० शरण	■	स्टडीज इन मेडिवल इण्डियन हिस्ट्री (दिल्ली 1968)
पुष्पा प्रसाद	■	क्रापट्समैन इन देहली सल्तनत, ए स्टडी आफ एपिग्राफिक विडेन्स आई०एच०सी० 1965।
	■	ए फोर्टीन्थ झांसी डिस्ट्रिक्ट,आई०एच०सी० 1983 ।
	■	एग्रेरियन पोटेन्ट्इसन, ए स्टडी आफ एपिग्राफिक विडेन्स आई०एच०सी० 1977
कयूमउद्दीन अहमद	■	बर्नीस रिफरेन्स टू द हिन्दू इन तारीख-ए-फिरोशाही, आई०सी० 1982 पृ० 295-302 ।
राधाकृष्ण बुन्देली	■	बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन, सं० 1989, प्रका०

बुन्देलखण्ड प्रकाशन, बाँदा

राधेश्याम (प्रोफेसर) ■ सल्तनतकालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास, सं० 1987 प्रकाशन- इलाहाबाद

राजबली पाण्डेय ■ अशोक के अभिलेख फलक, सं० 29

रामस्वरूप ढेगुला ■ बुन्देलखण्ड का राजैतिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन सं० 1987, प्रका० कानपुर।

रशीद ■ सोसायटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इण्डिया

आर०सी०जौहरी ■ रायल कारखानाज आफ तुगलक सुल्तानस, पी०आई०एच०सी० 1965, पृ० 192-196 ।

■ ए पयू कनाल्स ऑफ पंजाब, पंजाब हिस्ट्री कांग्रेस,1965 पृ० 82-87 ।

■ लर्निंग एण्ड लिट्रेचर ड्यूरिग द रेन ऑफ फिरोजशाह तुगलक, आई०सी० अक्टूबर 1967, पृ० 241-46 ।

आर०सी० मजूमदार ■ क्लासिकल एकाउण्ट्स ऑफ इण्डिया, सं० 1960, कलकत्ता

आर०एन०प्रसाद सिंह ■ ग्लिम्प्सेज आफ अकोनामिक लाईफ एज डेपिक्टेड इन कबीर, पी०आई०एच०सी० 1969)

आर०नाथ ■ आगरा इन हिस्टारिकल टिक्लाईट फाम अर्लीएस्ट टाइम्स टू 1558, जे०एच०आर० जनवरी 1971, पृ० 14-42 ।

राबर्ट सीबैल ■ द फारगाटेन इम्पायर (लन्दन 1940)

आर०पी०त्रिपाठी ■ कास्ट्स इन नार्दन इण्डिया डयूरिंग द मेडिवल पीरियड़,पी० आई०एच०सी० 1973, पृ० 311 ।

आर०वी०रैन्डर्स ■ इण्डियाज ट्रेड विद अफ्रीका फ्राम अरलीएस्ट टाईम्स टिल द एण्ड आफ द 15 सुन्चुरी पी० आई०एच०सी० 1943, पृ० 22-227 ।

■ सोर्सेज आफ रेवेन्यू अन्डर फिरोजशाह तुगलक पी०आई० एच०सी०1943 ।

■ सम आस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन, इलाहाबाद 1936)

सैय्यद हसन अस्करी ■ मैटीरियल आफ हिस्टारिकल इन्टरेस्ट इन एजाज-ए-खुसरवी मेडिवल इण्डिया मिसिलैनी, भाग-1 अलीगढ़ 1969 ।

■ हिस्टारिकल मैटीरियल इन एजाज-ए-खुसरवी, पी०आई०एच० सी 1964 ।

■ मेडिसिन एण्ड हास्पिटल इन मुस्लिम इण्डिया, पी०आई० एच०सी० 1957 ।

सैय्यद ए०ए० रिजवी	■	आदि तुर्क कालीन भारत (अलीगढ़ 1965)
	■	खिजली कालीन भारत (अलीगढ़ 1955)
	■	तुगलक कालीन भारत, भाग-1 (अलीगढ़)
	■	तुगलक कालीन भारत्र, भाग-2 (अलीगढ़ 1957)
	■	उत्तर तैमूर कालीन भारत,भाग-1 (अलीगढ़)
	■	उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग-2 (अलीगढ़)
	■	सुफोज्म इन इण्डिया, भाग-1 (दिल्ली)
एस०ए०लतीफ	■	ए साइड-लाईट आन द सोसल हिस्ट्री ऑफ देहली सुल्तान्स द फारच्यून्स ऑफ ए फैमली आफ आफिशियल्स, आई०एच०सी० 1983 ।
	■	दि आफिस आफ शेख-उल-इस्लाम अन्डर द सुल्तान्स आफ देहली, आइ०एच०सी० 1983 ।
	■	दि आफिस आफ शेख-उल-इस्लाम अन्डर द सुल्तान आफ देहली, आइ०एच०सी० 1974 ।
	■	दि इक्ता सिस्टम अन्डर द अर्ली सुल्तान्स आफ देहली, आई०एच०सी० 1974 ।
सखाराम सरदेसाई	■	मराठों का नवीन इतिहास, सं० 1980 (प्रका० आगरा)
संकटा प्रसाद शुक्ला	■	उ०प्र० की पुरा सम्पदा, सं० 1981 (प्रका० लखनऊ)
सतीशचन्द्र	■	मध्यकालीन भारत, सं० 1998, प्रकाशन नयी दिल्ली।
एस०बी०पी० निगम	■	सर्यवंश का इतिहास (दिल्ली 1973)
	■	नोबिलिटी अन्डर द सुल्तानस आफ देहली (दिल्ली 1968)
	■	आर्गेनाइजेश आफ टर्किश नोबिलिटी इन इण्डिया (1200-1398) आई०सी० 1965 ।
एस०सी० मिश्रा	■	मुस्लिम कम्यूनिटीज इन गुजरात (बम्बई 1964)
	■	सोशल मोबिलिटी इन प्री मुगल इण्डिया आई०एच० आर०जिल्द 4 भाग-1 पृ० 36-43 ।
एस०डी० त्रिवेदी	■	बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, सं० 1984, प्रकाशन- राजकीय संग्रहालय, झांसी
एस०एफ० जाफर	■	सम कल्चरल आस्पेक्टस आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया (दिल्ली)
शहाबउद्दीन उल उमरी	■	मजलिस-उल-अबसार फीममालिक-उल अमसार (अनु० आटो स्पाईस)
	■	अनु इक्तदार हुसैन सिद्दकी 'ए फोरटीन्थ सेन्चुरी अरब

एकाउन्ट ऑफ इण्डिया अन्डर मुहम्मद बिन तुगलक (अलीगढ़)

शम्स-ए- सिराज अफीफ ■ तारीख-ए-फिरोजशाही (बिब इण्डिका, कलकत्ता 1890)

शेख अब्दुल रशीद ■ फेमीन इन टर्की- अफगान पीरियड, पी०आई०एच०सी० 1964

■ प्राईस कन्ट्रोल अन्डर अलाउद्दीन खिजली, प्रो० पाकिस्तान हिस्ट्री कान्फ्रेन्स, 1951, पृ० 203-210 ।

■ इन्शा-ए-महरू, आई० सी० 1951, पृ० 203-210 ।

■ मर्चेन्ट्स एण्ड आर्टिसियन्स इन मेडिवल इण्डियन इकोनामी (1208-1526 डॉ० एस० फेलिसिटेशन वाल्यूम, वाराणसी, 1969 ।

■ एग्रेरियन सिस्टम ऑफ तुगलक्स-जनरल ऑफ अलीगढ़ हिस्टारिकल रिचर्स इन्स्टीटयूट भाग-1 1941, पृ० 84-101

■ लैण्ड रेवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशन ड्यूरिंग द सल्तनत पीरियड 1962, पृ० 1-1

एस०एच० होदीवाला ■ स्टडीज इन इण्डो-मुस्लिम हिस्ट्री, बम्बई 1939 ।

श्री निवास हर्डिकर ■ बाला जी-तात्या टोपे, सं० 1985, प्रकाशन- दिल्ली।

सर सुन्दरलाल ■ भारत में अंग्रेजी राज्य, सं० 1960, प्रकाशन- सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

एस०लाल ■ ग्रोथ ऑफ द मुस्लिम पापुलेशन इन मेडिवल इण्डिया, सं० 1973, प्रकाशन- दिल्ली।

स्टेनली लेनपूल ■ मेडिवल इण्डिया अन्डर मोहम्मद रूल, (1903)

सुलेमान नदवी ■ दि एजुकेशन आफ हिन्दूस अन्डर द मुस्लिम रूल, कराची 1963 ।

■ कामर्शियल रिलेशन्स ऑफ इण्डिया विद अरेबिया, आई०सी० 1937, पृ० 488-497 ।

■ मुस्लिम कालोनीज इन इण्डिया बिफोर द मुस्लिम कान्क्वेस्ट, आई०सी० 1934, पृ० 477- 484, 600- 620, 1935, पृ० 144-46 ।

सुरेन्द्र गोपाल सिंह ■ कामर्स एण्ड क्राफ्ट्स इन गुजरात (दिल्ली 1975)

■ फिरोजशाहज फिजकल रेग्यूलेशन्स, पी०आई०एच०सी० 1938

■ सम ग्लिम्पसेस ऑफ सोसाइटी एक्ट पालिटी एज डेपिकटेड इन उसमानस चित्रावली, पी०आई०एच०सी० 1938 ।

सुशील कुमार सुलेरे ■ अजयगढ़ एवं कालिंजर की देव प्रतिमाए, सं० 1974

तपन राय चौधरी ■ दि कैम्ब्रिज इकोनामिक हिस्ट्री आफ इण्डिया भाग-1

ताराचन्द्र ■ इन्फ्लूएन्स ऑफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर (इलाहाबाद, 1946)

यू0एन0डे0 ■ सम आस्पेक्ट्स आफ मेडिवल इण्डियन हिस्ट्री (दिल्ल 1971)

यूसूफ हुसैन खाँ ■ सोशल एण्ड इकोनामिक कन्ट्रीब्यूशन इन मेडिवल इण्डिया, आई0सी0 1956

■ द एजुकेशनल सिस्टम इन मेडिवल इण्डिया आई0 सी0 1956

■ ग्लिम्पसेस ऑफ मेडिवल इण्डिया कल्चर (बम्बई 1962)

यू0 एण्ड डे ■ मेडिवल मालवा (दिल्ली 1965)

वासुदेव शरण अग्रवाल ■ मार्कण्डेय पौराणिक सांस्कृतिक अध्ययन, सं0 1961

वासुदेव उपाध्याय ■ प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, सं0 1961 प्रकाशन- बनारस

वेणीराम त्रिपाठी ■ भक्त मोरध्वज, संस्करण- 1979, प्रकाशन- बनारस

विशुद्धानन्द पाठक ■ उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास, वि0सं0 2029, प्रकाशन- उ0प्र0 हिन्दी संस्थान।

वी0बी0मिश्रा ■ सोशल कन्डीशन ऑफ इण्डिया ड्यूरिंग द अरली मेडिवल पीरियड एज ग्लीम्ड फ्राम द इपीग्राफी एण्ड एकाउण्ट ऑफ मुस्लिम ट्रवलर्स, ए0बी0ओ0आर0आई 1956 ।

डब्ल्यू0एच0 मोरलैण्ड ■ दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इण्डिया, (कैम्ब्रिज 1929)

जफर हुसैन मौलवी ■ सीरी ए सिटी ऑफ दिल्ली फाउन्डेड बाई अलाउद्दीन खिजली-आर्केलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट 1965 ।

गजेटियर

1. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया भाग 1 से 10 तक ।
2. गजेटियर ऑफ ना0 वे0 प्रा0 भाग-1 ।
3. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ उ0प्र0 बाँदा भाग-11 ।
4. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ उ0प्र0 हमीरपुर भाग-12 ।
5. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ उ0प्र0 झाँसी भाग- 14 ।
6. बॉम्बें गजेटियर भाग-1, 1896
7. राजपूताना गजेटियर

शोध सम्बन्धी पत्रिकायें (अगेंजी)

1. इंडियन ऐण्टिक्वेरी, भाग 11, 12, 13, 14, 16, 17, 18, ।
2. इपिग्रेफिया इण्डिका, भाग 1, 2, 3, 4, 5, 10, 11, 12, 14, 16, ।
3. आर्कुलाजिकल सर्वे रिर्पोर्टस- कनिंघम, भाग-2, 6, 9,10, 21, 32 ।
4. जर्नल ऑफ दी एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, भाग-1, 6, 10, 17, 18, 46, 50, 58, 66,
5. ऐनल्स ऑफ दि भण्डारकर ओरियंटल इन्स्टीट्यूट, पूना, भाग- 9, 10, ।
6. जर्नल ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी लन्दन ।
7. आर्कुलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, ऐनुवल रिपोर्ट भाग-2, 10, 11 ।
8. जर्नल ऑफ दि बाम्बे ब्रांच ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, भाग- 18 ।
9. मेमौयर्स ऑफ दि एशियाटिक सोसाइटी, ऑफ बंगाल, भाग-3 ।
10. दिन जर्नल आफ दि बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, भाग-5, 1940 ।
11. प्रोसीडिंग्स ऑफ दि इण्डियन हिस्टोरिकल रेकार्डस, भाग-10 ।

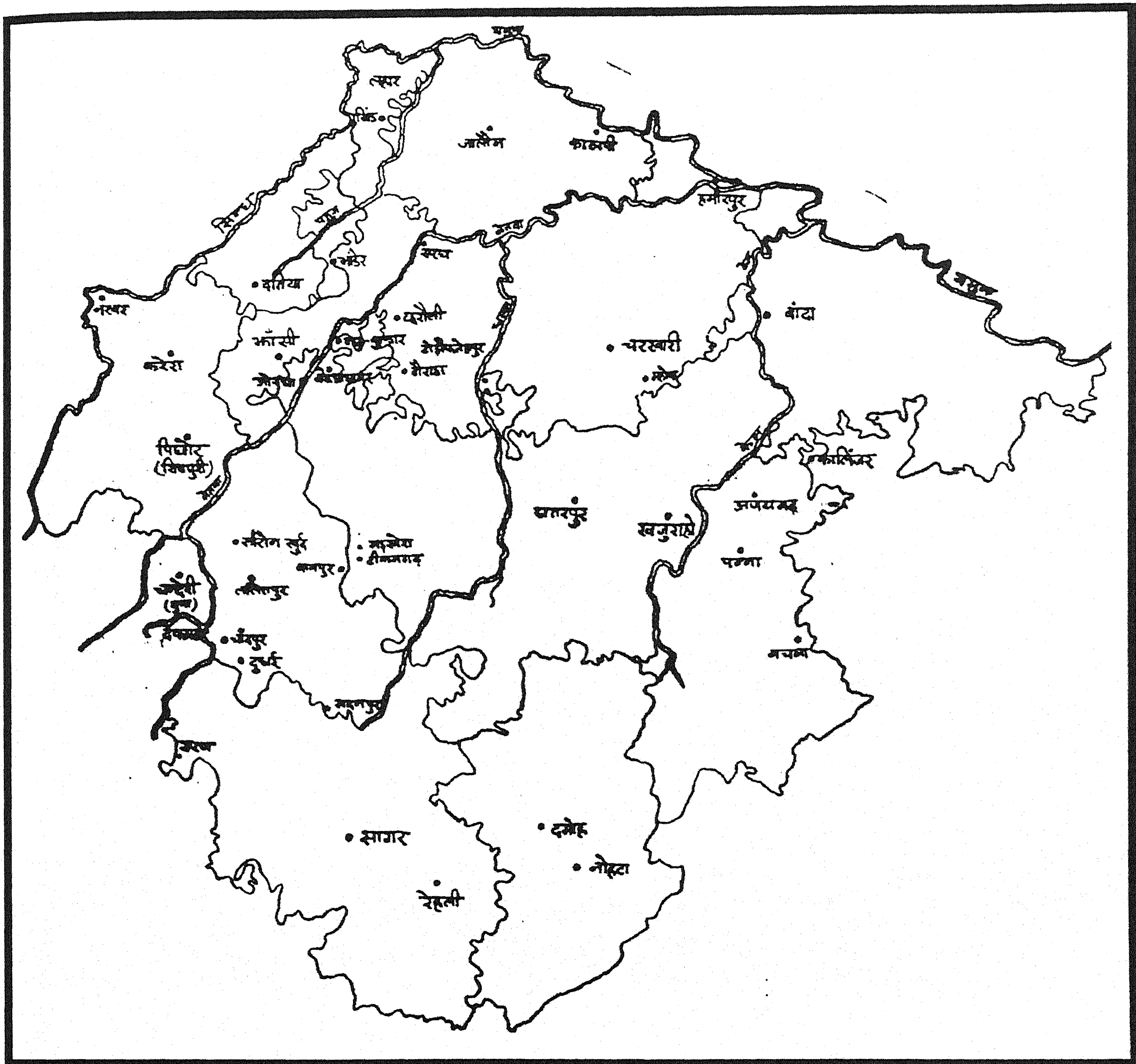
शोध सम्बन्धी लेख

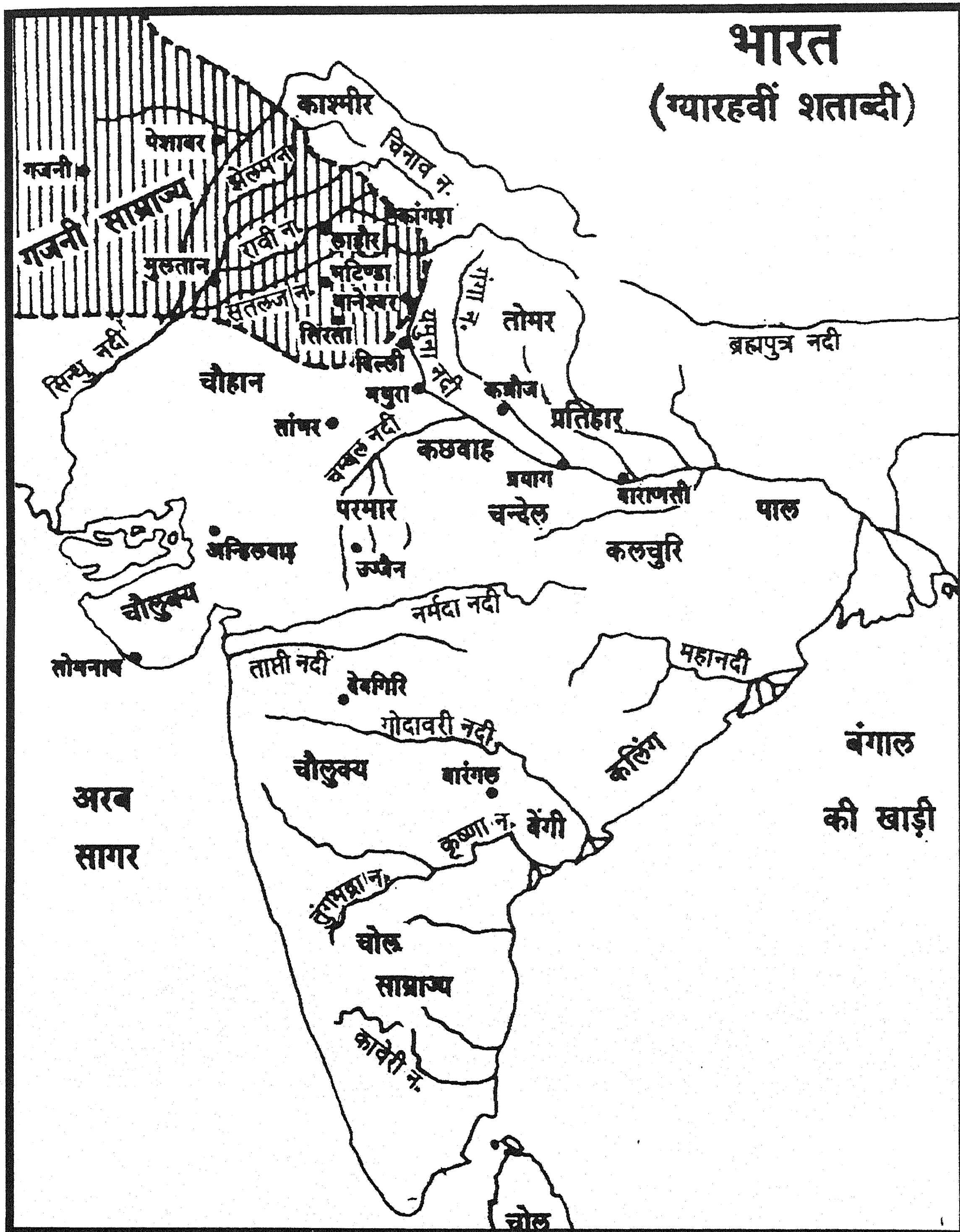
1. एस0डी0 त्रिवेदी- बुन्देलखण्ड की मूर्ति सम्पदा,
उ0प्र0 की पुरा सम्पदा,
प्रकाशन- सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग सं0- 1981.
2. सैय्यद मगरबी- बाँदा की सौहार्दपूर्ण सांस्कृतिक विरासत
स्वर्णमा (पत्रिका)

परिशिष्ट

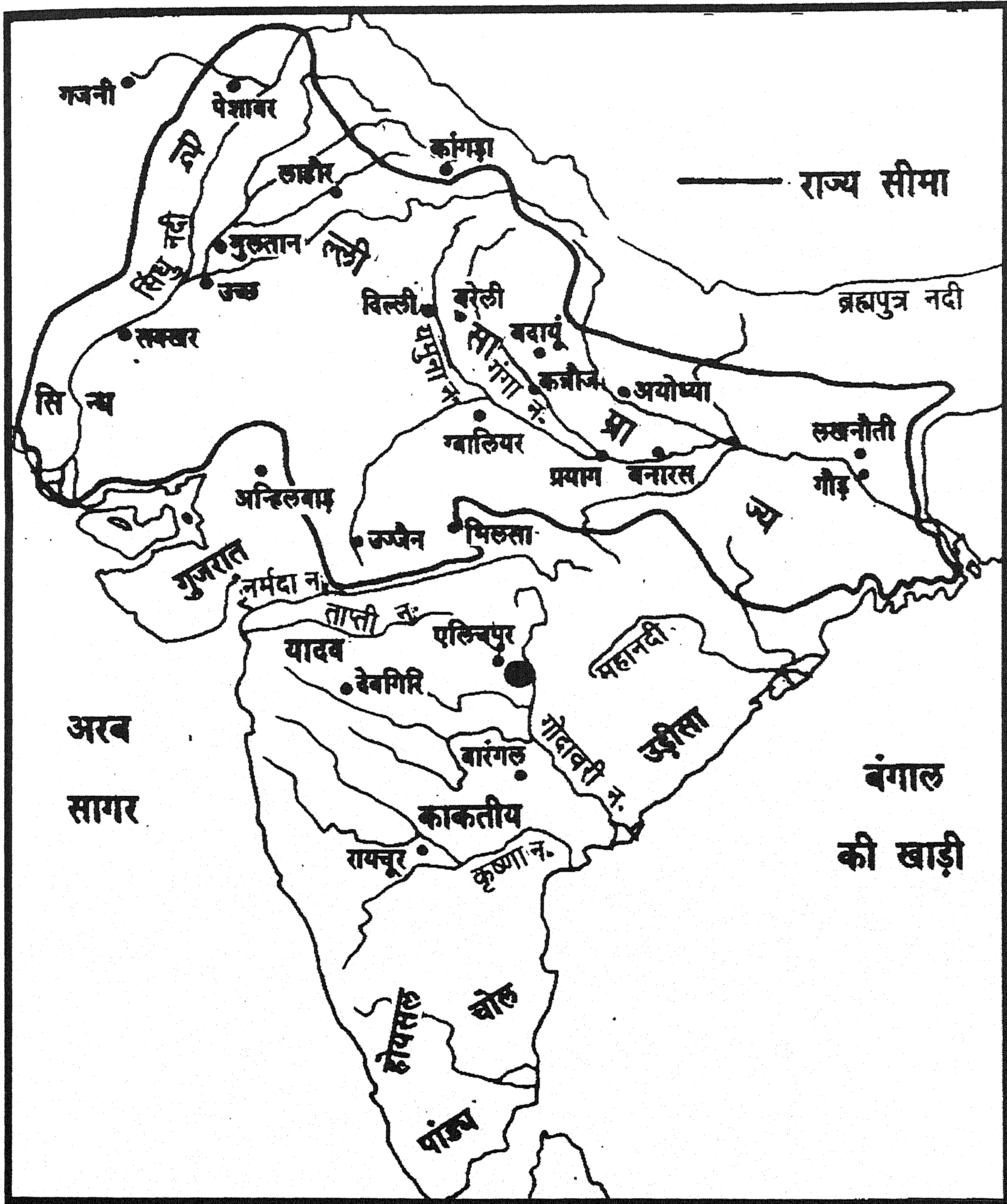
मानचित्र एवम् चित्रावली

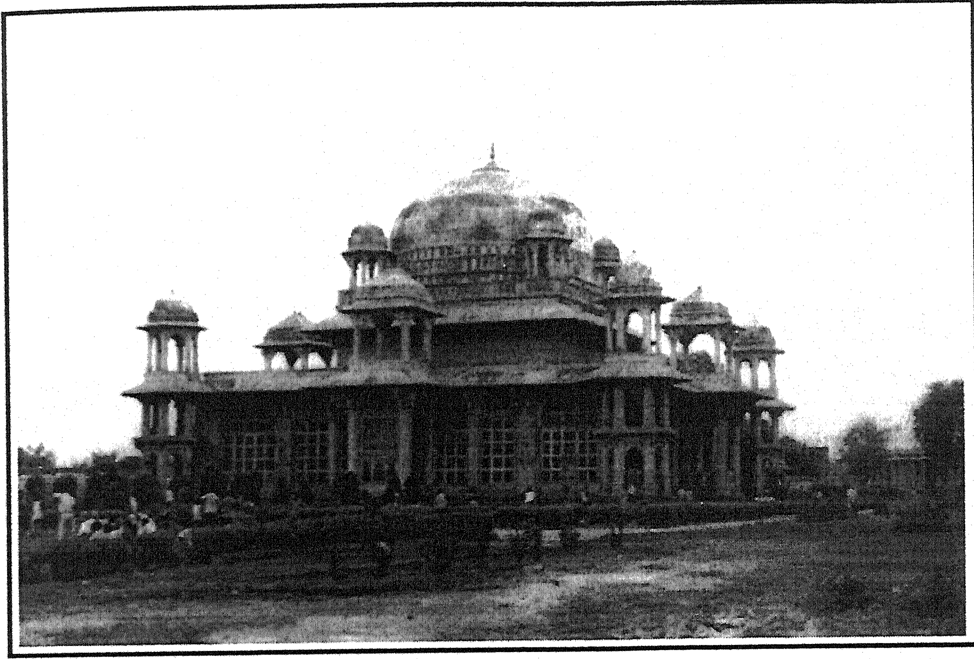
बुन्देलखण्ड का मानचित्र



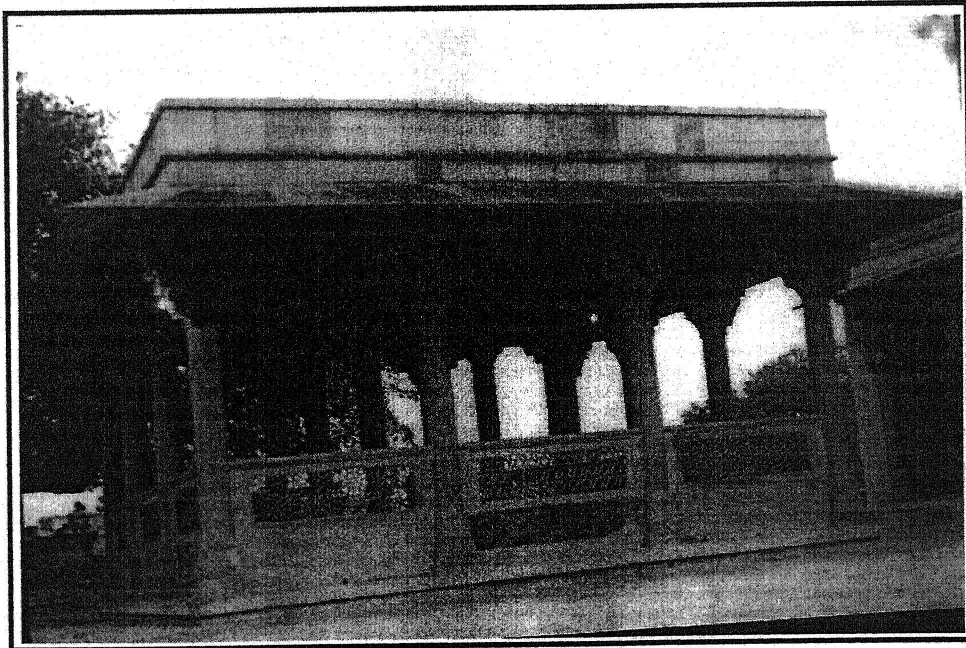

भारत
(ग्यारहवीं शताब्दी)
गजनी
पेशावर
गजनी साम्राज्य
काश्मीर
चिनाव न.
झेलम न.
रावी न.
मुलतान
सुतलज न.
सिन्धु नदी
सिरसा
दिल्ली
यमुना नदी
गंगा न.
तोमर
मथुरा
कन्नौज
प्रतिहार
ब्रह्मपुत्र नदी
चौहान
कछवाह
चम्बल नदी
प्रयाग
वाराणसी
परमार
चन्देल
पाल
अन्हिलवाड़
उज्जैन
कलचुरि
चौलुक्य
नर्मदा नदी
सोमनाथ
ताप्ती नदी
देवगिरि
महानदी
गोदावरी नदी
चौलुक्य
वारंगल
कलिंग
बंगाल
की खाड़ी
अरब
सागर
कृष्णा न.
वेंगी
तुंगभद्रा न.
चोल
साम्राज्य
कावेरी न.
चोल

इल्तुतमिश के समय मे दिल्ली सल्तनत

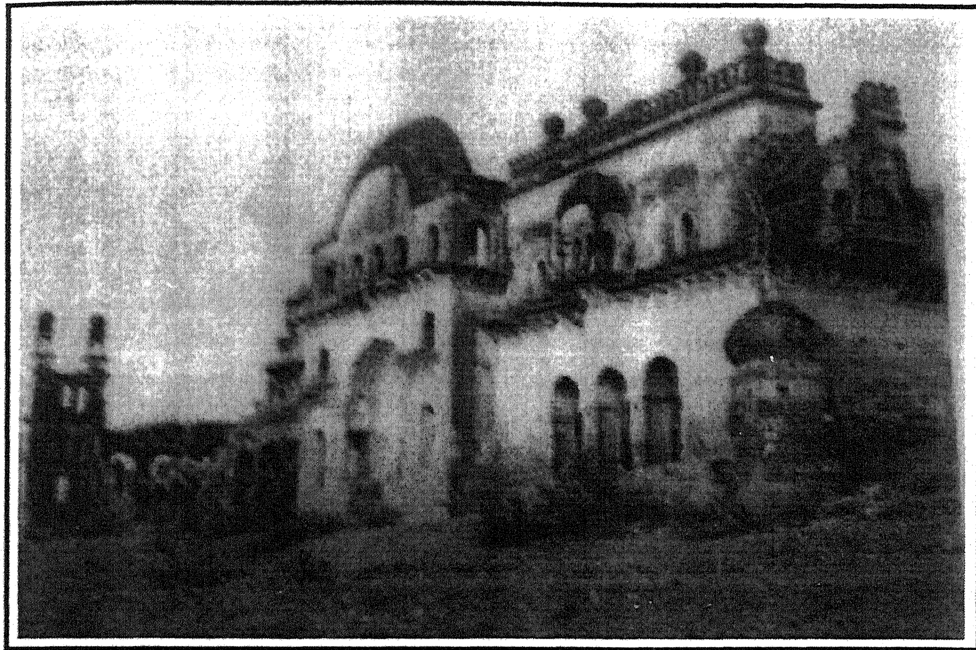




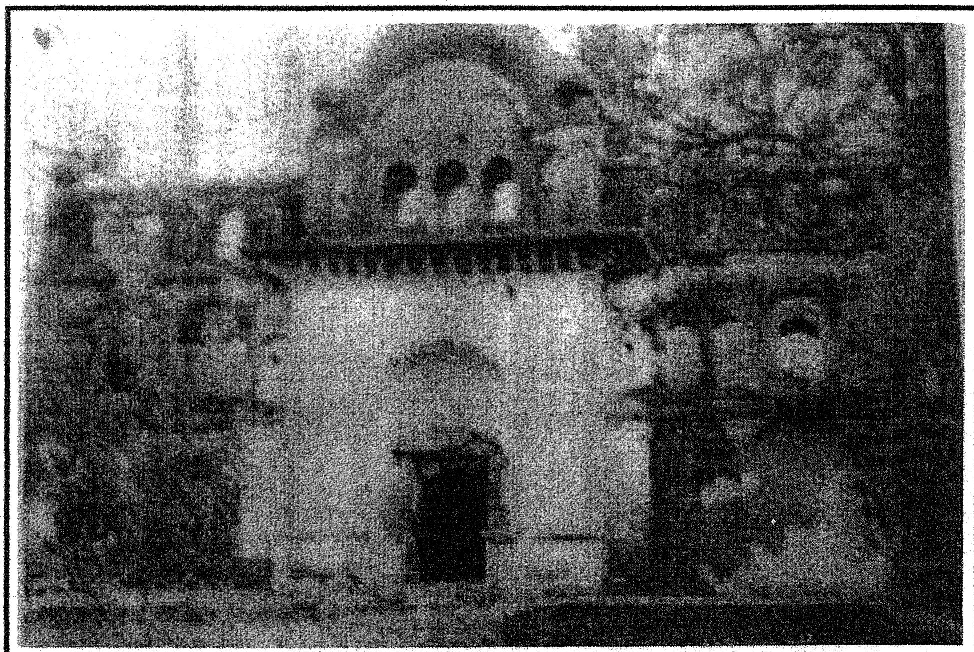
मुहम्मद गौस का मकबरा
ग्वालियर



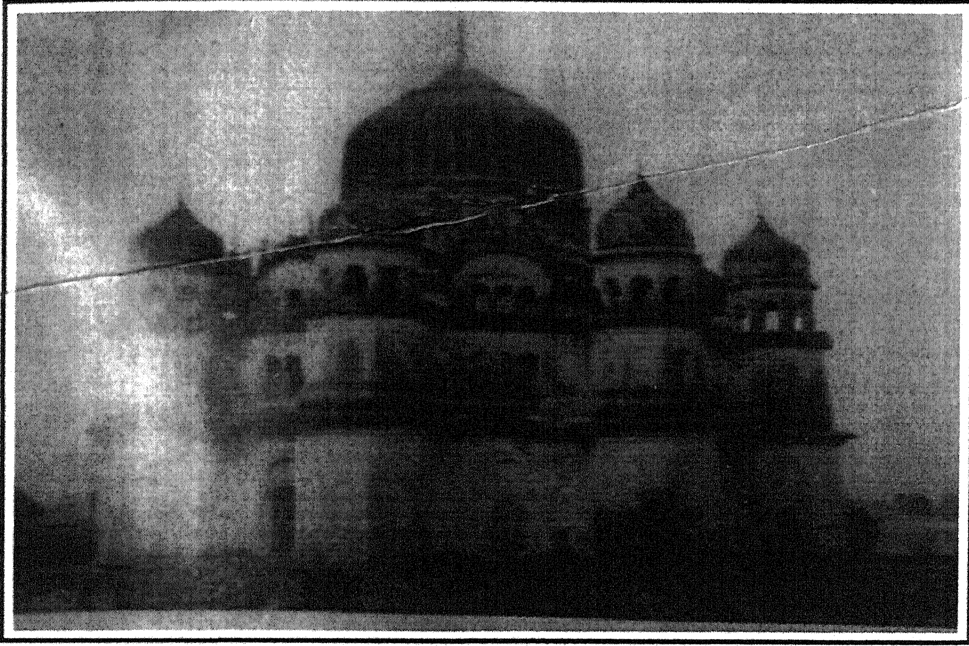
तानसेन की समाधि
ग्वालियर



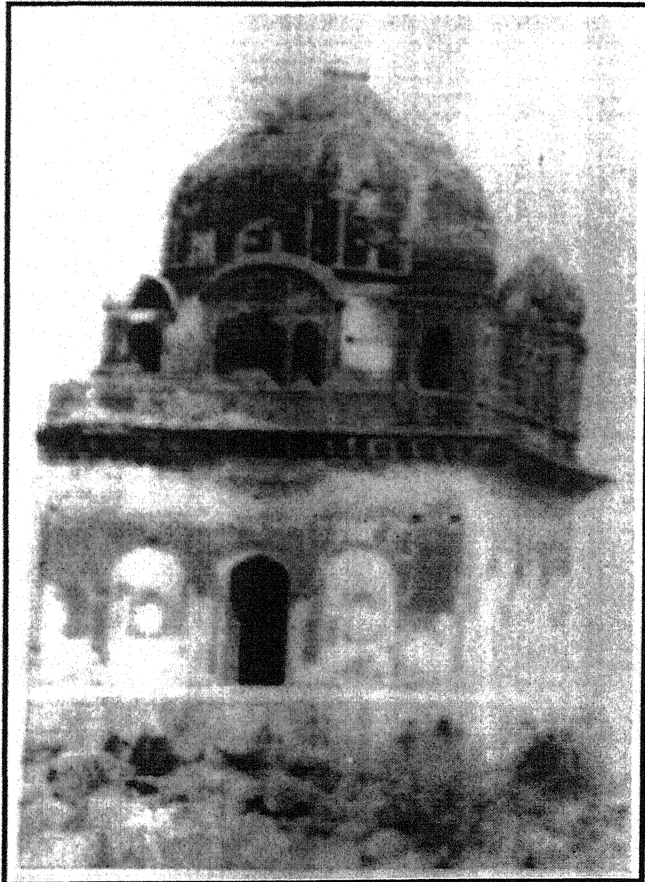
हृदयशाह का महल
धुबेला, जनपद-छतरपुर



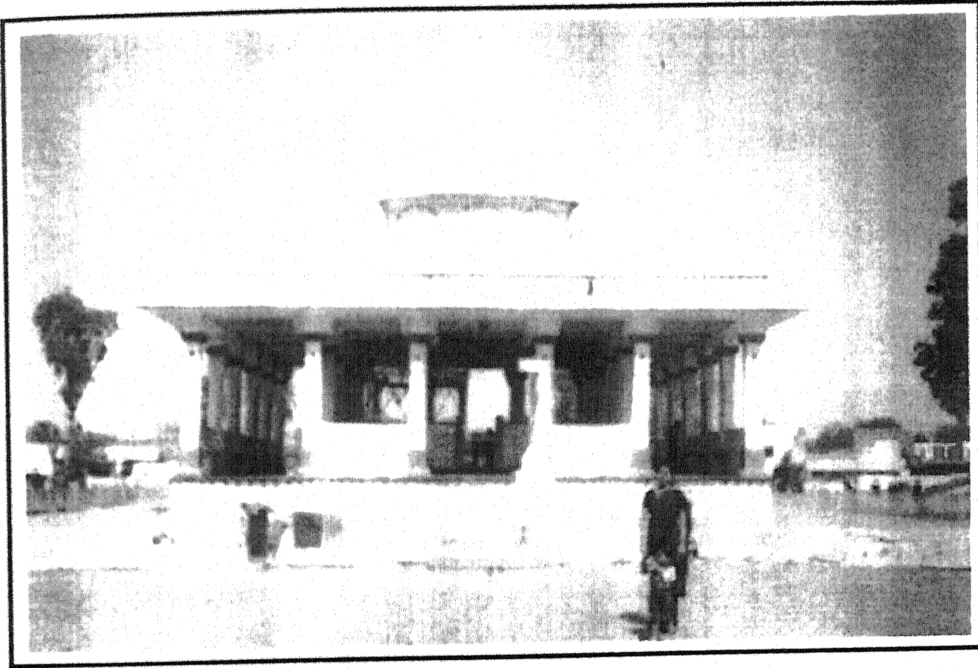
मस्तानी महल
धुबेला, जनपद-छतरपुर



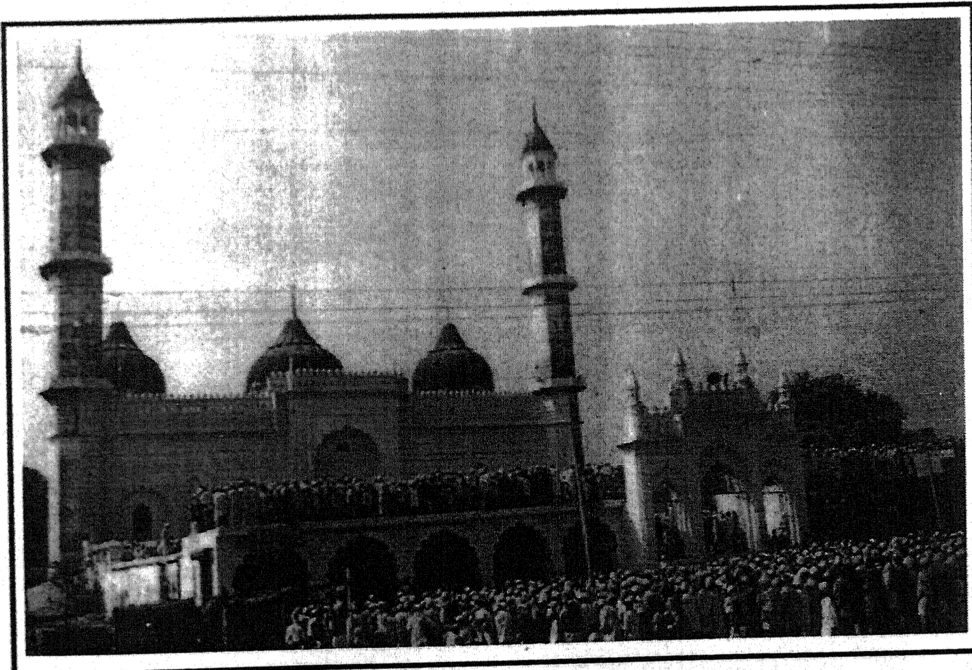
कमलापति का मकबरा
महेवा



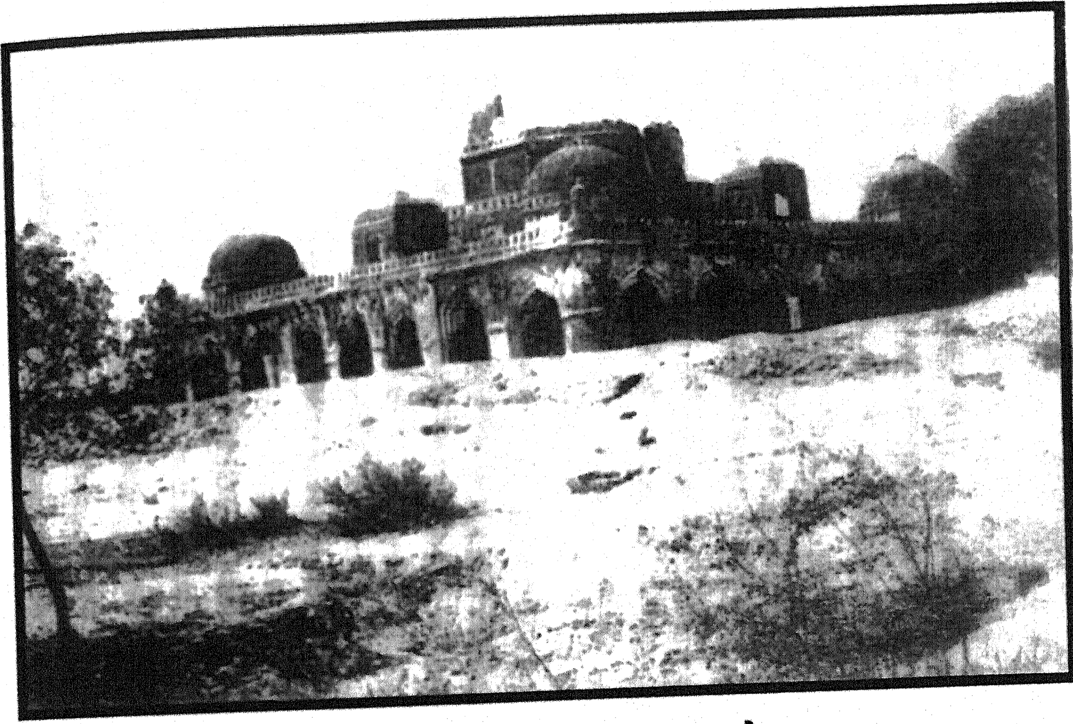
बेरछावाली रानी का मकबरा
धुबेला, जनपद-छतरपुर



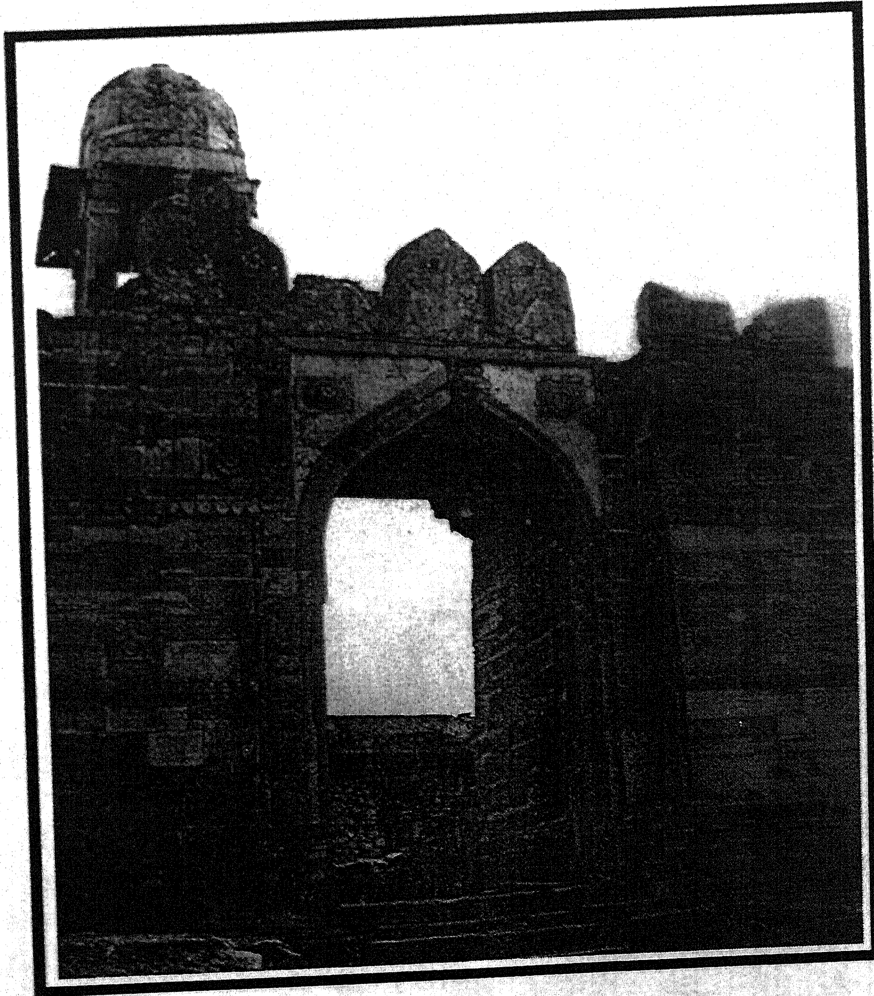
सदनशाह बाबा की मजार
ललितपुर



जामा मस्जिद
बाँदा



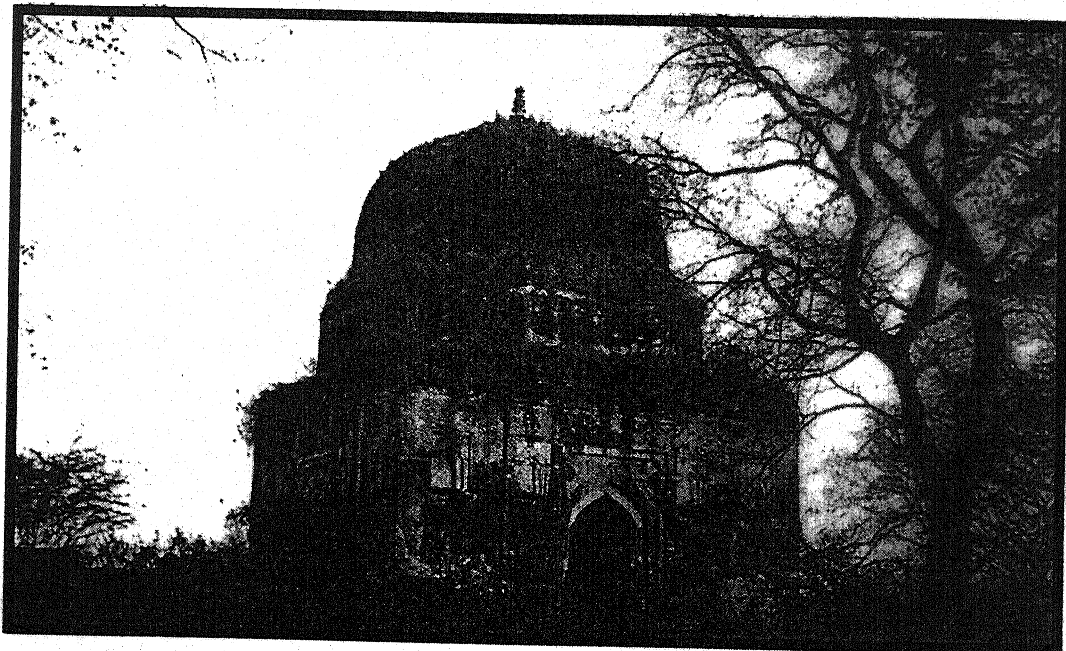
चौरासी खम्भा के भग्नावशेष
कालपी (जालौन)



कालिंजर दुर्ग का प्रवेश द्वार



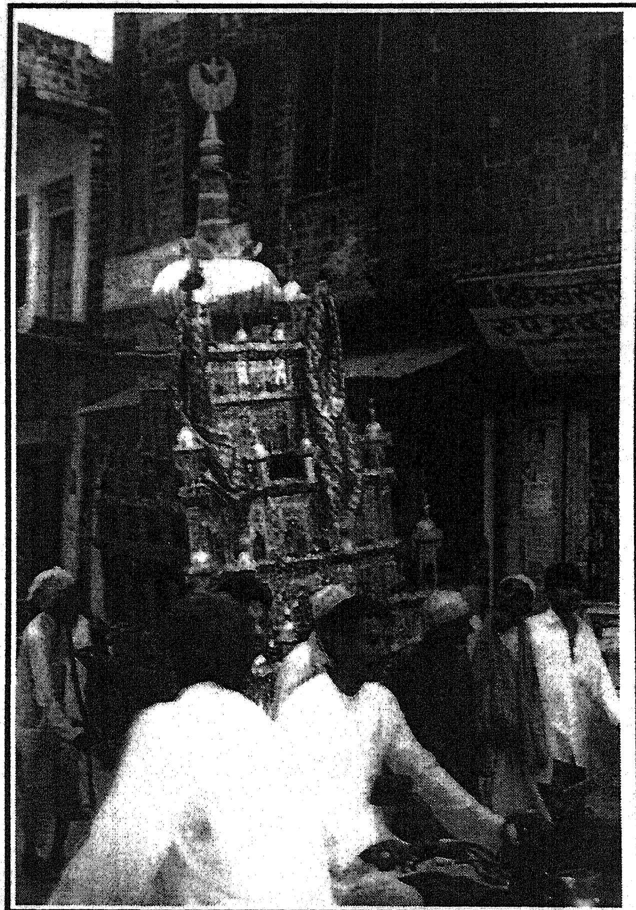
पंचमढ़ी
चरखारी (महोबा)



12वीं शताब्दी में निर्मित बन्जारी का मकबरा
हमीरपुर



मुहर्रम पर्व में
ढाल लिये युवक



मोहर्रम पर्व में
ताजिया